

## दिग्दर्शनी

---

पद्य		विषय लेखक पृष्ठ		
विषय	लेखक			
अन्तर-निनाद—श्री क्षेमानन्द 'राहत'	१२१	धोखा—श्री क्षेमानन्द 'राहत'		१
अभिलाषा—श्री देवीदीन दीक्षित 'दिवाकर'	१२५	निराश पथिक—श्री भद्रजित 'भद्र'		३३
अञ्जलि—श्री अवन्तबिहारी माथुर	२८१	नारी-महिमा—श्री महाराज चतुरसंहजी, उदयपुर		४९
अधर में—श्री क्षेमानन्द 'राहत'	३६१	नवयुवको !—श्री प्रभुनारायण शर्मा		१९५
अद्भुत झंकार—श्री बाँकेबिहारीलाल भटनागर 'कृष्ण'	३६३	नवयुवकों से—श्री चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा 'विग्रार्थ'		५५३
अत्याचारी के प्रति—श्री सुमंगलप्रकाश शास्त्री	५००	प्रण—श्री भुवनेश्वर सिंह 'भुवन', लेखमाला-सम्पादक		२५
अनन्त की ओर—श्रीमती महादेवी वर्मा	५६५	प्रताप-प्रतिज्ञा—श्री भद्रजित 'भद्र'		१३३
	६०१	प्रभु-दर्शन—श्री देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', बी. ए.		
		एल. एल. बी		२४८

विषय	लेखक	पृष्ठ	विषय	लेखक	पृष्ठ
शुभ-प्रभात—श्री गुरुप्रसाद पाण्डेय 'गुरु'		१९२	देश-भक्ति पाप ! —लाला लाजपतराय		३६४
शूली पर—श्री 'अमर'		५६०	देश भक्ति का कठिन मार्ग—भाई परमानन्द, एम. ए.		४८५
स्मारक—श्रीमती महादेवी वर्मा		१४०	धर्म—श्री विष्णु-चरण-रज		४९७
सुख स्वप्न—श्री 'प्रियहंस'		४३३	पहला प्रश्न—श्री हरिभाऊ उपाध्याय		२४२
सैनिक गीत—श्री भद्रजित 'भद्र'		४८४	पवित्र मेरु—श्री जयशंकर 'प्रसाद'		६०५
हमारा झण्डा—श्री 'कण्टक'		६	पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के चित्र—श्री गोपालदामोदर तामस्कर, एम. ए. एल. बी. २७५		
गद्य		२	ब्रिटिश साम्राज्य की शासन-पद्धति—श्री अध्यापक दयाशंकर दुबे, एम. ए. एल. एल. बी तथा श्री भगवानदास केला २६६, ३९५, ६३१		
		६२३	वारडोली संग्राम—श्री हरिभाऊ उपाध्याय		४८२
अमरता की गोद में—श्री हरिभाऊ उपाध्याय			बादशाही जमाने में गो-रक्षा—श्री कामताप्रसाद जैन 'वीर'—संपादक ६३९		
अजमेर—श्री गोपालस्वरूप भटनागर			आजगीय दर्शन-शास्त्र—श्री सख्तलालजी जैन ७		
आधुनिक प्रजातंत्र का असली- रूप—श्री कृष्णजी रामचन्द्र कुलकर्णी, एम. ए. ३६७, ५१०					
आचार्य ध्रुव—श्री रामेश्वर गौरीशंकर ओझा, बी. ए. ३९०					
आदर्श वीरता—श्री इंद्र विद्यालंकार ४८९					
अस्सीसवीं शताब्दि के जापानी नाटक—श्री					

विषय	लेखक	पृष्ठ	विषय	लेखक	पृष्ठ
विजयी बारडोली में—श्री वैजनाथ बी० ए०		७२६	जात-पात का भूत—श्रीमती विद्याधरी जैहरी 'विशारदा'		१६६
विदेशों में भारतीय रजवाड़े—श्री भवानीदयाल सग्यासी			जीवन में सौंदर्य का मूल्य—श्री शिवचरणलाल शर्मा		४०९
( जैकोब्स )		६१०	देवी !—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी		५४६
शिक्षा की व्यावहारिक कसौटी—श्री गोविन्द बलवन्त			धर्म के नाम पर अधर्म—श्री मुकुटविहारी वर्मा		४०२
माफोडे		३८	धन्य मृत्यु !—श्रीमती मीराबहन ( मिसस्लेड )		४१९
शिक्षा का ढग—श्री हरिहर शर्मा, बी. ए.		१२७	पढ़ो कम गुनो ज्यादा ( कहानी ) श्री क्षेमानन्द 'राहत'		५३
समाज की दो दशायें—श्री अवध उपाध्याय		१०	पुरुष ध्यान दे—श्री शिवप्रसादसिंह 'विश्वेन'		५९
संसार की समस्या—श्री हरिभाऊ उपाध्याय		१२२	पाप या पुण्य—श्री मुकुटविहारी वर्मा		१६१
स्वतंत्रता ( उद्धरण ) श्री सुखचन्द्र बोस		२४१	पतियों का कर्तव्य—श्री 'एक भारतीय'		१८२
स्वर्गीय पण्डित गोपबन्धु दास—श्री० काशीनाथ			परदे को फाड़ फेंको—श्री वैजनाथ महोदय बी० ए०		२८१
नारायण त्रिवेदी बी० ए०			परदा-विरोधी-आंदोलन—श्री 'युवक-हृदय'		५३३
सोवियट रूस—श्री वैजनाथ महोदय बी. ए.		१७८	प्रगतिशील तुरुफ बहनें—श्री मुकुटविहारी वर्मा		६५०
हमारा अन्नदाता—श्री हरिभाऊ उपाध्याय		६०२	बाल-विवाह का धार्मिक स्वरूप—श्री मदनगोपाल काबरा		६७
हृदय की फलक—श्री नन्द 'राहत'			प्रसूदेश की स्त्रियाँ—श्री देवासिंह चंदेल		६९
हैथ्या २८० दीपक		६४३	भारतीय स्त्रियों की जागृति—श्री रामसाहब हरिलाल		

विषय	लेखक	पृष्ठ
स्त्रियाँ कैसी बनें ?—श्रीमती ब्रह्मावतीदेवी भटनागर		४०६
स्त्री क्या है ?—श्री पं० रामनरेश त्रिपाठी		४२१
स्त्री हितैषी कर्वे—श्री वामनमल्हार जोशी एम० ए०		५२५
सन्देह ( कहानी )—श्रीमती गिरिजाबाई केलकर		५३७, ६५७
स्फुट प्रसंग—	७१, १८७, ३१०, ४२९, ५४८, ६७०	

### उगत रष्ट्र

आह्वान—श्री देवव्रत शास्त्री	१९२
आशा-युग—श्री काशीनाथ नारायण त्रिवेदी बी० ए०	३१४
आत्म-चिन्तन—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी	६७४
करने से पहचानना—श्री साधु टी० एल० वास्त्वानी	७९
झूठ का भारम्भ—श्री 'सत्येन्द्र' बी० ए०	८२
त्याग—श्री बाबूराम श्रीवास्तव	२००
नवभारत—साधु टी० एल० वास्त्वानी	३१४
पुरुषार्थ बनो—श्री वैजनाथ महोदय बी० ए०	७६

विषय	लेखक	पृष्ठ
क्यों ?—श्री शान्तिप्रसाद वर्मा		५७१
काला तिल—श्री कृष्णानन्द गुप्त		६८६
गौरव-गीत—श्री बालकृष्ण बलदुधा		
चन्द्रगुप्त; अशोकवर्धन, कनिष्क		८७
समुद्र गुप्त; हर्षवर्धन		२०३
हमसीर देव		४४१
राणाकुम्भा		५६६
जगत् के साहित्य ( अरबी साहित्य )—श्री रामनाथ-		
लाल 'सुमन'		६८२
टीबों से—श्री श्रीगोपाल नेवटिया, 'विशारद'		२०१
नवयुग—श्री बाबूराम सकसेना एम० ए०		३२५
पंखी-गीत—श्री आचार्यदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर		२०४
पागल—श्री 'प्रलापी'		५६८
बनावटी नाम—श्री 'कन्दर्प'		८३



वैषय	लेखक	पृष्ठ	वैषय	लेखक	पृष्ठ
स्वास्थ्य के दस आदेश ( कर्मवीर से )		४५२	नीर-क्षीर-विवेक—मदर इण्डिया ( हिन्दी ),		
हमारी आद—श्री भानुदास शाह एम० एस० सी०			कुमार हृदय का उच्छ्वास; होलिकांक, साहित्य		
एल-एल० बी०	४५१		सत्कार	१०७—१११	
क्षय और उसका प्रतिबंध ( संकलन )—श्री मुकुट	६८९		राजपूताने का इतिहास ( खण्ड २ ); विशाल भारत;		

### ज्ञान-ज्ञान

तेजस्विनी का वक्तव्य— ( 'रणदुन्दुभि' से )	३२९		संस्कृत-विशेष—मदर इण्डिया ( हिन्दी ),		
माया—श्री डा० जी० एस० विशारद	३२७		कुमार हृदय का उच्छ्वास; होलिकांक, साहित्य		

### विधि

अग्रवालों में जागृति—श्री हरिभाऊ उपाध्याय	२२२		पुराणमतपर्यालोचन; हिन्दी रेलवे टाइम टेबल; शिशु;		
उद्यानों में नृत्य के काम—श्री शर्मा	३५१		बालसखा; खिलौना	३४६—३४९	
कलकत्ते में नृत्य—श्री ५७५	७१६		हेन्दू; त्रिपथगा; ब्रह्मचर्यसाधन; चाँद का पत्राङ्क;		
मदनारायणसिंह	५९१		साहित्य सत्कार	४५३—४५६	

\* .. **असहाय किसान; पीड़ित मजदूर—श्री**  
**जीनाथ नारायण त्रिवेदी बी० ए०** ७०८

હટતી—શ્રી કૃષ્ણ ૨૦૧-૨૧૩

चीन और जापान; अफगानिस्तान और  
अंग्रेज़; अंग्रेज़ और ईरान की संधि; इंग्लैण्ड और  
मिश्र—श्री कृष्ण ३३५-३३९

अमेरिका का विश्व-शान्ति का प्रस्ताव;

संपादकीय—प्रताप की पूजा; आर्य समाज भजमेर का उत्सव ('राहत') हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सामने कार्य, मिल मालिका के लिए अनुकरणीय; सौदे से काम कैसे चलेगा ? क्रांति के लिए बेचैनी ( ह० उ० ) ११३-२०

मगनलाल भाई जीवित हैं; नवजीवन आ  
रहा है, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पदाधिकारी;  
अ० भा० मराठी साहित्य सम्मेलन ग्वालियर;  
( ह० उ० ) बम्बई के मिल मजदूरों की गंभीर  
हड़ताल ( काशीनाथ ) २३४-२४०

जयन्तियों की धूम; स्वराज्य विधान का  
प्रश्न; मजदूर और मालिक; बहिष्कार और मिल-  
मालिक; भजमेर की समस्या; (ह० उ०) प्रताप-  
जयन्ती ('राहत')

# हमारी सहायता की जरूरत

‘त्यागभूमि’ को अपनी साहेत्यिक उच्चता और महत्ता पर गर्व नहीं, वह आपकी एक बेनमर सेवा है। उसने भरसक आपकी सेवा करने का प्रयत्न किया है—इस सेवा की नाप-तौल उसकी वास्तविक सफलता पर नहीं बल्कि आन्तरिक भावों पर आश्रित होनी चाहिए। वह आपकी है और आपकी सेवा के बल पर ही जीना चाहती है। मानव-जाति और राष्ट्र की सेवा के लिए—जीवन का सच्चा सन्देश सर्व साधारण तक पहुँचाने के लिए ही उसका जन्म हुआ है। यह आपका काम है अतएव ‘त्यागभूमि’ के प्रचार-प्रसार

## हमारी सहायता करना आपका धर्म है

आशा है, उसके प्रचार में आप हमारा हाथ बटावेंगे।

‘त्यागभूमि’ के लेखकों और कवियों के नाम ही  
उसकी सार्थकता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं

श्री कृष्णदास (महात्माजी के भू. पू. प्राइवेट सेक्रेटरी),  
श्री जमनालाल बजाज, श्री घनश्यामदास,  
श्री परमानन्द, श्री दीनबन्धु ऐरावत, श्री महादेवाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राय  
श्री कृष्णदास (महात्माजी के भू. पू. प्राइवेट सेक्रेटरी),

\* श्रीः \*

पण्डितराजश्रीरुहिरामजीशास्त्रि(चिडावा-जयपुर)स्मारकं-

श्रीराजस्थान-संस्कृत-कालेज-ग्रन्थमालायाः

\* विंशङ्कुसुमम् \*

महोपाध्यायश्रीवरदाजाचार्यविरचिता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

गोपाध्यायश्रीः

श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिणः

व्याकरणाचार्याः, न्यायाचार्या, दर्शनाचार्याः,

इत्येतैः संगृहीतया सरलया सरलीकृतया टीकया

किञ्च भाषाटीकया च समलङ्कृता ।

[ ४२ वर्षाणां प्रश्नपत्रैरन्विता च ]

प्रकाशकः

भार्गवपुस्तकालयः, गायधाट, बनारस

पृतीयं संस्करणम् ]

१९४२

[ मूल्यं रफ ॥=) ग्लेज ॥ ]

लघुसिद्धान्तकौमुदी-पुस्तकालयः,

प्रथम संस्करण ५०००	१०-८-३७
द्वितीय संस्करण १००००	२४-७-३९
तृतीय संस्करण ५०००	१-५-४२

मुद्रक

पं० कैलासनाथ भार्गव,

भार्गव भूषण प्रेस, गायधाट, बनारस सिटी ।

All Rights Reserved by the Publisher

# तृतीयसंस्करणप्रस्तावना

अथ महामहोपाध्यायविद्वद्भिरश्रीमद्भट्टोजिदीक्षितानामन्तेवासिभि-  
र्भहामहोपाध्यायश्रीवरदराजभट्टैर्विरचिता वैयाकरणसिद्धान्तसरल्या  
सरण्या प्रकाशयन्ती 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी'प्रदर्शित भार्गमुद्दिश्य  
प्रवर्त्तमाना बालोपकारपरायणा वैयाकरणलघुसिद्धान्तकौमुदीयं सरला-  
ख्यया टीकायां किञ्च विस्तृतया भाषाटीकाया च सनाथोक्तताऽस्माभिः  
सम्मुद्य प्रकाश्यते ।

प्रथमपरीक्षार्थिना बालानामुपकाराय चाऽस्या सरलाया टीकाया  
सरलतमा एव विषया ग्रन्थोपलपनायाऽपेक्ष्यमाणाः समुपनिबद्धा इति  
परीक्षार्थिनश्छात्रा इमा सरला भाषाटीका च प्रकाममादरिष्यन्ते ।

अभ्याससौकर्याय च महता श्रमेण सङ्गृहीतानि द्विचत्वारिंशद्वर्षाणां  
ग्रन्थपत्राण्यन्यत्राऽन्ते निवेशितानि ।

तदुपरि च कृतेऽभ्यासे भ्रुवं ग्रन्थोपस्थितिदाढ्यं, ततश्च परीक्षासु  
नितरामभिमतफलप्राप्तिश्छात्राणां भविष्यतीति विश्वसिमः ।

सुस्तिग्धैर्दुग्धधवलैः पत्रैर्मनोहरैरक्षरैर्वहिरङ्गान्तरसौष्ठवोपेतैर्वन्धना-  
दिभिश्च सर्वथा मञ्जुलमिदं संस्करणं स्वल्पतममूल्येन लभ्य महदयाना-  
मानन्दं जनयिष्यतीति सुदृढोऽस्माकं प्रमोदमरः !

अथापि सुलभेनैव मूल्येनैतां प्रकाशयता भार्गवमहोदयानां  
संस्कृतानुरागी छात्रसमूहः प्रकाममाभारीति ।

किञ्च तृतीये संस्करणे टीकाया बहवो विषया वर्धिता बाललोक-  
सुपकरिष्यन्तीति च ।

श्रीराजस्थान-संस्कृत-कालेज,  
मीरघाट, काशी ।  
५-५-४२

}

निवेदकः—

श्रीगुरुप्रसादशास्त्री ।

संसार मे सबसे  
सस्ती

# श्रीगुरुभारादशास्त्रीकृत

परीक्षापयोगी  
पुस्तकें

लघुशब्देन्दुशेखर (अन्ययीभावान्त) दुर्लभ परीक्षोपयोगी ६ टीका ८)

वैयाकरणभूषणस्तार—'काशिका' और 'दर्पण' टीका ५)

स्वप्नवासवदत्तानाटक—'अभिनवराजलक्ष्मी' भाषाटीका ११)

पञ्चतन्त्र (सम्पूर्ण) परीक्षोपयोगी 'अभिनवराजलक्ष्मी' टीका ॥=)

पञ्चतन्त्र (प्रथम परीक्षोपयोगी) अपरीक्षितकारक ॥=)

पञ्चतन्त्र प्रथम तन्त्र मूल्य ॥=)

तर्कसंग्रह (मध्यमपरीक्षा) 'परिमल-दीपिका' टीका ॥=)

तर्कसंग्रह (प्रथमपरीक्षा) 'बालमनोरमा' 'परीक्षा' ४ टीका ॥)

भूलरामायणे नागेशमटी 'अभिनवराजलक्ष्मी' २ टीका ॥=)

हितोपदेश अभिनवराजलक्ष्मी एवं भाषाटीका सहित सम्पूर्ण १॥)

हितोपदेश (मित्रलाभ) संस्कृत टीका भाषा टीका ॥)

छन्दोमन्दाकिनी परीक्षोपयोगी १६ छन्दों का मूल्य १=)

मध्यसिद्धान्तकौमुदी अद्भुत सरल टीका मूल्य १॥=)

अष्टाध्यायीसूत्रपाठ अत्युत्तम 'सरला' टीका मूल्य ॥=)

अमरकोश प्रथमकाण्ड 'अभिनवराजलक्ष्मी' टीका १६ पेजी ग्लेज ॥=)

” ” गुटका (३२ पेजी) ॥) अमरकोश प्रथमकाण्ड ३२ पेजी १=)

” ” मूलमात्र १=) ” द्वितीय काण्ड ॥=)

रूपकौमुदी अत्युत्तम प्रथमपरीक्षोपयोगी संग्रह मूल्य १=)

वेणीसंहारनाटक सचित्र १॥) शिशुपालवधम् ॥=)

विदुरनीति (सचित्र) १=) शब्दरूपावलि १६ पेजी ॥=)

नीतिशतक (सचित्र) ॥=) ” ” ३२ पेजी मूल्य ॥=)

सारस्वतव्याकरणम् ॥=) किराताकुनीय (१-२-३) ॥=)

धातुरूपावलि: ॥=) सोत्तरा प्रयोगसूची १=)

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायधाट, बनारस ।

\* श्रीगणेशाय नमः । श्रीसरस्वत्यै नमः \*

# लघुसिद्धान्तकौमुदी

सरला-भाषा-टीकाद्वयसमन्विता

नेत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।  
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

\* श्रीमन्महागणाधिपतये नमः \*

अथ श्रीगुरुप्रसादशस्त्रिकृता

\* सरला \*

नुमोऽनवधसद्वन्धविधोद्भासितदिङ्मुखान् ।

भरुमण्डलमात्तण्डलेहिरामाऽभिधान् गुरुन् ॥ १ ॥

नेत्वा-अव्ययपदम् । सरस्वती-द्वितीयान्तम् । देवी-द्वितीयान्तम् ।  
शुद्धा-द्वितीयान्तम् । गुण्या-द्वितीयान्तम् । करोमि-क्रियापदम् । अहं  
प्रथमान्तम् । पाणिनीयप्रवेशाय-चतुर्थ्यन्तम् । लघुसिद्धान्तकौमुदी-  
द्वितीयान्तम् । ( इति पदच्छेदः ) ।

अहं वरदराजाचार्यो लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि । किङ्कत्वा, ? सरस्वती  
नेत्वा । कथम्भूतां सरस्वती ? । देवीम् । पुनः कथम्भूता सरस्वती ? । शुद्धाम् ।  
पुनः कथम्भूता सरस्वती ?-गुण्याम् । कस्मै प्रयोजनाय ? । पाणिनीयप्रवेशाय ।  
( इति खण्डान्वयः ) ।

१ भाषा टीका-मैं वरदराजाचार्य भगवती श्रीसरस्वती देवीजी को ( जो शुद्ध  
स्वरूप हैं और समस्त गुणों करके युक्त हैं- ) प्रणाम करके वालकों को अनायास से  
व्याकरण शास्त्र का ज्ञान कराने के लिए इस लघुसिद्धान्तकौमुदी नामक ग्रन्थ को  
बनाता हूँ ॥ १ ॥



सरो-ज्ञानं, तदस्या अस्तीति भरस्वती, तां-सरस्वतीम् । दीव्यतीति देवी, तां-देवीम् । प्रगस्ता गुणाः सन्त्यस्याः मा-गुण्या, तां-गुण्याम् । पणनं पणः=व्यवहारः । पणोऽस्यास्तीति पणी=प्रजापतिः, पणिनो गोत्रावत्यं-पाणिनः, पाणिनस्य युवापत्यं-पाणिनिः । पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् । पाणिनीये प्रवेशः-पाणिनीयप्रवेशः, तस्मै-पाणिनीयप्रवेगाय । सिद्धोऽतो=निश्चयो येषु ते सिद्धान्ताः, लघवश्च ते सिद्धान्ताश्च-लघुसिद्धान्ताः, लघुसिद्धान्तानां कौमुदीव- लघुसिद्धान्तकौमुदी, तां-लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ।

( इति विग्रहः ) ।

वैयाकरणसिद्धान्तप्रकाशकत्वेन, वालानामतिदुरुहवृत्तिमहाभाष्यकैयटाद्या-करत्रन्यान्तरेभ्यःसिद्धान्तज्ञाने जायमानस्य क्लेशरूपसन्तापस्य शामकत्वेन च कौमुदीसादृश्यम् । कौमुदी हि-घटपटाद्यर्थं प्रकाशयति, घर्मादिसन्तापजन्यं लोकानां क्लेशं शमयति चेति प्रसिद्धमेव । 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ने'त्यमरः ॥

नच ग्रन्थादौ 'नत्वा सरस्वतीं देवी'मिति मङ्गलपद्यं किमर्थं समुपनिबद्ध-मिति वाच्यं, 'मङ्गलादीनि मङ्गलमन्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीर-पुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुषकाणि-'इति महाभाष्योक्तेः, 'समाप्तिकामो मङ्गलनाचरेत्' इति गिष्ठाचारानुमितश्रुतेश्च विघ्नध्वंसपूर्वकसमाप्त्यादिकामनया मङ्गलार्थं, 'मच्छिष्या अप्येवं कुर्यु'रिति शिष्यशिक्षायै च ग्रन्थादौ तदुपन्यासात् ।

नन्वेवमपि 'पाणिनीयप्रवेशाय'त्यादिकं किमर्थमिति चेन्न, ग्रन्थादाववश्यं वक्तव्यं अनुबन्धचतुष्टयस्य सूचनार्थैव तदुपन्यासात् । तदुक्तं

'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते ।'

'सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वाऽपि कस्यचित् ॥

यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते' ? ॥

किञ्च ज्ञातार्थं ज्ञातसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते ।

ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥' इति ।

'लघुसिद्धान्तकौमुदी'त्यन्वर्थसंज्ञया च लघवो वैयाकरणसिद्धान्ता विप्रथाः, पाणिनीयानां स्वल्पानां वैयाकरणसिद्धान्तानामनायासेन ज्ञानं प्रयोजनम्, अनेन ग्रन्थेन च सह सिद्धान्तानां प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः सम्बन्धः, अधीतकोशादिवैयाकरणस्वल्पसिद्धान्तजिज्ञासुर्बालश्चाधिकारीति अनुबन्धचतुष्टयं सूचितम् ।

## अथ सञ्ज्ञाप्रकरणम् ।

अइउण् १ । ऋलृक् २ । एओङ् ३ । ऐऔच् ४ ।  
 हयवरट् ५ । लण् ६ । अमङ्णानम् ७ । झमञ् ८ ।  
 यढधष् ९ । जयगडदङ् १० । खफछठथचटतप् ११ ।  
 कपप् १२ । शषसप् १३ । हल् १४ ।

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसञ्ज्ञाऽर्थानि ।

तत्रादौ पाणिनीयव्याकरणशास्त्रमूलभूतानि माहेश्वरोपदिष्टानि चतुर्दश-  
 सूत्राणि निर्दिशति-अइउणित्यादि । तत्र अइउण्-प्रथमान्तं, सञ्ज्ञासूत्रम् ।  
 ऋलृक्-प्रथमान्तं सञ्ज्ञासूत्रम् । एओङ्-प्रथमान्तं सञ्ज्ञासूत्रम् । ऐऔच्-  
 प्रथमान्तं सञ्ज्ञासूत्रम् । हयवरट्-प्रथमान्तं सञ्ज्ञासूत्रम् । लण्-प्रथमान्त-  
 सञ्ज्ञासूत्रम् । पूर्वमेवोपि बोध्यम् ।

‘हयवरट्’इत्यत्र हकारोपदेशः अट्-अग्-हश्-इण्ग्रहणेषु हकार-  
 स्यापि ग्रहणाय । तत्फलन्तु-‘अर्हेण’त्यत्र ‘अङ्गव्यायेऽपी’ति णत्वम् ।  
 ‘देवा हसन्ती’त्यत्र ‘भोभगो’ इति रोर्यत्वम् । ‘देवो हसती’त्यत्र च ‘हशि-  
 चे’त्युत्त्वम् । ‘लिलिहिध्वे’ ‘लिलिहिद्वे’ इत्यत्र ‘विभाषेठ’ इति ढत्वविकल्पः ।

‘ह’लिति सूत्रं च वल्-रल्-जल्-गल्पु हकारग्रहणार्थम् । तत्फलञ्च  
 ‘रुदिही’त्यत्र ‘रुदादिभ्यः सार्वधातुके’ इति वलादित्वनिबन्धन इत् ।  
 ‘स्निहित्वा-स्नेहित्वे’त्यत्र ‘रलो व्युपधा’दिति वा कित्त्वम् । ‘अदाग्धा’मित्यत्र  
 ‘झलो झली’ति लकारलोपः । ‘अलिक्षत्’ ‘अधुक्ष’दित्यत्र ‘शल इगुपधा’-  
 दिति सिचः कसादेशः । तदुक्तं

‘हकारो छिरुपात्तोऽयमटि शल्यपि वाञ्छता ।

अर्हेणाऽधुक्षदित्यत्र द्वय सिद्धं भविष्यति’ ॥ इति ।

नन्विमानि सूत्राणि मुनित्रयानुक्तत्वाद्प्रमाणमित्यत आह-इतीति ।  
 इति=इमानि पूर्वोक्तानि ‘अइउ’णित्यादिचतुर्दश सूत्राणि । माहेश्वराणि=

१ अइउण् ऋलृक् आदि ये जो पूर्वोक्त १४ चौदह सूत्र हैं वे श्रीशिवजी  
 महाराज की कृपा से भगवान् पाणिनिजी को अणादिसंज्ञा बनाने के लिए  
 ( मन्त्रवत् ) मिले हैं ।

महेश्वरादागतानि । महेश्वरप्रसादाद्भवता पाणिनिना मन्त्रालङ्घानि ।  
एवमैवमातृपूर्विका श्रुतिरेवैषा महेश्वरप्रसादात्पाणिनिना लब्धेति सूचितम् ।  
तदुक्तं नन्दिकेश्वरेण स्वकृतशिक्षायां-

‘नृत्तावसानं नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्च(१४)वारम् ।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान्तेतद्विमर्शो शिवसूत्रजालम् ॥ इति ।

अत्र सर्वत्र सूत्रेष्वनुबन्धाश्च महेश्वरकृता एव । तदुक्तम्

‘अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यं वर्णचतुर्दशम् ।

धात्वर्थं ससुपादिष्टं पाणिन्यादीप्रसिद्धये’ ॥ इति ।

किञ्च पाणिनीयशिक्षायां

‘येनाऽक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।

कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः’ ॥ इति ।

सूत्रलक्षणन्तु

‘अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।

अस्तोभयनवद्यश्च सूत्रं सूत्रचिदो विदुः ॥’ इति ।

तच्च सूत्रं पञ्चदशम् । तदुक्तं

‘सञ्ज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।

अतिदेशोऽधिकारश्च पञ्चदश सूत्रमुच्यते ॥’ इति ।

तत्र च शक्तिपरिच्छेदकत्वं तन्शासूत्रत्वम् । स्वदेशे अनाहार्या-  
ऽप्रामाणिकज्ञानानास्कन्दितालक्ष्यधर्मिकसाधुत्वप्रकारकबोधोपयोगिवोधाऽतिरिक्त-  
वोधाऽजनकत्वे सति विध्येकवाक्यतया साधुत्वप्रकारकबोधजनकत्वं परिभाषा-  
सूत्रत्वम् । ( अधिकारवारणाय सत्यन्तम् ) । साहालक्ष्यधर्मिकसाधुत्वप्रकारक-  
बोधजनकत्वं विधिसूत्रत्वम् । अन्यनिवृत्तिफलकत्वे सति सिद्धार्थप्रति-  
पादकत्वं नियमसूत्रत्वम् । आरोपप्रतिपादकत्वमतिदेशसूत्रत्वम् । वृत्तिघटित-  
त्वं वा तत्त्वम् । ‘स्वस्मिन् फलशून्यत्वे ( = स्वदेशे वाक्यार्थशून्यत्वे ) सति  
उत्तरोत्तरसम्बन्धित्वम् अधिकारत्वमिति तत्तल्लक्षणं बोध्यम् ।

एषां चतुर्दशसूत्राणां च क्रमबोधकत्वेऽपि क्रमस्य सञ्ज्ञाद्वारैवोपयोगा-  
दादिरन्त्येन सहेतुत्वेन आदिकारादिः अन्त्येनेता ( तत्सदृशेन )  
णकारादिना सद्बोध्यमाना आद्यन्ताक्षिप्तानां मध्यगानां स्वस्य च सञ्ज्ञेत्येव-  
मेकवाक्यतया अणादिपदशक्तिनियामकत्वेन सञ्ज्ञासूत्रत्वं बोध्यम् ।

एषामन्त्या इतः ।

अइउणित्यादौ स्पष्टप्रतिपत्तये सौत्रत्वाच्च न स्वरसन्धिः, अन्यथा आहुण  
इति गुणेऽयादेशे च 'अयुण्' इति 'अ-उ' णित्ते च प्रसज्येत, तथा च वर्णानां  
स्पष्टं प्रतिपत्तिर्न स्यात् । अनुकरणत्वेन सौत्रत्वाच्च वर्णेभ्यो न विभक्तेरुत्पत्तिः ।

ननु 'वर्णात्कार' इत्यनेन ( वर्णविशिष्टात्कारप्रत्ययो भवति, वैशिष्ट्यञ्च  
'स्वनिष्ठवर्णत्वव्याप्याऽत्वादिजात्यवच्छिन्नविशेष्यताप्रयोजकतापर्याप्त्यधिकरण-  
घटितत्व, 'स्वनिष्ठवर्णत्वव्याप्याऽत्वादिजात्यवच्छिन्नविशेष्यताप्रयोजकता-  
पर्याप्त्यधिकरणेतराऽघटितत्वो'भयसम्बन्धेनेत्यर्थकेन )-अइउणित्यादौ प्रत्येकं  
वर्णेभ्यः कारप्रत्ययापत्तिरिति चेन्न ; 'कृत्यल्युटो बहुल'मित्यत्र 'बहुल'मिति  
योगविभागाद्बहुलकात्तदनुत्पत्तेः । परेतु 'वर्णात्कार' इत्यस्य वर्णमात्रबोधका-  
दित्यर्थः, 'संकादीष्टसिद्धयर्थतया च प्रकृते वर्णमात्रबोधकत्वाऽभावेन न कार-  
प्रत्ययः, 'अकारो वासुदेवः स्यादित्यादि तु 'किकार' 'सुकारः' इत्यादिभाष्य-  
प्रयोगवत् कृधातोर्वोधनार्थात् कर्मण्यणि साधु-इति तु गौडाः ।

नन्वेषा सूत्राणां वैयाकरणलघुसिद्धान्तप्रकाशने उपयोगाऽभावादिह  
तदुपन्यासो व्यर्थ इत्यत आह- अणादीति । अण् आदिर्यासा ताः  
अणादय, अणादयश्च ताः सञ्ज्ञाश्च-अणादिसञ्ज्ञाः, अणादिसञ्ज्ञा अर्थः=  
प्रयोजनं येषान्तानि अणादिसञ्ज्ञार्थानि । एवञ्च लाघवेन व्याकरणशास्त्र-  
प्रवृत्तये आश्रयमाणानां अणादिसञ्ज्ञासु उपयोगादेष्टां सूत्राणामादाविहो-  
पन्यासो न व्यर्थ इति सूचितम् ।

ननु कथमेषा सूत्राणामणादिसञ्ज्ञार्थत्वमत आह- एषामिति । एषां=  
पूर्वोक्तानामइउणित्यादिचतुर्दशसूत्राणाम् । अन्त्याः=अन्ते भवा णकारादि-  
वर्णाः । इतः=वक्ष्यमाणसूत्रेण 'हलन्त्य'मित्यनेन इत्सञ्ज्ञका भवन्ति । एवञ्च  
णकारस्येत्सञ्ज्ञकत्वादादिरन्त्येनेति सूत्रप्रवृत्त्याऽणादिप्रत्याहारसिद्धिः स्पष्टैव ।

ननु 'हयवर' इत्यादौ पुन पुनरकारोच्चारणं व्यर्थ, किञ्च हशादि-  
प्रत्याहारेऽकारघटितानामेव हादीनां ग्रहणे 'रामो हिनस्ती'त्यादाद्युत्त्वाना-

१ इन चौदह सूत्रों के अन्त्यके ['ण्' 'क्' 'ङ्' 'च्' 'ट्' 'ण्' आदि] अक्षरों की  
आगे कहे जाने वाले 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत्सञ्ज्ञा ['इत्' यह नाम] होती है ।

हकारादिपिबकार उच्चारणार्थः । लण्मध्ये त्विदञ्चक्रः ॥

हलन्त्यम् १ । ३ । ३ ॥

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात् । उपदेश आधोच्चारणम् ॥

पत्तिरत आह-हकारादिपिबिति । अकारः=अत्वजात्यवच्छिन्नवर्णमात्रम् । अकारा इति यावत् । प्रत्येकामिप्रायेण जात्यमिप्रायेण वैकवचनम् । उच्चारणमेव अर्थः=प्रयोजनं यस्यासौ-उच्चारणार्थः । एवञ्च हकारादीनां मुखेनोच्चारणायैव तत्र पुनःपुनरकारोच्चारणम्, अन्यथा 'हृष्वर्त्' इत्येवमुच्चारणे क्लृप्तापत्तिरिति भावः । किञ्च हृणादिप्रत्यारे हकारमात्रस्यैव ग्रहणं नाऽकारमात्रादित्येति न 'रामो हिनस्ती'त्यादायुत्वानापत्तिरित्यपि बोध्यम् ।

'र' प्रत्याहारसिद्धये लण्मध्यस्थाऽकारस्येतत्सञ्ज्ञाम्प्रतिजानीते-लण्मध्ये इति । लकारोत्तरवर्त्यकारोऽनुनासिक इति तस्य 'उपदेशेऽजनुनासिक इ'दित्यनेनेतसञ्ज्ञा भवतीत्यर्थः । अन्यार्थं नीयमानस्य दध्यादेर्मङ्गलार्थत्वमिव लण्मध्यस्थाऽकारस्योच्चारणार्थत्वमपीत्यप्यवयवम् ।

हलन्त्यमिति । हल्-प्रथमान्तम्, अन्त्य-प्रथमान्तम् । द्विपदमिदं सूत्रम् । तत्र हल्शब्दो नपुंसकलिङ्गोऽप्यस्ति, 'अन्त्य'मिति नपुंसकपदसामानाधिकरण्यात् । 'उपदेशेऽजनुनासिक इ'दिति पूर्वसूत्रादुपदेशे इति इदिति चानुवर्त्तते । तदाह-उपदेशे इति । इत्स्यात्=इत्सञ्ज्ञकं स्यात् । सञ्ज्ञाप्रकरणात् ।

अत्राऽन्योन्याश्रयपरिहारस्तु हलन्त्यमित्यस्याऽऽवृत्त्या हलप्रत्याहारनादौ संसाध्य सिद्धान्तकौमुद्या प्रदर्शितस्तत एवावगन्तव्यः ।

यद्यपि भाष्ये वृत्त्यादौ च 'उपदिश्यतेऽनेनेत्युपदेशः=शान्त्रम् । तच्च शासनकरणं, प्रत्यासत्त्या एतच्छास्त्रीयघात्वागमप्रातिपदिकप्रत्याहारसूत्रप्रत्ययादेशरूप'मित्येव व्याख्यातं, तथापि 'तत्रादत्तं', लघुया वाधेन

१ ह्वार यकार वकार आदि वर्णोंमें जो अकार है वह उच्चारण के ही लिए है, हल् आदि प्रत्याहारों में ग्रहण के लिए नहीं है । २ लण् के मध्य में जो अकार है वह तो इत्संशक है । (और उसमें 'र' प्रत्याहार बनता है) । ३ उपदेश अवस्था में जो अन्त्य हल से इत्संशक होता है । अर्थात् उस अक्षर का 'इत्' यह नाम होता है ।

४ मगवान् पाणिनि कात्यायन पतञ्जलि और श्रीमहेश्वरकर्तृक जो अज्ञातस्वरूपशापक प्रथम उच्चारण से यहाँ आधोच्चारण कहलाता है ।

सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ॥

अदर्शनं लोपः १ । १ । ६० ॥

प्रसक्तस्याऽदर्शनं लोपसञ्ज्ञं स्यात् ॥

वरणे धनो दुर्लभत्वात् । असञ्ज्ञात्वात्पुसि सञ्ज्ञायामिति घस्याऽपि च दुर्लभत्वात् । असञ्ज्ञात्वादेव 'हलन्त्ये'ति धनोऽप्यप्रवृत्तेश्च । एवञ्च भावे धनो उपदेशनम्-उपदेश इत्येवार्थः । उपशब्दश्च आद्यार्थः, दिशिश्चारणार्थः । एवञ्च 'उपदेश आद्योच्चारण'मिति फलितमित्याह-आद्योच्चारणमिति । आद्यमुच्चारणमित्यर्थः । तच्च-प्रत्यासत्त्या व्याकरणशास्त्रप्रवर्तकानामाचार्याणां तत्रभवतां पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलि-महेश्वराणामेव ग्राह्यम् । आद्यत्वञ्च-अज्ञातस्वस्वरूपज्ञापकत्वम् । तच्च 'अइउण्' इत्यादीनामस्त्येवेति भावः ।

केचित्तु उपदेशपदे करणकर्मोभयव्युत्पत्त्या 'धातुसूत्रगणोणादि-वाक्यलिङ्गानुशासनम् । आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्त्तिताः' इति परिगणनमाहुः, तत्र युक्तम्, एषामुपदेशसञ्ज्ञाया भाष्यादावनुक्तेः । योगस्य स्वीकारे तु परिगणनस्यैव व्यर्थत्वम् । 'लोपश्चेतिद्विशकारको निर्देशः, द्वितीयः अकार इ'दिति भाष्यविरोधश्च । नह्यनेन किञ्चिदुपदिश्यते । एवञ्च मूलोक्तमेव युक्तम् । 'आदेच उपदेशे' 'उपदेशेऽन्वत' इत्यादावाद्यो-च्चारणस्यैवोपदेशपदार्थतायाः प्रसिद्धेश्च । शेषरक्तस्तु करणे धनो धातु-प्रत्ययेनिपातागमादेशपरमेवात्रोपदेशपदमित्यभिप्रयन्ति ।

ननु 'हलन्त्य' मिति सूत्रस्य-'उपदेशेऽन्त्यं हलित्त्या'दिति वृत्तिरधिकाऽत आह सूत्रेष्विति । व्याकरणसूत्रेषु-'हलन्त्य'मित्यादिषु, अदृष्टं यत्पदं (उपदेशे इत् इत्यादि)-तत्-सूत्रान्तरात्=पूर्वसूत्रात्, (क्वचिदुत्तरसूत्राच्च)-अनुवर्तनीयमित्यर्थः । एवञ्च 'उपदेशेऽननुनासिक' इति पूर्वसूत्रादुपदेशपदे-त्यदयोरनुवृत्तिरत्रेति न वृत्तेरसङ्गतिरिति भावः ।

अदर्शनमिति । अदर्शनं-प्रथमान्तं, लोपः-प्रथमान्तम् । 'स्थाने-ऽन्तरतम' इत्यतः । 'स्थाने'इत्यनुवर्तते । 'प्रसक्ते सती'ति तदर्थः । तदाह-

१ सूत्रों में नहीं देखे गये जो पद वे सभी जगह पीछे के सूत्रों से ( कहीं २ आगे के सूत्रों से भी ) अनुवर्तित जानना ।

२ प्रसक्त-( विद्यमान ) का जो अदर्शन सो लोपसंज्ञक होता है ।

तस्य लोपः १ । ३ । ९ ॥

तस्य=इतो लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ।

आदिरन्त्येन सहेता १ । १ । ७१ ॥

प्रसक्तस्येति । शास्त्रतोऽर्थतश्च प्रसक्तोच्चारणस्येत्यर्थः । विद्यमानस्येत्यर्थो वा । अदर्शनम्=उच्चारणाऽभावः । अत्र हि दृग्निर्ज्ञानसामान्ये । तत्र ज्ञान-  
स्याऽवर्जनीयत्वेन नवा ज्ञानसामग्रीमध्यगता उच्चारणकृता सत्ता निषिध्यते ।  
उच्चारणाऽभावरूपस्याऽर्थस्यैषा लोपसञ्ज्ञा, व्याख्यातान् ।

तस्येति । तस्य=पष्ठधन्तम्, लोपः=प्रथमान्तम् । इत्सञ्ज्ञाप्रकर्-  
णान्ते हि इदं सूत्रम्, तत्र तच्छब्दः सन्निहितमितं परामृशति, तदाह-  
तस्येत इति । तस्य इत्यस्यार्थः 'इत' इति । इत्सञ्ज्ञकस्येत्यर्थः । उपदेशे-  
ऽजनुनासिक इ'दिति सूत्रादित्पदानुवृत्त्या पष्ठया विपरिणामेन च 'इतो लोप'  
इत्यर्थस्य सम्भवेऽपि 'तस्ये'ति ग्रहण-यस्य इत्सञ्ज्ञा तस्य सर्वस्य लोपार्थम् ।  
तेन 'आदिर्जिदुडव' इत्यनेनेत्सञ्ज्ञकानां जिदुड्वनां सर्वेषां लोपः सिद्ध्यति ।  
अन्यथाऽलोन्त्यपरिभाषयाऽन्त्यस्यैव ( इकारोकारादेः ) लोपः स्यात् । नच  
'नानर्थकेऽलोन्त्यविवि'रिति निषेधादेव नान्त्यस्य लोप इति 'तस्ये'ति शब्दं  
व्यर्थमिति वाच्यं, तस्याः परिभाषाया भाष्ये प्रत्याख्यातत्वात् ।

ननु णादीनां हलन्त्यमित्यनेन इत्सञ्ज्ञायां लोपापत्तिरत आह णाद्य  
इति । 'अइउण्' 'अलृक्' इत्यादिचतुर्दशसूत्रीधटका इत्सञ्ज्ञका अन्त्या  
णादयो लकारान्ता वर्णाः-अणाद्यर्थाः=अण्-अक्-अच्-इत्यादिप्रत्याहार-  
सिद्ध्यर्थाः, न तु लोपार्था इत्यर्थः । एवञ्च तेषु 'तस्य लोप' इति लोपो न  
प्रवर्तते इत्याशयः ।

ननु कथमत्राऽणादिप्रत्याहारसिद्धिरत आह-आदिरिति । आदिः-

१ जिसकी इत्सञ्ज्ञा होती है ( 'इत्' यह नाम होता है ) उसका लोप  
( अदर्शन ) होता है ।

२ 'अइउण्' आदि सूत्रों में जो इत्सञ्ज्ञकणकार आदि हैं वे 'अण्' 'अक्'  
आदि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिए हैं, लोप के लिए नहीं हैं । [ अतः इत्सञ्ज्ञा  
होने पर भी उनका लोप नहीं होता है ] ।

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च सञ्ज्ञा स्यात् ।  
यथा—‘अण्’—इति अइउवर्णानां सञ्ज्ञा । एवमच्-हल्-अलित्यादयः ।

प्रथमान्तम्, अन्त्येन-तृतीयान्तं, सह-अव्ययपदम्, इता-तृतीयान्तम् ।

मध्यगानामिति । आद्यन्ताभ्यामव्ययवाभ्यामव्ययी समुदाय आक्षिप्यते,  
तस्य च युगपद्वक्ष्ये प्रयोगाऽभावात्तदव्ययेष्ववतरन्ती सञ्ज्ञा मध्यगेषु विश्राम्यति, नत्वाद्यन्तयोः, अणादिसञ्ज्ञास्वरूपान्तर्भावेण तयो पारार्थ्यनिर्णयात् ।

स्वस्येति । ‘स्वं, रूप’मित्यनुवृत्तेः । तत्र स्वं रूपं चादेरेव गृह्यते नान्त्यस्य, अन्त्येनेत्यप्रधानतृतीयानिर्देशादन्यस्याऽप्रधानत्वात्, सर्वनाम्नाच्चोत्सर्गतः प्रधानपरामर्शित्वात् । आदिरेव हि तत्र प्रधानमित्याशयः ।

यथेति । ‘हलन्त्यम्’, ‘आदिरन्त्येने’त्यनयोः प्रवृत्त्येत्यर्थः । ‘अइउण्’ इत्यत्र हि ‘हलन्त्य’मित्येनेनान्त्यणकारस्येत्यसञ्ज्ञा । एवञ्च अन्त्य इत् णकारः, तत्सहित आदिः—अकार—‘अ-ण्’इति । तदिदम्—अण्पदं मध्यगयोः—इ-उवर्णयोः, स्वस्य—अकारस्य च सञ्ज्ञेति—अण्पदेन—अइउवर्णानां ग्रहणमिति भावः । एवं हलादयः सर्वे प्रत्याहाराः सावनीयाः ।

एवम्—अण्प्रत्याहारवत् । ‘इत्यादयः’ इत्यस्य ‘प्रत्याहारा बोध्या’ इति शेषः । आदिपदेन—अक्-अट्-अश्-हग्—इत्यादेः परिग्रहः ।

इमे प्रत्याहाराश्च एकचत्वारिंशत् (४१) । तदुक्तम्—

‘एकस्मान्दणवटा, द्वारयां षस्त्रिभ्य एव कणमाः स्युः’ ।

ज्ञेयौ च-यौ चतुर्भ्यो, रः पञ्चभ्यः, श-लौ षड्भ्यः ॥ इति ।

तत्र चयप्रत्याहारस्य ‘चयो द्वितीया’ इत्यत्र दर्शनात् द्विचत्वारिंशत्प्रत्याहारा इत्यन्ये । ‘पाणिनिकात्यायनव्यवहृतानां चतुर्दशसूत्रीसिद्धानां प्रत्याहाराणामियं सङ्ख्येत्यपि बोध्यम् । तेन ‘चमन्ताङ्’ इत्यादावुणादौ चमादिप्रत्याहाराणामाधिक्येऽपि न क्षतिः ।

१ अन्त्य इत् सहित जो आदिवर्ण सो मध्यगवर्णों की प्रत्याहार संज्ञा होता है, और ‘स्व’ करके आदि ( वर्ण ) की भी प्रत्याहार संज्ञा होता है ।

२ जैसे ‘अण्’ यह ‘अइउ’ इन तीन वर्णों की संज्ञा [ नाम ] होता है ।

३ ऐसे ही अच् हल् अल् इन प्रत्याहारों में भी जानना ।



ऊर्कालोऽञ्जस्वदीर्घप्लुतः १ । २ । ३७ ॥

उश्च ऊश्च ऊ ३ श्च वः । वां काल इव कालो यस्य सोऽच्  
क्रमाद्भस्वदीर्घप्लुतसञ्ज्ञः स्यात् ॥

सं प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा ।

ऊर्काल इति । ऊर्कालः प्रथमान्तम्, अच् प्रथमान्तम्, ह्रस्व-  
दीर्घप्लुतः प्रथमान्तम् । ऊर्काल इति । उश्च ऊश्च ऊ ३ श्च वः । वः कालो  
यस्य असौ-ऊर्कालः । अत्र हि ऊशब्दस्य स्वरुच्यारणकालसङ्गे लक्षणा । एवम्  
ऊशब्दस्य कालशब्देन सह सामानाधिकरण्यमुपपद्यते । तत्फलितमाह वां  
काल इति । अत्र वा काल इव कालो यस्येति न विग्रहो, व्यधिकरणत्वात् ।  
'काल' इति जात्याख्यायामेकवचनम् ।

'व' इति च 'ऊ' शब्दस्य जसि रूपम् । 'वा' मिति च 'ऊ' शब्दस्य आभि-  
रूपम् । कुन्कुटोच्चरिते शब्दे उकारे एकद्वित्रिमात्राणां प्रसिद्धेरकारादयो नोक्ताः ।

ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च एषा समाहारः-ह्रस्वदीर्घप्लुतः । सौत्र पुस्त्वम् ।  
इतरेतरद्वन्द्वे सौत्रमेकवचनमिति वा ।

एकमात्रिकोऽच् ह्रस्वसञ्ज्ञः, द्विमात्रिकोऽच् दीर्घः, त्रिमात्रिकः प्लुत इत्यर्थः ।  
अत्र च सूत्रे ऊ-उ-ऊ ३ इत्येव तु न च्छेदः, एवं सति द्विमात्रिकस्य  
ह्रस्वत्वे एकमात्रिकस्य दीर्घत्वे च 'प्वादीनां ह्रस्व' इत्यस्य 'अतो दीर्घ'  
इत्यस्य च वैयर्थ्यापत्तेः । 'उ-ऊ ३ ऊ' इत्येवमपि न प्रश्लेषः, एवं सति  
द्विमात्रिकस्य प्लुतत्वेन 'ओमन्यादाने' इति प्लुतविधेर्वैयर्थ्यापत्तेः, ओमित्यस्य  
द्विमात्रिकतया तस्येदानीं प्लुतत्वस्य स्वतः सिद्धत्वात् । नापि 'ऊ ३ ऊ उ'  
इति एकमात्रिकस्यान्तेच्छेदः, 'विभाषा पृष्ठप्रतिवचने हे'रिति हेरिकारस्य प्लुत-  
विधेरानर्थक्यापत्तेः ।

क्रमादिति । यथासङ्ख्यसूत्रलभ्यमिदम् । लौकिकन्यायसिद्धं वा ।

सः-लब्धह्रस्वादि सञ्ज्ञकोऽच्, प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन=उदात्तानुदात्त-

१ एकमात्रिक द्विमात्रिक त्रिमात्रिक जो उकार, उसके उच्चारण काल की तरह  
उच्चारण काल है जिसका ऐसा जो अच् सो क्रम से ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञक होता  
है । अर्थात् एकमात्रिक ह्रस्व, द्विमात्रिक दीर्घ, और त्रिमात्रिक प्लुत होता है ।

२ लब्ध हुई है ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञा जिसको ऐसा जो अच् सो प्रत्येक-अर्थात्  
एक-एक के प्रति उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद करके तीन-तीन प्रकार का है ।

उच्चैरुदात्तः । १ । २ । २९ ॥

[ताल्लादिषु सभागेषु स्थानेष्वध्वभाग निष्पन्नोऽनुदात्तसञ्ज्ञः स्यात् ।]

नीचैरनुदात्तः १ । २ । २३० ॥

[ताल्लादिषु सभागेषु स्थानेष्वधोभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात् ।]

समाहारः स्वरितः १ । २ । ३१ ॥

स्वरितभेदेन ( उदात्तत्वानुदात्तत्वस्वरितत्वधर्मे )-त्रिधा=त्रिप्रकारक इत्यर्थः ।

तदित्थं (१) ह्रस्व उदात्तः, (२) ह्रस्वोऽनुदात्तः, (३) ह्रस्वः स्वरितः ।

( ४ ) दीर्घ उदात्तः, ( ५ ) दीर्घोऽनुदात्तः, ( ६ ) दीर्घः स्वरितः ।

( ७ ) छुत उदात्तः, ( ८ ) छुतोऽनुदात्तः, ( ९ ) छुतः स्वरितः । इति नवभेदाः ।

एवञ्च अकारादीनां प्रत्येकं नव भेदा इति लब्धम् ।

तत्र उदात्तसंज्ञासूत्रमाह-उच्चैरिति । उच्चैः-अव्ययपदम्, उदात्तः-

प्रथमान्तम् । प्रकृते उच्चैस्त्वं न श्रवणकृतम्, उपाशु उच्चरिते उदात्ते-

ऽव्याप्तेः, किन्तु स्थानकृतम् । उच्चैरिति चाधिकरणशक्तिप्रधानम् । अधिकरणत्वञ्च

उच्चारणक्रियानिरूपितम् । 'ऊकाल' इत्यतोऽजित्यनुवर्तते । एवञ्च

ताल्लादीनाम् ऊर्ध्वभागे निष्पन्नः । उच्चरितोऽच् उदात्तसञ्ज्ञ-इति लब्धम् ।

ऊर्ध्वाऽधोभागव्यवहारोहि ताल्लादिस्थानानां सभागत्वे एव सम्भवति ।

अनुदात्तसंज्ञासूत्रमाह-'नीचै'रिति । अत्रापि नीचैरित्यधिकरणशक्ति-

प्रधानम् । पूर्ववदेवोच्चारणक्रियानिरूपितमधिकरणत्वम् । एवञ्च-ताल्लादीनामधो-

भागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसञ्ज्ञ इत्यर्थो बोध्यः ।

स्वरितसंज्ञासूत्रमाह समाहार इति । पूर्वसूत्रेभ्य 'उदात्त' इति,

'अ'जिति चानुवर्तते । 'उदात्त' इति 'अनुदात्त' इति च धर्मप्रधानो निर्देशः,

षष्ठ्या च तयोर्विपरिणामः । समाहार इति चाधिकरणे घञ् । तदेवम्

'उदात्तत्वानुदात्तत्वयोर्धर्मयोयस्मिन्नचि सम्मेलन सोऽच् स्वरितसञ्ज्ञः' इत्यर्थो

लभ्यते ।

१ भाग सहित जो तालु कण्ठ आदि स्थान उनमें ऊर्ध्वभाग में निष्पन्न जो

अकार आदि अच्, सो उदात्त संज्ञक होय । २ भागसहित जो ताल्लादिस्थान,

उनमें अधो भाग में निष्पन्न जो अच् सो अनुदात्त संज्ञक होय ।

। उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मो समाह्रियेते यस्मिन् सोऽच् स्वरित-  
सञ्ज्ञः स्यात् ।

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाऽननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ।

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १ । १ । ८ ॥

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसञ्ज्ञः स्यात् ।

तदित्यम् अ इ उ ऋ एपां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः ।

स इति । सः=लब्धह्रस्वोदात्तादिसञ्ज्ञकोऽच् पूर्वाक्षरीत्या नवविधोऽपि,  
प्रत्येकम् अनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्याम्=अनुनासिकत्वेन, अननु-  
नासिकत्वेन च धर्मेण, द्विधा-द्विप्रकारक इत्यर्थः । एवञ्चाऽचामष्टादशभेदलाभः ।

अनुनासिकसञ्ज्ञां दर्शयति मुखेति । मुखेन सहिता मुखसहिता,  
मुखसहिता चासौ नासिका च-मुखनासिका । उच्यते (-उच्चार्यते-) असौ  
वचनः । कर्मणि ल्युट् । मुखनासिकया वचनः-मुखनासिकावचन इति विग्रहः ।  
अनुनासिकभिन्नश्चाऽननुनासिकः ।

ननु किं सर्वेषामेवाऽचामविशेषेणाष्टादश भेदाः ?, नेत्याह-तदित्य-  
मिति । 'ऊकालोऽच्' 'उच्चैरुदात्तः' 'नीचैरनुदात्तः', 'सनाहारः स्वरितः'  
'मुखनासिकावचन' इति पञ्चसूत्रोपवृत्त्याऽस्तु यत्तद्व्यं तत्, इत्थम्=अनुना-  
प्रकारेण-वेदितव्यमित्यर्थः । भेदाः=प्रकाराः ।

ते च-ह्रस्वोदात्ताऽनुनासिकः, ह्रस्वोदात्ताननुनासिकः, ह्रस्वानुदात्ताऽनु-  
नासिकः, ह्रस्वानुदात्ताननुनासिकः, ह्रस्वस्वरिताननुनासिकः, ह्रस्वस्वरितान-  
नुनासिकः । इति ह्रस्वेषु षट् ।

दीर्घोदात्तानुनासिकः, दीर्घोदात्ताननुनासिकः, दीर्घानुदात्तानुनासिकः,  
दीर्घानुदात्ताननुनासिकः, दीर्घस्वरिताननुनासिकः, दीर्घस्वरिताननुनासिकः ।  
इति दीर्घेषु षट् ।

१ उदात्तत्व, अनुदात्तत्व ये ( दो ) वर्णों के धर्म, इकट्ठे किए जाएँ  
जिममें, ऐसा जो अच् सो स्वरितसंज्ञक होय ।

२ लब्ध हुई है ह्रस्वोदात्तादि सञ्ज्ञा जिसको ऐसा जो अच् सो नौ-प्रकार  
का होकर के भी प्रत्येक अर्थात् एक एक के प्रति अनुनासिकत्व अननुनासिकत्व भेद  
से दो दो प्रकार का होता है । ३ मुखसहित नासिका से उच्चार्यमाण जो  
ढकार आदि वर्ण सो अनुनासिकसंज्ञक होता है ।

लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाऽभावात् ॥

तुल्याल्यप्रत्ययान्तं सवर्णम् । १ । १ । ९ ॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रत्ययान्तश्चेत्येतद्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसङ्गं स्यात् । \*ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ।

ह्रतोदात्तानुनासिकः, ह्रितोदात्तानुनासिकः, ह्रितानुदात्तानुनासिकः, ह्रितानुदात्तानुनासिकः, ह्रितस्वरितानुनासिकः, ह्रितस्वरितानुनासिकः- इति षुतेषु षडिति रीत्याऽकारादीनामष्टादश भेदा बोध्याः ।

तस्येति । तस्य=लृवर्णस्य विवृतस्य । 'होतृ-लृकार' इत्यत्र सवर्णदीर्घे होतृकार इति दीर्घकृकारघटितो भाष्यप्रयोगोऽत्र ( लृवर्णस्य दीर्घाऽभावे ) मानम् । ईषस्पृष्टस्य लृकारस्य दीर्घत्वमु इष्टमेव ।

ह्रस्वाऽभावादिति । एचो यदि ह्रस्वाः स्युस्तर्हि त एव 'अइउ' इति-वर्णसमाम्नाये पठेरन्, एवं च ह्रस्वा एचो न सन्त्येवेति लब्धम् ।

'अणुदित्सवर्णस्येति' ( अष्टादशानामकरकारादीनाम् ) 'अ-इ-उ' इत्यादिसङ्गं वक्ष्यन् तदुपयोगिनीं सवर्णसङ्गां तावदाह तुल्येति ।

तोलनं तुला, तुल्या समिगं-तुल्यम् । तुल्यञ्च तुल्यश्च तुल्यौ । अस्यन्ति-उच्चारयन्ति-वर्णान् अनेवेति-आस्यम् । आस्ये भवम्-आस्यम् । प्रकृष्टो यत्न-प्रयत्न । आस्यञ्च प्रयत्नश्च-आस्यप्रयत्नौ, तुल्यावास्यप्रयत्नौ तस्य तत्-तुल्यास्यप्रयत्नम्-प्रथमान्तम् । सवर्णं-प्रथमान्तम् ।

अत्र आस्यशब्दो न मुखमात्रपरः, सर्वेषु वर्णेषु आस्यस्य जनकस्य तुल्यतया तदुपादानस्य वैयर्थ्यापत्तेः, किन्तु आस्यपदम्-आस्यभवस्थानपरम्, प्रयत्नस्य पृथगुपादानात् । 'वर्णोपपत्त्यव्यवहितप्राग्भावित्वरूपप्रकर्षवत्त्वात्प्रकृष्टो यत्न इह आभ्यन्तरः । 'कण्ठादी'ति वक्तुमुचित, शिक्षाया कण्ठादितयैव स्थानानां निर्देशात् । मिथः=परस्परम् ।

ऋलृवर्णयोरिति । आ च आ च रलौ, रलौ च तौ वर्णौ च ऋलृवर्णौ,

१ इम प्रकार 'अ' 'इ' 'उ' ऋ इन वर्णों के (प्रत्येक के) १८-१८ भेद हैं । लृवर्ण के १२ भेद हैं । क्योंकि वह दीर्घ नहीं है । एचों के भी १२-१२ भेद हैं, क्योंकि वे ह्रस्व नहीं हैं । २ ताल्वादि जो स्थान, और आभ्यन्तर जो प्रयत्न-ये जो जनकद्वय, जिस वर्ण के जनकद्वय के साथ तुल्य हों वे वर्ण परस्पर सवर्ण सञ्ज्ञक हों ।

३ भिन्न स्थानिक जो ऋलृवर्ण उनकी परस्पर में सवर्ण सञ्ज्ञा होती है ।

अकुहविसर्जनीयाना कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋदु-  
रपाणां मूर्धा । लृतुलसाना दन्ताः । उपूपध्मानीयानामोष्ठौ ।  
जमङ्गनाना नासिका च । एदैतोः कण्ठतालु । ओदीतोः

तयोरिति विग्रहः । यद्वा आ च लृवर्णश्च ऋलृवर्णौ, तयोरिति विग्रहः । परि-  
निष्ठितविभक्त्या समास इति पक्षे तु उच्य उल् च ऋलोः, तयोश्च तयोर्वर्णयो-  
रिति विग्रहो बोध्यः । 'ऋत्यक' इति प्रकृतिभावः । अत्र च-भोः सूत्रकारः ।  
ननु त्वया न्यूनमुष्णं, त्वया इदमपि वाच्यं, किन्तद्वाच्यं ?-भिन्नस्थानिकयोः  
ऋलृवर्णयोरपि सावर्ण्यं वाच्यमिति च वार्तिगार्थः ।

कस्य किं स्थानमित्यागङ्गाद्-अकुहेति । अथ कुश्च हश्च विसर्जनीयश्च  
ते-अकुहविसर्जनीयाः, तेषामिति विग्रहः । 'अ' पदेन अष्टादशभेदा ग्राह्याः ।  
विसर्जनीयपदेन अकाराश्रयो विसर्ग एव ग्राह्यः, साहचर्यात् । तेन 'अयोग-  
वाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः' इति शिक्षया न विरोधः । यद्यपि सर्व-  
वर्णोच्चारणे कण्ठव्यापार आवश्यकस्तथापि चकाराद्युच्चारणे ताल्वादिव्यापारो-  
ऽपि आवश्यकः, आकाराद्युच्चारणे तु न ताल्वादिव्यापारावश्यकतेति तेषां  
कण्ठस्थानत्वोक्तिरिति भावः । कचयोर्यावत्स्थानसाम्याऽभावाच्च मिथः सावर्ण्य-  
मित्यपि बोध्यम् ।

इच्चिवति । इश्च चुश्च यश्च शश्च ते-इचुयशाः, तेषाम्-इचुयशानामिति  
विग्रहः । अत्र 'इ' पदेन इकारस्य अष्टादश भेदा ग्राह्याः ।

ऋदुरपेति । आ च रुश्च रश्च षश्च ते-ऋदुरपाः, तेषाम्-ऋदुरपाणाम् ।

लृतुलसेति । आ च तुश्च लश्च सश्च लृतुलसाः, तेषाम्-लृतुलसानाम् ।  
दन्तपदं तत्समुक्तदन्तमूलप्रदेशपरम्, अतो भग्नदन्तस्याप्युच्चारणं भवति ।

उपूपेति । उश्च पुश्च उपध्मानीयश्च उपूपध्मानीयाः तेषाम् । उश्च  
पश्च-उपौ, उपौ ध्मायेते येनासौ-उपध्मानः=ओष्ठः, उध्माने भव उपध्मानीय  
इति विग्रहेण उपध्मानीयस्य ओष्ठस्थानत्वस्य लाभ इत्याशयेन तस्याऽत्र  
ओष्ठस्थानतोक्ता ।

जमेति । जश्च मश्च ढश्च णश्च नश्च-जमङ्गनाना, तेषामिति विग्रहः ।  
चेन स्वस्ववर्गानुकूलं ताल्वादि समुच्चीयते ।

एदैतोरिति । एच्च ऐच्च एदैतौ, तयोः-एदैतौ । अत्र तपरस्य मुखमुखार्थ-

कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ।  
नासिकाऽनुस्वारस्य ।

यत्नो द्विधा-आभ्यन्तरो, बाह्यश्च । आद्यः पञ्चधा-स्पृष्टेष-  
त्स्पृष्टेषद्विवृतसंवृतभेदात् । तत्र स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम् । ईषत्स्पृष्ट-  
मन्तःस्थानाम् । ईषद्विवृतमृग्मणाम् । विवृतं स्वराणाम् । ह्रस्व-  
स्याऽवर्णस्य प्रयोगे संवृतम् । प्रक्रियादशाया तु विवृतमेव ।

बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा । विवारः संवारः श्वासो नादो धोषो-  
ऽधोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति ।

तया लोकानुभवसिद्धार्थानुवादकेतपरशास्त्राऽप्रवृत्त्या च प्लुतानामपि तत्स्थानत्वं  
बोध्यम् । कण्ठश्च तालु च-अनयो समाहारः-कण्ठतालु । एवं कण्ठोष्ठमित्यपि ।

दन्ताश्च ओष्ठौ च एषा समाहारः-दन्तोष्ठम् । एवञ्च वकारस्य  
दन्तस्थानता ओष्ठस्थानता च लभ्यते । दन्तोष्ठादि तु न समुदितं स्थानम्,  
'अष्टौ स्थानानी'ति शिक्षाविरोधात् ।

स्थानान्युत्तवा प्रयत्न तावन्निर्दिशति-यत्न इति । आद्यः=आभ्यन्तरः ।  
तत्र=पञ्चसु यज्ञेषु मध्ये । 'प्रयतन'मिति नपुंसके भावे ल्युङन्तम् । प्रयत्न  
इत्यर्थः । ह्रस्वस्याऽवर्णस्य=देवदत्तादिवटकस्याऽवर्णस्य ।

प्रयोगे=परिनिष्ठिताना 'राम' इत्यादीनामुच्चारणे । प्रक्रिया-  
दशायां=प्रयोगसाधनावसरे । शास्त्रीयकार्यप्रवृत्तौ । विवृतमेवेति । तस्य विवृ-  
तत्वं प्रतिज्ञेयमित्यर्थः । तेन 'दण्ड-आढक'मित्यत्र ह्रस्वस्याऽकारस्य सवर्णदीर्घे  
कर्तव्ये विवृतं प्रयत्नमाकारस्यापि विवृतं प्रयत्नमिति ह्रस्वदीर्घयोरकाराऽऽकार-  
यो परस्परं सावर्ण्यादक. सवर्णे इति दीर्घ. सिद्धयति । अन्यथा तत्र संवृतस्य  
ह्रस्वाऽकारस्य विवृतेन दीर्घेण सावर्ण्याऽभावादीर्घो न स्यात् । ह्रस्वस्याऽवर्णस्य  
प्रयोगे संवृतत्वञ्च 'अ-अ' इति सूत्रत्रलादेव लभ्यते । प्रक्रियादशायान्तु  
'पूर्वनासिद्ध'मिति सवृतविधेरसिद्धत्वाद्विवृतत्वमेवावशिष्यते इत्यववेयम् ।

बाह्यप्रयत्न इति । बाह्यप्रयत्ना यद्यपि सवर्णसंज्ञायामनुपयुक्ताः,  
एवञ्च तेषामिहोपादानं व्यर्थं, तथापि वाग्भरिरित्यादावान्तरतम्यपरीक्षायान्ते

खरो-विवाराः श्वासा अक्षोपाश्च । ह्रस्वः-संस्वारा नादा-  
क्षोपाश्च । वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाऽल्पप्राणाः ।

वर्गाणा द्वितीयचतुर्थो शलश्च-सहप्राणाः ।

कादयो माऽवसानाः स्पर्शाः । यणोऽन्तःस्थाः ।

शल ऊष्माणः । अचः स्वराः ।

५ क ५ ख इति कखाम्भ्यां प्रागर्ध्विसर्गसदृशो जिह्वामूली-  
यः । ५ प ५ फ इति पफाम्भ्यां प्रागर्ध्विसर्गसदृश उपध्मानीयः ।

‘अं’ ‘अः’ इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ ॥

उपयोक्ष्यन्ते इति प्रसङ्गादत्र ते दर्शिताः । उदात्तादिशब्दाश्च धर्मपराः । लोके  
यत्प्रयत्नशब्दयोः पर्यायशब्दतया तदनुसारेण बाह्येषु यत्नेष्वपि प्रकृते  
प्रयत्नशब्द उपात्त इत्यवधेयम् ।

घोषाश्चेति । अचामपि संस्वारनादघोषाल्पप्राणत्वमिति प्रकृते  
चेनाऽचामपि ग्रहणम् ।

यणश्चेति । चेन अचामपि ग्रहणम् । तेन संस्वारनादघोषाल्पप्राणत्व-  
मचां लब्धम् । ‘सुपां सुलु’गितिसूत्रे ‘इकारस्यान्तर्यतो दकार’ इति भाष्य-  
मत्र मानम्, अन्यथा तत्र तदौ पर्यायेण रयाताम्, अल्पप्राणत्वानङ्गीकारे दधौ-  
पर्यायेण स्यातामिति ध्येयम् । उदात्तत्वादेरध्वर्मतायाः प्रसिद्धत्वात्तद्व्यवस्था  
नोक्ता । नाऽतो तदनुक्त्या न्यूनतेत्यपि बोध्यम् ।

स्पर्शाः=स्पर्शपदव्यवहार्याः । अन्तस्था इति । स्पर्शोष्मणोरन्तः=  
मध्ये तिष्ठतीति-अन्तस्था, ते अन्तस्थाः । अयमन्तस्थाशब्द आदन्तो,  
विश्वपाशब्दवत् ।

ऊष्माण इति । ऊष्मा=वायुः, तत्प्रवाना इत्यर्थः ।

स्वरा इति । स्वयमेव ( उदात्तादिभिः ) राजन्ते इति व्युत्पत्त्या  
अचा स्वरत्वस्य लाभः । स्वरधर्मत्वादुदात्तादयोऽपि ‘स्वरा’ इत्युच्यन्ते ।

‘अं-अः’ इत्युपलक्षणम्, इकारादेरपि, तदाह-अचः पराविति ।

अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः १ । १ । ६९ ॥

प्रतीयते-विधीयते-इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽणुदिच  
सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । अत्रैवाऽण् परेण णकारेण । कु-चु-टु-तु-पु  
एते उदितः । तदेवम् अ इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथेकारोकारौ ।

अण् प्रथमान्तम्, उदित्-प्रथमान्तं, सवर्णस्य-पष्ठ्यन्तम्, च,  
अव्ययपदम्, अप्रत्ययः प्रथमान्तम् । 'सवर्णस्येत्यस्य' 'बोधक'मिति  
शेषः । अणमुद्दिश्य सवर्णबोधकताऽत्र विधीयते । तेन अण् उदिच सवर्णस्य  
बोधकं भवतीत्यर्थलाभः ।

प्रत्ययानामिव अकाराद्यादेशानामपि सवर्णग्रहणवारणाय आह-प्रतीयते  
इति । एवञ्च यौगिकेन प्रत्ययपदेन आदेशादेरपि ग्रहणमिति 'त्यदादीनाम'  
इत्यादौ न दीर्घाकारादेर्विधानमित्यवधेयम् । अत्र च चो भिन्नक्रमः, अत  
आह-उदिचेति । 'अविधीयमान' इति न उदिद्विशेषणं, 'चोः कु'रित्यादौ  
विधीयमानेऽपि सवर्णग्रहणस्येष्टत्वात् । अत्रैव=अणुदित्सूत्रे एव । परेण=  
लणसूत्रघटकेन णकारेण । अण्-अण्प्रत्याहारः । 'बोध्य' इति शेषः । एवञ्च इतो-  
ऽन्यत्र 'द्वलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण्' इत्यादौ पूर्वणैवाण्प्रत्याहारो बोध्यः । तदुक्तं  
'परेणैवेणग्रहात् सर्वे, पूर्वणैवाऽण्ग्रहा मताः ।

ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु ॥' इति ।

उदित इति । शास्त्रान्तरे 'उदि'दिति एषां सञ्ज्ञेत्यर्थः । तयाऽत्रापि  
व्यवहारः । तदेवमिति । तत्=अणि अणुदित्सूत्रप्रवृत्तौ सत्याम् । एवम् फलति-  
इत्यर्थः । यद्वा-तत्=अणुदित्सूत्रप्रवृत्त्या यल्लब्धं तत्, एवम्=वक्ष्यमाण-  
रीत्या बोध्यमित्यर्थः । सञ्ज्ञा=बोधकः । इकारोकाराविति । 'प्रत्येकमष्टा-

१ अविधीयमान जो अण् और उदित् ये अपने सवर्ण की संज्ञा ( ग्राहक )  
होते हैं । अर्थात् अविधीयमान 'अ' से १८ प्रकार के अकार लेना, 'इ' से १८  
प्रकार के इकार लेना । इसी प्रकार आगे भी जानना ।

२ इस प्रकार, 'अ' यह अट्टारह की संज्ञा है ।

३ इसी प्रकार इकार उकार भी अट्टारह-अट्टारह की संज्ञा है ।



ऋकारस्त्रिंशतः । एवम् लृकारोऽपि । एचो द्वादशानाम् ।  
अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनाऽननुनासिकारस्ते  
द्वयोर्द्वयोस्संज्ञा ॥

परः सन्निकर्षः संहिता । १ । ४ । १०९ ॥

वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात् ॥

हलोऽनन्तराः संयोगः । १ । १ । ७ ॥

अजिभरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः ॥

दशाना-सञ्ज्ञेति'ति शेषः । त्रिंशत् इति । ऋलृवर्णयोः सावर्ण्यादिति भावः ।

लृकारोऽपीति । 'त्रिंशतिः सञ्ज्ञे'ति शेषः । द्वादशानामिति ।

'प्रत्येक द्वादशानां-सञ्ज्ञे'ति शेषः । एचा ह्रस्वाऽभावादिति भावः ।

तेन=यवलाना द्वैविध्येन । ते=यवलाः । द्वयोः=अनुनासिकाननु-  
नासिकयोः । एवञ्च-अणुदित्सूत्रवलेन यकारः 'य' 'य' इत्यनयोर्ग्राहकः, एव  
वकारः 'व' 'व' इत्यनयोः, लकारश्च 'ल' 'ल' इत्यनयोर्ग्राहक इति लब्धम् ।

परः प्रथमान्तं, सन्निकर्षः-प्रथमान्त, संहिता प्रथमान्तम् ।

परशब्दो नाऽन्यार्थोऽन्यत्वस्याऽव्यभिचरितत्वात्, किन्तूक्तार्थ इत्याह  
अतिशयत इति । स्वभावसिद्धाऽर्द्धमात्राऽधिककालव्यवायरहित इत्यर्थः ।

सन्निकर्षः=सामीप्यम् । शब्दानुशासनप्रस्तावादाह-वर्णानामिति ।

हलः प्रथमान्तम्, अनन्तराः-प्रथमान्तं, संयोगः प्रथमा-  
न्तम् । आनन्तर्यं=व्यवधानभावः । व्यवधानश्च विजातीयैर्नैवेत्याशयेनाह  
अजिभरिति । हलौ च हलश्च हला इत्येकशेषः, तेन द्वयोर्वहूनाश्च संयोग-  
सञ्ज्ञेति लभ्यते । तेन शिक्षेत्यादौ 'गुरोश्च हल' इत्यप्रत्ययसिद्धिः । समुदा-  
यस्यैव च संयोगसंज्ञा, संयोग इति महासंज्ञाकरणात् ।

१ ऋकार ३०-तीस की संज्ञा है- । २ लृकार भी ३० तीस की संज्ञा है ।  
३ ए, ओ, ऐ, औ ये प्रत्येक बारह बारह १२ की संज्ञा हैं । ४ अनुनासिक  
अननुनासिक भेद करके य, व, ल, ये दो दो प्रकार के हैं । ५ इस वास्ते अनुनासिक  
जो य व ल है वे दो दो की संज्ञा है । ६ वर्णों का अतिशयित जो सन्निधि उसकी  
संहिता संज्ञा होती है । ७ अच् से अव्यवहित जो हल् उनकी संयोगसंज्ञा होती है ।

सुसिद्ध-तं पदम् १ । ४ । १४ ॥

सुवन्तं तिङन्तं च पदसञ्ज्ञं स्यात् ॥

इति संज्ञाप्रकरणम्

## अथारान्धिः

इको यणचि ६ । १ । ७७ ॥

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये । सुधी उपास्य  
इति स्थिते ॥

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १ । १ । ६६ ॥

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य  
पूर्वस्य बोध्यम् ॥

सुप् तिङ् च सुतिङौ, तौ अन्ते यस्य तत्-सुसिद्धन्तं-प्रथमान्तम्,  
पदे-प्रथमान्तम् । 'शब्दस्वरूपमिति' च शब्दानुशासनप्रस्तावोल्लिख्यते ।  
अन्तशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते, तदाह-सुवन्तमिति । 'शब्दरूपमिति'  
शेषः । सुविति सुप-पकारेण प्रत्याहारो, व्याख्यानात् ।

इति श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिविरचितायां लघुकौमुद्याः सरलायां सञ्ज्ञाप्रकरणम् ।

इकः षष्ठ्यन्तम्, यण् प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तम् ।

'संहिताया' मित्यधिक्रियते । विषयसप्तमीयं, तदाह-विषये इति ।

इति स्थिते इत्यस्य-यत्सूत्रं प्रवर्तते तदाहे' ति शेषः ।

तस्मिन्निति सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तसप्तम्यन्तम् । नागेशमते तु  
'अची'त्यादिसप्तम्यन्तार्थकतच्छब्दाः सप्तमीय 'तस्मिन्निति' ति, ध्येयम् । इति-  
अव्ययपदम् । निर्दिष्टे-प्रथम्यन्तम् । पूर्वस्य-षष्ठ्यन्तम् ।

१ सुवन्त और तिङन्त की पद सज्ञा होती है । २ इक् के स्थान में यण्  
आदेश होय अचूपरे रहते संहिता के विषय में । ३ सप्तमी निर्देश करके क्रियमाण  
जो कार्य सो वर्णान्तर से व्यवधान रहित पूर्व के स्थान में हो ।

स्थानेऽन्तरत्तमः १ । १ । ५० ॥

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । सुभू उपास्य इति जाते ॥

अनचि च ८ । ४ । ४७ ॥

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो, न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वम् ॥

झलां जश् झशि ८ । ४ । ५३ ॥

स्पष्टम् । इति पूर्वधकारस्य दकारः ॥

संयोगान्तस्य लोपः ८ । २ । २३ ॥

संयोगान्तं यत्पदं तस्य लोपः स्यात् ॥

अलोऽन्त्यस्य १ । ११ । ५२ ॥

पष्ठीनिर्दिष्टाऽन्त्यस्याऽल आदेशः स्यात् । इति यलोपे प्राप्ते ।

अनचि-सप्तम्यन्तम् । च-अव्ययपदम् । 'अचो रहा' म्या'मित्यतः- 'अच' इति, 'द्वे' इति. 'यरोऽनुनासिके' इत्यतो 'यर' इति 'वे' ति चानुवर्तते । 'अनची'ति च प्रसङ्ग प्रतिषेधस्तदाह-अच इति ।

झलां स्थाने जश् आदेशः स्याज्झशि परत इत्यर्थः । इति=इत्यनेन शास्त्रेण । धकारस्य दकारः=स्थानत आन्तर्यात्पूर्वधकारस्य दकारः ।

संयोग. अन्ते यस्यासौ-संयोगान्तः, तस्य संयोगान्तस्य । 'पदस्ये'त्यवि-कृतम् ।

'पष्ठी स्थानयोगे' त्यनुवर्तते । अल.-पष्ठ्यन्तम्, अन्त्यस्य-षष्ठ्यन्तम् । स्थाने विधीयमान आदेशः--पष्ठीनिर्दिष्टान्त्यस्य अलः स्यादित्यर्थः ।

१ प्रसङ्ग होने पर सदृशतम आदेश होय । २ अच् से परे जो यर् उसको द्वित्व हो । अच् परे रहते यर् को द्वित्व नहीं होय । ३ झलों के स्थान में जश् आदेश होय झश् परे रहते । ४ संयोगान्त जो पद उसका लोप होय । ५ स्थान में विधीयमान जो कार्य वह पष्ठी निर्दिष्ट के अन्त्य अल् को होय ।

यणः प्रतिषेधो वाच्यः । सुध्युपास्यः । मध्वरिः । धात्रंशः ।  
लाकृतिः ॥

एचोऽयवायावः ६ । १ । ७८ ॥

यण इति । यणः संयोगान्तलोपस्य प्रतिषेधो वक्तव्य इत्यर्थः । 'इति यलोपो न भवती' ति शेषः ।

सुधीभिरुपास्य इति तृतीयासमासः । 'सुधी-उपास्य' इत्यवस्थायां 'तस्मिन्निति निदिष्टे पूर्वस्य' 'स्थानेऽन्तरतमः' इति परिभाषासूत्रद्वयसहकारेण 'इको यणचि' ति सूत्रेण धकारोत्तरवर्तीकारस्य ताञ्छस्थानिकस्य स्थाने ताञ्छस्थानिके यकारेऽनचि चेति धकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे 'झलां जश् झशी' ति पूर्वधकारस्य दकारे सति प्राप्तस्य 'संयोगान्तस्य लोपः' इति प्राप्तस्य लोपस्य 'यण प्रतिषेधो वाच्य' इति प्रतिषेधे 'सुध्युपास्य' इति सिद्धम् । 'अनचि चे' ति द्वित्वाऽभावपक्षे 'सुध्युपास्य' इति रूपं बोध्यम् । सुध्युपास्यः=पण्डितैराश्रयणीयो हरिः, भूपतिश्च ।

'मधु+अरिः' इत्यवस्थायामिको यणचीति शास्त्रेण 'स्थानेऽन्तरतमः' इति परिभाषावलेन स्थानत आन्तर्यादुकारस्य वकारे 'अनचि चे' ति धकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे 'झलां जश् झशी' ति धकारे दकारे प्राप्तस्य संयोगान्तलोपस्य 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' इति निषेधे 'मध्वरि' रिति सिद्धम् । द्वित्वाभावे च 'मध्वरिः' इति रूपम् । मध्वरिः=मधोदैत्यस्य शत्रुर्विष्णुः ।

एवं 'धातु+अशः' इत्यवस्थायामिको यणचीतिशास्त्रेण 'स्थानेऽन्तरतमः' इति परिभाषासहकृतेन मूर्धस्थानिकस्य ऋकारस्य स्थाने मूर्धस्थानिके रेफादेशे कृतेऽनचि चेति द्वित्वे-प्राप्तस्य संयोगान्तलोपस्य 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' इति प्रतिषेधे 'धात्रंशः' इति सिद्धम् । 'द्वित्वाभावे च 'धात्रंशः' इत्यपि रूपं बोध्यम् । धात्रंशः=धातुर्ब्रह्मणो भागः ।

'ल+आकृति' इत्यवस्थायामिको यणचीति सूत्रेण स्थानत आन्तर्याल्लकारस्य लकारादेशे 'लाकृति' रिति सिद्धम् । ल-आकृतिः-लाकृतिः=देवमातुरदिते स्वरूपं, वर्णविशेषस्य लकारस्य स्वरूपं वा ।

एचः-पष्ठ्यन्तम्, अयवायाव-प्रथमान्तम् । 'इको यणचि' त्यतो-

१ यण् का संयोगान्त लोपः नहीं होता है ।

एचः क्रमादय् अय् आय् आव् एते स्युरचि ॥

यथासङ्ख्यमनुदेशः सभानाम् १ । ३ । १० ॥

समसम्बन्धी विधिर्यथासङ्ख्यं स्यात् । हरये । विष्णवे । नायकः ।

पावकः ॥

वान्तो यि प्रत्यये द । १ । ७० ॥

ऽचीत्यनुवर्तते । 'क्रमा' दिति यथासङ्ख्यसूत्रवल्लभं, तदाह एच-इति ।

'क्रमा'दित्यस्य लाभायाह-यथासङ्ख्यमिति । सम्यक् ख्यानं-सङ्ख्या=  
( क्रमवैशिष्ट्येन ज्ञानम् ) । सङ्ख्यामर्नातिक्रम्य यथासङ्ख्यम् । अनुदिश्यते इति-  
अनुदेशः=पश्चाद्भवैवान्वयार्थबोधकालिकः सम्बन्धः ।

साम्य-सङ्ख्याया, योग्यत्वात्, उपस्थितत्वाच्च । एवञ्च-समसङ्ख्यावता  
सम्बन्धो यथाक्रम-( यथासङ्ख्य ) भवति । अर्थात्-येन क्रमेण पदज्ञानं  
पदादुपस्थितिर्वा तेनैव क्रमेण समसङ्ख्याना वाक्यार्थबोधविषयः सम्बन्धो  
भवतीत्यर्थः । तत्फलितमाह-समसम्बन्धीति ।

'हरये नमः' इत्येतद्वटकं 'हरये' इति चतुर्थ्यन्तम् । एव 'विष्णवे नमः'  
इत्येतद्वटकं 'विष्णवे' इति पदम् ।

नयतीति नायकः=प्रभुः । पावकः=अग्निः ।

व-अन्ते यस्यासौ वान्तः-प्रथमान्तम् । यि-सप्तम्यन्तम् । प्रत्यये-  
सप्तम्यन्तम् । 'यस्मिन्विधितदादावल्प्रहणे' इति परिभाषालब्धमर्थमाह-

१ एचो के स्थान में क्रम से अय् अय् आय् आव् ये आदेश हों, अच् परे  
रहते । २ समबन्धी जो विधि वह यथासङ्ख्य करके होय । ३ यकारादि प्रत्यय  
परे रहते ओ औ के स्थान में अय् आय् ये आदेश हों ।

१ यथासङ्ख्य-प्रथमान्तम्, अनुदेशः प्रथमान्त, सभानां-षष्ठ्यन्तम् । यद्वा-  
यथासङ्ख्यमिति, -यथा स्यात्तया भवतीत्येव रीत्या क्रियाविशेषणत्वाद्वितीया-  
न्तम् । २ पदज्ञानाद्यनन्तरं जायमानस्य शब्दबोधस्य विषयः सम्बन्धः ।

३ सप्तम्यन्ते विशेषणीभूतेऽल्मात्रबोधके पदे उपादीयमाने यस्मिन्=अलि-यो  
विधिः स तदासौ बोध्य इति तदर्थः । प्रकृते च 'यी'ति पदमल्मात्रबोधकम् ।

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरिन् आव् एतौ स्तः । गन्वम् ।

नाव्यम् । \*अध्वपरिमाणे च । गन्वूतिः ॥

अदेङ् गुणः १ । १ । २ ॥

अत् ५६ च गुणसंज्ञः स्यात् ॥

तत्परस्तेत्कालस्य १ । १ । ७० ॥

तैः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् ।

यकारादाविति । 'ओदौतोरिति वक्तव्य' निति वार्तिकोक्तेराह ओदौ-  
तोरिति ।

गोर्विकारो गन्व्यं = दुग्धदध्यादिकम् । नावा तार्य-नाव्यं = नौकामासह्य  
तरणार्हं जलं । गभीरमिति यावत् । 'गो+य' मित्यवस्थाया 'वान्तो यि प्रत्यये'  
इति अवादेशे 'गन्व्य' मिति सिद्धम् । एवं 'नौ+य' मित्यवस्थाया 'वान्तो  
यी'ति औकारस्य स्थाने अवादेशे नाव्यमिति सिद्धम् । अत्र 'हलि सर्वेषा'-  
मिति 'लोप' शाकल्यस्येति वा वलोपस्तु न, 'यचि भ'मिति भत्वेन वकार-  
स्याऽपदान्तत्वात् ।

अध्वेति । गोशब्दस्य वान्तादेशः स्याद्यूति शब्दे परे, समुदायेन  
मार्गपरिमाणे गन्व्यमाने इत्यर्थः । गन्वूतिः = कोशद्वयम् । 'गन्वूतिः स्त्री कोश-  
युग' मित्यमरः । अत्र सम्ज्ञाभङ्गभयाल्लोपः शाकल्यस्येति वलोपो न ।

अत-प्रथमान्तम्, ५६-प्रथमान्त, गुणः-प्रथमान्तम् ।

तत्परः-प्रथमान्तं, तत्कालस्य-पष्ठ्यन्तम् । 'तत्पर' इत्यत्र तः परो  
यस्मादिति बहुव्रीहिः, 'अतो भिस ऐस्' इत्यत्र तत्परकरणात् । अत्र तात्पर  
इति पञ्चमीतत्पुरुषोऽपि, 'सहिवहोरोद्वर्णस्ये'त्यत्र वर्णग्रहणात् । तदाह  
तत्पर इति । वर्णग्रहणे तु तत्सामर्थ्यादत्वावच्छिन्नाष्टादशाकारग्रहणबोध-  
नेन न 'सहिवहोरोदित्यत्रास्य तत्परसूत्रस्य प्रवृत्तिरिति' तच्चारितार्थम् ।

त. परो यस्मादित्यस्योदाहरणम्- 'अतो भिस ऐस्'-विश्वपाणि. ।  
'तात्पर' इति द्वितीयस्योदाहरणं- 'वृद्धिरादैच्' 'अदेङुण' इति ।

१ गो शब्दको वान्त (अव्) आदेश हो, यूति शब्द परे रहते । समुदाय से  
यदि मार्गका परिमाण (दो कोश) वाच्य हो तो । २ अ, ए, ओ इनकी गुण संज्ञा  
होय । ३ त है परे जिससे और त से जो परे वह समकाल का बोधक होता है ।

आहुगुणः ६ । १ । ८७ ॥

अवर्णादिचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात् । उपेन्द्रः । गङ्गोदकम् ॥

उपदेशोऽनुनासिक इत् १ । ३ । २ ॥

उपदेशोऽनुनासिकोऽजित्सञ्ज्ञः स्यात् । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः । लघुर्ध्वत्रस्याऽवर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेको रलयोः संज्ञा ॥

तत्कालेत्यस्य-उच्चारणकालसमकालेत्यर्थः, तत्कालितमाह-उच्चार्यमाण इति । सवर्णस्थेऽपि बोध्य, तेन हरिभिरित्यत्र अतो भित्त एम् न । अकारेकारयोः सावर्ण्याभावात् ।

आत्-पञ्चम्यन्तं, गुणः-प्रथमान्तम् । 'इको यणचो'त्यतोऽचीत्यनुवर्तते, 'एकः पूर्वपरयो'रित्यधिकृतं, तदाह-अवर्णादिति ।

'उप-इन्द्रः' इत्यवस्थायामाहुग इत्यनेन कण्ठतालुस्थानिकयोरेकारेकारयोः स्थाने कण्ठतालुस्थानिके गुणे एकारे कृते 'उपेन्द्रः' इति सिद्धम् । इन्द्रमुपगतः-उपेन्द्र-विणुः । 'गङ्गा-उदक'मित्यवस्थायाम् 'आहुग' इत्यनेन कण्ठोष्ठस्थानिकयोरेकारोकारयोरेकभयोः स्थाने कण्ठोष्ठस्थानिके ओकारे कृते 'गङ्गोदक'मिति सिद्धम् । गङ्गोदक=गङ्गाजलम् ।

उपदेशो-सप्तम्यन्तम्, अच्-प्रथमान्तम्, अनुनासिक-प्रथमान्तम्, इत्-प्रथमान्तम् ।

प्रतिज्ञायते इति-प्रतिज्ञा । आतश्चोपेति कर्मण्यङ् । अनुनासिकस्य भावः-आनुनासिक्यम् । प्रतिज्ञा आनुनासिक्यं येषान्ते-प्रतिज्ञाऽनुनासिक्या । पाणिनिना प्रोक्ता-पाणिनीयाः । पाणिनीया इत्यस्य पाणिनिप्रभृतिप्रोक्ता वर्णा-इत्यर्थः । प्रतिज्ञाविषयाऽऽनुनासिक्यवन्त इत्यर्थः । प्रतिज्ञा च-'अयमेवम्' इति कथनं, वर्णानां तत्त्वज्ञापको व्यवहारश्च । यद्यपि सूत्रकार-

१ अवर्ण से अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में गुण रूप एकादेश हो ।

२ उपदेश में जो अनुनासिक अच् उसकी इत्संज्ञा होय ।

३ पाणिनिजीने जो वर्ण कहे हैं वे प्रतिज्ञा से अनुनासिक जानना । ४ लघु सूत्रस्थ जो अकार तत्सहित उच्चार्यमाण जो फेर वह २-ल इन दो की संज्ञा है ।

उरण् रपरः १ । १ । ५१ ॥

‘ऋ’ इति त्रिशतः सञ्ज्ञेत्युक्तम् । तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्णार्द्धिः । तवल्लकारः ॥

लोपः शाकल्यस्य ८ । ३ । १९

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ॥

कृतोऽनुनासिकपाठ इदानीं परिश्रष्टस्तथापि वृत्तिकारादिव्यवहारबलेन यथा-  
कार्यं प्राक्स्थित इत्यनुधीयते इति भावः ।

लण् च तत्सूत्रञ्च, लण्सूत्रं, लण्सूत्रे तिष्ठतीति लण्सूत्रस्थः, लण्सू-  
त्रस्यश्वासौ अवर्णश्च लण्सूत्रस्यावर्णः, तेनेति विग्रहः । लण्सूत्रघटकाऽकारस्य  
‘उपदेशोऽजनुनासिकः’ इतीत्यञ्शायाम्—‘आदिरन्त्येने’ति सूत्रप्रवृत्त्या लण्सूत्र-  
स्याऽवर्णेन सह उच्चार्यमाणो ‘हयवर’ इति सूत्रस्थो रेफो र-लोपोः (मध्यगस्य  
लस्य, स्वस्य रेफस्य च ) सञ्ज्ञेति रप्रत्याहारसिद्धिप्रकारः ।

उः-षष्ठ्यन्तम्, अण्-प्रथमान्तं, रपरः-प्रथमान्तम् । त्रिशत इति ।  
तेन ऋपदेन ऋकारल्लकारयोरुभयोरग्रहणं बोध्यम् । तत्स्थाने-ऋल्लवर्णयोः  
स्थाने । रपर इति । ऋकारस्थाने रपरः, ल्लकारस्थाने लपर इत्यर्थः ।

‘कृष्ण-ऋद्धिः’ इत्यवस्थायाम् आहुणः इत्यनेन आकार ऋकारयोः  
कण्ठमूर्धस्थानिकयोः स्थाने ‘उरण्परः’ इति सूत्रसहकारेण कण्ठमूर्धस्थानिके  
गुणे अलादेशे जलतुम्बिकान्यायेन रेफस्योर्द्ध्वगमने च ‘कृष्णार्द्धि’ इति सिद्धम् ।  
कृष्णस्य ऋद्धिः कृष्णार्द्धिः = भगवतः कृष्णस्य समृद्धिः ।

तव-ल्लकार इत्यवस्थायाम् ‘आहुणः’ इत्यनेन पूर्वपरयोः कण्ठ-  
दन्तस्थानिकयोः अकारल्लकारयोः स्थाने ‘उरण्परः’ इति सूत्रसहकारेण कण्ठ-  
दन्तस्थानिके अलादेशे कृते तवल्लकार इति सिद्धम् । तव ल्लकारो वर्ण इत्यर्थः ।

‘भोभगोअघो’ इत्यतः ‘अपूर्वस्य’ ‘अग्नि’ इति चानुवर्तते, ‘व्योर्लघु-  
प्रयत्नतरः’ इत्यतो ‘व्यो’रिति वर्तते । पदस्येत्यधिकृत, तदाह-अवर्णेति ।

१ तीस प्रकार का जो ऋ उसके स्थान में जायमान जो अण् वह रपर होकर  
प्रवृत्त होता है । २ अवर्ण पूर्वक जो पदान्त में स्थित यकार वकार उनका विवर्ण  
से लोप होता है अण् परे रहते ।



पूर्वत्रासिद्धम् ८ । २ । २ ॥

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं  
शास्त्रमसिद्धं स्यात् । हर इह । हरयिह । विष्ण इह । विष्णयिह ॥

वृद्धिरादैच् १ । १ । १ ॥

आदैच् वृद्धिसञ्ज्ञः स्यात् ।

वृद्धिरेचि ६ । १ । ८८ ॥

आदैचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः । कृष्णो-  
क्तत्वं । गङ्गाघः । देवैश्वर्यम् । कृष्णोक्तपठ्यम् ॥

एत्येवत्यूर्ध्वसु ६ । १ । ८९ ॥

अवर्णादेजाधोरेत्येवत्योर्लुठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् ।

पूर्वत्र-अव्ययपदम्, असिद्धं-प्रथमान्तम् । सपादसप्ताध्यायी-  
प्रति=अष्टमाध्यायस्य प्रथमपादं यावत् पठितानि सूत्राणि प्रति । त्रिपादी=  
अष्टमाध्यायाद्वितीयतृतीयचतुर्थपादपठितानि सूत्राणि ।

हे हरे ! इह-आगच्छेत्यर्थः । एव विष्ण इहेत्यत्रापि 'आगच्छे'ति शेषः ।  
वृद्धिः-प्रथमान्तम्, आत्-प्रथमान्तम् । ऐच्-प्रथमान्तम् । गुणापवादः  
इति । येन नाप्राप्तिन्यायेन वृद्धिर्गुणवाविका, गुणस्यावश्यप्राप्तत्वात् ।

कृष्णोक्तत्वं-कृष्णस्य एकरूपता । गङ्गाया ओध-वेगः ।

देवस्य=राज्ञ, देवानां वा ऐश्वर्यम् । कृष्णाय कृष्णो वा उक्तपठः ।

'एजाधोरिति एत्येवत्योरेव विभेपणं, न तु लुठ, असम्भवात् ।

१ सपाद सप्ताध्यायीस्थ सूत्रों के प्रति त्रिपादीस्थ सूत्र असिद्ध हों । और त्रिपादी  
में भी पूर्व शास्त्र के प्रति पर शास्त्र असिद्ध होय । २ आ, ऐ ओ इनकी वृद्धि संज्ञा  
होय । ३ अवर्ण से एच् परे रहते पूर्वपर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो ।

४ अवर्ण से एजादि एति एधति और लुठ परे रहते पूर्वपर के स्थान में  
वृद्धिरूप एकादेश होय ।

उपैति । उपैधते । प्रष्टौहः । एजाद्योः 'किन् ? । उपेतः । मा  
भवान्प्रेदिधत् । \*अक्षादूहिण्यामुपसंख्यानम् । अक्षौहिणी सेना ।  
\*प्रादूहोढोढ्येष्वेभ्येषु । प्रौहः । प्रौढः । प्रौढिः । प्रैषः । प्रैष्यः ।  
\*कृते च तृतीयासमासे । सुखेन ऋतः सुखार्तः । तृतीयेति  
किम् ? । परमर्तः । \*प्र-वत्सतर-कम्बल-वसनार्ण-दशानामृणे ।  
प्रार्णम् । वत्सतरार्णम्-इत्यादि ॥

उपसर्गाः क्रियायोगे १ । ४ । ५९ ॥

प्रादयैः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः । प्र परा अप सम्  
अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु

उपैति=ग्राममुपगच्छति, प्राप्नोति । उपैधते=समृद्धो भवति ।

प्रष्टौहः=वत्सदमनकाष्ठविशेषवाहकस्य वत्सस्य । पठ्यन्तोऽयम् ।

मा भवानित्यस्य=भवान् प्रवृद्धिं न करोत्वित्यर्थः ।

अक्षाणामूहिनीति विग्रहः, 'पूर्वपदात्सञ्ज्ञायामग.' इति णत्वम् ।

प्रौढः=प्रकृष्टस्तर्कः । प्रौढः=महान्, प्रवृद्धश्च । प्रौढिः=महत्त्वं, गर्वश्च ।

प्रैषः=प्रेरणम् । प्रैष्यः=दासः ।

सुखार्तः=सुखेन गतः ।

परमश्चासौ ऋतश्चेति कर्मधारयोऽत्र, न तु तृतीयासमासोऽतोऽत्र न वृद्धिः ।

प्रार्णः=प्रकृष्टम् ऋणम् ।

वत्सतरस्य ऋणं । वत्सतररूपम् ऋणमिति यावत् । (वत्सतर=वच्छिन्ना) ।

एव-कम्बलार्ण-वसनार्णमित्यादावप्यर्थो बोध्यः । ऋणस्यापनयनाय यदन्यद्वृणं

क्रियते तत्-ऋणार्णम् । दशार्णो देशः [ रीवो प्रान्त ] ।

१ अक्ष शब्दान्त्यावयव अवर्णं से ऊहिनीशब्दाद्यावयव अच् परे रहते पूर्वपर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश होय । २ प्र शब्दान्त्यावयव अवर्णं से ऊहादि शब्दाद्यवयव अच् परे रहते वृद्धिरूप एकादेश होय । ३ अवर्णं से ऋतशब्दाद्यवयव अच् परे रहते पूर्वपर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश हो तृतीया समास में । ४ क्रिया के योग में प्रादिकों की गति संज्ञा होती है ।

उत् अमि प्रति परि उप एते प्रादयः ॥

भूवादयो धातवः १ । ३ । १ ॥

क्रियावाचिनो भ्रादयो धातुसंज्ञाः स्युः ॥

उपसर्गादिति धातौ । ६ । १ । ९१ ॥

अवर्णान्तादुपसर्गादकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । प्राच्छति ॥

एङि पररूपम् ६ । १ । ९४ ॥

आहुपसर्गादेडादौ धातौ पररूपमेकादेशः स्यात् । प्रेजते । उपोपति ।

अचोऽन्त्यादि टि १ । १ । ६४ ॥

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तद्विसृजं स्यात् ।

\*शकन्धादिषु पररूपं वाच्यम् । तच्च टेः । शकन्धुः । कर्कन्धुः ।

‘प्रादय’ इत्यनुवर्तत, तदाह-प्रादय इति ।

भूवादय इत्यत्र-भूश्च वाश्च भूत्रौ, आदिश्च आदिश्च-आदी, भूवावादी येपा ते भूवादय इति विग्रहः ।

प्राच्छति=प्रकर्षेण याति । प्रेजते=प्रकर्षेण कम्पते । उपोपति=उप-दहति ।

अच = पठ्यन्तम्, अन्त्य आदिर्यस्य तत्-अन्त्यादि - प्रथमान्तं, (सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः) । टि - प्रथमान्तम् ।

शकन्धादिषु विषये शकन्धादीनामनुरूप - तत्सिद्ध्यर्थ - पूर्वपरयोः स्थाने पररूप वचन्यमित्यर्थः । तच्च = पररूपञ्च । शकन्धुः = शकदेशकूपः । ‘पुंस्येवान्धुः प्रहिः कूपः’ इत्यमरः । कर्कन्धुः = राजविशेषकूपः, श्वेताश्वकूपो वा ।

‘मनस् + ईषा’ इत्यत्र सकाराकारनकारयोर्मध्येऽन्त्योऽच् नकारोत्तराऽकारः, स आदिर्यस्य-‘अस्’ इत्यस्य, तस्य टिसंज्ञा । एतच्च शकन्धा-

१ क्रियावाची जो भ्वादि उनकी वातु संज्ञा होती है । २ अवर्णान्त उपसर्ग से ककारादि वातु परे रहते पूर्वपर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश होय । ३ अवर्णान्त उपसर्ग से एडादि धातु परे रहते पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश होय । ४ अचो के मध्य में जो अन्त्य अच् वह आदि में है जिसके उसकी टि संज्ञा होय । ५ शकन्धादि गण पठित जो शब्द उनकी सिद्धि के अनुगुण पररूप होता है । वह टि के स्थान में होता है ।

मनीषा । आकृतिगणोऽयम् । मार्तण्डः ॥

ओमाडोश्चै ६ । १ । ९५ ॥

ओमि आडि चाऽत्परे पररूपमेकादेशः स्यात् । शिवायो नमः ।

शिव-एहि ॥

अन्तादिवच्चै ६ । १ । ८५ ॥

योऽयमेकादेशः स पूर्वस्याऽन्तवत्परस्यादिवत्स्यात् । शिवेहि ॥

अकः सवर्णे दीर्घः ६ । १ । १०१ ॥

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात् ।  
दैत्यारिः । श्रीशः । विष्णूदयः । होतृकारः ॥

दित्वाद्दे पररूपे 'अस्' इत्यस्य स्थाने ईकारे जाते 'मनीषा' इति सिद्धम् ।  
मनीषाः=बुद्धिः ।

अयं=शक-द्धादिः । आकृत्या स्वरूपेणैव गण्यते इति आकृतिगणः ।

एवञ्च येषु शब्देषु पररूपं करणीयं ते शब्दा अत्र गणे बोध्या इत्यर्थः ।

'आद्गुणः' इत्यत 'आ' दिति वर्तते, तदाह-अत्परे इति । अवर्णा-  
दोमि आडि च परे इति सरलोऽर्थः ।

शिवेहीति 'शिव-आ-इही'त्यवस्थायाम् अ+आ इत्यत्र सवर्णदीर्घोऽपि  
प्राप्नोति, आ+इत्यत्र गुणोऽपि प्राप्नोति । तत्र 'धातूपसर्गयोः कार्यमन्त-  
रङ्गम्, अन्यद्वहिरङ्ग' मिति परिभाषया धातूपसर्गकार्यस्य गुणस्यान्तरङ्गत्वा-  
दादौ प्रवृत्त्या 'शिव+एही' ति जाते वृद्धौ प्राप्तायाम् 'ओमाडोश्चै' त्यनेन  
( 'अन्तादिवच्चे'ति शास्त्रप्रवृत्त्या 'ए' इत्यस्याऽऽङ्त्वात् ) पररूपे 'शिवेही'ति  
सिद्धम् । हे शिव ! आगच्छेति तदर्थः ।

'इको यणचि' इत्यतः 'अचि' इति, 'एकः पूर्वपरयोः' इति सम्पूर्णमधि-  
कारसूत्रं चानुवर्तते । अत आह-अचि पर इत्यादि ।

१ अवर्ण से ओम् आड् परे रहते पररूप एकादश होय । २ यह जो एका-  
देश है वह पूर्व के अन्तवत् होय, और पर के आदिवत् होय । ३ अक् से सवर्ण  
अच् पर रहते पूर्व पर के स्थान में दीर्घरूप एकादेश होय ।

एङः पदान्तादति ६ । १ । १०९ ॥

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेऽत्र । विष्णोऽत्र ॥

सर्वत्र विभोषा गोः ६ । १ । १०९ ॥

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः स्यात् पदान्ते ।  
गोअग्रम् । गोऽग्रम् । एङन्तस्य किम् ? । चित्रग्वग्रम् । पदान्ते  
किम् ? । गोः ॥ १ ॥

अनेकाल् शित्सर्वस्य १ । १ । ६६ ॥

[अनेकाल् यं आदेशः शित्च स सर्वस्य षष्ठीनिदिष्टस्य स्थाने स्यात्] ॥  
इति प्राप्ते ॥ १ ॥

डिच १ । १ ६३ ॥

डिदेनैकाल्प्यन्त्यस्यैव स्यात् ॥

‘अमि पूर्व.’ इत्यतः ‘पूर्व’ इति ‘एङि पररूपम्’ इत्यतो ‘रूपम्’ इति  
चानुवर्तते अत आह-पूर्वरूपमिति ।

‘एङ. पदान्तादती’ति सूत्रादेङ इति, ‘प्रकृत्यान्त. पादम्’ इति सूत्रात्  
‘प्रकृत्या’ इति चानुवर्तते, अत आह-एङन्तस्येत्यादि ।

चित्रेति । ‘एकदेशविकृतमनन्यवत्’ इति न्यायेन ‘गु’शब्दे गोशब्द-  
त्वस्य सत्त्वेऽपि ‘विकृतावयवनिबन्धनकार्ये नायं न्यायः’ इति गुशब्दे नैङन्त-  
त्वमिति भावः ।

‘गोरिति’ । गो अस् इत्यवस्थाया गो इत्यस्य ‘यचि भ’मिति भसंज्ञा  
न तु पदसंज्ञा । ‘हसिञ्सोश्चे’ति पूर्वरूपं स्त्वं विसर्गश्चेति तत्सिद्धिः ।

अनेकालिति । अलोऽन्त्यस्य, ‘आदेः पदस्य’ इत्यनयोरपवादोऽयम् ।  
आरम्भसामर्थ्यादाह-अनेकालपीति ।

१ पदान्त एङ् से ‘अत्’ नाम=ह्रस्व अकार पर रहते पूर्वपर के स्थान में  
पूर्वरूप एकादेश हो । २ लोक में अथवा वेद में एङन्त जो गो शब्द उसको  
प्रकृतिभाव होना है, विकल्प करके, पदान्त में । ३ अनेकाल् जो आदेश और शित्  
जो आदेश वह सम्पूर्ण के स्थान में होता है । ४ डिच यदि अनेकाल् हो तो भी  
वह अन्त्य के ही स्थान में होता है ।

अवङ् स्फोटायनस्य दे । १ । १२३ ॥

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वा स्यादचि । गवाग्रम् । गोऽग्रम् ।  
पदान्ते किम् ? । गूवि ॥

इन्द्रे च दे । १ । १२४ ॥

गोरवङ् स्यादिन्द्रे । गवेन्द्रः ॥

दूराद्भूतो च ८ । २ । ८४ ॥

दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा स्यात् ॥

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् दे । १ । १२५ ॥

एतेऽचि प्रकृत्या स्युः । आगच्छ कृष्णा ३ अत्र गौश्वरति ॥

ईदूदेदन्तमिवचनं प्रगृह्यम् १ । १ । ११ ॥

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात् । हंरी एतौ । विष्णू इमौ ।

गङ्गे अम् ॥

अदसो मात् १ । १ । १२ ॥

दूरादिति । 'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' इत्यधिक्रियते । 'सर्वेः प्लुतः साहसमनिच्छता विभाषा कर्तव्यः' इति भाष्यम् ।

प्लुतेति । 'अत्र नित्यपदं प्रायिकं, नित्यप्रहसित इत्यादाविव । तेन 'मणीवोष्ट्रस्येत्यत्र न प्रकृतिभावः ।

'प्रकृत्याऽन्तः पादम्'—इत्यतः 'प्रकृत्या' इत्यनुवर्तते ।

'पचेते' इत्यादौ प्रगृह्यत्वार्थं तदन्तविधिमाश्रित्योक्तम्—ईदूदेदन्तमिति

'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इति सूत्रानुसारादुदाहरति—हरी इत्यादि ।

१ पदान्त में एङन्त जो गो, शब्द उसको अवङ् आदेश हो अच्परे रहते । २ गो शब्द को अवङ् आदेश होय इन्द्र शब्द परे रहते, पदान्त में ।

३ दूर से सम्बोधन में जो वाक्य—उसकी टि को प्लुत होता है विकल्प करके ।

४ प्लुत और प्रगृह्य ये अच् परे रहते नित्य प्रकृति से रहते हैं । ५ ईदन्त एङन्त

पदान्त जो द्विवचन उनकी प्रगृह्य संज्ञा हो । ६ अदसशब्द सम्बन्धी मकार से परे

जो ईत् ऊत् उनकी प्रगृह्य संज्ञा होती है ।

अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः । अमी ईशाः । रामकृष्णान्मू.  
आसाते । मात्किम् ? । अमुकेऽत्र ।

चादयोऽसत्त्वे १ । ४ । ५७ ॥

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः ॥

प्रादयः १ । ४ । ५८ ॥

एतेऽपि तथा स्युः ॥

निपात एकाजिनाङ् १ । १ । ४ ॥

एकोऽच् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात् । इ इन्द्रः । उ  
उमेशः । वाक्यस्मरणयोरङित् । आ एवं नु मन्यसे ! । आ एवं  
किल तत् ! । अन्यत्र ङित् । ईपदुष्णम्-ओष्णम् ॥

‘ईदूदेत्’ इत्यनुवृत्तावपि अदस्शब्दसम्बन्धिमकारात्परस्यकारस्याऽसम्भ-  
वादाह-ईदूताविति ।

‘अत्र द्विवचनाननुवृत्तिरितिसूचनाय बहुवचनमुदाहृतम्-अमी इति ।  
अमुकेत्रेति । ‘असति माद्रहणे एकारोऽप्यनुवर्त्तते, माद्रहणे कृते तु  
मकारादव्यवहितपरस्यकारस्याऽसम्भव इति न तदनुवृत्तिः ।

‘प्राप्तीश्वरात्’ इत्यतो ‘निपाताः’ इत्यनुवर्तते इत्यभिप्रेत्याह-निपाता  
इति । ‘लिङ्गसंख्यानन्वयित्वमद्रव्यत्वम्’ ।

‘चादयोऽसत्त्वे’ इत्यतो ‘असत्त्वे’, इति ‘निपाताः’ इति चानुवर्त्याह--  
एतेऽपीति ।

‘प्रगृह्यम्’ इत्यनुवर्तते, ‘एकाच्’ इति च कर्मधारयः-इत्येतदभिप्रायेणाह-  
एकोजिति ।

‘ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः ।

एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित् ॥

१ अद्रव्याथ वाचो जो चादि, उनकी निपात सञ्ज्ञा होती है । २ अद्रव्यार्थ  
वाची जो प्रादि उनकी भी निपात सञ्ज्ञा होती है । ३ आङ् से भिन्न जो एकाच्  
निपात उसकी प्रगृह्य सञ्ज्ञा होती है । ४ वाक्य और स्मरण अर्थ में ‘आ’ (ङित्)  
नहीं है, किन्तु ‘आ’ ही है । अर्थात्-अन्यत्र ‘आ’ ङित् ( आङ् ) है ।

ओत् १ । १ । १५ ॥

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात् । अहो ईशाः ॥

सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावन्तौ १ । १ । १६ ॥

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे ।  
विष्णो इति । विष्ण इति । विष्णविति ॥

मय् उओ वो वा ८ । ३ । ३३ ॥

मयः परस्य उओ वो वा स्यादचि । किम्बुक्तम् । किमु उक्तम् ॥

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६ । १ । १२७ ॥

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि परे । ह्रस्वविधि-  
सामर्थ्यात् न स्वरसन्धिः । चक्रि अत्र । चक्रयत्र । पदान्ता इति  
किम् ? । गौर्यौ ॥

‘प्रगृह्यम्’ इति ‘निपातः’ इति च द्वयमनुवर्तते । तदन्तविधिरित्याह-  
ओदन्त इति । अहो इत्यखण्डनिपातः ।

‘ओत्’ इति ‘प्रगृह्यम्’ इति चानुवर्तते । ऋषिशब्दो वेदवाचीत्यभि-  
प्रेत्याह सम्बुद्धिनिमित्तक इति । शाकल्यो लोपस्य स्मर्ता, पाणिनिर्नेति  
व्याख्यानानुसारेण शाकल्यमते विष्ण इतीत्युदाहृतम् ।

‘इमो ह्रस्वात्’ इत्यतोऽचीत्यनुवर्तते । अत आह-अचीति । ‘इको  
यणचि’ इत्युत्तरं ‘मय उओ वो वा’ इति सूत्रकरणेनापि प्रकृतिभावलाभः,  
त्रिपाद्यां तत्सूत्रकरणान्तु वत्वस्याऽसिद्धत्वादनुस्वारवारणायेत्याशयेनोक्तं  
किम्बुक्तमिति । ‘एः पदान्तात्’ इत्यतः ‘पदान्तात्’ इति विभक्तिवि-  
परिणतम्, ‘प्लुतप्रगृह्या’ इत्यतः ‘अचि’ इति चानुवर्तते । अत आह  
अचीति । ह्रस्वोत्तरमपि यदि यण् स्यात् तर्हि ह्रस्वविवानमेव व्यर्थं स्या-  
दिति भावः ।

१ ओदन्त जो निपात उसकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है ।

२ सम्बुद्धिनिमित्तक जो ओकार उसकी विकल्प से प्रगृह्यसंज्ञा होती है  
‘अवैदिक इतिशब्द परे रहते ।

३ मय् से परे जो उओ उसको व आदेश हो, विकल्प करके, अच् परे रहते ।

४ पदान्त इक् को ह्रस्व होता है असवर्ण अच् परे रहते/विकल्प करके ।



अचो रहाभ्यां छे ८ । ४ । ४६ ॥

अचः पराभ्या रफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः ।  
गौर्यौ । \*न समासे । वाग्यस्वः ॥

ऋत्यकः ६ । १ । १२८ ॥

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्धा । नल ऋपिः । नलर्षिः ।  
पदान्ताः किम् ? । आच्छत् ॥

इत्यच्सन्धिः ।

## अथ हल्सन्धिप्रकरणम् ।

स्तोः श्चुना श्चुः ८ । ४ । ४० ॥

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः ।  
रामश्चेते । रामश्चिनोति । सच्चिद् । शार्ङ्गिञ्जय ॥

शात् ८ । ४ । ४४ ।

‘यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा’ इत्यतः ‘यरः’ इति, ‘वा’ इति चानु-  
वर्त्योक्तं यर इति ।

‘इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वः’ इत्यनुवर्तते ।

‘एङः पदान्तात्’ इति ‘इकोऽसवर्णे’ इत्यतः ‘शाकल्यस्य ह्रस्वः’ इति  
चानुवर्त्योक्तं प्राग्वदिति । ‘आडजादीनाम्’ इति जातस्याऽऽङगमस्य  
धात्ववयवत्वेन पदान्तत्वाऽभाव इति भावः ।

अत्र स्यान्यादेशयोरेव यथासङ्गं, न तु निमित्तकारिणोः, नापि निमित्ता-  
देशयोः, ‘शात्’ इति ज्ञापकादित्यभिप्रेत्योदाहरति-रामश्चिनोतीति ।

‘तोः पि’ इत्यतः ‘तोः’ इति, ‘न पदान्तात्’ इत्यतः ‘न’ इति चानु-

१ अच् से परे जो रफ हकार उनसे परे जो यर उसको द्वित्व होता है विकल्प  
करके । २ समासघटक जो पदान्त इक् उसको ह्रस्व नहीं होता है असवर्ण अच्  
परे रहते । ३ पदान्त इक् को ह्रस्व होता है विकल्प से, ह्रस्व-ऋकार परे रहते ।

४ सकार तवर्ग के स्थान में शकार चवर्ग के योग में शकार चवर्ग आदेश  
हों । अर्थात् सकार को शकार आदेश हो, तवर्ग को चवर्ग होय ।

५ शकार से परे जो तवर्ग उसको चुत्व नहीं होता है ।

शात्परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात् । विश्वः । प्रश्नः ।

ष्टुना ष्टुः ऽ । ४ । ४१ ।

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् । रामष्ष्टुः । रामष्टीकते । पेष्टा ।  
तष्टीका । चक्रिण्डौकसे ॥

न पदान्तादोरनाम् ऽ । ४ । ४२ ॥

पदान्ताद्वर्गात्परस्याऽनामः स्तोः ष्टुर्न स्यात् । षट् सन्तः ।

षट् ते । पदान्तात्किम् ? । ईष्टे । टोः किम् ? । सर्पिष्टमम् ।

अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् । षण्णाम् ।  
षण्णवतिः । षण्णगर्थः ॥

वर्तते । तत्र प्रासस्य चुत्वस्य निषेधायाह—चुत्वमिति । 'विश्व' इत्यत्र 'वि-  
गतौ' इति धातोर्यजयाचविच्छप्रच्छेति भावे नञि च्छ्वोः श्लङिति 'शादेशः ।  
एवं प्रश्न इत्यत्रापि । 'स्तोः' 'श्चुना' इत्यतः 'स्तोः' इति षष्ठ्यन्तमनुवर्ततेऽत  
आह—स्तोरिति । अत्रापि स्थान्यादेशयोरेव यथासङ्गम्, न तु निमित्त-  
कार्यिणोः, 'तोः वि' इति ज्ञापकादित्यभिप्रायेणाह—रामष्टीकते । पेष्टेति ।

'स्तोः' 'श्चुना' इत्यतः 'स्तोः' इति, 'ष्टुना ष्टुः' इत्यतः 'ष्टुः' इति चानु-  
वर्तते, अत आह—स्तोः ष्टुरिति । ईष्टे इति । तिष्ठन्तमेतत् । ईष्टे ते इति  
स्थिते ष्टुत्वे चर्त्तम् । पदान्ते षकारस्य जश्त्वेन टवर्ग एव भविष्यतीति 'ष्टुने'-  
त्यतः ष्टुप्रहणानुवृत्त्यैव सिद्धं किं टोर्ग्रहणेनेति पृच्छति टोः किमिति ।  
'ह्रस्वात्तादौ' तद्धिते' इति जातस्य पत्वस्य जश्त्वं प्रत्यसिद्धत्वात् पदान्ते  
पकारो दृश्येनेत्यभिप्रेत्योक्तं—सर्पिष्टममिति ।

अनामिति । भो सूत्रकार । त्वया न्यूनमुक्तं, त्वया—'न पदान्तादोरनाम्न-  
वतिनगरीणा'मित्येव सूत्रणीयमित्यर्थः ।

१. सरकार-तवर्ग के स्थान में षकार-टवर्ग के योग में षकार टवर्ग आदेश हो ।  
अर्थात् सकार को षकार हो, तवर्ग को टवर्ग हो ।

२. पदान्त टवर्ग से परे नाम् भिन्न जो तवर्ग और सकार इनको ष्टुत्व नहीं होय ।

३. पदान्त टवर्ग से परे नाम् नवति और नगरी के अवयव से भिन्न जो तवर्ग  
सकार उसको ष्टुत्व नहीं होय ।

तोः पिः ८ । ४ । ४३ ॥

तैवर्गस्य पकारे परे न ष्टुत्वम् । सन्पष्टः ॥

झलां जशोऽन्ते ८ । २ । ३९ ॥

पदान्ते झलां जशः स्युः । वागीशः ॥

थशोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८ । ४ । ४५ ॥

यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । एतन्मुरारिः ।  
एतद्मुरारिः । \*प्रत्यये भाषायां नित्यम् । तन्मात्रम् । चिन्मयम् ।

तोर्लि ८ । ४ । ६० ॥

तैवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः स्यात् । तल्लयः । विद्वाँल्लि-  
खति । नकारस्याऽनुनासिको लकारः ॥

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८ । ४ । ६१ ॥

उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः स्यात् ॥

‘न पदान्तादोरनाम्’ इत्यतः ‘न’ इति, ‘ष्टुना ष्टुः’ इत्यतः ‘ष्टुः’ इति  
चानुवर्तते इत्याह—न ष्टुत्वमिति । ‘पदस्य’ इत्यनुवर्त्य—पदस्य अन्ते इति  
सम्बन्धमभिप्रेत्याह—पदान्ते इति । ‘पदस्य’ इत्यनुवर्तते । तदन्तविध्य-  
लोन्त्यपरिभाषोभयलब्धमर्थमाह—यरः पदान्तस्येति ।

यरः पदान्तस्य प्रत्ययावयवेऽनुनासिके परे भाषायां नित्यमनुनासिको  
भवतीत्यर्थः । ‘वेद्वि’ ‘वध्नाती’त्यादेस्तु नानुनासिकः, यरः पदान्तत्वाभावात् ।  
‘अनुस्वारस्य ययी’ति सूत्रात् ‘परसवर्ण’ इत्यनुवर्तते इत्याह—परसवर्ण इति ।

‘अनुस्वारस्य’ इति सूत्रतः ‘सवर्ण’ इत्यनुवर्तते इत्याह—पूर्वसवर्ण इति ।

१ तवर्ग को पकार परे रहते ष्टुत्व नहीं होय । २ पदान्त में विद्यमान झलों  
के स्थान में जश् होय । ३ पदान्त यर् को अनुनासिक होय, अनुनासिक परे  
रहते, विकल्प करके । ४ पदान्त यर् के स्थान में नित्य अनुनासिक हो, प्रत्ययावयव  
अनुनासिक परे रहते, साषा नाम -लोक में । ५ तवर्ग को लकार परे रहते  
परसवर्ण होय । ६ उदसे परे जो स्था और स्तम्भ उनको पूर्व का सवर्ण होय ।

तस्मादित्युत्तरस्य १ । १ । ६७ ॥

पञ्चमीनिर्देशन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ॥

आदेः परस्य १ । १ । ६४ ॥

परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् । इति सस्य थः ॥

झरो झरि सवर्णे ८ । ४ । ६५ ॥

हलः परस्य झरो लोपो वा स्यात् सवर्णे झरि ॥

खरि च ८ । ४ । ६६ ॥

खरि परे झलां चरः स्युः । इत्युदो दस्य तः । 'उत्थानम्' । उत्तम्भनम् ॥

झयो होऽन्यतरस्याम् ८ । ४ । ६३ ॥

झयः परस्य हस्य - वा पूर्वसवर्णः स्यात् । नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य तादृशो वर्गचतुर्थः । वाग्घरिः । वाग्हरिः ॥

‘तस्मिन्निति निर्दिष्टे’ इत्यतः ‘निर्दिष्टे’ इत्यनुवर्तते, अत आह अन्यवहितस्येति । ‘अलोऽन्त्यस्ये’त्यस्यापवादोऽयं योगः । ‘सस्येति । अघोषस्य महाप्राणप्रयत्नवत् सस्य तादृश एव थकार इत्यर्थः । तस्य ‘झरो झरी’ति पाक्षिको लोपः । लोपामात्रे यस्य श्रवणं, न तु खरि चेति चत्त्वं, चत्त्वं प्रति थकारस्याऽसिद्धत्वात् । हल इति । ‘हलो यमां यमि लोपः’ इत्यतः ‘हलः’ इति ‘लोपः’ इति च पदमनुवर्तते ।

‘झला जशू झशि’ इत्यतो ‘झलाम्’ इति, ‘अभ्यासे चर्च’ इत्यतः ‘चर्च’ इति च बहुवचनविपरिणतमनुवर्तते, अत आह—खरीति ।

१ पञ्चमी निर्देश करके क्रियमाण जो कार्य वह वर्णान्तर से व्यवधानरहित पर के स्थान में होय । २ पर को कहा गया जो कार्य वह उसके आदि में होय ।

३ हल् से परे जो झर उसका लोप होय, विकल्प से सवर्ण झर परे रहते ।

४ खर् परे रहते झलों के स्थान में चर् होय ।

५ झय से परे जो हकार उसको पूर्वसवर्ण होय विकल्प करके ।

शश्छोऽटि ८ । ४ । ६३ ॥

पदान्ताञ्जयः परस्य शस्य छो वा स्यादटि । तद् शिव  
इत्यत्र दस्य इत्युत्वेन जकारे कृते खरि चेति जकारस्य चकारः ।  
तच्छिवः । तच्छिवः । \*छत्वमभीति वाच्यम् । तच्छोकेन ॥

मोऽनुस्वारः ८ । ३ । २३ ॥

मान्तस्य पदस्याऽनुस्वारः स्याद्धलि । हरिं वन्दे ॥

नश्चाऽपदान्तस्य झलि ८ । ३ । २४ ॥

नस्य मस्य चाऽपदान्तस्य झल्यनुस्वारः स्यात् । यशांसि ।  
आक्रंस्यते । झलि किम् ? । मन्यसे ।

अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८ । ४ । ६८ ॥

स्पष्टम् । [ अनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णः स्यात् ] शान्तः ॥

वा पदान्तस्य ८ । ४ । ६२ ॥

पदान्तस्याऽनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात् ।  
त्वङ्करोपि । त्व करोषि ॥

मो रंजि रमः कौ ८ । ३ । २५ ॥

‘वा पदान्तस्य’ इत्यतः ‘पदान्तस्ये’ति विभक्तिविपरिणामेनावुवर्तते,  
तदाह पदान्तादिति । ‘जयो होऽन्यतरस्या’मित्यतो ‘झय’ इत्यनुवर्तते  
इत्यपि बोध्यम् ॥ ‘पदस्य’ इत्यधिकृतम् । ‘हलि सर्वेषाम्’ इत्यतो हलीति  
चावुवर्तते । ‘येन विविः’ इति तदन्तविधिस्तदाह-मान्तस्येति ।

मोऽनुस्वारः’ इत्यतः ‘मः’ ‘अनुस्वारः’ इति पदद्वयमनुवर्तते, अतः  
आह-नस्य मस्येत्यादि । अनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णः स्यादित्यर्थः ।

१ पदान्त झय् से परे जो शकार उसको छकार होय विकल्प करके अट् परे रहते ।

२ पदान्त झय् से परे शकार को छकार हो अम् परे रहते विकल्प से ।

३ मान्तपद को अनुस्वार होय हल् परे रहते । ४ अपदान्त जो नकार  
मकार उनको अनुस्वार होय झल् परे रहते । ५ अनुस्वार को यय् परे रहते पर-

सवर्ण होय । ६ पदान्त अनुस्वार को यय् परे रहते परसवर्ण होय विकल्प करके ।

७ क्विप्ता राज् धातु परे रहते सम् के मकार को मकारही होय (अनुस्वार नहीं होय) ।

किबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् । सभ्राट् ॥

हे मपरे वा ८ । ३ । २६ ॥

मपरे हकारे परे मस्य मो वा स्यात् । किम् हल्यति । किं हल्यति ॥ \* यवलपरे यवला वा । किय् ह्यः । किं ह्यः । किव् हल्यति । कि हल्यति । किल्ल ह्लादयति । किं ह्लादयति ॥

नपरे नः ८ । ३ । २७ ॥

नपरे हकारे मस्य नो वा स्यात् । किन् हुतो किं हुते ।

आद्य-तौ टक्तितौ १ । १ । ४६ ॥

टिक्तितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः । षट्सन्तः, षट्सन्तः ॥

णोः कुक्कुडू शरि ८ । ३ । २८ ॥

डकारणकारयोः कुक्कुडावागमौ वा स्तः शरि । \* चयो-

‘मोऽनुस्वारः’ इत्यतः ‘मः’ इति षष्ठ्यन्तमनुवर्तते । मस्य मविधानमनुस्वारव्यावृत्त्यर्थमित्यभिप्रेत्याह-मस्य म एवेति ।

‘मोऽनुस्वारः’ इत्यतः ‘मः’ इति षष्ठ्यन्तम्, ‘मो राजि’ इत्यतो ‘मः’ इति प्रथमान्तं चानुवर्तते, तदाह-मस्य मो वेति । वार्तिके ‘मः’ इति षष्ठ्यन्तं, ‘हे’ इति चानुवर्तते । यवलपरे हकारे परे मकारस्य यवला वा इत्यर्थः ।

‘मः’ इति षष्ठ्यन्तम्, ‘हे’ इति ‘वा’ इति चानुवर्तते ॥ टश्च कश्च टकौ, टकावितौ ययोस्तौ टक्तितौ । ‘द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते’ इति न्यायमाश्रित्याह-टिक्तिताविति । यथासङ्ख्यपरिभाषालब्धमर्थमाह-क्रमादिति । ‘हे मपरे वा’ इत्यतो ‘वा’ इत्यनुवर्त्याह-वेति ।

१ मपरक हकार परे रहते मकार को मकार ही होय विकल्प करके । २ यवल-परक हकार परे रहते मकार को क्रम से य व ल हों, विकल्प करके । ३ नपरक हकार परे रहते मकार को नवार होय विकल्प करके । ४ टित्तिव जिस समुदाय को कहें जाय उसके आदि अवयव टित् होय, ओर अन्त्यावयव वित् होय । ५ डकार णकार को कुक् डक् का आगम होय विकल्प करके शरि परे रहते ।

द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् । प्राङ्ण् पठः ।  
प्राङ्ण् पठः । प्राङ्ण् पठः । सुगण्ण् पठः । सुगण्ण् पठः । सुगण्ण् पठः ॥

डः सि धुट् ८ । ३ । २९ ॥

डात्परस्य सस्य धुट् वा स्यात् ॥

नश्च ८ । ३ । ३० ॥

नान्तात्परस्य सस्य धुट् वा स्यात् । सन्तः । सन्तः ॥

शि तुक् ८ । ३ । ३१ ॥

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग् वा स्यात् । सञ्छम्भुः । सञ्छम्भुः । सञ्छम्भुः । सञ्छम्भुः । सञ्छम्भुः ॥

डैभो ह्रस्वादाचि डमुणो नित्यम् ८ । ३ । ३२ ॥

चय इति । चप्रत्याहारीयवर्णानां स्थाने स्वस्ववर्गोवा द्वितीया वर्णा भवन्ति इत्यर्थः ।

‘हे मपरे’-इत्यतो ‘वा’ इति वर्तते । ‘ड’ इति पञ्चमी, ‘सि’ इति सप्तमी । तथा च ‘उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्’ इति परिभाषया ‘सि’ इति सप्तम्याः पञ्चम्यर्थत्वमित्यत आह-सस्य धुट् इत्येत । ‘डः सि धुट्’ इत्यतः ‘सि धुट्’ इति ‘वा’ इति चानुवर्तते, ‘सि’ इति सप्तम्याः पञ्चम्यर्थत्वमित्यत आह-सस्येति ।

‘पदस्य’ इत्यधिकृतम्, ‘नश्च’ इत्यतः ‘नः’ इति ‘वा’ इति चानुवर्तते । ‘नः’ इति पञ्चम्याः ‘नश्च’ इत्यत्र चरितार्थतया ‘शि’ इति सप्तम्याश्च निरवकाशतया पञ्चम्याः पञ्चम्यर्थत्वमित्यभिप्रायेणाह-पदान्तस्येति । सञ्छम्भुरिति ।

‘अछौ अचछा अचशा अशाविति चतुष्टयम् ।

रूपाणांसिह तुक्छत्वचलोपानां विकल्पनात् ॥’

डम् इति । नित्यप्रहसितः इत्यादाविव प्रकृते नित्यपद प्रायः पदार्थकृतेन

१ चय् को द्वितीय अक्षर होय जेपरे रहते पौष्करसादि आचार्य के मत में ।  
२ ड से परे जो सकार उसको धुट् का आगम होय विकल्प करके । ३ नान्त पद से परे जो सकार उसको धुट् का आगम होय विकल्प से । ४ पदान्त नकार को श परे रहते तुक् होय विकल्प से । ५ ह्रस्व से परे जो डम् तदन्त जो पठ उससे परे जो अच् उसको नित्य डमुट् ( डट्-णुट्-मुट् ) का आगम होय ।

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याऽचो नित्यं  
ङमुडागमः स्यात् । प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्णीशः । सन्नच्युतः ॥

सम्ः सुटि ८ । ३ । ५ ॥

समो रुः स्यात् सुटि ॥

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८ । ३ । २ ॥

अत्र=रुप्रकरणे-रोः पूर्वस्यानुनासिको वा स्यात् ॥

अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः ८ । ३ । ४ ॥

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः स्यात् ॥

स्वरवैशाल्योर्विसर्जनीयः ८ । ३ । १५ ॥

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः स्यात् ।

‘इको यणचि’ ‘सुप्तिञन्त-’ ‘सनाद्यन्ता’ इत्यादौ ङमुङ् न भवतीति तत्त्वम् ।

अचि इति सप्तम्याः षष्ठ्यर्थत्वमाश्रित्याह-अच इति ।

‘मनुवसो रु’ सम्बुद्धौ छन्दसि’ इत्यतो ‘रु’ इत्यनुवर्तते । तदाह-  
रुरिति । सुडवागम एव गृह्यते, व्याख्यानात् । सूत्रे-अत्र इत्यस्य-  
रुप्रकरणे इत्यर्थः । राविति वक्तव्येऽत्रग्रहणात्सप्तम्युप इति विहितस्य न  
ग्रहणम् । ‘मनुवसो रु’ इत्यतो ‘रु’ इत्यनुवर्त्य दिग्योगलक्षणपञ्चमीं च  
कृत्वाह-रोः पूर्वस्येति । ‘अनुनासिकात्’ इति ल्यब्लोपे पञ्चमीत्यभिप्रेत्याह-  
अनुनासिकं विहायेति । ‘अनुनासिक’मित्यस्य हि अर्शआद्यजन्ततया  
अनुनासिकधटितप्रयोगमित्यर्थः । ‘रोः’ ‘पूर्वस्य’ इति अनुवर्त्य योग्यतया  
विभक्तिं विपरिणमय्य च व्याचष्टे-रोः पूर्वस्मात् पर इति ।

‘पदस्य’ इत्यधिकृत, ‘रो रि’ इत्यत ‘र’ इत्यनुवर्तते, तदन्तविध्यलान्त्य-

१ सम् के मकार को रु होता है सुट् पर रहते । २ इस रुप्रकरण में रु से पूर्व अच् को अनुनासिक आदेश होता है । ३ इस ( अष्टमाध्याय तृतीयपाद स्थित ) रुप्रकरण में अनुनासिकधटितप्रयोग को छोड़ कर रु से जो पूर्व अच् उससे परे अनुस्वार का आगम होय । ४ खरु पर रहते और अवसान में विघञान जो पदान्त रेफ उसको विसर्ग होय ।



\*सर्पुङ्गानां सो वक्तव्यः । संस्कर्ता । संस्कर्ता ॥

पुम्भेः स्वय्यम्परे ८ । ३ । ६ ॥

अम्परे खयि पुमो रुः स्यात् । पुंस्कोकिलः । पुंस्कोकिलः ॥

नश्छैव्यप्रशान् ८ । ३ । ७ ॥

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः स्यात्, न तु प्रशान्शब्दस्य ॥

विसर्जनीयस्य सः ८ । ३ । ३४ ॥

खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात् । चक्रिस्त्रायस्व । चक्रिस्त्रायस्व ।

अप्रशान् किम् ? । प्रशान् तनोति । पदान्तस्येति किम् ? । हन्ति ॥

नृन् पे ८ । ३ । १० ॥

नृनित्यस्य रुः स्याद्वा पकारे परे ॥

कुप्चोः ऋक्पौ च ८ । ३ । ३७ ॥

विधिप्रवृत्तिलब्धमर्थमाह-पदान्तस्येति । 'सर्परे शरि शरि वा विसर्गलोपः' इत्यस्य 'कुप्चोः ऋक्पौ च' इत्यस्य चापवादोऽयं विसर्गविधिः । 'मनुवसो'-इत्यतः 'रु' इत्यनुवर्त्याह-रुरिति ।

'पदस्य' इत्यविकृत, तच्च विशेष्यं, 'न' इति च विशेषणम् । विशेषणेन च तदन्तविधिः । 'रु' इति 'अम्परे' इति चानुवर्तते इत्याह-अम्परे इति ।

'खरयसानयोः-' इत्यतः 'खरी'त्यनुवर्त्याह-खरीति ।

'नृ'निति' द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपठ्यन्तम् । 'रु' इति, 'उभयथर्क्षु'इत्यत 'उभयथे'ति चानुवर्तते । 'पे' इत्यकारो न विवक्षितः । ते नृः प्रीणाति, नृः पुनाति-इत्यादौ रुत्वं सिध्यतीत्यभिप्रेत्याह-नृनित्यस्येति । 'सर्परे विसर्जनीयः' इत्यतो 'विसर्जनीयः' इति चकारेणानुक्रियते । 'विसर्जनीयस्य सः'

१ सम् पुम् कान् इनके विसर्ग को स होय । २ अम्परक खय् परे रहते पुम् के म को रु होय । ३ अम्परक छव् परे रहते नान्तपद को रु होय, परन्तु प्रशान् शब्दावयव नकारको रु नहीं होय । ४ खर परे रहते विसर्ग को स आदेश हो । ५ नृन् के नकार को रु होता है विकल्प से, पकार परे रहते । ६ कवर्ग पवर्ग परे रहते विसर्ग को जिह्वामूलीय उपध्मानीय ये क्रम से हों ।

( चकार से विसर्ग भी हो ) ।

कवर्गे पवर्गे च परे विसर्गस्य ऋक्पौ स्तः । चाद्विसर्गः ।

नृः पाहि । नृः पाहि । नृः पाहि । नृः पाहि । नृन् पाहि ॥

तस्य परमात्रेडितम् ८ । १ । २ ॥

द्विरुक्तस्य परं रूपमात्रेडितं स्यात् ॥

कान्मात्रेडिते ८ । ३ । १२ ॥

कान्नकारस्य रुः स्यादात्रेडिते परे । कौस्कान् । कांस्कान् ॥

छे च ६ । १ । ७३ ॥

ह्रस्वस्य छे परे तुगागमः स्यात् । शिवच्छाया ॥

पदान्ताद्वा ६ । १ । ७६ ॥

दीर्घात्पदान्ताच्छे परे तुग् वा स्यात् । लक्ष्मीच्छाया ।  
लक्ष्मीच्छाया ॥

इति ह्रस्वसन्धिप्रकरणम् ।

इत्यतो 'विसर्जनीयस्य' इति चानुवर्तते । तदाह विसर्गस्येति । तेन  
'गजो गच्छति' इत्यादौ रोक्त्वं सिध्यति । विसर्जनीयपदानुवृत्त्यभावे तु रोः-  
स्थानेऽपि तदादेशापत्तिः स्यादिति बोध्यम् ।

तस्येति । 'सर्वस्य द्वे' इत्यनुवर्तनादभ्यासद्वित्वविषये नास्य प्रवृत्तिः ॥  
'कान्' इति द्वितीयान्तानुकरणं छत्तषष्ठ्यन्तम्, तच्छब्धमर्थमाह-कान्नकार-  
स्येति ।

'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इत्यतः 'तुक्' इति 'ह्रस्वस्य' इति चानुवर्तते ।  
तदाह ह्रस्वस्येति ।

'ह्रस्वस्य पिति कृति' इत्यतः 'तुक्' इति 'छे च' इत्यतः 'छे' इति  
'दीर्घात्' इति सूत्रं चानुवर्ततेऽत आह-दीर्घादित्यादि । दीर्घस्यैवायं तुक्  
न तु छस्य, 'सेनासुराच्छाया' इति निर्देशात् । तत्फलं लक्ष्मीच्छाया चेच्छिद्यते  
इत्यादौ छकारश्रवणम् ।

१ आष्टमिक द्वित्व जिनको हुआ हो उनके, पररूप ( शब्द ) की आत्रेडित  
सशा हो । २ कान् के नकार को रु हो आत्रेडित परे रहते ।

३ ह्रस्व को तुक् का आगम होय छकार परे रहते ।

४ पदान्तदीर्घ को तुक् का आगम हो, छकार परे रहते, विकल्प करके ।

## अथ विसर्गसन्धिप्रकरणम् ।

विसर्जनीयस्य सः ८ । ३ । ३४ ॥

खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात् । विष्णुधाता ॥

वाँ शरि ८ । ३ । ३३ ॥

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा स्यात् । हरिः शेते । हरिश्शते ॥

ससंजुषो रुः ८ । २ । ६६ ॥

पदान्तस्य सस्य, सजुप्शब्दस्य च रुः स्यात् ॥

अतो रोरप्लुतादप्लुते ८ । १ । ११३ ॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति । शिवोऽर्घ्यः ।

हँशि च ८ । १ । ११४ ॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्याद्धशि । शिवो वन्द्यः ॥

ओँमगोअघोअपूर्वस्य थोऽशि ८ । ३ । १७ ॥

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशः स्यादशि । देवा इह । देवायिह । भोस्

‘खरवसानयोः’ इत्यतः ‘खरि’ इत्यनुवर्तते, तदाह ‘खरीति’ ।

‘विसर्जनीयस्य सः’ इत्यतः ‘विसर्जनीयस्य’ इति, ‘शर्परे विसर्जनीयः’ इत्यतो ‘विसर्जनीय’ इति चानुवर्त्योक्तं-‘विसर्गस्य विसर्ग’ इति । ‘पदस्य’ इत्यनुवर्तते । तदन्तविध्यलान्त्यविधिभ्यां लब्धमर्थमाह-‘पदान्तस्येति । ‘एव पदान्ता’दित्यतः ‘अतो’ति ‘कृत उत्’ इत्यतः ‘उत्’ इति चानुवर्तते । तदाह ‘अप्लुतादिति ।

‘अतो रोरप्लुतात्’ इति, ‘उत्’इति चानुवर्तते । ‘रोः सुपि’ इत्यतो ‘रोः’

१ विसर्ग के स्थान में सकार हो खर पर रहते । २ शर पर रहते विसर्ग को विसर्ग ही हो, विकल्प से । ३ (सान्त जो पद और सजुप्शब्दान्त जो पद उनके अन्त्य के सकार को रु होय । अर्थात् )-पदान्त जो सकार और सजुप् शब्दान्त जो सकार उसको रु होय । ४ अप्लुत अकार से परे जो रु उसको उकार हो अप्लुत अकार पर रहते । ५ अप्लुत अकार से परे जो रु उसको उकार हो हश् पर रहते । ६ भो मगो अघो और अपूर्वक जो रु उसको यकार आदेश होय अश् पर रहते ।

भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः । तेषां रोर्द्यत्वे कृते

हलि सर्वेषाम् ८ । ३ । २२ ॥

भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि । भो देवाः ।  
भगो नमस्ते । अघो याहि ॥

रोऽसुपि ८ । २ । ६९ ॥

अहो रेफादेशः स्यान्न तु सुपि । अहरहः । अहर्गणः ॥

रो रि ८ । ३ । १४ ॥

रेफस्य रेफे परे लोपः स्यात् ॥

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ८ । ३ । १११ ॥

ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याऽणो दीर्घः स्यात् ।

इत्यनुवर्ततेऽत आह-रोरित्यादि । तेषामिति । भोसादिनिपातानामित्यर्थः ।  
तेन विभाषा भवद्भवदघवतामोच्चावस्येति निष्पन्नानामपि ग्रहणं सिध्य-  
तीति भावः । 'भोभगो' इत्यतः 'भोभगोअघोअपूर्वस्य' इति, 'व्योर्लघु-'  
इत्यतो 'व्यो.' इति, 'लोपः शाकल्यस्य' इत्यतो 'लोपः' इति चानुवर्तते ।  
तत्र वस्यैतत्पूर्वस्याऽसम्भवाद्यकारस्येति लब्धन्तदाह-भोभगोअघोअपू-  
र्वस्य यस्येत्यादि ।

'अहन्' इति सूत्रानुवृत्तेराह-अह इति । अहरह इति । वीप्सायां द्विव-  
चनम् । अहन्-अहन्नित्यलौकिकं वाक्यम् । प्रतिदिनमिति तदर्थः । 'अहर्गणः'-  
दिनसमूहः, ज्यौतिषशास्त्रप्रसिद्धदिनसमूहो वा । 'रोरीति' । सूत्रे 'रः'-पष्ठ्यन्तं,  
'रि'-सप्तम्यन्तम् । 'ढोढेलोपः' इति सूत्रात् लोपपदानुवृत्तेराह-लोप इति ।

ढश्च रश्च ढौ । ढौ लोपयतीति ढ्रलोपः, तस्मिन् ढ्रलोपे इति विग्रहः ।  
फलितमाह-ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोरिति । ढकारलोपनिमित्ते ढकारे,  
रेफलोपनिमित्ते रेफे च परे पूर्वस्याऽणो दीर्घ इति यावत् । उत्तरपदाधिकार-

१ भो भगो अघो अपूर्वक जो यकार उसका लोप हो ढ्र परे रहते ।

२ अहन् शब्द को रेफादेश हो, सुप् परे हो तो नहीं होय । ३ रेफ का लोप हो रेफ परे रहते । ४ ढ और रेफ के लोप में निमित्तभूत जो ढ और रेफ, वे परे रहते उनके पूर्व के अण् को दीर्घ हो ।

पुना रमते । हरी रम्यः । शम्भू राजते । अणः किम् ? । तुढः । वृढः ।  
मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चतुर्थे कृते रो रीति लोपे  
च प्राप्ते ।

विप्रतिषेधे परं कार्यम् ? । ४ । २ ॥

तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् । इति लोपे प्राप्ते । 'पूर्वत्रा-  
ऽसिद्ध'मिति रो रीत्यस्याऽसिद्धत्वादुत्वमेव । मनोरथः ॥

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि णे । १ । १३२ ॥

अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपः स्याद्वलिन तु नञ्समासे ।  
एष विष्णुः । स शम्भुः । अकोः किम् ? । एषको रुद्रः । अनञ्समासे  
किम् ? । असः शिवः । हलि किम् ? । एपोऽत्र ॥

सोऽचि लोपे चेत्यादधूर्णम् णे । १ । १३४ ॥

'स' इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत ।  
सैमामविड्ढि प्रभृतिम् । सैष दाशरथी रामः ॥

इति विसर्गसन्धिः ॥ इति पञ्चसन्धिप्रकरणम् ॥

निवृत्त्यर्थमत्र पूर्वग्रहणं, तेन व्यस्तेऽपि पूर्वस्य दीर्घः सिध्यति । तदाह  
पुना रमते इत्यादि । तुल्येति । अन्यत्र अन्यत्र लब्धावकाशयोः आत्त-  
योरेकत्र ( लक्ष्ये ) समावेशस्तुल्यबलविरोधः ।

सोऽचीति । 'सस्' इति प्रथमान्तानुकरण छत्तपष्ठयन्तम् । 'सुलोप' इति  
वर्ततेऽत आह-स इत्यस्येति । पादशब्देनाऽत्र सूत्रे ऋक्पादवत् श्लोकपा-  
दोऽपि ग्राह्य इत्याशयेन ऋक्पादमुदाहृत्य श्लोकपादमप्युदाहरति-सैष दाश-  
रथिरिति । अत्र लोपाभावे सस्य रुत्वे यत्वे लोपे तस्यासिद्धत्वाद्बुद्ध्यादेरभावे  
नवाक्षरत्वापत्त्याऽष्टाक्षराऽनुष्टुपादभङ्गः स्पष्ट एव । इति विसर्गसन्धिः ।

१ तुल्यबलविरोध होने पर कार्य होता है । २ ककार रहित जो एवत्  
और तत्प्रगल्भ, तदर्थगतसङ्ख्याभिधायी जो सु, उसका लोप हो, हल् पर रहते, नञ्  
समास में न हो । ३ तत् शब्द के सु का लोप हो अच् पर रहते । यदि लोप होने  
पर पाद की पूर्ति होती हो तो । इति विसर्गसन्धिः ॥

# अथ षड्लिङ्गेषु अजन्तापुंलिङ्गप्रकरणम् ।

अर्थवद्धातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १ । २ । ४५ ॥

धातुं प्रत्यय प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वाऽर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात् ।

कृतद्धितसमासाश्च १ । २ । ४६ ॥

कृतद्धितान्तौ समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञाः स्युः ॥

स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसो-

सास्ङ्योस्सुप् ४ । १ । २ ॥

[दधेन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः] ।

सु औ जस् इति प्रथमा । अम् औट् शस् इति द्वितीया । टा भ्याम् भिस् इति तृतीया । डे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी । ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी । ङस् ओस् आम् इति षष्ठी । ङि ओस् सुप् इति सप्तमी ॥

डर्थाप्रातिपदिकात् ४ । १ । १ ॥

प्रत्ययः ३ । १ । १ ॥

अर्थवदिति । लोके अर्थविषयकबोवजनकत्वम् अर्थवत्त्वम् । अत्र अर्थवद्ब्रह्मणं धनं वनमित्यादौ प्रतिवर्णं प्रातिपदिकसंज्ञावारणाय । अहन्तित्यादौ प्रातिपदिकसंज्ञावारणाय 'अधातु'रिति पर्युदासः । क्विबन्तविजन्तेषु धातुत्वानपायात्प्रातिपदिकत्वसिद्धयेऽत्र सूत्रे कृद्ब्रह्मणम् । दाशरथिरित्यादौ तद्धितान्ते प्रत्ययान्तत्वेन पूर्वेणाऽप्राप्तेः प्रातिपदिकत्वसिद्धये तद्धितग्रहणम् । समासपदं तु नियमार्थम् । 'यत्र सङ्घाते पूर्वो भागः पदमुत्तरस्तु प्रत्ययो न, तस्य चेद्भवति

१ धातुभिन्न, प्रत्ययभिन्न, प्रत्ययान्तभिन्न जो अर्थवान् शब्दस्वरूप उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होय ।

२ कृदन्त, तद्धितान्त और समास इनकी प्रातिपदिक संज्ञा होय ।

३ दधेन्त आवन्त और प्रातिपदिक से परे स्वादि प्रत्यय हों ।

४ पञ्चमाध्याय की समाप्ति पर्यन्त इन तीनों सूत्रों का अधिकार जानना ।

१ अय पाठोऽस्माभिर्वर्द्धितः ।

परश्च ३ । १ । २ ॥

—इत्यधिकृत्य । उच्यन्तादावन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः  
प्रत्ययाः स्युः ।

सुपः १ । ४ । १०३ ॥

सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचन-द्विवचन-बहुवचन-  
संज्ञानि स्युः ।

द्वैकयोर्द्विवचनैकवचने १ । ४ । २२ ॥

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः ॥

विरासोऽवसानम् १ । ४ । ११० ॥

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात् । रुक्मविसर्गौ । रामः ॥

सरूपार्णोऽप्येकशेष एकविभक्तौ १ । २ । ६४ ॥

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते ।

तर्हि समास्यैव'इति च नियमाकारः । तेन 'गामभ्याज शुक्ला दण्डेने'त्यादौ  
वाक्यस्य प्रातिपदिकसंज्ञा न भवति ।

उच्यन्तादिति । इय वृत्तिः स्वौजसमौडित्यस्येति ध्येयम् ।

'तिङ्स्त्रीणि त्रीणि' इत्यतः 'त्रीणि त्रीणि' इति, 'तान्येकवचने'त्यतः 'एक-  
वचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः'—इति चानुवर्त्याह—त्रीणि त्रीणीति ।

द्वैकयोरिति । भाष्यकृता-तु 'एकवचनम्' इति सामान्यसूत्रं कृत्वा  
तस्य बाधकं 'द्विवचनोद्विवचनबहुवचने' इति सूत्रं कृत्वा एकपदं प्रत्याख्यातम् ।  
तथा चोच्चैरित्याद्यव्ययेभ्योऽप्येकवचनं सिद्ध्यति । प्रातिपदिकार्थगते एकत्वे  
विवक्षिते एकवचन, द्वित्वे विवक्षिते द्विवचनमिति च सूत्रार्थः ।

शब्दानुशासनेऽभावो भावो वा वर्णानामेव सम्भवतीत्यत आह—वर्णा-  
नामिति । 'वृद्धो यूना'—इत्यत एवेत्यपकृत्यतेऽत आह—सरूपाण्येवेति ।  
तेन जननीपरिच्छेदवाचिनोर्मातृशब्दयोर्नैकशेषः, तयोर्म्यामादिषु सारूप्ये-

१ सुप् के जो तीन २ वचन वे प्रत्येक नाम एक एक करके एकवचन  
द्विवचन बहुवचनसंज्ञक हों । २ द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन हो और एकत्व की  
विवक्षा में एकवचन हो । ३ वर्णों का जो अभाव सो अवसानसंज्ञक हो ।

४ विभक्तित्वावच्छिन्न यावत् विभक्ति परे रहते जिनका समान रूपही देखा  
जाय उनका एक शेष रहे । ( अवशिष्ट का लोप होय ) ।

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ८ । १ । १०२ ॥

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात् ।

इति प्राप्ते ॥

नादिचि ८ । १ । १०४ ॥

आदिचि [ परे ] न पूर्वसवर्णदीर्घः । वृद्धिरेचि । रामौ ॥

बहुषु बहुवचनम् १ । ४ । २१ ॥

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् ॥

चुट् १ । ३ । ७ ॥

प्रत्ययाद्यौ चुट् इतौ स्तः ॥

विभक्तिश्च १ । ४ । १०४ ॥

सुप्तिङौ विभक्तिसञ्ज्ञौ स्तः ॥

ऽप्यौजसादौ वरूष्यात् । 'अकः सवर्णे दीर्घः' इत्यतः 'अकः' इति 'दीर्घः' इति च 'इको यणचि' इत्यतः 'अचि' इति चानुवर्ततेऽत आह-अक इत्यादि । 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' इत्यतो पूर्वसवर्णपदमनुवर्त्याह पूर्वसवर्णोति । 'वृद्धिरेचि' इत्येतद्वाधोद्यतस्यैव 'प्रथमयोः' इति पूर्वसवर्णदीर्घस्य 'नादिचि' इत्यनेन बाधनात् 'वृद्धिरेचि' इति शास्त्रमबाधितमेवेति तच्छास्त्रं प्रवर्तते एवेति भावः ।

'उपदेशेऽज्' इत्यतः 'इत्' इति 'पः प्रत्ययस्य' इत्यतः 'प्रत्ययस्ये'ति 'आदिभिर्दु' इत्यतः 'आदिः' इत्यनुवर्ततेऽत आह-प्रत्ययाद्याविति ।

'तिङ्स्त्रीणि त्रीणि' इत्यतः 'तिङ्' इति 'सुप्' इति सूत्रं चानुवर्ततेऽत आह-सुप्तिङाविति ।

१ अक् से प्रथमा द्वितीया सम्बन्धी अच् परे रहते पूर्वपर के स्थान में पूर्व-सवर्णदीर्घ एकादेश हो । २ अवर्ण से इच् परे, रहते पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं हो । ३ बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन हो । ४ प्रत्यय के आदि के चवर्ग और टवर्ग की स्तुति हो । ५ 'सुप्' और 'तिङ्' की विभक्तिमशा हो ।



न विभक्तौ तुस्माः १ । ३ । ४ ॥

विभक्तिस्थास्तर्गसकारमकारा इतो न स्युः । इति सत्य  
नेत्वम् । रामाः ॥

एकवचनं सम्बुद्धिः २ । ३ । ४९ ॥

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात् ॥

यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३ ॥

यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन्प्रत्यये  
परेऽङ्गसंज्ञं स्यात् ॥

एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः ६ । १ । ६९ ॥

एङन्ताद्भस्वान्ताच्चाऽङ्गाद्वल्लप्यते सम्बुद्धेश्चेत् । हे राम ।  
हे रामौ । हे रामाः ॥

अभि पूर्वः ६ । १ । १०७ ॥

अकोऽभ्यचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । रामम् । रामौ ॥

‘उपदेशेऽङ्’ इत्यतः ‘इत्’ इत्यनुवृत्तेराह-इत इति । इत्संज्ञका  
इत्यर्थः । ‘सम्बोधने च’ इत्यतः ‘सम्बोधने’ इति प्रातिपदिकार्थलिङ्ग-’ इति  
सूत्रतः ‘प्रथमा’ इति चानुवर्त्योक्तं-सम्बोधने इत्यादि ।

यस्मादिति । अत्र तदादिग्रहणं च ‘भवामि’ ‘भविष्यामि’ इत्यादौ  
विकरणविशिष्टस्याङ्गसंज्ञार्थम् । लोपो व्योर्वलि’ ‘हल्लघ्वान्म्य’ इत्याभ्यां  
लोपद्वययोगानुवृत्तिः । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदाद्यं गत्योपस्थितौ तदन्त-  
विधिस्तत्फलितमर्थमाह ‘एङन्तादित्यादि । सम्बुद्धेरवयवश्चेदित्यर्थः ।

‘इको यण्-’ इत्यतोऽचीति ‘एकः पूर्वपरयोः’ इति चानुवर्ततेऽत आह-  
अचीति । ‘उपदेशेऽङ्’ ‘षः प्रत्ययस्य’ ‘आदिजिडु’-इत्येतेभ्यः ‘इत्’ प्रत्य-

१ विभक्तिस्थ तवर्ग सकार मकार की इत्संज्ञा नहीं हो । २ सम्बोधन में  
प्रथमा का जो एकवचन ( सु ) उसकी सम्बुद्धिसंज्ञा हो । ३ जो प्रत्यय जिससे  
क्रिया जाय तदादि जो शब्दस्वरूप वह उस प्रत्यय के परे रहते अङ्गसंज्ञक होता  
है । ४ एङन्त हस्वान्त जो अङ्ग उससे परे सम्बुद्धेरवयव हल् का लोप हो । ५ अच्  
से अम् में जो अच् वह पर रहते पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो ।

लशक्वेवतद्धिते १ । ३ । ८ ॥

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः ॥

तराञ्छसो नः पुंसि ६ । १ । १०३ ॥

पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात्पुंसि ।

अट्कुप्वाङ्नुम्ववायेऽपि ८ । ४ । २ ॥

अट् कवर्गः पवर्ग आङ् नुम्-एतैर्व्यस्तैर्व्यासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात्समानपदे । इति प्राप्ते ।

पदान्तस्य ८ । ४ । ३७ ॥

पदान्तस्य नस्य णत्वं न स्यात् । रामान् ॥

टाडंसिङ्साभिनात्स्याः ७ । १ । १२ ॥

अदन्ताद्यादीनामिनादयः स्युः । णत्वम् । रामेण ॥

यस्य 'आदि' इति चानुवर्तत इत आह-तद्धितवर्जेति । तद्धितभिन्नप्रत्ययाद्या इति तदर्थः । प्रकृते रोमशः सिध्मलः नौका इत्यादौ शकारादेरित्सञ्ज्ञाया व्यावृत्तये अतद्धित इति । तच्छब्देन पूर्वसवर्णदीर्घ परामृशन् व्याचष्टे-पूर्वसवर्णदीर्घादिति । 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इति सूत्रमनुवर्तते इत आह-रषाभ्यामिति । निमित्तानधिकरणनिमित्तिमत्पदाऽघटितत्वसमानपदत्वम् । 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इत्यतो 'न' इत्यनुवर्त्याह-नस्येत्यादि । अतो भिन्न- इत्यतः 'अतः' इत्यनुवर्तते, 'अङ्गस्य' इत्यधिक्रियते । विशेषणेन च तदन्तविधिरित्याह- अदन्तादिति ।

१ तद्धितवर्ज प्रत्यय का आदि जो लकार शकार और कवर्ग उनकी इत्सज्ञा हो । २ पूर्वसवर्णदीर्घ से परे जो शस् का सकार उसको नकार आदेश हो । ३ अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इनका अलग २ या जितने का सम्भव हो उनका-व्यवधान होने पर भी रेफ वकार से परे जो नकार उसको णकार हो, समानपद में ।

४ पदान्त के नकार को णत्व नहीं हो । ५ अदन्त अङ्ग से परे जो 'टा' 'डसि' 'डस्' उनके स्थान में क्रमसे 'इन' 'आत्' 'स्य' ये आदेश हों ।

सुपि च ७ । ३ । १०२ ॥

यजादौ सुप्यतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात् । रामाम्याम् ।

अनो मिस्र ऐस् ७ । १ । ९ ॥

[ अकारान्तादङ्गाद्विस्र ऐस् स्यात् ] अनेकोऽङ्गित्सर्वस्य । गमैः ।

डैर्यः ७ । १ । १३ ॥

अतोऽङ्गात्परस्य डैर्यदेशः स्यात् ।

स्थानिविधादेशोऽनलिवधौ १ । १ । ५६ ॥

आदेशः स्थानिवस्थानं तु स्थान्यङ्गाश्रयविधौ । इति स्थानि-  
वत्त्वात् 'सुपि चे'ति दीर्घः । रामाय । रामाम्याम् ॥

बहुवचने अलयेत् ७ । ३ । १०३ ॥

जलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः स्यात् । रामेभ्यः ।  
सुपि किम् ? । पचध्वम् ॥

सुपि-सप्तम्यन्तं, च-अव्ययपदम् । 'अतो दीर्घो यजी'त्वतो यजी-  
त्यनुवर्तते । यजीत्यल्प्रहणात्-'यस्मिन्निविधिस्तदादावलप्रहणे' इति परिभाषया  
'तदादिविधिरत आह-यजादाविनि । अतः-पचम्यन्तं, मिस्रः-पष्ठ्यन्तम्,  
ऐस्-प्रथमान्तम् । 'एम्' इत्यत्र 'सौत्रत्वाच्च स्त्वविसर्गौ । अत्र 'एम्' तु न  
कृतः, अतो गुणे इति पररूपापत्तेः । यदि तु एकारोच्चारणसाधनार्थान्न पर-  
रूपम्, अन्यथा इसमेव विदध्यात्, गुणेनोक्तलपसिद्धिरित्युच्यते तर्हि नय-  
'रित्यादौ वेदे तदावश्यकमिति गृहाण । डे-पष्ठ्यन्तं, यः-प्रथमान्तम् ।  
स्थानिवत्-अव्ययपदं (प्रथमान्तम्), आदेशः-प्रथमान्तम्, अनलिवधौ-  
सप्तम्यन्तम् । बहुवचने-सप्तम्यन्तं, झलि-सप्तम्यन्तम्, एत्-प्रथमान्तम् ।

१ यजादि सुप् परे रहते अदन्त अङ्ग को दीर्घ हो । २ अदन्त अङ्ग से  
परे जो मिस्र उसके स्थान में ऐस् आदेश हो । ३ अदन्त अङ्ग से परे 'डे' जो  
उसके स्थान में 'य' आदेश हो । ४ आदेश स्थानिवत् (स्थाननिवृत्तिधर्मवान्)  
हो । परन्तु स्थानी सम्बन्धी जो अल् तदाश्रयविधि कर्त्तव्य हो तो स्थानिवद्भाव  
नहीं हो ।

५ जलादि बहुवचन सुप् परे रहते अदन्त अङ्ग को एकार आदेश हो ।

वाँऽवसाने ८ । ४ । ५६ ॥

अवसाने श्लो० चरो वा स्युः । रामात् । रामाद् । रामाभ्याम् ।  
रामेभ्यः । रामस्य ॥

ओसि च ७ । ३ । १०४ ॥

ओसि परेऽतोऽङ्गस्यैकारः स्यात् । रामयोः ॥

ह्रस्वनद्यापो नुट् ७ । १ । ५४ ॥

ह्रस्वान्तानद्यन्तादावन्ताच्चाङ्गात्परस्याभो नुडागमः स्यात् ॥

नामि ६ । ४ । ३ ॥

नामि परेऽजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यात् । रामाणाम् । रामे ।  
रामयोः । सुपि एत्वे कृते ॥

आदेशप्रत्यययोः ८ । ३ । ५९ ॥

इण्कवर्गाभ्यां परस्याऽपदान्तस्याऽऽदेशः प्रत्ययावयवश्च यः  
सकारस्तस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव पः ।  
रामेषु । एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः ॥

वावसाने । वा-अन्ययपदम्, अवसाने-सप्तम्यन्तम् ।

ओसि-सप्तम्यन्तं, च-अन्ययपदम् । ह्रस्वश्च नदी च आप् च-एषां  
समाहारः ह्रस्वनद्याप्, तस्मात्-ह्रस्वनद्यापः-पञ्चम्यन्तं, नुट्-प्रथमान्तम् ।

नामि-सप्तम्यन्तम् । आदेशप्रत्यययोः-पठ्यन्तम् । आदेशरूपो यः  
सकारः, प्रत्ययावयवश्च यः सकारस्तस्य मूर्धन्यादेश इत्यर्थः । तत्र ऋदुरणां  
मूर्धन्यानिक्त्वात्सर्वेषां प्राप्तावाह-ईषदिति । 'ईषद्विवृतमूष्मणा'-मित्युक्तेरिति  
भावः । एवं-रामशब्दवत् । अदन्ताः-अदन्ताः पुंलिङ्गा । 'बो-यो' इति

१ अवसान में श्लो० के स्थान में चर् हों विकल्प करके । २ ओम् परे रहते  
अदन्त अङ्ग को एकार आदेश हो । ३ ह्रस्वान्त नद्यन्त और आवन्त जो अङ्ग उससे  
परे जो आम् उसको नुट् का आगम हो । ४ अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो नाम् परे  
रहते । ५ इण् कवर्ग से परे जो अपदान्त आदेशरूप सकार और प्रत्ययावयव  
सकार उसको मूर्धन्य (षकार) आदेश हो ।

सर्वादीनि सर्वनामानि १ । १ । २७ ॥

[सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः] सर्व विश्व उभ

उभय उत्तर उत्तम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम ।

पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराऽधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ।  
स्वमज्ञातिधनान्वयायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ।

त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम् ॥

जसैः शी ७ । १ । १७ ॥

अदन्तात्सर्वनाम्नो जसः शी स्यात् । अनेकात्त्वात्सर्वादेशः ।

सर्वे ॥

सर्वनाम्नः स्मै ७ । १ । १४ ॥

अतः सर्वनाम्नो डे इत्यस्य स्मै स्यात् । सर्वस्मै ।

शेषः । सर्वादीनि-प्रथमान्तं, सर्वनामानि-प्रथमान्तम् । तद्गुणसंविज्ञानो-  
ऽयं बहुव्रीहिः, 'अदः सर्वेषा'मित्यादि निर्देशात् ।

पूर्वपरेति । पूर्वादीनि व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञानि स्युरिति  
गणसूत्रार्थः । स्वमिति । ज्ञानिधनान्वयाची ( आत्माऽऽत्मीयार्थवाची )  
स्वशब्दः सर्वनामसंज्ञः स्यात् । अन्तरमिति । बाह्ये परिधानीये चाऽर्थे-  
ऽन्तरशब्दः सर्वनामसंज्ञो भवतीति गणसूत्रार्थः ।

'अतो मिसु'-इत्यतो 'अतः' इति, 'सर्वनाम्नः स्मै' इत्यतः 'सर्वनाम्नः'  
इति पदद्वयमनुवर्तते, विशेषणेन च तदन्तविधिरित्यत आह-अदन्तादित्यादि ।

'अतो मिसु' 'डैर्यः' इत्याभ्यां अतः 'डेः' इति, चानुवर्त्याह-अतः

१ सर्वादि जो शब्दस्वरूप सो सर्वनामसंज्ञक हो । २ पूर्व पर अवर दक्षिण  
उत्तर अपर अधर इनकी व्यवस्था और असंज्ञा में सर्वनाम संज्ञा हो । ३ ज्ञाति  
धन से अन्य जो ( आत्मा आत्मीय ) अर्थ उसमें स्वशब्द की सर्वनामसंज्ञा हो ।  
४ बहिर्योग और उपसंव्यान ( पहिरना ) अर्थ में अन्तरशब्द की सर्वनाम संज्ञा  
हो । ५ अदन्त सर्वनाम से परे जो जम् उसके स्थान में शी आदेश हो । ६ अदन्त  
सर्वनाम में परे जो 'डे' उसको 'स्मै' आदेश हो ।

डसिङ्योः साँत्सिनौ । ७ । १ । १५ ॥

अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः । सर्वस्मात् ॥

ओमि सर्वनाम्नः सुट् । ७ । १ । ५२ ।

अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्याऽऽमः सुडागमः स्यात् ।  
इत्त्वप्रत्यये । सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् । शेषं रामवत् । एवं विश्वादयोऽप्य-  
दन्ताः । उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः । उभौ २ । उभा-  
भ्याम् ३ । उभयोः २ । तस्येह पाठोऽकजर्थः । उभयशब्दस्य  
द्विवचनं नास्ति । उभयः । उभये । उभयम् । उभयान् । उभयेन ।  
उभयैः । उभयस्मै । उभयेभ्यः । उभयस्मात् । उभयेभ्यः । उभयस्य ।  
उभयेषाम् । उभयस्मिन् । उभयेषु । उतरडतमौ प्रत्ययौ । 'प्रत्यय-

सर्वनाम्न इति । अवर्णान्तादिति । अवर्णान्तादज्ञापरस्येत्यर्थः, तेन  
येषां तेषामित्यादौ सुट् सिद्धिः । एत्वप्रत्यये इति । एत्वं-‘बहुवचने शल्ये’-  
दित्यनेन, एत्वम्-‘आदेशप्रत्यययो’रित्यनेनेति विवेकः ।

न तु सर्वनामसंज्ञाकार्यमेकवचनबहुवचनयोरेवेति नित्यं द्विवचनान्तोभ-  
शब्दस्य सर्वादिषु पाठ इह व्यर्थोऽत आह-तस्येति । तस्य-नित्यद्विवच-  
नान्तस्य उभशब्दस्य । इह-सर्वादिगणे । अकजर्थः-‘अव्ययसर्वनाम्नामक-  
चप्राक्टे’रित्यनेनोभकावित्यादावकजर्थः । भाष्ये ‘उभयो मणिः’ ‘उभये देव-  
मनुष्याः’ इति एकवचने बहुवचनं च उभयशब्दप्रयोगो दृश्यते, न तु द्विवचने  
तत्प्रयोगोऽत उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्तीत्यभिप्रायः । तदेवम्-उभयः,  
उभये-प्रथमा । उभयम्, उभयान्-द्वितीया । उभयेन, उभयैः-तृतीया ।  
एवमप्रेऽपि । उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्तीति कैयटः । अस्तीति हरदत्तः ।  
इति=इत्यनया परिभाषया, तदन्ताः=उतर-डतम-प्रत्ययान्ताः कतर-

१ अदन्त सर्वनाम से परे जो ‘डसि’ और ‘डि’ उसको क्रम से ‘स्मात्’  
‘स्मिन्’ आदेश हो । २ अवर्णान्त अङ्ग से परे सर्वनाम से विहित जो आम्  
उसको सुट् का आगम हो ।

ग्रहणे तदन्तग्रहण'मिति तदन्ता ग्राह्याः । नेम इत्यर्थे । समः सर्व-  
पर्यायः । तुल्यपर्यायस्तु न, 'यथासह्यमनुदेशः समाना'मिति जापकात् ॥

पूर्वपरऽवरदक्षिणोत्तराऽपराऽधराणि व्यवस्थाया-

ससञ्ज्ञायाम् । १ । १ । ३४ ।

एतेषां व्यवस्थायामसञ्ज्ञायां सर्वनामसञ्ज्ञा गणसूत्रात्सर्वत्र या  
ग्राप्ता सा जसि वा स्यात् । पूर्व । पूर्वाः । असञ्ज्ञाया किम् ? ।  
उत्तराः कुरवः । स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था- ।  
व्यवस्थाया किम् ? । दक्षिणा गाथकाः । कुशला इत्यर्थः ॥

कतम-यतर-यतम-ततर-ततम-एकतर-एकतमशब्दाः सर्वादिगणे बोध्या  
इत्यर्थः ।

सर्वपर्यायः-सर्वार्थकः समशब्दोऽत्र गणे ग्राह्य इत्यर्थः । तुत्प्रार्थकस्य  
सर्वादिगणे पाठे तु 'समाना'मित्यत्र 'समेपा'मिति स्यादिति भावः ।

एतेषां=पूर्वादिशब्दानां, गणसूत्रात्='पूर्वपरपरे'त्यादिप्रबोक्तगण-  
सूत्रात्, सर्वत्र=सर्वासु विभक्तिषु, या सर्वनाम सञ्ज्ञा ग्राप्ता सा जसि परतो  
विकल्पेन भवतीत्यर्थः । उत्तरा कुरव इति । देशविशेषस्य सञ्ज्ञेयम् ।  
(रुसका यूकेन प्रदेश) । स्वाभिधेयेति । अपेक्षयते इति-अपेक्षः । कर्मणि  
घञ् । स्वस्य अभिधेय स्वाभिधेयः, स्वाभिधेयस्य-अपेक्षः-स्वाभिधेयाऽपेक्षः,  
अवधेर्नियमः-अवधिनियमः, स्वाभिधेयापेक्षाश्चासाववधिनियमश्च-स्वाभिधेया-  
पेक्षावधिनियम इति विग्रहः । तथा च स्वस्य=पूर्वादिशब्दस्य, अभिधेयः=  
वाच्यो यो दिग्देशकालरूपोऽर्थः, तेन अपेक्ष्यमाणो यो अवधेर्नियमः-स एव  
व्यवस्थेत्यर्थः । यथा 'प्रयागात्काशी पूर्वे'त्यत्र पूर्वशब्दार्थेन 'कुतः पूर्वे'त्यवधे-  
नियमस्य अपेक्षणाद्भवति तत्र व्यवस्थेत्यवधेयम् ।

-१ पूर्व पर अवर दक्षिण उत्तर अपर अधर इन शब्दों की व्यवस्था में और  
अमज्ञा में सर्वत्र गणसूत्र करके नित्य पाई जो सर्वनाम सज्ञा सो जस् परे रहते  
विकल्प करके हो । २ स्व करके लेना पूर्वादि शब्द, उनका जो अभिधेय-अर्थ,  
उससे अपेक्ष्यमाण जो अवधि का नियम-मो व्यपेक्षा कहाता है ।

**स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । १ । १ । ३५ ।**

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य या प्राप्ता सञ्ज्ञा सा जसि वा स्यात् । स्वे । स्वाः । आत्मीया, आत्मान इति वा । ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः । ज्ञातयोऽर्था वा ॥

**अन्तरं बहिर्योगोपसंन्धानयोः । १ । १ । ३६ ॥**

बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य या प्राप्ता सञ्ज्ञा सा जसि वा स्यात् । अन्तरे अन्तरा वा गृहाः । बाह्या इत्यर्थः । अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः । परिधानीया इत्यर्थः ॥

**पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा । ७ । १ । १६ ॥**

एभ्यो ङसिङयोः स्मास्मिनौ वा स्तः । पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे । एवं परादीनाम् । शेषे सर्ववत् ॥

ज्ञातिधनान्यति । 'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोऽस्त्रिया धने' इति कोशप्रामाण्यात्स्वशब्दस्य आत्मात्मीयज्ञातिधनानि अर्थाः, तत्र ज्ञातिधनातिरिक्ते आत्मात्मीयरूपार्थे स्वशब्दस्य सर्वासु विभक्तिषु 'स्वमज्ञातिधनाख्याया'मिति गणसूत्रेण नित्यं सर्वनामसञ्ज्ञा प्राप्ता सा जसि परतो विकल्पेन भवतीति सूत्रार्थः ।

ज्ञातीति । ज्ञातिधनवाचिनः स्वशब्दस्य तु जसि 'स्वाः' इत्येव रूपं भवतीत्यर्थः । प्राप्ता=अन्तरं बहिर्योगोपे'ति पूर्वोक्तेन गणसूत्रेण सर्वत्र नित्यं प्राप्ता । सेयं सर्वनामसञ्ज्ञा जसि परतो विकल्पेन भवतीत्यर्थः ।

एभ्यः=पूर्वोक्तेभ्यो नवभ्यः पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराऽधरस्वाऽन्तरशब्देभ्यः । परादीनां- 'शब्दानां रूपाणि बोध्यानी'ति शेषः । उक्तसञ्ज्ञाः=सर्वनामसञ्ज्ञा ।

१ ज्ञातिधन स अन्य जो (आत्मा आत्मीय) अर्थ उसमें स्वशब्द की गणसूत्र से सर्वत्र नित्य पाई जो सर्वनामसंज्ञा सो जस् परे रहते विकल्प से हो ।

२ बाह्य और परिधानीय अर्थ में अन्तरशब्द की गणसूत्र से सर्वत्र नित्य पाई जो सर्वनामसञ्ज्ञा वह जस् परे रहते विकल्प से हो । ३ पूर्वादि नौ शब्दों से परे जो ङसि और ङि उनको स्मात् स्मिन् आदेश विकल्प से हो ।



प्रथमचरमतयात्पार्थक्यतिपथनेमाश्च । १ । १ । ३३ ।

एते जसि उक्तसञ्ज्ञा वा स्युः । प्रथमे । प्रथमाः । तयः  
प्रत्ययः । द्वितये । द्वितयाः । शेषं रामवत् । नेमे । नेमाः । शेषं  
सर्ववत् । \*तीयस्य ङित्सु वा । द्वितीयस्मै । द्वितीयायेत्यादि ।  
एवं तृतीयः । निर्जरः ॥

जरायां जरसन्यतरस्याम् । ७ । २ । १०१ ।

जराशब्दस्य जरस् वा स्यादजादौ विभक्तौ । \*पदाङ्गाधिकारे  
तस्य (च) तदन्तस्य च । निर्दिश्यमानस्यादेशः भवन्ति ।

तय इति । प्रत्ययः = सङ्ख्याया अवयवे तय'वतिशास्त्रेण विहितः ।  
एवञ्च 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहण'मिति तयप्रत्ययान्तानां द्वितय-द्वय-त्रितय-  
त्रय-चतुष्टय-पञ्चतय-षड्द्वय-सप्ततयादीनां ग्रहणं बोध्यम् । तीयस्येति ।  
तीयप्रत्ययान्तस्य ङित्त्वचने परतः सर्वनामसञ्ज्ञा वा स्यादित्यर्थः ।

निर्जरः = देवः । ननु 'जरायां जर'सित्यनेन जराशब्दस्य जरस् विधीयते,  
निर्जरशब्दे तु न जराशब्दः किन्तु जरशब्दस्तत्रेत्यत आह-पदाङ्गाधिकारे  
इति । तस्य = तत्सूत्रोच्चरितस्य, तदन्तस्य = तत्सूत्रोच्चरितान्तस्य । 'जरायां  
जरस्'-इति चाङ्गाधिकारपठितं शास्त्रमतो 'जरान्तस्याऽपि निर्जरशब्दस्य  
जरसादेशः सुलभ इत्याशयः । नन्वेवमनेकाल्त्वान्निर्जरशब्दस्य स्थाने  
जरसादेशः प्राप्नोति, तस्य जराशब्दान्तत्वादत आह निर्दिश्येति । सूत्रे  
उच्चार्यमाणस्य जराशब्दस्यैवादेश इत्यर्थः । षष्ठीप्रकृतिजन्यप्राथमिकोपस्थि-  
तिविषयत्वञ्च निर्दिश्यमानत्वम् । प्रकृते च 'जरायां' इति षष्ठी । नन्वेवमपि-  
निर्दिश्यमानत्वं प्रकृते जराशब्दस्य न तु जरशब्दस्य, निर्जरशब्दे तु न

१ प्रथम, चरम, तयप्रत्ययान्तशब्द और अल्प, अर्द्ध, कतिपय, नेम इनकी  
जस् परे रहते सर्वनामसञ्ज्ञा विकल्प से हो ।

२ तीयप्रत्ययान्त की ङित्त्वचन परे रहते सर्वनामसञ्ज्ञा विकल्प से हो ।

३ जराशब्द को जरस् आदेश हो विकल्प करके अजादिविभक्ति परे रहते ।

४ पदाङ्गाधिकार में और अङ्गाधिकार में जो कार्य कहे हैं वे जिसको कहे हैं  
उसको हों और वह अन्त में जिसके हैं उसको भी हों ।

५ षष्ठीप्रकृतिजन्य प्राथमिक उपस्थिति विषय जो शब्द उसको आदेश होता है ।

एकदेशविकृतमनन्यवदिति जरशब्दस्य जरस् । निर्जरसौ ।  
निर्जरस इत्यादि । पक्षे हलादौ च रामवत् ।

विश्वपाः ।

दीर्घाज्जसि च । ६ । १ । १०६ ।

दीर्घाज्जसि इचि च परे प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घो न स्यात् ।

विश्वपौ । विश्वपाः । हे विश्वपाः । विश्वपाम् । विश्वपौ ।

सुडेनपुंसकस्य । १ । १ । ४३ ।

स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य ॥

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने । १ । ४ । १७ ।

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात् ॥

यच्चि भम् । १ । ४ । १८ ।

यकारादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु  
पूर्वं भसंज्ञं स्यात् ।

जरशब्दः किन्तु जरशब्दोऽत आह-एकदेशेति । एकदेशेन विकृतं=  
विकारभाष्यमन्यवशं भवतीत्यर्थः । अत एव च्छिअपुच्छेऽपि शुनि इवत्व-  
व्यवहारो भवत्येव । प्रकृते च गोत्रियोरिति ह्रस्वेन विकृतमपि जरेति जरा-  
शब्दतया गृह्यते इति जरशब्दस्य जरसादेशो भवनीत्याशयः । पक्षे=  
जरसादेशाभावपक्षे । हलादौ=भ्यामादौ च । विश्वं पातीति-विश्वपाः=  
विष्णुः शिवश्च । सुडिति । प्रथमैकवचनमारभ्य औट्कारपर्यन्तं सुट् प्रत्या-

१ दीर्घ से जस् और इच् परे रहते पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं हो ।

२ स्वादि पाँच वचनों की सर्वनामस्थान संज्ञा हो । नपुंसकलिङ्ग को छोड़कर । ३ 'सु' को आदि लेकर 'कप्' प्रत्यय पर्यन्त जो सर्वनामस्थानभिन्न प्रत्यय, वे परे रहते पूर्व की पदसंज्ञा हो । ४ 'सु' को आदि लेकर कप्प्रत्यय पर्यन्त जो सर्वनामस्थानभिन्न यकारादि ओर अजादि प्रत्यय, वे परे रहते पूर्वकी भसंज्ञा हो ।

आ कडारादेका सञ्ज्ञा । १ । ४ । १ ।

इत ऊर्ध्व 'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्रागेकरयैकैव संज्ञा ज्ञेया । या पराऽनवकाशा च ॥

आलो धातोः । ६ । ४ । १४० ।

आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः स्यात् ।

अलोऽन्त्यस्य । विश्वपः । विश्वपा । विश्वपाभ्यामित्यादि । पञ्च शङ्खध्मादयः । धातोः किम् ? । हावान् ।

हरिः । हरी ।

जसि च । ७ । ३ । १०९ ॥

ह्रस्वान्तस्याऽङ्गस्य गुणः स्याज्जसि । हरयः ॥

ह्रस्वस्य गुणः । ७ । ३ । १०८ ॥

ह्रस्वस्य गुणः स्यात्सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् । हरी । हरीन् ।

शेषो घ्यस्सखि । १ । ४ । ७ ।

'शेष' इति स्पष्टार्थम् । अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं

हारः, नतु सुडागमस्याऽत्र ग्रहणम्, 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धावित्यादा' वसम्बुद्धाविति पर्युदाससामर्थ्यात् । शङ्खध्माः=शङ्खवादकः । हाहाः । गन्धर्वविशेषः । हाहा हूहूथैवमाश्वा गन्धर्वास्त्रिदिवौकसा'मित्यमरः ।

'ह्रस्वस्य गुण' इत्यनुवर्तते, अङ्गस्येति चाधिकृतं, विशेषणेत्यतः तदन्तविधिस्तदाह-ह्रस्वाः तस्येति । 'सम्बुद्धौ चे'त्यतः सम्बुद्धाविति वर्तते । तदाह-सम्बुद्धाविति । स्पष्टार्थमिति । 'आ कडारादेका' सञ्ज्ञेत्येकसञ्ज्ञाऽ-

१ प्रथमाध्याय के चतुर्थ पाद के प्रारम्भ से लेकर 'कडाराः कर्मधारये' ( २-२-३८ ) इस सूत्र तक एक की एक ही संज्ञा हो ।

२ आकारान्त जो धातु तदन्त जो भसञ्ज्ञक अङ्ग उसका लोप हो ।

३ ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण हो जस् परे रहते । ४ ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण हो सम्बुद्धि परे रहते । ५ ह्रस्व जो हकार उकार तदन्त जो सखिमित्र अङ्ग उसकी विसञ्ज्ञा हो ।

सखिवर्ज घिसञ्ज्ञं स्यात् ॥

आडो नाऽस्त्रियाम् । ७ । ३ । १२० ॥

घेः परस्याडो ना स्यादस्त्रियाम् । आडिति टासञ्ज्ञा । हरिणा ।

हरिभ्याम् । हरिभिः ।

घेडिति<sup>२</sup> । ७ । ३ । १११ ॥

घिसंज्ञकस्य डिति सुपि गुणः स्यात् । हरये । हरिभ्याम् । हरिभ्यः ।

डसिडसोश्च । ६ । १ । ११० ॥

एडो डसिडसोरिति परे पूर्वस्यपमेकादेशः स्यात् । हरेः २ ।

हर्योः २ । हरीणाम् ॥

अच्च घेः । ७ । ३ । ११९ ॥

इदुभ्यामुत्तरस्य डेरौत् स्यात्, घेरन्तादेशश्चाऽकारः । हरौ ।

हरिषु । एवं कव्यादयः ॥

अनैङ् सौ । ७ । १ । ९३ ॥

सख्युरङ्गस्याऽनडादेशः स्यादसम्बुद्धौ सौ ॥

घिकारादेवैकसञ्ज्ञायाः ( हस्वे एव घिसञ्ज्ञायाः ) सिद्ध्या शेषग्रहणं स्पष्टार्थ-  
मित्यर्थः । 'अच्च घे'रित्यतो 'घे'रित्यनुवर्तते, तदाह-घेः परस्येति ।

'सुपि चे' त्यतः 'सुपी'ति, 'हस्वस्य गुण' इत्यतो 'गुण' इति चानु-  
वर्ततेऽत आह-सुपि गुण इति । अच्च घेः । अत्-प्रथमान्तं, घे-  
पष्ठ्यन्तम् । 'इदुभ्या'मिति, 'डेरौ'मित्यतो 'डे'रिति, 'औ'दिति चानुवर्तते  
तदाह-इदुभ्यामिति । 'सख्युरसम्बुद्धा'विति वर्तते, अङ्गस्येति चाधि-

१ घिसञ्ज्ञक से परे जो आड् अर्थात् टाविभक्ति उनको 'ना' आदेश हो ।

२ एट् से डसिडससम्बन्धी अकार परे रहते पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप  
एकादेश हो । ३ इकार उकार से परे जो डि उसको औत् आदेश हो, और  
घिसञ्ज्ञके के अन्त में अकार आदेश हो । ४ सखिरूप जो अङ्ग उनको अनङ्  
आदेश हो सम्बुद्धिमित्र सु परे रहते ।

अलोऽन्त्यात्पूर्वं उपधा । १ । १ । ३५ ॥

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात् ॥

सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ । ६ । ४ । ८ ॥

नान्तस्योपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

अपृक्त एकाल् प्रत्ययः । १ । २ । ४१ ॥

एकाल्प्रत्ययो यः सोऽपृक्तनञः स्यात् ॥

हल्ङ्योऽन्यो दीर्घात्पुत्तिस्यपृक्तं हल् । ६ । १ । ३८ ॥

हल्ङ्तात्परं दीर्घा यौ उच्चायौ नदन्तात् परं ध्रुतिस्त्रीध्वेनद्रपृक्ते  
हल्ङ्यते ॥

नं लोपः प्रातिपदिकान्तस्य । ८ । २ । ७ ॥

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः स्यात् । सत्त्वा ॥

सम्बुद्धिरसम्बुद्धौ । ७ । १ । ९२ ॥

सम्बुद्धात्परं सम्बुद्धिर्वर्जं सर्वनामस्थानं णिङ्गत्स्यात् ॥

अचो ञ्णिनि ७ । २ । ११५ ॥

कृतन्तदाह - सम्बुद्धिरिति । अन्त्यालः पूर्वोऽपि साजात्यादर्ण एव प्रात्य  
इत्याह वर्ण इति । 'द्वलोपे' इत्यतो 'दीर्घ' इति, 'नोपधाया' इति च  
वर्तते, 'अङ्गस्थे'त्यधिकृतं, विशेषणेन तदन्तविधिसंज्ञाह - नान्तस्येति ।

नेति छत्रपठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, प्रातिपदिकेति छत्रपठ्यन्तम् ।

१ अन्त्य अल् से जो पूर्व वर्ण उसकी उपधा संज्ञा हो । २ नान्त की उपधा  
को दीर्घ हो, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहने । ३ एक अल् लृज जो प्रत्यय  
उसकी अपृक्तसंज्ञा हो । ४ हल्ङ्ता से परे जो सु ति सि का अपृक्त हल् उमका  
लोप होय । और दीर्घ जो डी आप् उनसे परे जो सु का अपृक्त हल् उसका लोप  
होय । ५ प्रातिपदिकसंज्ञक जो पद उसके अन्त का जो नकार उसका लोप होय ।  
६ सखिरूप अङ्ग से परे जो सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान सो णिङ्ग होय ।

अजन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्याज्जिति णिति च परे । सखायौ ।  
 सखायः । हे सखे । सखायम् । सखायौ । सखीन् । सख्या । सख्ये ।  
 ख्यत्स्यात्परस्य । ६ । १ । ११२ ॥

खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य  
 ङसिङ्सोरत उत्स्यात् । सख्युः । सख्युः ॥

औत् । ७ । ३ । ११८ ॥

इतः परस्य डेरौत्स्यात् । सख्यौ । शेषं हरिवत् ॥

पतिः समास एव । १ । ४ । ८ ॥

पतिशब्दः समास एव घिसञ्ज्ञः स्यात् । पत्ये । पत्युः २ । पत्यौ ।  
 शेषं हरिवत् । समासे तु भूपतये । कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः ॥

बहुगणवतुडति संख्या । १ । १ । २३ ॥

[ एते संख्यासञ्ज्ञाः स्युः । ]

डति च । १ । १ । २५ ॥

उत्पन्ता संख्या षट्सञ्ज्ञा स्यात् ॥

अन्तस्य षष्ठ्यन्तम् । 'मृजेर्बृद्ध'रित्यतो 'वृद्धि'रिति वर्तते, 'अङ्गस्ये'त्यधिकृत-  
 विशेष्यं, विशेषणेन तदन्तविधिरत आह अजन्ताङ्गस्येति । 'ख्ये'तिकृत-  
 यणादेशयोः खि-खी-शब्दयोरनुकरणम्, एवं 'त्ये'त्यपि कृतयणादेशयोः  
 ति-ती-शब्दयोर्ग्रहणम्, अकारस्तृच्चारणार्थस्तदाह कृतयणेति ।

'शेषो घ्यसखी'त्यतो 'घी'त्यनुवर्ततेऽत आह घिसञ्ज्ञ इति ।  
 'ष्णन्ता षडि'त्यतः 'षडि'ति, 'बहुगणे'त्यतः 'सङ्ख्ये'ति चानुवर्तते, विशेषणेन  
 तदन्तविधिस्तदाह-उत्पन्ता इति ।

१ अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो, निव् णित्प्रत्यय परे रहते ।

२ कृतयणादेश जो ह्रस्व खि शब्द और ह्रस्व ति शब्द, एव कृतयणादेश जो दीर्घ  
 खीशब्द और तीशब्द उनसे परे जो ङसि ङस् का अकार उसको उकार आदेश  
 हो । ३ इकार से परे जो डि उसको औत् आदेश हो । ४ पति शब्द की समास  
 में ही घिसञ्ज्ञा होय । ५ बहु शब्द और गण शब्द तथा वतुप्रत्ययान्त और  
 डतिप्रत्ययान्त इनकी संख्या संज्ञा हो । ६ डतिप्रत्ययान्त जो संख्या वाचकशब्द  
 सो षट्सञ्ज्ञा हो ।



त्यदादीनामः । ७ । २ । १०२ ॥

एषामकारोऽन्तादेशः स्याद्विमक्तौ । द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः ।  
द्वौ । द्वौ । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः ॥  
पाति लोकमिति पपीः-सूर्यः ॥

दीर्घाज्जसि च । ६ । १ । १०६ ॥

दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः । पप्यौ २ । पप्यः ।  
हे पपीः । पपीम् । पपीन् । पप्या । पपीभ्याम् ३ । पपीभिः । पप्ये ।  
पपीभ्यः २ । पप्यः २ । पप्योः । दीर्घत्वान्न नुट् । पप्याम् । डौ  
तु सवर्णदीर्घः । पपी । पप्योः । पपीषु । एवं वातप्रम्यादयः ।

बह्वयः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी ॥

यू स्यात्स्यौ नदी । १ । ४ । ३ ॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः । \*प्रथमलिङ्गश्रद्धया  
च । पूर्व स्यात्स्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः ॥

गौणत्वेऽपीति । 'आमि सर्वनाम्नः' इत्यतः 'आमी'त्यनुवर्तते,  
तदाह आमीति । गौणमुख्यन्यायस्तु पदकार्ये एव प्रवर्तते, न प्रातिपदिक-  
कार्ये इति भावः । द्विपर्यन्तानामेव-त्यच्छब्दमारभ्य द्विशब्दान्तानां  
शब्दानामेव, इष्टि=भाष्यकृता त्यदादित्वमिष्यते इत्यर्थः । दीर्घत्वात्=  
हस्तान्तत्वाऽभावाच्च-न नुडित्यर्थः ।

वातप्रमीः=मृगविशेषः । 'वातप्रमीर्वातमृगः' इत्यमरः ।

यू स्येति । यू-प्रथमान्तं, स्यात्स्यौ-प्रथमान्तं, नदी-प्रथमान्तम् ।  
पूर्वमिति । वृत्ते प्राक् नित्यस्त्रीलिङ्गोऽपि यः शब्दो वृत्तावुपसर्जनतया-

१ त्यदादि को अकार अन्तादेश हो विभक्ति परे रहते । २ त्यद् से लृकार  
द्विशब्द पर्यन्त जो आठ शब्द हैं वे ही त्यदादिपद से भाष्यकार को अभीष्ट हैं ।

३ दीर्घ से जस् और श्च् परे रहते पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होय । ४ ईदन्त  
ऊन्त जो नित्य स्त्रीलिङ्ग उनकी नदी संज्ञा हो । ५ जो शब्द पहिले नित्य-  
स्त्रीलिङ्ग हो परन्तु उपसर्जन होने से कदाचित् अन्यलिङ्ग हो जाए तो भी वह  
नदीसंज्ञक हो ।





अचि श्नुधातुभ्रवां य्वोरियङुवडौ । ६ । ४ । ७७ ॥

श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भू-इत्यस्य चाऽङ्गस्येयङु-  
वडौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे । इति प्राप्ते ॥

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य । ६ । ४ । ८२ ॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्त-  
स्यानेकाचोऽङ्गस्य यणस्यादजादौ प्रत्यये । प्रध्यौ । प्रध्यः । प्रध्यम् ।  
प्रध्यौ । प्रध्यः । प्रध्यि । राधं पीवत् । एवं ग्रामणीः । डौ तु  
ग्रामण्याम् । अनेकाचः किम् ? । नीः । नियौ । नियः । अमि शंसि  
च परत्वादियङ् । नियम् । डेराम् । नियाम् । असंयोगपूर्वस्य किम् ? ।  
सुश्रियौ । यवक्रियौ ॥

गतिश्च । १ । ४ । ६० ॥

प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । \*गतिकारकेतरपूर्व-  
पदस्य यण् नेष्यते । शुद्धधियौ ॥

अचीति । अचि-सप्तम्यन्तं, श्नुधातुभ्रवां-षष्ठ्यन्तम्, य्वोः-  
षष्ठ्यन्तम्, इयङुवडौ प्रथमान्तम् । एरिति । एः षष्ठ्यन्तम्, अ-  
संयोगपूर्वस्य-षष्ठ्यन्तम् । ग्रामणीः=ग्रामाधिप, नापितोऽपि । ( ठाकुर व  
नाई ) । नीः=नेता ।

शुद्धा धीर्यस्यासौ शुद्धधीरित्यत्र शुद्धशब्दो गतिकारकेतर इति 'एरने-  
काच' इति यण् भवति, तेन अचिश्नुधात्विति इयङि-शुद्धधियौ शुद्धविय  
इत्यादि रूपाणि भवन्ति ।

१ श्नुप्रत्ययान्त जो धातु, इवर्ण और उवर्णान्त जो धातु और भ्रू यह जो  
अङ्ग इनको इयङ् आदेश हो अजादि प्रत्यय परे रहते । ३ धातु का अवयव  
संयोग पूर्व में नहीं है जिसके ऐसा जो इवर्ण, तदन्त जो धातु, तदन्त जो अने-  
काच् अङ्ग, उसको यण् हो अजादि प्रत्यय परे रहते । ३ प्रादि की क्रिया के योग  
में गतिसंज्ञा हो । ४ गति कारक से इतर हैं पूर्वपद में जिसके उसको यण् नहीं  
होय ।

४ ऋन्त और उशनसादि उनको अनङ् आदेश हो सबुद्धिभिन्न सु परे रहते।

अवादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । क्रोष्टा ।  
क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । [ क्रोष्टारम् । क्रोष्टारौ ] । क्रोष्टून् ।

विभाषा तृतीयादिष्वचि । ७ । १ । १७ ॥

अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् । क्रोष्ट्रा । क्रोष्ट्रे ।

ऋत उत् । ६ । १ । १११ ॥

ऋतो ङसिङसोरिति उकार एकादेशः स्यात् । रपरः ।

रात्सस्य । ८ । २ । २४ ॥

रेफासंयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । रस्य विसर्गः ।

क्रोष्टुः२।क्रोष्टोः२।\*नुमचिरतृज्वद्भावभ्यो नुद् पूर्वविप्रतिषेधेन ।  
क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टरि । पक्षे हलादौ च शङ्गुत् ॥ ह्रह्रः । ह्रह्रौ । ह्रह्रः ।  
ह्रह्रम्-इत्यादि । आतिचमूशब्दे तु नदीकार्य विशेषः । हे अतिचमु ।  
अतिचम्बै । अतिचम्बाः २ । अतिचमूनाम् ॥ खलपूः ॥

र्याऽर्थमाह गुण इति ।

विभाषा अव्ययपदं, तृतीयादिषु--सप्तम्यन्तम् । अचि--सप्तम्य-  
न्तम् ।

‘एङः पदान्तादित्यतः--‘अती’ति ‘ङसिङसोश्चे’त्यतो ‘ङसिङसो’रिति  
‘एङः पूर्वपरयो’रिति चानुवर्त्याह--ऋत इति । रपरः=‘उरण्पर’इत्यनेन  
रपरत्वमिति भावः । विसर्गः=‘खरवसानयो’रित्यनेनेति भावः । ह्रह्रः  
गन्धर्वविशेष । चमूं=सेनाम्-अतिक्रान्तः-अतिचमू-हस्ती शूरो वा ।

नदीकार्यमिति । ‘प्रथमलिङ्गग्रहणञ्चे’त्युक्त्याऽतिचमूशब्दे नदी-  
संज्ञायाः प्रवृत्त्या हे अतिचमु इत्यत्राम्बार्थनयोरिति ह्रस्वः । ‘अतिचम्बै’

१ अवादि की उपधा को दीर्घ हो सबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान पर रहते ।  
२ क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव होय विकल्प करके अजादि तृतीयादि विभक्ति पर रहते ।  
३ ऋतन्त अङ्ग से ङसि ङस् सम्बन्धी अकार पर रहते पूर्व पर के स्थान में उकार  
रूप एकादेश हो । ४ रेफ से परे यदि संयोगान्त लोप हो तो सकार का ही हो  
अन्य का नहीं हो । ५ नुम्, और अच् पर रहते रभाव, एवं तृज्वद्भाव-इनकी  
अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से नुद् ही होता है ।

ओः सुपि । ६ । ४ । ८३ ॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तादन्तो यो धातुस्तदन्त-  
स्याऽनेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि । खट्वौ । खट्वः ॥ एवं  
सुल्वादयः । स्वभूः । स्वभुवौ । स्वभुवः ॥ वर्षाभूः ।

वर्षाभूश्च । ६ । ४ । ८४ ॥

अस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सुपि । वर्षाम्नावित्यादि ॥ दन्भूः ।  
\*दन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः । दन्भवौ । एवं करभूः ।  
धाता । हे धातः । धातारौ । धातारः । \*ऋवर्णान्तेस्य ण-  
त्वं वाच्यम् । धातृणाम् ॥ एव नप्त्रादयः । नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्ति-  
पक्षे नियमार्थम् । तेनेह न । पिता । पितरो । पितरः । पितरम् । शेषं  
धातृवत् । एवं जामात्रादयः ॥ ना । नरौ ॥

‘अतिचम्वा’ इत्यादौ ‘आण्णथा.’ इत्याङागमः, ‘अतिचम्वा’मित्यत्र ‘एस्व-  
नद्याप’ इति नुट् च सिद्ध्यतीत्यर्थः । खलं पुनातीति खलपूः=धान्यबोधकः ।

ओः सुपीति । अचिरनुधात्वित्यतोऽचीति, धात्विति चानुवर्तते, ‘एर-  
नेकाच’ इत्यतोऽमयोगपूर्वस्येति ‘अनेकाच’ इति चानुवर्तते । ओः पश्चान्तं,  
सुपि--सप्तम्यन्तम् । सुष्ठे छिनानीति सुलूः=शोभनलयनकर्ता नापितः,  
कृपीवलश्च । स्वभू=ब्रह्मा ।

वर्षाभू=ददुरः । ‘मेक्यां पुनर्नवायां स्त्री वर्षाभूददुरे पुमानिति  
यादवकृतो वैजयन्तीकोशः ।

नियमार्थमिति । ‘उणादिनिष्पन्नानां तु नृत्प्रत्ययान्तानां सञ्ज्ञाशब्दानां  
चेदुपधादीर्घस्तर्हि नप्त्रादीनामेव नान्येषा’मिति च नियमाकारः । एवञ्च पित्रा-

१ धातु का अवयव संयोग पूर्व में नहीं है जिसके ऐसा जो उवर्ण, तदन्त  
जो धातु, तदन्त जो अनेकाच् अङ्ग, उसको यण् हो अजादि सुप् परे रहते ।

२ वर्षाभूशब्दावयव उवर्ण के स्थान में यण् हो अजादि सुप् परे रहते ।

३ दन्करपुनःपूर्वक मूधातु के उवर्ण को यण् हो अजादि सुप् परे रहते ।

४ ऋवर्ण से परे भी नकार को णत्व (णकार) होय ।

नृ च । ६ । ४ । ६ ॥

‘नृ’ इत्येतस्य नाभि वा दीर्घः स्यात् । नृणाम् । नृणाम् ॥

गोतो णित् । ७ । १ । ९० ॥

ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिट्स्यात् । गौः । गावौ । गावः ॥

औतोऽमृशसोः । ६ । १ । ९३ ॥

औकारादमृशसोरचि परे आकार एकादेशः स्यात् । गाम् ।

गावौ । गाः । गवा । गवे । गोः-इत्यादि ॥

राँयो हलि । ७ । २ । ८५ ॥

रैशब्दस्याकारोऽन्तादेशः स्याद्धलि विभक्तौ । राः । रायौ । रायः ।

राभ्यामित्यादि । ग्लौः । ग्लवौ । ग्लवः । ग्लौभ्यामित्यादि ॥

इत्यजन्ताः पुँल्लिङ्गाः ॥

दिशब्दानां नप्त्रादिभिन्नतया नानेन दीर्घ इत्याशयः । नृ च । नृ षष्ठ्य-  
ष्ठ्यन्तं, च-अव्ययपदम् । इत्येतस्य=नृशब्दस्य । ‘गोत’ इति सूत्रे गकारो-  
ऽविवक्षित इत्याशयेनाह ओकारादिति । गोतः पञ्चम्यन्तं, णित्-  
प्रथमान्तम् । ‘इतोऽस्सर्वनामस्थाने’ इत्यतः ‘सर्वनामस्थाने’ इत्यनुवर्तते ।  
रायः । रायः-षष्ठ्यन्तं, हलि सप्तम्यन्तम् । राः-धनम् । ग्लौः-चन्द्रः ।

१ ‘नृ’ शब्दको दीर्घ होय विकल्प करके, नाम् परे रहते ।

२ ओकार से विहित जो सर्वनामस्थान सो णिट् होय ।

३ ओकार से अम् शस् सम्बन्धी अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में आकार

एकादेश होय ।

४ ‘रै’ शब्द को आकार अन्तादेश होय हलिदि विभक्ति परे रहते ।

# अथाजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

रमा ॥

औडि आपः । ७ । १ । १८ ॥

आवन्तादङ्गात्परस्यौडः शी स्यात् । औडित्यौकारविभक्तेः संज्ञा ।

रमे । रमाः ॥

सम्बुद्धौ च । ७ । ३ । १०६ ॥

आप एकारः स्यात्सम्बुद्धौ । एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोपः । हे रमे । हे रमे । हे रमाः । रमाम् । रमे । रमाः ॥

औडि चाऽऽपः । ७ । ३ । १०६ ॥

आडि ओसि च परे आवन्तस्याऽङ्गस्य एकारः स्यात् । रमया । रमाम्याम् । रमाभिः ।

रमेति । 'रमते विष्णुना सह इति रमा=रक्षणीः । रमतेः पचायन्त्रिटाप् । केचित्तु-रमयतीति रमा । ण्यन्ताद्रमधातोः पचायच् । अमन्तत्वेन मि-त्त्वान्मितां ह्रस्व इति ह्रस्वः । णिलोपः । अजायतथाविति टावित्वाहुः । आवन्त-त्वेन, लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया वा स्वादयः । ह्रस्वादि-लोपः । 'बहुवचने जल्ये'-दित्यत 'ए'दिति, 'आडि चाप' इत्यत 'आप'इति चानुवर्तते तदाह-आप-एकार इति । आवन्तस्येत्यर्थः । अत्रोन्त्यपरिभाषया चाऽन्त्याकारस्यैकारः ।

एङ्ह्रस्वादिति । एङ्ह्रस्वादिलोपस्तु न, परत्वात्प्रतिपदोक्तत्वाच्च 'सम्बुद्धौ चे'त्येत्वे कृत आरूपस्य आपोऽभावेन तदप्राप्तेः, एवञ्च एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोप इति भावः ।

१ आवन्त अङ्ग से परे जो औडि (औकार विभक्ति) उसको शी आदेश होय ।

२ आप् को ( आवन्त अङ्ग को ) एकार हो सम्बुद्धि परे रहते ।

३ आड् ओस् परे रहते आवन्त अङ्ग को एकार होय ।

याडापः । ७ । ३ । ११३ ॥

आपः परस्य ङिद्वचनस्य याडागमः स्यात् । वृद्धिः । रमायै ।  
रमाभ्याम् । रमाभ्यः । रमायाः २ । रमयोः २ । रमाणाम् । रमायाम् ।  
रमासु । एवं दुर्गाऽम्बिकादयः ॥

सर्वनाम्नः स्याद्ङ्ङस्वश्च । ७ । ३ । ११४ ॥

आवन्तात्सर्वनाम्नः परस्य ङितः स्याद् स्यादापश्च हरं वः ।  
सर्वस्यै । सर्वस्याः २ । सर्वासाम् । सर्वस्याम् । शेषं रमावत् । एवं  
विस्त्राऽऽदय आवन्ताः ॥

विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ । १ । १ । २८ ॥

अत्र सर्वनामता वा स्यात् । उत्तरपूर्वस्यै । उत्तरपूर्वयै ।  
'तीयस्ये'ति वा सर्वनामसंज्ञा । द्वितीयस्यै । द्वितीयायै ॥ एवं तृतीया ।  
अम्बार्थेति ह्रस्वः । हे अम्ब । हे अक् । हे अल्ल ।

रमायै इति । रमाया+ए इति स्थिते 'वृद्धिरेची'त्यनेन वृद्धिरित्यर्थः ।  
आटश्चेति वृद्धिस्तु न, याट्कारस्य समुदायानुबन्धतया-प्रकृते आटोऽभावात् ।  
एवं 'सर्वस्यै' इत्यादावपि वृद्धिरेचीत्येव वृद्धिर्न तु आटश्चेतीत्यवधेयम् । एवञ्च  
'रमाया' इत्यादिष्वपि 'अक्. सवर्णे' इति दीर्घः । सर्वासामिति । आवन्तस्य  
सर्वादिगणे पाठाऽभावेऽपि एकादेशस्य पूर्वान्तवत्त्वेन ग्रहणात्सर्वासामित्यत्र  
'आमि सर्वनाम्न' इति सुट् । अत्र=दिक्समासे । उत्तरस्याः पूर्वस्याश्च दिशो  
ऽन्तरालं दिक्-उत्तरपूर्वा । दिङ्नामान्यन्तराले' इति बहुव्रीहिः ।

ह्रस्व इति । अम्वाऽकाऽल्लादीना मातृवाचितयाऽम्बार्थेति ह्रस्व इत्यर्थः ।

१ आप् (आवन्त अङ्ग) से परे जो ङिद्वचन उसको याट् का आगम होय ।

२ आवन्त सर्वनाम से परे जो ङिद्वचन उसको स्याट् का आगम होय, और  
आप् को ह्रस्व होय ।

३ बहुव्रीहि जो दिक्समास उसकी सर्वनामसंज्ञा, विकल्प करके होय ।



जरा । जरसौ । जर इत्यादि । पक्षे रमावत् । गोपा विश्व-  
पावत् ।

मतीः । मत्या ॥

डिति ह्रस्वश्च । १ । ४ । ६ ॥

इयदुवड्स्थानौ स्त्रीशब्दमित्रौ नित्यजील्लिङ्गावीदृता ह्रस्वौ च  
इवणोवणौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो डिति । मत्यै । मनये । मत्याः ।  
मत्याः । मनेः । मतेः ॥

इदुद्ध्याम् । ७ । ३ । ११७ ॥

जरा, जरसौ-जरे, जरसः-जराः-प्रथमा । जरसं-जरा, जरभी-जरे, जरसः-  
जराः-द्वितीया । जरसा-जरा, जराभ्यां, जराभिः तृतीया । जरसे-  
जरायै, जराभ्यां, जराभ्यः-चतुर्थी । जरसः-जरायाः, जराभ्या, जराभ्यः-  
पञ्चमी । जरसः-जरायाः, जरसोः-जरयो, जरसां-जराणां-षष्ठी । जरसि-  
जराया, जरसो-जरयोः, जरासु सप्तमी । इति जराशब्दस्य रूपाणि ।

गाः-गतीति गोपा-गोपालिका-गोपी । गोपाः, गोपै, गोपाः । गोपां,  
गोपौ, गोपः । गोपा, गोपाभ्यां, गोपाभिः । गोपे, गोपाभ्यां, गोपाभ्यः ।  
गोपः, गोपाभ्यां, गोपाभ्यः । गोपः, गोपोः, गोपाम् । गोपि, गोपोः, गोपासु ।  
हे गोपाः, गोपी, गोपाः । इति रूपाणि । मतीरिति । 'तस्माच्छसो न' इत्यत्र  
'पुंसी'त्युक्तेः स्त्रीत्वान्नत्वाऽभावः । एवम्-'आढो नाऽस्त्रिया'मित्यत्र 'अभिया'-  
मित्युक्तेरत्र नाभावो नेत्यवधेयम् । इदुद्ध्यामिति । नदीसंज्ञापक्षे-मतिर्नङि  
इत्यत्र 'देराम्नथाम्नीभ्यः' इत्यपेक्षया परत्वान्'औ'दिति डेरीत्वे प्राप्ते तत्प्रवाच्य  
आम्बिनायकं सूत्रमुपन्यस्यति-इदुद्ध्यामिति । निरवकाशतया औदिति सूत्रं  
मिदं प्रवाचते इत्याशयः । एतदभावे तु दीर्घकारान्ते नदीगौर्यादौ चरितार्थ-

१ इयद् उवड् का स्थानी, स्त्रीशब्दावयव ईकार से भिन्न, नित्यस्त्रीलिङ्ग जो  
दीर्घ ईकार ऊकार, उनकी नदीसंज्ञा विकल्प से होय डिद्धचन परे रहते । और-  
स्त्रीवाची जो ह्रस्व इकार उकार उनकी भी नदी संज्ञा होय विकल्प करके डिद्धचन परे  
रहते । २ नदीसंज्ञक जो इकार उकार उनसे परे जो टि उसको आम् आदेश होय ।

नदीसंज्ञकाम्यामिदुङ्ग्यां परस्य ङेराम् स्यात् । मत्याम् । मतौ ।  
शेषं हरिवत् । एवं बुद्ध्यादयः ॥

त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ । ७ । २ । ९९ ॥

स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतावादेशौ स्तो विभक्तौ ॥

अचि र ऋतः । ७ । २ । १०० ॥

‘तिसृ’ ‘चतसृ’ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि । गुण-  
दीर्घोत्वानामपवादः । तिस्रः । तिस्रः । तिसृभिः । तिसृभ्यः ।  
तिसृभ्यः । आमि नुद् ।

न तिसृचतसृ । ६ । ४ । ४ ॥

एतयोर्नामि दीर्घो न स्यात् । तिसृणाम् । तिसृषु ।

स्य ङेरामित्यस्य, ‘सख्यौ’ ‘पत्यौ’ इत्यादौ चरितार्थस्य औदित्यस्य च मति ङि  
इत्यत्र युगपत्प्राप्तौ तुल्यबलविरोधेन परत्वादौदिति औदादेश एव प्रवर्तते ।  
एवञ्च आम्बिधायकमिदं सूत्रमिहोपन्यस्तमिति भावः । एवञ्च-ङेरामित्येव सिद्धे  
इदुङ्ग्यामिति किमर्थमिति नाशङ्कनीयम् । औदित्यस्य बाधनार्थं तत्सत्त्वात् ।

त्रिचतुरोः-षष्ठ्यन्तं, स्त्रियां-सप्तम्यन्तं, तिसृचतसृ-छत्तप्रथमान्तम् ।  
अचि सप्तम्यन्तं, रः-प्रथमान्तम्, ऋतः-षष्ठ्यन्तम् । ‘त्रिचतुरो’रित्यतः-  
‘तिसृचतसृ’ इत्यनुवर्तते, तच्च षष्ठ्या विपरिणम्यते, तदाह-एतयोरिति ।

गुणेति । ‘तिस्रस्तिष्ठन्ती’त्यत्र प्रथमान्ते ‘ऋतो ङि-’इतिप्राप्तस्य गुणस्य  
रत्वमपवादः । ‘तिस्रः पश्ये’त्यत्र द्वितीयान्ते ‘प्रयमयोः-’इति पूर्वसवर्णदीर्घस्य  
रत्वमपवादः । ‘प्रियतिस्र आगत’ इत्यत्र पञ्चम्यां, ‘प्रियतिस्र स्व’मित्यत्र षष्ठ्या  
च ‘ऋत उ’दिति-उत्त्वस्याय रेफादेशविधिरपवादो ‘मद्विषये प्राप्तं सर्वं वाच्यते’

१ स्त्रीलिङ्ग जो त्रि और चतुर शब्द उनको क्रमसे तिस्र चतस्र आदेश होय  
विभक्ति परे रहते । २ ‘तिस्र’ ‘चतस्र’ के ऋकार को रेफादेश होय अचपर रहते ।

३ तिस्र चतस्र शब्द को दीर्घ नहीं होय नाम्पर रहते ।

द्वे । द्वे । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः ॥  
 गौरी । गौर्यौ । गौर्यः । हे गौरि । गौर्य-इत्यादि । एं  
 नधादयः ।

लक्ष्मीः । शेषं गौरीवत् । एवं तरीत-इत्यादयः ।

स्त्री । हे स्त्री ॥

स्त्रियाः । ६ । ४ । ७० ॥

स्त्रीशब्दस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे । स्त्रियौ । स्त्रियः ॥

वाऽम्भस्त्र्योः । ७ । ४ । ८० ॥

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात् । स्त्रियम् । स्त्रीम् ।  
 स्त्रियः । स्त्रीः । स्त्रिया । स्त्रियै । स्त्रियाः २ । परत्वान्नुङ् । स्त्रीणाम् ।  
 स्त्रियाम् । स्त्रीषु ॥ श्रीः । श्रियौ । श्रियः ॥

नेयङुचैङ्स्थानीवस्त्री । १ । ४ । ४ ॥

इयङुचडोः स्थितिर्योस्तावीदूनौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री  
 हे श्रीः । श्रियै-श्रिये । श्रियाः-श्रियः ॥

इति बाध्यसामान्यचिन्ताश्रयणादिति विवेकः । द्वे इति । द्वि+औ इत्यवस्थाया  
 त्यदाद्यत्वे, टापि, औटः इत्यादेशे गुणे च 'द्वे' इति सिद्धम् । अत्र विभक्तिसन्नि-  
 पातकृतमपि त्यदाद्यत्वं टापि निमित्तं, 'न यासयो'रिति निर्देजेन टापि सन्निपा-  
 तपरिभाषाया अनित्यत्वादप्रवृत्तेः । तरी-नौका । तन्त्री=वीणा । आदिपदेन  
 अवीः (=मेघी) स्तरीः (=धूमः) । अत्र हि 'अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः' इत्युणादि-

१ स्त्रीशब्द को इयङ् आदेश होय अजादि प्रत्यय परे रहते । २ स्त्रीशब्द  
 को इयङ् आदेश होय त्रिकल्प करके अम्भस्त्र्यो परे रहते । ३ इयङ् उवङ् का  
 स्थानी, नित्यस्त्रीलिङ्ग जो दीर्घ ईकार ऊकार, उमकी नदी संज्ञा नहीं होय,  
 स्त्रीशब्द को छोड़ कर ( अर्थात् स्त्रीशब्द के ईकार की तो नदी संज्ञा होवे ) ।

वाऽऽमि । १ । ४ । ५ ॥

इयडुवड्स्थानौ स्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु  
स्त्री ॥ श्रीणाम्--श्रियाम् । श्रियि--श्रियाम् ॥ धेनुर्मतिवत् ॥

स्त्रियाञ्च । ७ । १ । ९६ ॥

स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते ॥

ऋन्तेभ्यो ङीप् । ४ । १ । ५ ॥

ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् स्यात् । क्रोष्टी । गौरीवत् ।

भूः--श्रीवत् । स्वयंभूः--पुंवत् ॥

नै पट्स्वस्त्रादिभ्यः । ४ । १ । १० ॥

पट्सञ्ज्ञकेभ्यः स्वस्त्रादिभ्यश्च ङीप्तापौ न स्तः ।

स्वसा । तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।

याता मातेति सप्तैते स्वस्त्रादय उदाहृताः ॥

स्वसा । स्वसारौ । माता पितृवत् । शसि मातृः । द्यौर्गोवत् ।

राः पुंवत् । नौग्लौवत् ॥

इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

पठितेकारप्रत्ययान्ततयाऽऽद्यन्तत्वाच्च पुलोप इत्याशयः । क्रोष्टी जम्बुकी ।

भू = नेत्रलोमपङ्क्तिः । स्वयंभू = मूला प्रकृतिर्माया ।

स्वसा = भगिनी । ननान्दा = पत्युः स्वसा । (ननन्द) । 'ननान्दा तु  
स्वसा पत्युः' इत्यमरः । दुहिता = पुत्री । याता = देवरभार्या, पतिज्येष्ठभार्या च ।

१ इयड् उवड् का स्थानी नित्य स्त्रीलिङ्ग जो दीर्घ ईकार ऊकार उसकी नदी  
संज्ञा होय विकल्प करके आम् परे रहते । स्त्रीशब्द को छोड़कर । २ स्त्रीवाची  
जो क्रोष्टु शब्द से तृजन्त की तरह रूप को प्राप्त होय । ३ ऋदन्त और  
नान्त से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होय । ४ पट् सञ्ज्ञक और स्वस्त्रादि से ङीप्  
और टाप् नहीं होय ।

# अथाजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

अतोऽम् । ७ । १ । २४ ।

अतोऽज्ञात् क्लीवात्स्वभोरन् स्यात् । अमि पूर्वः । ज्ञानम् ।  
एङ्हस्वादिति ह्रस्वलोपः । हे ज्ञान ॥

नपुंसकाच्च । ७ । १ । १९ ।

क्लीवात्परस्योङः शी स्यात् । भसञ्ज्ञायाम् ॥

यस्येति च । ६ । ४ । १४८ ।

(देवरानी, जिठानी) 'भार्यास्तु भ्रातृवर्गस्य यातर. स्तुः परस्पर' मित्यमरः ।  
द्यौः=आकाशः । राः=धनम् । पुंलिङ्गस्यापि रैशब्दस्य तौत्वं क्षीरस्याभ्यादि-  
भिरभ्युपेतमिति ध्येयम् ।

✽ इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ✽

अतोऽमिति । 'अत' इति पञ्चमी, अजस्येत्यधिकृतं पञ्चम्या विपरिणम्यते,  
तस्य अत इति विशेषणं, ततस्तदन्तविधिः । एवञ्च अदन्तादज्ञादित्यर्थः ।  
अतोऽम्विधान 'स्वमोर्नपुंसका'दिति प्राप्तस्य लुको वाधनार्थम् । हे ज्ञानेति ।  
हे ज्ञान सु इति स्थिते सम्बुद्धिलोपात्परत्वादमादेशे कृते 'अमि पूर्वः' इति  
पूर्वरूपे च तस्यान्तवद्भावाज्ज्ञानेत्यस्य ह्रस्वान्ताज्ञतया तत्परस्य सम्बुद्धयवय-  
वस्य ह्रस्वानस्य भकारस्य एङ्हस्वादिति लोप इत्यर्थः । एङ्हस्वादित्यस्य हि  
अज्ञात्परा या सम्बुद्धिरिति नार्थः, किन्तु एजन्ताद्वृत्त्वान्ताच्चाज्ञात्परो यः  
सम्बुद्धयवयवो ह्रस्व लुप्यते इत्येवार्थ इत्याशयः ।

भसञ्ज्ञायामिति । 'सुजनपुंसकस्ये'त्युक्तेनपुंसके औठः सर्वनामस्थान-  
सञ्ज्ञाया अभावेन तस्मिन्परतो ज्ञानेत्यस्य 'यचि भ'मिति भसञ्ज्ञायामित्यर्थः ।

१ अदन्त क्लीव अङ्ग से परे जो 'सु' और 'अम्' उनको 'अम्' आदेश होय ।

२ क्लीव अङ्ग से परे जो 'औङ्' उसको 'शी' आदेश होय ।

३ भसञ्ज्ञा जो इवर्ण अवर्ण उनका लोप होय ईकार और तद्धित परे रहते ।

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णाऽवर्णयोर्लोपः स्यात् । इत्य-  
लोपे प्राप्ते । \*औडः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः । ज्ञाने ॥

जश्शसोः शिः । ७ । १ । २० ॥

कलीबादनयोः शिः स्यात् ॥

शि सर्वनामस्थानम् । १ । १ । ४२ ॥

‘शि’ इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात् ॥

नपुंसकस्य झलचः । ७ । १ । ७२ ॥

झलन्तस्याऽजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ॥

भिदचोऽन्त्यात्परः । १ । १ । ४७ ॥

अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परतस्यैवान्तावयवो मित्स्यात् ।  
उपधादीर्घः । ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । एवं धनवन-  
फलादयः ॥

अलोपे प्राप्ते=ज्ञानेत्यकारस्य लोपे प्राप्ते । औड इति । औडस्थानिक  
शीविभक्तौ परतो, यस्येति चेति लोपस्य प्रतिषेधो वक्तव्य इत्यर्थः । श्यामिति  
च विभक्त्यपेक्षया खालिङ्गनिर्देशः । जश्शसोः शिः । जसा साह-  
चर्यात्पुंवत् शस् गृह्यते, तेन ‘कुण्डशो ददाती’त्यत्र तद्धिते शसि न श्यादेशः ।

उपधादीर्घ इति । ‘सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धा’विति दीर्घ इत्यर्थः ।  
तद्वत्=प्रथमावद्वितीयायां रूपाणि । पुंवत्=रामशब्दवदित्यर्थः ।

१ औडस्थानिक शी परे रहते ‘यस्येति च’ इमं सूत्रं करके लोप नहीं होय ।

२ क्लीब अङ्ग से परे जो जस् शस् उसको शि आदेश होय ।

३ ‘शि’ इसकी सर्वनामस्थान संज्ञा होय ।

४ झलन्त अजन्त जो क्लीब अङ्ग-उसको नुम् का आगम होय सर्वनामस्थान  
परे रहते ।

५ अचो के मध्य में जो अन्त्य अच्, उससे परे और उसी (अन्त्य अच्)  
अन्तावयव मित् होय ।

अद्भुतरादिभ्यः पञ्चभ्यः । ७ । १ । २५ ॥

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्धादेशः स्यात् ॥

देः । ६ । ४ । १४३ ॥

इति भस्य ढेलोपः स्यात् । कतरत् । कतरद् । कतरे ।  
कतराणि । हे कतरत् । शेषं पुंनत् । एवं कतमत् । इतरत् ।  
अन्यत् । अन्यतरत् । अन्यतमस्य त्वन्यतममित्येव । \* एकतरा-  
त्प्रतिषेधो वक्तव्यः\* । एकतरम् ॥

ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य । १ । २ । ४७ ॥

अजन्तस्येत्येव [क्लीबे प्रातिपदिकस्याऽजन्तस्य ह्रस्वः स्यात्] ।  
श्रीपं-ज्ञानचत् ॥

अद्धिति।अत्र जिघृक्षितादेशस्वरूपप्रतिपादनाय दस्य पुंनं न कृतम्।  
अत्रकतरत्-कतरद्, कतरे, कतराणि । पुनरपि-कतरत्-द्, कतरे, कतराणि।  
कतरेण, कतराभ्यां, कतरैः । कतरस्मै, कतराभ्यां, कतरेभ्यः । कतरस्मात्-द्,  
कतराभ्यां, कतरेभ्यः। कतरस्य, कतरयोः, कतरेषाम्। कतरस्मिन्, कतरयोः,  
कतरेषु । हे कतरत्-द्, हे कतरे, हे कतराणि-इति रूपाणि । इत्येवेति ।  
अन्यतमशब्दस्याऽव्युत्पन्नप्रातिपदिकया उत्तमप्रत्ययान्तत्वाऽभावात्। अद्भा-  
देश इति अतोऽमित्यमादेशो ऐवेत्यर्थः । यद्यपि-अन्यतरशब्दोऽपि अव्युत्पन्न  
एव, तथापि तस्य उत्तरादिगणे पाठादेव ततः स्वमोरद्धादेशः, अन्यतम-  
शब्दस्य तु न गणे पाठ इति न तत्रादेश इत्यवधेयम् । अतएव अन्यतरान्य-  
तमशब्दाव्युत्पन्नौ स्वभावाद्विबहुविषये निघारणे वर्तते इत्यभियुक्ताः ।

एकतरशब्दस्य उत्तरप्रत्ययान्ततयाऽद्धादेशस्य प्रवृत्त्यापत्तिरत आह-  
एकतरादिति । भो सूत्रकार । भवता-एकतरशब्दात्परयोः स्वमोरद्धा-  
देशो न भवतीति वक्तव्यमित्यर्थः ।

१ नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान जो कतरादि पांच उनसे परे ओ सु अम् उनको  
अद्ध आदेश होय । २ द्विप्रत्यय परे रहते भस्यक की टि का लोप होय ।

३ एकतरशब्द से परे सु अम् को अद्ध आदेश नहीं होय ।

४ क्लीबलिङ्ग में अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होय ।

स्वमोर्नपुंसकात् । ७ । १ । २३ ॥

कलीबादङ्गात्परयोः स्वमोर्लुक् स्यात् । वारि ॥

इकोऽचि विभक्तौ । ७ । १ । ७३ ॥

इगन्तस्य कलीबस्य नुम् स्यादचि विभक्तौ । वारिणि ।

वारीणि । 'न लुमते'त्यस्याऽनित्यत्वात्पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः ।

हे वारे-हे वारि । 'घेर्डिती'ति गुणे प्राप्ते-\*वृद्धयौत्त्ववृज्ज्वाव-

गुण इति । 'ह्रस्वस्य गुण' इति गुणोऽपि पक्षे भवतीत्यर्थः । अतएव 'इकोऽची'ति सूत्रे 'हे त्रपो' इति, 'एङ्हस्वा'दित्यत्र 'हे त्रपु' इति च भाष्ये रूपद्वयमुपन्यस्तम् । ननु सम्बुद्धेर्लुका लुप्तत्वाच्च लुमतेति प्रत्ययलक्षणनिषेधाच्च कथं गुण इति चेन्न; 'इकोऽचि विभक्ता' वित्यत्राऽज्ग्रहणाज्ज्ञापकाच्चलुमतेत्यस्याऽनित्यत्वात् । तथाहि-अज्ग्रहणाऽभावे हलादिषु भ्यामादिषु सत्यपि नुमि 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्थे'ति नलोपसम्भवाद्दोषाऽभावेन अचीति व्यर्थ, न च सम्बुद्धौ नुम्यावृत्त्यर्थमज्ग्रहणं, तत्र नुमि सति 'न विसम्बुध्यो'रिति निषेधाच्चलोपाऽप्रवृत्तेरिति वाच्यं, सम्बुद्धेर्लुका लुप्तत्वेन 'न लुमते'ति निषेधात्प्रत्ययलक्षणाऽप्रवृत्त्या विभक्तिपरत्वाऽभावेन तत्र नुमः प्राप्तेरेवाऽभावात् । एवञ्चाऽज्ग्रहण व्यर्थ सन्न लुमतेति निषेधोऽनित्य इति ज्ञापयति । तथा च लुका लुप्तेऽपि प्रत्ययलक्षणप्रवृत्त्या सम्बुद्धिपरतया प्राप्त नुम वारयितुमज्ग्रहणं सफलमिति भावः । तदेवमनित्यत्वपक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः, अनित्यत्वाऽभावे तु सम्बुद्धिपरत्वाऽभावान्न गुण इति हे वारे हे वारीति रूपद्वयं भवतीत्यवधेयम् ।

वृद्धयौत्वेति । वृद्ध्यादीनां क्रमेण--गावौ, हरौ, क्रोष्टा, हरये इत्यत्रावकाशः । नुमः--'वारीणि' इत्यत्रावकाशः, 'अतिसखीनि'-इत्यत्र परत्वान्नुमं बाधित्वा-'सत्युरसम्बुद्धा'विति णित्वाद्बुद्धिः प्राप्ता, 'वारिणि'इत्यत्र हेः--'अच्च घे'रित्यौत्त्व परत्वात्प्राप्तम्, 'प्रियक्रोष्टूनि' इत्यत्र जश्शसोः पर-

१ क्लीव अङ्ग से परे जो सु और अम् उनका लुक् होय ।

२ इगन्त जो क्लीव अङ्ग उसको नुम् होय अजादिविभक्ति परे रहते ।

३ वृद्धि, औत्त्व, वृज्ज्वाव और गुण-इनकी अपेक्षा नुम् होय पूर्वविप्रतिषेध से ।



गुणेश्यो नुम् पूर्वविप्रतिपेधेन । वारिणे । वारिणः २ । वारिणोः २ ।  
नुमचिरेति नुद् । वारीणाम् । वारिणि । हज्जटौ हस्वित् ।

अस्थिदधिसकथ्यक्षिणामनङ्गुदात्तः । ७ । १ । ७५ ॥

एषामनङ् स्याद्वादावचि [ स चोदात्तः ] ॥

अङ्गोपोऽनः । ६ । ४ । १३४ ॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्यां-  
ऽकारस्य लोपः स्यात् । दक्षा । दक्षे । दध्नः २ । दध्नोः २ । दध्नान् ॥

विमौषा डिश्योः । ६ । ४ । १३५ ॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याऽकार-  
स्य लोपो वा स्यान्डिश्योः परयोः । दन्नि-दधनि । शेषं वारिवत् ॥  
एवमस्थिसकथ्यक्षि ॥ सुधि । सुधिनी । सुधीनि । हे सुधे-हे सुधि ॥

त्वान्नुमं वाधित्वा वृज्वत्त्व प्राप्तं, 'वारिणे' इत्यत्र परत्वान्नुमं वाधित्वा  
'वर्तिती'ति गुणः प्राप्तः । तत्र पूर्वविप्रतिपेधान्नुमेव भवति न परा अपि  
वृद्धादय इत्यर्थः ।

सक्थि=अङ्गः । 'सक्थि ह्रीवे पुमानूह' इत्यमरः । सुधीति । सुद्ध  
ध्यायतीति, शोभना धीर्यस्येति वा सुधि । सुधिनी इत्यत्र सुमा परत्वादियर्  
वाव्यते । शोभनज्ञानवत्त्वं, शोभनध्यानवत्त्वं वा प्रवृत्तिनिमित्तं पुति ह्रीवे च  
तुल्यमिति तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते भाषितपुस्कतयाऽत्र पुंवद्भावप्रवृत्तिः । एवं-  
सुलुगव्देऽपि शोभनलवनकर्तृत्वं प्रवृत्तिनिमित्तं, तच्च सर्वत्र समानमिति  
तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते भाषितपुंस्कत्वात्पुंवद्भावस्तत्र प्रवर्तते । एवं घातृशब्देऽपि

१ अस्थ्यादि को [ उदात्त ] अनङ् आदेश हो यदि अच् परे रहते ।

२ अङ्ग का अवयव, सर्वनामस्थानभिन्नयजादिस्वादिपरक जो अन्, उसके  
अकार का लोप होय । ३ अङ्ग का अवयव, सर्वनामस्थानभिन्न यजादि  
स्वादि-परक जो अन् उसके अकार का लोप होय, विकल्प करके, डि शी परे रहते ।

तृतीयादिषु भाषितपुस्कं पुंवद्भावस्य । ७।१।७४।

प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्भावात् स्यादादा-  
वचि । सुधिया-सुधिनेत्यादि ॥ मधु । मधुनी । मधूनि । हे मधो-  
हे मधु ॥ सुष्ठु । सुष्ठुनी । सुष्ठुनि । सुल्वा-सुष्ठुनेत्यादि ॥

धातृ । धातृणी । धातृणि । हे धातः-हे धातृ । धात्रा-  
धातृणा । धातृणाम् । एवं ज्ञात्रादयः ।

एचं इध्रस्वीदेशे । १ । १ । ४८ ।

आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु एच इगेव स्यात् । प्रद्यु । प्रद्युनी ।

धारणकर्तृत्वस्य प्रवृत्तिनिमित्तस्य सर्वत्र तुल्यतया पुंवद्भावः । सुधिनेत्या-  
दीति । सुधि, सुधिनी, सुधीनि । पुनरपि-सुधि, सुधिनी, सुधीनि । सुधिया-  
सुधिना, सुधीभ्यां, सुधीभिः । सुधिये-सुधिने, सुधीभ्यां, सुधीभ्यः । सुधियः-  
सुधिनः, सुधीभ्या, सुधीभ्यः । सुधियः-सुधिनः, सुधियो-सुधिनो, सुधिया-  
सुधीनाम् । सुधियि-सुधिनि, सुधियोः-सुधिनोः, सुधिषु । हे सुधे-हे सुधि,  
हे सुधिनी हे सुधीनि । इति रूपाणि । एवं सुलुशब्दे-सुल, सुलनी, सुलनि ।  
पुनरपि-सुल, सुलनी सुलनि । सुल्वा-सुलना । सुल्वे-सुलने । सुल्वः-सुलनः २ ।  
सुल्वो-सुलनोः २ । सुल्वी-सुलनाम् । सुल्वि-सुलनि । हे सुलो-हे सुल ।  
इत्यादि रूपाणि । धातृशब्दे-धात्रा-धातृणा । धात्रे-धातृणे । धातु-  
धातृणः २ । धात्रोः-धातृणोः २ । धातृणाम् । धातरि-धातृणि । हे धातः-  
हे धातृ-इत्यादि रूपाणि । द्यु इति । प्रद्युशब्दे तु न पुंवद्भावः, प्रकृष्टाऽऽकाश-  
वस्वरूपस्य प्रवृत्तिनिमित्तस्यैक्ये यदिगन्तं प्रद्यु, तस्य भाषितपुस्कत्वाऽभावात्,  
यच्च भाषितपुस्कं-प्रद्यो इति, तस्येगन्तत्वाऽभावात् । एव प्ररिशब्दादावपि ।

१ प्रवृत्तिनिमित्त एक होते हुए जो भाषितपुस्क इगन्त क्लीब शब्दस्वरूप  
उसको पुंवद्भाव होय विकल्प करके टादि अन्धरे रहते ।

२ आदिश्यमान, ह्रस्वों के मध्य में-एच् के स्थान इक् ही ह्रस्व हो ।  
( अर्थात्-एच् के स्थान में जहाँ ह्रस्व करना हो वहाँ इक् ही ह्रस्व होता है ) ।

प्रधूनि । प्रधुनंत्यादि ॥ प्ररि । प्ररिणी । प्ररीणि । प्ररिणा । एक-  
देशविकृतमनन्यवेत् । प्रराम्याम् । प्ररीणाम् ।

सुनु । सुनुनी । सुनूनि । सुनुनंत्यादि ॥

॥ इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

अथ हलन्तपुंलिङ्गप्रकरणम् ।

हो ढः । ८ । २ । ३१ ॥

हस्य ढः स्याज्जलि पदान्ते च । लिट्-लिङ् । लिहौ ।  
लिहः । लिहा । लिङ्म्याम् । लिट्सु-लिङ्सु ॥

दोर्देर्धातोर्धः । ८ । २ । ३२ ॥

मधुश्चदस्याऽपि न पुंवत्त्वं, तस्य भाषितपुंस्कत्वेऽपि प्रवृत्तिनिमित्तभेदात् ।  
पुंसि चैत्रत्वं, क्लीवे पुष्परसादित्वञ्च प्रवृत्तिनिमित्तमिति विवेकः । 'मधुर्नसन्ते  
चैत्रे च' 'मधु मये पुष्परसे' इत्यभिधानात् । प्ररीति । प्रकृत्यो रा यस्मिन्  
कुले तत्प्ररि कुलम् । सुष्ठु नौर्यस्मिन् कुले जले वा तत्-सुनु । अत्रापि न  
पुंवद्भावः । \* इत्यजन्ता नपुंसकलिङ्गाः \*

लिङिति । लेढीति लिह । लिट् आस्तादने । क्तिप् । हलन्तपादिलोपे  
पदान्तत्वाद्बुत्व, वावसाने इति चत्त्वविकल्पः । लिट्स्विति । अस्य जश्त्वेन  
ढः, तस्य खरि चेति चत्त्वेन टः । तस्याऽसिद्धत्वाच्चयो द्वितीया इति अस्य ठो  
न । अस्य ण्वन्तु न, 'न पदान्तादोरना'मिति तजिषेधात् ।

लिट्स्विति । अस्य जश्त्वेन ङकारे चत्त्वस्याऽसिद्धत्वात्पूर्वं 'ढः सि'  
इति ध्रुटि चत्त्वेन घस्य तकारः, ङस्य टकारश्च ।

धातोरित्यावर्तते, तत्रैकमतिरिच्यमानभुपदेशकालिकं दादि लक्षणया बोध-

१ हकार के स्थान में ङकार होय, क्षत्परे रहते और पदान्त में ।

२ उपदेश में जो दादि धातु, तदवयव जो हकार उसको घकार आदेश  
होय क्षत्परे रहते और पदान्त में ।

उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः स्याज्झलि पदान्ते च ॥

एकाचो बशो भप् झपन्तस्य स्ध्वोः । ८ । २ । ३७ ॥

धात्ववयवस्यैकाचो झपन्तस्य बशो भप् स्यात् से ध्वे पदान्ते च ।

धुक्-धुग् । दुहौ । दुहः । धुग्याम् । धुक्षु ।

वा द्रुहसुहष्णुहृणिहाम् । ८ । २ । ३३ ॥

एषां हस्य वा घः स्याज्झलि पदान्ते च । धुक्, धुग्, धुद्,

धुङ् । द्रुहौ । द्रुहः । धुग्याम्-धुङ्ग्याम् । धुक्षु, धुङ्सु, धुङ्सु ।

एवं गुक् गुग्-मुद्-मुङ् इत्यादि ।

धात्वादेः षः सः । ६ । १ । ६४ ॥

धातोरादेः षस्य सः स्यात् । स्नुक्, स्नुग्, स्नुद्, स्नुङ् ।

एवं-स्निक्-स्निग्, स्निद्-स्निङ् ॥ विश्ववाट् । विश्ववाङ् । विश्व-

वाहौ । विश्ववाहः । विश्ववाहम् । विश्ववाहौ ॥

इत्थणोः सम्प्रसारणम् । १ । १ । ४५ ॥

यति, तदाह-उपदेशे इति । स्त्वोर्ग्रहणसामर्थ्याज्झलीति नेह सम्बध्यते, तेन दुग्धे दोग्धेत्यादौ न भण्भाव । धुगिति । दुह प्रपूरणे, किप् । दोग्धीति धुक्=गोपालः । धुगिति । 'द्रुह जिघासाया' 'मुह वैचित्ये' 'ष्णुह उद्विगणे' णिह प्रीतौ । एभ्यः किप् । द्रुहेर्दादित्वान्नित्य घत्वे प्राप्ते, अन्यत्र चाऽप्राप्ते उभयत्र विभाषेयम् ।

विश्ववाडिति । विश्वं वहतीति-विश्ववाट्-विश्वम्भरः । एवं रय-

१ 'धातु का अवयव जो एकाच् झपन्त, तदवयव जो बश्, उसको भण्भाव होय, सकार और ध्व परे रहते, और पदान्त में ।

२ द्रुह सुह ण्णुङ् णिह् इनके हकार को षकार होय विकल्प करके झपरे रहते और पदान्त में ।

३ धातु के आदि का जो षकार उसको सकार आदेश होय । ४ यण् के स्थान में प्रयुज्यमान ( विधीयमान ) जो इक् सो सम्प्रसारणसंज्ञक होय ।

यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात् ।

वाह् ७५ । ६ । ४ । १३२ ॥

भस्य वाहः सम्प्रसारणमृद् स्यात् ॥

सम्प्रसारणाच्च । ६ । १ । १०८ ॥

सम्प्रसारणादचि परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । अन्ये धत्वृद्धिस्त्विति

वृद्धिः । विश्वोहः । इत्यादि ॥

चतुरनडुहोरामुदात्तः । ७ । १ । १८ ॥

अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे [ स चोदात्तः ] ।

स्यावनडुहः । ७ । १ । ८२ ॥

अस्य नुम् स्यात् सौ परे । अनड्वान् ॥

अम् सञ्जुहौ । ७ । १ । ९९ ॥

चतुरनडुहोरम् स्यात् सम्बुद्धौ । हे अनड्वन् । हे अन-  
ड्वहौ । हे अनड्वहः । अनडुहः । अनडुहा ।

वसुसंस्तुध्वंस्वनडुहां दः । ८ । २ । ७२ ॥

सान्तिवस्वन्तस्य संसादेष्व दः स्यात्पदान्ते । अनडुध्यामित्यादि ।

वाट् । शकटवाट् । अन. = शकट-वहतीति-अनड्वान् । 'अनसि वहेः क्विप्, अ-  
नसो डश्च' । संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वाजलोपः प्रातिपदिकान्तेति नलोपो न ।

'ससञ्जुषो रुः' इति सूत्रात्सेत्यनुवर्तते, तच्च वसोरेव विशेषणं, न संस्तु-  
ध्वंसोरव्यभिचारान्, नाप्यनडुहः, असम्भवादत् आह-सान्तेति ।

१ भसञ्शक जो वाह् उसको सम्प्रसारणसञ्शक ७५ होय ।

२ सम्प्रसारण से अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होय ।

३ चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् होय सर्वनामस्थान परे रहते ।

४ अनडुह् शब्द को नुम् का आगम होय सुप्रत्यय परे रहते ।

५ चतुर् और अनडुह् शब्द को अम् का आगम होय सम्बुद्धि परे रहते ।

६ सान्त जो वस्वन्त और संसादि, उनको दकार अन्तादेश होय पदान्त में ।

सान्तेति किम् ? । विद्वान् । पदान्तेति किम् ? स्रस्तम् । ध्वस्तम् ।

सहः साङः सः । ८ । ३ । ५६ ॥

साङ्ख्यस्य सहः सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । तुराषाट् ।

तुराषाड् । तुरासाहौ । तुरासाहः । तुराषाड्भ्यामित्यादि ।

दिव्यं औत् । ७ । १ । ८४ ॥

दिविति प्रातिपदिकस्योत्स्यात्सौ परे । सुधौः । सुदिवौ ॥

दिव्यं उत् । ६ । १ । १३१ ॥

दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात् पदान्ते । सुद्युभ्यामित्यादि ॥

चत्वारः । चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्म्यः २ ॥

षट्चतुर्भ्यश्च । ७ । १ । ५५ ॥

षट्संज्ञकेभ्यश्चतुरश्च परस्याऽऽभौ नुडागमः स्यात् ॥

रषाभ्यां नो णाः सथानपदे । ८ । ४ । १ ॥

[ एकपदस्थाभ्यां रेफप्रकाराभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् ] ।

अचो रषाभ्यां द्वे । ८ । ४ । ४६ ।

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा रताः ।

चतुर्णाम् । चतुर्णाम् ॥

तुराषाट् इन्द्र । 'तुराषाण्मेघवाहनः' इत्यमरः ।

१ साङ्ख्य जो सह उसको मूर्धन्य ( षकार ) आदेश होय ।

२ 'दिव्' यह जो प्रातिपदिक उसको औकार आदेश हो सु परे रहते ।

३ दिव् शब्दको उकार अन्तादेश होय पदान्त में ।

४ षट्संज्ञक और चतुर शब्दसे परे जो आम् उसको नुट् का आगम होय ।

५ एकपदस्थ रेफ षकार से पर जो नकार उसको णकार होय । ६ अच्

से परे जो रेफ हकार उससे परे जो यर् उसको द्वित्व होय विवक्ष्य कर्के ।

रोः सुप्ति । ८ । ३ । १६ ॥

सप्तमी बहुवचने रोरेव विसर्जनीयो नान्वरेफस्य । पत्वम् । यस्य  
द्वित्वे प्राप्ते ॥

शरोऽचि । ८ । ४ । ४९ ।

अचि परे शरो न द्वे स्तः । चतुर्थे ॥

भो लो धातोः । ८ । २ । ६४ ॥

धातोर्मस्य नः स्यात् पदान्ते । प्रशान् ॥

किम्भः का । ७ । २ । १०३ ॥

किमः कः स्याद्विभक्तौ । कः । कौ । के । [ कन् । कौ ।  
कान् ] । इत्यादि । शेषं सर्वत्र ॥

इदमो मः । ७ । २ । १०८ ॥

इदमो मस्य मः स्यात् सौ परे । त्यदाद्यत्वापवादः ॥

इदोऽय् पुंसि । ७ । २ । १११ ॥

इदम इदोऽय् स्यात् सौ पुंसि । [सोलोपः] । अयम् । त्यदाद्यत्वे ॥

‘स्वरवसानयो’रित्येव सिद्धे नियमार्थमिदमत आह-रोरेवेति । ‘रोः  
सुप्तेव विसर्ग’ इति विपरीतनियमस्तु न, ‘हलोऽनन्तराः सयोगः’ इत्यादि-  
निर्देशात् । ‘इदमो म’ इत्यत ‘इदम’ इत्यनुवर्तते, तदाह इदम इति ।  
‘तदो. सः सावनन्त्ययो’ रित्यतः सावित्यनुवर्तते ।

१ सप्तमी बहुवचन सुप् परे रहते रु के रेफ को ही विसर्ग हो अन्य रेफ  
को नहीं होय । ३ अच् पर रहते शर् को द्वित्व नहीं होय ।

३ धातु के मकार को नकार होय पदान्त में । ४ किम्शब्द को क  
आदेश होय विभक्ति परे रहते । ५ इदम् शब्द के मकार को मकार ही आदेश हो  
सु परे रहते (पुलिङ्ग में) । ६ इदम् शब्द के इदमाग को अय् आदेश हो सु परे  
रहते पुलिङ्ग में ।

अतो गुणे । ६ । १ । ९७ ॥

अपदान्तादतो गुणे परतः पररूपमेकादेशः स्यात् ॥

दैश्च । ७ । २ । १०९ ॥

इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ । इमौ । इमे । त्यदादेः सम्बोधनं

नास्तीत्युत्सर्गः ॥

अनाप्यकः । ७ । २ । ११२ ॥

अककारस्येदम इदोऽन् स्यादापि विभक्तौ । आविति

प्रत्याहारः । अनेन ॥

ह्रस्वलोपः । ७ । २ । ११३ ॥

अककारस्येदम इदो लोपः स्यादापि ह्रस्वादौ । नोऽनर्थके-

ऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥

अनाप्यक इति । अन्-प्रथमान्तम्, आपि-सप्तम्यन्तम् । अकः-  
पञ्चम्यन्तम् । आवितीति । आविति टा इत्यारभ्य सुपः पकारेण प्रत्याहारः,  
न तु टापो ग्रहणं, विभक्ताविति विशेषणात् । नानर्थक इति । अनर्थके  
अलोऽन्त्यस्येति विधिर्न प्रवर्तते, अभ्यासविकार वर्जयित्वा । अभ्यासविकारे  
तु अनर्थकेऽप्यलोन्त्यस्येति प्रवर्तते एवेत्यर्थः । तेन विभक्तिं पिपत्तीत्यादौ  
भृशमिति, अर्त्तिपिपत्त्योरिति चैत्वमभ्यासावयवस्यान्त्यस्य अलो भवति,  
न सर्वस्याभ्यासस्येत्याहुः ।

१ अपदान्त अकार से गुण परे रहते पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश  
होय । २ इदम् शब्द के दकार को मकार होय विभक्ति परे रहते ।

३ ककाररहित जो इदम् शब्द उसके इद् भाग को अन् आदेश होय, आप्  
(तृतीयादि) विभक्ति परे रहने । ४ ककाररहित जो इदम् शब्द उसके इद् भाग  
का लोप होय, ह्रस्वादि आप् (तृतीयादि) विभक्ति परे रहते ।

५ अनर्थक में अलोन्त्यविधि (अलोन्त्यस्य यह सूत्र) प्रवृत्त नहीं होय,  
अभ्यासविकार को छोड़कर । अर्थात् अभ्यासविकार में तो अनर्थक में भी  
अलोन्त्यविधि प्रवृत्त होता ही है ।



आपन्तवदेकस्मिन् । १ । २ । २१ ॥

एकस्मिन्प्रियमाणं कार्यमादात्रियाऽन्तश्च ग्यात् । भुवि चेति दीर्घः । आभ्यान् ॥

नेदस्सदसोदोः । ७ । १ । ११ ॥

अकारयोरिदमदसोमिस् ऐस् न स्यात् । एभिः । अस्मै । [ आभ्याम् ] । एभ्यः । अस्मात् । [ आभ्याम् । एभ्यः ] । अस्व । अनयोः । एवाम् । अस्मिन् । अनयोः । एषु ॥

द्वितीयादौस्त्वेनः । २ । ४ । ३४ ॥

द्वितीयायां टौसोश्च परत इदमेतदोरेनादेशः स्यादन्वादेशे । किञ्चित्कार्थं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातु पुनरुपादानमन्वादेशः । यथा अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽग्रापयेति । अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति । एनम् । एनौ । एनान् । एनेन । एनयोः । एनयोः ॥ राजा ॥

द्वितीयादौस्त्वेनः-सप्तम्यन्तम्, एनः-प्रथमान्तम् । विधातुम्=अपूर्वबोधयितुम् । अनु=पश्चात्, उपादेशः=उपादानमित्यर्थः । यथेति । अत्र अधीतव्याकरणोऽयं बाल इति बोधयितुमुपात्तस्येदमज्ञवदस्य छन्दोऽग्रापना-नुज्ञाप्रदानरूप कार्यान्तरं बोधयितुं पुनरुपादानादन्वादेशः । एवमेव-पवित्रसत्कुलप्रसूताविभाविति बोधयितुमुपात्तस्य प्रभूतधनशालिनावपीमा-

१ एक (असहाय) में क्रियमाण जा कार्य वह आदि और अन्त की तरह होय ।

२ ककाररहित जो इदम् और अदत् शब्द, उनसे परे जो भिस् उसको ऐस् आदेश नहीं होय ।

३ द्वितीया विभक्ति और टा ओस् परे रहते इदन् और एतद् के स्थान में एन आदेश हो अन्वादेश में ।

४ किसी कार्य को विधान करने के लिए जिसका पहिले उपादान किया गया हो फिर उसीका कार्यान्तर विधान करने को पुनः उपादान (अदण) करना अन्वादेश कहाता है ।

न डिसम्बुद्धयोः । ८ । २ । ८ ॥

नस्य लोपो न स्यान्डौ सम्बुद्धौ च ॥ हे राजन् । \*ङोवुत्त-  
रपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः । ब्रह्मनिष्ठः । राजानौ । राजानः । राज्ञः ॥

नलोपः सुस्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति । ८ । २ । २ ॥

सुग्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति, तुग्विधौ च नलोपो-  
ऽसिद्धो, नान्यत्र-राजाश्च इत्यादौ । इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वञ्च  
न । राजभ्याम् । राजभिः । राजभ्यः । राज्ञि-राजनि । राजसु ॥  
यज्वा । यज्वानौ । यज्वानः ॥

न संयोगादभ्यन्तात् । ६ । ४ । १३७ ॥

वकारमकाराऽन्तसंयोगात्परस्याऽनोऽकारस्य लोपो न स्यात् ॥  
यज्वनः । यज्वना । यज्वभ्याम् ॥ ब्रह्मणः । ब्रह्मणा ।

इन्हन्पूर्वाऽयम्पां शौ । ६ । ४ । १२ ॥

विति बोधयितु पुनरुपादानाद्भवत्यन्वादेशः । डोविति । उत्तरपदपरके डौ  
परतो न डिसम्बुद्धोरिति नलोपप्रतिषेधो न प्रवर्तते, किन्तु 'नलोपः प्राति-  
पदिके'ति नलोपो भवत्येवेति वार्तिकार्थः ।

इत्यसिद्धत्वात्=इत्यनेन शास्त्रेण सुब्विवित्वेन नलोपस्याऽसिद्धतया,  
राजभ्यामित्यत्र 'सुपि चे'ति दीर्घः, 'राजभ्य' इत्यत्र 'बहुवचने झली'त्येत्वम्,  
राजभिरित्यत्र 'अतो भिस ऐस्' इत्यैस्त्वञ्च नैत्यर्थः । इष्टवान्--यज्वा =  
सविधिकृतयागः । सुयजोर्ध्वनिप् । 'यज्वा तु विधिनेष्टवानित्यमरः । ब्रह्मा =

१ डि और सम्बुद्धि परे रहते नलोप नहीं हो ।

२ उत्तरपदपरक डि परे रहते 'न डिसम्बुद्धोः' यह निषेध प्रवृत्त नहीं  
होय । अर्थात् नलोप होता ही है । ३ सुब्विधि स्वरविधि संज्ञाविधि और कृत्  
परक तुग् विधि में ही नलोप असिद्ध होता है-अन्यत्र नहीं ।

४ वकारान्त मकारान्त संयोग से परे जो अन् का अकार उसका लोप नहीं  
होय । ५ इन् ण् पूप् और अयम्, इनकी उपधा को दीर्घ हो तो शि परे  
रहत ही होय अन्यत्र नहीं होय ।

एषां शावेवोपधाया दीर्घो नाऽन्यत्र । इति निषेधे प्राप्ते ॥

सौ च । ६ । ४ । १३ ॥

इन्द्रादीनामुपधाया दीर्घः स्यादसन्धुद्धौ सौ परे । वृत्रदा ।  
हे वृत्रहन् ॥

एकाञ्चुत्तरपदे णः ८ । ४ । १२ ॥

एकाञ्चुत्तरपदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्यान्निमित्तापरस्य  
प्रातिपदिकान्तनुम्बिमक्तिस्थस्य नस्य णः स्यात् । वृत्रहणौ ॥

हो ह्यन्तेर्जिपन्नेषु । ७ । ३ । ५४ ॥

जिति णिति च प्रत्यये नकारे च परे ह्यन्तेर्हकारस्य कुत्रं स्यात् ।  
वृत्रक्षः—इत्यादि ॥ एवं शार्ङ्गिन् । यशस्विन् । अयमन् । पूनन् ॥

मधवा बहुलम् । ६ । ४ । १२८ ॥

मधवन्शब्दस्य वा 'तृ' इत्यन्तादेशः स्यात् । ऋश् ।

उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः । ७ । १ । ७० ॥

प्रजापतिर्ब्राह्मणश्च । 'सर्वनामस्थाने' चाऽसम्बुद्धावित्येव सिद्धं नियमार्थ-  
मिदमत आह—शावेवेति । शावेवेति नियमात्सौ दीर्घस्याऽप्राप्तिराह—सौ-  
च । वृत्रं हतवान्—वृत्रहा=इन्द्रः ।

शार्ङ्गि-शृङ्गनिर्मितं धनुः—अस्त्यस्य—शार्ङ्गि=विष्णुः ।

अर्यमा=आदित्यः । पूषा—सूर्यः । मधवा=इन्द्रः ।

१ इन्द्रादि की उपधा को दीर्घ होय सम्बुद्धि भिन्न सु परे रहते ।

२ एक अच् है उत्तरपद में जिसके ऐसा जो समास, उस समास में पूर्वपद  
में स्थित निमित्त [ रेफ प्रकार ] से परे जा प्रातिपदिकान्त, नुन् और विभक्तिस्थ  
नकार, उसको णकार हो समानपद में । ३ अच् णिच् प्रत्यय परे रहते और  
नकार परे रहते हन् धातु के हकार को कुत्त होय ।

४ मधवन् शब्द को तृ अन्तादेश होय विकल्प करके । ५ वातुभिन्न जो उगित  
और नलोपी जो अब्रति, उनको नुम् का आगम होय, सर्वनामस्थान परे रहते ।

अधातोरुगितो नलोपिनोऽश्वतेश्च नुमागमः स्यात्सर्वनामस्थाने  
परे । मववान् । मधवन्तौ । मधवन्तः । हे मधवन् । मधवन्ध्याम् ।  
तृत्वाऽभावे-मधवा । सुटि-राजवत् ॥

श्वयुवसंधोनामताद्धिते । ६ । ४ । १३३ ॥

अन्नन्तानां भसंज्ञकानामेषामतद्धिते परे सम्प्रसारणं स्यात् ।  
मघोनः । मघवन्ध्याम् । एवं श्वन् । युवन् ॥

न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् । ६ । १ । ३७ ॥

सम्प्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः सम्प्रसारणं न स्यात् । इति  
यकारस्य नेत्वम् । अतएव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्व सम्प्रसारणम् ।  
यूनः । यूना । युवन्ध्याम्-इत्यादि ॥ अर्वा । हे अर्वन् ।

अवर्णस्त्रसौवनजः । ६ । ४ । १२७ ॥

नभा रहितस्याऽर्वन्नित्यस्याऽङ्गस्य 'तृ' इत्यन्तादेशः स्यान्न तु  
सौ । अर्वन्तौ । अर्वन्तः । अर्वद्भ्यामित्यादि ॥

सुटि=सर्वनामस्थाने । राजवत्=राजञ्छब्दवद्रूपाणि बोध्यानीत्यर्थः ।

श्वेति । श्वा, श्वानौ, श्वानः । श्वान, श्वानौ, शुनः । शुना, श्वभ्या,  
श्वमि । शुने, श्वभ्या, श्वभ्यः । शुन, श्वभ्या, श्वभ्यः । शुनः, शुनो,  
शुनाम् । शुनि, शुनोः श्वसु । हे श्वन् । एवं-युवा, युवानौ, युवानः । युवानं,  
युवानौ, यूना । यूना, युवन्ध्यामित्यादि । अर्वा=घोटकः ।

१ अन्नन्त भसंज्ञक जो श्वन् युवन् मघवन् शब्द इनका तद्धितभिन्नप्रत्यय  
परे रहते 'तृ' अन्तादेश होय ।

२ सम्प्रसारण परे रहते पूर्व यण् को सम्प्रसारण नहीं होय ।

३ नञ्रहित जो अर्वन् यह अङ्ग उसको 'तृ' अन्तादेश हो, सु परे रहते  
नहीं होय ।

पथिमथ्यसुजाभात् । ७ । १ । ८५ ॥

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे ॥

इतोऽत्सर्वनामस्थाने । ७ । १ । ८६ ॥

पध्यादेरिकारत्याऽकारः स्यात्सर्वनामस्थाने परे ॥

थो न्यः । ७ । १ । ८७ ॥

पथिमथोस्वस्य न्यादेशः स्यात् सर्वनामस्थाने परे । पन्थाः ।

पन्यानौ । पन्यानः ॥

भस्थ टेलोपः । ७ । १ । ८८ ॥

भसञ्ज्ञकस्य पध्यादेष्टेलोपः स्यात् । पयः । पथा । पथि-  
भ्याम् ॥ एवं मथिन् । ऋभुक्षिन् ॥

पान्ता नान्ता पद् । १ । १ । ८९ ॥

पान्ता नान्ता च सङ्ख्या षट्संज्ञा स्यात् । पञ्चन्शब्दो नित्यं  
बहुवचनान्तः । पञ्च २ । पञ्चभिः । पञ्चभ्यः २ । जुट् ॥

पथिमथि । आ आदिति प्रश्लेषेण शुद्धाया एव व्यक्तेर्दिवानाभा-  
पुनासिकः ।

इतोऽत् । इत् इत्यत्र अदित्यत्र च तपरकरणं स्पष्टार्थम् ।

थो न्यः । थ.—पठ्यन्तं, न्यः—प्रथमान्तम् । पथिमथिग्रहण-  
मनुवर्त्तते, ऋभुक्षिग्रहणं निवृत्तं, तत्र थकाराऽभावात् । अन्था.—मन्थनदण्डः ।  
ऋभुक्षा इन्द्रः । पञ्चेति । पञ्चेत्यत्र जश्शमोः ‘पञ्म्यो लु’गिति लुक् ।  
नलोपः । जुडिति । ‘पट्चतुर्भ्यश्चे’त्यनेन पञ्चानामित्यत्र नुडित्यर्थः ।

१ पथिन् मथिन् ऋभुक्षिन् इनको आकार अन्तादेश हो सु परे रहते ।

२ पध्यादिक का जो इकार, उसको अकार अन्तादेश हो सर्वनामस्थान परे  
रहते । ३ पथिन् मथिन् के थकार को ‘न्य’ आदेश होय, सर्वनामस्थान परे  
रहते । ४ भसञ्ज्ञक जो पध्यादि, उनकी टि का लोप होय ।

५ पान्त नान्त जो संख्या उसकी षट्संज्ञा होय ।

नोपधायाः । ६ । ४ । ७ ॥

नान्तस्योपधायाः दीर्घः स्थानामि परे । पञ्चानाम् । पञ्चसु ॥

अष्टन आ विभक्तौ । ७ । २ । ८४ ॥

अष्टन आत्वं वा स्याद्धलादौ विभक्तौ ॥

अष्टाम्य औश् । ७ । १ । २१ ॥

कृताऽऽकारादष्टनः परयोजश्शसोरौश् स्यात् । 'अष्टम्य' इति वक्तव्ये कृताऽऽत्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति । अष्टौ २ । अष्टामिः । अष्टाम्यः २ । अष्टानाम् । अष्टासु । आत्वाऽभावे-अष्ट, अष्ट इत्यादि पञ्चवत् ॥

नोपधायाः । नेति लुतपठ्यन्तम्, उपधायाः-पठ्यन्तम् । पञ्चनृशब्दा-  
दामि 'षट्चतुर्भ्यः' इति नुटि नलोपस्याऽसिद्धत्वात् पूर्वं 'नोपधाया' इति दीर्घ-  
ततः स्वादिष्विति सूत्रेण पञ्चनित्यस्य पदत्वान्नलोपः प्रातिपदिकेति नलोपे  
'पञ्चाना'मिति सिद्धम् । अष्टम्य इति । ननु आत्त्वविधायके 'अष्टन आ  
विभक्ता'वित्यत्र हलीत्यस्यापकर्षेण जश्शसोर्हलादित्वाऽभावादात्त्वाऽप्रवृत्त्या  
जश्शसो. परतोऽष्टञ्छन्दस्य कृताऽऽकारता कथमत आह-अष्टम्य इतीति ।  
'अष्टाम्य औशि'त्यत्र कृतात्त्वस्याऽष्टाशब्दस्यानुकरणं कृत्वा ततो भ्यसि अष्टाम्य  
इति रूपं, न तु अष्टनृशब्दस्य लक्षणवशसम्पन्नाऽऽकारस्य रूपं, तथा सति  
मात्रालाघवेन 'अष्टम्य' इत्येव वक्तव्यं स्यात् । 'दीर्घान्तादष्टनः परा असर्व-  
नामस्थानविभक्तिरुदात्ता' इत्यर्थके 'अष्टनो दीर्घा'दिति सूत्रे दीर्घग्रहणादा-  
त्त्वस्य वैकल्पिकत्वात् । एवञ्च 'अष्टाम्य' इति कृतात्त्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये  
आत्वं ज्ञापयतीति युक्तमेवोक्तम् । अष्टानामिति । अष्टन-आमित्यत्र 'षट्-  
चतुर्भ्यश्चे'ति नुटि सन्निपातपरिभाषाया अनित्यत्वादष्टन आ विभक्तावित्या-

१ नान्त की उपधा को दीर्घ होय नाम् परे रहते । २ अष्टन् शब्द को आत्व होय विकल्प करके हलादि विभक्ति परे रहते । ३ कृताऽऽकार जो अष्टन् शब्द, उससे परे जो जस् शस्-उनको औश् आदेश होय ।

ऋत्विग्धृन्तदिभ्युणिमञ्चुभुजिभ्योऽन् । ३ । २ । ५२

एभ्यः क्तिन् स्यात् । अन्तेः सुभ्युपदे । युजिभ्योः केवलयोः ।

कुश्चेर्नलोपाऽभावश्च निपात्यते । कनाविता ॥

कृदतिङ् । ३ । १ । ९३ ॥

अत्र=सन्निहिते धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात् ॥

वेरपृक्तस्य । ६ । १ । ६७ ॥

अपृक्तस्य वस्य लोपः स्यात् ॥

किन्प्रत्ययस्य कृत् । ८ । २ । ६२ ॥

त्वमिति केचित् । परे तु नुटि 'नोपधाया' इति दीर्घे नलोपे च अद्यानामिति रूपमित्याहुः ।

'स्पृशोऽनुदके' इत्यतः क्तिनित्यनुवर्तते, तदाह क्तिनिति । ऋता-  
नुपपदे यजेः क्तिन् । धृष्णोतेद्वित्वमन्तोदात्तत्वञ्च निपात्यते । नृजेः कर्मणि  
क्तिन्, अमागमश्च निपात्यते । दिशेः कर्मणि क्तिन् । उत्पूर्वात्किहोः क्तिन्,  
तकारलोपः, पत्वञ्च । अन्तेः सुभ्युपपदे क्तिन् । युजिभ्योः केवलयोः क्ति-  
त्याद्यलाक्षणिकमपि किञ्चित्कार्यं निपातनाद्यभ्यते ।

कनाविताविति । कस्य-'लशकतद्धिते' इत्यनेन, नस्य 'हलन्त्य'मित्यनेन  
इत्सञ्ज्ञा, ततश्च 'तस्य लोप' इति लोप इत्यर्थः, इकारस्त्वधारणार्थ इत्यवधेयम् ।

कृदतिङ् । कृत् प्रथमान्तम्, अतिङ्-प्रथमान्तम् । सन्निहिते=धातोरित्य-  
विकारे । तेन 'धातोः कर्मण' इत्यविकारविहितणिजादीना न कृत्सञ्ज्ञा । 'लोपो-  
व्यो'रित्यतो 'लोप' इत्यनुवर्तते । 'वे'रिति उत्पृष्टानुन्धनिर्देशात् किन्किवादीना

१ ऋत्विग् आदि शब्द किञ्चनन्त निपातित हो । अन्नु धातु से सुप् उपपद रहते  
क्तिन् होय । युजि भुश्च से केवल से क्तिन् होय । कुश्च धातु के नकार का लोप नहीं हो ।

२ सन्निहित धात्वधिकार में पठित जो तिङ्भिन्न प्रत्यय उनकी कृत् संज्ञा  
होय । ३ अपृक्त वकार का लोप हो । ४ क्तिन् प्रत्यय जिससे किया जाय उसको  
कवर्ग अन्तादेश होय पदान्तमें ।

क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः स्यात् पदान्ते ।  
अस्याऽसिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वम् । ऋत्विक्-ऋत्विग् । ऋत्विजौ ।  
[ ऋत्विजः ] । ऋत्विग्भ्याम् ॥

युजेरसमासे । ७ । १ । ७१ ॥

युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे । सुलोपः । संयोगान्त-  
लोपः । कुत्वेन नस्य ङः । युङ् । अनुस्वारपरसवर्णौ । युञ्जौ ।  
युञ्जः । युग्भ्याम् ॥

चो कुः । ८ । २ । ३० ॥

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्जलि पदान्ते च । सुयुक्-सुयुग् ।  
सुयुजौ । सुयुग्भ्याम् ॥ खन् । खञ्जौ । खन्भ्याम् ॥

ब्रश्चभ्रस्जभृजभृजयजराजभ्राजच्छराषः । ८ । २ । ३६ ॥

ब्रश्चादीनां सप्तानां छशाऽन्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्यात्  
ग्रहणम् । नुमिति । 'उगिदचा'मित्यतः 'सर्वनामस्थाने' इति 'इदितो  
नुम्धातो'रित्यतो नुमिति चानुवर्तने ।

नस्येति । 'क्विन्प्रत्ययस्य कु'रित्यनेनेत्यर्थः । युनक्तीति युङ् ।

युङ्ङिति । 'नश्चापदान्तस्ये'ति नुमो नस्यानुस्वारः, 'अनुस्वारस्याययी'-  
ति परसवर्णेन जकारः, परसवर्णस्यासिद्धत्वाच्चा कुरिति कुत्व नेत्यवधेयम् ।

- सु० युनक्तीति सुयुक् । सुपूर्वाद्युजेः 'सत्सूद्विषे'ति किपि 'उपपदमति'-  
ङिति समासः । असमासे इत्युक्तेरत्र 'युजेरसमासे' इति नुम्नेत्याशयः ।

- खन्निति । अत्र सकारस्य हल्ङ्थादिलोपः, जकारस्य संयोगान्तलोपः ।  
ततो निमित्तस्य जकारस्यापायादनुस्वारपरसवर्णयोर्निवृत्त्या नकार एव श्रूयते ।

१ युज् (धातु) को नुम् हो सर्वनामस्थान परे रहने, समास में न हो ।

२ चवर्ग को कवर्ग आदेश होता है झल् परे रहते और पदान्त में ।

३ ब्रश्चादि सात और छान्त शान्त इनको षकार अन्तादेश होय झल् परे  
रहते और पदान्त में ।



झलि पदान्ते च । जश्चत्वे । राट्-राड् । राजौ । राजः । राड्-  
भ्याम् । एव विभ्राट् । देवेट् । विश्वसृट् । \*परी व्रजे पः पदान्ते ।  
परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्यादीर्घश्च पदान्ते पञ्चमपि । परित्राट् ।  
परित्राजौ ।

विश्वस्य चतुराद्योः । ६ । ३ । १२८ ॥

विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः स्याद्वसौ राट्शब्दे च परे ।  
विश्वाराट्, विश्वाराड् । विश्वराजौ । विश्वाराड्भ्याम् ॥

स्कोः संयोगाद्योरन्ते च । ८ । २ । २९ ॥

पदान्ते झलि च परे यः संयोगस्तदाद्योः सकारककारयो-  
र्लोपः स्यात् । भृट् । सस्य रेचुत्वेन शः । 'झलोज्झशी'ति  
शस्य जः । भृजौ । भृङ्भ्याम् ॥ त्यदाद्यत्वं परत्पत्वं च ।

तदोः सः सावनन्त्ययोः । ७ । २ । १०६ ॥

राजते इति राट् । विशेषेण भ्राजते इति विभ्राट् । देवान् यजतीति  
देवेट्=देवपूजकः । विश्वं सृजतीति विश्वसृट्=ब्रह्मा ।

सूत्रे राडिति पदान्तोपलक्षणार्थं, चत्वंमविवक्षितं, व्याख्यानादतो जश-  
न्तेऽपि दीर्घस्तदाह-विश्वाराडिति । विश्वस्मिन् राजते इति विश्वाराट्=  
सूर्यः । परित्यज्य सर्वं व्रजतीति परित्राट्=भिक्षुः । 'भिक्षु परित्राट् कर्मन्दी'-  
त्यमरः । पदस्येत्यविकृते, 'झलो झलौ'त्यतो झलीत्यनुवर्तते । पदस्येति  
झलीति अन्ते इति च संयोगस्य लुप्तपद्व्यन्तस्य विशेषणम् । तदाह  
पदान्ते इति । भृजतीति भृट्=भर्जनकर्ता ।

१ परि उपपद रहते व्रजधातु से क्विप् होय, (आर व्रज'को) दीर्घ होय, और  
पकार हो पदान्त में । २ विश्व शब्द को दीर्घ अन्तादेश होय वसु और राट्  
शब्द परे रहते । ३ संयोग के आदि का जो सकार और ककार उसका लोप  
होय पदान्त में और झलपरे रहते ।

४ त्यदादियों का जो-अनन्त्य तकार दकार उमको सकार आदेश हो  
सु परे रहते ।

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात्सौ । स्यः । त्यौ ।  
त्ये । सः । तौ । ते । यः । यौ । ये । एषः । एतौ । एते ॥

डे प्रथमयोरम् । ७ । १ । २८ ॥

युष्मदस्मद्धां परस्य डे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चाऽऽदेशः  
स्यात् ॥

त्वाहौ सौ । ७ । २ । ९४ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहावादेशौ स्तः सौ परे ॥

शेषे लोपः । ७ । २ । ९० ॥

आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतो युष्मदस्मदोरनन्त्यस्य लोपः  
स्यात् । त्वम् । अहम् ।

युवावौ द्विवचने । ७ । २ । ९२ ॥

द्वयोरुक्तौ युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ ।

‘युष्मदस्मद्धां, सौ’ शित्यतो ‘युष्मदस्मद्धा’ मिति वर्तते । ‘डे’ इति  
छत्तषष्ठीकं पृथक्पदम् । प्रथमा च प्रथमा च प्रथमे, तयोः प्रथमयोः । एकः  
प्रथमाशब्दः प्रथमाविभक्त्यर्थकः, अपरो द्वितीयाविभक्त्यर्थकस्तदाह  
प्रथमेत्यादि ।

उक्तादन्यः शेषः, आत्वं यत्वं च प्रागुक्तम् । एवञ्च, आत्वयत्वनिमित्तेतर-  
विभक्तावित्यर्थलाम् स्पष्टः । तदाह-आत्वेति ।

उक्तिर्वचनं, द्वयोर्वचनं द्विवचनमिति योगार्थमभिप्रेत्याह-द्वयोरुक्ता-

१ युष्मद् अस्मद् से परे जो डे और प्रथमा द्वितीया विभक्ति उनको अम्  
आदेश होय ।

२ युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त भाग को ‘त्व’ ‘अह’ आदेश होय सु परे रहते ।

३ आत्वयत्वनिमित्त से इतर विभक्ति परे रहते युष्मद् अस्मद् के अन्त का लोप होय ।

४ युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त भाग को ‘युव’ ‘आव’ आदेश होय द्वित्व की  
उक्ति में, विभक्ति परे रहते ।

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् । ७ । २ । ८८ ॥

औड्यंतयोरावं लोके । युयम् । आवाम् ॥

यूयंवयौ जसि । ७ । २ । ९३ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य यूयंवयौ स्तो जसि । यूयम् । वयम् ॥

त्वमौविकवचने । ७ । २ । ९७ ॥

एकस्योक्तौ युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ।

द्वितीयायां च । ७ । २ । ८७ ॥

अनयोरात्स्यात् [ द्वितीयायाम् ] । त्वाम् । माम् ॥

शसो नः । ७ । १ । २९ ॥

आभ्यां परस्य शसो नः स्यात् । अमोऽपनादः

आदेः परस्य । संयोगान्तलोपः । युष्मान् । अस्मान् ॥

द्योऽचि । ७ । २ । ८६ ॥

अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशोऽजादौ परतः । त्वया । मया ॥

विति । ईदृगर्थे वचनग्रहणमेव मानम्, अन्यथा 'द्वित्वे' इत्येव ब्रूयाम्, 'अष्टन आ विभक्ता वित्यतो विभक्तावित्यस्याधिकृततया द्वित्वे या विभक्तिस्तस्या परत इत्यर्थस्य सम्भवात् । 'एकवचने' इत्यत्र उक्तिर्वचनम्, एकस्य वचनमिति योगार्थाभिप्रायेणाह—एकस्योक्ताविति ।

शसो नेति । नेत्यविभक्तिकम् ।

१ युष्मद् अस्मद् को आकार होय प्रथमा द्विवचन परे रहते भाषा नाम लोक में । २ युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त भाग को 'यूय' 'वय' आदेश होय जस् परे रहते । ३ एक की उक्ति में (एकत्व की विवक्षा में) युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त भाग को 'त्व' 'म' आदेश होय विभक्ति परे रहते ।

४ युष्मद् अस्मद् को आकार अन्तादेश होय द्वितीया विभक्ति परे रहते ।

५ युष्मद् अस्मद् से परे जो शस् उसको न आदेश होय । ६ युष्मद् अस्मद् को यकार आदेश होय, अनादेश अजादि विभक्ति परे रहते ।

युष्मदस्मदोरनादेशो । ७ । २ । ८६ ॥

अनयोरात्स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ । युवाभ्याम् । आवा-  
भ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः ॥

तुभ्यमह्यौ डयि । ७ । २ । ९५ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौ स्तो डयि । टिलोपः । तुभ्यम् ।  
मह्यम् ॥

भ्यसोऽभ्यम् ७ । १ । ३० ॥

आभ्यां परस्य भ्यसोऽभ्यम् इत्यादेशः स्यात् । युष्मभ्यम् ।  
अस्मभ्यम् ॥

एकवचनस्य च । ७ । १ । ३२ ॥

आभ्यां पञ्चम्येकवचनस्य डसेत् स्यात् । त्वत् । मत् ॥

पञ्चम्यौ अत् । ७ । १ । ३१ ॥

आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत्स्यात् । युष्मत् । अस्मत् ॥

तवममौ डसि । ७ । २ । ९६ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो डसि ॥

युष्मदङ्गादभ्यां डसोऽश् । ७ । १ । २७ ॥

[ युष्मदस्मद्वर्था परस्य डसोऽशादेशः स्यात् ] ।

तुभ्यमह्यौ-प्रथमान्तं, डयि-सप्तम्यन्तम् ।

१ युष्मद् अस्मद् को आकार आदेश होय अनादेश हलादि विभक्ति परे रहते ।

२ युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त भागको 'तुभ्य' 'मह्य' आदेश हो डे परे रहते ।

३ युष्मद् अस्मद् से परे जो भ्यस् उसको अभ्यम् आदेश होय ।

४ युष्मद् अस्मद् से परे जो पञ्चमी का एकवचन डसि उसको 'अत्' आदेश होय ।

५ युष्मद् अस्मद् से परे जो पञ्चमी का भ्यस् उसको 'अत्' आदेश हो ।

६ युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त भाग को तव मम आदेश होय डस् परे रहते ।

७ युष्मद् अस्मद् से परे जो डस् उसको अश् आदेश होय ।

तव । मम । युवयोः । आवयोः ॥

साम आकम् । ७ । १ । ३३ ॥

आभ्यां परस्य साम आकम् स्यात् । युष्माकम् । अस्माकम् ।

त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः । युष्मासु । अस्मासु ॥

युष्मद् अस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्ययोर्वाभावौ

८ । १ । २० ॥

पदात्परयोरपादादौ स्थितयोरनयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वाभ् नौ  
इत्यादशौ स्तः ॥

बहुवचनस्य वस्नसौ । ८ । १ । २१ ॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः ॥

साम इति । सकारेण सहित आम्-साम्, तस्य-साम् । ननु युष्मद्  
आमित्यादौ आकमादेशात्पूर्वमनादेशत्वात् 'यो ची'ति यत्वेन भाव्यं, ततश्च  
'शेषे लोप' इत्यस्याऽप्राप्त्या दलोपाभावेनाऽवर्णान्तत्वाभावादामि सर्वनाम्न  
इति सुटोऽप्राप्त्या ससुट्कनिर्देशो व्यर्थ इति चेन्न; आम् आकमित्युच्यमाने-  
कृते आकमि दस्य शेषे लोपे सति अवर्णान्तत्वात्प्राप्तस्य भाविनः सुटो निवृ-  
त्त्यर्थं ससुट्कनिर्देशस्यावश्यकत्वादित्यन्यत्र विस्तरः । एवञ्च-युष्मद्-आम्,  
अस्मद्-आमित्यत्र आभ्येव साम्त्वस्याहार्यारोपेण तस्याकमादेशे शेषे लोपे च  
'युष्माकम्' 'अस्माक'मिति सिद्धम् ।

उक्तविधयोः=पदात्परयोरपादादौ च स्थितयोः ।

१ युष्मद् अस्मद् से परे जो साम् ( सुट् सहित आम् ) उसको आकम्  
आदेश होय ।

२ पद से परे और अपादके आदिमें स्थित जो षष्ठी चतुर्थी द्वितीयाविशिष्ट  
युष्मद् अस्मद् शब्द उनको क्रम से 'वाम्' 'नौ' आदेश होय ।

३ पद से परे अपाद के आदिमें स्थित जो-षष्ठी चतुर्थी द्वितीया बहुवचनान्त-  
विशिष्ट-युष्मद् अस्मद् शब्द उनको क्रम से 'वस्' 'नस्' आदेश होय ।

तेमयोवेकवचनस्य । ८ । १ । २२ ॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः ॥

त्वामौ द्वितीयायाः । ८ । १ । २३ ॥

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा' मा इत्यादेशौ स्तः ।

श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ।

स्वामी ते मेऽपि स हरिः, पातु वामपि नौ विभुः ॥१॥

सुखं वां नौ ददात्वशिशः पतिर्वामपि नौ हरिः ।

सोऽव्यादो नः शिवं वो नो दधात्सेव्योऽत्र वः स नः ॥२॥

तेमयो-प्रथमान्तम्, एकवचनस्य-षष्ठ्यन्तम् । श्रीश इति ।  
श्रिया ईशः-श्रीशः=विष्णुः, त्वा=त्वाम्, इह=ससारे, अवतु=रक्षतु ।  
मा=माम्, अपि-इह-संसारे अवतु । अत्र द्वितीयैकवचनान्तयोर्युष्मदस्म-  
दोस्त्वामौ द्वितीयाया इति त्वामाऽऽदेशौ । सः=श्रीशो विष्णुः-ते=तुभ्य, मे=  
मह्यम्-अपि शर्म=सुखं दत्तात्=ददातु । अत्र तुभ्यमित्यस्य मह्यमित्यस्य  
च चतुर्थ्यन्तस्य स्थाने 'तेमयोवेकवचनस्ये'ति ते मे आदेशौ । सः=जगत्प्र-  
सिद्धो हरिः-ते=तव, मे=मम अपि-स्वामी=प्रभुः । अत्र षष्ठ्येकवचनान्तयोः  
तव ममेत्यनयोः स्थाने ते मे आदेशौ ।

द्विवचनान्तानुदाहरति-पात्विति । विभु=व्यापको हरिः-वां=युवां  
नौ=आवाम्-अपि पातु=रक्षतु । ईशः=प्रभुर्हर-वां=युवाभ्या, नौ=आ-  
वाभ्या सुखं=शर्म-ददातु=प्रेयच्छतु । हरिः-वा=युवयोः, नौ=आवयोः-  
अपि-पतिः=स्वामी, रक्षक इति यावत् । अत्र षष्ठीचतुर्थीद्वितीयाद्विवचना-  
न्तयोर्युष्मदस्मदोर्वांनावादेशौ । बहुवचनान्तानुदाहरति स इति ।

स =हरि-वः=युष्मान्, नः=अस्मान्-अव्यात्=रक्षतु । व=युष्म-

१ पद से परे अपाद के आदि में स्थित जो षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्त युष्मद् अस्मद् शब्द उनको 'ते' 'मे' आदेश होय ।

२ पद से परे अपाद के आदि में स्थित जो द्वितीयैकवचनान्त युष्मद् अस्मद् शब्द उसको 'त्वा' 'मा' आदेश होय ।

॥समानवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः । ॥एको-  
तिङ् वाक्यम् ॥ तेनेह न । ओदनं पच तव भविष्यति । इह  
तु स्यादेव । शालीनां ते ओदनं दास्यामि । ॥एते वान्नांवादय  
आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः । अन्वादेशे तु नित्यं स्युः ।  
धाता ते भक्तोऽस्ति. धाता तव भक्तोऽस्ति वा । तस्मै ते नम  
इत्येव ॥ सुपात्-सुपाद् । सुपादौ ॥

पादः पठ् । व । ४ । १३० ॥

पाञ्चदन्तं यदङ्गं भे तदवयवस्य पाञ्चदस्य पदादेशः ।  
स्यात् । सुपदः । सुपदा । सुपाङ्गयाम् ॥ अग्निमत्-अग्निमद् ।  
अग्निमथौ । अग्निमथः ॥

भ्यं, नः=अस्मभ्यं, शिवं=कल्याणं दधात=प्रयच्छतु । अत्र=ससारे, सः=  
हरिः वः=युष्माकं, नः=अस्माकं-सेव्य=पूजनीयः । अरणमिति यावत् ।  
अत्र षष्ठीचतुर्थीद्वितीयावहुवचनान्तयार्चुष्मदस्मदोर्वस्नधावादेशाविनि श्लोक-  
द्वयेन युष्मदस्मदादेशसद्ब्रह्मः ।

एकतिङिति । एकतिङन्तघटितमित्यर्थः । ए=तिङन्तार्थनिष्ठमुख्य-  
विशेष्यतानिरूपितप्रकारताप्रयोजकत्वमेकवाक्यत्वमिति यावत् । एवञ्च ओदनं  
पचेत्यस्य तिङन्तद्वयघटितत्वेनैकवाक्यत्वाऽभावाच्च तवेत्यस्य 'ते' आदेशः ।

अनन्वादेशे उदाहरति-धातेति । अनन्वादेशः उदाहरति-तस्मै ते  
इति । सुष्ठु पादावस्य सुपात् । अग्नि मथ्नातीति-अग्निमत्=अरण्यादिना  
यज्ञेऽग्नेरुत्पापकः ।

१ समान वाक्यमें युष्मद् अस्मद् को उक्त आदेश हों । २ जो एकतिङन्तार्थमुख्य-  
विशेष्यकबोधजनक हो वह वाक्य कहलाता है । ३ पूर्वोक्त जो वान् नौ आदि  
आदेश हैं वे अनन्वादेश में विकल्प से होय । अनन्वादेशमें तो नित्य ही हों ।

४ ग्राह्यशब्दान्त जो भसञ्शक अङ्ग, तदवयव जो पाद् शब्द उसको 'पद'  
आदेश होय ।

१ 'एकवाक्ये' इति पाठान्तरम् ।

अनिदिनां हलं उपधायाः किति । ६ । ४ । २४ ॥

हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः स्यात् किति  
डिति च । नुम् । संयोगान्तस्य लोपः । नस्य कुत्वेन डः । प्राङ् ।  
प्राञ्चौ । प्राञ्चः ॥

अर्चः । ६ । ४ । १३८ ॥

लुप्तनकारस्याऽञ्चतेर्भस्याऽकारस्य लोपः स्यात् ।

चौ । ६ । ३ । १३८ ॥

लुप्ताऽकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याऽणो दीर्घः स्यात् । प्राचः ।  
प्राचा । प्राग्भ्याम् ॥ प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रतीचः । प्रत्यग्भ्याम् ॥  
उदङ् । उदञ्चौ ॥

उर्द ईत् । ६ । ४ । १३९ ॥

उच्छन्दात्परस्य लुप्तनकारस्याऽञ्चतेर्भस्याऽकारस्य ईत् स्यात् ।  
उदीचः । उदीचा । उदग्भ्याम् ॥

समः समि । ६ । ३ । १३३ ॥

नुमिति । नुम् = उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातो'रित्यनेन नुम् । लोपः =  
चकारस्य संयोगान्तलोपः । नस्य = नुमो नकारस्य । कुत्वेन = किन्प्रत्ययस्ये-  
त्यनेन विहितेन कुत्वेन । प्रकर्षेण अञ्चतीति प्राङ् = प्राचीनः ।

चौ = सप्तम्यन्तम् । उद ईति । उदः पञ्चम्यन्तम्, ईत् = प्रथमान्तम् ।  
'अच' इत्यनुवर्तते, 'अल्लोपोऽन' इत्यतः - अल्लोप इति च, 'अस्ये'त्यधि-  
कृतं, तदाह - भस्येति । 'अच' इत्यस्यापवादः । उदञ्चतीत्युदङ् । समः -

१ हलन्त जो अनिदिता अङ्ग उसकी उपधा के नकार का लोप होय कित् डित्  
परे रहते । २ लुप्त नकार जो अञ्चति उसके भस्यक अकार का लोप हो ।

३ लुप्त हुआ है नकार व अकार जिसका ऐसा जो अञ्चति, वह परे रहते पूर्व  
अण् को दीर्घ हो । ४ उच्छन्द से परे जो लुप्तनकारक अञ्चति उसके भस्यक  
अकार को ईकार हो । ५ वप्रत्ययान्त अञ्चति परे रहते सम् को समि आदेश हो ।



वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे [ समः सम्यादेशः स्यात् ] सम्यङ् ।

सम्यञ्चौ । समीचः । सम्यगभ्याम् ॥

सहस्यं सञ्चिः । ६ । ३ । ९५ ॥

तथा । [वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे सहस्यसञ्च्यदेशः स्यात्] । सञ्च्यङ् ॥

तिरिस्सस्तिर्भलोपे । ६ । ३ । ९४ ॥

अलुप्ताकारेऽञ्चतौ वप्रत्ययान्ते परे तिरसस्तिर्यादेशः स्यात् ।

तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिरश्चः । तिर्यगभ्याम् ॥

नाऽञ्चैः पूज्याभ्याम् । ६ । ४ । ३० ॥

पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न स्यात् । प्राङ् । प्राञ्चौ ।

नलोपाऽभावादलोपो न । प्राञ्चः । प्राङ्म्याम् । प्राङ्क्षु ॥ एवं पूजार्थे

प्रत्यङ्ङादयः । ऋङ् । ऋञ्चौ । ऋङ्म्याम् ॥

षष्ठ्यन्तं, समि-लुप्तप्रथमान्तम् । 'विश्वदेवयो'रित्यन्- 'अवतावप्रत्यये'इत्यनुवर्तते । सङ्गतमञ्चतीति सस्यङ् । सहाञ्चतीति सञ्च्यङ्=मित्रम् । तिरस-षष्ठ्यन्तं, तिरि-लुप्तप्रथमान्तम्, अलोपे-सप्तम्यन्तम् । न विद्यते लोपो यस्यासौ-अलोपः, तस्मिन्-अलोपे इति बहुव्रीहिः । अञ्चतिरन्यपदार्थः । अवयवद्वारको लोपः समुदाये उपचर्यते, इत्यत आह-अलुप्ताकारे इति ।

'अनिदिता'मित्यत 'उपधाया' इति वर्ततेऽत आह-उपधाया इति । अलोपो न='अच' इति सूत्रेणाऽकारलोपो न । तत्र 'अच' इत्यनेन लुप्तनकारस्याञ्चतेरेव ग्रहणात्पूजायाञ्चाञ्चतेर्नकारलोपाऽभावेनाऽच इत्यकारलोपविधेरप्राप्तेः ।

ऋङिति । ऋञ्चै केवलात् ऋत्विगित्यादिना क्तिन् । ऋञ्चैर्नलोपाऽभावश्च

१ अप्रत्ययान्त अञ्चति परे रहते 'सह' को 'सञ्चि' आदेश होता है ।

२ लुप्त नहीं हुआ है अकार जिसका ऐसी वप्रत्ययान्त अञ्चति परे रहते तिरस् को तिरि आदेश हो ।

३ पूजार्थक अञ्चति के उपधाभूत नकार का लोप नहीं हो ।

पयोमुक्-पयोमुग् । पयोमुचौ । पयोमुग्भ्याम् । उगित्वान्नुमि-

सान्तमहन्तः संयोगस्य ढ । ४ । १० ।

सान्तसंयोगस्य महन्तश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घः स्याद-  
सम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । महान् । महान्तौ । महान्तः । हे महन् ।  
महन्ध्याम् ॥

अत्वसन्तस्य चाऽधातोः ढ । ४ । १४ ॥

अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नाऽसन्तस्य चाऽसम्बुद्धौ सौ परे ।  
उगित्वान्नुम् । धीमान् । धीमन्तौ । धीमन्तः । हे धीमन् । शसादौ

निपातनात् । ऋङ्=कौञ्चपक्षी । अत्र चकारस्य संयोगान्तलोपः, नकारस्य  
किन्प्रत्ययस्येति कुत्वेन ढकार इति ध्येयम् ।

पयो मुच्यतीति पयोमुक्=मेघ । नुमि='उगिदचां सर्वनामस्थानेऽ-  
धातो'रित्यनेन नुमि । सान्तेति छुप्तपृष्ठीकं, महन्तः षष्ठ्यन्तं, संयोगस्य-  
षष्ठ्यन्तम् । सान्तेति संयोगस्य विशेषणं, तदाह सान्तसंयोगस्येति ।

महानिति । मध्यते पूज्यते इति महान् । 'वत्तमाने पृषन्महद्बृहज्जगच्छ-  
पृषच्चेत्युणादिसूत्रेण पूजार्थकान्महधातोः कर्मण्यतिप्रत्ययो निपात्यते, शतृषद-  
तिदेशश्च । तेन उगित्वान्नुमि सान्तमहन्त इति दीर्घं हल्ङघादिलोपे संयोगा-  
न्तलोपं च महानिति सिद्धम् । अत्वेति । अतु इति छुप्तषष्ठ्यन्तम्, अस्-  
न्तस्य-षष्ठ्यन्तम्, च-अव्ययपदम्, अधातोः-षष्ठ्यन्तम् । अत्वित्यस्या-  
ङ्गविशेषणतया तदन्तविधिः, अवातोरिति चाऽसन्तविशेषणम् । नोपधाया  
इत्यत उपधाया इति, सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धाविन्यतोऽसम्बुद्धाविति, ढलोपे  
इत्यतो दीर्घ इति, सौ चेत्यतः साविति चानुवर्तते, तदाह-अत्वसन्त-  
स्येति । प्रशस्ता धीरस्त्यस्य धीमान् । धीमत्-स इत्यत्र परं, कृताकृत-

१ सान्त जो संयोग और महन्तशब्द का जो नकार उसकी उपधा को  
दीर्घ होय सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहने ।

२ अत्वन्त की उपधा को दीर्घ होय, और धातु भिन्न जो असन्त उसकी  
उपधा को भी दीर्घ होय सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहते ।

भह्वत् ॥ भातेर्भवतुः । डित्त्वसामर्थ्यादमस्यापि टेलोपः । भवान् ।  
भवन्तौ । भवन्तः । शत्रन्तस्य—भवन् ॥

उभे अभ्यस्तम् ८ । १ । ५ ।

षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे  
स्तः ॥

नाभ्यस्ताच्छतुः ७ । १ । ७८ ॥

अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम् न स्यात् । ददत् ददद् । ददतौ ।  
ददतः ॥

जङित्यादयः ५६ ८ । १ । ८ ॥

षड् धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञाः स्युः ।  
जक्षत्—जक्षद् । जक्षतौ । जक्षतः । एवं जाग्रत् । दरिद्रत् । शासत् ।  
प्रसङ्गितया नित्यञ्च 'जगिदचा'मिति नुमं वाधित्वा वचनसामर्थ्यात्पूर्वमत्व-  
सन्तस्येति दीर्घः, अन्यथा पूर्वं नुमि अत्वनन्त्वाऽभावादौर्ध्वविधानं व्यर्थं  
स्यात् । ततश्च नुमि हल्ङ्यादिलोपे संयोगान्तलोपे च धीमानिति सिद्धम् ।

भवानिति । डवतुप्रत्ययस्योणादितया कप्रत्ययावयिस्वादिप्रत्ययवर्हिर्भू-  
तत्वेन तस्मिन्परतः पूर्वस्य भत्वाऽभावेन टेरिति टिलोपस्याऽप्राप्तावयि डित्व-  
सामर्थ्यादेव अभस्यापि टेलोपेन भवच्छब्दस्य निष्पत्तावुगित्त्वान्नुमि अत्व-  
सन्तस्येति दीर्घं हल्ङ्यादिलोपे संयोगादिलोपे च भवानिति सिद्धम् । भव-  
तीति भवन् । अत्र शतृप्रत्ययान्तस्य भवच्छब्दस्यात्यन्तत्वाभावादत्वसन्त-  
स्येति दीर्घाऽभावेन भवन् भवन्तौ भवन्त इत्येवमेव रूपाणीत्याशयः ।

ददातीति ददत्=दानं कुर्वन् । षड् धातवः=जागृ-दरिद्रा-शासु-  
चक्रासु-दीधीङ्-वेवीङ् षड् धातवः । गोपायतीति शुप्=रक्षकः ।

१ षाष्ठद्वित्वप्रकरण में जो दो विधान किए हैं वे दोनों समुदित अभ्यस्त  
संज्ञक होंगे ।

२ अभ्यस्त से परे जो शतृ उभको नुम् नहीं होय ।

३ जागृ आदि छ धातु और जक्षिति, इन सात की अभ्यस्त संज्ञा होय ।

चकासत् ॥ गुप्-गुव् । गुपी । गुपः । गुभ्याम् ॥

त्यदादिषु दशोऽन्तालोचने कञ् । ३ । २ । ६० ॥

त्यदादिषूपपदेऽक्षानार्थाद् दशोः कञ् स्याच्चात् विवन् ॥

आ सर्वनाम्नः । ६ । ३ । ९१ ॥

सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्याद् दृग्दशवतुषु । तादृक्-तादृग् ।

तादृशौ । तादृशः । तादृभ्याम् । व्रश्चेति षः । जश्चत्वे । विट्-  
विड् । विशौ । विशः । विड्भ्याम् ॥

नशेर्वा । ८ । २ । ६३ ॥

नशोः कवर्गोऽन्तादेशो वा स्यात् पदान्ते । नक्-नग्, नद्-  
नड् । नशौ । नशः । नग्भ्याम्, नड्भ्याम् ॥

स्पृशोऽनुदके विन् । ३ । २ । ५८ ॥

अनुदके सुप्युपपदे स्पृशोः विवन् स्यात् । घृतस्पृक-घृतस्पृग् ।

‘गुप् रक्षणे’-क्विप् । वैकल्पिकत्वादायप्रत्ययाऽभावः ।

आ सर्वेति । ‘आ’-इति छत्रप्रथमान्त, सर्वनाम्नः षष्ठ्यन्तम् । तादृ-  
गिति । तदुपपदात्-दृश्-धातोः क्विनि तल्लोपे ‘आ सर्वनाम्न’ इति तदो  
दकारस्याकारे दीर्घे कृदन्तत्वात्प्राप्तिपदिकत्वेन सुविभक्तौ हल्ङादिलोपे  
कुत्वस्याऽसिद्धत्वात् व्रश्चेति पत्वे जश्त्वेन ङकारे क्विन्प्रत्ययस्येति कुत्वे वावसाने  
इति चत्त्वविकल्पे च तादृक् तादृगिति रूपम् । स ङव दृश्यते, तमिव च य  
पश्यन्ति जनाः स-तादृक् । विडिति । व्रश्चेति पत्वे, जश्त्वे चत्वे हल्ङादि-  
लोपे च विडिति सिद्धम् ।

नश्यतीति-नक् । अनुदके=उदकशब्दभिन्ने सुचन्ते । घृत स्पृशतीति

१ त्यदादि उपपद रहते अक्षानार्थक दश धातु से कञ् प्रत्यय होय, चकार  
से विवन् भी होय । २ सर्वनाम को आकार अन्तादेश होय दृग् दृश् वतु परे रहते।

३ नश्को कवर्ग अन्तादेश होय विकल्प करके पदान्त में ।

४ उदकभिन्न सुचन्त उपपद रहते स्पृशधातु से विवन् प्रत्यय होय ।

घृतपृशौ । घृतस्पृशः ॥ दधृक्- दधृग् ! दधृषी । दधृपः । दधृ-  
ग्भ्याम् । रत्नमुट्-रत्नमुड् । रत्नमुषी । रत्नमुड्भ्याम् ॥ पट्, पड्  
पड्भिः । पड्भ्यः २ । षण्णाम् । पट्सु ॥ रुत्वं प्रति पत्वस्या-  
ऽसिद्धत्वात्ससञ्जुपोरिति रुत्वम् ॥

वोरुपधाया दीर्घ इकः । ८ । २ । ७६ ॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्यात् पदान्ते । पिपठीः ।  
पिपठिपौ । पिपठीर्भ्याम् ॥

नुम्विसर्जनीयशब्दवायेऽपि । ८ । ३ । ७८ ॥

एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः  
स्यात् । ध्रुत्वेन पूर्वस्य षः । पिपठीप्पु-पिपठीःपु ॥ चिकीः । चिकीर्षीः)।

घृतस्पृक् । दधृगिति । 'चधृषा प्रागल्भ्ये' इत्यस्मान् क्तात्वगित्यादिना  
किन् । द्वित्वञ्च निपातनात् । अभ्यासकार्यम् । प्रातिपदिकत्वात्स्नाद्युत्पत्तिः ।  
दधृष्-स्-इत्यत्र जश्च प्रति किन्प्रत्ययस्येति कुत्वस्याऽसिद्धत्वात्पूर्वं झलां  
जशोऽन्ते इति जश्चनेन टः, तस्य किन्प्रत्ययस्येति कुत्वेन ग, तस्य चत्वेन  
क इति प्रक्रिया । दधृक्=दृष्ट् प्रागल्भ्यश्च । रत्नानि मुष्णाति=चोरयतीति  
रत्नमुट् । पडिति-प्रदशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । जश्जसाः पड्भ्यो  
लुगिति लृक् । चश्चत्वे । षप्-आमित्यत्र पट्चतुर्भ्यश्चेति नुट् । अनामिति  
पर्युदासात्पठुन्वनिपधाऽभावे घुना घुरिति पठुत्वेन णत्वे स्वादिपिति पूर्वस्य  
पदसज्ञायां पदान्तत्वाज्जश्चन उकारे प्रत्यये भाषायामिति नित्यमनुनामिक-  
षण्णामिति सिद्धम् । पिपठीरिति । पठितुमिच्छति-पिपठिषति, पिपठिषति-  
पिपठीः=पठनाभिलाषी ।

पिपठीप्पु इति । 'वा शरी'ति वा विसर्गः ।

कर्तुमिच्छति चिकीर्षति, चिकीर्षतीति-चिकीः । चिकीर्ष-स् इत्यत्र

१ रेफ वान्त जो धातु उसकी उपधाभूत जो इक् उसको दीर्घ होय पदान्त में ।

२ नुम् विसर्जनीय शब्द इनके प्रत्येक के व्यवधान में भी इण् कवर्ग से परे  
सकार को मूर्धन्य आदेश हो ।

चिकीर्ष्याम् । चिकीर्षु ॥ विद्वान् । विद्वांसौ । हे विद्वन् ॥

वसोः सम्प्रसारणम् । ६ । ४ । १३१ ॥

वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात् । विदुषः । वसुस्रस्विति दः ।

विद्वन्ध्याम् ॥

पुसोऽसुङ् । ७ । १ । ८९ ॥

सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुसोऽसुङ् स्यात् । पुमान् । हे पुमन् ।  
पुमांसौ । पुंसः । पुम्याम् । पुंसु ॥ ऋदुशनेत्यनङ् । उशना ।  
उशनसौ । \* अस्य सम्बुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः ।  
हे उशन, हे उशनन्, हे उशनः । हे उशनसौ । उशनोभ्याम् ।  
उशनस्तु ॥ अनेहाः । अनेहसौ । हे अनेहः ॥ वेधाः । वेधसौ । हे  
वेधः । वेधोभ्याम् ॥

हल्ङादिलोपे संयोगान्तलोपं प्रति षत्वस्यासिद्धतया सकारबुद्ध्या 'रात्सस्ये'ति  
सकारस्य संयोगान्तलोपे रेफस्य विसर्गे च 'चिकीः' इति सिद्धम् । चिकी-  
र्ष्यामिति । अत्र भ्यामि परतः पूर्वस्य स्वादिष्विति पदत्वात्सकारस्य  
संयोगान्तलोपे चिकीर्ष्यामिति सिद्धम् । चिकीर्षु इति । चिकीष्-सु इत्यत्र  
सकारस्य 'रात्सस्ये'ति नियमात्संयोगान्तलोपे 'चिकीर्षु' इति सिद्धम् । रेफस्य  
विसर्गस्तु न भवति, रोः सुपीति सूत्रेण सप्तमीबहुवचने रोरेव रेफस्य विसर्गे  
नान्यरेफस्येति नियमात् । उशना=शुकः । 'उशना भार्गवः कवि' रित्यमरः ।

अस्येति । अस्य=उशनस् शब्दस्य ।

अनेहा=कालः । 'कालो दिष्टोऽप्यनेहाऽपी'त्यमरः । अत्वसन्तस्येति

१ वस्वन्त जो भसञ्जक अङ्ग उसको सम्प्रसारण हो ।

२ सर्वनामस्थान की विवक्षा में पुम्स् शब्द को असुङ् आदेश हो ।

३ उशनस् शब्द को सम्बोधन में विकल्प से अनङ् आदे होय और नलोप  
भी होय विकल्प करके ।

अदस् औ सुलोपश्च । ७ । २ । १०७ ॥

अदस् औत्स्यात्सौ परे सुलोपश्च । तदोगिति सः । असौ ।  
त्यदाद्यत्वम् । परस्वरूपत्वम् । वृद्धिः ॥

अदसोऽसेर्दीडु दो मः । ८ । २ । ८० ॥

अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उद्धृतौ स्तो दस्य मश्च । आन्तरतम्या-  
द्ध्रस्वस्य उः, दीर्घस्य ऊः । अमृ । जसः शी । गुणः ॥

एत ईद्वहुवचने । ८ । २ । ८१ ॥

अदसो दात्परस्येत ईद्वस्य च मो बहुर्योक्तौ । अमी । 'पूर्वत्रा-  
सिद्ध'मिति विभक्तिकार्यं प्राक्, पश्चादुत्वमवे । अमुम् । अमृ ।  
अमृन् । मुत्वे कृते धिसंज्ञायां नाभावः ॥

न मु ने । ८ । २ । ३ ॥

नाभावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नाऽसिद्धः । अमुना । अमृ-  
भ्याम् ३ । अमीभिः । अमुष्मै । अमीभ्यः २ । अमुष्मात् । अमुष्या  
अमुयोः २ । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमीषु ॥

इति हलन्तपुंलिङ्गप्रकरणम् ॥

दीर्घः । वेधाः=प्रजापतिः । न मुने इति । न-अव्यय पद, मु=प्रयमान्तम्,  
ने-सप्तम्यन्तम् । 'ने' इति विषमसप्तमीत्याग्येनाह-कर्त्तव्ये इति । अन्यथा  
घेः परत्वाऽभावेन नाभावो न स्यादिति भावः । नन्वेवमपि कृते नाभावे  
'मुपि चे'ति दीर्घः स्यात्, दीर्घप्रति मुत्वस्याऽसिद्धत्वादत आह-कृते चेति ।  
एतच्च 'ने' इत्यस्याऽऽवृत्त्या लभ्यते । एकत्र च ने इति विषयसप्तमी, अपरत्र  
च परसप्तमीति च विवेकः । \* इति हलन्ताः पुंलिङ्गाः \*

१ अदस् शब्द के अन्त्य अल् को औकारादेश हो सु परे रहते, और सु का  
लोप हो । २ सान्तभिन्न अदस् शब्द के दकार से परे ह्रस्व को उ, दीर्घ को ऊ  
आदेश होता है और दकार को मकार आदेश होता है । ३ अदस् के दकार से परे जो  
एकार उसको इकार आदेश होय और दकार को मकार आदेश बहुवचन में ।  
४ नाभाव यदि करना हो या कर लिया हो तो भी मुभाव असिद्ध नहीं होता है ।

# अथ हतान्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

नहो घः । ८ । २ । ३४ ॥

नहो हस्य घः स्याज्झलि पदान्ते च ॥

नहिवृत्तिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु कौ । ६ । ३ । ११६ ॥

क्विवन्तेष्वेषु परेषु पूर्वपदस्थ दीर्घः । उपानत्, उपानद् ।  
उपानहौ । उपानत्सु । क्विवन्नन्तत्वात् कुत्वेन घः । उष्णिक्, उष्णिग् ।  
उष्णिहौ । उष्णिहः । उष्णिगम्याम् । उष्णिक्षु । धौः । दिवौ । दिवः ।  
धुम्याम् । धुषु । गीः । गिरौ । गिरः । एवं पूः । चतस्रः २ ।  
चतसृणाम् । का । के । कौः । सर्वावत् ॥

यैः सौ । ७ । २ । ११० ॥

इदमो दस्य यः स्यात्सौ । इयम् । त्यदाद्यत्वम् । पररूपत्वम् ।  
टाप् । दश्चेत मः । इमे । इमाः । इमाम् । अनया । हलि लोपः ।  
आम्याम् । आभिः । अस्यै । अस्याः २ । अनयोः २ । आसाम् ।  
अस्याम् । आसु । त्यदाद्यत्वम् । टाप् । स्या । त्ये । त्याः । एवं तद्, यद्,

हस्यन्ति । 'हो ढ' इत्यतो 'ह' इत्यनुवृत्तंरलोऽन्त्यपरिभाषया वा 'न हो  
हस्ये'ति लभ्यते । झलीति । झलि परतः पदान्ते वा विद्यमानस्येत्यर्थः ।  
उपानदिति । उपपूर्वाजहेः सम्पदादित्वात्किपि 'नहिवृत्ती'त्यादिना दीर्घः ।  
सोर्हल्लथादिलोपः । धत्व जश्त्वचत्वे । उपानत्=पादत्राणम् । उष्णिगिति ।  
उत्पूर्वात्किणहे । प्रीत्यर्थकाहृत्विगादिना क्विन् । निपातनाद्दलोपपक्षे । क्विज-  
न्तत्वात्कुन्वन हस्य घ जश्त्वचत्वे-उष्णिक्=छन्दोविशेष । गीः=वाणी ।  
गीर्वावाणी सरस्वती'त्यमरः । पूः=नगरी । 'पूः स्त्री पुरीनगदौ वे'त्यमरः ।

१ नह् धातु के हकार को घकार आदेश हो झल् परे रहने और पदान्त में ।

२ क्विवन्त नहि वृत्ति-वृषि आदि परे रहते पूर्वपद को दीर्घ हो ।

३ इदम् शब्द के दकार को यकार आदेश हो सुपरे रहते (स्त्रीलिङ्ग में) ।



एतद् । वाक्, वाग् । वाचौ । वाचः । वाग्भ्याम् । वाक्षु ॥ अप्शब्दो  
नित्यं बहुवचनान्तः । 'अप्' निति दीर्घः । आपः । अपः ।

अपो मि । ७ । ४ । ४८ ॥

अपस्तकारः स्याद्वादौ प्रत्यये परे । अद्भिः । अद्भ्यः । अद्भ्यः ।  
अपाम् । अप्भु । दिक्-दिग् । दिशौ । दिशः । दिग्भ्याम् । त्यदादिष्विति  
दृशेः क्तिन्विधानादन्यत्रापि कुन्वम् । दृक्, दृग् । दृशौ । दृशः ।  
दृग्भ्याम् । त्विट्, त्विड् । त्विषौ । त्विषः । त्विड्भ्याम् । त्विट्भु ।  
त्विट्सु । 'ससञ्जुपोरु'रिति रुत्वम् । सज्जः । सञ्जुषौ । सञ्जूर्भ्याम् ॥  
आशीः । आशिषौ । आशिषः । आशीर्भ्याम् । असौ । उत्त्वमत्वे । अभू ।  
अमूः । अमुया । अमूर्भ्याम् ३ । अमूभिः । अमुष्ये । अमूम्यः २ ।  
अमुष्याः २ । अमुयोः २ । अमूपाम् । अमुप्याम् । अमूपृ ॥

इति लघुकौमुद्या हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ॥

आप् इति । 'आपः स्त्री भूमिवाक्वासी'त्यमरः ।

दिगिति । किञ्चन्तत्वात्किञ्प्रत्ययस्येति प्राप्तस्य कुत्वस्यासिद्धत्वाद्वाध्वेति  
षः । ततो जश्चेन डः । ततः कुत्वेन गः । तस्य चत्वेन कः । अन्यत्रापि=  
त्यदौद्युपपत्त्याऽभावेऽपि किञ्प्रत्ययस्येत्यस्य-किञ्प्रत्ययो यस्मात्किञ्चावित्  
दृष्टस्तस्य कवर्गोऽन्तादेश इत्यर्थेन दृशस्त्यदादाद्युपपदे तादृगित्यादौ किञ्प्रत्य-  
यस्य दृष्टतया केवलादपि दृशेः ( किनोऽभावेऽपि ) कुत्वं भवत्येवेत्याशयः ।  
सज्जूरिति । सह जुपते इति-सज्जूः=सखी ।

\* इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः \*

## अथ हलन्तानपुंसकालिंगप्रकरणम् ।

स्वमोर्लुक् । दत्वम् । स्वनडुत्, स्वनडुद् । स्वनडुही ।  
चतुरनडुहोरित्याम् । स्वनड्वांहि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । वाः । वारी ।  
वारि । वार्म्याम् । चत्वारि । किम् । के । कानि । इदम् । इमे ।  
इमानि ॥ \*अन्वादेशे नपुंसके वा एनद्धकव्यः \* । एनत् ।  
एनद् । एने । एनानि । एनेन । एनयोः २ । अहः । विभाषा  
दिश्योः । अहो—अहनी । अहानि ॥

अहन । ८ । २ । ६८ ॥

‘अह’नित्यस्य रुः स्यात् पदान्ते । अहोभ्याम् । दण्डि ।  
दण्डिनी । दण्डीनि । दण्डिना । दण्डिम्याम् । सुपथि । टेलोपः ।  
सुपथी । सुपन्यानि । ऊर्क्, ऊर्ग् । ऊर्जी । ऊर्जि । नरजानां

स्वनडुदिति । सुष्ठु अनङ्गाहो यस्मिन् कुलेयाने वा तत् स्वनडुत् कुलम्,  
यानं वा । ‘जश्शसोःशि’इति विहितशब्दशस्य ‘शि सर्वनामस्थान’मिति सर्वनाम-  
स्थानसंज्ञकतया ‘चतुरनडुहो’रित्यामि यणि ‘नपुंसकस्य झलच’ इति नुमि च  
‘स्वनड्वांही’ति सिद्धम् । वाः=जलम् । ‘आपः स्त्री भूमि वार्वारि सलिलं  
कमल जल’मित्यमरः । वारीति । ‘वार इ’ इत्यत्र अझलन्तत्वाच्च नुम् ।  
वारि । किमिति । किम्शब्दात्स्वमोः ‘स्वमोर्नपुंसका’दिति लुकि लुका लुप्त-  
त्वाच्च लुमताऽङ्गस्येति प्रत्ययलक्षणनिषेवेन विभक्तिपरत्वाऽभावात्किमः क इति  
कादेशो न । अहरिति । अहन-शब्दात्स्वमोः ‘स्वमोर्नपुंसका’दिति लुकि  
‘रोऽसुप्री’ति अहो रेफादेशे विसर्गः । दण्डोऽस्त्यस्य तत्-दण्डि कुलम् ।  
सुष्ठु पन्था यस्मिन् तत् पुपथि नगर, वनश्च । ऊर्क्=वलम् ।

ऊर्ग् शब्दाज्जश्शसो. शब्दादेशे सर्वनामस्थानसंज्ञाया ‘नपुंसकस्य झलच’  
इति नुमि-‘ऊर्जि’ इति सिध्यति ।

१ अन्वादेश में एतद् शब्द को विकल्प से एनत् आदेश हो नपुंसकलिङ्ग में ।

२ अहन शब्द को रु आदेश हो पदान्त में ।

संयोगः ॥ तत् । ते । तानि ॥ यत् । ये । यानि ॥ एतत् । एते ।  
एतानि ॥ गवाक् , गवाग् । गोची । गवाश्चि । पुनस्तद्वत् । गोचा ।  
गवाभ्याम् ॥ शकृत् । शकृती । शकृन्ति । ददत् । ददती ।

वा नपुंसकस्थ । ७ । १ । ७९ ॥

अभ्यस्तात्परो यः शता तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् स्थात्  
सर्वनामस्थाने परे । ददन्ति-ददति ॥ तुदत् ॥

आञ्छीनद्योर्नुम् । ७ । १ । ८० ॥

गवागिति । गवाक् ग्, गो अक्-ग् । गोऽक्-ग् । गवाद् , गो अद्,  
गोऽद् ॥ गोची । गवाश्ची । गो अश्ची । गोश्ची ॥ गवाश्चि, गोऽश्चि, गोऽश्चि ॥  
पुनस्तद्वत् । गोचा । गवाश्चा, गो अश्चा, गोश्चा ॥ गवाभ्यां, गो अभ्या,  
गोभ्याम् । गवाद्भ्यां, गो अद्भ्या, गोऽद्भ्याम् । गवाग्भि, गोअग्भिः,  
गोऽग्भिः । गवाद्भिः, गोअद्भिः, गोऽद्भिः ॥ गोचे । गवाश्चे, गो अश्चे,  
गोश्चे ॥ भ्यामि पूर्ववत् । गवाभ्यः, गोऽभ्यः, गोभ्यः । गवाद्भ्यः, गो-  
अद्भ्यः गोऽद्भ्यः । गोऽचः । गवाश्चः, गोऽचः, गोश्चः ॥ भ्यामादौ पूर्व-  
वत् ॥ ङसि पूर्ववत् ॥ गोचोः, गवाश्चोः, गोऽचोः, गोश्चोः ॥ गोऽचां, गवाश्चां,  
गोअद्याम्, गोऽद्याम् ॥ गोऽचि । गवाश्चि, गोअश्चि, गोऽश्चि ॥ गवाक्षु,  
गोअक्षु, गोक्षु । गवाद्क्षु, गोअद्क्षु, गोऽद्क्षु । गवाद्भु, गोअद्भु, गोऽद्भु  
इति १०९ रूपाणि । तदुक्तं

‘गवाक्शब्दस्य रूपाणि क्लीवेऽर्वागतिभेदतः ।

असन्ध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं भतम् ॥ १ ॥

स्वभ्यस्तु नव षड् भादौ षट्के स्युस्त्रीणि जश्शसोः ।

चत्वारि शेषे दशके रूपाणाति विभावय’ ॥ २ ॥ इति ।

शकृदिति । शकृत्-मलम् ।

१ अभ्यस्त सं पर जो शतृ प्रत्यय तदन्त जा क्लीब अङ्ग उसको विकल्प से  
नुम् होय सर्वनामस्थान परे रहते ।

२ अवर्णान्त अङ्ग से परे जो शतृ प्रत्यय का अवयव, तदन्त जो शब्द स्वरूप  
उसको नुम् हा विकल्प से शी (प्रत्यय) और नदीसङ्ग परे रहते ।

अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा स्या-  
च्छीनद्योः परतः । तुदन्ती-तुदती । तुदन्ति ॥

शश्यनोर्नित्यम् । ७ । १ । ८१ ॥

शश्यनोरात्परो यः शतुरवयवरतदन्तस्य नित्यं नुम् स्याच्छी-  
नद्योः परतः । पचन्ती । पचन्ति ॥ दीव्यत् । दीव्यन्ती । दीव्य-  
न्ति ॥ धनुः । धनुषी । सान्तेति दीर्घः । नुम्बिसर्जनीयेति षः ।  
धनूषि । धनुषां । धनुर्म्याम् ॥ एवं चक्षुर्हविरादयः ॥ पयः । पयसी ।  
पयांसि । पयसा । पयोम्याम् ॥ सुपुम् । सुपुंसी । सुपुमांसि ॥  
अदः । विभक्तिकार्यम् । उत्त्वमत्वे । अम् । अमृनि । शेषं पुंवत् ॥

॥ इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

॥१-२॥

अथाव्ययप्रकरणम् ।

स्वरादिनिपातमव्ययम् । १ । १ । ३७ ॥

स्वरादयो निपाताश्चाऽव्ययसंज्ञाः स्युः । स्वर । अन्तर ।

सुपुमिति । शोभना. पुमासो यस्मिन् कुलं तत्-सुपुम्-कुलम् ।

॥ इति हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

स्वर-स्वर्गे परलोके च । अन्तर-मध्ये । प्रातर-प्रभाते । पुनर-  
अप्रथमे विशेषे च । सनुतर-अन्तर्धाने । स्वराद्या. पञ्च रेफान्ताः, तेन स्व-  
याति प्रातरत्रेत्यादौ हशि चेत्याद्युत्त्वं न । तत्र रोरित्युकारानुबन्धग्रहणात्

१ शप् श्यन् सम्बन्धी अकार से परे जो शच् का अवयव तदन्त जो शब्द-  
स्वरूप उसको नित्य नुम् हो शी और नदी परे रहते । २ स्वरादि गण-  
पठित जो शब्द और निपातसंज्ञक जो शब्द उनकी अव्यय संज्ञा हो ।

प्रातर् । पुनर् । सनुत् । उच्चैस् । नीचैस् । शनैस् । ऋधक् ।  
 ऋते । युगपत् । आरात् । पृथक् । ह्यस् । श्वस् । दिवा ।  
 रात्रौ । सायम् । चिरम् । मनाक् । ईषत् । जोषम् । तूष्णीम् ।  
 बहिस् । अवस् । समया । निकषा । स्वयम् । वृथा । नक्तम् ।  
 नञ् । हेतौ । इद्धा । अद्धा । सामि । वत् । ब्राह्मणवत् ।  
 क्षत्रियवत् । सना । सनत् । सनात् । उपधा । तिरस् । अन्तरा ।  
 अन्तरेण । ज्योक् । कम् । शम् । सहसा । विना । नाना ।  
 स्वस्ति । स्वधा । अलम् । वपद् । श्रौपद् । वौपद् । अन्यत् ।

उच्चैस् गहति । नीचैस्-अल्पे । शनैस्-क्रियामान्ये । ऋधक् सत्ये ।  
 वियोगशीघ्रसामीप्यलाववेवित्यन्ये । ऋते-वर्जने । युगपत्-एककाले ।  
 आरात्-दूर-समीपयोः । पृथक्-भिन्ने । ह्यस् अतीतेऽङ्गि । श्वस्-आगा-  
 मिदिने । दिवा-दिने । रात्रौ-निशि । सायम्-निशानुखे । प्रदोषे । चिरम्-  
 बहुकाले । मनाक्-अल्पे । ईषत्-अल्पे । जोषम्-सुखे नौने च । तूष्णीम्-  
 मौने । बहिस्-अवस्-शमौ बाह्ये । समया-समीपे मध्ये च । निकषा-  
 समीपे । स्वयम्-आत्मना इत्यर्थे । वृथा-व्यर्थे । नक्तम्-रात्रौ । नञ्-निषेवे ।

‘तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता ।

अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थः षट् प्रकीर्त्तिताः ॥’

हेतौ-निमित्ते । इद्धा-प्राकारये । अद्धा-स्फुटावधारणयोः, तत्त्वाति-  
 शययोरित्यन्ये । सामि-अर्द्धे निन्दिते च । वदिति । ‘तेन तुल्य’मित्यतीदि-  
 विहितो वतिप्रत्ययो गृह्यते । प्रत्ययग्रहणे च तदन्तग्रहणमित्याशयेनोदाहरति-  
 ब्राह्मणवदिति । सना । सनत् सनात्-एतत्रयं नित्ये । उपधा-भेदे । तिरस्-  
 अन्तर्धाने तिर्यगर्थे परिभवे च । अन्तरा-मध्ये विनाऽर्थे च । अन्तरेण-  
 वजने । ज्योक्-कालाधिक्ये शीघ्रे प्रश्ने इदानीमर्थे च । कम्-वारिमूर्ध-  
 निन्दासुखेषु । शम्-सुखे । सहसा-आकस्मिकाऽविमर्शयोः । विना-वर्जने ।  
 नाना-अनेकविनार्थयोः । स्वस्ति-सङ्गले । स्वधा-पितृहविर्दाने । अलम्-  
 भूषणपयातिशक्तिवारणनिषेधेषु । वपद् श्रौपद् वौपद्-एतत्रयं देवहविर्दाने ।

अस्ति । उपांशु । क्षमा । विहायसा । दोषा । मृषा । मिथ्या ।  
मुधा । पुरा । मिथो । मिथस् । प्रायस् । मुहुस् । प्रबाहुकम् ।  
( प्रवाहिका ) । आर्यहलम् । अमीक्ष्णम् । साकम् । सार्धम् ।  
नमस् । हिरक् । धिक् । अथ । अम् । आम् । प्रताम् । प्रशाम् ।  
प्रतान् । मा । माङ् । आकृतिगणोऽयम् ।

अन्यत्-अन्यार्थे । अस्ति-सत्तायाम् । उपांशु-अप्रकाशोच्चारणे रहस्ये च ।  
क्षमा-क्षान्तौ । विहायसा-आकाशे । दोषा-रात्रौ । मृषा मिथ्या वितथे ।  
मुधा-व्यर्थे । पुरा-अविरते, चिरातीते, भविष्यदासन्ने च । मिथो मिथस्-  
इति द्वय रहसि, सहाय्ये च । प्रायस्-बाहुल्ये । मुहुस्-पुनरर्थे । प्रबाहुकं-  
समकाले ऊर्ध्वार्थे च । प्रबाहुकमित्यत्र प्रवाहिकेत्यपि कचित्पाठः । आर्य-  
हलम् बलात्कारे । केचित्तु-आर्येति प्रतिबन्ध, हलमिति निषेधेऽनुवादे चेत्ये-  
वमन्ययद्वयमिदमित्याहुः । अमीक्ष्णं-पौनःपुन्ये । साकम्-सार्धम्-इतिद्वयं  
सहाय्ये । नमस्-नमस्कारे । हिरक्-वर्जने । धिक्-निन्दायाम् मर्त्सने च ।  
अथ मङ्गले प्रारम्भे च । अम्-शैष्ये अल्पे च । आम्-अङ्गीकारे । प्रताम्-  
ग्लानौ । प्रशाम्-समानार्थे । प्रतान्-विस्तारे । अत्र प्रतानिति नान्तस्य पुनः  
पाठसामर्थ्यात्प्रताम् प्रशामित्यनयोर्मनो धातोरिति नत्वं न । प्रशामित्यत्र  
प्रशानिति नान्तपाठस्त्वसाम्प्रदायिकः । मा-माङ्-एतौ निषेधे ।

आकृत्या स्वरूपेणैव गण्यते इति आकृतिगणः । एवञ्च एवजातीयका  
अन्येऽपि स्वरादिगणे बोध्याः । तथा हि-कामम्-यथेच्छमित्यर्थे ( स्वाच्छन्धे ) ।  
प्रकामम्-अतिशये । भूयस्-पुनरर्थे । साम्प्रतम्-न्याय्ये । परम्-किन्त्वर्थे ।  
साक्षात्-प्रत्यक्षे । साच्चि-तिर्यगर्थे । सत्यम्-अर्धाङ्गीकारे । मङ्क्षु आशु-  
इदं द्वय शैष्ये । सम्बत्-वर्षे । अवश्यम्-निश्चये । सपदि-शैष्ये ।  
बलवत्-अतिशये । उषा-रात्रौ । ओम्-अङ्गीकारे प्रह्मणि च । भूर्-पृथि-  
व्याम् । भुवर्-अन्तरिक्षे । इति-झगिति तत्सा-एते शैष्ये । सुधु-  
प्रशंसायाम् । दुधु-निकृष्टे । सु-पूजायाम् । कु-निन्दायाम् ईषदर्थे च ।

१ स्वरादि आकृतिगण है । अर्थात् इस प्रकार के अन्यान्य शब्द भी शिष्ट  
प्रमाण से स्वरादि में जानना ।

च । वा । ह । अह । एव । एवम् । नूनम् । शश्वत् ।  
 युगपत् । भूयस् । कूपत् । कुवित् । नेत् । चेत् । चण् ।  
 कच्चित् । यत्र । नह । हन्त । माकिः । माकिम् । नकिः । नकिम् ।  
 माङ् । नञ् । यावत् । तावत् । त्वै । द्वै । ( न्वै ) रै । श्रीषट् ।  
 वौषट् । स्वाहा । स्वधा । तुम् । तथाहि । खलु । किल । अथो ।  
 अथ । सुष्ठु । स्म । आदह ।

अञ्जसा-तत्त्वशीघ्रावर्धयोः । मिथु-द्वाविन्यर्थे । अस्ताम्-विनाशे । स्थाने-  
 युगे । वरम्-ईषदुत्कर्षे । सुदि-शुक्लपक्षे । चदि-कृष्णपक्षे । अनिशम्, नित्यं,  
 सदा, अजस्रम्, सन्ततम्-एतत्पक्षकसातत्ये । आ-आद्यर्थे । इत्यादि ।

च-समुच्चयाऽन्वाचयेतरेतरयोगसमाहारेषु । 'वा स्याद्विकल्पोपमयोरिवार्थे  
 च समुचये' । ह-प्रसिद्धौ । अह-पूजायाम् । एव-अवधारणऽनवकुम्भी च ।  
 एवम्-उक्तपरामर्शे । नूनम्-निश्चये तर्के च । शश्वत्-पौनः पुन्ये सहार्थे  
 नित्ये च । युगपत्-एककाले । भूयस्-पुनरर्थे आधिक्ये च । कूपत्-प्रश्ने  
 प्रशसायाश्च । कुवित्-भूर्यर्थे प्रशसायाश्च । नेत् शङ्काप्रतिषेधविचारसमुच्च-  
 येषु । चेत्-यदीत्यर्थे । चण्-चेदित्यर्थे । अत्र णकारोऽनुबन्धः समुच्चयादौ  
 तु निरनुबन्धकोऽयम् । कच्चित्-इष्टप्रश्ने । यत्र-अवकल्प्यमर्पणार्हा- र्षेषु ।  
 नह-प्रत्यास्मभे । 'हन्त-हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविर्पादयोः' । माकिः,  
 माकिम्, नकिः, नकिम् चत्वारो वर्जने । केचिपु नकिमिति न पठन्ति ।  
 माङ्नञौ स्वरादिपूक्तावेव उभयत्र पाठश्चिन्त्यफलः । यावत्, तावत्-एतौ  
 साकल्यावधिमानावधारणेषु । त्वै-विशेषे वितर्के च । द्वै वितर्के । 'न्वै' इति  
 पाठान्तरम् । रै-दाने आदरे च । श्रीषट्-वौषट् हविर्दाने । स्वाहा-  
 देवदाने । स्वधा-पितृदाने । स्वरभेदार्थ एषामुभयत्र पाठः । तुम्-उद्गारे ।  
 तथाहि-निदर्शने ( उदाहरणदाने ) । खलु-निषेधवाक्यालङ्कारान्तिश्रयषु ।  
 किल-वार्तायामलीके च । अथो अथ-मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नाधिकारप्रतिज्ञा-  
 समुच्चयकात्स्न्येषु । अथशब्दः-स्वरादिष्वपि पठ्यते, तेन मङ्गलवाचकस्य  
 सत्त्वार्थत्वेऽप्यन्यत्वं सिद्ध्यति । सुष्ठु-प्रशंसायाम् । स्वरभेदार्थं पुनः पाठः ।  
 स्म-अतीते पादपूरेण च । आदह-उपक्रमहिंसात्कुःसनेषु ।

उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च । अवदत्तम् । अहंयुः ।  
 अस्तिक्षीरा । अ । आ । इ । ई । उ । ऊ । ए । ऐ । ओ ।  
 औ । पशु । शुक्रम । यथाकथाच । पाट् । प्याट् । अङ्ग । है ।  
 हे । भोः । अये । द्य । विष्टु । एकपदे । पुत् । आतः ॥  
 चादिरप्याकृतिगणः ॥

[ तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः १ । १ । ३८ ॥

यस्मात्सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽप्ययं स्यात् । परि-

उपसर्गेति । उपसर्गप्रतिरूपकाः, सुबन्तप्रतिरूपकाः, तिङन्तप्रतिरूपकाः,  
 स्वरप्रतिरूपकाश्च अव्ययसंज्ञकाः स्युरित्यर्थः । तत्र-उपसर्गप्रतिरूपकोदा-  
 हरणम्-अवदत्तमिति । अत्रावेत्यस्योपसर्गत्वाभावेन 'अच उपसर्गात्' इति  
 तादेशो न भवति । 'अह'मिति सुबन्तप्रतिरूपकमव्ययमहङ्कारे । अस्तीति  
 तिङन्तप्रतिरूपकमव्ययम् । प्रथमान्तत्वे तु अहंशुभमोरिति युसि विभक्तिछकि-  
 अस्मद्भुरिति स्यात् । अहंभुरिति त्विष्यते । तिङन्तत्वे तु बहुव्रीहिसमासापु-  
 पत्तिः । स्वरप्रतिरूपकाः-अ आ इ ई इत्यादयः । अ-सम्बोधनेऽधिसेपे  
 निषेधे च । आ-वाक्यस्मरणयोः । इ-सम्बोधने विस्मये जुगुप्सायाश्च । ई  
 उ ऊ ए ऐ ओ औ-सम्बोधने । पशु-सम्यगर्थे । शुक्र-शैष्ये । यथा  
 कथा च-अनादरे । ( किसी तरह से ) । पाट्प्रभृतयः सह सम्बोधने ।  
 द्य-हिंसा-प्रतिलोभ्य-पादपूरणेषु । विष्टु-नानार्थे । एकपदे-अकस्मादि-  
 त्यर्थे । पुत्-कुत्सायाम् । [ युदित्यन्ये पठन्ति ] । आतः-इतोऽपीत्यर्थे ।

आकृतीति । तद्यथा-यत्-तदिति द्वयं हेतौ । आहोस्वित्-विकल्पे ।  
 सीम्-सर्वतोभावे । सुक्रम-अतिशये । अनुकं-वितर्के । शवत्-अन्तः-  
 करणे आभिमुख्ये च । च-पादपूरणे इवार्थे च । दिष्ट्या-आनन्दे । चटु-

१ उपसर्गप्रतिरूपक, सुबन्तप्रतिरूपक, तिङन्तप्रतिरूपक और स्वरप्रतिरूपक  
 शब्दों की अव्यय संज्ञा हो । (प्रतिरूपक-सदृश) २ चादि भी आकृतिगण है ।

३ जिस शब्द से सर्व विभक्तियों की उत्पत्ति न हो ऐसा जो तद्धितान्त  
 शब्द उसकी अव्ययसंज्ञा हो ।



गणनं कर्त्तव्यम् ] । तसिलादयः प्राक् पाशपः । शस्त्रप्रसृतयः प्राक्  
रमासान्तेभ्यः । अम् । आम् । कृत्वोर्याः । तसिन्वती । नानाधौ ।  
एतदन्तमप्यव्ययम् । अत इत्यादि ॥

कृन्मेजन्ताः १ । १ । ३९ ॥

कृधो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात् । स्मारं स्मारम् ।  
जीवसे । पिवध्वै ॥

कृत्पातोऽसुन्कसुनः १ । १ । ४० ॥

एतदन्तमव्ययं स्यात् । कृत्वा । उदेतोः । विसृपः ॥

अव्ययीभावश्च १ । १ । ४१ ॥

[ अव्ययीभावोऽव्ययं स्यात् ] । अधिहरि ॥

अव्ययीभादाप्सुपः २ । ४ । ८२ ॥

चाटु एतौ प्रियवाक्ये । हुम्-भर्त्सने । इव-सादृश्ये । अद्यत्वे-इदानी-  
मित्यर्थे । इत्यादि । अत्र स्वरादिचाद्योराकृतिगणत्वाऽविशेषेऽपि येषां निपातस्वर  
इष्टस्ते चाटिषु अन्ये स्वरादिषु, स्वरद्वयभाजस्तृतीयत्र बोध्या इति विवेकः ।

अव्ययमिति । 'तद्धितश्चाऽसर्वविभक्ति' रित्यनेनेति भावः । यस्मात्सर्वा  
विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यादिति च तदर्थः ।

स्मारमिति । णमुलन्तोऽयम् । 'नित्यवीप्सयो' रिति द्वित्वम् ।

जीवसे इति । 'तुमर्थे से सेन्-' इति असेपत्ययश्छान्दसः ।

पिवध्वै इति । 'तुमर्थे से सेन्' इति छान्दसः शध्वैप्रत्ययः, पिवादेशः ।

'उदेतो' रित्यत्र तोसुन् प्रत्ययः । विसृप इति । 'सृपितृदोः कसुन्'  
इति कसुन्प्रत्ययः ।

१ कृन् जो मान्त एजन्त तदन्त जो शब्द उसकी अव्यय सन्शा हो ।

२ कृत्वा तोसुन् और कसुन् प्रत्ययान्त शब्दों की अव्यय सन्शा हो ।

३ अव्ययीभावसमास की अव्ययसन्शा हो ।

४ अव्यय से विहित जो आप् और सुप् उनका लुक् हो ।

अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लृक् स्यात् । तत्र शालायाम् ।  
 सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।  
 वचनेषु च सर्वेषु यत्र व्येति तदव्ययम् ॥ १ ॥  
 वाष्टे भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।  
 आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥२॥  
 वगाहः, अवगाहः । पिधानम्, अपिधानम् ॥

इत्यव्ययप्रकरणम् ।

## अथ लिङन्तो रवादिगकरणम् ।

लट् लिट् लृट् लट् लृट् लोट् लङ् लिङ् लृङ् लृङ् ।  
 —एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः ॥  
 लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः ३ । ४ । ६९ ॥

तत्र इत्यस्य तद्धितश्चासर्वविभक्तिरित्यव्ययसंज्ञा ।

न व्येति-विविधं विकारं न प्राप्नोति । सत्त्वधर्मान् लिङ्गसङ्ख्यादीन् न  
 गृह्णातीति यावत् ।

वष्टीति । भागुरिः-अवाप्योरुपसर्गयोरल्लोपं वष्टि । हलन्तानां=  
 हलन्तेभ्यः, आपं=टापञ्च-वष्टि । वष्टि-इच्छति । हलन्तेभ्यश्चाप उदाहरण-  
 माह वाचेति । अत्र 'वगाहश्चावगाहश्च पिधानमपिधानक'मिति  
 पठनीयम् । एकस्यांशस्य श्लोके उदाहरणमन्यस्य नेति वैषम्यस्याऽनुचितत्वात् ।

इत्यव्ययानि ।

एषु-दशसु लकारेषु । पञ्चमः-लट् लकारः, छन्दोमात्रगोचरः  
 वेद एव प्रयुज्यते न तु लोके । ल इति । लः-प्रथमान्तं, कर्मणि-सप्तम्यन्तं,  
 च-अव्ययपद, भावे-सप्तम्यन्त, च-अव्ययपदम्, अकर्मकेभ्यः-पञ्चम्यन्तम् ।

१ सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में लकार हों-और अकर्मक धातुओं  
 से भाव और कर्ता में ( लकार ) हों ।

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भोधि  
कर्तरि च ॥

वर्त्तमाने लट् ३ । २ । १२३ ॥

वत्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । अटावितौ । उच्चारण-  
सामर्थ्याल्लस्य नेत्वम् । भू सत्तायाम् ॥ १ ॥ कर्तृविवक्षायां  
भू ल् इति स्थिते

तिस्रस्राक्षिसिप्थस्थमिब्वस्मसताऽऽनाञ्झथास्तथा-  
ध्वमिड्वहिभहिङ् ३ । ४ । ७८ ॥

एतेऽष्टादश आदेशाः स्युः ।

लैः परस्मैपदम् १ । ४ । ९९ ॥

आदेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ॥

तङ्ङानावात्मनेपदम् १ । ४ । १०० ॥

तङ् प्रत्याहारः शानच् कानच् चैतत्संज्ञाः स्युः । पूर्वसंज्ञा-  
ऽपवादः ॥

सकर्मकंभ्य इति । फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं-सकर्मकत्वं, फलसमा-  
नाधिकरणव्यापारवाचकत्वम् अकर्मकत्वम् । प्रारब्धापरिसमाप्तक्रियाश्रयत्वं वर्त-  
मानत्वम् । अटाविताविति । अकारः-‘उपदेशेऽज्’ इत्यनेन, टकारः-  
‘हलन्त्य’मित्यनेन इत्सञ्ज्ञको भवति, तेन तस्य लोप’इति तयोर्लोप इत्याशयः ।

लस्येति । लस्य ‘लशक्तद्धिते’ इत्यनेनेत्वं प्राप्नोति, तच्च उच्चारण-  
सामर्थ्यान्न भवतीति भावः ।

१ वर्तमानकालिक जो क्रिया तद्वृत्ति जो धातु उससे लट् लकार हो ।

२ लकार के स्थान में तिवादि अठारह आदेश हों ।

३ लकार के स्थान में हुए जो आदेश उनकी परस्मैपदसंज्ञा हो ।

४ तङ्प्रत्याहार और शानच् कानच् इनकी आत्मनेपद संज्ञा हो ।

अनुदात्तचित् आत्मनेपदम् १ । ३ । १२ ॥

अनुदात्तेतो जितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् ॥

स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १ । ३ । ७२ ॥

स्वरितेतो जितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले ॥

शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् । १ । ३ । ७८ ॥

आत्मनेपदनिमित्तहीनाऽधातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् ।

तिङ्श्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमात्माः । १ । ४ । १०१ ॥

तिङ् उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ॥

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः । १ । ४ । १०२ ॥

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङ्श्रीणि त्रीणि वचनानि प्रत्येकमेक-  
वचनादिसंज्ञानि स्युः ॥

अनुदात्तेति । अनुदात्तश्च ङश्च अनुदात्तौ, तावितौ यस्यासौ-अनु-  
दात्तचित्, तस्मात्-अनुदात्ताङ्ग इति विग्रहः । एव 'स्वरितजित' इत्यत्रापि ।  
कर्तारमभिप्रेताति-कर्त्रभिप्राये, तस्मिन्-कर्त्रभिप्राये । 'कमण्य'णित्यण् ।

तिङ् षट्त्रिकाः, सञ्ज्ञास्तु तिस्र इति यथासङ्गं न प्राप्नोतीत्यत आह-  
उभयोरिति । परस्मैपदार्थात्, आत्मनेप-मिति चानुवर्तते, तेन पदद्वये  
प्रत्येकं त्रयस्त्रिका इति यथामङ्गं सञ्ज्ञाः प्रवर्तन्ते इति बोध्यम् ।

'तानी'त्यस्य व्याख्यान-लब्धप्रथमेत्यादि । अन्यथैकसञ्ज्ञाधिकारा-

१ अनुदात्तेत् जो धातु और ङित् जो धातु उसकी आत्मनेपदमञ्ज्ञा हो ।

२ स्वरितेत् जो धातु और जित् जो धातु उससे आत्मनेपद हो कर्तृगामी  
क्रियाफल में । ( अर्थात् यदि क्रियाजन्य फल कर्ता को प्राप्त होता हो तो ) ।

३ आत्मनेपद का जो निमित्त उससे हीन जो धातु उससे परस्मैपद हो  
हो कर्ता में ।

४ आत्मनेपद और परस्मैपद सम्बन्धी तीन तीन त्रिक इनकी क्रम से प्रथम-  
मध्यम-उत्तम मञ्ज्ञा हो । ५ प्राप्त की है प्रथमादि सञ्ज्ञा जिन्होंने ऐसे जो तीन  
तीन त्रिक उनकी क्रम से एकवचन द्विवचन बहुवचन सञ्ज्ञा हो ।

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि

मध्यमः १ । ४ । १०५ ॥

तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च  
मध्यमः स्यात् ॥

अस्मद्युत्तमः १ । ४ । १०७ ॥

तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः स्यात् ॥

ज्ञापे प्रथमः १ । ४ । १०८ ॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् । भू-ति इति जाते ।

तिङ् शित्सार्धधातुकम् ३ । ४ । ११३ ॥

तिङः शितश्च धात्वधिका रोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः ॥

त्प्रथमादिसञ्ज्ञानामेकवचनादिसञ्ज्ञानाद्य पर्यायः स्यात् । तथा च अत्तेर्लोढो  
'मेर्नि'रिति कृते एकत्वविवक्षायामुत्तमसञ्ज्ञाऽभावादाहुत्तमस्येत्याडनापत्त्या  
'अन्नी'त्यादिप्रयोगाणामप्यापत्तिः स्यात् ।

'समानाधिकरणे' इत्यस्य व्याख्यानं—तिङ्वाच्यकारकवाचिनीति ।  
भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तानां शब्दानामेकस्मिन्नर्थे वृत्तिः—सामानाधिकरण्यम् । 'स्थानि-  
नी'त्यस्य व्याख्यानम्—'अप्रयुज्यमाने' इति । तथाभूत इति । तिङ्वाच्य-  
कारकवाचिनि अस्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च उत्तमः स्यादित्यर्थः ।

१ तिङ् वाच्य जो कारक तादृश कारकवाची जो युष्मद् शब्द वह प्रयुज्यमान हो  
वा अप्रयुज्यमान हो तो धातु से मध्यम पुरुष हो । २ तिङ् वाच्य जो कारक-तादृश-  
कारक-वाची जो अस्मदि वह प्रयुज्यमान हो वा अप्रयुज्यमान हो तो धातु से  
उत्तम पुरुष हो ।

३ मध्यम और उत्तम का जहाँ विषय नहीं है वहाँ प्रथम पुरुष हो । (अर्थात्  
तिङ् वाच्य जो कारक तादृश कारकवाची जो युष्मद्-अस्मद् उससे भिन्न जो तदादि  
शब्द वह प्रयुज्यमान हो वा अप्रयुज्यमान हो तो प्रथम पुरुष हो ) ।

४ धातु के अधिकार में पठित जो तिङ् और शित्सन्धकप्रत्यय उनकी सार्ध-  
धातुक संज्ञा हो ।

कर्तरि शप् । ३ । १ । ६८ ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् स्यात् ॥

सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७ । ३ । ८४ ॥

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । अवादेशः । भवति ।

भवतः ।

ज्ञोऽन्तः ७ । १ । ३ ॥

प्रत्ययावयवस्य ज्ञस्याऽन्तादेशः स्यात् । अतो गुणे । भवन्ति ।

भवसि । भवथः । भवथ ॥

अतो दीर्घो यञि ७ । ३ । १०१ ॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घः स्याद्यञादौ सार्वधातुके । भवामि ।

भवावः । भवामः ।

स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवां भवथः ।

यूयं भवथ । अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः ॥

सार्वधातुके इत्यनुवर्तते, धातोरेकाच इत्यतो धातोरित्यनुवर्तते । तदोह-  
कर्त्रर्थे इति । झकारोत्तराकारः तकारोत्तराकारश्च उच्चारणार्थः । 'अतो  
दीर्घो यञी'ति तु न प्रवर्तते, स्थान्यलादेशविधावनल्विधाविति स्थानिवत्त्व-  
निषेधात् । 'स भवती'त्यादौ युष्मदस्मदोर्विषयस्याऽभावाच्छेषे प्रथम इति  
प्रथमः पुरुषः । एव 'देवदत्तो भवति' - 'चैत्रो भवति' 'भवान् भवती'-  
त्यादावपि प्रथमः पुरुषः । 'त्वं भवसी'त्यादौ च युष्मद्युपपदे मध्यमः । 'अहं  
भवामी'त्यादौ चास्मद्युपपदे उत्तमः पुरुषः । यत्र च प्रथममध्यमयोरुभयो-  
र्विषयः - 'स च त्वं च भवथः' इत्यादौ तत्र तु परत्वान्मध्यम एव, यत्र च

१ कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते धातु से शप् प्रत्यय हो ।

२ इगन्त अङ्ग को गुण हो सार्वधातुक आर्धधातुक परे रहते ।

३ प्रत्यय का अवयव जो झकार उसको अन्त आदेश हो ।

४ अदन्त अङ्ग को दीर्घ हो यञादि सार्वधातुक परे रहते ।

परोक्षलिङ् ३ । २ । ११५ ॥

भूतानघतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिङ् स्यात् । अस्य तिवादयः ॥

परस्मैपदानां णलुलुङ्लुङ्लुसणन्वभाः ३ । ४ । ८२ ॥

लिट् रितादीनां नवानां णलादयो नव स्युः । भू अ इति स्थिते ।

भुवो बुग् लुङ्लिङोः ६ । ४ । ८८ ॥

भुवो बुगागमः स्याल्लुङ्लिङोरचि ॥

लिटि धातोरनभ्यासस्य द्वि । १ । ८ ॥

लिटि परेऽनभ्यासधात्वयवभ्येकाचः प्रथमस्य द्वे रतः । आदि-

भूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । भूव् भूव् अ इति स्थिते ॥

पूर्वोऽभ्यासः ६ । १ । ४ ॥

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् ॥

हलादिः शेषः ७ । ४ । ८० ॥

अभ्यासस्याऽऽदिर्हल् शिष्यते, अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोपः ।

मध्यमोत्तमयोर्विषयस्तत्र 'त्वन्नाऽहश्च पठाव' इत्यत्रोत्तम एव । यत्र च सर्वेषां प्रथममध्यमोत्तमानां विषयस्तत्र—'स च त्वं चाहश्च भोक्ष्यामहे' इत्यादौ, तत्र च परत्वादुत्तमः पुरुष एवात विवेकः । अत्र=एकाग्रो द्वे प्रथमस्येति ६।१।१। षाष्ठप्रकरणे । अभ्यासस्येति । अभ्यासस्येति जातिपरो निर्देशः, तेन आदेर्हलोऽभावेऽपि 'आततुः' आटतुः' इत्यादौ तकारादिनिवृत्ति

१ भूत अनघतन पराक्षार्थ वृत्ति जो धातु उसमे । लट् लकार हो ।

२ लिङ् के स्थान में जो तिवादि नव उनको णलादि नव आदेश हो ।

३ भूधातु को बुक् का आगम हो लुङ् लिङ् सम्बन्धी अच् परे रहते ।

४ अभ्यास रहित धातु का अवयव जो प्रथम एकाच उसको द्वित्व हो और आदिभूत अच् से परे जो द्वितीय एकाच् उसको द्वित्व हो ।

५ षाष्ठद्वित्वप्रकरण में विहित जो दो विधान किए हैं, उनके पूर्व की अभ्यास संज्ञा हो । ६ अभ्यास का आदि हल् शप् रश् और अन्य हल् का लाप हो ।

ह्रस्वः ७ । ४ । ५९ ॥

अभ्यासस्याऽचो ह्रस्वः स्यात् ॥

भवतेरः ७ । ४ । ७३ ॥

भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि ॥

अभ्यासे चर्च ८ । ४ । ५४ ॥

अभ्यासे झलं चरः र्युर्जशश्च । झशां जशः, खयां चर इति विवेकः । बभूव । बभूवतुः । बभूवुः ।

लिट् च ३ । ४ । ११५ ॥

लिङादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् ॥

आर्धधातुकस्येङ् वलादेः ७ । २ । ३५ ॥

वलादेरार्धधातुकस्येङागमः स्यात् । बभूविथ । बभूवथुः । बभूव ॥ बभूव । बभूविथ । बभूविम ।

अनद्यतने लृट् ३ । ३ । १५ ॥

सिद्ध्यति, यत्र क्वचिदभ्यासे अनादौर्लोपविधानात् । 'अत्र लोपोऽभ्यासस्ये'ति सूत्रादभ्यासपदमनुवर्तते, तदाह अभ्यासोकारेति ।

झशामिति । वर्गवृत्तीयचतुर्यानां स्थाने वर्गवृत्तीयाः, वर्गप्रथमाद्वितीयानां स्थाने प्रथमा इति भावः । आन्तरतम्यादियं व्यवस्थेति ध्येयम् ।

लिट्--प्रथमान्तं, च अव्ययपदम् । लिट्पदेन लिङादेशतिवादे-  
ग्रहणम् ।

अनद्यतन इति । अतीताया रात्रे पश्चाद्धेन, आगामिन्या रात्रेः पूर्वार्द्धेन

१ अभ्यास के अच् को ह्रस्व होय ।

२ भू धातु के अभ्यास के उकार को अकार हो लिट् परे रहते ।

३ अभ्यास में झशों को जश् हो और खरों को चर् आदेश हो ।

४ लिङादेश जो लिट् उसकी आर्धधातुक संज्ञा हो ।

५ वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम हो ।

६ भविष्यत् अनद्यतन अर्थ में वर्तमान धातु से लोट् हो ।



भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात् ॥

स्यतासी लृलुटोः ३ । १ । ३३ ॥

धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ रतो लृलुटोः परतः । शवाथय-  
वादः । 'लृ' इति लृङ्लुटोर्महणम् ॥

आर्धधातुकं शेषः ३ । ४ । ११४ ॥

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो 'धातो'रिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात् । इद् ॥

लृट् प्रथमस्य डारौरसः ३ । ४ । ८५ ॥

डा रौ रस् एते क्रमात्स्युः । डित्त्वसामर्थ्यादमत्यापि टेलोपः ।  
भविता ॥

तासस्त्योलोपः ७ । ४ । ५० ॥

तासरस्तेष्व सस्य लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे ॥

रि च ७ । ४ । ५१ ॥

च सहितो द्विसोऽद्यतनः, तद्विभोऽनद्यतनः । स्यतासी-प्रथमान्तं, लृलुटो-  
सप्तम्यन्तम् । ग्रहणमिति । 'त्यन्तानुबन्धग्रहणे सामान्यग्रहणे'मिति परि-  
भाषाबलादिति भावः । एतत्संज्ञः=आवधातुकसंज्ञः । इद्=आर्धधातुकतया  
'आर्धधातुकस्येद्धादे'रित्यनेन इद् । टेः='भवितास्' इत्यत्र 'आस्' इत्यस्य ।  
लोपः='टे'रित्यनेन सूत्रेण लोपः । 'सस्यार्द्धधातुके' इत्यतः 'सी'त्यनुवर्तते,  
अज्ञाक्षिप्तप्रत्ययस्य सीत्यनेन विशेषणाद्यस्मिन्विधिरिति तदादिविधिरत आह-

१ धातु से परे स्य और तास् ये प्रत्यय हों लृ और लुट् परे रहते ।

२ तिङ् शिद् से भिन्न धातु से विहित जो प्रत्यय उसकी आर्धधातुक संज्ञा हो।

३ लृट् सम्बन्धी जो प्रथम पुरुष उसके स्थान में क्रम से डा रौ रस् आदेश हो।

४ तास और अस्ति (अस् धातु) के सकार का लोप हो सादि प्रत्यय परे रहते।

५ तास् के सकार का लोप हो सादि प्रत्यय परे रहते।

रादौ प्रत्यये तथा । भवितारौ । भवितारः । भवितासि ।

भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्वः । भवितास्मः ॥

लृट् शेषे च ३ । ३ । १३ ॥

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्या-  
मसत्यां वा । स्यः । इट् । भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति ।  
भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः ।  
भविष्यामः ॥

लोट् च ३ । ३ । १६२ ॥

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् स्यात् ॥

आशिषि लिङ्लोटौ ३ । ३ । १७३ ॥

[ आशिषि धातोर्लिङ्लोटौ स्तः ] ।

ऐरुः ३ । ४ । ८६ ॥

लोट् इकारस्य उः स्यात् । भवतु ॥

तुह्योस्तातङ् आशिष्यन्त्यतरस्याम् ७ । १ । ३५ ॥

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा स्यात् । परत्वात्सर्वादेशः । भवतात् ॥

सादाविति । एव सादावित्यत्रापि बोध्यम् । तथा=तासेर्लोपः । अस्तेस्तु  
नेह सम्बन्धः, ततो रादिप्रत्ययाऽसम्भवात् ।

‘तुमुत्प्लुलौ क्रियाया क्रियार्थाया’मेत्युक्तं, प्राक् ततोऽन्यः शेष इत्याह-  
असत्यामिति । चकाराद्यल्लब्ध तदाह-सत्यामिति ।

‘विधिनिमन्त्रणे’त्याद्यनुवर्तते, तदाह-विध्यादिष्विति । परत्वादिति ।

१ भविष्यत् अर्थ वाचि धातु से लृट् लकार हो क्रियार्थक जो क्रिया वह हो या न हो तो ।

२ विधि-निमन्त्रण-आमन्त्रण-आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार हो ।

३ आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् और लोट् लकार होते हैं ।

४ लोट् सम्बन्धी इकार को उकार आदेश हो ।

५ आशीर्वाद अर्थ में तु हि को तातङ् आदेश हो विकल्प से ।

लोटो लङ्वत् ३ । ४ । ८५ ॥

लोटो लङ इव कार्यं स्यात् । तेन तामादयस्सलोपश्च ॥

तस्यस्यभिषां ताज्जन्ताथः ३ । ४ । १०१ ।

डितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः । भवताम् । भवन्तु ॥

सेह्यपिच्च ३ । ४ । ८७ ॥

लोटः सेहिः स्यात् सोऽपिच्च ॥

अतो हेः ६ । ४ । १०५ ॥

अतः परस्य हेर्लृक् स्यात् । भव । भवतात् । भवतम् । भवत ॥

मेनिः ३ । ४ । ८९ ॥

लोटो मेनिः स्यात् ॥

यद्यपि ङित्ययमनेकालित्याऽपवादस्तथा च परत्वादित्ययुक्तं, तथापि अन-  
न्यार्थङित्वेष्वनङादिषु ङित्येति चरितार्थमिति गुणवृद्धिप्रतिषेधसम्प्रसारणार्थ-  
तया सम्भवत्प्रयोजनङकारे तातङ्गि मन्थरं प्रवृत्तो ङित्यय योगः-परेणाऽने-  
कालिशदित्यनेन बाध्यते, इदोत्सर्गापवादयोरनयोः समवलत्वात् । लङ्व-  
दिति । लङ्वदित्यत्र पञ्चन्ताद्धृतिः, तेन तामादयः सलोपश्च भवन्ति ।  
अडाटौ तु नातिदिश्येते, न हि तौ लङः क्रियेते, किन्तर्हि ? अङ्गस्येति तत्त्वम् ।

भवतादिति । 'अतो हे'रिति छगपेक्षया परत्वाद्धेस्तात्तद् । अन्तरङ्गमेव  
हि छग् वाधते न तु परम् । अन्तरङ्गानपि विधीन् वहिरङ्गो लुग्वाधते' इति  
परिभाषा त्वनित्येति भावः ॥

१ लोट् को लङ् की तरह कार्य हो ।

२ डित् सम्बन्धी जो तस्-थस-थ-मिप् इनको क्रम से ताम्-तम्-त-अन्थे  
आदेश हों ।

३ लोट् सम्बन्धि सि को हि आदेश हो और वह अपित् हो ।

४ अदन्त से परे हि का लृक् हो ।

५ लोट् सम्बन्धी मि को नि आदेश हो ।

आडुत्तमस्य पिच्च । ३ । ४ । ९२ ॥

लोडुत्तमस्याऽऽत्स पित्त । हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारण-  
सामर्थ्यात् ॥

ते प्राग्धातोः । १ । ४ । ८० ॥

ते=गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः ॥

आनि लोट् ८ । ४ । १६ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्याऽऽनीत्यस्य नस्य णः  
स्यात् ॥ प्रभवाणि । \*दुर्रः पत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो  
वक्तव्यः । दुःस्थितिः । दुर्भवानि । \*अन्तरशब्दस्याऽङ्गिविधिण-  
त्वेपूपसर्गत्वं वाच्यम् । अन्तर्भवाणि ॥

नित्यं डितः ३ । ४ । ९९ ॥

सामर्थ्यादिति । अन्यथा प्रक्रियालाघवाय हुन्वादेशमेव कुर्यात्सूत्रकार-  
इति भावः । प्रागेव न परतः, नाऽव्यवहिताश्चेति 'छन्दसि परेऽपि' व्यव-  
हिताश्चेति सूत्रितमित्याशयः । आनीति । 'नि लो'डिति वक्तव्ये आनि-  
ग्रहणमागमशास्त्रस्यानित्यता ज्ञापयति । तेन 'सागरं तर्तुकामस्य' 'जहवा स्तोत्र'-  
मित्यादि सिध्यति ।

अन्तरिति । भोः सूत्रकार ! त्वया अन्तः-शब्दस्य-अङ्विधौ, किविधौ,  
णत्वे च कर्तव्ये उपसर्गत्व वक्तव्यमित्यर्थः । एवञ्चान्तःशब्दस्योपसर्गतया-

१ लोट् सम्बन्धी उत्तम पुरुष को 'आट्' का आगम हो और वह पित्त हो ।

२ गतिसंज्ञक और उपसर्गसंज्ञक इनका धातु से पूर्व ही प्रयोग होता है ।

३ उपसर्गस्थनिमित्त जो रेफ षकार उससे परे जो लोट्सम्बन्धी आनि  
उसके नकार को णकार हो ।

४ पत्व णत्व करना हो तो डुर्र को उपसर्गत्व नहीं होता है ।

५ अङ् विधि किविधि और णत्व कर्तव्य हो तो अन्तर शब्द की उपसर्ग  
संज्ञा होय ।

६ डिच् लकार सम्बन्धी जो सकारान्त उत्तम पुरुष उसके सकार का नित्य  
लोप होय ।



यासुद् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३ । ४ । १०३ ॥

लिङः परस्मैपदानां यासुङागमः स्यात्स चोदात्तो ङिच्च ॥

लिङः स लोपोऽनन्त्यस्य ७ । २ । ७२ ॥

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः स्यात् । इति प्राप्ते ॥

अतो येयः ७ । २ । ८० ॥

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय् स्यात् ।

गुणः ॥

लोपो व्योर्बलि ६ । १ । ६६ ॥

[ वकारयकारयोर्लोपः स्याद्वलि ] । भवेत् । भवेताम् ॥

झेर्जुस् ३ । ४ । १०८ ॥

लिङो जेर्जुस् स्यात् । भवेयुः । भवेः । भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम ॥

लिङाशिषि ३ । ४ । ११६ ॥

आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् ॥

लिङः-षष्ठ्यन्त, स-इति लुप्तषष्ठ्यन्त, लोपः-प्रथमान्तम्, अनन्त्यस्य-षष्ठ्यन्तम् । सेत्यनन्त्यस्येत्यनेन विशेष्यते, तदाह अनन्त्यस्येति । 'रुदादिभ्य' इत्यतः 'सार्वधातुके' इत्यनुवर्तते । आशिषीति । 'लङः शाकटायनस्यैवे'त्यतोऽत्र एवकारोऽनुवर्तनीयः, तेन सार्वधातुकसंज्ञा नेत्यपि लभ्यते । अन्यथा एकसंज्ञाधिकारबहिर्भूततया सार्वधातुकसंज्ञाऽपि स्यात्तथा च पक्षे

१ लिङ् सम्बन्धी जो परस्मैपद उसको यासुद् का आगम हो और वह उदात्त हो और ङिच् हो ।

२ सार्वधातुक लिङ् के अनन्त्य सकार का लोप हो ।

३ अत् से परे जो सार्वधातुक का अवयव यास् उनको इय् आदेश हो ।

४ वकार यकार का लोप हो वल् परे रहते ।

५ लिङ् सम्बन्धी झि को जुम् हो ।

६ आशिर्वाद अर्थ में जो लिङ् उसकी आर्धधातुक संज्ञा हो ।

किंदाशिपि ३ । ४ । १०४ ॥

आशिपि लिङो यासुट् किंस्यात् । 'स्कोः सयोगाद्यो'रिति  
सलोपः ॥

किंङिति च १ । १ । ५ ॥

गित्किन्ङिनिमित्ते इलक्षणे गुणवृद्धी न ततः । भूयात् ।  
भूयास्ताम् । भूयासुः । भूयाः । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासन् ।  
भूयास्व । भूयास्म ॥

लुङ् ३ । २ । ११० ॥

भूतार्थवृत्तेर्वातोर्लुङ् स्यात् ॥

माङि लुङ् ३ । ३ । १७५ ॥

[ माङ्युपपदे धातोर्लुङ् स्यात् ] । सर्वलकारापवादः ॥

स्मोत्तरे लुङ् च ३ । ३ । १७६ ॥

स्मोत्तरे माङि लङ् त्याचोर्लुङ् ॥

ञिल् लुङि ३ । १ । ४३ ॥

शवाद्यापत्तिः स्यादित्यवधेयम् । किदिति । कित्त्वेनेव गुणवृद्धिनिषेध सिद्धे  
किद्वचनमिग्यादित्यादौ वचिस्त्वपीति सम्प्रसारणार्थम्, जागर्त्यादित्यादौ गुणा-  
र्थञ्च, जागर्तेर्हि ङिति गुणः पर्युदस्यते, कित्त्वञ्चेह विशेषविहितेन कित्त्वेन  
वाच्यते इति तत्र गुणः सुलभः ।

इलक्षणे=इङ् इत्युच्चार्य विहिते । सर्वेति । 'माऽस्तु' इत्यादौ तु  
निषेधार्थको माशब्दो न माङिति तत्र लोट् भवत्येवेत्याशयः ।

१ आशीर्वाद अर्थ में जो लिङ्, तत्सम्बन्धी जो यासुट् वह कित् हो ।

२ गित् कित् ङित् निमित्तक इलक्षण गुणवृद्धि नहीं होय ।

३ भूतार्थक धातु से लुङ् लकार हो ।

४ माङ् उपपद रहते धातु से लुङ् लकार हो ।

५ म है उत्तर में जिसके ऐसा जो माङ् वह उपपद रहते धातु से लङ् हो  
( चकार से ) लुङ् भी हो । ६ धातु से परे ञिल् प्रत्यय हो लुङ् परे रहते ।

[ धातोश्चिप्रत्ययः स्याल्लुङि । ] शबाद्यपवादः ॥

१ च्लेः सिच् ३ । १ । ४४ ॥

[ च्लेः सिजादेशः स्यात् ] । इचावितौ ॥

गातिस्थाधुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २ । ४ । ७७ ॥

एभ्यः सिचो लृक् स्यात् । गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते ॥

भूसुबोस्तिङिः ७ । ३ । ८८ ॥

भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न स्यात् । अभूत् ।

अभूताम् । अभूवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत । अभूवम् ।

अभूव । अभूम ॥

न माङ्योगे ६ । ४ । ७४ ॥

अडाटौ न स्तः । मा भवान् भूत् । मा स्म भवत् । मा

स्म भूत् ॥

शवाद्येति । आदिपदेन इयन्नादीनां ग्रहणं बोध्यम् ।

इचाविताविति । इकारस्य 'उपदेशेऽच्-' इत्यनेन, चस्य-हल-  
न्त्यमित्यनेनेत्सञ्ज्ञेति विवेकः । इत्सञ्ज्ञायां सत्यां 'तस्य लोप' इति लोप इत्यपि  
बोध्यम् । इदित्त्वफलन्तु-अमंस्तेत्यत्र अनिदितामिति नलोपाऽभावः । इदि-  
त्वान्नुम् तु न, अन्तेदित इति व्याख्यानात् । गापेति । 'गाती'ति श्रितपा  
विकरणस्य न्यस्य निदेशाल्लुग्विकरणस्य इणादेशस्य ग्रहणं गापदेन, एवं  
'लुग्विकरणाऽल्लुग्विकरणयोरल्लुग्विकरणस्ये'ति परिभाषयाऽल्लुग्विकरणः पिवति-  
पाशब्देन गृह्यते, न तु पातिलुग्विकरण इत्यर्थः ।

१ च्लि को सिच् आदेश हो ।

२ गा, स्था, धुसञ्ज्ञक, पा और भूधातु से परे सिच् का लृक् हो ।

३ भू-सू धातु को सार्वधातुक तिङ् परे रहते गुण नहीं हो ।

४ माङ् के योग में अट्-आट् नहीं हो ।



लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३ । ३ । १३९ ॥

हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्त, तत्र भविष्यत्यर्थे लृट् स्यात् ।  
क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् । अभविष्यताम् ।  
अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् ।  
अभविष्याव । अभविष्याम । 'सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुमिक्षनभविष्यत्'  
इत्यादि ज्ञेयम् । अत सातत्यगमन ॥ २ ॥ अतति ॥

अतः आदेः ७ । ४ । ७० ॥

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात् । आत । आततुः । आतुः ।  
आतिय । आतथुः । आत । आत । आतिव । आतिम । अतिता ।  
अतिष्यति । अततु ॥

आडजादीनाम् ६ । ४ । ७२ ॥

अजादेरङ्गस्याऽऽत् स्यात् लृङ् लृङ् लृङ्क्षु । आतत् । अतेत् ।  
अत्यात् । अत्यारताम् । लृङ् सिचि इडागमे कृते ॥

अस्तिस्सिचोऽपृक्ते । ७ । ३ । ९६ ॥

विद्यमानात् सिचोऽन्तेश्च परस्याऽपृक्तस्य हल ईडागमः स्यात् ॥

ईट् ईटि । ८ । २ । २८ ॥

हेत्विति । 'हेतुहेतुमतो लिङ्' 'इच्छार्थेषु लिङ्ओटौ' इत्यादि सूत्रोक्तं लिङ्-  
निमित्तमित्यर्थः । अनिष्पत्ति = असिद्धिः । सातत्यगमनं = निरन्तरं गमनम् ।

१ हेतुहेतुमद्भावादि जो लिङ् के निमित्त, उन अर्थों में भविष्यत्कालिक  
क्रियावाची भातु से लृङ् लकार हो क्रिया की असिद्धि गम्यमान हो तो ।

२ अभ्यास के आदि के अकार को दीर्घ हो ।

३ अजादि अङ्ग को आट् का आगम हो लृङ् लृङ् लृङ् पर रहते ।

४ विद्यमान जो सिच् और अस्ति उन से परे अपृक्त हल् को ईट् का आगम हो ।

५ इट् से परे सकार का लोप हो ईट् पर रहते ।

इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे । \*सिज्जलोप एका-  
देशे सिद्धो वाच्यः । आतीत् । आतिष्ठाम् ॥

सिज्जम्भस्तचिदिभ्यश्च । ३ । ४ । १०९ ॥

सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य डित्सम्बन्धिनो ज्ञञुस् स्यात् ।  
आतिष्ठुः । आतीः । आतिष्ठम् । आतिष्ठ । आतिष्ठम् । आतिष्ठ्व ।  
आतिष्म । आतिष्ठ्यत् । पिथ गत्याम् ॥ ३ ॥

ह्रस्वं लघु । १ । ४ । १० ॥

[ ह्रस्वं लघुसञ्ज्ञं स्यात् । ]

सयोगे गुरु । १ । ४ । ११ ॥

सयोगे परे ह्रस्वं गुरु [ सञ्ज्ञं ] स्यात् ॥

दीर्घश्च । १ । ४ । १२ ॥

दीर्घश्च गुरु [ सञ्ज्ञं ] स्यात् ॥

पुगन्तलघूपधस्य च । ७ । ३ । ८६ ॥

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाऽङ्गस्येको गुणः स्यात् सार्वधातुका-  
धधातुकयोः । धात्वादेरिति सः । सेधति । षत्वम् । सिषेध ॥

सिज्जलोप इति । सिचो लोप - एकादेशे = सवर्णदीर्घे - कर्तव्ये सिद्धो  
भवति, न तु पूर्वत्राऽसिद्धमित्यनेन असिद्धो भवतीत्यर्थः । एवञ्च सकारेण  
व्यवधानाऽभावादातीदित्यादावकः सवर्णे इति दीर्घो भवत्येवेत्याशयः ।

अङ्गस्येत्यधिक्रियते, 'मिदेर्गुण' इत्यतो गुणपदं 'सार्वधातुकार्धधातुक-  
यो'रिति चानुवर्तते. 'इको गुणवृद्धी' इति परिभाषया इक्पदमुपतिष्ठतेऽत  
आह-पुगन्तस्येति । षत्वम् = आदेशप्रत्यययो'रिति षत्वम् ।

१ एकादेश करने में सिच् का लोप सिद्ध ही रहता है ।

२ सिच्-अभ्यस्त और विद् से परे डित्सम्बन्धी झि को जुस् हो ।

३ ह्रस्व की लघु सञ्ज्ञा हो । ४ सयोग परे रहते ह्रस्व की गुरु सञ्ज्ञा हो ।

५ दीर्घ की गुरु सञ्ज्ञा हो । ६ पुगन्त जो अङ्ग और लघूपध जो अङ्ग

उसके अवयव इक् को गुण हो सार्वधातुक आर्धधातुक परे रहते ।

असंयोगाल्लिट् कित् । १ । २ । ५ ॥

असंयोगात्परऽपिलिट् कित् स्यात् । सिपिधतुः । सिपिधुः ।

सिपेधिय । सिपिधथुः । सिपिध । सिपेध । सिपिधिव । सिपि-  
धिम । सेधिता । सेधिष्यति । सेधतु । असेधत् । सेधत् ।  
सिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् । एवम्-चिती संज्ञाने ॥४॥

शुच शोके ॥५॥ गद व्यक्तायां वाचि ॥ ६ ॥ गदति ॥

नेर्गदनदपतपदधुसास्थतिहन्तिधातिवातिद्रातिप्साति-  
सपतिवहनिशाभ्यतिचिनोनिदेग्निषु च ॥६॥१॥७॥

उपसर्गस्थानिमित्तात्परस्य नेर्नस्य णः स्याद्गदादिषु परेषु । प्रणिगदति ॥

‘सार्वधातुकमपि’दित्यतोऽपिदिति वर्त्तत, तदाह-अपिदिति ।

सिपिधतुरिति । कृणाऽकृतप्रसङ्गित्वेन नित्यत्वान्परमपि पुगन्तेति गुणं  
वाधित्वा कित्वात् किञ्चि चेति गुणनिषेधः । अस्य च-सेधतु-सेधतात्,  
सेधताम्, सेधन्तु । सेध सेधतात्, सेधन्, सेधन् । सेधानि, सेधाव, सेधाम् ।  
असेधत्, असेधताम्, असेधन् । असेधः, असेधतम्, असेधत । असेधम्,  
असेधाव, असेधाम-इत्यादि रूपाणि ।

लुङि च-असेधीत्, असेधिष्ठाम्, असेधिषुः । असेधीः, असेधिष्ठम्,  
असेधिष्ठ । असेधिषम्, असेधिष्व, असेधिष्मेति रूपाणि ।

संज्ञानम्=अवबोधः । चैतन्यमिति यावत् । चेतति । चिचेत ।  
चेतिता । चेतिष्यति । चेततु । अचेतत् । चेतत् । चित्यात् । अचेतीत् ।  
अचेतिष्यत्-इति चेतते रूपाणि ।

शुधधातोः-शोचति । शुशोच । शोचिता । शोचिष्यति । शोचतु ।  
अशोचत् । शोचेत् । शुच्यात् । अशोचीत् । अशोचिष्यत्-इति रूपाणि ।

व्यक्तायामिति । व्यक्ता वर्णा यस्या तथाभूतायां मनुष्यादिवाचीत्यर्थः ।  
तेन ‘गौर्गदती’ति न प्रयुज्यते । अधीयाने शुके ‘शुको गदती’ति तु प्रयुज्यते एव ।

निमित्तादिति । निमित्तात्=णत्वनिमित्तात्-रेफात् पकाराच्चा ‘अत्र

१ असंयोग से परे जो पित् मित्र लिट् वह कित् हो ।

२ उपसर्गस्थनिमित्त ( रेफ पकार ) से परे जो नि का नकार उसको णकार

कुहोश्चुः । ७ । ४ । ६२ ॥

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः स्यात् ॥

अत उपधायाः । ७ । १ । ११६ ॥

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् निति निति च प्रत्यये परे ।

जगाद । जगदतुः । जगदुः । जगदित्थ । जगदथुः । जगद ।

उत्तमो वा ७ । १ । ९१ ॥

उत्तमो णल् वा णित्स्यात् । जगाद-जगद । जगदिव ।

जगदिम । गदिता । गदिष्यति । गदतु । अगदेत् । गदेत् । गधात् ।

अतो हलादेर्लघोः ७ । २ । ७ ॥

हलादेर्लघोरकारस्य इडादौ परस्मैपदे सिचि वृद्धिर्वा स्यात् ।

अगादीत्-अगदीत् । अगदिष्यत् । णद् अव्यक्ते शब्दे ॥ ७ ॥

णो नः ६ । १ । ६५ ॥

लोपोऽभ्यासस्येत्यतोऽभ्यासस्येति वर्तते, तदाह-अभ्यासेति । 'मृजेर्द्धिः'

'अचो ङ्णिती'त्यतो वृद्धिपदं ङ्णितीति चानुवर्त्याह वृद्धिरिति ।

गोतो णिदित्यनो णिदिति वर्तते । तदाह णिदिति ।

'ऊर्णोतेर्विभाषे'त्यतो विभाषेति, 'नेटी'त्यत 'इटी'ति 'सिचि वृद्धिः पर-  
'स्मैपदेषु' इति चानुवर्त्याह-वृद्धिर्वेति ।

अव्यक्ते=अस्पष्टाक्षरे, शब्दे=ध्वनौ । नादे इत्यर्थः ।

हो गदादि परे रहते । १ अभ्यास के कवर्ग हकार को चवर्ग आदेश हो ।

२ उपधा के अत् (ह्रस्व अकार) को वृद्धि हो नित् नित् प्रत्यय परे रहते ।

३ उत्तम पुरुष का जो णल्-वह विकल्प से णित् हो ।

४ हलादि धातु के लघु अकार को वृद्धि हो विकल्प से, इडादि परस्मैपद

सिच् परे रहते । ५ धातु के णकार को नकार हो ।

धातोरादेशस्य नः स्यात् । णोपदेशात्वनर्दनादिनायनायनाधु-

नन्दनकनृनृतः ॥

उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८ । ४ । १४ ॥

उपसर्गस्थानिमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः स्यात्  
समासे असमासे च । प्रणदति । प्रणिनदति । नदति । ननाद ॥

अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६ । ४ । १२० ॥

लिङ्गिमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्याऽमयुक्तहल्-  
मध्यस्थस्याऽकारस्य एकारः स्यादभ्यासलोपश्च किति लिटि । नेदुः ।  
नेदुः ॥

णोपदेशा इति । नर्द-नादि-नाथ-नाध-नन्द-नङ्-नृ-नृतधात्वति-  
रिक्ता नकारादिधातवो णोपदेशा बोध्या इत्यर्थः । यथाऽयं नदधातुर्णोपदेशः,  
परिगणितधातुभिन्नत्वात् । नाटेशर्षार्हस्य पर्वुदासादृटादिर्णोपदेश एव । इह  
नाधनृनन्दीना केचिण्णोपदेशतामाहुः ।

समास इति । 'समासेऽङ्गुकेः सङ्गे' इत्यतोऽनुवर्तनात्समासे एव स्या-  
दतोऽसमासग्रहणम् । कृतेऽसमासग्रहणे समासे न स्यादतोऽपेर्ग्रहणं, तेन  
समासेऽसमासे च भवतीत्याशयः । प्रणिनदतीति । नर्गदेति णत्वम् । धातु-  
नकारस्य 'उपसर्गादसमासे' इति णत्वन्तु न भवति, अडाद्यतिरिक्तनकार-  
व्यवधानात् ।

अत एकेति । एकशब्दोऽसहायवाची एकयोर्हलोर्मध्ये इत्यर्थः । तदाह-  
असंयुक्तेति । इष्टानुगोधेन लिटीत्यावर्त्य आदेशविशेषणम्, एत्त्रनिमित्तव  
स्वीक्रियते, तदाह- लिङ्गिमित्तेति । इह 'गमहने'त्यतः किरीत्यनुवर्तते ।  
डितीति तु नानुवर्तते, प्रयोजनाऽभावात्, तदाह- किरीतीति ।

१ उपसर्गस्थनिमित्त से परे णोपदेश धातु के नकार को णकार हो समास में  
या असमास में ।

२ लिट् को निमित्त मानकर आदेश आदि नहीं हुए हैं जिसको ऐसा जो  
अङ्ग तदवयव जो अपयुक्त हल्मध्यस्थ अकार उसको एकार हो और अभ्यास का  
लोप हो कि लिट् पर रहते ।

थलि च॑ सेदि॒ ६ । ४ । १२१ ॥

प्रागुक्तं स्यात् । नेदिथ । नेदथुः । नेद । ननाद-ननद ।  
नेदिव । नेदिम । नदिता । नदिष्यति । नदतु । अनदत् । नदेत् ।  
नधात् । अनादीत्-अनदीत् । अनदिष्यत् । दुनदि समृद्धौ ॥८॥

आदिर्भिडुडवः १ । ३ । ५ ॥

उपदेशे धातोराधा एते इतः स्युः ॥

इदितो नुम् धातोः ७ । १ । ५८ ॥

[ इदितो धातोर्नुमागमः स्यात् । ] नन्दति । ननन्द ।  
नन्दिता । नन्दिष्यति । नन्दतु । अनन्दत् । नन्देत् । नन्धात् ।  
अनन्दीत् । अनदिष्यत् ॥ ९ ॥ अर्च पूजायम् ॥ अर्चति ।

तराण्नुड् द्विहलः ७ । ४ । ७१ ॥

द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतादकारात्परस्य नुट् स्यात् । आनच ।

अनादीदिति । अतो हलादेरिति वृद्धिविकल्पः ।

सम्यक् ऋद्धिः-समृद्धिः । स्वरूपानुरूपा धनधान्यसम्पत्तिरित्यर्थः ।

‘उपदेशोऽच्’ इत्यत ‘उपदेशे’ इत्यनुवर्तते तदाह उपदेशे इति ।  
एते=भिडुडवः । इतः=इत्सञ्ज्ञकाः । तेन ‘तस्य लोप’ इति तेषां लोप इत्याशयः ।

इदिति इति । इत्-इधस्यासौ-इदित्, तस्य-इदितः । इकारेत्सञ्ज्ञ-  
कस्य धातोर्नुमागमो भवतीत्यर्थः । नन्धादिति । इदिर्त्वादनदिता हल  
उपधाया इति नकारलोपो न ।

तस्मादिति । तच्छब्देन ‘अत आदे’रिति कृतदीर्घोऽकारः परामृश्यते,  
तदाह दीर्घीभूतादिति । अर्चधातोर्लिटि-आनर्च, आनर्चतुः, आनर्चुः ।

१ लिट् को निमित्त मानकर आदेश आदि नहीं हुए हैं जिसको ऐसा जो  
अङ्ग, तदवयव जो असंयुक्त हल् मध्यस्थ अकार, उसको एकार होय और अभ्यास  
का लोप हो सेट् थल् परे रहते ।

२ उपदेश में धातु के आदि जो बि डु डु उनकी इत्सञ्ज्ञा हो ।

३ इदित जी धातु उसको नुम् का आगम होय ।

४ द्विहल् धातु का जो दीर्घीभूत आकर उससे जो परे उसको नुट होय ।

आनर्चतुः । अर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चतु । आर्चत् । अर्चेत् ।  
अर्च्यात् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् ॥

व्रज भर्तौ ॥ १० ॥ व्रजति । वव्राज । व्रजिता । व्रजिष्यति ।

व्रजतु । अव्रजत् । व्रजेत् । व्रज्यात् ॥

वदव्रजहलन्तस्थान् चः ७ । २ । ३ ॥

वेदव्रजेहलन्तस्थ चाऽङ्गस्थाऽचः स्थाने वृद्धिः स्यात्सिचि  
परस्मैपदेषु । अव्राजीत् । अव्रजिष्यत् ॥

कटे वर्षाऽऽवरणयो ॥ ११ ॥ कटति । चकाट । चकेऽतुः ।

कटिता । कटिष्यति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् ॥

ह्रस्वन्ताच्चाणश्चसजागृणिश्च्येदिताम् ७ । २ । ५ ॥

ह्रस्वान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य स्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्न स्यादिडादौ  
सिचि । अकटीत् । अकटिष्यत् ॥ गुप् रक्षणे ॥ १२ ॥

आनर्चिथ, आनर्चथुः, आनर्च । आनर्च, आनर्चिथ, आनर्चिमेति रूपाणि ।

लोठि-अर्चतु-अर्चतात्, अर्चताम्, अर्चन्तु । अर्च-अर्चतात्, अर्च-  
तम्, अर्चत् । अर्चानि, अर्चाव, अर्चाम् ॥ लोठि-आर्चत्, आर्चताम्,  
आर्चन् । आर्चः, आर्चतम्, आर्चत् । आर्चम्, आर्चाव, आर्चामेति रूपाणि ॥  
आर्चात्, आर्चिष्ठाम्, आर्चिषुः । आर्चीः, आर्चिष्ठम्, आर्चिष्ट । आर्चिषम्,  
आर्चिष्व, आर्चिष्वेति च लुङि रूपाणि ।

वर्षेति । वर्षे=वर्षणे, आवरणे=आच्छादने-चेत्यर्थः ।

ह्रस्वेति । ह्रकारान्तस्य, मकारान्तस्य, यकारान्तस्य चेत्यर्थः । क्षणादेः=  
क्षणश्चसजागृधातूनाम् । कटधातोरेदित्वाच्च वृद्धिः :

१ वद धातु व्रज धातु और हलन्त जो अङ्ग तदवयव जो अच् उसको वृद्धि  
होय परस्मैपदपरक सिच् परे रहते ।

२ ह्रकारान्त, वकारान्त, मकारान्त जो धातु, और क्षणादि, (क्षणश्चसजागृ)  
तथा ण्यन्त, श्वि और षदित् जो धातु उनको वृद्धि नहीं होय ।

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ३ । १ । २८ ॥

एभ्य आयप्रत्ययः स्यात्स्वार्थे ॥

सनाद्यन्ता धातवः ३ । १ । ३२ ॥

सनादयः कमेणिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः  
स्युः । धातुत्वाल्लडादयः । गोपायति ॥

आधादय आर्धधातुके वा ३ । १ । ३१ ॥

आर्धधातुकविवक्षायामाधादयो वा स्युः । \*कास्येनेकाच  
आम् वक्तव्यो लिटि । आस्कासोराभिविधानान्मस्य नेत्वम् ॥

‘अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ती’त्यभियुक्तोक्तेराह—स्वार्थे इति ।  
सनादयश्च—

‘सन्त्यक्कास्यच्छ्रयश्च यषोऽथाऽऽचारकिष्णिज्यङौ तथा ।  
यगाय ईयङ् णिङ् चेति द्वादशाऽमी सनादयः ॥ इति ।

सनादय इति । सनमारभ्य—‘कमेणिङ्’ इत्येतद्विहितणिङ्प्रत्ययपर्यन्तं  
द्वादश प्रत्यया अन्ते येषामित्यर्थः । आयप्रत्ययविशिष्टस्य धातुत्वात्, विशि-  
ष्टादेव ‘वर्तमाने लृङित्यादिना लडादय इत्यर्थः ।

विवक्षायामिति । परसप्तम्यान्तु आर्धधातुकोपदेशकाले यदकारान्त-  
मित्यनुपपदं वक्ष्यमाणं न सङ्गच्छेतेति भावः । मकारस्येत्सञ्ज्ञायान्तु मित्वा-  
दन्त्यादयः परत आमि सति—‘अकः सवर्णे’ इति दीर्घे च आम्विधानं व्यर्थमेव,  
आमि सत्यसति वा फलाऽभावादित्याशयः । परे तु आमो मकारस्य नेत्वम्,  
आमोऽदन्तत्वादित्याहुः ।

१ गुप् धूप विच्छ पण और पन इन धातुओं से आय् प्रत्यय होय स्वार्थ में ।

२ सन् से लेकर ‘कमेणिङ्’ पर्यन्त जो प्रत्यय, वे हैं अन्त में जिनके उनकी  
धातु संज्ञा हो ।

३ आर्धधातुक की विवक्षा में आयादि विकल्प से हों ।

४ कास् धातु और अनेकान् धातु उनसे आन् हो लिट् परे रहते ।



अतो लोपः ६ । ४ । ४८ ॥

आर्धधातुकोपदेशे यदकारान्तं तस्याऽकारस्य लोपः स्यादार्धधातुके ॥

आमः २ । ४ । ८१ ॥

आमः परस्य लृक् स्यात् ॥

कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि ३ । १ । ४० ॥

आमन्तालिट्पराः कृञ्चरतायोऽनुप्रयुज्यन्ते । तेषां द्वित्वादि ॥

उरत् ७ । ४ । ८६ ॥

अभ्यासकृवर्णस्याऽस्याप्रत्यये परे । रपरः । हलादिः शेषः ।

वृद्धिः । गोपायाञ्चकार । द्वित्वात्परन्वाधेणि प्राप्ते—

‘ण्यश्चन्नियार्धे’ इत्यतो लुगित्यनुवर्तते, तदाह—लुगिति ।

‘कास्प्रत्ययादाम्’ इत्यत आमित्यनुवर्तते, तच्च पञ्चम्या विपरिणम्यते, प्रत्ययग्रहणे सन्तप्रहणं, तदाह—आमन्तादिति । अत्र कृञ्पदेन न कृञ्चा-  
तोर्ग्रहणम्, ‘आम्प्रत्ययव’दिति सूत्रे कृञ्ग्रहणात्, किन्तु कृञ्प्रत्याहारस्यैव ।  
स च प्रत्याहारः, ‘कृञ्चस्तियोगे’ इत्यतः ‘कृञो द्वितीये’ति अकारेण तत्र  
कृञ्प्रत्याहारघटकाः कृञ्चस्तयप्रयः, तदाह—कृञ्चस्तय इति । सम्प्रदिस्तु  
प्रत्याहारेऽन्तर्भूतोऽपि अनन्वितार्थत्वाच्च प्रयुज्यते । तेषाम्=अनुप्रयुज्यमान-  
कृञ्चस्तीनाम् । द्वित्वादि=लिटिधातोरनभ्यासस्येत्यादिना द्वित्वाऽभ्यास-  
सञ्ज्ञादि ।

‘अत्र लोपः’ इत्यतोऽभ्यासस्येत्यनुवर्तते । अत्रस्येत्यधिक्रियते, तस्य च  
प्रत्ययाक्षेपकत्वं, तदाह—प्रत्यये इति । रपरः—‘उरण्पर’ इत्यनेन ।  
वृद्धिः=‘अचो ण्णिती’त्यने कृञ् अकारस्य वृद्धिः ।

यणीति । यणि=इको यणचितीति यणि । इदमुपलक्षणम्—अचो ण्णितीति  
वृद्धेरपि ।

१ आर्धधातुक के उपदेश काल में जो अकारान्त उसका लोप होय आर्ध-  
धातुक पर रहते ।

२ आम् से परे जो ( लिट् ) उसका लृक् हो ।

३ आमन्त से परे लिट्परक कृ भू अस् इनका अनुप्रयोग हो ।

४ अभ्यास का जो कवर्ण उसको अच् होय प्रत्यय पर रहते ।

द्विर्वचनेऽचि १ । १ । ५९ ॥

द्वित्वनिमित्तेऽचि परे अच- आदेशो न स्याद्द्वित्वे कर्तव्ये ।  
गोपायाश्चक्रतुः ॥

एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७ । २ । १० ॥

उपदेशे यो घातुरेकाजनुदात्तश्च ततः परस्यार्धधातुकस्येण  
स्यात् ।

उद्देश्योतिरुक्षुशीङ्स्नुक्षुशिवडीङ्श्रिमिः ।

वृङ्पृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥

कान्तेषु शकलः । चान्तेषु-पच्-गुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः  
पद । छान्तेषु-प्रच्छेकः । जान्तेषु-त्यज्-निजिर्-भज्-भञ्ज्-भुज्-

द्विर्वचनशब्दो द्वित्वनिमित्ते लाक्षणिकः, तेन अचा सामानाधिकरण्यम् ।  
यद्वा-अर्श आद्यजन्तः । तदाह-द्वित्वनिमित्ते इति । 'अच- परस्मि'-  
चित्यतोऽच इति, 'स्थानिवदादेश' इत्यत 'आदेश' इति, 'न पदान्ते'त्यतो  
'ने'ति चानुवर्तते । तदाह-अच आदेशो नेति ।

एकाच इति । अत्र 'उपदेशे' इति ब्रह्मलीदीपकन्यायेन, पूर्वोत्तराभ्यां  
सम्बध्यते । तेन उपदेशे य एकाच्, उपदेशे य अनुदात्त इत्याद्यर्थः । पूर्वान्व-  
यात्पिपक्षतीत्यादाविणिषेधः सिद्धयति । सम्प्रति द्वित्वेनोनकाच्चेऽपि उप-  
देशे एकाच्चात् । उत्तरान्वयस्य-कर्तुं गन्तुमित्यत्रेणिषेधः फलम्, नित्स्व-  
रेण सम्प्रत्युदात्तत्वेऽप्युपदेशेऽनुदात्तत्वादिति ध्येयम् । नेङ्गशीत्यतो 'ने'ति  
इडिति चानुवर्तते । तदाह-इप्नेति ।

एकाचः=कृपादयो धातवः । निहताः=अनुदात्ताः । अजन्तेषु अनु-  
दात्तानुक्त्वा हलन्तेषु तानाह-कान्तेष्विति ।

१ द्वित्वनिमित्तक अच् परे रहते अच् आदेश नहीं हो द्वित्व करना होतो ।

२ उपदेश में जो एकाच् और अनुदात्त धातु उससे परे आर्धधातुक को  
हट नहीं हो ।

भस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्-रुज्-रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्ज्-सज्-सृजः पञ्चदश ।  
 दान्तेषु-अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद्-पथ्-भिद्-विधतिर्विनद्-विन्द्-  
 शद्-सद्-स्विध-स्कान्द्-हदः षोडश । धान्तेषु-कुब्-क्षुब्-शुब्-बन्ध्-  
 युध्-रुध्-राध्-व्यध्-शुब्-साध्-सिध्या एकादश । नान्तेषु-मन्यहनौ  
 द्वौ । पान्तेषु-आप्-छुप्-क्षिप्-तप्-तिप्-तृप्-दृप्-लिप्-लृप्-वृप्-शप्-  
 स्वप्-सृपस्त्रयोदश । भान्तेषु-यम्-रम्-लभस्त्रयः । मान्तेषु-  
 गम्-नम्-यम्-स्मश्चत्वारः । शान्तेषु-कुश्-दंश्-दिश् दश-  
 मृश्-रिश-रुश्-लिश्-विश्-स्पृशो दश । पान्तेषु-कृप्-त्विप्-  
 तुप्-द्विप्-दुप्-पुष्य-पिप्-त्रिप्-शिप्-शुप्-शिष्या-एकादश ।  
 सान्तेषु-धस्-वसती द्वौ । हान्तेषु-दह्-दिह्-दुह्-नह्-मिह्-  
 रुह्-लिह्-वहोऽष्टौ ।

अनुदात्ता हलन्तेषु धातवरज्याधिकं सतम् (१०३) ॥

गोपायाञ्चकार्य । गोपायाञ्चकथुः । गोपायाञ्चक । गोपाया-  
 ञ्चकार-गोपायाञ्चकर । गोपायाञ्चकृव । गोपायाञ्चकृम । गोपाया-  
 ञ्चभूव । गोपायामास । जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपुः ॥

स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्दितो वा ७ । २ । ४४ ॥

स्वरत्यादेरुदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात् ।

उपसंहरति-अनुदात्ता इति । विन्दतेरपि ग्रहणादेशा (१०३) सङ्ख्येति  
 भावः । एवञ्च प्रकृते कृधातोरजन्तस्य परिगणितवहिर्भूतत्वेनाऽनुदात्ततया  
 यलि 'एकाच' इतीप्तिषेधो भवति । तदाह-गोपायाञ्चकर्थेति । गुप्धातो-  
 र्लुङि पक्षे-अगोपायीत्, अगोपायिष्ठाम्, अगोपायिषुः । अगोपायीः, अगो-

१ स्वरत्यादि जो धातु और उदित जो धातु उनसे परे जो वलादि आर्ध-  
 धातुक उसको इट् का आगम हो विकल्प करके ।

जुगोपिथ-जुगोप्य । गोपायिता-गोपिता-गोप्ता । गोपायिष्यति, गोपि-  
प्यति-गोप्स्यति । गोपायतु । अगोपायत् । गोपायेत् । गोपाय्यात्-  
गुप्यात् । अगोपायीत् ॥

नेटि ७ । २ । ४ ॥

इडादौ सिचि, हलन्तस्य वृद्धिर्न स्यात् । अगोपीत् ।  
अगौप्सीत् ॥

झलो झलि ८ । २ । २६ ॥

झलः परस्य सस्य लोपः स्याज्झलि । अगौप्तम् । अगौप्सुः ।  
अगौप्सोः । अगौप्तम् । अगौप्त । अगौप्सम् । अगौप्सव । अगौ-  
प्सम् । अगोपायिष्यत् । अगोपिष्यत् । अगोप्स्यत् ॥

क्षि क्षये ॥ १३ ॥ क्षयति । चिक्षाय । चिक्षियतुः । चि-  
क्षियुः । 'एकोच' इतीप्तिषेधे प्राप्ते—

झल्लु झल्लुस्तु झल्लुस्तु लोटि ७ । २ । १३ ॥

क्रादिभ्य एव लिट् इण् न स्यादन्यस्मादनितोऽपि स्यात् ॥

पायिष्टम्, अगोपायिष्ट । अगोपायिषम्, अगोपायिष्व, अगोपायिष्म ॥ अगो-  
पीत्, अगोपिष्टाम्, अगोपिषुः । अगोपी, अगोपिष्टम्, अगोपिष्ट । अगो-  
पिषम् । अगोपिष्व, अगोपिष्वेत्यादि रूपाणि ।

चिक्षियतुरित्यत्र—'अचि शुधात्वि'तीयद् । निषेधे प्राप्ते=परि-  
गणितवर्हिभूततथाऽनुदात्तत्वेन, यलादौ परत इप्तिषेधे प्राप्ते । 'सूत्राण्यवता-  
र्यन्ते' इति शेषः ।

१ इडादि सिचि परे रहते हलन्त को वृद्धि नहीं हो ।

२ झल् से परे जो सकार उसका लोप होय झल् परे रहते ।

३ क्रादि से ही परे जो लिट् उसको इट् नहीं हो अन्य जो अनिट् धातु  
उनसे परे जो लिट् उसे तो इट् हो ।

अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७ । २ । ६१ ॥

उपदेशोऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्याऽनिट् ततस्थल इण् न स्यात् ।

उपदेशोऽत्वंतः ७ । २ । ६२ ॥

उपदेशोऽकारवतस्तासौ नित्याऽनिटः परस्य थल इण् न स्यात् ।

ऋतो भारद्वाजस्य ७ । २ । ६३ ॥

तासौ नित्याऽनिट ऋदन्तादेव थलो नेट् भारद्वाजस्य मतेन ।

तेनाऽन्यस्य स्यादेव ।

अयमत्र सङ्ग्रहः

अजन्तोऽकारवान्धा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।

ऋदन्ता ईदङ् नित्याऽनिट् प्राधान्यो लिटि सेङ् भवेत् ॥

अयमत्रेति । 'कृसृष्टृ' इत्यादिसूत्रचतुष्टयेन यल्लघं तस्यायं सङ्ग्रह इत्यर्थः ।

अजन्त इति । यो धातुरजन्तः तासि (लुटि) परतो नित्यमनिट् च, तत परस्य थल इद्वा भवति । यथाऽयं क्षिधातुरजन्तः, तासौ नित्यानिट् च, क्षेतेत्यत्र इटोऽभावात्, अतस्ततः परस्य थल इद्वा भवति । चिक्षयिथ-चिक्षेथेति । 'अचस्तास्व'दिति, 'ऋतो भारद्वाजस्ये'ति सूत्रद्वयेन चाऽयमर्थो लभ्यते ।

किञ्च

अकारवान् यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततः परस्य थल इद्वा भवति । यथा पञ्धातुस्तासौ नित्याऽनिट्-पक्तेति हि तत्र रूपम् ।) एवञ्च-ततः परस्य

१ उपदेश में अजन्त जो वांत्, तास् पर रहते नित्य अनिट्, -उससे परे जो थल् उसको इट् नहीं हो ।

२ उपदेश में जो अकारवान् धातु-तास् पर रहते नित्य अनिट्-उसको थल् पर रहते इट् नहीं हो ।

३ तास् पर रहते नित्य अनिट् जो ऋदन्त धातु इसको ही थल् पर रहते इट् नहीं हो भारद्वाज के मत में । अन्य धातुओं को तो भारद्वाज के मत में इट् होता है ।

४ अजन्त या अकारवान् धातु जो तास् (लुट) पर रहते नित्य अनिट् हो उसको थल् पर रहते विकल्प से इट् होता है । ऋदन्त धातु-जो तास् पर रहते अनिट् हो-उससे परे थल् को नित्य ही इट् नहीं होता है ।

चिक्षियथ-चिक्षेथ । चिक्षियथुः । चिक्षिय । चिक्षाय-  
चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेप्यति । क्षयतु ।  
अक्षयत् । क्षयेत् ।

**अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७ । ४ । २५ ॥**

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्थायादौ प्रत्यये परे न तु कृत्सार्वधातु-  
कयोः । क्षीयात् ॥

थल इङ्गा भवति-पेचिथ-पपक्येति । अयमर्थश्च-‘उपदेशोऽत्वत्’ इति ‘ऋतो  
भारद्वाजस्ये’ति च सूत्रद्वयप्रवृत्त्या लभ्यते ।

किञ्च-

यो धातुः-ऋकारान्तस्तासि परतो नित्यानिट् ततः परस्य थल इण  
भवति । भारद्वाजमतेऽपि अन्येषां मतेऽपि च तत्र इण भवतीत्याशयः ।  
यथा-‘हृप् हरेण’-धातुस्तासौ नित्यमनिट्, ( हर्तेति रूपात् ) । एवञ्च-ततः  
परस्य थल इण, जहर्थेति । अयमर्थश्च-‘ऋतो भारद्वाजस्ये’ति, ‘अचस्तास्व’-  
दिति च सूत्रद्वयप्रवृत्त्या लभ्यते ।

किञ्च-

क्रादिभिन्नः सर्वोऽपि धातुर्लिटि सेङ्भवति । क्रादयस्तु लिटि नित्यानिट्  
इत्याशयः । एवञ्च-क्रादीनामष्टानां थलि परतो वमादिषु च-चकर्थ, चकृव,  
इत्यादौ सर्वत्र इङ्भावः । एवं नित्यानिटोऽपि धातोः परेषा वमादीनां  
नित्यमिङ्भवतीति लब्धम् । ‘एतच्च ‘कृष्टभृष्ट’ इति नियमार्थेन सूत्रेण लभ्यते  
इत्यवधेयम् ।

चिक्षियथेति । क्षिधातोरनुदात्ततया तासौ नित्यानिटः परस्य थलः-  
‘अचस्तास्व’दितीणिपेधे ‘चिक्षेथे’ति, ‘ऋतो भारद्वाजस्ये’ति सूत्रेण इटि च-  
‘चिक्षियथे’ति रूपमिति भावः । अत्र काचतिरिक्ततया क्रादिनियमादिट् ।

कृष्टभृष्ट रतुष्टुश्रु इनसे भिन्न जो धातु वह लिट् में सेट् होता है ।

१ अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो, यकारादि प्रत्यय परे रहते, (परन्तु) कृत्सार्वधातुक  
पर रहते नहीं होय ।

सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७ । २ । १ ॥

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदपरे सिचि । अक्षेपीत् ।  
अक्षेप्यत् । तप सन्तापे ॥ १४ ॥ तपति । तताप । तेषुः ।  
तेपुः । तेपिथ-तपथ । तेपिव । तेपिम । तप्ता । तप्स्यति । तपतु ।  
अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अतप्स्यत् ॥  
क्रमु पादविक्षेपे ॥ १५ ॥

याँ आश भ्लाश अमु क्रमु कुमु त्रसि वुटि लपः । ३ । १ । ७० ॥

एभ्यः स्यन्त्या स्यात् कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप् ॥

क्रामः परस्मैपदेषु ७ । ३ । ३८ ॥

क्रमेर्दीर्घः स्यात् परस्मैपदे शिति । क्राम्यति-क्रामति ।  
चक्राम । क्रमिता । क्रमिष्यति । क्राम्यतु-क्रामतु । अक्राम्यत्,

लुङि-अक्षेपीत्, अक्षेपाम्, अक्षेपुः । अक्षेपीः, अक्षेपम्, अक्षेष्ट ।  
अक्षेपम्, अक्षेप्व, अक्षेप्मेति रूपाणि । सन्तापः=तपनं, हेशश्च । अकर्म-  
कोऽयम् । सूर्यस्तपति । चैत्रस्तपति । तेषतुरित्यत्र 'अत एकहल्मध्ये'इत्ये-  
त्वाभ्यासलोपो ।

भारद्वाजमते इटि 'थलि च सेटी' त्येत्वाभ्यासलोपे च 'तेपिथे'ति रूपम् ।  
'उपदेशेऽन्त' इतीप्तिपेथे च 'तपथे'ति रूपम् ।

तेपिवेति । कादिनियमज्ञित्यमिट् । एवं तेपिवेत्यत्रापि चोच्यम् ।

लुङि अताप्सीत्, अताप्ताम्, अताप्सुः । अताप्सीः, अताप्ताम्, अताप्त ।  
अताप्सम्, अताप्स्य, अताप्स्येति रूपाणि ।

पादविक्षेपः=चलनम् । अकर्मकोऽयमत्रार्थे क्रमुधातुः ।

१ इगन्त अङ्ग को वृद्धि हो परस्मैपदपरक सिच् परे रहते ।

२ आश भ्लाश अमु क्रमु कुमु त्रसि वुटि लप इन धातुओं से विकल्प से  
व्यव् हो कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते ।

३ क्रम धातु को दीर्घ हो परस्मैपदपरक शित् परे रहते ।

अक्रामत् । क्राम्येत्-क्रामेत् । क्रम्यात् । अक्रमीत् । अक्रामिष्यत् ॥  
पा पाने ॥ ६ ॥

पाधाध्मास्थान्नादाण्डश्यतिसर्तिसदसदां पिवजिघ्रधम-  
तिष्ठमनयच्छपश्यच्छधौशीयसीदाः ७३७८॥

पादीना पिवदयः स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे । पिव-  
देशोऽदन्तस्तेन न गुणः । पिवति ॥

आतः औ णलः ७ । १ । ३४ ॥

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात् । पपौ ॥

आतो लोप इटि च ६ । ४ । ६४ ॥

अजाधोराधधातुकयोः कृदिदोः परयोरातो लोपः स्यात् ।

पपतुः । पपुः । पपिथ-पपाय । पपथुः । पप । पपौ । पपिव ।  
पपिम । पाता । पास्यति । पिवतु । अपिवत् । पिबेत् ॥

अक्रमीदित्यत्र 'अतो हलादे'रिति वृद्धिर्न, ह्यन्यन्तेति निषेधात् ।

पात्रेति । पा-इत्यस्य-पिवादेशः । प्रा-इत्यस्य-जिघ्रादेशः । ध्मा-  
इत्यस्य-धमादेशः । स्था-इत्यस्य तिष्ठादेशः, स्त्रा-इत्यस्य-मनादेशः । दाणो  
यच्छादेशः । दृशः-पर्यादेशः । ऋ-इत्यस्य ऋच्छादेशः । स्रु-इत्यस्य-  
'धौ' इत्यादेशः । शदः-शीयादेशः । सदः-सीदादेश इत्यर्थः ।

अदन्त इति । अन्यथा पुगन्तेति गुणादेशापत्तिः । पिवतीत्यत्र शत्र-  
कारस्य च 'अतो गुणे' इति पररूपम् ।

पपिथेति । 'अजन्ततया तासौ नित्यानिट्कृतया' च थलि वैकल्पिके  
इटि आतो लोपे-पपिथेति रूपम्, इडभावे च पपाथेति रूपम् । भारद्वाजमते  
इट्, अन्येषां मते नेडिति विवेकः ।

१ पादि धातुओं को पिवदि आदेश हो इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय परे रहते ।

२ आदन्त धातु से परे जो णल् उसको औकार आदेश हो ।

३ अजादि कित् ङित् आर्धधातुक और इट्-ये परे रहते आकार का लोप हो ।



एलिङि ६ । ४ । ६७ ॥

धुसंज्ञकानां भास्यादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि ।  
पेयात् । गातिस्थेति सिचो लृक् । अपात् । अपाताम् ॥

आतः ३ । ४ । ११० ॥

सिञ्जुकि आदन्तादेव ज्ञेजुस् स्यात् ॥

उस्थपदान्तात् ६ । १ । ९६ ॥

अपदान्तादकारादुसि परे पररूपमेकादेशः स्यात् । अपुः ।  
अपास्यत् ॥ ग्लै हर्षक्षये ॥ १७ ॥ ग्लायति ॥

आदेच उपदेशोऽशिति ६ । १ । ४५ ॥

उपदेशे एजन्तस्य धातोराखं स्यान्न तु शिति । जग्लौ । ग्लाता ।  
ग्लास्यति । ग्लायतु । अग्लायत् । ग्लायेत् ।

वाऽन्यस्य संयोगादेः ६ । ४ । ६८ ॥

हर्षक्षयः=धातुक्षयः । ( भुर्क्षाना, उदास होना ) । अकर्मकोऽयम् ।  
लिङि जग्लौ, जग्लतुः, जग्लुः । जग्लिथ-जग्लाय, जग्लयुः, जग्ल ।  
जग्लौ, जग्लिव, जग्लिमेति ग्लाधातो रूपाणि ।

१ धुसंज्ञक जो धातु और मा स्यादि जो धातु उनको एत्वं हो आर्धधातुक  
कित् लिङ् पर रहते ।

२ सिञ्जुक् होने पर आदन्त धातु से ही परे जो क्षि उसी को जुस् हो ।  
अन्य को नहीं हो ।

३ अपदान्त अकार से 'उस्' पर रहते पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश  
हो ।

४ उपदेश मे एजन्त जो धातु उसको आत्व हो, शित् पर रहते नहीं हो ।

५ धुमास्थादि से अन्य जो संयोगादि धातु उसके आकार को एकार हो  
विकल्प करके आर्धधातुक लिङ् पर रहते ।

धुमास्यादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात् । एत्वं वा स्यादार्धधातुके  
किति लिङि । ग्लेयात्-ग्लयात् ॥

यमरमनमातां सक् च ७ । २ । ७३ ॥

एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु । अग्लासीत् ।  
अग्लास्यत् । हृ कौटिल्ये ॥ १८ ॥ हरति ॥

ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७ । ४ । १० ॥

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणः स्याल्लिटि । उपधाया वृद्धिः ।  
जहार । जहरतुः । जहरः । जहर्थ । जहरथुः । जहर । जहार-  
जहर । जहरिव । जहरिम । हर्ता ॥

ऋद्धनोः स्ये ७ । २ । ७० ॥

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येड् स्यात् । हरिष्यति । हरतु । अहरत् ।  
हरेत् ॥

‘अङ्गेः सिची’त्यतः ‘सिची’ति, ‘स्तुसुधून्म्यः’ इत्यतः परस्मैपदे’ष्विति,  
‘आर्धधातुकस्ये’डित्यत इडिति चानुवर्तते । सिचीति षष्ठ्या विपरिणम्यते,  
तदाह-सिच इडिति । अग्लासीत्, अग्लासिष्टम्, अग्लासिष्ठुः । अग्ला-  
सीः, अग्लासिष्टम्, अग्लासिष्ट । अग्लासिष्टम्, अग्लासिष्ट्व, अग्लासिष्मेति  
लुङि लुपाणि । कौटिल्य-कुटिलता । अत्रार्थेऽयमकर्मकः ।

जहर्थेति । ऋदन्तत्वाजेट्, ‘ऋदन्त ईड्ड्नित्यानिट्’ इत्युक्तेः ।

जहरिवेति । कादिनियमाजित्यमिट् । ‘क्राद्यन्यो लिटि सेङ्गवे’दित्युक्तेः ।

१ यम् रम् नम् और आदन्त जो धातु इनको सक् का आगम हो और  
इनसे परे जो सिच् उसको इट् का आगम हो परस्मैपद परे रहते ।

२ ऋदन्त जो संयोगादि अङ्ग उसको गुण हो लिट् परे रहते ।

३ ऋदन्त जो धातु और हन् धातु उससे परे जो स्य उसको इट् का  
आगम हो ।

शृणोति संयोगाच्चोः ७ । ४ । २९ ॥

अर्तेः संयोगादेर्नृदन्तस्य च गुणः स्याद्यकिं यादावार्धधातुके  
लिङि च । ह्यात् । अहार्षात् । अहरिष्यत् ॥ शृ श्रवणे ॥ १९ ॥

श्रुवः शृ च ३ । १ । ७४ ॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च । शृणोति ।

सार्वाधातुकमपित् १ । २ । ४ ॥

अपित्सार्वाधातुकं ङिद्वत् स्यात् । शृणुतः ॥

ह्रश्रुवोः सार्वाधातुके ८ । ४ । ८७ ॥

जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य चाऽसंयोगपूर्वोऽवर्णस्य  
यण् स्यादजादौ सार्वाधातुके । शृण्वन्ति । शृणोपि । शृणुयः ।  
शृणुथ । शृणोमि ॥

लोपेऽस्यास्यान्धत्तरस्यां भ्योः ६ । ४ । १०७ ॥

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा स्यात् भ्योः परयोः ।

अहार्षात्, अहार्षाभ्, अहार्षुः । अहार्षाः, अहार्षम्, अहार्ष्ट ।  
अहार्षम्, अहार्ष्य, अहार्ष्येति लुङि रूपाणि ।

शृणोतीत्यत्र श्नुप्रत्ययस्य गित्वेन सार्वाधातुकत्वा दिष्ट्वात्किञ्चित् चेति

१ ऋधातु और संयोगादि जो नृदन्त धातु उनको गुण हो यच् परे रहते  
और यदि आर्धधातुके परे रहते ।

२ शृ धातु को शृ आदेश हो और श्नुप्रत्ययभी हो ।

३ पित् मित्र जो सार्वाधातुके सो ङिद्वत् हो ।

४ हु धातु और श्नुप्रत्ययान्त जो अनेकाच् अङ्ग तदवयव जो असंयोगपूर्वक  
अवर्ण उसको यण् आदेश हो अजादि प्रत्यय परे रहते ।

५ असंयोगपूर्वक जो प्रत्यय का उकार उसका लोप हो विकल्प करके, वकार  
मकार परे रहते ।

शृण्वः शृणुवः । शृण्मः—शृणुमः । शुश्राव । शुश्रुवतुः । शुश्रुवुः ।  
 शुश्रोथ । शुश्रुवथुः । शुश्रुव । शुश्राव । शुश्रव । शुश्रव । शुश्रुम ।  
 श्रोता । श्रोष्यति । शृणोतु-शृणुतात् । शृणुताम् । शृण्वन्तु ॥

उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ई । ४ । १०६ ॥

असंयोगपूर्वो यः प्रत्ययोकारस्तदन्तादङ्गात्परस्य हेल्लिक् स्यात् ।  
 शृणु-शृणुतात् । शृणुतम् । शृणुत । शुणाऽवादेशौ । शृणवानि ।  
 शृणवाव । शृणवाम् । अशृणोत् । अशृणुताम् । अशृण्वन् । अशृणोः ।  
 अशृणुतम् । अशृणुत । अशृणवम् । अशृण्व-अशृणुव । अशृण्म-  
 अशृणुम । शृणुयात् । शृणुयाताम् । शृणुयुः । शृणुयाः । शृणु-  
 यातम् । शृणुयात । शृणुयाम् । शृणुयाव । शृणुयाम । श्रूयात् ।  
 अश्रौषीत् । अश्रोष्यत् ॥ ग+लृ गतौ ॥ २० ॥

इषगमिषमां छः । ७ । ३ । ७७ ॥

एषां छः स्यात्-शिति । गच्छति । जगाम ॥

गमहनजनखनधसां लोपः कित्पनङि । ६ । ४ । ९८ ॥

एषामुपधाया लोपः स्यादजादौ किति न त्वङि । जग्मतुः ।

प्रकारस्य गुणनिषेधः । शुश्रोथेत्यत्र श्रुधातोः क्राद्यन्तर्गतत्वाच्चेद् ।  
 शुश्रुमेति । 'कृष्टमृष्ट' इतीडभावः ।

छङि-अश्रौषीत्, अश्रौषाम्, अश्रौषुः । अश्रौषीः, अश्रौषम्, अश्रौष्ट ।  
 अश्रौषम्, अश्रौष्व, अश्रौष्व इति रूपाणि । गताचिति । गत्यर्थे सकर्मकोऽयम् ।

१ असंयोग पूर्वक जो प्रत्यय का उकार तदन्त जो अङ्ग उससे परे जो हि  
 उत्तका छूहोय ।

२ इप् गम् यम् इन धातुओं को छ आदेश हो शित् परे रहते ।

३ गम् हन् जन् खन् धस् इनकी उपधा का लोप हो अजादि कित् इत्  
 प्रत्यय परे रहते । अङ् परे रहते नहीं हो ।

जग्मुः । जगमिथ-जगन्थ । जगमथुः । जग्म । जगाम-जगम ।  
जग्मिव । जग्मिम । गन्ता ।

गमेरिङ् परस्मैपदेषु ७ । २ । ५८ ॥

गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येड् स्यात् परस्मैपदेषु । गमिष्यति ।  
गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् ॥

पुपादिद्युतादलृदितः परस्योपदेषु । ३ । १ । ५९ ॥

इयन्विकरणपुपादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्छेर्ङ् स्यात् परस्मै-  
पदेषु । अगमत् । अगमिष्यत् ॥

इति परस्मैपदिनः ॥

एध वृद्धौ ॥ २१ ॥

टित् आत्मनेपदानां टेरे ३ । ४ । ७० ॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वं स्यात् । एधते ॥

जगमिथेति । भारद्वाजमते इड्, अन्येष्वान्तु 'उपदेशेऽन्वतः' इत्यु-  
क्तेर्नेट् । जग्मिवेत्यादौ तु क्रादिनियमान्नित्यमिड् ।

वृद्धाविति । वृद्धावयं धातुरकर्मकः ।

'लज्जा सत्ता-स्थिति-जागरणं वृद्धि-क्षय-भय-जीवित-मरणम् ।

रवम-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं धातुगणान्तमकर्मकमाहुः ॥' इत्युक्तेः ।

टितः-पठ्यन्तम्, आत्मनेपदानां-पठ्यन्तम्, टेः-पठ्यन्तम्, ए-लृप्त-

१ गम् से परे जो सादि, आर्धधातुक, उसको इड् का आगम हो परस्मैपद  
परे रहते ।

२ इयन्विकरण जो पुपादि और द्युतादि और लृदित्, इनसे परे जो च्लि  
उसको अङ् हो परस्मैपद परे रहते ।

३ टित् लकार सम्बन्धी जो आत्मनेपद उनकी टि उसको एत्व हो ।

आतो डितः ७ । २ । ८१ ॥

अतः परस्य डिताभाकारस्य इय् स्यात् । एधेते । एधन्ते ।

थासः से ३ । ४ । ८० ॥

टितो लस्य थासः से स्यात् । एधसे । एधेथे । एधध्वे । अतो गुणे । एधे । एधावहे । एधामहे ॥

इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३ । १ । ३६ ॥

इजादिर्यो धातुगुरुमान्-ऋच्छत्यन्यस्तत आम् स्याछिति ।

आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य १ । ३ । ६३ ॥

आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदं स्यात् ॥

लिटस्तश्चयोरेशिरेच् ३ । ४ । ८१ ॥

प्रथमान्तम् । आतः-षष्ठ्यन्तम्, डितः-षष्ठ्यन्तम् ।

पते इति । इट् एत्वे कृते आहुणं वाधित्वा वृद्धौ प्राप्तायामतो गुणे इति पररूपमित्यर्थः । इजादेः--पञ्चम्यन्तं, गुरुमतः पञ्चम्यन्तम्, अनृच्छः पञ्चम्यन्तम् । आम्प्रत्ययान्तस्यात्मनेपदाऽभावादाह-अतद्गुणेति । तस्य गुणोः-वर्तिपदार्थाः-तद्गुणाः-संविज्ञायन्ते यत्रासौ-तद्गुणसंविज्ञानः, तद्धि-जः-अतद्गुणसंविज्ञानः । 'आम्प्रत्यय'शब्देन-आम्प्रत्ययस्य प्रकृतिर्धातुर्गृह्यते । तृतीयान्ताद्वृत्तिः । तदाह-आम्प्रकृत्येति । सा च प्रकृते एष धातु-रिति बोध्यम् । अनुप्रयोगे इत्यत्र कर्मणि धञ् । तदाह अनुप्रयुज्येति ।

१ ह्रस्व अकार से परे जो डितसम्बन्धी आकार उसको इय् आदेश हो ।

२ टित् लकार सम्बन्धी जो थास् उसको से आदेश हो ।

३ इजादि जो गुरुमान् धातु, ऋच्छति से अन्य, उससे आम् हो ।

४ अनुप्रयुज्यमान जो कृञ् धातु उससे आम्प्रकृति के तुल्य आत्मनेपद हो ।

(अर्थात् आम्प्रकृति यदि आत्मनेपदी हो तो कृञ् से भी आत्मनेपद हो अन्यथा नहीं)

५ लिङादेश जो त और झ उनको पश् और श्रेच् आदेश हो ।

लिङादेशयोस्तक्षयोरेश् ईरेजित्येतावादेशौ स्तः । एधाञ्चक्रे ।  
एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृपे । एधाञ्चक्राथे ॥

इणः पीध्वलुङ्लिट् धोऽङ्गात् ८ । ३ । ७८ ॥

इणन्तादङ्गात्परंपा पीध्वलुङ्लिट् धस्य ङः स्यात् । एधाञ्चकृद्वे ।  
एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव । एधामास ।  
एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधिनासे । एधिनासाये ।

धिञ्च ८ । २ । २५ ॥

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः स्यात् । एधिताध्वे ।

है एति ७ । ४ । ५२ ॥

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे । एधिताहे । एधितास्वहे ।  
एधितास्महे । एधिष्यते । एधिष्येते । एधिष्यन्ते । एधिष्यसे ।  
एधिष्येये । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे ।

आभेतः ३ । ४ । ९० ॥

लोट एकारस्य आम् स्यात् । एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् ॥

एधाञ्चकृपे इत्यत्र काद्यन्तर्गतत्वाच्चेट् ।

एधामासेति । अनुप्रयोगसामर्थ्यादस्तेर्भूभावो न, अन्यथा 'कश्चानुप-  
युज्यते' इति, 'कृन्वि'ति वा ब्रूयात् ।

१ इणन्त अङ्ग से परे जो पीध्वम्, और लुङ् लिट् सम्बन्धी धकार, उसको  
ढकार हो ।

२ धादि प्रत्यय परे रहते स का लोप हो ।

३ तास् और अस्ति का जो सकार उसको 'ह' आदेश हो एकार  
पर रहते ।

४ लोट सम्बन्धी जो एकार उसको आम् हो ।

सवाम्यां वाऽमौ ३ । ४ । ९१ ॥

सवाम्यां परस्य लोडेतः क्रमाद्वाऽमौ स्तः । एधस्व । एधेथाम् ।  
एधध्वम् ॥

एत ऐ ३ । ४ । ९३ ।

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् । एधै । एधावहै । एधामहै ॥

आटश्च । ऐधेत । ऐवेताम् । ऐधन्त । ऐधथाः । ऐधेथाम् ।  
ऐधध्वम् । ऐधे । ऐधावहि । ऐधामहि ॥

लिङ्ः सीयुट् ३ । ४ । १०२ ॥

[ लिङादेशानां सीयुडागमः स्यात् ] । सलोपः । एधेत ।  
एधेयाताम् ।

झस्य रन् ३ । ४ । १०५ ।

लिङो झस्य रन् स्यात् । एधेरन् । एधेथाः । एधेयाथाम् ।  
एधेध्वम् ।

इटोऽत् ३ । ४ । १०६ ॥

लिङादेशस्य इटोऽस्यात् । एधेय । एधेवहि । एधेमहि ॥

सुट् तियोः ३ । ४ । १०७ ॥

सलोपः = 'लिङः सलोप' इत्यनेन सीयुटः सस्य लोपः ।

१ सकार वकार से परे जो लोट् सम्बन्धी—एकार उसको क्रम से व और  
अम् आदेश होता है । [ अर्थात् 'स' से परे जो 'ए' उसको 'व', 'व' से परे जो  
'ए' उसको 'अम्' होता है ] ।

२ लोट् सम्बन्धी उत्तम पुरुष का जो एकार उसको ऐकार होता है ।

३ लिङ् के स्थान में जो तिवादि आदेश उनको सीयुट् का आगम होता है ।

४ लिङ् सम्बन्धी जो झ उसको रन् आदेश होता है ।

५ लिङ्स्थानिक जो इट् उसको अत् आदेश होता है ।

६ लिङ् सम्बन्धी जो तकार थकार उनको सुट् का आगम होता है ।



लिङस्तकारथकारयोः सुट् स्यात् । यलोपः । आर्धधातुकत्वा-  
त्सलोपो न । एधिपीष्ट । एधिपीयास्ताम् । एधिपीरन् । एधिपीष्टाः ।  
धिपीयास्थाम् । एधिपीध्वम् । एधिपीय । एधिपीवहि । एधिपी-  
महि ॥ ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् ॥

आत्मनेपदेष्वन्तः ७ । १ । ५ ॥

अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु अस्य अदित्यादेशः स्यात् । ऐधिषत ।  
ऐधिष्टाः । ऐधिषायाम् । ऐधिष्टम् । ऐधिषि । ऐधिष्यहि । ऐधिष्यमहि ।  
ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येयाम् ।  
ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि ॥ कमु कान्तौ ॥ २ ॥

कर्मणिङ् ३ । १ । ३० ॥

कर्मणिङ् स्यात्स्वार्थे । ङित्वात्तङ् । कामयते ।

सलोपे नेति । आशीर्लिख आर्धधातुकतया सार्वधातुकत्वाऽभावाद्भिः  
सलोपोऽनन्त्यस्येति सीयुटः सकारस्य लोपो न भवतीत्यर्थः ।

आत्मनेपदेषु-सप्तम्यन्तम्, अनतः=अथम्यन्तम् । अनतः=अका-  
रातिरिक्त्वर्णाव्यवहितोत्तरवर्त्तिनः ।

ऐधिद्धमिति । ध्रमि परतः सिजन्तस्याङ्गसङ्गकतया सिचो लोपे इका-  
रान्तस्य 'ऐधि' इत्यस्याङ्गतया इणन्ताङ्गत्वाद्भत्वप्रवृत्तिः । एधिपीध्वमित्यत्र  
तु 'एध्' इत्येवाङ्गम्, इपीध्वमिति तु प्रत्ययः, 'एध्' इति च नेणन्तमङ्गमिति  
तत्र नानेन ढत्वमिति विवेकः । कान्तितः=इच्छा । सकर्मकोऽयम् । 'चैत्रो  
घनं कामयते' इत्यादिश्च प्रयोगः । स्वार्थे इति । 'अभिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे  
भवन्ती'त्युक्ते. स्वार्थे एवायं ङिङित्याशयः । तङिति । 'अनुदात्तङित' इति  
त्रेण कामिधातोर्लङादेः स्थाने आत्मनेपदसङ्ज्ञकस्तङित्यर्थः ।

१ अनकार से परे जो आत्मनेपद सम्बन्धी झ उसको अत् आदेश होता है ।

२ कम् धातु से ङिङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में ।

अयामन्तल्लायायेत्त्विष्णुषु ६ । ४ । ५५ ॥

आम् अन्त आलु आय्य इन्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात् ।  
कामयाश्चक्रे । आयादय इति णिङ् वा । चकमे । चकमाते ।  
चकमिरे । चकमिषे । चकमाथे । चकमिध्वे । चकमे ।  
चकमिवहे । चकमिमहे । कामयिता । कामयितासे । कमिता ।  
कामयिष्यते । कमिष्यते । कामयताम् । अकामयत । कामयेत ।  
कामयिषोष्ट ॥

विभाषेतः ८ । ३ । ७९ ॥

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां घस्य वा ढः  
स्यात् । कामयिषीढ्वम्-कामयिषीध्वम् । कमिषीष्ट । कमिषीध्वम् ॥

णिश्चिद्भुस्त्र्यः कर्तरि चङ् ३ । १ । ४८ ॥

ण्यन्तात् श्रयादिभ्यश्च च्लेश्वङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे ।

अ कामि अ त इति स्थिते

अकामीति । यथा प्रकृते-‘अ-चकम्-इ-अ-ते’त्यत्र चङ्परो यस्मादेव-  
भूते णौ परतो यदङ्गम्-‘अचकम्’ इति, तदवयवो योऽभ्यासः-चकाररूपः,  
स च लघुपरोऽपि भवति, स्वोत्तरस्य ककारोत्तराकारस्य लघोर्विद्यमानत्वात्,  
एवञ्च चकारात्मकस्याभ्यासस्य सनि परतो यत्कार्यमित्त्वादि तदनेनातिदिश्यते ।  
तदेवम्-अचीकमतेत्यत्र सन्वद्धावात्सन्धत इति दीर्घो लघोरिति च सूत्रद्वयं  
प्रवर्तते इत्यवधेयम् ।

१ आम् अन्त-आलु-आय्य-इन्नु-इष्णु-ये प्रत्यय परे रहते णि के स्थान में  
अव आदेश हो ।

२ इण् से परे जो इट् उससे परे जो षीध्वं लुङ् लिट् सम्बन्धी घकार, उसको  
ढकार आदेश विकल्प से हो ।

३ ण्यन्त से परे और श्रि द्रु सु इन धातुओं से परे जो च्ल उसको चङ्  
आदेश हो कर्त्रर्थक लुङ् परे रहते ।

पेरनिदि ७ । ४ । ५१ ॥

अनिडादावार्धधातुके परे णेलोपः स्यात् ॥

णौ चङ्परकधाया ह्रस्वः ७ । ४ । १ ॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात् ॥

चङि ७ । १ । ११ ॥

चङि परेऽनभ्यासधात्वयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तो-  
ऽजादेस्तु द्वितीयस्य ॥

सन्वल्धुनि चङ्परेऽनगलोपे ७ । ४ । ९३ ॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य चोऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं  
स्याण्णावगलोपेऽसति ॥

सन्धनः ७ । ४ । ७० ॥

अभ्यासस्याऽत इत् स्यात् सनि ।

दीर्घो लघोः ७ । ४ । ९४ ॥

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये । अधिकमत ।

‘अचीकमते’ति रूपं साधयेति प्रश्ने-इच्छार्थभात्कमधातोः कमेर्गिञिति  
णिङि कामीत्यस्य सनाद्यन्ता इति धातुसञ्ज्ञाया छुडि तटि चिल लुङाति चिल-  
प्रत्यये तस्य चडादेशे णिलोपे णौ चङीति ह्रस्वत्वे चङीति द्वित्वे हलादिः शेषे

१ अनिडादि आर्धधातुक परे रहते णि का लोप हो ।

२ चङ्परक णि परे रहते जो अङ्ग उसकी उपधा को ह्रस्व हो ।

३ चङ् परे रहते अभ्यासभिन्न धातु का अवयव जो प्रथम एकाच् उसको द्वित्व  
हो, और अजादि के द्वितीय एकाच् को द्वित्व हो ।

४ चङ्परक णि परे रहते जो अङ्ग, उसका अवयव जो लघुपरक अभ्यास उसको  
सन् परे रहते जो कार्य होते हैं वे हों । यदि णिनिमित्तक अकृ का लोप न हुआ हो तो ।

५ अभ्यास का जो अकार उसको ह्रस्व हो सन् परे रहते ।

६ लघु जो अभ्यास उसको दीर्घ हो सन्वद्भाव के विषय में ।

णिङभावपक्षे—\*कमेर्ल्लेश्चङ् वान्यः । अचकमत । अकामयिष्यत—  
अकमिष्यत ॥ अय गतौ ३ ॥ अयेत ॥

उपसर्गस्याऽयतौ ८ । २ । १६ ॥

अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफरतस्य लृत्वं स्यात् । प्लायते । पलायते ॥

दृष्यासश्च ३ । १ । ३७ ॥

दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि । अयाञ्चक्रे । अयिता ।  
अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । अयिषीष्ट । विभाषेष्टः ।  
अयिषीद्वम्—अयिषीध्वम् । आयिष्ट । आयिद्वम् आयिध्वम् ।  
आयिष्यत ॥ धुत दीप्तौ ॥ ४ ॥ द्योतते ॥

द्युतिस्वाप्नोः सप्रसारणम् । ७ । ४ । ६७ ॥

अनयोरभ्यासस्य सप्रसारणं स्यात् । दिद्युते ।

द्युद्भयो लुङि १ । ३ । ९१ ॥

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् । पुषादीत्यङ् । अद्यु-  
तत्—अद्योतिष्ट । अद्योतिष्यत ॥ एवम्—श्वित । वर्णे ॥ ५ ॥ विभिद ।

कुहोश्चुरिति चुच्चे सन्वद्धावात्सन्धत इतीत्वे दीर्घो लघोरिति दीर्घे च अची-  
कमतेति सिद्धमित्युत्तरम् ।

णिङभावेति । 'आयादय आर्द्धघातुकेवे'ति वैकल्पितया क्रमेर्णिङभावे इत्यर्थः ।

अचकमतेति । अचकमतेत्यत्र णिङोऽभावान्न सन्वद्धाव इति नेत्त्वदीर्घौ ।

'अयिषीद्वम्' इत्यत्र 'आयिद्वम्'मित्यत्र च 'विभाषेष्ट' इति वैकल्पिको ङः ।

दीप्तिः प्रकाश, शोभा च । अकर्मकोऽयम् ।

अद्योतिष्ट, अद्योतिषाताम्, अद्योतिषत । अद्योतिष्ठाः, अद्योतिषाथाम्,

१ कम् से परे जो ल्लि उसको चङ् आदेश होता है ।

२ अयतिपरक जो उपसर्ग उसका जो रेफ उसको लकारादेश होता है ।

३ दय् अय्-आस् इनसे आम् हो लिट् परे रहते ।

४ धुत और स्वापि के अभ्यास को सप्रसारण होता है ।

५ धुतादि से परे जो लुङ् उसकी परस्मैपद होता है विकल्प से ।

स्नेहने ॥ ६ ॥ विध्विदा स्नेहनमोचनयोः ॥ ७ ॥ मोहन-  
योरित्येके । गिक्षिदा चेत्येके ॥ रुच दीप्तावभिप्रीतौ च  
॥ ८ ॥ धुट परिवर्तने ॥ ९ ॥ शुभ दीप्तौ ॥ १० ॥ क्षुभ  
क्षञ्चलने ॥ ११ ॥ णस तुभ हिलायाम् ॥ १२ ॥ १३ ॥  
संसु असु ध्वंसु अवसंसने ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

ध्वंसु गता च ॥ १७ ॥ स्रम्सु विध्वोसे ॥ १८ ॥

धृतु वर्तने ॥ १९ ॥ वर्तते । वर्तते । वर्तिता ॥

धृङ्ग्यः स्यस्सन्तोः १ । २ । ०, २ ॥

वृतादिभ्यः पञ्चभ्यः परस्मैपदं वा स्यास्ये' सनि च ।

न धृङ्ग्यश्चतुर्भ्यः ७ । २ । ५, ९ ॥

धृतुधृधुधृवुस्यन्द्भ्यः सकारादेरार्धधातुकभ्येण् न स्यात्तडानयो-  
रभावे । वर्त्स्यति-वर्तिष्यते । वर्तताम् । अवर्तत । वर्तेत । तिपीष्ट ।  
अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत्-अवर्तिष्यत ॥

दद दाने ॥ २० ॥ ददते ॥

अद्योतिष्म । अद्योतिषि, अद्योतिष्वहि, अद्योतिष्वहि-इति लुङि रूपाणि ॥

वर्णे=श्वेतीकरणे । सौधं श्वेतते चैत्रः । सकर्मकोऽयम् । श्वेतीभवने  
त्वकर्मकः । स्नेहनं-तैलादिलापनम् ।

परिवर्त्तनं घोटनम् । ( घोटनाः ) ।

सञ्चलनं क्षोभः । ( घवङाना, कुछ होना, क्षुब्ध होना ) ।

अवसंसनं-पतनं, नाशश्च । लुङि-अससत्, अभ्रमत्, अध्वसत्,  
अस्रभत्-इत्येवं रूपाणि, अङो ङित्वेन अनिदितामिति नकारलोपात् ।

१ वृतादि जो पांच उनसे परे परस्मैपद हो विकल्प से स्य और सन्  
परे रहते ।

२ धृतु-धृधु-शृधु-स्यन्द् इन धातुओं से परे जो सकारादिआर्धधातुक उसको  
इद् नहीं होय तद् और आन के अभाव में ।

न शसिददवादिगुणानाम् ढ । ४ । १२६ ॥

शसेर्देर्देवकारादीनां गुणशब्देन विहितश्च योऽकारस्तस्य एत्वा-  
भ्यासलोपौ न स्तः । दददे । दददाते । दददिरे । ददिता । ददि-  
ष्यते । ददताम् । अददत । ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अद-  
दिष्यत ॥ त्रपूष् लज्जायाम् ॥ २१ ॥ त्रपते ॥

तृफलं भजत्रपश्च ढ । ४ । १२२ ॥

एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि चा  
त्रेपे । त्रपिता-त्रप्ता । त्रपिष्यते-त्रप्स्यते । त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत ।  
त्रपिषीष्ट-त्रप्सीष्ट । अत्रपिष्ट-अत्रप्त । अत्रपिष्यत अत्रप्स्यत ॥

इत्यात्मनेपदिनः ॥

अथोभयपदिनः ।

श्रिन् सेवायाम् ॥ १ ॥ श्रयति-श्रयते । शिश्राय-  
शिश्रिये । श्रयितासि-श्रयितास । श्रयिष्यति-श्रयिष्यते । श्रयतु-  
श्रयताम् । अश्रयत्-अश्रयत । श्रयेत्-श्रयेत । श्रीयत्-श्रयिषीष्ट ।  
चङ् । अशिश्रियत्-अशिश्रियत । अश्रयिष्यत्-अश्रयिष्यत ॥

वर्त्तन इति । अकर्मकोऽयं वृत्तधातुः । एवं त्रपधातावपि बोध्यम् ।  
त्रतेति । स्वरतिसूतीति वेद् । अत्रप्तेति । 'झलो झली'ति सलोपः ।  
श्रयिषीष्टे-श्रयिषीध्वम् । विभाषेड इति वा ढ - ।

१ शस-दद-और वकारादि धातुओं का गुणशब्द से विहित जो अकार उसको एत्व नहीं होय और अभ्यासलोप नहीं होय ।

२ तृ फल भज और त्रप इन धातुओं का जो अकार उसको एत्वाऽभ्यास-लोप होय किन् लिट् और सेट् थल् पर रहते ।

भृञ् भरणे ॥ २ ॥ भरति-भरते । बभार । बभ्रतुः । बभ्रुः ।

वभर्थ । वभृव । वभृम । वभ्रे । वभृपे । भर्तासि-भर्तासे । भरिष्यति-  
भरिष्यते । भरतु-भरताम् । अभरत्-अभरत । भेरत्-भरेत् ॥

रिङ् आध्याग्लिङ् ७ । ४ । २८ ॥

शे यकि यादावावधातुके लिङि च ऋतो रिटादेशः स्यात् ।

रीडि प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्यादीर्घो न । भ्रियात् ॥

उंश्च १ । २ । १२ ॥

ऋवर्णापरौ झल्लदी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तडि । भृपीष्ट ।

भृपीयास्ताम् । [ भृपीरन् ] । अमार्षात् । [ अमार्ष्टाम्, अमार्षुः ।

अमार्षाः, अमार्ष्टम्, अमार्ष्ट । अमार्षम् । अमार्ष्व । अमार्ष्व ] ॥

ह्रस्वादङ्गात् ८ । २ । २७ ॥

सिचो लोपः स्याज्झलि । अभृत । अभृपाताम् । [ अभृषत ।

अभृथाः, अभृषाथाम्, अभृष्टम् । अभृषि ] ॥ अमरिष्यत्-अमरिष्यत ॥

हृञ् हरणे ॥ २ ॥ हरति-हरते । जहार । जहे । जहर्थ ।

जहिव । जहिम । जहिपे । हर्तासि-हर्तासे । हरिष्यति-हरिष्यते । हरतु-

भरणं-पालन धारण पूरणञ् । 'कृष्टमृष्ट' इति नेट् ।

इणः पीध्वमिति ढ -मृषीढम् । अमार्षात्, अमार्ष्टाम्, अमार्षुः ।

अमार्षाः, अमार्ष्टम्, अमार्ष्ट । अमार्षम्, अमार्ष्व, अमार्ष्व ॥ पक्षे-अमृत,

अमृपाताम्, अमृषत । अमृथाः, अमृषाथाम्, अमृष्टम् । अमृषि, अमृष्वहि,

अमृष्वहि ॥

जहर्थेत्यत्र ऋदन्तत्वात्सर्वेषां मते इण् । 'ऋदन्त ईदङ्गित्याऽनि'डित्युक्तेः ।

जहिव जहिषे इत्यादौ तु क्वादिनियमादिद् ।

१ शकार, यक् और यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे रहते ऋकार को रिङ् आदेश हो ।

२ ऋवर्ण से परे जो झल्लदी लिङ् और सिच् सो कित् हो तड् परे रहते ।

३ ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो सिच् उसका लोप हो झल्ल परे रहते ।

हरताम् । अहरत्-अहरत । हरेत्-हरेत । ह्रियात्-हृषीष्ट । हृषीया-  
स्ताम् । अहर्षीत्-अहर्षत । अहरिष्यत्-अहरिष्यत ।

धृञ् धारणे ॥ ४ ॥ धरति-धरते । गीञ् प्रापणे ॥ ५ ॥  
नयति नयते ॥ डुपचष् पाके ॥ ६ ॥ पचति-पचते । पपाच ।  
पेचिथ-पपचथ । पेचे । पक्तासि । पक्तासे ॥

भज सेवायाम् ॥ ७ ॥ भजति-भजते । बभाज-भजे ।  
भक्तासि-भक्तासे । भक्षयति-भक्षयते । अभाक्षीत् । अभक्त । अभक्षाताम् ॥

यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु ॥ ८ ॥ यजति-यजते ।

लिट् व्यभ्यासस्योभयेषाम् ६ । १ । १७ ॥

व्यादीनां ग्रहादीनां चाऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्याच्छिटि ।  
इजो ॥

वचिस्वपियजादीनां किति ६ । १ । १६ ॥

वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् किति । इजतुः ।  
इजुः । इयजिथ-इयष्ट । इजे । यष्टा ॥

षट्ठोः कः सि ८ । २ । ४१ ॥

अत्र 'हृषीड्व'मित्यत्र लिङि, 'अहृड्व'मित्यत्र लुङि च 'इण. षीध्व'  
मिति ङत्वम् । अनिङ्यधातुः । यजादयश्च नव । तथाहि-

‘यजिर्वपिर्वहिश्चैव वसिर्वेज् व्येज् इत्यपि ।

ह्वेवदी श्वयतिश्चेति यजाद्याः स्युरिमे नव ॥’ इति ।

षट्ठोः-षष्ठ्यन्तम्, कः-प्रथमान्तम्, सि-सप्तम्यन्तम् ।

१ त्र्यादि और ग्रहादि जो धातु उनके अभ्यास को सम्प्रसारण हो लिट्  
परे रहते ।

२ वच् धातु-स्वप् धातु और यजादि जो धातु उनको सम्प्रसारण हो कित्  
परे रहते ।

३ पकार और ढकार को क आदेश हो सकार परे रहते ।



[ पस्य ढस्य च कः स्यात्सकारे परे ] । वक्ष्यति-यक्षते । इयात्-  
यक्षीष्ट । अयाक्षीत्--अयष्ट ॥ वह् प्रापणे ॥ १९ ॥ वहति- वहते ।  
उवाह । ऊहतुः । ऊहुः । उवहिय ॥

अपस्वयोर्वोऽधः ८ । २ । ४० ॥

अधः परयोस्तयोर्धः स्थानं तु दधातेः ॥

ढो ढे लोपः । ८ । ३ । १३ ॥

[ ढस्य लोपः स्याद्धे परे ] ॥

सहिवहोरोदवर्णस्थ । ६ । ३ । ११२ ॥

अनयोरवर्णस्य ओस्त्राड्ढलोपे । उवोढ । ऊहे । वोढा ।  
वक्ष्यति । अवाक्षीत् । अवोढाम् । अवाक्षुः । अवाक्षीः । अवोढम् ।  
अवोढ । अवाक्षम् । अवाक्ष्य । अवाक्षम् ।

अवोढ । अवक्षाताम् । अवक्षत । अवोढाः । अवाक्षायाम् ।  
अवोद्धम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि । अमक्षमहि ॥

\* इति तिङन्ते भ्वादयः \*

झप्रः-पञ्चम्यन्तम्, तथोः-षष्ठ्यन्तम्, घः-प्रथमान्तम्, अधः-  
षष्ठ्यन्तम् । दधातेस्तथयोर्नेत्यर्थः ।

इति श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिविरचिताया लघुकौमुदीसरलायां भ्वादिप्रकरणम् ।

१ झप् से परे तकार थकार को धकार हो परन्तु धा धातु को नहीं होय ।

२ ढकार का लोप होय ढकार परे रहते ।

३ मह् धातु और वह् धातु का जो अवर्ण उसको ओकार हो ढकार का  
लोप हुआ हो तो ।

## अथ तिङन्तऽदादिप्रकरणम् ।

अद् भक्षणे ॥ १ ॥

अदिप्रभृतिभ्यः शप् । २ । ४ । ७२ ॥

[एभ्यः परस्य शपो] लृक् स्यात् । अत्ति । अत्तः । अदन्ति ।  
अत्ति । अत्यः । अत्थ । अद्भि । अद्भः । अद्भः ॥

लिट्यन्यतरस्याम् । २ । ४ । ४० ॥

अदो घस्त्व वा स्थाल्लिटि । जघास । उपधालोपः ।

शासिबसिधसीनां च । ८ । ३ । ६० ॥

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात् । घस्य चर्त्त्वम् । जक्षतुः ।  
जक्षुः । जधसिध । जक्षथुः । जक्ष । जघास--जधस । जक्षिव ।  
जक्षिम ॥ आद । आदतुः । आदुः ॥

\* अथ तिङन्तेऽदादयः \*

भक्षणं - खादनम् । सकर्मकोऽयम् । 'देवदत्त ओदनमत्ति' । 'ण्यक्षत्रिये'-  
त्यतो लृगनुवर्तते । 'लुट्सनो' गित्यतो 'घस्त्व' इति, 'अदो जग्धि' रित्यतोऽद्  
इति चानुवर्तते, तदाह--अद् इति ।

उपधालोप इति । 'गमहनजनखने'त्युपधाभूताऽकारलोप इत्यर्थः । 'अपदान्तस्य मूर्धन्य' इति, 'इण्को' रिति 'सहेः साङः स' इत्यतः 'सु' इति चानुवर्त्याह इणिति । चर्त्त्वमिति । खरि चेति घस्य ककारादेश इत्यर्थः ।

जधसिथेति । घसादेशस्य तासि (लुटि) परतोऽभावात्तासौ नित्याऽनिटोऽभावेन क्वादिनियमात्थलि नित्यमिद् । जक्षिवेति । अकारवत्त्वेन भारद्वाजादिमतभेदाद्वैकल्पिके इति प्राप्ते नित्यार्थो विधिरयम् ।

१ अदादिगणपठित धातुओं से परे जो शप् उसका लृक् हो ।

२ अद् धातु को घस्त्व आदेश हो विकल्प से लिट् परे रहते ।

३ इण् और कवर्ग से परे जो शास् वस् और धस् धातु का सकार उसको पकार हो ।

इडत्स्यसिन्वययतीनाम् ७।२।६६॥

अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमि स्यात् । आदिभ्य । अत्ता ।  
अत्स्यसि । अत्त-अत्तात् । जत्ताम् । अदन्तु ॥

हुञ्जलस्यो हेर्बिः ६।४।१०१॥

होर्जलन्तेभ्यश्च हेर्बिः स्यात् । अद्धि-अत्तात् । अत्तम् ।  
अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ॥

अदः सवर्षाम् ७।३।१००॥

अदः परस्याऽपृक्तसार्वधातुकस्य अद् स्यात्सर्वमतेन । आदत् ।  
आत्ताम् । आदन् । आदः । आत्तन् । आत्त । आदम् । आद्ध ।  
आद्वा । अद्यात् । अद्याताम् । अद्युः ॥ अद्यात् । अद्यास्ताम् ।  
अद्याधुः ॥ १ ॥

लुङ्स्यनोर्ग्रस्त २।४।३७॥

अदो घस्त्व स्याल्लुङि सनि च । लृदिस्त्वादल् । अघसत् ।  
आत्स्यत् ॥ हन हिंसाभ्यतोः ॥ २ ॥ हन्ति ॥

अनुदात्तोपदेशवननितनोत्पादीनामनुनासिकं

लोपो झलि क्त्विति ६।४।३७॥

अघसदिति । 'पुपादिषुतादी तिसूत्रेणाऽऽहित्यर्थः । अनुनासिकेति लुप्त-  
पञ्चीकं, वनतीतरेषां विशेषण, ननु वनतेरव्यभिचारात् । विशेषणेन तदन्त-

१ अद् ऋ और व्येञ्-इन धातुओं से परे जो थल् उसको नित्य इड् हो ।  
२ हु धातु और झलन्त धातु मे परे जो हि उसके स्थान में धि आदेश हो ।  
३ अद धातु से परे जो अपृक्त सार्वधातुक उसको अद् का आगम हो  
सब ( आचार्यों ) के मत में ।

४ अद् धातु को घस्त्व आदेश हो लुङ् और तन् परे रहते ।

५ अनुनासिकान्त जो अनुदात्तोपदेश धातु, और वनधातु तथा तनोत्पादि-  
धातु इनके अनुनासिक का लोप हो झलादि कित् छिप परे रहते ।

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्जलादौ किति डिति  
परे । यमिरमिनमिगमिहनिमन्यतयोऽनुदातोपदेशाः । तनु क्षणु क्षिणु  
ऋणु तृणु धृणु वनु मनु तनोत्यादयः । हतः । घन्ति । हंसि ।  
हथः । हथ । हन्मि । हन्वः । हन्मः । जघान । जघ्नतुः । जघ्नुः ॥

अभ्यासाच्च । ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् । जघनिय-जघन्थ ।  
जघ्नथुः । जघ्न । जघान-जघन । जघ्निव । जघ्निम । हन्ता ।  
हनिष्यति । हन्तु-हतात् । हताम् । घन्तु ॥

हन्तेर्जः । ६ । ४ । ३६ ॥

हन्तेर्जादेशः स्याद्घौ परे ॥

असिद्धवदत्राभात् ६ । ४ । २२ ॥

इत ऊर्ध्वभापादसमाप्तेराभीयम् । समानाश्रये तस्मिन्कर्तव्ये  
तदसिद्धं स्यात् । इति जस्याऽसिद्धत्वाच्च हेर्लुक् । जहि हतात् ।  
हतम् । हत । हनानि । हनाव । हनाम ।

विधिस्तदाह अनुनासिकान्तानामिति । एषाम् अनुदातोपदेशानां  
यभ्यादीनाम् । लोप इति । अलोऽन्त्यस्येति नकारस्य लोपः ।

जघानेति । अत्र अभ्यासाच्चेति कुत्वमन्तरङ्गत्वाद्धाधित्वा हो हन्तेरिति  
कुत्वम् ।

हत इति । इतः=‘असिद्धव’दित्यत आरभ्य । आ पादसमाप्तेः=  
षष्ठाध्यायचतुर्थपादसमाप्तिपर्यन्तम् । तस्मिन्=आभीये । तत्=कृतमाभीयम् ।  
जस्य=हन्तेर्ज इति जादेशस्य । न लुक्=‘अतो हे’रिति हेर्न लुक् ।

१ अभ्यास परे जो हन्ति का हकार उसको कुत्व हो ।

२ हन् धातु के स्यात् में जकारादेश हो बि परे रहते ।

३ असिद्धवदत्राभात्-इस सूत्र से लेकर षष्ठाध्याय के चतुर्थ पाद की समाप्ति  
तक आभीय कहलाता है । समानाश्रय आभीय करने में कृत जो आभीय वह  
असिद्ध हो ।

अहन् । अहताम् । अघ्नन् । अहन् । अहतम् । अहत ।  
अहनम् । अहन्व । अहन्म । हन्यात् । हन्याताम् । हन्युः ॥

आर्धधातुके । २ । ४ । ३५ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

ह्नो वध लिङि । २ । ४ । ४२ ॥

लुङि च । २ । ४ । ४३ ॥

हनो वधादेशः स्याल्लिङि लुङि च । वधादेशोऽदन्तः ।  
आर्धधातुके इति विषयसप्तमी । तेन आर्धधातुकोपदेशेऽकारान्त-  
त्वादतो लोपः । वध्यात् । वध्यास्तान् । आदेशस्याऽनेकाच्चादेकाच्च  
इतीप्तिपेधाऽभावादित् ।

अतो हलादेरिति वृद्धौ प्राप्तायाम्

अचः परस्मिन् पूर्वविधौ । १ । १ । ५७ ॥

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्यात् स्थानिभूनादचः पूर्वत्वेन  
दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये ॥ इत्यल्लोपस्य स्थानिवत्त्वेनोपधात्वाऽभावान्न

अदन्त इति । तेन वधादेशोपदेशेऽनेकाच्चादेकाच्च इतीप्तिपेधो न  
प्रवर्तते, तेन अवधीदित्यत इत् सिध्यति । अतो हलादेरिति वृद्धिस्तु नेह  
प्रवर्तते, अल्लोपस्य अचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावात् । अन्त्यस्याऽकारस्य तु  
नानेन वृद्धिः, 'ण्यल्लोपौ' इत्यनेन वावादित्याशयः ।

विषयसप्तमीति । परसप्तमीस्वीकारे तु आर्धधातुकोपदेशेऽकारान्तत्वा-

१ 'आर्धधातुकं' यह अधिकार सूत्र है ।

२ हन् धातु को वध आदेश हो लिङ् परे रहते ।

३ हन् धातु को वध आदेश हो लुङ् परे रहते ।

४ पर को निमित्त मान कर अच् के स्थान में हुआ जो आदेश वह स्थानि-  
वत् हो । स्थानिभूत अच् से पूर्वत्वेन जो दृष्ट उसको विधि करना हो तो ।

वृद्धिः ॥ अवधीत् । अहनिष्यत् ॥ यु मिश्रणाऽमिश्रणयोः ॥ ३ ॥

उतो वृद्धिर्लुकि हलि । ७ । ३ । ८९ ॥

लुग्विषये उतो वृद्धिः स्यात् पिति हलादौ सार्वधातुके, नत्व-  
भ्यस्तस्य । यौति । युतः । युवन्ति । यौषि । युथः । युथ । यौमि ।  
युवः । युमः । युयाव । यविता । यविष्यति । यौतु । युतात् ।  
अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । युयात् । इह उतो वृद्धिर्न, भाष्ये  
पिच्च डित्, डित्च पिनेति व्याख्यानात् । युयाताम् । युयुः । यूयात् ।  
यूयास्ताम् । यूयासुः । अयावीत् । अयविष्यत् ॥

या प्रापणे ॥ ४ ॥ याति । यातः । यान्ति । ययौ । याता ।

यास्यति । यातु । अयात् । अयाताम् ॥

लङ् शक्तिरित्यन्यैव । ३ । ४ । १११ ॥

आदन्तात्परस्य लङो ज्ञेर्जुस् वा स्यात् । अयुः । अयान् ।  
यायात् । यायाताम् । यायुः । यायात् । यायास्ताम् । यायासुः ।  
अयासीत् । अयास्यत् । वा गतिगन्धनयोः ॥ ५ ॥ भा दीप्तौ  
भावादतो लोप इति लोपो न स्यात् । विषयसप्तम्यङ्गीकारे तु आर्धधातुक-  
विवक्षायां ततः पूर्वमेव वधादेश इति लोप प्रवर्तते इत्याशयः ।

मिश्रणं-सम्मेलनम्, अमिश्रणं-पृथक्करणम् । युयाव, युयुवतुः,  
युयुवु । युयविथ, युयुवथु, युयुव । युयाव युयव, युयुविव, युयुविम ।  
इह=युयादित्यत्र । तिपः पित्वेन 'उतो वृद्धि'रिति प्राप्ताऽपि वृद्धिरिह न  
भवति, यासुटो डित्वस्य विशेषविहिततया डित्वेन पित्वस्य वाधात् । यच्च  
डित् तत्पिच्च भवतीति भाष्योक्तेरित्याशयः । प्रापणमिह गतिः । गन्धनं-  
सूचनम् । दीप्तिः शोभा, प्रकाशश्च । अकर्मकोऽयम् । सूर्यो भाति ।  
त्रो भाति ।

१ लुक् के विषय में उकार को वृद्धि हो हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते ।  
भ्यस्त को नहीं हो ।

२ आदन्त धातु से परे लङ् सम्बन्धी क्षि को जुस् हो विकल्प करके ।

॥ ६ ॥ ण्णा शौचे ॥ ७ ॥ आ पाके ॥ ८ ॥ द्रा कुत्सीयां  
 गतौ ॥ ९ ॥ परा रक्षणे ॥ १० ॥ रा दाने ॥ ११ ॥ ला  
 आदाने ॥ १२ ॥ दाप् लवने ॥ १३ ॥ पा रक्षणे ॥ १४ ॥  
 ख्या प्रकथने ॥ १५ ॥ अयं सार्वधातुक एव प्रयोज्यः ॥

विद ज्ञाने ॥ १६ ॥

विदो लोटो वा २ । ४ । ८ ३ ॥

वेत्तेल्लटः परस्मैपदानां णलङ्यो वा स्युः । वेद । विदतुः ।  
 विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद । विद्ध । विभ्र ।

पक्षे-वेत्ति । वित्तः । विदन्ति ॥

शौच-स्नानम् । स्नाति । सस्नौ, सस्नतु, सस्तुः । सस्निथ-सस्नाथ,  
 सस्नथुः, सस्न । सस्नौ, सस्निव, सस्निम । स्नाता । स्नास्यति । स्नातु ।  
 अस्नात् । स्नायान्, स्नायातान्, स्नायुः-इत्यादि । शाश्विपि-‘वाऽन्यस्ये’-  
 त्येत्त्वविकल्पः । स्नेयात्-स्नायात्-इत्यादि । अस्नासीत् । अस्नास्यत् ।

श्राति । शश्रौ । शश्रिय-शश्राथ । श्राता । श्रास्यति । श्रातु । अ-  
 श्रात् । श्रायात् । श्रेयात्-श्रायात् । अश्रासीत् । अश्रास्यत् ।

द्राति । दद्रौ । दद्रिय दद्राथ । द्राता । द्रास्यति । द्रातु । अद्रात् ।  
 द्रायात् । द्रेयात्-द्रायात् । अद्रानीत् । अद्रास्यत् ।

प्साति । पप्सौ । पप्सिथ-पप्साथ । प्साता । प्सास्यति । प्सातु ।  
 अप्सात् । प्सायात् । प्सेयात् प्सायात् । अप्सासीत् । अप्सास्यत् ।

राति । ररौ । ररिथ-रराथ । राता । रास्यति । रातु । अरात् ।  
 रायात् । रायात् । रायास्तान् । अरासीत् । अरास्यत्-इत्यादि । एवं-‘ल’  
 आदाने’ ‘दाप् लवने’ ‘पा रक्षणे’ इति धातूनां रूपाणि बोध्यानि ।

सार्वधातुके=लङादिषु चतुर्षु लकारेषु । तेन-लटि-ख्याति । लोटि  
 ख्यातु । लङि-अख्यत् । विधिलिङि-ख्यायात् । इत्यादि रूपाणि भवन्ति ।

१ विद् धातु से परे जो लट् सम्बन्धी परस्मैपद उनको णलङि आदेश  
 विकल्प से हों ।

उपविद्जागृभ्योऽन्यतरस्याम् ३ । १ । ३८ ॥

एभ्यो लिटि आम्वा स्यात् । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न

गुणः । विदाश्चकार-विवेद । वेदिता । वेदिष्यति ॥

विदाङ्कुर्वन्वित्थन्यतरस्याम् ३ । १ । ४१ ॥

वेत्तलोऽति आम्, गुणाऽभावो, लोटो लृक्, लोटन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते ॥

तनादिक्वभ्य उः ३ । १ । ७९ ॥

तनादेः कृञश्च उप्रत्ययः स्यात् । शपोऽपवादः । गुणौ ।

विदाङ्करोतु ॥

अर्त्त-उत्सार्वधातुके ङ । ४ । ११० ॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत्त्यात्सार्वधातुके कृत्ति । विदाङ्कुरुतात् । विदाङ्कुरुताम् । विदाङ्कुर्वन्तु । विदाङ्कुरु । विदाङ्करवाणि । अवेत् । अवित्ताम् । अविदुः ॥

दश्चै ८ । २ । ७६ ॥

विदेरिति । अदन्तत्वप्रतिज्ञानश्च-आमि परत एव । तेन 'विवेदे'त्यादौ पुगन्तेति गुणो भवत्येव । प्रथमः पुरुषः, एकवचनश्चेति द्वयं सूत्रे न विवक्षितम् । एवञ्च त्रिष्वपि पुरुषेषु सर्वेष्वपि वचनेषु च निपातनं भवतीत्याशयः ।

१ उप् विद् और जागृ धातु से परे आम् हो विकल्प से लिट् परे रहते ।

२ विद् धातु से आम् हो लोट् परे रहते और गुण का अभाव हो और लोट् का लृक् हो, लोट्परक कृ धातु का अनुप्रयोग हो विकल्प से ।

३ तनादि जो धातु से और कृञ् धातु से परे उप्रत्यय हो ।

४ उप्रत्ययान्त जो कृञ् धातु उसका जो अकार उसको उकार हो सार्वधातुक कित् डित् परे रहते ।

५ धातु का जो पदान्त दकार उसको र हो विकल्प से सिप् परे रहते ।



धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे र्व्या स्यात् । अवेः अवेत् ।  
विधात् । विधाताम् । विद्युः । विधात् । विधास्ताम् । अवेदीत् ।  
अवदिष्यत् ॥

अस् भुवि ॥ १७ ॥ अस्ति ॥

अस्सोरलोपः ६ । ४ । १११ ॥

अस्याऽस्तेश्चाऽतो लोपः स्यात्सार्वधातुके कृति । स्तः । सन्ति ।  
असि । स्यः । स्य । अस्मि । स्वः । स्मः ॥

उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गणः प्रादुसश्चाऽस्तेः सस्य पः स्याद्यकारेऽचि च परे ।  
निष्यात् । प्रनिषन्ति । प्रादुःपन्ति । यच्परः किम् ? । अभिस्तः ॥

अस्तेर्भूः २ । ४ । ५२ ॥

[ अस्तेर्भू इत्यादेशः स्यात् ] आर्धधातुके । वभूव । भविता ।  
भविष्यति । अस्तु-स्तात् । स्ताम् । सन्तु ॥

ध्वँसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६ । ४ । ११५ ॥

घोरस्तेश्च एत्वं स्याद्धौ परे अभ्यासलोपश्च । एत्वस्याऽसिद्ध-  
त्वाद्धेर्धिः । अस्तेरित्यल्लोपः । तातड्पक्षे एत्वं न, परेण तातडा  
वाधात् । एधि-स्तात् । स्तम् । स्त । असानि । असाव । असाम् ।

१ आ और अस्ति के अकार का लोप होय सार्वधातुक कित् ङित् परे रहते ।

२ उपसर्ग ण् से परे और प्रादुस् से परे जो अस्ति का सकार उसको  
पकार हो यकार और अच् परे रहते ।

३ अस् धातु को भू आदेश हो आर्धधातुक परे रहते ।

४ घुसन्शक धातु और अस्धातु को एत्व हो हि परे रहते और अभ्यास का  
लोप हो ।

आसीत् । आस्ताम् । आसन् । स्यात् । स्याताम् । स्युः । भूयात् ।  
अभूत् । अभविष्यत् ॥

इण् गतौ ॥ १८ ॥ एति । इतः ॥

इणो यण् ६ । ४ । ८१ ॥

[ इणो यण् स्यात् ] अजादौ प्रत्यये परे । यन्ति ॥

अभ्यासस्याऽसवर्णे ६ । ४ । ७८ ॥

अभ्यासस्य इवर्णोवर्णयोरियडुवडौ स्तोऽसवर्णेऽचि । इयाय ॥

दीर्घ इणः किति ७ । ४ । ६९ ॥

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात्कितिलिटि । ईयुः । ईयुः । इय-

यिथ-इयेथ । एता । एष्यति । एतु । ऐत् । ऐताम् । आयन् । इयात् ।

इण षष्ठ्यन्त, यण्-प्रथमान्तम् । अजादौ प्रत्यये परे इण्-धातोर्य-  
णादेशः स्यादित्यर्थः । इयडोऽपवादोऽयम् । 'यन्ती'त्यत्र हि--शपो लुकि-  
'इ-अन्ती'त्यत्र 'इको यणचि'ति यणं वाधित्वा 'अचिरनु धात्वि'तीयङ् प्राप्तस्तं  
वाधित्वा 'इणो य'णित्यनेन यणादेशः

इयायेति । इणो लिटि तिपि णलि द्वित्वे 'इ-इ-अ' इत्यवस्थायामकः  
सवर्णे इति दीर्घ 'वाणोदाङ्गं वलीय' इति न्यायेन वाधित्वा 'अचो ङ्णिती'ति  
वृद्धावभ्यासस्याऽसवर्णे इतीयडादेशे आयादेशे च इयायेति सिद्धम् ।

'ईयु'रित्यत्र इ-इ-अतुस्-इत्यवस्थायामसंयोगाल्लिट्किदिति लिटः  
कित्वे आङ्गत्वादभ्यासोत्तरस्येकारस्य इणो यणिति यणि अभ्यासेकारस्य  
'दीर्घ इण' इति दीर्घः ।

इययिथेति । परिगणितातिरिक्ताजन्तधातुत्वेन इणोऽनुदात्तत्वेन तासौ

१ इण् धातु को यण् हो अजादि प्रत्यय परे रहते ।

२ अभ्यास का जो इवर्ण उवर्ण उसको क्रम से इयङ् उवङ् आदेश हों अस-  
वर्ण अच् परे रहते ।

३ इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ हो कित् लिट् परे रहते ।

एतेलिङि ७ । ४ । २४ ॥

उपसगात्परस्य इणोऽणो ह्रस्वः स्यादावधातुके किति लिङि ।  
निरियात् । उभयत आश्रयणे नान्तादिच्चत् । अभीयात् । अणः  
किम् ? । समेयात् ॥

इणो गा लृङि २ । ४ । ४५ ॥

[ इणो गादेशः स्याल्लृङि ] गातिस्थेति सिचो लृका ।  
अगात् । ऐप्यत् ॥ शीङ् स्वप्ने ॥ १९ ॥

शीङः सार्वधातुके गुणः ७ । ४ । २१ ॥

[ शीङो गुणः स्यात्सार्वधातुके ] - क्तिङिति चेत्यस्यापवादः । शेते । शयाते ॥

शीङो रुङ् ७ । १ । ६ ॥

रीङः परस्य आदेशस्याऽतो रुडागमः स्यात् । शेरते ।  
शेषे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये । शिदयाते ।  
शिस्थिरे । शयिता । शयिष्यते । शेताम् । शयाताम् । अशेत ।  
अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयि-  
षीष्ट । अशयिष्ट । अशयिष्यत ॥

नित्याग्नित्कतया ऋदन्तातिरिक्ततया भारद्वाजमते यलि इट्, अन्येषां मते  
तु अचस्तास्वदिति नेट् । तेन रूपद्वयं लब्धम् ।

१ उपसर्ग से परे जो इण् धातु सम्बन्धी अण् उसको ह्रस्व हो आर्धधातुक  
कित् लिङ् परे रहते ।

२ उभयत आश्रयण में अन्तादिवद्भाव नहीं होय ।

३ इण् धातु को गा आदेश हो लृङ् परे रहते ।

४ शीङ् धातु को गुण हो सार्वधातुक परे रहते ।

५ शीङ् धातु से परे जो झस्थानिक आदेश अत् उसको रुङ् का आगम होय ।

इङ् अध्ययने ॥ २० ॥ इङिकावच्युपसगतो न व्यभिचरतः।  
अधीते । अधीयाते । अधीयते ॥

गाङ् लिटि २ । ४ । ४९ ॥

इङो गाङ् स्याल्लिटि । अविजगे । अधिजगाते । अधिजगिरे ।  
अध्येता । अध्येष्यते । अधीताम् । अधीयाताम् । अधीयताम् ।  
अधीष्व । अधीयाथाम् । अधीध्वम् । अध्यैय । अध्ययावहै ।  
अध्ययामहै । अध्यैत । अध्यैयाताम् । अध्यैयत । अध्यैथाः । अध्यै-  
याथाम् । अध्यैध्वम् । अध्यैयि । अध्यैवहि । अध्यैमहि । अधीयीत ।  
अधीयीताम् । अधीयीरन् । अध्येषीष्ट ॥

विभाषा लुङ्लुङोः २ । ४ । ५० ॥

इङो गाङ् वा स्यात् ॥

गाङ्कुटादिभ्योऽणिण्डित् १ । २ । १ ॥

इङिकौ=‘इङ्-अध्ययने’ ‘इक् स्मरणे’ इतीमौ धातू । न व्यभि-  
चरत=नित्यमधिपूर्वावेव लोके प्रयुज्यते इत्यर्थः ।

अधीयत इति । अधीषे, अधीयाथे, अधीध्वे । अधीये, अधीवहे, अधीमहे ।  
अध्यैय इति । ‘अधि-इ-’ इत्यत्र शपो लुकि ‘आहुत्तमस्ये’त्याडागमे  
टित आत्मनेपदानामित्येत्वे, ‘एत ऐ’ इत्यैत्वे, ‘आटश्चे’ति वृद्धौ, सार्वधातु-  
कार्धधातुकयोरिति गुणेऽयादेशे यणि ‘अध्यैय’ इति सिद्धम् । एवमग्रेऽपि ।

अत्र गुणायादेशयोः कृतयोरुपसर्गस्य यण् । अत्र ‘पूर्व धातुरुपसर्गेण  
युज्यते’ इति दर्शनेऽन्तरङ्गत्वाद्गुणात्पूर्वं यण् प्राप्तः, ‘जेरध्ययने वृत्त’मिति  
निर्देशाच्च भवति ।

अध्येषीष्ट, अध्येषीयास्ताम्, अध्येषीरन् । अध्येषीष्ठाः, अध्येषीयास्थाम्,  
अध्येषीद्वम् । अध्येषीय, अध्येषीवहि, अध्येषीमहि इति लुङि ।

१ इङ् धातु को गाङ् आदेश हो लिट् परे रहते ।

२ इङ् धातु को गाङ् आदेश हो विकल्प से लुङ् लुङ् परे रहते ।

३ गाङ् आदेश और कुटादि से परे जो निष्णिक् भिन्न प्रत्यय सो ङिङ् हों ।

गाढादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽङ्गितः प्रत्यया ङितः स्युः ॥

धुमास्थाभापाजहातिसां हलि ङि । ४ । ६६ ॥

एषामात् ईत्स्याद्गलादौ किङ्त्वार्षधातुके । अध्यगीष्ट

अध्यैष्ट । अध्यगीष्यत अध्यैष्यत ॥

दुहं प्रपूरणे ॥२१॥ दोग्धि । दुग्धः । दुहन्ति । धोक्षि । दुग्धे ।

दुहाते । दुहते । धुक्षे । दुहाये । धुध्वे । दुहे । दुहहे । दुहहे । दुदोह-

दुदुहे । दोग्वासि--दोग्धासे । धोक्ष्यति--धोक्ष्यते । दोग्धु--दुग्धात् ।

दुग्धाम् । दुहन्तु । दोग्धि--दुग्धात् । दुग्धम् । दुग्ध । दोहानि ।

दोहाव । दोहाम । दुग्धाम् । दुहाताम् । दुहताम् । धुक्ष्व । दुहा-

थाम् । धुध्वम् । दोहै । दोहावहै । दोहामहै । अधोक् । अधुग्धाम् ।

अदुहन् । अदोहम् । अदुग्ध । अदुहाताम् । अदुहत । अधुध्वम् ।

दुहात्--दुहीत ॥

लिङ्सिच्चात्मानेपदेषु । १ । २ । ११ ॥

इक्समीपाङ्गलः परौ शलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि ।

धुक्षीष्ट ॥

शैल इगुपधादनिटः क्सः ३ । १ । ४५ ॥

प्रपूरण=दोहनम् । उभयपदी । द्विकर्मकः । गां दोग्धि पयः ।

धोक्षीति । दुग्धः, दुग्ध । दोक्षि, दुहः, दुहः, इत्यपि बोध्यम् ।

लङि-सिबादौ-अधोक्-ग्, अदुग्धम्, अदुग्ध । अदोहम्, अदुह, अदुह-इत्यपि रूपाणि बोध्यानि ।

१ वुसन्शकधातु और मा-स्था-गा-पा-हा और सोऽन्तकर्मणि धातु इनका जो आकार उसको इकार हो हलादि कित् ङित् आर्षधातुक पर रहते ।

२ इक् समीप हल से परे जो शलादि लिङ् सिच् सो कित् हो तद् पर रहते ।

३ इगुपध शलन्त जो धातु उससे परे जो अनिट् लि उसको क्स आदेश हो ।

इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्चलेः कसादेशः स्यात् ।

अधुक्षत् ।

लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मानेपदे दन्त्ये ७ । ३ । ७३ ॥

एषां कसस्य लुग्वा स्यादन्त्ये तडि । अदुग्ध अधुक्षत् ॥

कसस्याञ्चि ७ । ३ । ७२ ॥

अजादौ तडि कसस्य लोपः स्यात् । अधुक्षाताम् । अधुक्षन्त ।

अदुग्धाः—अधुक्षयाः । अधुक्षाथाम् । अधुग्ध्वम्—अधुक्षध्वम् ।

अधुक्षि । अदुहहि—अधुक्षावहि । अदुहहि—अधुक्षामहि । अधो-

क्षयत् ॥ एवं—दिह उपचये ॥ २२ ॥

लिह आस्वादेन ॥ २३ ॥ लेढि । लीढः । लिहन्ति ।

लेक्षि । लीढे । लिहाते । लिहते । लिक्षे । लिहाथे । लीढ्वे ।

लिलेह—लिलिहे । लेढासि—लेढासे । लेक्षयति—लेक्षयते । लेढु-

लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि । लेहानि । लीढाम् । अलेद्,—

अलेङ् । अलिक्षत् । अलीढ—अलिक्षत् । अलक्षयत् । अलेक्षयत् ॥

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ॥ २४ ॥

उपचयः=वृद्धिः । अस्य च—देग्धि । दिग्धे । दिदेह । दिदिहे । देग्धा-

सि । देग्धासे । धेक्षयति । धेक्षयते । देग्धु । दिग्धाम् । अधेक् । अदिग्ध ।

दिह्यात् । दिहीत । दिह्यात् । धिक्क्षीष्ट । अधिक्षत् । अदिग्ध—अधिक्षत् ।

अधेक्षयत् । अधेक्षयतेत्यादि रूपाणि पूर्वोक्तरीत्योह्यानि ।

व्यक्तायां वाचि=स्पष्टभाषणे ।

१ दुह् दिह् लिह् और गुह् धातु का जो कस उसका छेक् हो विकल्प से दन्त्य तङ् पर रहते ।

२ कस का लोप हो अजादि तङ् पर रहते ।

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः इ । ४ । ८४ ॥

ब्रुवो लट्स्तिवादीना पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चा-  
ऽऽहदेशः । आह । आहतुः । आहुः ॥

आहस्थः ८ । २ । ३५ ॥

[ आहस्थकारादेशः स्यात्— ] झलि परे । चर्त्यम् । आत्थ ।

आहथुः ॥

ब्रुवै ईट् ७ । ३ । ६३ ॥

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात् । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति ।  
ब्रूते । ब्रुवाते । ब्रुवते ॥

ब्रुवो वचिः २ । ४ । ५३ ॥

[ ब्रुवो वचिः स्यात्— ] आर्धधातुके । उवाच । ऊचतुः ।  
ऊचुः । उवचिय—उवक्थ । ऊचे । वक्ता । वक्तासि—वक्तासे ।  
वक्ष्यति—वक्ष्यते । ब्रवीतु—ब्रूतात् । ब्रूताम् । ब्रुवन्तु । ब्रूहि । ब्रवाणि ।  
ब्रूताम् । ब्रवे । अब्रवीत् । अब्रूत । ब्रूयात् । ब्रवीत । उच्यात् । वक्षीष्ट ॥

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३ । १ । ५२ ॥

एभ्यश्चलेरङ् स्यात् ॥

ब्रुव इति । आर्द्धधातुकविषयो ब्रुवो वचिरादेशः स्यादित्यर्थः ।

१ ब्रून् धातु से परे जो लट् सम्बन्धी तिवादि पांच उनको णलादि पांच  
आदेश हों विवर्त्तन से और ब्रून् धातु को आह आदेश हो ।

२ आह को थकार अन्तादेश हो झल् परे रहते ।

३ ब्रून् धातु से परे जो हलादि पित उसको ईट् का आगम होय ।

४ ब्रून् धातु को वच् आदेश हो आर्धधातुक के विषय में ।

५ अस् धातु वच् धातु और ख्या धातु इनसे परे जो च्लि उसको अङ्  
आदेश होय ।

वच उम् ७ । ४ । २० ॥

[विच उमागमः स्यात्—] अङि परे । अवोचत्—अवोचत ।  
अवक्ष्यत्—अवक्ष्यत । ( ग० सू० ) चर्करीतञ्च । चर्करीतमिति  
यङ्लुगन्तस्य सञ्ज्ञा, तददादौ बोध्यम् । ऊर्णुञ् आच्छादने ॥ २५ ॥

ऊर्णोतेर्विभाषा ७ । ३ । १० ॥

[ऊर्णोतेः—] वा वृद्धिः स्याद्वलादौ पिति सार्वधातुके ।  
ऊर्णोति-ऊर्णोति । ऊर्णुतः । ऊर्णुवन्ति । ऊर्णुत । ऊर्णुवाते ।  
ऊर्णुवते । ऊर्णोतेरास्नेति वाच्यम् ॥

नैन्द्राः संयोगादयः ६ । १ । ३ ॥

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति । नुशब्दस्य  
द्वित्वम् । ऊर्णुनाव । ऊर्णुनुवतुः । ऊर्णुनुवुः ॥

विभाषोर्णोः १ । २ । ३ ॥

तत्=यङ्लुगन्तं 'बामू' इत्यादि । तत्फलन्तु शपो छक् ।

आच्छादनम्=आवरणम् (ढकना) । लटि सिबादौ ऊर्णोषि-ऊर्णोषि,  
ऊर्णुथ, ऊर्णुथ । ऊर्णोमि-ऊर्णोमि, ऊर्णुव, ऊर्णुमः ।

नुशब्दस्येति । ऊर्णुन्वातौ हि उपदेशे नुशब्द एव । णत्वन्तु रेफात्पर-  
तया रषाभ्यामिति लक्षणवशे सम्प्रज्ञम् । एवञ्च नुशब्दस्य द्वित्वं, द्वित्वगात्र-  
दृष्ट्याऽऽष्टमिकस्य रषाभ्यामिति णत्वस्याऽसिद्धत्वाद्धिति भावः ।

१ वच को उम् का आगम हो अङ् परे रहते ।

२ यङ् लुगन्त को अदादि में जानना ।

३ ऊर्णुन् धातु को विकल्प से वृद्धि हो इलादि पित् सार्वधातुक परे रहते ।

४ ऊर्णुन् धातु से आम् न हो ।

५ अच् से परे जो संयोगादि न द् र इनको द्वित्व नहीं हो ।

६ ऊर्णुन् धातु से परे जो इडादि प्रत्यय वह विकल्प से छिप् हो ।



इडादिप्रत्ययो वा ङित्यात् । ऊर्णुनुविथ-ऊर्णुनविथ । ऊर्णु-  
विता-ऊर्णविता । ऊर्णुविष्यति-ऊर्णविष्यति । ऊर्णोतु-ऊर्णोतु ।  
ऊर्णवानि । ऊर्णवै ।

गुणोऽष्टके ७ । २ । ९१ ॥

ऊर्णोतेर्गुणः स्यादष्टके हलादौ पिति सार्वधातुके । वृद्धय-  
पवादः । और्णोत् । और्णोः । ऊर्णुयात् । ऊर्णुयाः । ऊर्णुवीत् ।  
ऊर्णूयात् । ऊर्णुविषीष्ट-ऊर्णविषीष्ट ॥

ऊर्णोतेर्विभाषा ७ । २ । ६ ॥

इडादौ सिचि परस्मैपदे परे वा वृद्धिः स्यात् । पक्षे गुणः ।  
और्णावीत्-और्णुवीत्-और्णवीत् । और्णाविष्टाम्-और्णुविष्टाम्-  
और्णविष्टाम् । और्णाविष्ट-और्णुविष्ट-और्णविष्ट । और्णुविष्यत् ।  
और्णविष्यत् । और्णुविष्यत-और्णविष्यत ।

इत्यदादयः ॥

—

ऊर्णुनुविथेति । ङित्वे उवङ्, गुणस्य 'विकृति चे'ति निषेधात् । अन्यत्र  
तु गुणः ।

लुङि परस्मैपदे 'ऊर्णोतेर्विभाषे'ति, 'विभाषोर्णो'रिति च विकल्पद्वयस्य  
प्रवृत्त्या रूपत्रयमित्यवधेयम् ।

\* इत्यदादिप्रकरणम् \*

—

१ ऊर्णु धातु को गुण हो अष्टक हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते ।

२ ऊर्णु धातु को विकल्प से वृद्धि हो इडादि-परस्मैपद सिच् परे रहते ।

## अथ जुहोत्यादिप्रकरणम् ।

दानाऽदनयोः ॥ १ ॥

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २ । ४ । ७५ ॥

[ अम्यः परस्य- ] शपः श्लुः स्यात् ॥

श्लौ द् ॥ १ । १० ॥

धातोश्च स्तः । जुहोति । जुहुतः ॥

अदभ्यस्तात् ७ । १ । ४ ॥

[ अम्यस्तात्परस्य- ] जस्याऽत्स्यात् । हुश्वोरिति यण् । जुहति ।

भीहीभृद्भुवां श्लुवच् ३ । १ । ३९ ॥

अम्यो लिट्याम्वा स्यादामि श्लविक् कार्यं च । जुहवा-  
ञ्चकार-जुहाव । होता । होष्यति । जुहोतु-जुहुतात् । जुहुताम् ।  
जुह्वतु । जुहुषि । जुह्वानि । अजुहोत् । अजुहुताम् ॥

जुसि च ७ । ३ । ८३ ॥

इगन्ताङ्गस्य गुणः स्यादजादौ जुसि । अजुह्वुः । जुहुयात् ।

जुहोति-हुधातुरादिर्येषान्ते जुहोत्यादयः-इति विग्रहः ।

दाने-हवने, अदाने=भक्षणे । आदाने चेत्येके । तत्र आदानं=ग्रहणम् ।

अज्जाज्यं जुहोति । श्लुः=अदर्शनम् । लोप इति यावत् ।

श्लौ=यत्र शपः श्लुस्तत्र ।

१ जुहोत्यादिगणपठित धातुओं से परे शप् का श्लु ( लोप ) होय ।

२ धातु को द्वित्व हो श्लु के विषय में ।

३ अम्यस्त से परे जो झ उसको अच् आदेश होय ।

४ भी ही भृ और हु धातु से आम् होय लिट् परे रहते और आम् परे रहते धातु को श्लु की तरह कार्य हो ।

५ इगन्त अङ्ग को गुण हो अजादि जुप् परे रहते ।

हूयात् । अहौषीत् । अहोष्यत् ॥

अभी भये ॥ २ ॥ विभेति ॥

भियोऽन्यतरस्याम् ६ । ४ । ११५ ॥

इकारो वा स्याद्बलादौ किङ्ति सार्वधातुके । विभितः-विभीतः । विभ्यति । विभयाश्चकार-विभाय । भेता । भष्यति । विभेत् । विभितात्-विभीतात् । अविभेत् । विभीयात्-विभियात् । भीयात् । अभैषीत् । अभेष्यत् ॥

ही लज्जायाम् ॥ ३ ॥ जिहति । जिहीतः । जिहियति । जिहयाश्चकार,--जिहाय । हेता । हेष्यति । जिहेत् । अजिहेत् । जिहीयात् । हीयात् । अहैषीत् । अहेष्यत् ॥

प पालनपूरणयोः ॥ ४ ॥

अतिपिपत्योश्च ७ । ४ । ७७ ॥

अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ । पिपति ॥

उदोष्यपूर्वस्य ७ । १ । १०२ ॥

अज्ञावयवौष्ठयपूर्वो य ऋत् तदन्तस्याज्ञस्य उत् स्यात् ॥

जिहियतीत्यत्र 'अचि र्तु' इतीयङ् । 'अत्र लोपोऽभ्यासस्ये' त्यतोऽभ्यासरयति 'निजां त्रयाणा' मित्यतः श्लाविति, 'भृजामि' दित्यत इदिति चानुवर्तते । तदाह-अभ्यासस्येति ।

'ऋत् इच्छातो' रित्यत ऋदित्यनुवर्तते, तदाह य ऋदिति ।

१ भी धातु को इकार आदेश हो विकल्प स हलादि किङ् डित् परे रहत ।

२ ऋ वातु और पृ धातु के अभ्यास को इकार अन्तादेश हो र्तु के विषय में ।

३ अज्ञ का अवयव औष्ठय पूर्व में है जिसके ऐसा जो ऋकार तदन्त जो अज्ञ उसको उकार आदेश होय ।

हलि च ८ । २ । ७७ ॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्याद्धलि । पिपूर्तः ।  
पिपुरति । पपार ॥

शृदृष्ठां ह्रस्वो वा ७ । ४ । १२ ॥

एषां लिटि ह्रस्वो वा स्यात् । पप्रतुः ॥

ऋच्छत्यृताम् ७ । ४ । ११ ॥

तौदादिकऋच्छेऋधातोऋतां च गुणः स्याल्लिटि । पपरतुः ।

पपरः ॥

वृतो वा ७ । २ । ३८ ॥

वृड् वृञ् भ्यामृदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि । 'परीता-  
प रिता । परीष्यति-परिष्यति । पिपर्तु अपिपः । अपिपूर्ताम् ।  
'अपिपरः । पिपूर्यात् । पूर्यात् । अपारीत् ॥

सिचि चै परस्मैपदेषु ७ । २ । ४० ॥

'वोरुपधाया दीर्घ इक्' इत्यनुवर्त्याह-रेफवान्तेत्यादि ।

शृ दृ अत्र 'दयतेर्दिगी'त्यतो लिटीत्यनुवर्तते ।

'ऋतश्च सयोगादे'रित्यतो 'दयतेर्दिगी'त्यतश्चानुवर्त्याह-गुण इति ।

'अ धेवातुकस्ये'डित्यत इडित्यनुवर्तते । विभक्तिविपरिणामः । 'अहोऽ-  
ऽलिटी'त्यतो दीर्घ इत्यनुवर्तते । तदाह-दीर्घ इति ।

१ रेफान्त और वान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ हो हल् परे रहते ।

२ शृ दृ और पृ धातु को ह्रस्व हो लिट् परे रहते विकल्प से ।

३ तौदादिक जो ऋच्छ धातु-ऋ धातु और ऋकारान्त धातु उनको गुण हो लिट् परे रहते ।

४ वृड् वृञ् और ऋदन्त धातु से परे जो इट् उसको दीर्घ हो विकल्प से ।  
लिट् परे रहते नहीं हो ।

५ परस्मैपद सिच् परे रहते इट् को दीर्घ नहीं होता है ।

अत्रेदो न दीर्घः । अपारिधाम् । अपरीष्यत्-अपरिष्यत् ॥

ओहाक् त्यागे ॥ ९ ॥ जहाति ॥

जहातेश्च ढ । ४ । ११६ ॥

इत्स्याद्वा हलादौ किङति सार्वधातुके ॥ जहितः ।

ई हैल्यघोः ढ । ४ । ११३ ॥

इनाभ्यस्तयोरात् ईत् स्यात् सार्वधातुके किङति हलि न तु घोः । जहीतः ॥

इनाभ्यस्तयोरात् ढ । ४ । ११२ ॥

अनयोरातो लोपः स्यात् किङति सार्वधातुके । जहति । जहौ ।

हाता । हास्यति । जहातु, जहितात्, जहीतात् ।

आ च हौ ढ । ४ । ११७ ॥

‘आर्धधातुकस्ये’डित्यतो ‘ग्रहोऽलिटी’त्यतो ‘वृत्तो वे’त्यतो ‘न लिङी’-  
त्यतश्चानुवर्त्याह-अत्रेत्यादि । ‘भियोऽन्यतरस्याम्’ ‘अत उत्’ ‘इदरि-  
द्रस्य’ ‘गमहने’त्यतोऽनुवर्त्याह-इदिति ।

‘गमहने’त्यतः ‘श्नाऽभ्यस्तयो’रित्यतः, ‘अत उत्’दित्यतश्चानुवर्त्याह-  
इनाभ्यस्तयोरिति ।

‘असोरलोप’ इत्यतो लोप इत्यनुवर्तते । ‘गमहने’त्यत, ‘अत उत्सार्व-  
धातुके’ इत्यतश्चानुवर्त्याह-अनयोरिति ।

१ हा धातु को इकार आदेश हो विकल्प से हलादि कित् डित् सार्वधातुक परे रहते ।

२ इना और अभ्यस्त का जो आकार उसको ईकारादेश हो हलादि कित् डित् सार्वधातुक परे रहते । घुसञ्शक धातु को नहीं होय ।

३ इना और अभ्यस्त के आकार का लोप हो कित् और डित् सार्वधातुक परे रहते ।

४ हा धातु को आकार आदेश हो हि परे रहते । और (चकार से) इकार आरे ईकार आदेश भी हो ।

जहातेहौं परे आ स्याच्चादिदीतौ । जहाहि—जहिहि—जहीहि ।

अजहात् । अजहुः ॥

**लोपो यि ८ । ४ । ११८ ॥**

जहातेरालोपः स्याच्चादौ सार्वधातुके । जहात् । एलिङि ।  
हेयात् । अहासीत् । अहास्यत् ॥ माङ् माने शब्दे च ॥ ६ ॥

**भृञ्आमि ७ । ४ । ७६ ॥**

भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्यात् श्लौ ।  
मिमीते । मिमाते । मिमते । मभे । माता । मास्यते । मिमीताम् ।  
अमिमीत । मिमीत । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत ॥ ओहाङ्  
गतौ ॥ ७ ॥ जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । हाता ।  
हास्यते । जिहीताम् । अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट । अहास्त ।  
अहास्यत ॥ भृमृञ् धारणपोषणयोः ॥ ८ ॥ विमर्ति । विमृतः ।  
विभ्रति । विमृते । विभ्राते । विभ्रते । विभराञ्चकार—बभार ।  
बभर्थ । बभृव । विभराञ्चक्र । बभ्रे । भर्तासि । भर्तासे । भरिष्यति ।  
भरिष्यते । विमर्तु । विभराणि । विभृताम् । अविभः । अविभृताम् ।  
अविभरुः । अविभृत । विभृयात् । विभ्रीत । भ्रियात् । भृषीष्ट ।  
अभर्षीत् । अभृत । अभरिष्यत् । अभरिष्यत ॥

‘जहातेश्च’ ‘इहरिद्रस्य’ ‘ईहृत्यवो’ रित्येतेभ्योऽनुवर्त्याह—जहातेरिति ।

‘जहातेश्च’त्यनुवर्त्याह । जहातेरिति ।

‘निजा त्रयाणाम्’ ‘अत्र लोप’ इत्यतोऽनुवर्त्याह अभ्यासस्येति ।

वभर्थेत्यत्र ‘कृष्मृवृ’ इति नेट् ।

१ हा धातु के आकार का लोप हो यकारादि सार्वधातुक परे रहते ।

२ भृञ्-माङ् ओहाङ् इन तीनों धातुओं के अभ्यास को इकार आदेश हो  
रख के विषय में ।

डुदाश् दाने ॥ ९ ॥ ददाति । दत्तः । ददति । दत्ते ।  
ददाते । ददते । ददौ । ददे । दातासि । दातासे । दास्यति ।  
दास्यते । ददातु ॥

दाधा घवदाप् १ । १ । २० ॥

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दोषेर्षौ विना । घवसो-  
रित्येत्वम् । देहि । दत्तम् । अददात् । अदत्त । दधात् । दधीत ।  
देयात् । दासीष्ट । अदात् । अदाताम् । अदुः ॥

ह्यथाध्वोरिच्च १ । २ । १७ ॥

अनयोरिदन्तादेशः स्यात् सिच्च कित्स्यादात्मनेपदे । अदित ।  
अदास्यत् । अदास्यत ॥ डुधाश् धारणपोषणयोः ॥ १० ॥ दधाति ॥

दधस्तथोश्च ८ । २ । ३८ ॥

द्विरुक्तस्य झपन्तस्य धावो वशो भप् स्यात्तथोः स्वोश्च  
परतः । धत्तः । दधति । दधासि । धत्थः । धत्थ । धत्ते ।  
दधाते । दधते । धत्से । धद्ध्वे । ध्वशोरेद्धावभ्यासलोपश्च ।  
धेहि । अदधात् । अधत्त । दध्यात् । दधीत । धेयात् । धासीष्ट ।

दाधा-प्रथमान्त, घु-प्रथमान्तम् । अदाप्-प्रथमान्तम् ।

‘लिङ्सिचा’वित्यतः, ‘हनःसि’जित्यतः, ‘असंयोगाङ्गि’ङित्यतश्चाणुवर्त्याह-  
सिच्चेति । ‘एकाचो वशोभषि’त्यतोऽणुवर्त्याह-झपन्तस्येति ।

१ दारूप और धारूप जो धातु उसकी घु संज्ञा हो दाप् और दप् धातु को छोड़कर के ।

२ स्थाधातु और घुसंज्ञक धातु को इकार अन्तादेश हो और सिच् किर्त हो आत्मनेपदपरे रहते ।

३ द्विरुक्त झपन्त जो धाधातु तदवयव जो वश् उसको भप्भाव हो त थ और स ध्व परे रहते ।

अधात् । अधित । अधास्यत् । अधास्यत ॥ णिजिर् शौचपोष-  
णयोः ॥ ११ ॥ \*इर् इत्संज्ञा वाच्यः ॥

णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ७ । ४ । ७५ ॥

णिज्विज्विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ । नेनेक्ति । नेनेक्तः ।  
नेनेजति । नेनेक्ते । नेनेज । नेनेजे । नेक्ता । नेक्ष्यति । नेक्ष्यते ।  
नेनेक्तु । नेनेग्धि ॥

नाऽभ्यस्तस्याऽचि पिति सार्वधातुके ७ । ३ । ८७ ॥

( अभ्यस्तस्याऽचि पिति सार्वधातुके—) लघूपधगुणो न  
स्यात् । नेनेजानि । नेनेक्ताम् । अनेनेक् । अनेनेक्ताम् । अने-  
निजुः । अनेनेजम् । अनेनेक्त । नेनेज्यात् । नेनेजीत । निज्यात् ।  
निक्षीष्ट ॥

इरितो वा ३ । १ । ५७ ॥

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा स्यात्परस्मैपदेषु । अनिजत् । अनैक्षीत् ।  
अनेक्त । अनेक्ष्यत् । अनेक्ष्यत ॥

इति जुहोत्यादयः ॥ ३ ॥

शौचं=प्रक्षालनम् । 'अत्र लोपोऽभ्यासस्येत्यतोऽनुवर्त्याह-अभ्यास-  
स्येति । 'मिदेर्गुण'इत्यतो गुण इति 'पुगन्त'इत्यतो लघूपधेति चानुवर्तते ।

\*इति सरलायां जुहोत्यादिप्रकरणम्\*

१ इर् की इत्संज्ञा हो ।

२ णिज्-विज् और विष् धातु के अभ्यास को गुण हो २७ के विषय में ।

३ अभ्यस्त को लघूपध गुण नहीं होय अजादि पित् सार्वधातुक परे रहते ।

४ इरित् (इर् इत्संज्ञक) धातु से परे ञि को अङ् हो विकल्प से परस्मैपद में ।



## अथ दिवादयः

दिषु कीडा विजिगीषा व्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद-  
स्वप्नकान्तिगातिषु ॥ १ ॥

दिवादिभ्यः श्यन् ३ । १ । ६९ ॥

( एभ्यः श्यन् स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे ) । शपोऽपवादः ।  
हलि चेति दीर्घः । दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु ।  
अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् ॥ एवं पिबु  
अन्तुसन्ताने ॥२॥ नृती गात्रविक्षेपे ॥३॥ नृत्यति । ननर्त ।  
नर्तिता ॥

सेऽसिचि कृन्चृत्छृदृदृत्तः ७ । २ । ५७ ॥

एभ्यः परस्य सिञ्जिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात् ।  
नर्तिष्यति-नर्त्स्यति । नृत्यतु । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अन-  
र्तीत् । अनर्तिष्यत्, अनर्त्स्यत् ॥ त्रसी उद्वेगे ॥ ४ ॥ वा भ्राशेति  
श्यन्वा । त्रस्यति-त्रसति । तत्रास ॥

था जृअमुत्रसाम् ६ । ४ । १२४ ॥

‘सार्वधातुके यक्’ ‘कर्तरि शप्’ इत्याभ्यामनुवर्त्याह-कर्त्रर्थे इति ।

‘वसतिष्ठधोरिट्’ ‘उदितो वा’ इत्याभ्यामनुवर्त्याह-इड्वेति ।

‘धोर्लोपो लेटि’ इत्यतोऽनुवर्त्याह-लोपाविति ।

१ दिपादि गणपठित जो धातु उनसे परे श्यन् हो, कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे  
रहते ।

२ कृत्-चृत्-छृद-दृद नृत् इन धातुओं से परे जो सिञ्भिन्न सादि आर्धधातुक  
उसको इट् का आगम विकल्प से हो ।

३ जृ-अमु त्रस इन धातुओं को एत्वाऽभ्यासलोप विकल्प से हो कित् लिट्  
और सेट् थल् परे रहते ।

एषां किति छिटि सेटि-थलि च एत्वाम्यासलोपौ वा स्तः ।  
त्रेसतुः-तत्रसतुः । त्रेसिथ-तत्रसिथ । त्रसिता ॥ शोतनूकरणोऽ।

ओतः श्यनि ७ । ३ । ६१ ॥

लोपः स्यात् श्यनि । श्यति । श्यतः । श्यन्ति । शशौ ।  
शशतुः । शाता । शास्यति ॥

विभाषा धाधेदृशाच्छासः २ । ४ । ७८ ॥

एभ्यसिचो लुक्वा स्यात् परस्मैपदे परे । अशात् । अशा-  
ताम् । अशुः ॥ इट्सकौ । अशासीत् । अशासिधाम् ॥

छो छेदने ॥ ६ ॥ छ्यति ॥ षोऽन्तकमाणि ॥ ७ ॥ स्यति  
ससौ [ सेयात् । असात् । असासीत् । ] ॥ दो अवखण्डने ॥ ८ ॥  
द्यति । ददौ । देयात् । अदात् ॥ व्यध ताडने ॥ ९ ॥

अहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चानिष्टच्छातिभृज-

तीनां डिति च ६ । १ । १६ ॥

एषां सम्प्रसारणं स्यात्किति डिति च । विध्यति । विव्याध ।  
विविधतुः । विविधुः । विव्यधिय-विव्यद्ध । व्यद्ध । व्यत्स्यति ।  
विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् ॥ पुष पुष्टौ ॥ १० ॥ पुष्यति ।  
पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टा । पोक्षयति । पुषादीत्यङ् । अपुषत् ॥

‘ण्यक्षत्रियार्षजितः’ ‘गातिस्थाधुपामूभ्यः’ इत्येताभ्यामनुवर्त्याह-सिच  
इति । ‘व्यङ्गः सम्प्रसारणम्’ इत्यतः ‘सम्प्रसारण’मित्यनुवर्तते । ‘आर्षधातु-

१ ओकार का लोप हो श्यन् परे रहते ।

२ धा धेदृ-शो-छो-आर षो-इन धातुओं से परे जो सिच् उसका लुक् हो  
विकल्प से परस्मैपद परे रहते ।

३ अह्यादि [ अह-ज्या-वेज्-व्यध-वष्टि विच वृश्च-प्रच्छ-और भृज इन ]  
धातुओं को सम्प्रसारण हो कित्-डित् परे रहते ।

शुप शोपणे ॥ ११ ॥ शुप्यति । शुशोप । अशुपत् ॥

णश अदर्शने ॥ १२ ॥ नश्यति । ननाश । नेशतुः ॥

रैघादिभ्यश्च ७ । २ । ४५ ॥

रघ् नश् टप् दप् दुह् मुह् षुह् षिह् एभ्यो वलाघार्धधातु-  
कस्य वेट् स्यात् । नेशिय ॥

मस्जिनशोर्झलि ७ । १ । ६० ॥

नुम् स्यात् । ननंष्ट । नेशिव नेश्व । नेशिम-नेश्म । नशिता-  
नंष्टा । नशिप्यति-नङ्क्षयति । नश्यतु । अनश्यत् । नश्येत् । नस्यात् ।  
अनशत् । षूङ् प्राणिप्रसवे ॥ १३ ॥ सूयते । सुपुवे । क्रादिनियमा-  
दिट् । सुपुविषे । सुपुविवहे । सुपुविमहे । सविता रोता ॥

दूङ् परितापे ॥ १५ ॥ दूयते ॥

दीङ् क्षये ॥ १५ ॥ दीयते ॥

दीङो युडचि किति ६ । ४ । ६३ ॥

दीङः परस्याऽजादेः क्ति आर्धधातुकस्य युट् स्यात्\*धुंयुटा-

कस्येद्' इत्यतः 'इट्' इति, 'स्वरतिसूतिसूयति' इत्यतो 'वेति' चानुवर्त्याह-  
वलाघेति ।

नुमिति । 'इदितो नुम् धातोः' इत्यतः 'नुम्' इत्यनुवर्तते ।

'आर्धधातुके' इत्यधिकृत्याह-आर्धधातुकस्येति । सिद्धावितिातन

१ रघ्-नश् टप्-दप्-दुह्-मुह्-षुह्-इन धातुओं से परे जो वलादि आर्धधातुक  
उसको विकल्प से इट् हो ।

२ मस्जि और नश् धातु को नुम् हो झल् परे रहते ।

३ दीङ् धातु से परे जो अजादि क्ति ङिच् आर्धधातुक उसको युट् हो ।

४ चवङ् और यण् करना हो तो वुक्-और युट् सिद्ध ही रहते हैं, 'असिद्ध-  
वदत्राभात्' इस सूत्र से असिद्ध नहीं होते हैं ।

बुवङ्ग्यणोः सिद्धौ च कव्यौ । दिदीये ॥

मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ङ । १ । ५० ॥

एषामात्वं स्याल्ल्यपि, चादशित्येज्जिमित्ते । दाता । दास्यति ।  
 \*स्थाध्वोरिच्चे दीङः प्रतिषेधः । अदास्त ॥ डीङ् विहायसा  
 गतौ ॥ १६ ॥ डीयते । डिड्ये । डयिता ॥ पीङ् पाने ॥ १७ ॥  
 पीयते । पेता । अपेष्ट ॥ माङ् माने ॥ १८ ॥ मायते । मेम ॥

जनी प्रादुर्भावे ॥ १९ ॥

ज्ञानोर्जा ७ । ३ । ७९ ॥

अनयोर्जादेशः स्याच्छिति । जायते । जज्ञे । जनिता ।  
 जनिष्यते ॥

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१६१॥

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यादेकवचने तशब्दे परे ॥

चिणो लुक् ङ । ४ । १०४ ॥

‘असिद्धवदत्राभात्’ इत्यसिद्धत्वं न । ‘आदेश उपदेशेऽशिति’ इति सूत्रमनु-  
 वर्त्त्योक्तम्-आत्वमित्यादि । ‘ष्ठिपुल्लमुचमाम्’-इत्यतः ‘शिति’ इत्यनुवर्त्तते ।  
 तदाह-शितितीति । ‘चिण् ते पदः’ ‘च्लेः सिच्’ इत्येताभ्यां ‘चि’णिति, ‘च्ले’  
 इति पदद्वयमनुवर्त्तते, तदाह-एभ्यश्च्लेरिति ।

१ मीन् मिन् और दीङ् धातु को आत्व हो, ल्यप्-परे रहते । चकार से शिव  
 भिन्न एचिन्मित्तक प्रत्यय परे रहते भी आत्व हो ।

२ स्थाध्वोरिच्च-इस-सूत्र से प्राप्त जो इत्त्व वह दीङ् धातु को नहीं हो ।

३ ज्ञा और जन् धातु को जा आदेश हो शिव परे रहते ।

४ दीप जन बुध पूरि तायि और प्यायि इनसे परे जो च्लि उसको चिण्  
 आदेश हो एकवचन त शब्द परे रहते ।

५ चिण् से परे जो त शब्द उसका लुक् हो ।

चिणः परस्य [तशब्दस्य] छक् स्यात् ॥

जनिर्वध्योश्च ७ । ३ । ३६ ॥

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञिणिति कृति च । अजनि  
अजनिष्ठ ॥ दीपि दीप्तौ ॥ २० ॥ दीप्यते । दिदीपे । अदीपि-  
अदीपिष्ठ ॥ पद भतौ ॥ २१ ॥ पद्यते । पेदे । पत्ता । पत्सीष्ट ॥

चिण् ते पदः ३ । १ । ६० ॥

पदश्चलेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे । अपादि । अपत्साताम् ।  
अपत्सत ॥ विद् सत्तायाम् ॥ २२ ॥ विद्यते । वेत्ता । अविक्त ॥  
बुध अवगमने ॥ २३ ॥ बुध्यते । बोद्धा । भोत्स्यते । भुत्सीष्ट ।  
अबोधि अबुद्ध । अमुत्साताम् ॥ युध सम्प्रहारे ॥ २४ ॥  
युध्यते । युयुधे । योद्धा । अयुद्ध ॥

सज विसर्गे ॥ २५ ॥ सृज्यते । ससृजे । ससृजिष ॥

सृजिदृशोर्ज्ञत्यसकिति ६ । १ । ५८ ॥

अनयोरमागमः स्याज्ज्ञलादावकिति । सृष्टा । सृक्ष्यति । सृक्ष्यते ।  
सृक्षीष्ट । असृष्ट । असृक्षाताम् ॥ मृष तितिक्षायाम् ॥ २६ ॥

तशब्दस्येति । 'अङ्गस्ये'त्यधिकाराच्चिणान्तस्याङ्गत्वप्रयोजकप्रत्ययस्य  
लाभेन तादृगप्रत्ययस्य 'त'स्य लोप इति लभ्यते इति भावः । 'अचो ञ्णिति'  
'मृजेवृद्धिः' 'अत उपधाया' 'आतो युक्' 'नोदात्तोपदेशस्य' इत्येतेभ्यो  
यथायथमनुवर्त्याह-उपधाया इति । पदश्चलेश्चिणिति । 'चलेः सिच्'इत्यत-  
'चले'रित्यनुवर्तते ।

१ जन और वध धातु का उपधाभूत जो अच् उसको वृद्धि नहीं हो चिण्  
और निच् णित् कृत् परे रहते ।

२ पद धातु से परे जो ञ्लि उसको चिण् हो त शब्द परे रहते ।

३ सृज् और दृश् धातु को अम् का आगम हो किन् भिन्न झलादि परे  
रहते ।

मृष्यति मृष्यते । ममर्ष । ममर्षिथ । ममृषिषे । मर्षितासि ।  
मर्षितासे । मर्षिष्यति मर्षिष्यते ॥

णह बन्धने ॥२७॥ नह्यति । नह्यते । ननाह । नेहिथ-ननद्ध ।  
नेहे । नद्धा । नत्स्यति । अनात्सीत्—अनद्ध ॥

\* इति दिवादिप्रकरणम् ॥ ४ ॥

## अथ स्वादिप्रकरणम् ।

षुञ् अभिषव् ॥ १ ॥

स्वादिभ्यः श्नुः । ३ । १ । ७३ ॥

[ स्वादिभ्यः श्नुः स्यात्कर्त्रथ सार्वधातुके परे ] । शपोऽप-  
धादः । सुनोति । सुनुतः । हुश्नुञ्जोरिति यण् । सुन्वन्ति । सुन्वः—  
सुनुवः । सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुन्वहे—सुनुवहे । सुषाव—सुषुवे ।  
सोता । सुनु । सुनवानि । सुनवै । सुनुयात् । सूयात् ॥

स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु । ७ । २ । ७२ ॥

एभ्यस्सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु । असावीत् । असोष्ट ॥

चिञ् चयन ॥ २ ॥ चिनोति । चिनुते ॥

चिभाषा चेः । ७ । ३ । ५८ ॥

‘सार्वधातुके यक्’ इत्यतः ‘कर्तरि शप्’ इत्यतश्चातुर्वर्त्याह—कर्त्रर्थे इति ।  
‘इड्यतिव्ययतीनाम्’ ‘अङ्गे सिचि’ इत्याभ्यां ‘इट्’ इति ‘सिच्’ इति

१ कर्त्रर्थक सार्वधातुके परे रहते स्वादिगणपठित धातुओं से श्नु प्रत्यय होय ।

२ स्तु सु और धूञ्भनसे परे जो सिच् उसको इट् हो परस्मैपद परे रहते ।

३ अभ्यास से परे चिञ् धातु को कुत्व हो विकल्प करके सञ् और लिट् परे रहते ।

अभ्यासात्परस्य कुत्व वा स्यात्सनि लिटि च । चिकाय-  
चिचाय । चिक्ये-चिच्ये । अचैषीत् । अचेष्ट ॥

स्तृञ् आच्छादने ॥ ३ ॥ स्तृणोति । स्तृणुते ॥

शर्पूर्वाः खयः । ७ । ४ । ६१ ॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्तेऽन्ये हलो लुप्यन्ते ।  
तस्तार । तस्तरतुः । तस्तरे । गुणोर्तीति गुणः । स्तर्यात् ॥

ऋतश्च संयोगादेः । ७ । २ । ४३ ॥

ऋदन्तात्संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिङ्वा स्यात्तडि । स्तरिषीष्ट,  
स्तृषीष्ट । अस्तरिष्ट-अस्तृत ॥ धूञ् कम्पने ॥ ४ ॥ धुनोति ।  
धुनुते । दुधाव । स्वरतीति वेट् । दुधविथ-दुधोथ ॥

अधुकाः किति । ७ । २ । ११ ॥

श्रिञ् एकाच्च उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न स्यात् । परमपि स्वर-  
त्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे  
प्राप्ते प्रादिनियमानित्यमिट् । दुधुविथ । दुधुवे । अधावीत् । अधविष्ट-  
अधोष्ट । अधविष्यत्-अधोष्यत् । अधविष्यताम्-अधोष्यताम् ।  
अधविष्यत-अधोष्यत ॥

\* इति स्वादिप्रकरणम् ॥ ५ ॥ \*

चानुवर्तते । 'चजो कुघि'दिति 'अभ्यासाच्च' 'सँल्लिटोर्जेः' इत्येतेभ्यश्च 'कु'  
,अभ्यासात्' 'सँल्लिटोरि'त्यनुवर्त्याह--अभ्यासादिति ।

शर्पूर्वा इति । 'हलादि. शेष.'इत्यस्यापवादोऽयम् । 'इट्सनि वा'लिङ्  
सिचोरात्मनेपदेषु' इत्याभ्याम् 'इट्' 'लिङ्सिचोः' इति पदद्वयमनुवर्त्याह--  
'लिङ्सिचोरिति । वैकल्पिक इट् । 'नेङ्वशि कृति' 'एकाच्च उपदेश'--  
इत्येतस्या 'न' इति 'एकाच्च' इति च पदमनुवर्त्याह--एकाच्च इति ।

१ अभ्यास का जो शर्पूर्वक खय् उनका शेष हो अन्य हलों का लोप हो ।

२ ऋदन्तसंयोगादि धातु से परे लिङ् और सिच् को इट् का आगम हो  
विकल्प से तड् परें रहते ।

३ श्रिञ् एकाच् और उगन्त वातु से परे जो गित् और कित् प्रत्यय उनको  
इट् नहीं हो ।

## अथ तुदादिप्रकरणम् ।

तुद् व्यथने ॥ १ ॥

तुदादिभ्यः शः । ३ । १ । ७७ ॥

[ तुदादिभ्यः शः स्यात्कर्त्र्ये सार्वधातुके-परे ] । शपोऽपवादः । तुदति । तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतौत्सीत् । अतुत्त ॥ तुद् प्रेरणे ॥ २ ॥- तुदति । तुदते । तुनोद । नोत्ता । अस्ज पाके ॥ ३ ॥ ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन शः । शस्य जश्त्वेन जः । भृज्जति-भृज्जते ।

अस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ४७ ॥

अस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके । मित्वादन्त्यादयः परः । स्थानषष्ठीनिदशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः । बभर्ज । बभर्जतुः । बभर्जिथ-बभर्ष्ठ । बभ्रज्ज । बभ्रज्जतुः । बभ्रज्जिथ । स्कोरिति सलोपः । ब्रश्चेति षः । बभ्रष्ठ । बभर्जे-बभ्रज्जे । भर्था-भ्रष्टा । भर्क्ष्यति-भ्रक्ष्यति । \*किञ्छति रमागमं बाधित्वा सम्प्र-

तुदादिभ्य इति । 'कर्तरि शप्' इत्यनेन प्रातस्य शपोऽपवादः । तुदतीति । परमपि लघूपवगुणं बाधित्वा नित्यत्वात् शप्रत्यये कृते तस्य अपित्सार्वधातुकतया छित्त्वात् लघूपवगुणो नेति भावः । अतौत्सीदिति । झलो झलि इति सिचः सलोपः । 'आधधातुके' इत्यधिकृत्याह-आर्धेति ।

रमागमस्यावकाशः भर्था, भर्क्ष्यतीति । सम्प्रसारणस्यावकाशः

१ तुदादि गणपठित धातुओं से श प्रत्यय होय कर्त्र्यक सार्वधातुक परे रहते ।

२ अस्ज धातु का जो रेफ और उपधा उनके स्थान में रम् का आगम होय विकल्प करके आर्धधातुक परे रहते ।

३ किञ् छित् परे रहते रमागम को बाधकर पूर्वविप्रतिषेध करके सम्प्रसारण ही हो ।



सारणं पूर्वविप्रतिषेधेन । भृज्यात् । भृज्यास्ताम् । भृज्यासुः ।  
भर्क्षीष्ट-भर्क्षीष्ट । अभर्क्षीत्-अभर्क्षात् । अभर्ष्ट-अभ्रष्ट ॥ कृप  
विलेखने ॥ ४ ॥ कृपति । कृपते । चकर्ष । चकृषे ॥

अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् । ६ । १ । ५९ ॥

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याऽम्वा स्याज्झलादावकिति ।  
क्रधा-कर्धा । कृक्षीष्ट । \*स्पृशमृशकृषत्पदयोः चलेः सिज्वा  
वाच्यः । अक्राक्षीत् । अक्राक्षीत्-अकृक्षत् । अकृष्ट । अकृक्षाताम् ।  
अकृक्षत ॥ कसपक्षे-अकृक्षत । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त ॥

मिल सङ्गमे ॥ ५ ॥ मिलति-मिलते । मिमेल । मेलिता ।  
अमेलीत् ॥ मुञ्च्ल मोचने ॥ ६ ॥

शे मुचादीनाम् । ७ । १ । ५९ ॥

मुच्-लिप्-विद्-लुप्-सिच्-कृत्-खिद् पिशा नुम् स्यात् शे परे ।  
मुञ्चति । मुञ्चते । मोक्ता । मुच्यात् । मुक्षीष्ट । अमुचत् । अमुक्त ।  
अमुक्षाताम् ॥ लुप् ल छेदने ॥ ७ ॥ लुम्पति । लुम्पते । लोप्ता । अलुपत्-  
अलुप्त ॥ विद् लृ लामे ॥ ८ ॥ विन्दति । विन्दते । विवेद-विविदे ।  
व्याघ्रभूतिभते सेट् । वेदिता । भाष्यमतेऽनिट् । परिवेत्ता ॥

पिच क्षरणे ॥ ९ ॥ सिञ्चति । सिञ्चते ॥

इज्यात्, सुष्यात् इति । 'भृज्या' दित्यत्र तु परत्वाद्भागमे प्राप्ते पूर्वविप्रति-  
षेधेन सम्प्रसारणं भवतीति भावः । 'सृजिदृशोर्ज्ञेयम्' इत्यतः 'अम्' इत्य  
नुवर्तते । 'इदितो नुम्' इत्यतो नुमित्यनुवर्त्याह-नुमिति ।

१ उपदेश में अनुदात्त जो ऋदुपध धातु उसको अम् का आगम हो  
विकल्प से कित्भिन्न झलादि परे रहते ।

२ स्पृश् मृश कृश् लृप् और दृप् से परे च्लि को सिच् विकल्प करके हो ।

३ मुच् लिप् विद् लुप् सिच् कृत् खिद् और पिश् इनको नुम् हो शपरे रहते ।

लिपिसिचिह्नश्च । ३ । १ । ५३ ॥

एभ्यश्चलेरङ् स्यात् । असिचत् ॥

आत्मानेपदेध्वन्यंतरस्याभ् । ३ । १ । ५४ ॥

लिपिसिचिह्नः परस्य चलेरङ् वा [ स्यात् तडि ] । असिचत-  
असिक्त ॥ लिप् उपदेहे ॥ १० ॥ उपदेहो वृद्धिः । लिम्पति ।  
लिम्पते । लेप्ता । अलिपत् । अलिपत । अलिप्त ॥

\* इत्युभयपार्दनः \*

कृती छेदने ॥ ११ ॥ कृन्तति । चकर्त । कर्तिता । कर्ति-  
ष्यति-कर्त्स्यति । अकर्तीत् ॥ खिद परिधाते ॥ १२ ॥ खिन्दति ।  
चिखेद । खेत्ता ॥ पिश अवयवे ॥ १३ ॥ पिशति । पेशिता ॥  
ओत्रश्चू-छेदने ॥ १४ ॥ वृश्चति । व्रश्च । व्रश्चिथ-व्रश्च ।  
व्रश्चिता-व्रष्टा । व्रश्चिष्यति-व्रक्ष्यति । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत्-अव्रा-  
क्षीत् ॥ व्यच व्याजीकरणे ॥ १५ ॥ विचति । विव्याच ।  
विविचतुः । व्रचिता । व्यचिष्यति । विव्यात् । अव्यचीत्-अव्या-  
चीत् । 'व्यचेः कुटादित्वमनसी'ति तु नेह प्रवर्तते, अनसीति पर्यु-  
दासेन कृन्मात्रविषयत्वात् ॥ उच्छि उच्छे ॥ १६ ॥ उच्छति ।  
'उच्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इति यादवः ॥ अश्छ

'च्ले' सिच् 'अस्यातवक्तिख्यातिभ्यः' इत्याभ्याम् 'च्ले.' 'अङ्' इत्यनु-  
वर्त्योक्त-च्लेरिति । 'च्लेः सिच्' 'अस्यतिवक्ति' 'लिपिसिची'त्यतः 'च्लेः'  
'अङ्' 'लिपिसिचिह्नः'-इति । पदत्रयमनुवर्त्याह-लिपिसिचीति । इड-  
भावे वृद्धिः सलोपः षत्वं कत्वं च । व्याजीकरणे=छलकरणम् ।

१ लिप् सिच् और ह्वेन् इनसे परे च्ल को अङ् होय ।

२ लिप् सिच् और ह्वेन् इनसे, परे च्ल को अङ् हो विकल्प करके तड्  
परे रहते ।

अतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेपु ॥ १७ ॥ ऋच्छति । ऋच्छत्युतामिति  
गुणः । द्विहल्प्रहणस्याऽनेकहलुपलक्षणत्वान्नुट् । आनर्च्छ । आन-  
र्च्छतुः । ऋच्छता ॥ उज्ज उत्सर्गे ॥ १८ ॥ उज्जति ॥

लुभ विमोहने ॥ १९ ॥ लुभति ॥

तीषसहस्रसंख्यारिषः । ७ । २ । ४८ ॥

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात् । लोभिता-  
लोब्धा । लोभिष्यति ॥ तृप् तृम्फ तृप्तौ ॥ २०-२१ ॥ तृपति ।  
ततर्प । तर्पिता । अतर्पीत् । तृम्फति । \*शे तृम्फादीनां लुम्बा-  
च्यः । आदिशब्दः प्रकारे । तेन येऽत्र नकारानुपक्तास्ते तृम्फादयः ।  
ततृम्फ । तृप्प्यात् । मृड पृड सुखने ॥ २२-२३ ॥ मृडति ।  
पृडति ॥ शुने अता ॥ २४ ॥ शुनति ॥ इषु इच्छायां ॥ २५ ॥  
इच्छति । एपिता-एष्टा । एषिष्यति । इप्प्यात् । ऐपीत् ॥ कुट  
काटिल्ये ॥ २६ ॥ गाङ्गुटादीति डित्त्वम् । चुकुटिथ । चुकोट-  
चुकुट । कुटिता ॥ पुट संश्लेषेण ॥ २७ ॥ पुटति । पुटिता ॥  
स्फुट विकसनं ॥ २८ ॥ स्फुटति । स्फुटिता ।

स्फुर स्फुल सञ्चलने ॥ २९-३० ॥ स्फुरति । स्फुलति ॥

इन्द्रियप्रलयः-निश्चेष्टता, जडता वा । मूर्तिभावः-कठिन्यम् ।  
( जमना, कड़ा होना ) ।

उत्सर्गः=त्यागः । विमोहनम्=आकुलीकरणम् ।

‘आर्धधातुकस्य’ ‘स्वरतिसूति’ इत्याभ्यां ‘इट्’ इति, ‘वा’ इति चानु-  
वर्त्याह-तादेरार्धेति । तथा च तृम्फसदृशधातूनां लुमागमो भवति शे परे  
इति वार्तिकार्थः । नकारवत्त्वेन च सादृश्यम् । तदाह-तेनेति । अत्र नकार-  
स्यानुस्वारपरसवर्णाभ्यां मकार इति नकारानुपपत्तत्वमस्त्येवेति भावः ।

१ इच्छत्यादि से परे जो तादि आर्धधातुक उसको इट् हो विकल्प करके ।

२ तृम्फादिकों को लुम् हो श परे रहते ।

स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः । ८ । ३ । ७६ ॥

षत्वं वा स्यात् । निःस्फुरति-निःष्फुरति ॥ ७ स्तवने  
॥ ३१ ॥ परिणूतगुणोदयः । नुवति । नुनाव । नुविता ॥ डुमस्जो  
शुद्धौ ॥ ३२ ॥ मज्जति । ममज्ज । ममज्जिथ मस्जिनशोरिति नुम् ।  
ऋमस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः । संयोगादिलोपः । ममडक्थ-  
मङ्गा । मडक्ष्यति । अमाङ्क्षीत् । अमाङ्गाम् । अमाङ्क्षुः ॥  
रुजो भङ्गे ॥ ३३ ॥ रुजति । रोक्ता । रोक्ष्यति । अरौक्षीत् ॥ भुजो  
कौटिल्ये ॥ ३४ ॥ रुजिवत् ॥ विश प्रवेशने ॥ ३५ ॥ विशति ।  
मृश आसर्शने ॥ ३६ ॥ आमर्शनं स्पर्शः ॥ अनुदात्तस्य चर्दुपध-  
स्यान्यतरस्याम् ॥ अमाक्षीत्-अमाक्षीत्-अमृक्षत् ॥ षड्लृ विश-  
रणगत्यवसादनेषु ॥ ३७ ॥ सीदतीत्यादि । शड्लृ शातने ॥ ३८ ॥

शैदेशिशतः । १ । ३ । ६० ॥

शिङ्गाविनोऽस्मात्तडानौ स्तः । शीयते । शीयताम् । अशी-  
यत । शीयेत । शशाद । शत्ता । शत्स्यति । अशदत् । अशत्स्यत् ।  
कृ विक्षेपे ॥ ३९ ॥

ऋन्त इद्धानोः । ७ । १ । १०० ॥

ऋदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात् । किरति । चकार । चकारतुः ।

‘अपदान्तस्य मूर्धन्यः’ ‘सिवादीना वा’ इत्याभ्यां ‘मूर्धन्य’ इति ‘वा’  
इति चानुवर्त्याह-षत्वं चेति ।

‘अनुदात्तञितः’ इत्यतः ‘आत्मनेपदम्’ इत्यनुवर्तते । लृदित्वादङ् ।  
‘इत्वोत्वाभ्या गुणवृद्धी विप्रतिषेधेन’ इति वार्तिकमनुसृत्याह-चकारेति ।

१ निर् नि और वि उपसर्ग से परे जो स्फूर् स्फुल् उसको षत्व हो विकल्पे

२ मस्जधातु के अन्त्य से पूर्व नुम् हो ।

३ शिङ्गावी जो शड् धातु उससे आत्मनेपद हो ।

४ ऋदन्त जो धातु का अङ्ग उसको इत् हो ।

चकारः । करीता—करिता । कीर्यात् ॥

किरतौ लवने । ८ । १ । १४० ॥

उपात्किरतेः सुट् स्याच्छेदने । उपस्किरति । अडभ्यास-  
व्यवायेऽपि सुट् क्तात् पूर्व इति वक्तव्यम् । उपात्किरत् ।  
उपचस्कार ।

हिंसायां प्रतेश्च । ८ । १ । १४१ ॥

[उपात्प्रतेश्च] किरतेः सुट् स्याद्विषायात् । उपस्किरति । प्रति-  
स्किरति ॥ गृ निगरणे ॥ ४० ॥

अचि विभाषा । ८ । २ । २१ ॥

गिरते रेफस्य लो वा स्यादजादौ प्रत्यये । गिरति—गिलति ।  
जगार—जगाल । जगारिथ—जगालिथ । गरीता गरिता । गलीता—  
गलिता ॥ अच्छ झीप्सायाम् ॥ ४१ ॥ ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् ।  
पृच्छति । पप्रच्छ । पप्रच्छतुः । पप्रच्छुः । प्रथा । प्रक्षयति ।  
अप्राक्षीत् ॥ मृड् प्राणत्यागे ॥ ४२ ॥

म्रियते ङ्लिङोश्च । १ । ३ । ६१ ॥

‘सुट् क्तात्पूर्व’ ‘उपात्प्रतियत्ने’ लाम्भ्या ‘सुट्’ ‘उपात्’ इति पदद्वयमनुवर्त्याह—  
उपादिति वक्तव्यमिति । ‘सुट् क्तात्पूर्व’ इति सूत्रे ‘अडभ्यासव्यवायेऽपि’ इत्येवं  
वार्तिकं कर्तव्यमित्यर्थः । ‘सुट् क्तात्’ ‘उपात् प्रतियत्ने’ ‘किरतौ लवने’ इत्येते-  
भ्यः ‘सुट्’ ‘उपात्’ ‘किरतेः’ इति पदत्रयमनुवर्त्याह—उपादित्यादि । ‘कृपो  
रो लः’ ‘ग्रो यङि’ इत्येताभ्यां ‘ग्र’ इति ‘लः’ इति चानुवर्त्याह—गिरतेरिति ।

१ उप से परे जो कृ वातु उसको सुट् हो छेदन-अर्थ में ।

२ अट् और अभ्यास के व्यवधान में भी ककार से पूर्व सुट् हो ।

३ उप और प्रति से परे कृ वातु को सुट् हो हिंसा अर्थ में ।

४ गृ धातु के रेफ को लकार हो अजादि प्रत्यय परे रहते ।

५ मृड् धातु से ङ्लिङ् परे रहते और शिट् परे रहते ही आत्मनेपद हो ।  
अन्यत्र नहीं हो ।

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृडस्तङ् नान्यत्र । रिङ् ।  
 इयङ् । म्रियते । ममार । मर्ता । मरिष्यति । मृषीष्ट । अमृत ॥ पङ् ।  
 व्यायामे ॥ ४३ ॥ प्रायेणाऽयं व्याडपूर्वः । व्याप्रियते । व्यापेप्र-  
 व्यापप्राते । व्यापरिष्यते । व्यापृत । व्यापृषाताम् ॥ जुषी प्रीति-  
 सेवनयोः ॥ ४४ ॥ जुषते । जुषे ॥ ओविजी भयचलनयोः  
 ॥ ४५ ॥ प्रायेणायऽमुत्पूर्वः । उद्विजते ॥

विज् इङ् १ । २ । ६२ ॥

विजः पर इडादिप्रत्ययो ङिङ्त्स्यात् । उद्विजिता ॥

\* इति तुदादिप्रकरणम् ॥ ६ ॥ \*

## अथ रुधादिप्रकरणम् ।

रुधिर् आवरणे ॥ १ ॥

रुधादिभ्यः शम् ३ । १ । ७८ ॥

शपोऽपवादः । रुणद्धि । श्मसोरलोपः । रुन्धः । रुन्धन्ति ।  
 रुणत्सि । रुन्धः । रुन्ध । रुणद्धि । रुन्ध्वः । रुन्ध्मः । रुन्धे ।  
 रुन्धाते । रुन्धते । रुन्त्से । रुन्धाथे । रुन्ध्वे । रुन्धे-रुन्ध्वहे ।  
 रुन्ध्महे । रुरोध-रुधे । रोद्धासि-रोद्धासे । रोत्स्यति-रोत्स्यते ।  
 रुणङ्क-रुन्धात् । रुन्धाम् । रुन्धन्तु । रुन्धि । रुणधानि । रुणधाव ।

‘अनुदात्तङितः’ ‘शदेः शितः’ इत्येताभ्या ‘तङ्’ इति ‘शित’ इति  
 चानुवर्त्याह-शितश्चेति । ‘गाङ्कुटादिभ्यः’ इत्यतः ङित् इत्यनुवर्त्याह-ङिङ्-  
 दिति । अपवाद इति । ‘कर्तरि शप्’ इत्यनेन प्राप्तस्य शपोऽपवादोऽयमित्यर्थः ।

१. विज् से परे जो इडादि प्रत्यय सो ङिङ्त् हो ।

२. रुधादि गण पठित वातुओं से शम् प्रत्यय हो. कर्तर्यक सार्वधातुक परे रहते ।

रुणधाम । रुन्धाम् । रुन्धाताम् । रुन्धताम् । रुन्ध्व । रुणधे ।  
 रुणधावहे । रुणधामहे । अरुणत्-अरुणद् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् ।  
 अरुणः-अरुणत्-अरुणद् । अरुन्ध । अरुन्धाताम् । अरुन्धत ।  
 अरुन्धाः । रुन्ध्यात् रुन्धीत । रुन्ध्यात्-रुन्सीष्ट । अरुधत्-  
 अरौत्सीत् । अरुध् । अरुत्साताम् । अरुत्सत । अरोत्स्यत् अरोत्स्यत ।  
 भिदिर् विदारणे ॥२॥ छिदिर् द्वधीकरणे ॥३॥ युजिर्  
 योगे ॥४॥ रिचिर् विरेचने ॥५॥ रिणक्ति-रिङ्के । रिरेच ।  
 रेक्ता । रेक्ष्यति । अरिणक् । अरिचत्-अरैक्षीत् । अरिक् ॥ विचिर्  
 पृथग्भावे ॥ ६ ॥ विनक्ति-विङ्के । क्षुदिर् सम्पेयणे ॥ ७ ॥  
 क्षुणन्ति क्षुन्ते । क्षोत्ता । अक्षुदत्-अक्षौत्सीत्-अक्षुत् । उच्छृदिर्  
 दीप्तिदेवनयोः ॥ ८ ॥ छृणति-छृन्ते ॥ चच्छर्द् । सेऽसिचीति  
 वेट् । चच्छृदिपे-चच्छृत्से । छर्दिता । छर्दिष्यति-छर्त्स्यति । अच्छृ-  
 दत्-अच्छर्दीत् । अच्छर्दिष्ट । अच्छर्दिष्यत् ॥ उत्तृदिर् हिंसाना-  
 दयोः ॥९॥ तृणत्ति तृन्ते ॥ कृती वेष्टने ॥ १० ॥ कृणत्ति ।  
 तृह हिंसि हिंसायाम् ॥ ११-१२ ॥

तृणह् इम् ७ । ३ । ९२ ॥

तृहः श्रमि कृते इमागमः स्याद्धलादौ पिति । तृणेढि । तृण्डः ।  
 ततर्ह । तर्हिता । अतृणेट् ॥

श्रान्नलोपः । ६ । ४ । २३ ॥

‘नाभ्यस्तस्याचि’ ‘उतो वृद्धिर्लुकि’ इत्यतः ‘पिति’ ‘हलि’ चेत्यनुवर्त्याह-  
 हलादौ पितीति ।

१ तृह धातु को श्रम् कर लेने पर इम् का आगम हो हलादि पित् परे रहते ।

२ श्रम् से परे नकार का लोप हो ।

श्रमः परस्य नस्य लोपः स्यात् । हिनस्ति । जिहिंस । हिसिता ॥

तिप्यनसोः । ८ । २ । ७३ ॥

पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न त्वस्तेः । 'ससञ्जुषो' रुरित्यस्या-  
प्रवादः । अहिनत्-अहिनद् । अहिंस्ताम् । अहिंसन् ॥

सिपि धातो रूपा । ८ । २ । ७४ ॥

पदान्तस्य धातोः सस्य रुः स्याद्वा [ सिपि ] । पक्षे दः । अहिनः-  
अहिनत्-अहिनद् ॥ उन्दी क्लेदने ॥ १३ ॥ उनत्ति । उन्तः । उन्द-  
न्ति । उन्दाश्चकार । औनत् । औनद् । औन्ताम् । औन्दन् । औनः-  
औनत्-औनद् । औनदम् ॥ अञ्ज व्यक्तिस्रक्षणकान्तिगतिषु  
॥ १४ ॥ अनक्ति । अङ्कः । अञ्जन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ-  
आनङ्क्थ । अञ्जिता-अङ्का । अङ्गि । अनजानि । आनक् ॥

अञ्जेः सिचि । ७ । २ । ७५ ॥

अञ्जः सिचो नित्यमिदं स्यात् । आञ्जीत् । तञ्चू सङ्को-  
चने ॥ १५ ॥ तनक्ति । तञ्चिता-तङ्का ॥ ओविजी भयच-  
लनयोः ॥ १६ ॥ विनक्ति । विङ्कः । विज इडिति डित्वम् ।

‘पदस्य’ ‘ससञ्जुषो’ वसुसंषु’ इत्येभ्यः ‘पदस्ये’ति ‘स’ इति ‘द’ इति  
चानुवर्त्याह-पदान्तस्येति ॥

‘पदस्ये’त्यधिक्रियते । ‘ससञ्जुषो’ इत्यतः ‘स’ इत्यनुवर्तते । सूत्रे ‘वा’  
शब्दः-समुच्चये । तेन ‘वसुसंषु’ इत्यतोऽनुवृत्तस्य दस्य समुच्चय इत्याह-  
पदान्तस्येति । ‘इडत्यर्तिव्ययतीनाम्’ इत्यतः ‘इड’ इत्यनुवर्तते । तदाह  
नित्यमिडिति । डित्वाञ्च गुणः ।

१ पदान्त जो सकार उसको, दकार हो तिप् परे रहते । अम् धातुको छोड़कर ।  
२ धातु का जो पदान्त सकार उसको रु हो विकल्प करके सिप् परे रहते ।  
३ अञ्जि धातु से परे जो सिच् उसको नित्य इड् हो ।



विविजिथे । विजिता । अविनक् । अविजिीत् ॥ शिष्टल्ल विशेषणे  
 ॥ १७ ॥ शिनष्टि । शिष्टः । शिषन्ति । शिनक्षि । शिशेष ।  
 शिशेषिथ । शेषा । शेष्यति । हेर्धिः । शिण्ड्ढि । शिनपाणि ।  
 अशिनट् । शिष्यात् । शिष्यात् । अशिषत् ॥ एवं पिष्टल्ल  
 सञ्चूर्णने ॥ १८ ॥ भञ्जो आमर्दने ॥ १९ ॥ रनान्नलोपः  
 भनक्ति । बभञ्जिथ-वभङ्क्थ । भङ्गा । भङ्ग्धि । अभाङ्क्षीत् ॥  
 भुज पालनाभ्यवहारयोः ॥ २० ॥ भुनक्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति ।  
 अभुनक् ॥

भुजोऽनवने । १ । ३ । ६३ ॥

तडानौ स्तः । ओदनं भुङ्क्ते । अनवने किम् ? । महीं भुनक्ति ।  
 भिङ्न्धी दीप्तौ ॥ २१ ॥ इन्धे । इन्धाते । इन्धते । इन्त्से । इन्ध्वे ।  
 इन्धाञ्चक्रे । इन्धिता । इन्धाम् । इन्धाताम् । इनधै । ऐन्ध । ऐन्धा-  
 ताम् । ऐन्धाः ॥ विद् विचारणे ॥ २२ ॥ विन्ते । वेत्ता ॥

\* इति रुधादिप्रकरणम् ॥ ७ ॥ \*

## अथ तनादिप्रकरणम् ।

तनु विस्तारे ॥ १ ॥

तनादिकृञ्भ्य उः । ३ । १ । ७९ ॥

[तनादेः कृञ्श्च उप्रत्ययः स्यात्कर्त्रथे सार्वधातुके परे] । शपोऽपवादः ।

‘अनुदात्तङितः’ इत्यतः ‘आत्मनेपद’ मित्यनुवर्त्याह तडानाविति ।  
 तनादीति । तनादित्वादव सिद्धे पुनः कृञ्ग्रहणं ‘गणकार्यमदित्य’मिति परि-

१ पालन भिन्न ( भोजन ) अर्थ में भुज धातु स तड् और आन होता है ।

२ तनादिगणपठित जो धातु और कृञ् धातु इनसे उप्रत्यय हो कर्त्रथक सार्वधातुक परे रहते ।

तनोति-तनुते । ततान-तेने । तनितासि-तनितासे । तनिष्यति-  
तनिष्यते । तनोतु-तनुताम् । अतनोत्-अतनुत । तनुयात्-तन्वीत ।  
तन्यात्-तनिषीष्ट । अतानीत्-अतनीत् ॥

**तनादिभ्यस्तथासोः । २। ४। ७९ ॥**

तनादेः सिचो वा लृक् स्यात्तथासोः ॥ अतत-अतनिष्ट ।  
अतथाः-अतनिष्ठाः । अतनिष्यत्-अतनिष्यत ॥

षणु दाने ॥ २ ॥ सनोति-सनुते ।

**ये विभाषा । ६। ४। ४३ ॥**

जनसनखनामात्वं वा स्याद्वादौ किति । सायात् सान्यात् ।

**जनसनखनां सञ्जलोः ६। ४। ४२ ॥**

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सनि श्लोदौ किति । असात-  
असनिष्ट । असाथाः-असनिष्ठाः ॥ क्षणु हिंसायाम् ॥ ३ ॥  
क्षणोति-क्षणुते । क्षयन्तेति न वृद्धिः । अक्षणीत्-अक्षत-अक्ष-  
णिष्ट । अक्षथाः-अक्षणिष्ठाः ॥ क्षिणु च ॥ ४ ॥ उप्रत्यये लघू-  
पधस्य गुणो वा । क्षेणोति-क्षिणोति । क्षेणिता । अक्षेणीत्-

भाषाज्ञापनार्थम् । तेन न 'विश्वसेदविश्वस्त'मित्यादिसिद्धमिति प्राञ्चः ।

'गतिस्थाधुपाभूय' इत्यतः 'ण्यक्षत्रियार्षे'त्यतश्च 'सिच'इति 'लृक्'इति  
चानुवर्तते । तदाह-सिच इति । 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' 'जनसनखनां  
सञ्जलो' इत्येनाभ्यां 'आत्' इति 'जनसनखनाम्' इति चानुवर्तते । तदाह-  
जेनेति । 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' 'अनुदात्तोपदेश' इत्याभ्यां 'आत्' इति  
'विञ्चति' इति चानुवर्त्याह-आकारोऽन्तेति । गुणोवेति । 'संज्ञापूर्वको

१ तनादि से परे सिच् का लृक् हो विकल्प से त और यास् परे रहते ।

२ जन सन और खन धातु को आत्व हो यादि कित् डित् परे रहते ।

३ जन सन और खन धातु को आकारान्तादेश हो सन् परे रहते और  
शलादि कित् डित् परे रहते ।

अक्षित-अक्षेणिष्ठ ॥ तृणु अदने ॥ ६ ॥ तृणोति-तर्णोति ।  
तृणुते - तर्णुते ॥ डुकृञ् करणे ॥ करोति ॥

अत उत्सार्वधातुके । ६ । ४ । ११० । उप्रत्ययान्तस्य कृञो-  
ऽकारस्य उः स्यात् । कुरुतः ॥

न अकुर्छुराम् ८ । २ । ७९ ॥

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात् । कुर्वन्ति ॥

नित्यं करोतेः ॥ ६ । ४ । १०८ ॥

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपः स्यान्म्वोः परयोः । कुर्वः ।

कुर्मः । कुरुते । चकार-चक्रे । कर्तासि । कर्तासे । करिष्यति-  
करिष्यते । करोतु । कुरुताम् । अकरोत् । अकुरुत ॥

ये च ६ । ४ । १०९ ॥

कृञ उलोपः स्याद्यादौ प्रत्यये परे । कुर्यात्-कुर्वीत । क्रियात्-  
कृषीष्ट । अकार्षीत्-अकृत । अकरिष्यत्-अकरिष्यत ॥

सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ६ । १ । १३७ ॥

समवाये च ६ । १ । १३८ ॥

विधिरनित्यः' इति वचनात्कचिद्धूपधगुणः, कचिन्नेत्याशयः ।

'वोरूपधाया दीर्घ इक' इत्यतः 'उपधाया' इत्यनुवर्त्याह-उपधाया  
इति । 'उतश्च प्रत्ययात्' 'लोपश्चास्यान्यरस्याम्' इत्येताभ्या 'प्रत्ययात्'  
'लोपः' 'म्वो' इति चानुवर्त्याह-प्रत्ययोकारस्येति ।

'नित्यं करोतेः' इत्यतः 'करोतेः' इत्यनुवर्त्याह-कृञ इति ।

१ भसंज्ञक जो कुर और छुर उनकी उपधा को दीर्घ नहीं हो ।

२ करोति का जो प्रत्ययभूत उकार उसका नित्य लोप हो वकार भकार  
परे रहते ।

३ कृञ् के उकार का लोप हो यादिप्रत्यय परे रहते ।

४ सम् परि पूर्वक कृञ् धातु को सुट् हो भूषण और संघात अर्थ में ।

सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद्भूषणेऽसङ्घाते चार्थे । संस्क-  
रोति । अलङ्करोतीत्यर्थः । संस्कुर्वन्ति । सङ्घीभवंतीत्यर्थः । सम्पूर्वस्य  
कचिद्भूषणेऽपि सुट्, 'संस्कृतं भक्षा' इति ज्ञापनात् ।

उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ङ । १ । १३९ ॥

उपात्कृञः सुट् स्यादेव्येषु, चास्रागुक्तयोरर्थयोः । प्रतियत्नो  
गुणाऽऽधानम् । विकृतमेवं वैकृतं-विकारः । वाक्याध्याहारः-  
आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम् । उपस्कृता कन्या । उपस्कृता ब्राह्मणाः ।  
एधोदकस्योपस्कुरुते । उपस्कृतं मुङ्क्ते । उपस्कृतं ब्रूते ॥ वनु याचने  
॥ ७ ॥ वनुते । वचने ॥ मनु अवबोधने ॥ ८ ॥ मनुते । मेने ।  
मनिता । मनिष्यते । मनुताम् । अमनुत । मन्वीत । मनिषीष्ट ।  
अमत । अमनिष्ट । अमनिष्यत । इति तनादयः ॥ ८ ॥

## अथ क्रयादिगोकरणम् ।

डुक्तीञ् द्रव्यविनिमये ॥ १ ॥

क्रयादिभ्यः श्ना ३ । १ । ८१ ॥

[ एभ्यः श्ना स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे ] । शपोऽपवादः ।

'सुट् कात्पूर्व' इत्यतः 'सुट्' इत्यनुवर्त्याह-सुट् स्यादिति ।

'सुट् कात्पूर्व' 'सम्परिम्या करोतौ भूषणे' 'समवाये च' इत्येतेभ्योऽ-  
नुवृत्तेराह-कृञ् इत्यादि ।

१ उप से परे जो कृञ् धातु उसको सुट् हो प्रतियत्न वैकृत और वाक्या-  
ध्याहार इन अर्थों में । चात्पूर्वकथित अर्थों में भी सुट् होय ।

२ क्रयादि धातुओं से श्ना प्रत्यय हो कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते ।

क्रीणाति । ईहल्यधोः । क्रीणीतः । इनाभ्यस्तयोरातः । क्री-  
णन्ति । क्रीणासि । क्रीणीथः । क्रीणीथ । क्रीणामि । क्रीणीवः ।  
क्रीणीमः । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणेत् । क्रीणीषे । क्रीणाथे । क्री-  
णीध्वे । क्रीणे । क्रीणीवहे । क्रीणीमहे । चिक्राय । चिक्रियतुः । चि-  
क्रियुः । चिक्रयिथ-चिक्रेथ । चिक्रिये । क्रेता । क्रेष्यति-क्रेष्यते ।  
क्रीणातु-क्रीणीतात् । क्रीणीताम् । अक्रीणात्-अक्रीणीत । क्रीणी-  
यात्-क्रीणीत । क्रीयात्-क्रेषीष्ट । अक्रेषीत्-अक्रेष्ट । अक्रेष्यत्-  
अक्रेष्यत ॥ प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च ॥ २ ॥ प्रीणाति-प्रीणीते ।  
श्रीञ् पाके ॥ ३ ॥ श्रीणाति-श्रीणीते ॥ मीञ् हिंसायाम् ॥ ४ ॥  
हिंसीना ८ । ४ । १५ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य णः स्यात् । प्रमीणाति-  
प्रमीणीते । 'मीनाती'त्यात्वम् । ममौ । मिम्यतुः । ममिथ-ममाथ ।  
मिम्ये । माता । मास्यति । मीयात्-मासीष्ट । अमासीत् । अमा-  
सिष्टाम् । अमास्त ॥ पिञ् बन्धने ॥ ५ ॥ सिनाति । सिनीते ।  
सिषाय । सिष्ये । सेता ॥ स्कुञ् आप्लवने ॥ ६ ॥

अक्रेषीदिति । अक्रेषीत्, अक्रेष्टाम्, अक्रेषु । अक्रेषीः, अक्रेष्टम्,  
अक्रेष्ट । अक्रेषम्, अक्रेष्व, अक्रेष्म । तर्पण=वृत्तिः, कान्तिः=कामना । १५  
प्रीणाति, तर्पयतीत्यर्थः । धनं प्रीणाति । कामयते इत्यर्थः । पाकः=श्रपणम् ।  
( सिद्धान्त ) । निमितात्=रेफप्रकाररूपात् । एतयोः='हिनु' इत्यस्य  
'मीना' इत्यस्य । मिम्यतुरित्यादावतुसः कित्वादेज्जिनित्तत्वाभावेन नात्वम्,  
किन्तु एरनेकाच इति यण् । ममिथेति । भारद्वाजमते इट्, अन्येषान्तु  
अजन्ततया नेट् । इट्पक्षे-आतो लोप इत्यालोपः । ममिथ-ममाथेति ।

वन्धन इति । वत्सं सिनाति । बन्धातीत्यर्थः । आप्लवणम्-उत्प्लवण-

१ उपसर्ग में स्थित जो निमित्त [ रेफ प्रकार ] उससे परे जो हिनु और  
मीना-इनका नकार उसको णकार हो ।

स्तनमुस्तु-मुस्कन्मुस्कु-मुस्कुभ्यः शनुञ्च ३।१।८२॥

[ एभ्यः श्नुः स्यात् ] । चात् श्ना । स्कुनोति—स्कुनाति ।

स्कुनुते-स्कुनीते । चुरकाव । चुस्कुवे । स्कोता । अस्कौषीत्-अस्कोष्ट ॥

स्तम्भवादयश्चत्वारः सौत्राः । सर्वे रोधानार्थाः परस्मैपदिनः ॥

हलः श्रः शानज्झौ ३ । १ । ८३ ॥

हलः परस्य श्रेः शानजादेशः स्याद्धौ परे । स्तमान् ॥

जुस्तन्मुप्रचु+उचुमचु+हचु+अश्विभ्यश्च ३ । १५६८॥

एभ्यश्चल्लरेड् वा स्यात् ॥

सूत-भेः ८ । ३ । ६७ ॥

स्तम्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात् । व्यष्टमत् । अस्तम्भीत् ॥

युञ् बन्धने ॥७॥ युनाति-युनीते । योता ॥ कूञ् शब्दे ॥८॥

वनूनाति । वनूनीति । क्वविता ॥ द्रुञ् हिंसायाम् ॥१॥ द्रुणाति-

दृणीते ॥ ह-विदरणे ॥ १० ॥ दृणाति-दृणीते ॥

पूज् पवने ॥ ११ ॥

मुद्गरं च । ( कूटनां, ऊपरं उठानां ) । चत्वारः=स्तन्भु स्तुन्भु-स्कन्भु-  
स्तुन्भु-धातवः । सौत्राः=सूत्रपठिताः, न धातुपाठपठिताः ।

रोधनार्थाः=अवरोधनार्थाः । ('स्तम्भित् करना' 'रोकना') ।

हलः-पञ्चम्यन्तं, श्रः-षष्ठ्यन्तं, शानच्-प्रथमान्तं, हौ-सप्तम्यन्तम् ।  
 'च्लेः सि'जित्यतः, 'अस्यतिवच्'त्यतः, 'इरितो' वे'त्यतश्च यथायथमनुवर्त्य  
 व्याचष्टे-च्लेरिति ।

१ स्तन्मु-स्तुन्मु-स्कन्मु-स्कुन्मु-और स्कुब् इनमे परे र्तु प्रत्यय होय  
चकार से शा प्रत्यय भी हो ।

२. हल् से परे जो श्वा उसको शानच् आदेश हो हि परे रहते ।

३ स्तन्म सौत्र धातु उसके सकार को षकारादेश हो ।

प्यादीनां ह्रस्वः ७ । ३ । ८० ॥

पूञ्-लूञ्-स्तूञ्-कूञ्-वूञ्-धूञ्-शू-पू-वू-भू-मू-दू-जू-झू-धू-नू-कू-  
ऋ-गू-ज्या-री-ली-ल्ली-लीनां चतुर्विंशतेः, शिति ह्रस्वः स्यात् ।  
पुनाति-पुनीते । पविता ॥ लूञ् छेदने ॥ १२ ॥ लुनाति-लुनीते ॥  
स्तूञ् आच्छादने ॥ १३ ॥ स्तृणाति । शर्पूर्वाः खयः । तस्तार ।  
तस्तरुः । तस्तरुः । तस्तरे । स्तरीता-स्तरिता । स्तृणीयात् ।  
स्तृणीत । स्तीर्यात् ॥

लिङ्सिचोरस्मिन्नेपदेषु ७ । २ । ४२ ॥

वृड्-वृञ् भ्यामुदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिङ्वा स्यात्तडि ॥

न लिङि ७ । २ । ३९ ॥

वृत् इटो लिङि न दीर्घः । स्तरिपीठ । उश्चेति कित्त्वम् ।  
स्तीर्षीष्ट । सिचि च परस्मैपदेषु । अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् ।  
अस्तारिष्ठुः । अस्तरीष्ट । अस्तरिष्ट-अरतीष्ट ॥ कूञ् हिंसायाम्  
॥ १४ ॥ कृणाति कृणीते । चकार चकरे ॥ वृञ् चरणे ॥ १५ ॥  
वृणाति वृणीते । ववार - ववरे । वरिता वरीता । उदोष्ठ्ये-  
त्युत्वम् । वूर्यात् । वरिषीष्ट-वूर्षीष्ट अवारीत् । अवारिष्टाम् ।  
अवरिष्ट-अवरीष्ट-अवूर्ष्ट ॥ धूञ् कम्पने ॥ १६ ॥ धुनाति-

छेदने=कर्तनम् । (काटजा) । ऋच्छत्युतामिति गुणः । हलि चेति दीर्घः ।  
सिचि चेति । परस्मैपदपरे सिचि वृत् इटो दीर्घो नेत्यर्थकेन दीर्घनिषेध

१ पूञ्-लूञ्-स्तूञ्-कूञ्-वूञ्-धूञ्-शू-पू-वू-भू-मू-दू-जू-झू-धू-नू-कू-ऋ-गू-ज्या-  
री-ली-ल्ली इन चौबीस धातुओं को ह्रस्व हो शित् परे रहते ।

२ वृड्-वृञ् और ऋदन्त से परे जो लिङ्-सिच्, उसको इट् हो विवरूप से  
तड् परे रहते ।

३ वृड्-वृञ् और ऋदन्त धातु के इट् को दीर्घ नहीं हो लिङ् परे रहते ।

धुनीते । धविता- धोता । अधावीत् । अधविष्ट- अधोष्ट । ग्रह  
उपादाने ॥ १७ ॥ गृह्णाति । गृह्णीते । जग्राह । जगृहे ॥

ग्रहीलिटि दीर्घः ७ । २ । ३७ ॥

एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि । ग्रहीता । गृह्णातु ॥  
हलः श्नः शानज्झाविति श्नः शानजादेशः । गृहाण । गृह्णात् ।  
ग्रहीषीष्ट ॥ ह्यन्तेति न वृद्धिः । अग्रहीत् । अग्रहीषाम् । अग्र-  
हीष्ट । अग्रहीषाताम् ॥ कुष निष्कर्षे ॥ १८ ॥ कुष्णाति ।  
कोषिता ॥ अश भोजने ॥ १९ ॥ अश्नाति । आश । अशिता ।  
अशिष्यति । अश्नातु । अशान ॥ मुष स्तेये ॥ २० ॥ मोषिता ।  
मुषाण । श । अवबोधने ॥ २१ ॥ जज्ञौ । वृङ् सम्भक्तौ ॥ २२ ॥  
वृणीते । ववृषे । विवृद्धे । वरिता-वरीता । अवरीष्ट-अवरिष्ट-अवृती ॥

इति क्रयादयः ॥ ९ ॥

इत्यर्थः । धोतेति । 'स्वरती'ति वेट् । अधावीदिति । 'स्तुसुधूम्भ्य' इति  
नित्यमिट् । अधोष्टेति । 'स्वरती'ति वेट् ।

उपादान=ग्रहणम् ।

निष्कर्षो-निष्कोपणम् । ( निकालना, कुरेदना, खुरचना ) । स्तेयः=  
चौर्यम् । सम्भक्तिः=स्वीकारः । 'वृतो वेति वा दीर्घः । अवृतेत्यत्र 'ह्रस्वा-  
दङा'दिति सिजलोपः । 'उश्चे'ति कित्त्वम् ।

इति क्रयादयः ।

१ एकाच् ग्रह धातु से विहित जो इट् उसको दीर्घ हो । लिट् पर  
रहते नहीं हो ।



## अथ चुरादयः ।

चुर स्तेये ॥ १ ॥

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्म-

वर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३ । १ । २५ ॥

एभ्यो णिच् स्यात् । चूर्णान्तेभ्यः 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे । 'पुगन्तो' ति गुणः । 'सनाद्यन्ता' इति धातुत्वम् । तिप्शवादि । गुणाऽयादेशौ । चोरयति ॥

णिच्श्च १ । ३ । ७४ ॥

णिजन्तादात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले । चोरयते । चोरयाभास । चोरयिता । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । णिश्रीति चङ् । णौ चङीति ह्रस्वः । चङीति द्वित्वम् । हलादिः शेषः । दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीघः । अचूचुरत् । अचूचुरत ॥

कथ वाक्यप्रवन्धे ॥ २ ॥ अल्लोपः ॥

चूर्णान्तेभ्यः=सत्यापेत्यारभ्य चूर्णशब्दपर्यन्तेभ्यः । सिद्धे=णिचि सिद्धे । तेषां=सत्यापादिचूर्णान्तानाम् । इह=सूत्रे । प्रपञ्चार्थं=शिष्यबुद्धि-वैशद्यार्थम् । स्वार्थे--स्वार्थे एव णिच्, 'अनिदिष्टायाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ती' त्युक्तेः । गुणः=णिजिन्मित्तक उकारस्य गुणः ।

गुणायादेशौ शक्तिमित्तको णर्गुणः, ततोऽयादेशश्च ।

वाक्यप्रवन्धः=कथनम् । अकारान्तोऽय धातुः । ततश्चार्धधातुकविवक्षायामतो लोप इत्यल्लोपः, तदाह-अल्लोप इति ।

१ सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-और चुरादि गणपठित जो धातु उनसे णिच् ही स्वार्थ में ।

२ णिजन्त धातु से आत्मनेपद हो यदि कर्तृगामी क्रियाफल हो तो ।

अचः परेरान्पूर्वविधौ । १ । १ । ५७ ॥

अल्यध्यर्थमिदम् । परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्यात्स्थानिभू-  
तादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः ।  
कथयति । अग्लोपित्वादीर्घसन्वद्भावौ न । अचकथत् ।

गण संख्याने ॥ ३ ॥ गणयति ॥

ई च गणः ७ । ४ । ९७ ॥

गणयतेरभ्यासस्य ईत्याच्चङ्परि णौ । चादत् । अजीगणत् ।  
अजगणत् ।

इति चुरादयः ॥ १० ॥

**अथ रायन्ताप्रक्रिया ।**

स्वतन्त्रः कर्ता १ । ४ । ५४ ॥

क्रियाया स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ॥

इति=इति सूत्रेण, स्थानिवत्त्वात्=परनिमित्ताजादेशस्य=णिज्जिनिमित्त-  
कालोपस्य स्थानिवत्त्वात्, उपधावृत्तिः='अत् उपधाया' इति णिज्जिनिमित्तकः  
ककारोत्तराकारस्य आकारो वृद्धिः, न=न भवति । अकारस्योपधात्वाभावात्,  
अकारेण व्यवधानादिति भावः । संख्यानं=गणनम् । ( गिनना ) ।

इति चुरादयः ।

१ परनिमित्त जो अजादेश वह स्थानिवत् हो स्थानिभूत अच् से पूर्वत्वेन  
जो दृष्ट है उसको विधि करना हो तो ।

२ गणघातु के अभ्यास को ईकार हो । चकार से अकार भी हो चङ्परक णि  
परे रहते ।

३ अपनी क्रिया में स्वतन्त्रता से विवक्षित जो अर्थ वह कर्तृसंज्ञक हो ।

तत्प्रयोजको हेतुश्च १ । ४ । ५५ ॥

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात् ॥

हेतुमति च ३ । १ । २६ ॥

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् । भवन्तं प्रेरयति भावयति ।

ओः पुयण्ज्यपरे ७ । ४ । ८० ॥

सनि परे यदङ्गं तदवयवाम्यासोकारस्य इत्स्यात् पवर्णयण्-

तदिति । तच्छब्देन 'स्वतन्त्रः कर्ते'ति सूत्रोपात्तः कर्ता परामृश्यते । तस्य=कर्तुः, प्रयोजकः=प्रेरकः, तद्व्यापारानुकूलव्यापारवानिति यावत् । चकार एकसंज्ञाऽधिकारवाधनार्थस्तदाह-कर्तृसंज्ञश्चेति । हेतुः कर्तुः प्रयोजकः, -स्वनिष्ठाधारतानिहृपिताऽऽधेयतासम्बन्धेन यत्र तिष्ठति स हेतुमान्=प्रयोजकव्यापारः, तस्मिन् वाच्ये णिजित्यर्थः । तदाह-प्रयोजकेति । प्रेषणा=आज्ञा । भवन्तमिति । देवदत्तो भवति । भवतीति-भवन् । भवन्तं देवदत्तं यज्ञदत्तादि प्रयोजकः-प्रेरयति, -इत्यर्थवाग्विवक्षायां-देवदत्तं यज्ञदत्तो भावयति । भूधातोरकर्मकतया गतिबुद्धीति सूत्रेणाऽण्यन्तावस्थाकर्तुः कर्मत्वम् । एवं-देवदत्तो भवति, भवतीति भवन्, भवन्तं देवदत्तं चैत्रमैत्रौ प्रेरयत-इत्यर्थवाग्विवक्षायां-देवदत्तं चैत्रमैत्रौ भावयतः । एवं-देवदत्तो भवति, भवतीति भवन्, भवन्तं देवदत्तं चैत्र-मैत्र-पुष्यमित्राः प्रेरयन्ति-इत्यर्थवाग्विवक्षायां देवदत्तं चैत्र-मैत्र-पुष्यमित्रा भावयन्ति । देवदत्तो भवति, भवतीति भवन्, भवन्तं देवदत्तं त्वं प्रेरयसि-इत्यर्थवाग्विवक्षायां-देवदत्तं त्वं भावयसि । एवमप्रेऽपि भवन्तं देवदत्तमहं प्रेरयामीति-अहं देवदत्तं भावयामीत्यादिरीत्या बोध्यम् ।

ओः षष्ठ्यन्तं, पुयण्जि-सप्तम्यन्तम्, अपरे-सप्तम्यन्तम् । अत्र पुश्च

१ कर्ता का जो प्रयोजक वह कर्तृसंज्ञक और हेतुसंज्ञक हो ।

२ प्रयोजक के व्यापार प्रेषणा-अन्वेषणा अध्येषणा आदि वाच्य हों तो धातु से णिच् प्रत्यय हो ।

३ सन् परे रहते जो अङ्ग तदवयव जो अभ्यास का उच्चार उसको श्कारादेश हो अवर्णपरक पवर्ण यण् जकार पर रहते ।

जकारेण्वर्णपरेषु परतः । अवीभवत् ॥ ४॥ गतिनिवृत्तौ ॥

अतिहीन्लीरीवन्धूयीक्ष्माख्यातां पुङ् लौ ७ । ३ । ३६ ॥

स्थापयति ॥

तिष्ठतेरित् ७ । ४ । ५ ॥

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे लौ । अतिष्ठिपत् ।

धट चेष्टायाम् ॥

मितां ह्रस्वः ६ । ४ । ९२ ॥

धटादीनां ज्ञपादीनां चोपधाया ह्रस्वः स्याण्णौ । धटयति ॥

ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च ॥ ज्ञपयति । अजिज्ञपत् ॥

इति ण्यन्तप्रक्रिया ॥ १ ॥

**अथ सन्नन्तप्रक्रिया ।**

धातोः कर्मणः सम्भानकर्तृकादिच्छायां वा ३ । १ । ७ ॥

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन्प्रत्ययो वा स्यादिच्छा-

यण् च ज् च एषा समाहारः-पुयण्ज्, तस्मिन्-पुयणिज् । अः परो यस्मा-  
दसौ-अपरः, तस्मिन्-अपरे । 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य', 'मृजामित्', 'सन्त्यत्.'  
इत्यतोऽनुवर्त्याह-सतीति । 'अज्ञस्ये'त्यधिकृतम् ।

\* इति ण्यन्तप्रक्रिया \*

इषिकर्मण इति । इच्छायामित्यस्य श्रुततया तदपेक्षमेवेह कर्तृत्वं कर्म-  
त्वञ्च ग्राह्यमित्याशयः । 'गुप्ति'जित्यतः सनित्यनुवर्तते, तदाह-सनिति ।

१ अति-हीन्लीरीवन्धूयी-क्ष्मायी इन धातुओं को पुक् का आगम हो णि  
परे रहते ।

२ स्या धातु वी उपधा को इकारादेश को चङ्परक णि परे रहते ।

३ धटादि-और ज्ञपादि धातुओं की उपधा को ह्रस्व हो णि परे रहते ।

४ इच्छा क्रिया का कर्म हो इच्छा क्रिया का जो कर्ता वही कर्ता है जिसका  
पेसा जो धातु उससे सन् प्रत्यय हो विकल्प करके ।

याम् । पठ वेयत्तायां वाचि ॥

सन्त्यङोः ६ । १ । ६ ॥

सप्तम्यन्तस्य यङन्तस्य च धातोरनभ्यासस्य प्रथमस्यैकाचो द्वे  
स्तोऽजादेश्च द्वितीयस्य । सन्त्यतः । पठितुमिच्छति पिपठिषति ।  
कर्मणः किम् ? । गमनेनेच्छति । समानकर्तृकात् किम् ? शिष्याः  
पठन्तितीच्छति गुरुः । वा ग्रहणाद्वाक्यमपि ॥ लुङ्सनोर्धरल्ल ॥

स्यः स्यार्धधातुके ७ । ४ । ४९ ॥

सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके । अतुमिच्छति जिघत्सति ।

‘एकाच’ इति नेट् ॥

अजन्तगमां सनि ६ । ४ । १६ ॥

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमश्च दीर्घो झलादौ सनि ॥

इङ्को झल् १ । २ । ९ ॥

इगन्ताञ्जलादिः सन् कित् स्यात् । ऋत इङ्गातोः । कर्तु-

पिपठिषतीति । एकनिष्ठा पाठविषयिणी वर्तमानकालिका इच्छेत्यर्थः ।  
गमनेनेति । गमनं हि करणं न कर्मत्यागयः । शिष्या इति । इषिकर्मा-  
ऽत्र शिष्यपठनम्, इषिकर्ता च गुरुरिति इषिणा समानकर्तृकत्वविरहः, पठनस्य  
हि कर्तारः शिष्याः, इच्छाकर्ता च गुरुरिति वैषम्यादित्याशयः ।

सः-षष्ठ्यन्तं, सि-सप्तम्यन्तम्, आर्धधातुके-सप्तम्यन्तम् । आर्धधातुके  
इत्यधिक्रियते । ‘यस्मिन्विवि’रिति तदादिविधिस्तदाह-सादाविति ।

१ सप्तम्य और यङन्त धातु का जो प्रथम एकाच् उसको द्वित्व हो और  
अजादि वातु के द्वितीय एकाच् को द्वित्व हो ।

२ सकार को तकारादेश हो सादि आर्धधातुक परे रहते ।

३ अजन्त जो धातु और हन् धातु और अजादेश गम् धातु उसको दीर्घ हो  
झलादि सन् परे रहते ।

४ इगन्त से परे जो झलादि सन् वह कित् हो ।

मिच्छति चिकीर्षति ।

सनि ग्रहगुहोश्च ७ । २ । १२ ॥

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न स्यात् । बुभूषति ॥

इति सन्नन्तप्रक्रिया ॥ २ ॥

**अथ यङन्तप्रक्रिया**

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२॥

पौने;पुन्ये भृशार्थे च धोत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात् ॥

गुणो यङ्लुकोः ७ । ४ । ८२ ॥

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च परतः । छिदन्तत्वादात्मनेपदम् । पुनः पुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते । बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट ॥

नित्यं कौटिल्ये गतौ ३ । १ । २३ ॥

गत्यर्थकौटिल्य एव यङ् स्यान्न तु क्रियासमभिहारे ॥

भवितुमिच्छति-बुभूषति । इति सन्नन्तप्रक्रिया ।

बोभूयते इति । भूधातोः सकाशात्क्रियासमभिहारे 'धातोरेकाच'इति यङि 'सन्धलो'रिते द्वित्वेऽभ्याससज्ञायामभ्यासकार्ये 'गुणो यङ्लुको'रिति गुणे 'सनाद्यन्ता' इति बोभूयेत्यस्य धातुत्वे लटि छित्वादादात्मनेपदे 'टित आत्मनेपदाना'

१ ग्रह-गुह और उगन्त धातु से परे जो सन् उसको इट् नहीं हो ।

२ पौन पुन्य और भृशार्थ धोत्य हो तो एकाच् हलादि धातु से यङ् हो ।

३ अभ्यास को गुण हो यङ् पर रहते और यङ्लुक् के विषय में ।

४ गत्यर्थक धातुओं से कौटिल्य अर्थ में ही यङ् हो । - क्रियासमभिहार अर्थ में नहीं हो ।

दीर्घोऽकितः ७ । ४ । ८३ ॥

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घस्याद्यङ्ङ्लुकोः । कुटिलं व्रजति  
वाव्रज्यते ॥

यस्य हलः ६ । ४ । ४९ ॥

यस्येति सङ्घातग्रहणम् । हलः परस्य 'य' शब्दस्य लोपः स्यादार्ध-  
धातुके । आदेः परस्य । अतो लोपः । वाव्रजाश्चक्रे । वाव्रजिता ॥

रीगृदुपधस्य च ७ । ४ । ९० ॥

ऋदुपधस्य घातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ्ङ्लुकोः । वरीवृत्यते ।  
वरीवृताश्चक्रे । वरीवर्तिता ॥

धुञ्जादिषु च ८ । ४ । ३९ ॥

णत्वं न । नरीनृत्यते । जरीगृह्यते ॥

इति यङन्तप्रक्रिया ॥ ३ ॥

मित्येत्वे 'बोभूयते' इत्यस्य सिद्धिः । यशब्दस्य=अकारघाटितस्य 'य-अ' इति  
समुदायस्य । 'आदेः परस्ये'ति परिभाषाबलाच्चकारसमुदायघटकस्यादिभूतस्य  
यकारस्य केवलस्य लोपः । अकारस्य तु 'अतो लोपः' इत्यनेन लोप इत्याशयः ।

इति यङन्तप्रक्रिया ।

१ कित् मित्र जो अभ्यास उसको दीर्घ हो यङ् परे रहते और यङ्ङ्लुक् के  
विषय में ।

२ हल् से परे य शब्द का लोप हो आर्धधातुक परे रहते ।

३ ऋतु है उपधा में जिसके ऐसों जो धातु उसके अभ्यास को रीक् का  
आगम हों यङ् परे रहते और यङ्ङ्लुक् के विषय में ।

४ धुञ्जादिगणपठितों धातु औ के नकार को णत्व नहीं हो ।

## अथ यङ्लुक्प्रक्रिया ।

यङोऽचि च २ । ४ । ७४ ॥

यङोऽचि प्रत्यये लृक् स्यात्, चकारात्तं विनाऽपि क्वचित् ।  
अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति । ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्त-  
त्वाद्वित्वम् । अभ्यासकार्यम् । धातुत्वाल्लडादयः । 'शेषात्कर्तरी'ति  
परस्मैपदम् । 'चर्करीतं चे'त्यदादौ पाठाच्छपो लृक् ॥

यङो वा ७ । ३ । ९४ ॥

यङ्लुगन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड्, वा-स्यात् ।  
'भूभुवो'रिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न, 'बोभूतु तेतिके'  
इति ष्छन्दसि निपातनात् । 'बोभवीति-बोभोति । बोभूतः ।  
अदभ्यस्तात् । बोभुवति । बोभवाञ्चकार । बोभवामास । बोभविता ।  
बोभविष्यति । बोभवीतु-बोभोतु-बोभूतात् । बोभूताम् । बोभुवतु ।  
बोभूहि । बोभवानि । अबोभवीत् । अबोभोत् । अबोभूताम् ।  
अबोभवुः । बोभूयात् । बोभूयाताम् । बोभूयुः । बोभूयात् ।  
बोभूयास्ताम् । बोभूयासुः । 'गातिस्थे'ति सिचो लृक् । 'यङो वे'-

यङ् इति । यङ्साहचर्यादेच् प्रत्यय एव, न प्रत्याहारः । 'ण्यक्षत्रिये'  
त्यतो लुगित्यनुवर्तते, तदाह-लुगिति । अन्तरङ्गत्वादिति । चकारादिना-  
ऽपि अच्प्रत्ययं यङो लुग्विधानादनैमित्तिकोऽयं यङ्लृक् 'सन्त्यङो'रिति सञ्चि-  
मित्तकद्वित्वाद्यपेक्षयाऽन्तरङ्ग इति प्रत्ययसापेक्षबहिरङ्गद्वित्वाद्यपेक्षयाऽऽदावेव  
भवति, ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वमादाय 'सन्त्यङो'रिति द्वित्वं, 'ततोऽभ्या-  
सकार्यं, 'गुणो यङ्लुको'रिति गुणः, 'सनाद्यन्ता' इति धातुत्वं, 'शेषा'दिति लस्य

१ यङ् प्रत्यय का लृक् हो अच्प्रत्यय परे रहते । कहीं अच् प्रत्ययके विना  
भी लृक् हो ।

२ यङ्लुगन्त से परे जो हलादि पित सार्वधातुक उसको इट् विकल्प से हो ।



तीट्पक्षे गुणं वाधित्वा नित्यत्वाद्वुक् । अबोभूवीत्—अबोभोत् ।  
 अबोभूतोम् । अबोभूवुः । अबोभविष्यत् ॥  
 इति यङ्लुक्प्रक्रिया ॥

## अथ नामधातवः ।

सुप् आत्मनः क्यच् ३ । १ । ८ ॥

इषिकर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच्-  
 प्रत्ययो वा स्यात् ॥

सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २ । ४ । ७१ ॥  
 एतयोरवयवस्य सुपो लुक् ॥

क्यचि च ७ । ४ । ३३ ॥

अवर्णस्य ईत्स्यात् । आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति ॥

परस्मैपदं, राष्ट्र, तस्य अदादिपाठाल्लुक्, 'यङो वे'तीङ् विकल्पः । गुणावादेशौ ।  
 तेन बोभवीतीति सिद्धम् । नित्यत्वादिति । कृताऽकृतप्रसङ्गित्वेन वुको नित्यत्वं,  
 गुणस्य तु वुकि सत्यप्राप्त्याऽनित्यत्वमिति परगुणापेक्षया नित्यो वुगेव भवति ।  
 अतएव 'बुवो वुको नित्यत्वा'दिति 'इन्धिभवती'ति सूत्रस्थं भाष्यं सङ्गच्छते ।

इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया ।

धातोः कर्मण इत्यत इच्छायामिति वेति चानुवर्तते, ततश्च सन्नि-  
 घानादिच्छाकर्मण एव ग्रहणमित्याह इषिकर्मण इति ।

परस्य पुत्रमिच्छतीत्यत्राऽतिप्रसङ्गवारणाय सूत्रे स्वशब्दपर्याय आत्म-  
 शब्द उपात्तः । स्वपदेन च इषिसन्निघानादिच्छाकर्त्तृव आह इत्याशयेनाह-  
 एषितुरिति । इच्छाकर्त्तुरित्यर्थः । एवञ्च परसम्बन्धिपुत्रादेर्न क्यच् । सुबन्तस्य  
 चैतद्विशेषणद्वयमर्थद्वारकं बोध्यम् । पुत्रमात्मन इच्छतीत्यत्र, पुत्रमिति सुबन्तं

१ इच्छते का जो कर्म हो; एषिता [ इच्छा के कर्त्ता ] का जो सम्बन्धी हो  
 तदाचक जो सुबन्त उससे इच्छा अर्थ में क्यच् प्रत्यय विकल्प से हो ।

२ धातु और प्रातिपदिक का अवयव जो सुप् उसका लुक् हो ।

३ अवर्ण को ईकारादेश हो क्यच परे रहते ।

नः क्ये १ । ४ । १५ ॥

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं नाऽन्यत् । नलोपः । राजी-  
यति । नान्तमेवेति किम् ? । वाच्यति । हलि च । गीर्यति । पूर्यति ।  
धातोरित्येव । नेह—दिवमिच्छति दिव्यति ॥

क्यस्य विभाषा द्वे । ४ । ५० ॥

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वाऽऽर्धधातुके । आदेः  
परस्य । अतो लोपः । तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न । समि-  
धिता । समिध्यिता ॥

काम्यच ३ । १ । ९ ॥

उक्तविषये काम्यच् स्यात् । पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रकाम्यति ।  
पुत्रकाम्यता ॥

उपमानादाचारे ३ । १ । १० ॥

उपमानात्कर्मणः सुवन्तादाचारेऽर्थे क्यच् । पुत्रमित्राचरति  
हि इच्छायाः कर्म, इच्छाकर्तुर्देवदत्तादेः सम्बन्धि चेति भवति ततः क्यजिति  
भावः । नलोप इति । पदत्वात् 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'ति नलोप इत्यर्थः ।  
'वाच्यती'त्यत्र नान्तत्वविरहात्पदत्वाभावेन 'चोः कु'रिति कुत्वं न भवति ।  
आदेरिति । 'आदेः परस्ये'त्यनेन यकारलोप इत्यर्थः । तस्येति ।  
तस्य=अकारलोपस्य, स्थानिवत्त्वात्='अचः परस्मि'न्निति स्थानिवत्त्वात् ।  
गुणो नेति । इकारस्योपधात्वविरहादिति भावः ।

उक्तविषये=इषिकर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुवन्तादिच्छायामर्थे ।

'पुत्रीयति छात्र' मित्यत्र पुत्र उपमानं, छात्र उपमेयभूतः । एवञ्च उपमा-

१ क्यच् और क्यङ् परे रहते नान्त ही की पदसंज्ञा होय—अन्य की न हो ।

२ हल् से परे जो क्यच् और क्यङ् उसका लोप हो विकल्प से आर्धधातुक पर रहते ।

३ इच्छा का जो कर्ता हो, पधिताका जो सम्बन्धी हो तदाचक सुवन्त से  
इच्छा अर्थ में काम्यच् हो विकल्प से ।

४ उपमानवाचका जो कर्मसंज्ञक सुवन्त उससे आचार अर्थ में क्यच् होय ।

पुत्रीयति छात्रम् । विष्णूयति द्विजम् ॥ \*सर्वप्रातिपदिकेभ्यः  
विष्वक् । वक्तव्यः । अतो गुणे । कृष्ण इवाचरति कृष्णति । स्व  
इवाचरति स्वति । सस्वौ ॥

अनुनासिकस्य विचक्षणोः क्विडति ८ । ४ । १६ ॥

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात्पयौ झलदौ च कृति ।  
इदमिवाचरति इदामति । राजेव राजानति । पन्था इव पथीनति ॥

कष्टाय क्रमणे ३ । १ । १४ ॥

चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात् । कष्टाय क्रमते  
कष्टायते । पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः ॥

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वभेदेभ्यः करणे ३ । १ । १७ ॥

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् । शब्दं करोति शब्दा-

नात्कर्मसंज्ञकात्सुबन्तात्पुत्रशब्दात्क्यचि पुत्रीयतीति रूपमित्याशयः । 'विष्णू  
यती'त्यत्राऽकृत्सार्वेति दीर्घः । सर्वप्रातिपदिकेभ्यः=प्रातिपदिकमात्रात्-  
आचारेऽर्थे क्विप्वेत्यर्थः । कृष्ण इवाचरतीत्यत्र कृष्णेति प्रातिपदिकात्किपि  
सर्वापहारिलोपे सनाद्यन्ता इति धातुत्वे लटि तिषि शप्ि 'अतो गुणे' इति  
पररूपे कृष्णतीति सिध्यति । कृष्णेत्यस्य सुबन्तत्वविरहेणाऽपदत्वं स्पष्टमेवेति  
तत्त्वम् ।

कष्टशब्दोऽत्र पापार्थक इत्याशयेनाह पापमिति ।

शब्दायते=कोलाहलं करोति । आह्वयतीति वा ('चिल्लाता है' 'धुलाता है') ।

१ प्रातिपदिक मात्र से परे किप् होय विकल्प से आचार अर्थ में ।

२ अनुनासिकान्त जो धातु उसकी उपधा को दीर्घ हो कि और झलदि  
क्तिडित परे रहते ।

३ चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से उत्साह 'अर्थ' में क्यङ् हो ।

४ शब्द वैर कलह अभ्र कण्व और भेद-ये-कर्मसंज्ञक उपपद रहते करोति  
अर्थ में क्यङ् हो ।

यते ॥ (ग.सू.) तत्करोति तदाचष्टे—इति णिच् । (ग.सू.) प्राति-  
पदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्टवच्च । प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात् ।  
इष्टे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भाव रमाव—टिलोप—विन्मत्तुल्लोप—  
यणादिलोप—प्रस्थस्फाद्यादेश—मसंज्ञास्तद्धणावपि स्युः । इत्यल्लोपः ।  
घटं करोत्याचष्टे वा—घटयति ॥

इति नामधातवः ॥ ५ ॥

अथ कण्डादयः ।

कण्डादिभ्यो यक् ३ । १ । २७ ॥

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात्स्वार्थे । कण्डून् गात्रत्रि-  
वर्षणे ॥ १ ॥ कण्डूयति । कण्डूयते—इत्यादि ॥

इति कण्डादयः ॥

तदिति । द्वितीयान्तात्करोतीत्यर्थे, द्वितीयान्तादाचष्टे इत्यर्थे च णिच्स्या-  
दित्यर्थः । णिच्=घटादिशब्दाणिच् । 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इति अल्लोपः ।  
'सनाद्यन्ता' इति धातुत्वम् । नामधातवः=प्रातिपदिका सन्तो धातुसंज्ञकाः ।

१ द्वितीयान्तं स करोति इस अर्थ में, और द्वितीयान्तं से आचष्टे इस अर्थ में णिच् हो ।

२ प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिच् हो बहुलता से । और वह इष्टवत् हो ।  
अर्थात् इष्टन् प्रत्यय परे रहते जो जो कार्य हों वे णिच् परे रहते भी हों ।

३ कण्डवादिगणपठित जो धातु उनसे नित्य यक् होय स्वार्थ में ।

## अथात्मनेपदगक्रिया

कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४ ॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदम् । व्यतिलुनीते । अन्यस्य योग्यं लवनमन्यः करोतीत्यर्थः ॥

न गतिहिंसार्थेभ्यः १ । ३ । १५ ॥

व्यतिगच्छन्ति । व्यतिघ्नन्ति ॥

नेर्विशः १ । ३ । १७ ॥

निविशते ॥

परिव्यवेभ्यः क्रियः १ । ३ । १८ ॥

परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते ॥

विपरैभ्यां जेः १ । ३ । १९ ॥

कर्माऽत्र-क्रिया । तदाह-कर्मन्ति । अन्यस्येति । शूद्रादियोग्यं सस्य-लवनादिकं क्षत्रियादिः करोतीत्यर्थः ।

न गतीति । अर्थशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते, । कर्मव्यतिहारे गत्यर्थ-केभ्यो हिंसार्थकेभ्यश्चात्मनेपदं नेत्यर्थः । अर्थग्रहणसामर्थ्याद्ये शब्दान्तरमर्ग-पेक्ष्य गतिहिंसयोर्वर्तन्ते ते एव धातवोऽत्र गृह्यन्ते, अन्येषान्तु नेह ग्रहणं, तेन 'सम्प्रहरन्ते राजान' इत्यत्रात्मनेपदं कर्मव्यतिहारे भवत्येव । 'हरतेर-प्रतिषेध' इति वार्तिकश्चतुर्बोधकमेवेति क्षान्तेन्द्रसिन्धुकाः । नेरिति । निपूर्वाद्विशतेरात्मनेपदं स्यात् ।

परीति । परिव्यवपूर्वात्क्रीणातेरात्मनेपदमित्यर्थः ।

विपरेति । विपराभ्यां जयतेरात्मनेपदं स्यात् ।

१ क्रिया का विनिमय ( अदला बदला ) द्योत्य-हो तो धातु से आत्मनेपद हो कर्ता में ।

२ कर्मव्यतिहार अर्थ में गत्यर्थक और हिंसार्थक धातुओं से आत्मनेपद नहीं हो।

३ नि उपसर्गपूर्वक जो विशूधातु उससे आत्मनेपद होय ।

४ परि-वि और अव उपसर्ग से परे जो क्रीन् धातु उससे आत्मनेपद हो ।

५ वि और परा से परे जो जिधातु उससे आत्मनेपद हो ।

विजयते । पराजयते ॥

समवप्रविन्यः स्थः १ । ३ । २२ ॥

सन्तिष्ठते । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ॥

अपह्वे ज्ञः १ । ३ । ४४ ॥

शतमपजानीते । अपलपतीत्यर्थः ॥

अकर्मकाच्च १ । ३ । ४५ ॥

सर्पिषो जानीते । सर्पिषोपायेन प्रवर्तते इत्यर्थः ॥

उद्देश्वरः सकर्मकात् १ । ३ । ५३ ॥

धर्ममुचरते । उल्लङ्घय गच्छतीत्यर्थः ॥

समस्तृतीयायुक्तात् १ । ३ । ५४ ॥

रयेन सञ्चरते ॥

दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १ । ३ । ५५ ॥

सम्पूर्वादाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात्, तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे ।  
दास्या संयच्छते कामी ॥

समवेति । समवप्रविन्यः परस्य तिष्ठतेरात्मनेपदं स्यादित्यर्थः ।  
अपेति । जानातेरात्मनेपदं स्यादपलापे इत्यर्थः । ( अपह्व=छिपाना ) ।

अकर्मैति । जानातेरकर्मकादात्मनेपदमित्यर्थः ।

उद् इति । उत्पूर्वाच्चरतेः सकर्मकादात्मनेपदं स्यादित्यर्थः ।

सम इति । तृतीयान्तेन युक्तात्सम्पूर्वाच्चरतेरात्मनेपदं स्यादित्यर्थः ।

१ सम्-अव-प्र और वि-इनसे परे स्थाधातु से आत्मनेपद हो ।

२ अपह्व ( छिपाना ) अर्थ में ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो ।

३ अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो ।

४ उत्पूर्वक सकर्मक जो चर् धातु उससे आत्मनेपद हो ।

५ तृतीयान्त से युक्त जो सम्पूर्वक दाण् धातु-उससे आत्मनेपद हो यदि  
तृतीया चतुर्थी के अर्थ में हो तो ।

पूर्ववत्सनः १ । ३ । ६२ ॥

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् ।  
एदिधिपते ॥

हलन्ताच्च १ । २ । १० ॥

इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित्स्यात् । निविविक्षते ॥

गन्धर्वाऽवक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियलप्रक-

थनोपयोगेषु कृञः १ । ३ । ३२ ॥

गन्धनं—सूचनम् । उकुरुते । भूचयतीत्यर्थः । अवक्षेपणं—  
भर्त्सनम् । रयेनो वर्तिकासुकुरुते । भर्त्सयतीत्यर्थः । हरिमुपकुरुते ।  
सेवते इत्यर्थः । परदारान्प्रकुरुते । तेषु सहसा प्रवर्तते । एधो दक-  
स्योपकुरुते । गुणमाधत्ते । कथाः प्रकुरुते । प्रकथयतीत्यर्थः । शतं  
प्रकुरुते । धर्मार्थं विनियुद्धे । एषु किम् ? । कटं करोति ।

भुजोऽनवने १ । ३ । ६६ ॥

कामातुरः स्रग्धर्मपत्नीं परित्यज्य दास्यै ददातीत्यर्थः । अत्र 'अशिष्टव्यवहारे  
दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीये'ति चतुर्थ्यर्थे तृतीया । दासीकर्मक सम्प्रदानं  
हि अशिष्टव्यवहारः ।

निविविक्षते इति । सनः कित्वात्पुगन्तेति गुणो न । गन्धनेति । एष्व-  
र्थेषु करोतेरात्मनेपदमित्यर्थः । साहसिक्यं=सहसा प्रवृत्तिः, बलात्कार इत्यर्थः ।  
एधो दकस्योपकुरुते इति । एधः=काष्ठ । दकस्य=जलस्य । काष्ठविशेषयो-  
गाज्जलं रक्तवर्णं नानागुणकं च भवतीत्यर्थः । अनवने=भोजनेऽर्थे भुजेरात्मनेपदं

१ सन् से पूर्व जो धातु उसकी तुल्य सन्नन्त से भी आत्मनेपद हो ।

२ इक् समीप हल् से परे जो झलादि सन् वह कित् हो ।

३ गन्धन—अवक्षेपण—सेवन—साहसिक्य—प्रतियल—प्रकथन—उपयोग—इन अर्थों  
में कृधातु से आत्मनेपद हो ।

४ पालन से भिन्न ( भोजन ) अर्थ में भुज् धातु से आत्मनेपद हो ।

ओदनं भुङ्क्ते । अनवने किम् ? महीं भुनक्ति ॥

इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ॥ ६ ॥

## अथ परस्मैपदप्रक्रिया ।

अनुपराभ्यां कृञः १ । ३ । ७९ ॥

[ अनुपराभ्यां कृञः ] कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् । अनुकरोति । पराकरोति ॥

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १ । ३ । ८० ॥

क्षिप्र प्ररणे । स्वरितेत् । अभिक्षिपति ॥

प्राद्वहः १ । ३ । ८१ ॥

प्रवहति ॥

परिर्मृषः १ । ३ । ८२ ॥

परिमृषति ॥

स्यात् । अवतनं=पालनम्, अनवनं=तद्विजनं भोजनम् ।

\* इत्यात्मनेपदप्रक्रिया \*

अनुपराभ्यामिति । आभ्या कृञः परस्मैपदं स्यात् । अभीति । अभ्यः परस्मात् क्षिपः परस्मैपदम् । प्राद्वह इति । प्राद्वहतेः परस्मैपदं स्यात् । परिर्मृष इति । परिपूर्वान्मृषतेः परस्मैपदं स्यात् ।

१ क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त होता हो और गन्धनादि अर्थ छोट्य हों तो भी अनु और परा उपसर्ग से परे कृधातु से परस्मैपद ही हो ।

२ अभि-प्रति-अति-इत उपसर्ग से परे क्षिप्-धातु से परस्मैपद हो ।

३ प्र उपसर्ग से परे वह वातु से परस्मैपद हो ।

४ परि, उपसर्ग से परे जो मृष् धातु उससे परस्मैपद हो ।



व्याङ्परिभ्यो रमः १ । ३ । ८३ ॥  
रमु क्रीडायाम् । विरमति ॥

उपाच्च १ । ३ । ८४ ॥  
यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् ॥

\* इति परस्मैपदप्रक्रिया \* ॥ इति पदव्यवस्था ॥

## अथ भावकर्मप्रक्रिया

भावकर्मणोः १ । ३ । १३ ॥

[भावे कर्मणि च धाते-] लस्यात्मनेपदम् ॥

सार्वधातुके यक् ३ । १ । ६७ ॥

धातोर्यक् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके । भावः-क्रिया ।  
सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मभ्यां सामानाधिकरण्या-  
ऽभावात्प्रथमः पुरुषः । तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वा-

व्याङिति । एभ्या रमतः परस्मैपदं स्यात् ।

उपाच्चेति । उपाद्रमतः परस्मैपदं स्यादित्यर्थः ।

\* इति परस्मैपदप्रक्रिया । \*

‘धातोरेकाच्’ इत्यतो ‘धातो’ रिति ‘चिणभावकर्मणो’ रित्यतो ‘भावकर्मणो’ रित्य-  
नुवर्तते, तदाह-भावकर्मणि सामानाधिकरण्याभावादिति । कर्तृकर्मा-  
भिधायिनो लस्यैव युष्मदस्मभ्यां सामानाधिकरण्यं सम्भवति, न भावाऽभिधा-  
यिनः, युष्मदस्मभ्यां कर्तृकर्मणोरभिधानेऽपि लकारेण कर्तृकर्मणोरनभिधानात् ।  
लकारेण हि क्रियाभात्रस्यैवाऽभिधानादित्याशयः । अद्रव्येति । लिङ्गसङ्ख्यान्वया-

१ वि-आह् और परि उपसर्ग से परे जो रम् धातु उससे परस्मैपद हो ।

२ उप उपसर्ग से परे जो रम् धातु उससे भी परस्मैपद हो ।

३ भाव और कर्म में जो लकार उसके स्थान में आत्मनेपद हो ।

४ धातु से यक् प्रत्यय हो भावकर्मवाची सार्वधातुक परे रहते ।

धप्रतीतेर्न द्विवचनादि, कि त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः । त्वया मया  
अन्यैश्च भूयते । वभूवे ॥

स्यसिचसीयुद्धतासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्ज्ञान-

ग्रहदेशां वा चिण्वदिट् च ६ । ४ । ६२ ॥

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाऽङ्गकार्यं वा  
स्थात्स्यादिषु भावकर्मणोर्गन्धमानयोः, स्यादीनामिडागमश्च । चिण्व-  
नर्हत्वेनेत्यर्थः । लिङ्सङ्ख्यान्वित हि द्रव्यं । द्रव्यं सत्त्वमिति च पर्यायशब्दौ ।  
सत्त्वमिन्नञ्च असत्त्वम् । एवञ्च लिङ्सङ्ख्यान्वयानर्हत्वमेवाऽसत्त्वमिति फलितन्त-  
दाह-छित्वाद्यप्रतीतेरिति ।

ननु तिङ्वाच्यभावनाया असत्त्वत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेरिवैकत्वाऽप्रतीतेरे-  
कवचनमपि न स्यादत आह उत्सर्गत इति । 'द्वयेक्यो'रित्यत्र 'बहुषु'  
इत्यत्र च 'एकवचनम्' 'द्विवहोद्विवचनबहुवचने' इति न्यासेन एकवचन-  
मौत्सर्गिकं, द्वित्वविवक्षायां द्विवचनं, बहुत्वविवक्षायां बहुवचनमित्यर्थस्य लाभे-  
नैकवचनस्यौत्सर्गिकत्वलाभात् । औत्सर्गिकत्वञ्च-एकत्वमुत्पद्य द्विवहुवचना-  
न्यविषये विहितत्वेनैकत्वानपेक्षणादेवेति भावः । भावे लकारे कर्तुस्तिङ्वाच्य-  
त्वाऽभावेनानभिहितत्वादनभिहिते कर्तरि तृतीया, तदाह-त्वयेति ।

यद्यप्यजादयो द्वन्द्वेन निर्दिष्टास्तथापि 'उपदेश' इति अच एव विशेषणं,  
नेतरेषाम्, अन्यभिचारात् । तदाह-उपदेशे योऽजिति । 'चिण्व'दिति  
सप्तम्यन्ताद्धृतिः, प्रतियोगिनि उपमेये 'स्यसिचतासि'ष्विति-सप्तमीदर्शनात्,  
तदाह-चिणीवेति । चिणि परे यथाऽङ्गकार्यं वृश्चादिकं भवति तद्वत्स्यादिषु  
परेष्वपि स्यादित्यर्थः । अङ्गस्येत्यधिकारादङ्गकार्यमिति लभ्यते ।

'भावकर्मणो'रिति विषयसप्तमी, तदाह भावकर्मणोर्गन्धमानयो-  
रिति । परसप्तम्या 'भावकर्मवाचिषु स्यादिषु परेषु' इति तु नार्थः, स्यसिच-

१ उपदेश में जो अच्, तदन्त जो धातु और हन् ग्रह दृश धातु-इन  
को चिण् की तरह ( चिण् परे रहते, जो कार्य होता हो वह- ) अङ्गकार्य  
हो विकल्प से स्य-सिच्-सीयुट् और और तास् परे रहते, भाव और कर्म  
गन्धमान होतो । और स्य सिच्-सीयुट् को इडागम हो ।

द्वावपक्षेऽयमिद् । चिण्वद्वावावृद्धिः । भविता—भविता । भाविष्यते—  
भविष्यते । भूयताम् । अभूयत । भाविषीष्ट—भविषीष्ट ॥

चिण् भावकर्मणोः ३ । १ । ६६ ॥

च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे । अभावि । अभा-  
विष्यत—अभविष्यत ।

अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मकः । अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण  
त्वया मया च । अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे । अहमनु-  
भूये । अन्वभावि । अन्वभाविषाताम्—अन्वभविषाताम् ।

णिलोपः । भाव्यते । भावयाञ्चक्रे । भावयाम्वभूवे । भावया-  
मासे । चिण्वदिट् । आभीयत्वेनाऽसिद्धत्वाणिलोपः । भाविता—भाव-  
यिता । भाविष्यते—भावयिष्यते । अभाव्यत । भाव्येता । भाविषीष्ट—भाव-  
यिषीष्ट । अभावि । अभाविषाताम्—अभावयिषाताम् ॥ धुभूष्यते ।

तासीनां भावकर्मवाचित्वाऽभावात्, लुडादरव तथात्वात् । 'भावकर्मवाचिनि  
प्रत्यये परतो ये स्यादय' इत्यपि नार्थः सम्भवति, सीयुडागमविशिष्टस्यैव लिङो  
भावकर्मवाचकतया केवलस्य सीयुटो भावकर्मवाचकप्रत्ययपरत्वामावात् ।

इङ्विधौ स्यसिच्सीयुट्तासिष्विति सप्तमी षष्ठ्या विपरिणम्यते, तदाह-  
स्यादीनामिति ।

'च्लेः सिच्' 'चिण् ते पदः' इत्येताभ्यां 'चिण्' इति 'च्ले'रिति चापु-  
वर्त्याह च्लेरिति । सकर्मक इति । तेन कर्मणि प्रत्यये युष्मदस्मदोर्ल-  
कारवाच्यकारकवाचित्वात्तिङ् सामानाधिकरण्येन द्वित्वबहुत्वसङ्ख्यासम्बन्धोऽपि  
भवतीति पुरुषवचनादिव्यवस्थाऽपि कर्मणि लकारे भवति । भाव्यत इति ।  
अकर्मका अपि ण्यन्ताः सकर्मका भवन्ति । तेन तेभ्यः कर्मण्येव प्रत्ययः ।

धुभूष्यत इति अकर्मकाः सकर्मका वा सञ्जन्ता यथायथमकर्मकाः सकर्मका

बुभूषाञ्चक्रे । बुभूषिता । बुभूषिष्यते ॥ बोभूष्यते । बोभूयते ॥

अकृत्सार्वधातुकयोर्दोषः । स्तूयते विष्णुः । स्ताविता-स्तोता ।  
स्ताविष्यते स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविधाताम्-अस्तोषाताम् ॥

अ गतौ । गुणोऽतीति गुणः । अर्यते । स्मृ स्मरणे ।  
स्मर्यते । सस्मरे । उपदेशग्रहणाच्चिष्वदिट् । आरिता-अर्ता ।  
स्मारिता-स्मर्ता । अनदितामिति नलोपः । सस्यते । इदितस्तु  
नन्धते । सम्प्रसारणम्-इष्यते ॥

तनोतेर्यकि ६ । ४ । ४४ ॥

[तनोतेर्यकि] आकारोऽन्तादेशो वा स्यात् । तायते-तन्यते ।

तपोऽनुतापे च ३ । १ । ६६ ॥

तपश्च्लेश्विण् न स्यात् कर्मकर्तर्यनुतापे च । अन्वतप्त पापेन ।  
घुमास्थेतीत्वम् । दीयते । धीयते । ८६ ॥

आतो युक् चिण्कृतोः ७ । ३ । ३३ ॥

आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च ।

वा भवन्ति । तेभ्यस्तथैव भावे कर्मणि च प्रत्ययः । बोभूष्यते इति । यङ्  
लुकोस्तु प्रकृतिवत्सकर्मकाऽकर्मतेति बोध्यम् ।

‘विङ्वनोरनुनासिकस्यात्’ ‘ये विभाषा’ इत्येताभ्यां ‘विभाषेति’ ‘आत्’  
इति च पदद्वयमनुवर्त्याह-आकार इति ।

‘च्ले’ सिच् ‘चिण् ते पदः’ ‘अचः कर्मकर्तरि’ ‘न रुघ्’ इत्येतेभ्यो  
यथायथमनुवर्त्याह-च्लेरिति । ‘अचो ञ्णिती’त्यतो ‘ञ्णिती’त्यनुवर्त्याह

१ तन् धातु को आकार अन्तादेश हो विकल्प से यक् परे रहते ।

२ तप् धातु से परे जो च्ल उसके स्थान में चिण् नहीं हो कर्मकर्ता में, व अनु-  
ताप अर्थ गम्यमान हो तो ।

३ आदन्त धातुओं को युक् का आगम हो चिण् परे रहते और चित् चिन्  
कृत् परे रहते ।

दायिता-दाता । दायिषीष्ट-दासीष्ट । अदायि । अदायिपाताम् ॥  
भज्यते ॥

अज्ञेयश्च चिणि ६ । ४ । ३३ ॥

नलोपो वा स्यात् । अभाजि-अभजि ॥ लभ्यते ॥

विभाषा विष्णुमुलोः ७ । १ । ६६ ॥

लभेर्नुभागमो वा स्यात् । अलम्भि-अलामि ॥

इति भावकर्मप्रक्रिया ॥ ७ ॥

## अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया ।

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मक-  
त्वात्कर्तरि भावे च लकारः ॥

कर्मवत्कर्तृणा तुल्यक्रियः ३ । १ । ८७ ॥

जिणीतीति । 'श्चात्रलोपः' 'जान्तनशां विभाषे' त्येताभ्यां 'नलोपः' इति  
'विभाषा' इति चानुवर्तते, तदाह- नलोप इति ।

विभाषेति । 'इदितो नुम् धातोः' 'लभे'त्येताभ्यां 'लभे'रिति 'नुम्'  
इति चानुवर्तते ।

यदेति । कर्म='कालःफलं पचती'त्यादौ फलादिरूपं कर्म । विवक्षितं=  
'कालं किं पचति, फलं स्वयमेव पच्यते' इत्यादिरीत्या फलादिरूपं कर्म  
कर्तृत्वेन विवक्षितम् । सकर्मकाणां=पचादीनाम् । लकार इति । 'अकर्म-  
केभ्यो भावे कर्तरि चै'त्युक्तेः ।

१ भज् धातु के नकार का लोप हो विकल्प से चिण् परे रहते ।

२ लभ् धातु को नुम् का आगम हो विकल्प से चिण् और णमुल् परे रहते ।

३ कर्मस्था जो क्रिया-उस क्रिया से तुल्य है क्रिया जिसकी ऐसा जो  
कर्ता वह कर्मवत् हो ।

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत्स्यात् । कार्याति-  
देशोऽयम् । तेन यगात्मनेपदचिण्चिप्चिदिटः स्युः । पच्यते फलम् ।  
मिधते काष्ठम् । अपाचि । अमेदि । भावे—मिधते काष्ठेन ॥

इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥ ८ ॥

## अथ लकारार्थप्रक्रिया ।

अभिज्ञावचने लृट् ३ । २ । ११२ ॥

स्मृतिबोधिन्युपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट् । लृडोऽपवादः ॥  
यस निवासे । स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः ? । एवं 'बुध्यसे'  
'चेतयसे' इत्यादिप्रयोगेऽपि ।

न यदि ३ । २ । ११३ ॥

यद्योगे उक्तं न । अभिज्ञानासि कृष्ण ! यद्वने अमुञ्जसिहि ? ॥

'कर्तरि शप्' इत्यतः 'कर्तरि' इति पदमनुवर्तते, सूत्रे कर्मपदञ्च कर्म-  
स्थक्रियापरमित्यत आह—कर्मस्थयेति । कर्मकारकस्थयेत्यर्थः । शास्त्रस्यापि  
कार्यार्थत्वान्मुख्यत्वेन प्रकृते कार्यातिदेश एवेति भावः ।

तत्र कर्तरि, उदाहरति पच्यते इति । कर्तुंशक्तत्वात्तद्वाचकात्प्रथमा,  
तदाह—फलमिति । काष्ठेनेति कर्तरि तृतीया, भावे लकारे कर्तुंशक्तत्वात् ।  
एवं—पच्यते फलेनेत्यप्यवधेयम् । इति कर्तृकर्मप्रक्रिया ॥ ८ ॥

अभिज्ञा=स्मृतिः, सा उच्यते बोध्यतेऽनेनेति अभिज्ञावचनं, तस्मिन्-  
अभिज्ञावचने इति विग्रहस्तदाह—स्मृतीति । उपपदे=समीपोच्चरिते सति ।  
'भूते' इत्यधिकृतम्, 'अनद्यतने लृडित्यतोऽनद्यतने' इत्यनुवर्तते, तदाह—  
भूते इति । लृडः=अनद्यतने लृडित्यनेन विहितस्य ।

'प्रयोगेऽपि' इत्यस्य—'लृडिति शेषः । तेषामपि प्रकरणादिवशेन स्मृतौ  
वृत्तिसम्भवेन स्मृतिबोधकत्वादिति भावः । उक्तम्—'अभिज्ञावचने लृडिति

१ स्मृतिबोधक उपपद रहते भूत अनद्यतन अर्थ में धातु से लृट् लकार हो ।

२ स्मृतिबोधक धातु उपपद रहने पर भी यदि यद्-शब्द का योग हो तो  
धातु से लृट् लकार न हो ।

लट् स्मे ३ । २ । ११८ ॥

लिटोऽपवादः । यजति स्म युविष्टिरः ॥

वर्तमानेसामीप्ये वर्तमानवद्धा ३ । ३ । १३१ ॥

वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः । कदाऽऽगतोऽसि ? । अयमागच्छामि, अयमागमं वा । कदा गमिष्यसि ? । एष गच्छामि, गमिष्यामि वा ॥

हेतुहेतुमतौलिङ् ३ । ३ । १५६ ॥

[ हेतुहेतुमतौलिङ् ] वा स्यात् । कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात् ।

लट् । 'अभुञ्जमही'त्यत्र लङेव, न लट्, यद्योगात् । लङिति । 'स्मे'त्यव्ययं, तद्योगे लिङ्विषये (भूतानवधतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोः-) लङित्यर्थः । 'वर्त्तमानेति' । समीपमेव सामीप्यं, चतुर्वर्णादेराकृतिगणत्वात्स्वार्थे ध्वन् । 'वर्त्तमाने ल'ङित्यारभ्य पृतीयाध्यायद्वितीयपादसमाप्तिपर्यन्तं 'वर्त्तमाने' इत्यधिक्रियते, तस्मिन् अधिकारे आभ्यः प्रकृतिभ्यो येनोपाधिना ये प्रत्यया उक्तास्ते तथैव (तेनोपाधिना ताभ्य एव प्रकृतिभ्यः) वर्त्तमानसमीपे भूते भविष्यति च वा स्युरित्यर्थः । तत्फलितमाह वर्त्तमाने इति ।

हेतुः=कारणम्, हेतुमत्-फल, कार्यमिति यावत् । एवञ्च हेतुभूते

१ स्म के योग में लिट् के विषय में भूत अनवधतन परोक्षार्थवृत्ति धातु से लट् लकार हो ।

२ 'वर्त्तमाने लट्' यहाँ से लेकर पृतीयाध्याय के द्वितीय-पाद की समाप्ति पर्यन्त, 'वर्त्तमाने' इसके अधिकार में जिस प्रकृति से-जिस उपाधि से जितने प्रत्यय कह गये हैं वे सब उसी उपाधि और उसी प्रकृति से वर्त्तमान समीप-भूत और वर्त्तमान समीप भविष्यत् अर्थ में भी विकल्प से हों ।

३ हेतुहेतुमद्भाव अर्थ में वर्त्तमान जो धातु उससे, भविष्यत् अर्थ में लिङ् लकार हो विकल्प से ।

कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति । भविष्यत्येवेष्यते । नेह— तीति पलायते ।

‘विधिनिमन्त्रणे’ति लिङ् । विधिः प्रेरणं भृत्यादेर्निष्कृष्टस्य प्रवर्तनम् । यजेत ॥ निमन्त्रणं नियोगकरणम्, आवश्यके श्राद्ध-भोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम् । इह भुञ्जीत ॥ आमन्त्रणं काम-चारानुज्ञा । इहऽऽसीत ॥ अधीष्टं सत्कारपूर्वको व्यापारः । पुत्र-मध्यापयेद्भवान् ॥ सम्प्रश्नः—सम्प्रधारणम् । किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम् ? । प्रार्थनं याच्ना । भो भोजनं लभेयम् । एवं लोट् ॥

इति लकारार्थप्रक्रिया ॥ ९ ॥ इति तिङन्तप्रकरणम् ॥

## अथ कृदन्तो कृत्यप्रक्रिया ।

धातोः ३ । १ । ९१ ॥

आ तृतीयाध्यायसमाप्तेर्ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः । कृदति-ङिति कृतसंज्ञा ॥

फलभूते वाऽर्थे वर्तमानाद्धातोर्भविष्यति लिङ् वा स्यात्, पक्षे लट् । ‘कृष्णं नमे चे’दित्यत्र च कृष्णानतिः कारणं, सुखलाभं फलम् । हेतुभूतेऽर्थे वर्तमानश्च नम्रधातु, फलभूतेऽर्थे वर्तमानश्च याधातु । एवञ्च ततोऽत्र लिङ् ।

भविष्यत्येवेति । लिङित्यनुवर्तमाने पुनर्लिङ्ग्रहणादिति भावः । हन्तीति । अत्र वर्तमानकालिकहननाद्धतोः पलायते इत्यर्थः । इतिर्हेतौ ।

व्यापारः=प्रवर्तनम् । सम्प्रधारणं=इदं करणीयमिदं वेति निश्चयः । करणीयावधारणमिति यावत् । \* इति लकारार्थप्रक्रिया \*

धातोरिति । तृतीयाध्यायसमाप्ति पर्यन्तं ये प्रत्ययास्तव्यदादयो वक्ष्यन्ते ते धातोः परे स्युरित्यर्थः ।

१ धातोः इस सूत्र से लेकर तृतीयाध्याय की समाप्ति पर्यन्त जो तव्यदादि प्रत्यय कहे जाएंगे वे सब प्रत्यय धातु से परे हों ।



वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३ । १ । ९४ ॥

अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात्, स्त्र्यधिकारोक्तं विना ॥

कृत्याः ३ । १ । ९५ ॥

‘ण्वुल्लुच्चा’वित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः ॥

कर्तरि कृत् ३ । ४ । ६७ ॥

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात् । इति प्राप्ते

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थः ३ । ४ । ७० ॥

एते भावकर्मणोरेव स्युः ॥

तव्यत्तव्यानीयरः ३ । १ । ९६ ॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः । एधितव्यम्, एवनीयं त्वया । भावे

वासरूपेति । परिभाषयम्, अधिकारत्वं तु नाऽस्य, स्वरितत्वकल्पना-  
गौरवप्रसङ्गात् । ‘असरूप’इति च लिङ्गम् । यत्र असरूपः प्रत्ययो विधीयते तत्र  
‘वा’ इत्युपतिष्ठते । ‘बाधक’ इति शेषः । तदाह-अस्मिन्निति । स्त्र्यधिकारे  
तु असरूपः प्रत्यय उत्सर्गस्य नित्यमेव बाधकः । यथा-चिकीर्षा । अत्र हि  
‘स्त्रियां क्ति’न्निति क्तिनमकारप्रत्ययो नित्य बाधते । भावे उदाहरति एधित-  
व्यमिति । त्वत्कर्तृका वर्द्धनक्रियेत्यर्थः । ननु भावस्याऽसत्त्वरूपत्वेन तत्र लिङ्ग-  
सङ्ख्यान्वयविरहाद्भावे प्रत्यये कथमेकत्वं क्लीवत्वञ्चेत्याशङ्क्याह भावे इति ।

१ वातोः’ इसके अधिकार में असरूप अपवाद जो प्रत्यय वह उत्सर्ग  
का बाधक विकल्प से हो । स्त्रियाम्-इस अधिकार को छोड़कर ।

२ ण्वुल्लुच्चौ इस से पहले जो प्रत्यय उनकी कृत्य-संज्ञा हो ।

३ कृत् संज्ञक जो प्रत्यय वह कर्ता में हो ।

४ कृत्य क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही हों ।

५ धातु से तव्यत्-तव्य और अनीयर् प्रत्यय हों ।

औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वं च । चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मत्वया ।

\*केलिमरु उपसंख्यानम् । पचेलिमा भाषाः । पक्तव्या इत्यर्थः । मिदेलिमाः सरलाः । भेत्तव्या इत्यर्थः । कर्मणि प्रत्ययः ॥

कृत्यल्युटो बहुलम् ३ । ३ । ११३ ॥

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।

विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥ १ ॥

स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः ॥

अचो यत् ३ । १ । ९७ ॥

अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात् । चयम् ॥

ईद्यति ई ४ । ४ । ६६ ॥

यति परे आत ईत्स्यात् । देयम् । ग्लेयम् ॥

कर्मण्युदाहरति-चेतव्य इति । केलिमरु इति । धातोः केलिम् प्रत्ययः स्याद्वाकर्मणोरित्यर्थः । सरलाः=वृक्षभेदाः ।

वृत्तिकारस्तु 'कर्मकर्त्तरि चायमिष्यते' इत्याह, तत्र युक्तं, 'मिदेलिमा' इत्यस्य भेत्तव्या इति विवरणस्य भाष्ये दर्शनात्, तदाह-कर्मणीति ।

क्वचिदिति । विधे-क्वचित्प्रवृत्तिः, क्वचिन्नैव प्रवृत्तिः, क्वचिच्च विभाषा=विकल्पेन प्रवृत्तिः, क्वचिच्च वैपरीत्येन=सर्वोपाधिव्यभिचारेण प्रवृत्तिः, इत्थं विधेः=विधिशालककर्तृकं विधानं, बहुधा=नानाप्रकारं वीक्ष्य-विधिविधानविदो विद्वासश्चतुर्विधं बाहुलकमाहुरित्यर्थः । रगानीयं=स्नानोपयोगि चूर्णादि । ('सोडा' 'बेसन' 'साबुन') । चेतुं योग्यं चयम् । चेतुं शक्यं वा चयम् ।

दातुं योग्यं देयम् । दाधातोरात् ईत्वे 'सार्वधातुकार्धवातुकयो' रित्य-

१ धातु से केलिमर् प्रत्यय हो ।

२ कृत्य प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुलता से हैं ।

३ अजन्त धातु से यत् प्रत्यय हो ।

४ यत् प्रत्यय परे रहते आदन्त धातु के आकार को ईकार आदेश हो ।

पोरदुपधात् ३ । १ । ९८ ॥

पवर्गान्तादुपधात्स्यात् । ण्यतोऽपवादः । शप्यम् । लभ्यम् ॥

एतिस्तुशास्त्वृजुषः क्यप् ३ । १ । १०६ ॥

एभ्यः क्यप् स्यात् ॥

ह्रस्वस्यैपिति कृति तुक् ६ । १ । ७१ ॥

इत्यः । स्तुत्यः ॥ शासु अनुशिष्टौ ॥

शास् इद्इहलोः ६ । ४ । ३४ ॥

शास उपधाया इत्स्यादडि हलादौ क्किति । शिष्यः । वृत्याः

आदृत्यः । जुष्यः ॥

मृजेर्विभाषा ३ । १ । ११३ ॥

नेन गुणः । एवं रलेयमित्यत्रापि । शप्तुं योग्यं-गप्यं चैत्रकुलम् । 'शप आक्रोशे' इत्यतः कर्मणि प्रत्ययः । लब्धुं योग्यं-लभ्यम् । डुलभम् प्राप्तावित्-  
एतात्कर्मणि यत् ।

एभ्यः='इण् गतौ' 'ष्टुञ् स्तुतौ' 'शासु अनुशिष्टौ' 'वृज् वरणे' 'इद् आदरे' 'जुषी प्रीतिसेवनयो'रित्येतेभ्यो घातुभ्यः ।

एतुं योग्यः-इत्यो गुरुः । स्तोतुं योग्यः-स्तुत्यः शिवः । शासितुं योग्यः-शिष्यः=छात्रः । वरीतुं योग्यः-वृत्यः । आदत्तुं योग्यः-आदृत्यः । जोषितुं योग्यः-जुष्यः सेवनीयः ।

माष्टुं योग्यः मृज्यः=शोधनीयः पठः । मृजू शुद्धावादादिकः । कर्तुं

१ अत् उपधा में जिसके ऐसा जो पवर्गान्त धातु उससे यत् प्रत्यय हो ।

२ इण् ष्टुञ्-शासु-वृज्-इद्-जुष इन धातुओं से परे क्यप् प्रत्यय हो ।

३ ह्रस्व को तुक् का आगम हो पित् कृत् प्रत्यय परे रहते ।

४ शास् धातु की उपधा को इकार आदेश हो अड् परे रहते और हलादि कित् डित् परे रहते ।

५ मृज्धातु से क्यप् प्रत्यय हो विकल्प से ।

मृजेः क्यप्वा स्यात् । मृज्यः ॥

३ ऋहलोर्ण्यत् ३ । १ । १२४ ॥

४ ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् । कार्यम् । हार्यम् । धार्यम् ॥

चजोः कु धिण्यतोः ७ । ३ । ५२ ॥

चजोः कुत्वं स्यादिषति ण्यति च परे ॥

५ मृजेवृद्धिः ७ । २ । ११४ ॥

मृजेरिको वृद्धिः स्यात्सार्वधातुकार्धधातुकयोः । मार्ग्यः ॥

भोज्यं भक्ष्ये ७ । ३ । ६९ ॥

भोग्यमन्यत् ॥ इति कृत्यप्रक्रिया ॥

~~अथ पूर्वकृदन्तम्~~

**अथ पूर्वकृदन्तम्**

६ ण्वुल्तृचौ ३ । १ । १३३ ॥

धातोरेतौ स्तः । 'कर्तरि कृ'दिति कर्त्रर्थे ॥

युवोरनाकौ ७ । १ । १ ॥

योग्यं-कार्यम् । कर्मणि ण्यत् । एवं हार्यं, धार्यमित्यादि । भोक्तुं-योग्यं-  
भोज्यम्=अन्नम् । अन्यत्=दारधनादिकम् ।

\* इति कृत्यप्रक्रिया \*

१ ऋवर्णान्त जो धातु और ऋहलन्त जो धातु उनसे ण्यत् प्रत्यय हो ।

२ जकार और चकार को कुत्वं हो धिप् और ण्यत् परे रहते ।

३ मृज् धातु के ऋक् को वृद्धि हो सार्वधातुक आर्धधातुक परे रहते ।

४ भक्ष्य अर्थ में भोज्य ऐसा ( कुत्वाऽभाव ) निपातन हो, ( अन्य अर्थ

की तो भोग्य यही होता है ) ।

५ धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हों ।

६ यु और वु को अन और अक आदेश क्रम से हों ।

‘यु’ ‘वु’ एतयोरनाऽकौ स्तः । कारकः । कर्ता ॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३ । १ । १३४ ॥

नन्धादेर्ल्युः, ग्रहादेर्णिनिः, पचादेरच् स्यात् । नन्दयतीति नन्दनः । जनमर्दयतीति जनार्दनः । लवणः । आही । स्थायी । मन्त्री । पचादिराकृतिगणः ॥

इयुपधज्ञाप्रिकिरः कः ३ । १ । १३५ ॥

एभ्यः कः स्यात् । वुधः । कृशः । ज्ञः । प्रियः । किरः ॥

आतश्चोपसर्गे ३ । १ । १३६ ॥

प्रज्ञः । सुगलः ॥

गेहे कः ३ । १ । १४४ ॥

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात् । गृहम् ॥

कारक इति । करोतीति कारकः=कर्ता । नन्दनः=पुत्रः । जनः=समु-  
प्रस्थ राक्षसवर्गम्-अर्दयतीति पीडयतीति जनार्दनः=विष्णुः । अर्द गतौ  
याचने चेति सौवादिकाण्यन्ताल्ल्युः । छुनातीति लवणः । अत्रैव गणे नि-  
पातनाण्णत्वम् । गृह्णातीति-आही । तिष्ठतीति स्थायी । मन्त्रयते=इति-  
मन्त्री=अमात्यः । ‘मन्त्रि गुप्तपरिभाषणे’-चौरादिक आकुत्सीय आत्मनेपदी ।

बुध्यते इति-बुधः पण्डितः । ‘बुध-अवगमने’ देवादिक आत्मनेपदी ।  
कृश्यतीति कृशः=स्वल्पः । ‘कृश तनूकरणे’ देवादिकः । जानातीति ज्ञः=  
पण्डित । प्रीणातीति प्रियः । किरतीति किरः=विक्षेपकः, सूकरश्च । ‘भूदारः  
सूकरः किरिश्चे’ति कोशः । ‘कृ विक्षपे’ तुदादिः ।

प्रजानातीति-प्रज्ञः=पण्डितः । सुगलायतीति सुगलः । धान्यादिकं गृह्णा-

१ नन्धादि से ल्यु प्रत्यय हो अह्नादि से णिनि प्रत्यय हो और पचादि से  
अच् प्रत्यय हो ।

२ इक् उपधा में जिसके ऐसा जो धातु और ज्ञा प्री-कृ-इन् धातु इनसे क  
प्रत्यय हो ।

३ उपसर्गपूर्वक जो आदन्त धातु उससे कप्रत्यय हो ।

४ अह्वातु से कप्रत्यय हो गेह कर्ता हो तो ।

कर्मण्यण् ३ । २ । १ ॥

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात् । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः ।

आतोऽनुपसर्गे कः ३ । २ । ३ ॥

आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदे कः स्यात् । अणोऽपवादः । आतो लोप इटि च ॥ गोदः । धनदः । कम्बलदः । अनुपसर्गे किम् ? । गोसन्दायः । \*मूलविभुज।दिभ्यः कः । मूला-नि विभुजति मूलविभुजो। रथः । आकृतिगणोऽयम् । महीध्रः । कुध्रः ।

चरेष्टः ३ । २ । १६ ॥

अधिकरण उपपदे । कुरुचरः ।

मिक्षासेनादायेषु च ३ । २ । १७ ॥

मिक्षाचरः । सेनाचरः । 'आदायेति ल्यबन्तम् । आदायचरः ॥

कृभो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३ । २ । २० ॥

तीति गृहम् ।

कुम्भ अस् कारत्यलौकिकं विग्रहवाक्यम् । कुम्भकारः=कुलालः । गां ददातीति गोदः । महीं धरतीति महीध्रः=पर्वतः । एवं कुः=पृथ्वी, कुघ्नोऽपि पर्वतः ।

चरेरिति । अधिकरणे उपपदे चरेष्टः स्यादित्यर्थः । कुरुषु देशविशेषेषु चरति=गच्छतीति कुरुचरः । मिक्षा चरतीति मिक्षाचरः । आदाय=गृहीत्वा चरतीति-आदायचरः । 'चर गतिभक्षणयोः' ।

१ कर्म उपपद रहते धातु से अण् प्रत्यय हो ।

२ कर्म उपपद रहते अनुपसृष्ट आदन्त धातु से क प्रत्यय हो ।

३ अधिकरण उपपद रहते चर् धातु से टप्रत्यय हो ।

४ मिक्षा-सेना और आदाय-ये कर्म उपपद रहते चरधातु से ट प्रत्यय हो ।

५ हेतु ताच्छील्य और आनुलोम्य ये अर्थ दोग्यहों तो कृधातु से ट प्रत्यय हो ।

एषु धोत्येषु करोतेष्टः स्यात् ॥

अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्य-

यस्य ८ । ३ । ४६ ॥

आदुत्तरस्याऽनव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः स्यात्क-  
रोत्यादिषु परेषु । यशस्करी विधा । श्राद्धकरः । वचनकरः ॥

ऐजेः खच् ३ । २ । २८ ॥

ण्यन्तादेजेः खश् स्यात् ॥

अशर्द्धिदजन्तस्य मुम् ६ । ३ । ६७ ॥

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात्स्विदन्ते परे, न  
त्वन्वयस्य । शित्वाच्छादिः । जनमेजयतीति जनमेजयः ॥

प्रियंवशे वदः खच् ३ । २ । ३८ ॥

प्रियंवदः । वशंवदः ॥

धात्=अवर्णात् । यशः करोति-यशस्करी । यशोहेतुरित्यर्थः । श्राद्ध  
करोति तच्छीलः-श्राद्धकरः । वचनं करोति-वचनकरः । अनुकूल इत्यर्थः ।  
आनुलोम्ये इदम् ।

शित्वात्=खशः शित्वेन सार्वधातुकत्वात्, श्वादिः=यथाययं शप्श्व-  
नादिः । जनमेजयति=शत्रुवर्गं कम्पयतीति-जनमेजयः=राजविशेषः । प्रियेति ।  
अनयोरुपपदयोर्वदः खच् स्यात् । प्रियं वदतीति प्रियंवदः । प्रियभाषी ।  
वशं वदतीति वशंवद=अनुकूलः । खित्वान्मुम् ।

१ अवर्ण से उत्तर अव्ययभिन्नसम्बन्धी जो विसर्ग उसको नित्य सकारादेश  
हो समास में, कृ कमि कंस कुम्भ पात्र कुशा कर्णी ये परे रहते ।

२ ण्यन्त जो ण् धातु उससे खश् प्रत्यय हो ।

३ अरुष-द्विषद्, और अजन्त जो धातु उनको मुम् का आगम हो स्विदन्त  
परे रहते । अव्यय को मुम् का आगम न हो ।

४ प्रिय और वश उपपद रहते वद् धातु से खच् प्रत्यय हो ।

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३ । २ । ७५ ॥

मनिन् वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः ।

नेङ्वाशि कृति ७ । २ । ८ ॥

वशादेः कृत इण् न स्यात् ॥ गृहिंसायाम् ॥ सुशर्मा ।

प्रातरित्वा ॥

विङ्खनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६ । ४ । ४१ ॥

अनुनासिकस्याऽऽस्यात् । विजायते इति विजावा ॥ ओणृ  
अपनयने ॥ अवावा । विच् ॥ रुष रिष हिंसायाम् ॥ रोट् ।  
रेट् । सुगण् ॥

किष् च ३ । २ । ७६ ॥

अयमपि दृश्यते । उखासत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् ॥

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३ । २ । ७८ ॥

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये । उष्णभोजी ॥

सुर्यणातीति सुशर्मा । मनिनन्तः । प्रातरेतीति-प्रातरित्वा=प्रातर्यायी ।  
कनिवन्तोऽयम् । विडिति । विट्प्रत्यये वन्प्रत्यये च परतोऽनुनासिकस्याऽऽ  
स्यादित्यर्थः । विजावा-वनिवन्तः । ओणतीति-अवावा=प्राह्वणी । विजिति ।  
विजन्तमुदाहरतीत्यर्थः । रभ्यतीति रोट्=हिंसक । विजन्तोऽयम् । उखायाः=  
स्थाल्याः सकाशात् संसते-प्रपततीति-उखासत्=ओदनः । पर्णात् ध्वसते  
इति पर्णध्वत् । एवं वाहभ्रट् । उष्णगुह्ये तच्छीलः-उष्णभोजी ।

१ मनिन् कनिप्-वनिप्-विच्-ये प्रत्यय धातु से हों ।

२ वशादि जो कृत् उसको इट् का आगम नहीं हो ।

३ अनुनासिक के स्थान में आकारादेश हो विट् और वन् प्रत्यय पर रहते

४ धातु से किप् प्रत्यय भी हो ।

५ जातिवाचकसे मित्र सुवन्त उपपद रहते धातु से णिनि प्रत्यय हो  
ताच्छील्य द्योत्य हो तो ।



मनः ३ । २ । ८२ ॥

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात् । दर्शनीयमानी ॥

आत्ममाने खश्च ३ । २ । ८३ ॥

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् । चाणिनिः ।

पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितमन्यः । पण्डितमानी ॥

खित्थनव्ययस्य ६ । ३ । ८६ ॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः । ततो मुम् । कालिम्मन्या ॥

कारणे यजः ३ । २ । ८७ ॥

कारणे उपपदे भूतार्थे यजेर्णिनिः स्यात्कर्तरि । सोमेनेष्टवान्  
सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ॥

द्वैशोः कनिष् ३ । २ । ९४ ॥

कर्मणि भूते । पारं दृष्टवान् पारदृष्ट्वा ॥

राजनि युधिष्ठजः ३ । २ । ९५ ॥

क्वनिप्स्यात् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवान्

दर्शनीय मन्यते-दर्शनीयमानी-चैत्रः ।

आत्मानं कालीं मन्यते कालिम्मन्या । अग्निष्टोमेनेष्टवान्-अग्निष्टोम-

१ सुबन्त उपपद रहते मन् धातु से णिनि प्रत्यय हो ।

२ स्वकर्मक मनन में वर्तमान जो मन् धातु उससे खश् प्रत्यय हो सुबन्त  
उपपद रहते । चकार से णिनि प्रत्यय भी हो ।

३ अव्ययमित्र जो पूर्वपद उसको ह्रस्व हो खिदन्त परे रहते ।

४ कारण उपपद रहते भूत अर्थ में यज् धातु से णिनि प्रत्यय हो कर्ता में ।

५ कर्म उपपद रहते भूत अर्थ में दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय हो ।

६ कर्मसंज्ञक राजन् शब्द उपपद रहते युष् धातु और कृञ् धातु से भूतकार  
में क्वनिप् प्रत्यय हो ।

राजयुध्वा । राजकृत्वा ॥

सहे च ३ । २ । ९६ ॥

‘कर्मणी’ति निवृत्तम् । सह योधितवान् सहयुध्वा । सहकृत्वा ॥

सप्तम्यां जनेर्दः ३ । २ । ९७ ॥

तैत्पुरुषे कृति बहुलम् ६ । ३ । १४ ॥

डेरलुक् । सरसिजम् । सरोजम् ॥

उपसर्गे च संज्ञायाम् ३ । २ । ९९ ॥

‘प्रजा स्यात्सन्ततौ जने’ ॥

कृत्तवतू निष्ठा १ । १ । २६ ॥

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ॥

निष्ठा ३ । २ । १०२ ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र ‘तयोरेवे’ति भावकर्मणोः कः । ‘कर्तरि कृ’दिति कर्तरि क्तवतुः । उकावितौ । स्नातं मया ।

याजी । ‘राजयुध्वन्’-शब्दो नान्तः । राजानं कृतवान्-राजकृत्वा । ‘ह्रस्वस्य पिती’ति तुक् । सहे चेति । सहे उपपदे युध्यते क्वनिप्स्यात् ।

सप्तम्यामिति । सप्तम्यन्ते उपपदे जनेर्दः स्यात् ।

डेरलुगिति । कृदन्ते उत्तरपदे सप्तम्या बहुलमलुक् स्यात्तपुरुषे इत्यर्थः । फलितमाह-डेरिति । उपसर्गे उपपदे जनेर्दः स्यात्संज्ञायाम् । प्रजायते इति प्रजा । तत्र=फक्फक्त्वोर्मध्ये । अस्नायि-इति स्नातम् । भवेत्क । अस्तावि-

१ सह उपपद रहते युध् धातु से क्वनिप् हो ।

२ सप्तम्यन्त उपपद रहने जन् धातु से डप्रत्यय हो ।

३ कृदन्त उत्तरपद परे रहते डि का बहुलता से अलुक् हो तपुरुष में ।

४ उपसर्ग उपपद रहते जन् धातु से डप्रत्यय हो संज्ञा में ।

५ क्त-और क्तवतु की निष्ठा संज्ञा हो ।

६ भूतार्थवृत्ति धातु से निष्ठासंज्ञक प्रत्यय हों ।

स्तुतस्त्वया विष्णुः । विश्वं कृतवान् विष्णुः ॥

रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८ । २ । ४२ ॥

रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात्, निष्ठापेक्षया पूर्वस्य  
धातोर्दस्य च ॥ शृ हिंसायाम् ॥ ऋत इत् । १५१ः । णत्वम् ।  
शीर्णः । मित्रः । छिनः ॥

संयोगादेरातो धातोर्धण्वतः ८ । २ । ४३ ॥

निष्ठातस्य नः स्यात् । द्राणः । ग्लानः ॥

त्वादिभ्यः ८ । २ । ४४ ॥

एकविंशतेर्लृआदिभ्यः प्राग्वत् । लूनः ॥ ज्या धातुः ।  
ग्रहियेति संप्रसारणम् ॥

हलः ६ । ४ । २ ॥

अङ्गावयवाद्बलः परं यत्संप्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः । जीनः ॥

इति स्तुतः । कर्मणि क्तः । अकार्षीदिति कृतवान् ।

रदाभ्यां=रेफदकाराभ्याम् । 'दस्य चे'त्यस्य 'नकार' इति शेषः ।  
अशारि इति शीर्णः । अभेदि-इति मित्रः । अच्छेदि-इति-छिनः । कर्मणि क्तः ।

अद्रासीदिति द्राणः । द्रा कुत्साया गतौ । गत्यर्थकर्मकेति कर्तरि क्तः ।  
अग्लासीदिति ग्लानः । प्राग्वत्-निष्ठातस्य नः स्यात् । अलावि-इति लूनः=  
छिनः । अज्यासीत् इति जीनः=वृद्धः । अकर्मकत्वात्कर्तरि क्तः । अभौक्षी-

१ रेफ और दकार से परे जो निष्ठा का तकार उसको नकार आदेश हो,  
और निष्ठा की अपेक्षा से पूर्व जो धातु का दकार उसको भी नकार हो ।

२ संयोगादि यण्वान् जो आदन्त धातु उससे परे जो निष्ठा, का तकार  
उसको नकार हो ।

३ एकविंशति (२१) जो लृआदि, उनसे परे जो निष्ठाका तकार उसको  
नकार आदेश हो ।

४ अङ्गका अवयव जो हल् उससे परे जो संप्रसारण तदन्त को दीर्घ हो ।

ओदितश्च ८ । २ । ४५ ॥

भुजो-भुग्नः । दुओश्चि । उच्छूनः ॥

शुषः कः ८ । २ । ५१ ॥

निष्ठातस्य कः ॥ शुष्कः ॥

पचो वः ८ । २ । ५२ ॥

पक्वः ॥ क्षै क्षये ॥

दायो मः ८ । २ । ५३ ॥

क्षामः ॥

निष्ठायां सेटि ६ । ४ । ५२ ॥

गेर्लोपः । भावि तः । भावितवान् ॥ दृढ हिंसायाम् ॥

दृढः स्थूलबलयोः ७ । २ । २० ॥

स्थूले बलवति च निपात्यते ॥

दिति भुग्नः । 'भुजो' कौटिल्ये' तुदादि । उदश्चत्-इति उच्छूनः ।

दुओश्चि गतिवृद्धोः-भौवादिकः । ततः कर्त्तरि क्तः । उच्छूनः=वृद्धिज्ञतः ।

( सूजा हुआ, फूला हुआ ) ।

अशुषत्, इति शुष्कः । 'शुष शोषणे' दिवादिः ।

अपाचीति पक्वः-कर्मणि क्तः ।

अक्षासीदिति-क्षामः । 'क्षै क्षये' 'आदेच उपदेशे' इत्यात्वम् । निष्ठातस्य मः । कर्त्तरि क्तः । निष्ठायामिति । सेपिनिष्ठाया परतो गेर्लोपः स्यादित्यर्थः ।

अभावीति-भावितः । दृढ इति । स्थूले बलवति च 'दृढ' इति निपात्यते इत्यर्थः ।

१ ओदित् जो धातु उससे परे जो निष्ठा का तकार उसको नकारादेश हो ।

२ शुष् धातु से परे जो निष्ठा का तकार उसको क आदेश हो ।

३ पच् धातु से परे जो निष्ठा का तकार उसको वकार आदेश हो ।

४ क्षै धातु से परे जो निष्ठा का तकार उसको मकारादेश हो ।

५ सेट् निष्ठा परे रहते णि का लोप हो ।

६ स्थूल अर्थ में-और बलवान् अर्थ में दृढ यह निपातन हो ।

दधातेर्हिः ७ । ४ । ४२ ॥

तादौ किति । हितम् ॥

दो ददधोः ७ । ४ । ४६ ॥

घुसंज्ञकस्य 'दा' इत्यस्य 'दथू' स्यात् तादौ किति । चर्त्यम् ।

दत्तः ॥

लिट् कानच्वा ३ । २ । १०६ ॥

क्वसुश्च ३ । २ । १०७ ॥

लिट् कानच् क्वसुश्च वा स्तः । तङानाधात्मनेपदम् ।

चक्राणः ॥

म्बोश्च ८ । २ । ६६ ॥

मान्तस्य धातोर्नत्वं म्बोः परतः । जगन्वान् ॥

लट् शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३ । २ । १२४ ॥

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट् एतौ वा स्तः । शवादि ।

पचन्तं चैत्रं पश्य ॥

अदर्होदिति ६६ । 'दृह दृहि वृद्धौ' भौवादिकः । दधातेरिति । तादौ किति परे दधातेर्हिः स्यात् । अधायि-इति-हितम् । कर्मणि क्तः । च्क्रे इति चक्राणः ।

एवं-जगामेति जगन्वान् । क्मुप्रत्ययान्तोऽयम् ।

शवादीति । शतृशानचोः शित्वात्सार्वधातुकतया 'कर्त्तरि श' वित्यादिना

१ धा धातु को हि आदेश हो तादि कित् परे रहते ।

२ घुसंज्ञक जो दा धातु उसको दथू आदेश हो तादि परे रहते ।

३ लिट् के स्थान में कानच् और क्वसुप्रत्यय विकल्प से हों ।

४ मान्त धातु को नकार आदेश हो मकार-वकार परे रहते ।

५ अप्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण्य हो तो लट् के स्थान में शट् और शानच् प्रत्यय होते हैं ।

आने मुक् ७ । २ । ८२ ॥

अदन्ताऽङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे । पचमानं चैत्रं पश्य ।  
'ल'डित्यनुवर्तमाने पुनर्लङ्ग्रहणात्प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित् ।  
सन् द्विजः ॥

विदेः शतुर्वसुः ७ । १ । ३६ ॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा । विदन् । विद्वान् ॥

तौ सत् ३ । २ । १२७ ॥

तौ=शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः ॥

लट्: सद्वा ३ । ३ । १४ ॥

[ लटः शतृशानचौ वा स्तः ] । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेना-  
ऽप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च  
नित्यम् । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य ॥

आ केस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३ । २ । १३४ ॥

यथायथं अवादीत्यर्थः । पचन्त चैत्रमित्यादौ द्वितीयान्तादिना समानाधि-  
करण्यालटः शत्रादेशः । अस्तीति सन् । श्रसोरल्लोपः । सन्, सन्तौ, सन्तः ।  
इत्यादिरूपाणि । वेत्तीति विदन् ।

अप्रथमासामानाधिकरणे उदाहरति-करिष्यन्तमिति । प्रत्यये-करि-  
ष्यतोऽप्रत्ययं करिष्यत । उत्तरपदे-करिष्यद्वक्तिः । सम्बोधने हे करिष्यन् ।  
लक्षणहेत्वोः-अर्जयिष्यन् वसति । अर्जनलक्षणस्तद्धेतुको वा वास इत्यर्थः ।

१ अदन्त अङ्ग को मुक् का आगम हो आन परे रहते ।

२ विद्वात् से परे शतृ के स्थान में वसु आदेश हो विकल्प करके ।

३ शतृ और शानच् की सत्संज्ञा हो ।

४ लट् के स्थान में सत्संज्ञक प्रत्यय ( शतृ शानच् ) विकल्प से हों ।

५ क्तिप् प्रत्यय तक जो प्रत्यय कहेंगे वे तच्छील आदि अर्थ में होते हैं ।

विपममिव्याप्य वक्ष्यभाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ॥

तृन् ३ । २ । १३५ ॥

कर्ता कटान् ॥

जल्पमिक्षकुट्टलुण्टवृडः पाकन् ३ । २ । १५५ ॥

षः प्रत्ययस्य १ । ३ । ६ ॥

प्रत्ययस्याऽऽदिः ष इत्संज्ञः स्यात् । जल्पाकः । भिक्षाकः ।

कुट्टाकः । लुण्टाकः । वराकः । वराकी ॥

सनाशंसमिक्षाः डः ३ । २ । १६८ ॥

चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ॥

आजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः

किप् ३ । २ । १७७ ॥

विभ्राट् । भाः ॥

किपम्=आजभासेत्यादिकिपम् । कटानिति 'न लोके'ति षष्ठोन्निषेधात्कर्मणि द्वितीयैव । जल्पेति । एभ्यः पाकन् प्रत्ययः स्यात्तच्छीलादिषु । जल्पतीति जल्पाकः बहुगुणवाक् । भिक्षते तच्छीलो भिक्षाकः । कुट्टति तत्साधुकारी-कुट्टाकः । लुण्टति तच्छीलो लुण्टाक=चोरः । (कुटेरा) वृणीते इति वराकः । भित्त्वात् 'भित्तौरादिभ्यश्चे'ति ङीष् । वराकी । सनेति । एभ्य उप्रत्ययः स्यात् ।

विभ्राजते इति विभ्राट् । भासते इति भाः । धुर्वतीति धूः । धुर्वो

१ धातु से एन् प्रत्यय हो तच्छीलादि अर्थ में ।

२ जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ट और वृड इन धातुओं से परे पाकन् प्रत्यय हो तच्छीलादि अर्थ में ।

३ प्रत्यय का आदि भूत जो षकार उसकी इत्संज्ञा हो ।

४ सन्नन्तं, आशंसू और भिक्ष-धातु से उप्रत्यय हो ।

५ आज्, भास्, धुर्व, धुत-जि पृ-जु-और ग्रावपूर्वक रतु-इन धातुओं से किप् हो ।

राल्लोपः ६ । ४ । २१ ॥

रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ विडति । धूः । विधुत् ।

ऊर्क् । पूः । दृशिग्रहणस्याऽपकर्षाज्जवतेर्दीर्घः । जूः । आवस्तुत् ।

\*किञ्चिप्रच्छयायतस्तुकटश्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणश्च ।  
वक्षीति वाक् ॥

च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६ । ४ । १९ ॥

सतुकस्य छस्य वस्य च क्रमात् 'शू' 'ऊट्' इत्यादेशौ स्तोऽनु-  
नासिके क्वौ झलादौ च क्ति । पृच्छतीति प्राट् । आयतं  
स्तौतीति आयतस्तूः । कटं प्रवते कटपूः । जूरुक्तः । श्रयति  
हरिं श्रीः ॥

दानीशसयुयुजस्तुदसिसिचमिहपतदशनहः

करणे रे । २ । १८२ ॥

दाबादेः ध्रू स्यात्करणेऽर्थे । दात्यनेन । दात्रम् । नेत्रम् ॥

हिसायाम् । राल्लोप इति वलोपः । विद्योतते इति विधुत् । ऊर्जतीति ऊर्क्=  
अजम् । पिपत्तीति-पूः, पुरौ । दृशीति । 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' इत्यग्रिम-  
सूत्रात् 'दृश्यते' इत्यस्याऽपकर्षादित्यर्थः । कटपूरित्यत्र 'श्रुङ् गतौ' भ्वादिः ।  
जूरुक्तः=दृशिग्रहणाज्जवतेर्दीर्घः । जूः' इत्यादिनाऽनुपदमेवोक्तः ।

दाबादेः=दाप् लवने' 'णीञ् प्रापणे' 'शसुं हिंसायाम्' 'यु मिश्रणा-  
ऽमिश्रणयो' 'युजिर् योगे' 'षुट् स्तुतौ' 'तुद व्यथने', 'षिञ् बन्धने' 'षिच  
'क्षरणे' 'मिह सेचने' 'पत्ल पतने' 'दंश दशने' 'णह बन्धने' इत्येतेभ्यः ।

१ रेफ से परे जो छकार और वकार उनका लोप हो किपू परे रहते और  
झलादि कित् डित् परे रहते ।

२ वच्यादि से किप् हो, दीर्घ हो, और सम्प्रसारण का अभाव भी हो ।

३ तुक् विशिष्ट जो छकार और वकार उनको क्रम से श् और ऊट् ये आदेश  
हों अनुनासिक परे रहते, और विवप् एवं झलादि कित् डित् परे रहते ।

४ दाबादि जो धातु उनसे ध्रू प्रत्यय हो करण अर्थ में ।



तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ७ । २ । ९ ॥

एषां दशानां कृतप्रत्ययानामिण् न । शस्त्रम् । योत्रम् ।  
योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्रम् ।  
दंष्ट्रा । नद्धी ॥

अर्तिर्लूधूसूखनसहचर इत्रः ३ । २ । १८४ ॥

[ अर्त्यादिभ्यः धृन् स्यात्करणेऽर्थे ] अरित्रम् । लवित्रम् ।  
ध्रुवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ॥

पुवैः सञ्ज्ञायाम् ३ । २ । १८५ ॥

[ करणे पुवः घृन्स्यात्सञ्ज्ञायाम् ] पवित्रम् ॥ \*इति पूर्वकृदन्तम्\*

## अथोणादयः ।

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥ १ ॥ करोतीति  
कारुः । वातीति वायुः । पायुर्गुदम् । जायुरौषधम् । मायुः पित्तम् ।

योत्रं योक्त्रञ्च-‘जोता’ इति प्रसिद्धं काष्ठ, वन्धनरज्जुर्वा । स्तोत्रं-  
स्तुतिसाधनम् । तोत्रं-‘चातुक’ इति प्रसिद्धं ताडनसाधनम् । सेत्रं-वन्धन-  
रज्जुः । सेक्त्रं=सेचनपात्रम् । मेढ्रं=मेहनम् । पत्रं=वाहनम् । दंष्ट्रा=  
दंष्ट्रिका । ( ‘जाड’ ) नद्धी=चर्मरज्जुः । अरित्रं=केनिपातनम् । (डांडी)  
लवित्रं=छेदनशस्त्रम् । ध्रुवित्रं=मृगचर्ममयं व्यजनम् । कुटादित्वान्वित्वेन गुणा-  
ऽभावः । सवित्रं=सवनसाधनम् । खनित्रं=खननसाधनम् । (‘खनती, फरसा’)  
‘पवित्रं=कुशनिर्मितं पवनसाधनम् । (पवित्री) । \*इति पूर्वकृदन्तम्\* ।  
कारुः=शिल्पी । साधुः सजनः ।

१ ति-तु-त्र त-थ-सि-सु-स-र-और कस् इन दश कृतप्रत्ययों को इट् न हो ।

२ क धातु-लू-धू-सू-खन्-सह और चर् इन धातुओं से इत्र प्रत्यय हो करण में ।

३ करण अर्थ में पूव् धातु से इत्र प्रत्यय हो सञ्ज्ञा में ।

४ कृ-वा-पा-जि-मि-स्वदि-साधि और अश् धातु से उण् प्रत्यय हो ।

स्नादुः । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । आशु शीघ्रम् ॥

उणादयो बहुलम् ३ । ३ । १ ॥

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः । केचिद्विहिता अप्यूह्याः ।

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।

कायाद्विद्यादन्वन्धमेतेच्छास्त्रमुणादिषु ॥

\* इत्युणादयः \*

## अथोपरकृदन्तम्

तुमुन्पुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३ । ३ । १० ॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः । मान्त-

त्वादव्ययत्वम् । कृष्णं द्रष्टुं याति । कृष्णं दर्शको याति ॥

कालसमयवेलासु तुमुन् ३ । ३ । १६७ ॥

कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् स्यात् । कालः समयो वेला वा भोक्तुम् ॥

भावे ३ । ३ । १८ ॥

ऊहनप्रकारमेवाह-संज्ञास्त्विति । संज्ञाशब्देषु डित्यडवित्यादिषु धातुरूपाणि वेद्यानि, ततो धातो. परे प्रत्यायाश्चोहनीयाः, गुणाऽभावादिकार्यं दृष्ट्वा अनुवन्ध=ककाराद्यनुवन्धश्च विद्यात् । एतत्=एतावदेव, उणादिषु, शास्त्रम्=अनुशासनमस्तीत्यर्थः । यथा क्षिपेः रक्-क्षिप्रमिति । इति-उणादयः ।

१ उणादि जो प्रत्यय वे वर्तमान में बहुलता से हैं संज्ञा में ।

२ क्रियार्थ जो क्रिया [ तद्वाचक जो धातु ] वह उपपद रहते भविष्यत्-अर्थ में धातु से तुमुन् और पुल् प्रत्यय हैं ।

३ कालार्थक उपपद रहते धातु से तुमुन् प्रत्यय हो ।

४ सिद्धावस्थापन धात्वर्थ वाच्य हो तो धातु से धन् प्रत्यय हो ।

[ भाव दो प्रकार का होता है १ साध्यावस्थापन और २ सिद्धावस्थापन । ]

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्धञ् । पाकः ॥

अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् र् ३ । ३ । १९ ॥

कर्तृभिन्ने कारके धञ् स्यात् ॥

धाञि च भावकरणयोः ण ६ । ४ । २७ ॥

रञ्जेर्नलोपः स्यात् । रागः । अनयोः किम् ? । रज्यत्यस्मि-  
न्निति रङ्गः ॥

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्व कः ३ । ३ । ४१ ॥

एषु चिनोतेर्धञ् आदेश्व ककारः । उपसमाधानं राशीकर-

भाव इति । भावो द्विविधः, साध्यावस्थापन्नः, सिद्धावस्थापन्नश्च । तत्र  
साध्यावस्थापन्नः क्रियान्तराकाङ्क्षानुस्थापकः, यथा पचतीत्यादौ । सिद्धा-  
वस्थापन्नश्च 'पाक' इत्यादौ । अत्र हि सत्त्वभूतो भावः, लिङ्गसंख्यानव्ययोग्य-  
त्वात् । 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवत्प्रकाशते' इत्युक्तेः । पचनं पाक इति  
विग्रहः । संज्ञायामिति । घञन्तेन चेतसज्ञा गम्यते इत्यर्थः । कर्तृभिन्न  
कारकं च कर्मकरणादिकम् । नलोप इति । भावकरणयोरर्थयोर्विहिते घञि  
परतो रञ्जेर्नस्य लोप इत्यर्थः । रङ्गनं रागः । 'भावे' इति घञ् । रज्यतेऽन-  
नेति वा रागः । 'अकर्तरि च कारके' इति घञ् । ( रागः=रङ्ग ) । रज्यति  
लोकोऽस्मिन्निति रङ्गः=रङ्गस्थलम् । ( नाटक का स्टज ) । अधिकरणे घञ् ।

उपसमाधानामिति । उपसमाधानं हि धात्वर्थः, निवासादयस्तु प्रत्य-

१ कर्तृभिन्न कारक में घञ् हो, घञन्त स यदि संज्ञा गम्यमान हो तो ।

२ भाव और करण अर्थ में विहित जो घञ प्रत्यय वह परे रहते रज्ज् धातु  
के नकार का लोप हो ।

३ निवास, चिति शरीर और उपसमाधान इन अर्थों में चिञ धातु से घञ्  
प्रत्यय हो । और चिञ् धातु का जो आदिभूत चकार उसको ककार आदेश

णम् । निकायः । कायः । गोमयनिकायः ॥

ऐरच् ३ । ३ । ५६ ॥

इवर्णान्तादच् । चयः । जयः ॥

ऋदोरप् ३ । ३ । ५७ ॥

ऋवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाऽप् । करः । गरः । यवः । लवः । स्तवः ।

पवः । \*घञर्थे कविधानम् । प्रस्थः । विघ्नः ॥

ङित्तः क्त्रिः ३ । ३ । ८८ ॥

क्त्रेर्मन् नित्यम् । ४ । ४ । २० ॥

क्त्रिप्रत्ययान्तान्मस्यानिर्वृत्तऽर्थे । प्राकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् ।

डुपप् उप्त्रिमम् ॥

यार्थस्य कारकस्योपाधिभूताः । निचीयते इति निकायः=निवासः । चितौ तु-  
'आकायमग्निं चिन्वीते'त्युदाहृतव्यम् । आचीयन्तेऽस्मिन् इष्टका इति-आका-  
यम्=अग्निस्थलविशेषः, त चित्या सम्पादयेदित्यर्थः । शरीरे-चीयतेऽस्मिन्न-  
स्थ्यादिकमिति कायः । अधिकरणे घञ् । उपसमाधाने-गोमयनिकायः ।  
निचयनं निकायः । निचीयतेऽस्मिन्निति वा निकायः । अधिकरणे भावे घञ् ।

चयनं चयः, चीयतेऽसौ वा चयः । जयनं जयः । भावादावच् । करण  
करः । गरणं गरः । यूयते इति यवः । लूयते इति लवः । स्तवनं स्तवः ।  
पवनं पवः । भावेऽकर्तरि च कारकेऽप् । घञर्थे भावे अकर्तरि कारके च ।  
प्रतिष्ठन्ते जना धान्यादिकं वा अत्रेति-प्रस्थः=परिमाणभेदः, सातुर्वा ।  
अधिकरणे कः । आलोपः । विघ्नन्ति मनास्तत्र विघ्नः । अधिकरणं कः ।  
'गमहने'त्युपवालोपः । 'होहन्तेरिति कुत्वम् । द्वित इति । 'डु' इधस्यासौ द्वित्  
तस्मात्-द्वितः । द्वितो घातोः किं स्याद्भावे । वापेन निर्वृत्तम्-उप्त्रिमम् ।

१ इवर्णान्त जो धातु उपसे अच् प्रत्यय हो ।

२ ऋवर्णान्त उवर्णान्त जो धातु उनसे अप् प्रत्यय हो ।

३ घञर्थ ( भाव और कर्तृभिन्नकारक ) में क प्रत्यय हो ।

४ 'डु' इत्संज्ञक जिसका ऐसी जो धातु उससे क्त्रि प्रत्यय हो भाव में ।

५ क्त्रिप्रत्ययान्त जो धातु उससे मप् प्रत्यय हो निर्वृत्त अर्थ में ।

ईच्छा ३ । ३ । १०१ ॥

इषेर्निपातोऽयम् ॥

अ प्रत्ययात् ३ । ३ । १०२ ॥

प्रत्ययान्तेभ्यो घातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात् । चि-  
कीर्षा । पुत्रकाम्या ॥

गुरोश्च हलः ३ । ३ । १०३ ॥

गुरुमतो हलन्तात्स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात् । ईहा ॥

प्यास्श्रन्थो युच् ३ । ३ । १०७ ॥

अकारस्यापवादः । कारणा । हारणा ॥

नैपुंसके भावे क्तः ३ । ३ । ११४ ॥

ल्युट् च ३ । ३ । ११५ ॥

हसितम् । हसनम् ॥

तूरित्यादि । इच्छेति । इषेर्भावे शप्रत्ययो यगभावश्च निपात्यते । एषणम्-  
इच्छा । कर्तुमिच्छा-चिकीर्षा । पुत्रस्येच्छा पुत्रकाम्या ।

ईहनम्-ईहा=वेष्टा ।

अकारस्येति । अप्रत्ययादिति, 'गुरोश्च हल' इति च विहितस्या-  
कारस्याऽपवादोऽयमित्यर्थः । कारणेत्यत्र निप्रत्ययान्तत्वात्, आसनेत्यत्र  
गुरुमत्वाच्च अप्रत्ययः प्राप्तः ।

ल्युट्चेति । योगविभाग उत्तरार्थः ।

१ इष् घातु से भाव अथ में शप्रत्यय हो, यक् का अभाव भी निपातन से हो ।

२ प्रत्ययान्त जो घातु उससे अकार प्रत्यय हो स्त्रीलिङ्ग भाव में ।

३ गुरुमान् हलन्त जो घातु उससे अकार प्रत्यय हो स्त्रीलिङ्ग भाव में ।

४ प्यन्त-आस्-श्रन्थ घातुओं से युच् प्रत्यय हो ।

५ घातु से क्त प्रत्यय हो नपुंसकलिङ्ग भाव में ।

६ घातु से ल्युट् प्रत्यय भी हो नपुंसक भाव में ।

पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३ । ३ । ११८ ॥

छादेर्ध्वोऽपसर्गस्थ । ६ । ४ । ११९ ॥

द्विप्रभृत्युपसर्गस्थ छादेर्ह्रस्वो घे परे । दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन  
दन्तच्छदः । आकुर्वन्त्यस्मिन्नित्याकरः ॥

अवे तृस्तोर्ध्वम् । ३ । ३ । १२० ॥

अवतारः कृपादेः । अवस्तारो जवनिका ।

हलश्च । ३ । ३ । १२१ ॥

हलन्ताद्धञ् । घापवादः । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः ।

अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः ॥

ईधर्हुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् । ३ । ३ । १२२ ॥

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् । एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु  
खल् । तयोरेवेति भावे कर्मणि च । कृच्छ्रे-दुष्करः कटो भवता ।

प्रायेण धातोर्ध्वः स्यात्पुंसे सञ्ज्ञायाम् । 'करणाधिकरणयो'रित्यनुवर्तते ।  
एत्य कुर्वन्त्यस्मिन्व्यवहारमिति आकरः । 'खनिः स्त्रियामाकरः स्या'  
दित्यमरः । अव इति । अव-उपपदे आभ्यां करणाधिकरणयोः पुंसि  
सञ्ज्ञायां घन्स्थात् । घस्यापवादः । अवतरन्त्यनेन अवतारः अवतरण-  
मार्गः । अवस्तृणात्यनेन-अवस्तारः-आच्छादनपटः । हलश्चेति । हलन्ता-  
द्धञ् स्यात्पुंसि सञ्ज्ञायां करणाधिकरणयोः ।

एषु=ईधर्दादिषु त्रिषु । अकर्मकेभ्यो भावे, सकर्मकेभ्यस्तु कर्मणीति विवेकः ।

१ धातु से घप्रत्यय हो पुलिङ्ग में, सञ्ज्ञा में, प्राय करके ।

२ द्विप्रभृति उपसर्ग रहित जो छादि-धातु उमको ह्रस्व हो, घपरे रहते ।

३ अव उपपद रहते तृ और स्तृ धातु से करण और अधिकरण अर्थ में घञ्-  
प्रत्यय हो सञ्ज्ञा में पुलिङ्ग में ।

४ हलन्त धातुओं से घञ् प्रत्यय हो करण और अधिकरण अर्थ में ।

५ दुःख सुखार्थक रूप-दुष्-सु-ये उपपद रहने कृच्छ्र और अकृच्छ्र अर्थ  
में धातु से खल् प्रत्यय हो ।

अकृच्छ्रे-ईषत्कारः । सुकरः ॥

आतो युञ् । ३ । ३ । १२८ ॥

खलोऽपवादः । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ।

अलङ्घ्योः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा । ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेधाऽर्थयोरलङ्घ्योरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं  
पूजार्थम् । अमैवाव्ययेनेति नियमान्नोपपदसमासः । दो दद्वोः । अलं  
दत्वा । घुमास्थेतीत्यम् । पीत्वा खलु । अलङ्घ्योः किम् ? । मा  
कार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम् ? । अलङ्कारः ॥

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३ । ४ । २१ ॥

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा  
स्यात् । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति ॥

भवतेति । न लोकेति षष्ठीनिषेधात्कर्तरि तृतीया । आतो युजिति । आदन्ता-  
द्धातोर्युच्स्यादीषदादिभूपपदेषु । ईषत्पीयते इति ईषत्पानः । प्राचामिति ।  
'अलं रुदित्वा' 'अलं रोदनेने'ति रूपद्वयस्य 'वाऽसरूपोऽस्त्रिया'मिति सूत्रेणैव  
सिद्धे प्राचां ग्रहणस्य विकल्पार्थकत्वाऽभावादित्यर्थः ।

अमैवेति । अमैव तुल्यविधानं यदुपपदं तदेवाव्ययेन सह समस्यते  
इति तदर्थः । अलङ्घ्योरमा (णमुला) सह उपपदसञ्ज्ञायास्तुल्यविधानाऽभा-  
वात् तत्त्वान्तेन तयोरुपपदसमास इत्यर्थः । अलं दस्वेति । अपात्रे न  
देयमित्यर्थः । अलङ्कार इति । अलमित्यस्यात्र भूषणमर्थः ।

भुक्त्वेति । भोजनव्रजनयोर्धात्वर्थयोरेक एव देवदत्तः कर्ता, तत्र पूर्वका-  
लिकक्रिया भोजनमिति तद्वाचकाद्धातोः क्त्वाप्रत्ययः । क्त्वाप्रत्ययश्च- 'अव्यय-  
कृतो भावे' इति भावे । अतन्त्रमिति । 'समानकर्तृकयोः'रित्यत्र द्वित्वसंविधिविहित-

१ आदन्त धातु से युच् प्रत्यय हो ईषदादि उपपद रहते ।

२ प्रतिषेधार्थक जो अलं और खलु ये उपपद रहते धातु से क्त्वा प्रत्यय हो ।

३ समानकर्तृक जो धात्वर्थ उनमें जो पूर्वकालिक क्रिया उसमें विद्यमान धातु  
से क्त्वा प्रत्यय हो ।

न क्त्वा सेट् १ । २ । १८ ॥

सेट् क्त्वा कित् स्यात् । शयित्वा । सेट् किम् ? । कृत्वा ॥

रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १ । २ । २६ ॥

इवर्णोवर्णोपधाद्धलादे रलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः । धुतित्वा-धोतित्वा । लिखित्वा-लेखित्वा । व्युपधात्किम् ? । वर्तित्वा । रलः किम् ? । सेवित्वा । हलादेः किम् ? । एषित्वा । सेट् किम् ? । भुक्त्वा ॥

उदितो वा ७ । २ । ५६ ॥

उदितः परस्य क्त्व इड्वा स्यात् । शमित्वा-शा-त्वा । देवित्वा-धूत्वा । दधातेर्हिः । हित्वा ॥

जहतिश्च कित् ७ । ४ । ४३ ॥

हित्वा । हाडस्तु हात्वा ॥

समासेऽनपूर्वे क्त्वो ल्यप् ७ । १ । ३७ ॥

मित्यर्थः । तेन बहूनां समानकर्तृकाणां क्रियाणां सत्त्वेऽपि पूर्वकालिकक्रियावृत्ते-  
र्धातोः क्त्वाप्रत्ययो भवतीत्याशयः । किञ्चेति । तेन शयित्वेत्यत्र 'सार्वधातुकार्ध-  
धातुकथोरिति' गुणो भवत्येव । रल इति । उश्च इश्च वी, वी उपधे यस्यासौ  
व्युपधः, तस्मात्-व्युपधात् । शमित्वेति । 'शमु उपशमे' दिवादि । परस्मैपदी ।  
धूत्वेति । 'जृद्धोः शूडिति' वस्योठ् । हित्वा=त्यक्त्वा । 'गच्छती'ति शेषः ।  
हात्वा=गत्वा । 'पठती'ति शेषः ।

१ सेट् क्त्वा कित् नहीं हो ।

२ इवर्ण-उवर्ण उपधा में है जिसके ऐसा जो हलादि रलन्त धातु उससे परे  
जो सेट् क्त्वा और सच् ये विकल्प से कित् हों ।

३ उदित धातु से परे जो क्त्वा उसको इट् हो विकल्प से ।

४ धा धातु को हि आदेश हो तादि कित् परे रहते ।

५ ओहाक् धातु को हि आदेश हो क्त्वा प्रत्यय परे रहते ।

६ अन्यथ है पूर्वपद में जिसके ऐसा जो नन्मिन्न समास उस समास में  
क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश हो ।



अव्ययपूर्वपदऽनञ्समासे क्तो ल्यत्रादेशः स्यात् । तुक् ।  
प्रकृत्य । अनञ् किम् ? । अकृत्वा ॥

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३ । ४ । २२ ॥

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च ॥

नित्यंवीप्सयोः ८ । १ । ४ ॥

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये वीप्सायां च पदस्य द्वित्व स्यात् । आभी-  
क्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च । स्मारं-स्मारं नमति शिवम् ।  
स्मृत्वा-स्मृत्वा । पायं-पायम् । भोजं-भोजम् । श्रावं-श्रावम् ।

अन्यथैवकथमित्यंस्तु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३ । ४ । २७ ॥

एषु कृञो णमुल् स्यात्सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवमूतश्चेत् कृञ् ।  
व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः । अन्यथाकारम् । एवङ्कारम् । कथङ्कारम् ।  
इत्थङ्कारं भुङ्क्ते । सिद्धति किम् ? । शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ।

इति कृदन्तप्रक्रिया ।

तुक्=ह्रस्वस्य पिति कृती'ति सूत्रेण ल्याप परतस्तुक् । पूर्वविषये इति ।  
समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकालिकक्रियावृत्तेर्धातोणमुल्स्यादाभीक्ष्ण्ये=पौनः-  
पुन्ये द्योत्ये इत्यर्थः । तिङन्तेष्विति । तिङन्तेषु यथा- 'पठ-पठे'त्यादौ । अव्यय-  
संज्ञककृदन्तेषु- 'पीत्वा-पीत्वा' स्मारं स्मार'मित्यादौ । एवञ्च द्वित्वसिद्धिः ।

अन्यथाकारं भुङ्क्ते=अन्यथा भुङ्क्ते । अत्र कृञः प्रयोगो व्यर्थः । अर्थे  
विशेषाऽभावात् ।

\* इति उत्तरकृदन्तम् \*

१ आभीक्ष्ण्य अर्थ द्योत्य हो तो क्त्वा के विषय में णमुल् प्रत्यय हो ।

२ पद को द्वित्व हो आभीक्ष्ण्य और वीप्सा द्योत्य हो तो ।

३ अन्यथा 'एव' 'कथम्' और 'इत्थम्' ये उपपद हो तो कृञ धातु से  
णमुल् प्रत्यय हो । सिद्ध है अप्रयोग जिसका ऐसा कृञ् हो तो । अर्थात् कृञ्  
का प्रयोग यदि व्यर्थ हो तो ।

## अथ विगद्यार्थाः

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे

प्रथमा २ । ३ । ४६ ॥

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः । मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः । प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राधाधिक्ये परिमाणमात्रे सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् । प्रातिपदिकार्थमात्रे—उच्चैः । नीचैः । कृष्णः । श्रीः । ज्ञानम् । लिङ्गमात्रे । तट.—तटी—तटम् । परिमाणमात्रे—द्रोणो

प्रातिपदिकार्थेति । प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्गश्च परिमाणश्च वचनश्च—प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि । तान्येव—प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रं, तस्मिन्—प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे इति विग्रहः । मयूरव्यसकादि-त्वात्समासः । नियतेति । नियता उपस्थितिर्यस्यासौ नियतोपस्थितिकः । यस्मिन्प्रातिपदिके उच्चारिते यस्यार्थस्य नियमेनोपस्थितिः स प्रातिपदिकार्थ इत्यर्थः । शक्य इति यावत् । मात्रेति । तस्य चात्राऽवधारणमर्थः ।

प्रत्येकमिति । 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बद्धयते' इति न्यायात् । मात्रशब्देन कर्माधाधिक्ये प्रथमाया वारणेऽपि लिङ्गमात्राधिक्ये परिमाणमात्राधिक्ये च प्रथमा भवत्येव । लिङ्गपरिमाणग्रहणादित्याशयेनाह—लिङ्गमात्राधाधिक्ये इति । अत्र यद्यपि 'लिङ्गमात्रे' 'परिमाणमात्रे' इत्येवाक्षरार्थस्तथापि प्रातिपदिकार्थप्रतीतिरिति विना लिङ्गादिप्रतीतेरसम्भवालिङ्गमात्राधाधिक्ये इत्युक्तम् । अलिङ्गाः—उच्चैरादयः, नियतलिङ्गाः—कृष्णादयश्च 'प्रातिपदिकार्थमात्रे' इत्यस्योदाहरणम् । तत्रहि लिङ्गस्यापि नियतोपस्थितिकत्वात् उच्चैरित्यत्र प्रथमोत्पत्त्या च सुबन्तत्वेन पदत्वादुत्वविसर्गादिसिद्धिः ।

लिङ्गेति । अनियतलिङ्गास्तटादयस्तु लिङ्गमात्राधाधिक्ये' इत्यस्योदाहरणमित्यर्थः । द्राण इति । अत्रहि द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो ब्रीहि-

१ प्रातिपदिकार्थमात्रमें, लिङ्गमात्र का जहाँ आधिक्य हो वहाँ, और परिमाण मात्र में और सङ्ख्यामात्र में प्रथमा हो ।

गीहिः । वचनं सङ्ख्या । एकः । द्वौ । बहवः ॥

सम्बोधने च २ । ३ । ४७ ॥

प्रथमा स्यात् । हे राम ॥ इति प्रथमा ।

कर्तुरीप्सिततमं कर्म १ । ४ । ४९ ॥

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ॥

कर्मणि द्वितीया २ । ३ । २ ॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात् । हरिं भजति । अभिहिते तु

रित्यर्थः । सुप्रत्ययार्थे परिमाणे द्रोणरूपप्रकृत्यर्थोऽभेदेन संसर्गेण विशेषणम् । सुप्रत्ययार्थस्तु परिच्छेदपरिच्छेदकभावेन ब्रीहौ विशेषणमिति विवेकः । न चेह 'प्रातिपदिकार्थमात्रे' इत्येव प्रथमाऽस्तु इति वाच्यं, तथा सति परिच्छेदपरिच्छेदकभावस्य संसर्गविधया भानाऽयोगात् ।

वचनमिति । वाच्यवाचकयोः सङ्ख्यावचनयोरभेदाभ्यवसायेन सङ्ख्याया वचनशब्दप्रयोगः, तथैव पूर्वाचार्यव्यवहारात् । एक इति । इहोक्तार्थत्वाद्विभक्तेरप्राप्तौ सूत्रे वचनग्रहणमिति भावः । संबोधने चेति । मात्रग्रहणात्सम्बोधनाधिक्ये प्रथमायाः पूर्वेणाऽप्राप्तावेतद्वचनारम्भः ॥ 'कारके' इत्यधिकृतं । 'कर्तुं'रिति च 'कस्य च वर्तमाने' इति कर्तरि पष्ठौ । एवञ्च कर्त्ता आप्तुमतिशयेनेष्यमाणं कर्मेत्यर्थलाभः । कर्त्ता च भज्यादिधातूपात्तभजनादिव्यापाराश्रयः । स च केनाप्तुमिच्छतीति कारणाकाङ्क्षायां स्वविशेषणीभूतेन स्वनिष्ठव्यापारेणेत्यर्थालम्ब्यते । तदाह—क्रिययेति । 'अनभिहिते' इत्यधिकारादाह—अनुक्ते इति । अभिहिते=कृदादिना कर्मार्थकलकारादिना चोक्ते । सेव्यत

१ प्रातिपदिकार्थ की अपेक्षा से जहाँ सम्बोधन अर्थ अधिक प्रतीत होता हो वहाँ प्रथमा हो ।

२ कर्तृवृत्ति जो व्यापार, तज्जन्य जो फल, तदाश्रयत्वप्रकारिका जो इच्छा उस इच्छा का उद्देश्यताश्रयीभूत जो अर्थ वह कारकसंज्ञक होता हुआ कर्मसंज्ञक हो ।

३ अनुक्त कर्म में द्वितीया होय ।

कर्मादौ प्रथमा-हरिः सेव्यते । लक्ष्म्या सेवितः ॥

अकथितञ्च १ । ४ । ५१ ॥

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ॥

दुह्याच्पद्दण्डरुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिभथ्सुषाम् ।

कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥१॥

गां दोग्धि पयः । बलिं याचते वसुधाम् । [ अविनीतं  
विनयं याचते ] । तण्डुलानोदनं पचति । गर्गान् शतं दण्डयति ।

इति । अत्र कर्मणि लकारेण कर्मण उक्तत्वात्तत्र प्रथमा ।

सेवित इति । अत्र हरिरूपकर्मणः क्तनोक्तत्वात्प्रथमैव ।

केनाऽकथितमित्याकाङ्क्षायामाह अपादानादीति । अपादानं, सम्प्र-  
दानमधिकरणमित्यादिभिर्विशेषैरित्यर्थः । 'कर्मत्वेन च विवक्षित'मिति शेषः ।  
'कारक' मित्युक्तेश्च 'ब्राह्मणस्य पुत्रं पृच्छती' त्यत्र न ब्राह्मणस्य कर्मता ।

ननु 'नटस्य गाथा शृणोति' 'गृहे धान्यं निक्षिपती'त्यादौ नट-गृहादे-  
रपि कर्मत्वापत्तिरत आह-दुहिति । कर्मणा युज्यते इति कर्मयुक् । दुहादीना  
पूर्वाद्धोपात्तानां द्वादशानां, तथा नीप्रमृतीनां चतुर्णां दुग्धादिरूपमुख्यकर्मणां  
सह क्रियेया सम्बन्ध्यमानं गवादिकारकमेवाऽपादानादिविशेषैरविवक्षितं सत्  
कर्मसंज्ञकं भवति नान्यदिति परिगणनं कर्तव्यमित्यर्थः । गामिति । अत्र हि  
पयःकर्मकं गोसम्बन्धि दोहनमर्थः । पयोऽत्र मुख्यं कर्म, कर्तुरीप्सिततमत्वात् ।  
गौस्तु पयोनिमित्ततामात्रेणोपात्ता, तस्या अपादानत्वेनाऽविवक्षायां कर्मसंज्ञा ।  
याचत इति । अत्र प्रार्थनार्थस्य याचैर्वसुधा मुख्यं कर्म, तेन कर्मणा युक्तो  
बलिर्वस्तुतोऽधिपरि तत्त्वेनाऽविवक्षितोऽनेन कर्मसंज्ञको भवति । विनयमिति  
अनुनयार्थस्य याचेरविनीतो मुख्यं कर्म, अविनीतं विनयायाऽनुनयतीत्यर्थः ।  
तत्र विनयस्य तादर्थ्याऽविवक्षायामकथितत्वेत्यनेन कर्मता । पचतीति । निर्व-  
र्त्तनार्थस्य पचेरोदनो मुख्यं कर्म । ओदनं निर्वर्त्तयतीत्यर्थः । पक्वा एव तण्डुला  
ओदनपदवाच्याः । तण्डुलानान्तु करणत्वेनाऽविवक्षायामनेन कर्मता ।

१ अपादानादि विशेषो से अविवक्षित जो कारक वह कर्मसंज्ञक हो ।

व्रजमवरुणद्धि गाम् । माणवकं पन्थानं पृच्छति । वृक्षमव-  
चिनोति फलानि । माणवकं धर्मं ब्रूते शारित्वा । शतं  
जयति देवदत्तम् । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । देवदत्तं शतं  
मुष्णाति । ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा ।  
अर्थनिवन्धनेयं संज्ञा । वलिं भिक्षते वसुधाम् । माणवकं धर्मं  
भाषते अभिधत्ते वकीत्यादि ॥

इति द्वितीया ।

स्वातन्त्र्यः कर्ता १ । ४ । ५४ ॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ॥

साधकतमं करणम् १ । ४ । ४२ ॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् ॥

दण्डयतीति । ग्रहणार्थस्य दण्डेः शतं मुख्यं कर्म, गणाणां त्वपादनत्वा-  
ऽविवक्षायामनेन कर्मसंज्ञा ।

व्रजमिति । अत्र गौर्मुख्यं कर्म, व्रजस्य चाऽधिकरणत्वेनाऽविवक्षार्था  
कर्मसंज्ञा । सुधामिति । अत्र क्षीरनिधेर्गौणकर्मता, सुधाया मुख्यकर्मता ।

अर्थेति । दुहाद्यर्थकधातुभात्रस्येह ग्रहणमित्यर्थः । 'अहमपीदं चोद्यं चोद्ये'-  
इति तद्वाजसूत्रभाष्ये पृच्छिपर्यायस्य चुदेराप द्विकर्मकत्वदर्शनादिति भावः ।

स्वातन्त्र्येणेति । प्रधानीभूतघात्वर्थश्रयत्वं स्वातन्त्र्यम् । स्थात्यादीनां  
वस्तुतः स्वातन्त्र्याऽभावेऽपि वक्त्रा स्वातन्त्र्येण विवक्षणात्स्थाली पचतीत्यादयः  
प्रयोगाः । प्रकृष्टेति । यद्यापारानन्तरं क्रियायाः फलनिष्पत्तिस्तत्प्रकृष्टम् । तदुक्तं-

‘क्रियायाः फलनिष्पत्तिर्यद्यापारादनन्तरम् ।

विवक्ष्यते यदा यत्र करणं तत्तदा रघृतम् ॥’ इति ।

१ क्रिया में स्वातन्त्र्य से विवक्षित जो अर्थ उसकी कर्तृ संज्ञा हो ।

२ क्रिया की सिद्धि में प्रकृष्ट (अत्यन्त) उपकारक की करण संज्ञा हो ।

कर्तृकरणयोस्तृतीया २ । ३ । १८ ॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् । रामेण बाणेन  
हतो वाली ॥

इति तृतीया ।

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १ । ४ । ३२ ॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात् ॥

चतुर्थी सम्प्रदाने २ । ३ । १३ ॥

[ सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात् ] । विप्राय गा ददाति ॥

नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंबषड्योगाच्च २ । ३ । १६ ॥

एभिर्योगे चतुर्थी । हरये नमः । प्रजाम्यः स्वस्ति । अग्नये  
स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा । अलमिति पर्याप्त्यर्थप्रहणम् । तेन दैत्येभ्यो  
हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि ॥ \* इति चतुर्थी । \*

ध्रुवमपायेऽपादानम् १ । ४ । २४ ॥

हत इति । अत्र रामः कर्ता, बाणः-करणम् । दानस्य=दाघात्वर्थस्य ।  
इदमुपलक्षणं क्रियामात्रस्य । एवञ्च यत्किञ्चित्क्रियाकर्मणा कर्ता यमभिप्रैति=  
सम्बन्धाति, सम्बन्धुमीप्सति वा-तत्कारकं सम्प्रदानमित्यर्थः । तेन 'चैत्रो  
मैत्राय हितमुपदिशती'त्यादौ सम्प्रदानसंज्ञा सिध्यति ।

१ अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति हो ।

२ कर्ता दाघातु के कर्म से जिसके साथ सम्बन्ध करने की इच्छा करे वह  
सम्प्रदानसंज्ञक हो ।

३ सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति हो ।

४ नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलम् और वषट् इनके योग में चतुर्थी  
विभक्ति हो ।

५ अपाव (विश्लेष) की सिद्धि में जो ध्रुव (अवधिभूत) कारक उसकी  
अपादानसंज्ञा हो ।

अपायो—विश्लेषस्तस्मिन्साध्ये यद्ध्रुवम्=अवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात् ॥

अपादाने पञ्चमी २ । ३ । २८ ॥

[ अपादाने पञ्चमी स्यात् ] । आमादायाति । धावतोऽश्वात्पत-  
तीत्यादि ॥ इति पञ्चमी ।

षष्ठी शेषे २ । ३ । ५० ॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिः सम्बन्धः  
शेषस्तत्र षष्ठी । राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविव-  
क्षाया षष्ठ्येव । सता गतम् । सर्पिणो जानीते । मातुः स्मरति ।  
एधो दकस्योपस्कुरुते । भजे शम्भोश्चरणयोः ॥ इति षष्ठी ।

आधारोऽधिकरणम् । १ । ४ । ४५ ॥

अपायपदार्थमाह विश्लेष इति । ध्रुवं=स्थिरम् । एवञ्च प्रकृतधात्वर्थाना-  
नाश्रयत्वे सति तज्जन्यविभागाश्रयत्वं ध्रुवत्वमिति लभ्यते । ध्रुवधाऽर्थादवधि-  
रेवेत्यत आह—अवधिभूतमिति । तदेवं—प्रकृतधात्वर्थोभूतव्यापारानाश्रयत्वे  
सति तज्जन्यव्यापाराश्रयत्वमपादानत्वमिति फलितम् ।

उक्तादन्यः शेषः । कर्मादिप्रातिपदिकार्थपर्यन्ताश्च पूर्वमुक्ताः, तेषु द्वितीया-  
दीनां विधानादतो व्याचष्टे कारकेति ।

कर्मादीति । यथा नीलादिविशेषाऽविवक्षायां रूपवानिति प्रयुज्यते,  
विशेषविवक्षायान्तु 'नीलः' 'पीतः' इति प्रयुज्यते, तथा कर्मादीनामपि विशेष-  
तोऽविवक्षायां सम्बन्धमात्रविवक्षाया षष्ठीत्यपि बोध्यम् । सत्पुरुषसम्बन्धि  
गमनमित्यर्थः । एवमग्रेऽपि । एधः—कर्तुं, दकस्य=उदकस्य । उदकपर्यायो  
दकशब्दोऽप्यस्ति ।

१ अपादान में पञ्चमी विभक्ति हो ।

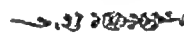
२ कारक और प्रातिपदिकार्थ से व्यतिरिक्त जो स्वस्वामीभाव जन्यजनकभाव  
आदि सम्बन्ध वह शेष कहलाता है, उसमें षष्ठी विभक्ति हो ।

३ कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठ क्रिया का जो आधार उसकी कारकसंज्ञा होकर  
अधिकरण संज्ञा हो ।

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात् ॥

सप्तम्यधिकरणे च २ । ३ । ३६ ॥

अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चकाराद्दूरान्तिकार्येभ्यः । औप-  
श्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते ।  
स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छास्ति । सर्वस्मिन्नात्मास्ति । वनस्य  
दूरे अन्तिके वा ॥ इति सप्तमी । इति विभक्त्यर्थाः ।



## अथ समासः

तत्रादौ केवलसमासः ।

समासः पञ्चधा । तत्र समसनं समासः । स च विशेष-

आध्रियतेऽस्मिन्नित्याधारः । सचाऽऽधारः कस्येत्याकाङ्क्षाया- कारकाधि-  
कारात्क्रियाया इति लभ्यते । अत्र हि-साक्षात्क्रियाधारयोः कर्तृकर्मसंज्ञाभ्यां  
वाधात्परम्परया क्रियाधारस्याऽधिकरणसंज्ञा भवति । तद्याचष्टे-कर्तृकर्मैति ।  
प्रकृते 'कटे आस्ते' इत्यादावासनक्रियायाः साक्षादाधारो देवदत्तादिः, तद्-  
द्वाराऽऽसनक्रियाधारस्य कटस्याधिकरणसंज्ञा । 'स्थाल्यां पचती' त्यत्र वि-  
क्लितिरूपफलाधारौदनद्वारा परम्परया विक्लितिरूपफलाश्रयतया स्थाल्या  
अधिकरणसंज्ञा । 'कटे आस्ते' इत्यौपश्लेषिकाधारोदाहरणम् । उप सप्तमि  
श्लेषः-सम्बन्धस्तकृत औपश्लेषिक इत्यर्थः ।

वैषयिकाधारमुदाहरति मोक्षे इति । अभिव्यापकाधारस्य  
'सर्वस्मिन्नात्माऽस्ती' त्युदाहरणम् ।

\* इति विभक्त्यर्थाः । \*

समसन समासः=सङ्क्षेपः । एकार्थोभावेन स्वार्थबोधकत्वञ्च तत्त्वम् । तत्र  
पञ्चविधेषु समासेषु । विशेषसंज्ञाभिः=अव्ययीभाव-तत्पुरुषादिसंज्ञाभिः,  
विनिर्मुक्त=रहितः, केवलसमासः=सामान्यसमास । स च सुप्पुपेत्यादि-

१ अधिकरण अर्थ में सप्तमी हो, चकारात् दूरार्थ और अन्तिकार्थ से भी हो ।



संज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः ॥ १ ॥ प्रायेण पूर्वपदार्थ-  
प्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः ॥ २ ॥ प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधान-  
स्तत्पुरुषस्तृतीयः ॥ तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः । कर्मधारयभेदो  
द्विगुः ॥ ३ ॥ प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्वतुर्थः ॥ ४ ॥  
प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ॥ ५ ॥

समर्थः पदविधिः २ । १ । १ ॥

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः ॥

प्रौढाकारात्समासः २ । १ । ३ ॥

‘कलाराः कर्मधारये’ इत्यतः प्राक् ‘समास’ इत्यधिक्रियते ॥

सह सुपा २ । १ । ४ ॥

सुप् सुपा सह वा समस्यते । समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन

विहितः । पूर्वपदार्थः अव्यादिपदार्थः प्रधानं यत्रेति विग्रहः । ‘अधिहरी’-  
त्यादावव्ययीभावे पूर्वपदार्थस्य प्राधान्यं स्फुटमेव । ‘उन्मत्तगङ्गा’मित्यादौ पूर्व-  
पदार्थप्राधान्याभावादुक्तं प्रायेणेति । ‘कृष्णश्रित’ इत्यादौ तत्पुरुषे पूर्वपदार्थ-  
प्राधान्याद्यभिचारेण प्रायपदोपादानम् । यथा नीलञ्च तदुत्पलञ्च नीलोत्पलम् ।  
कर्मधारयभेदेति । संख्यापूर्वो हि द्विगु । यथा पञ्चमूली । बहुव्रीहिर्यथा  
चित्रगुरिति । द्वित्रा इत्यादौ व्यभिचारात्प्रायेणेत्युक्तम् । द्वन्द्वो यथा रामकृष्ण-  
इति । ‘दन्तोष्ठ’ मिति द्वन्द्व उभयपदार्थप्राधान्याऽभावात्प्रायपदोपादानम् ।

पदमुद्दिश्य विधीयमानो विधिः पदविधिः । सामर्थ्येनैव एकार्थीभावं  
लक्षणं, तच्च-पृथगर्थानां पदानां विशिष्टैकार्थत्वरूपम् । यथा राजपुरुष-  
इत्यादौ ।

१ पद सम्बन्धी जो विधि सो समर्थाश्रित जानना ।

२ “कलाराः कर्मधारये” इस सूत्र से पूर्व पूर्व समास का अधिकार है ।

३ सुबन्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो विकल्प करके ।

सुपो लृक् । परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृतद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्त-  
धातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थाऽवबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च  
लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः ।  
पूर्वं अम् भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । 'भूतपूर्वं चर'डिति  
निर्देशात्पूर्वनिपातः । \*इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च । वागर्थो  
इव वागर्थविन ॥

इति केवलसमासः ॥ १ ॥

## अथाव्ययीगावसमासः

अव्ययीभावः २ । १ । ५ ॥

अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात् ॥

अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-वृद्धय-र्याभावा-

ऽत्यया-ऽसम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चा-द्यथा-

सुपो लृक् = सुपो धातुप्रातिपदिकयो'रिति सुपो लृक् । परार्थेति ।  
परस्य शब्दस्य योऽर्थस्तस्य शब्दान्तरेण यत्राऽभिधानं सा वृत्तिरित्यर्थः । यथा  
'राजपुरुष' इत्यत्र राजशब्देन वाक्यावस्थायामनुक्तः पुरुषशब्दार्थोऽभिधीयते  
इति भवति सा वृत्तिः । अन्ये तु प्रत्ययार्थान्तर्भावेन परपदार्थान्तर्भावेन वा  
यो विगिष्टोऽर्थः स परार्थः, सोऽभिधीयते येन तत्परार्थाभिधानमित्यर्थमाहुः ।  
वृत्त्यर्थेति । वृत्त्यर्थविषयकबोधजनकमित्यर्थः । लोकेऽर्थबोधनेच्छया प्रयुज्य-  
मानो लौकिकः । लोकेऽर्थबोधनेच्छयाऽप्रयुज्यमानः शास्त्रप्रक्रियामात्रोपयोगी  
अलौकिकः । पूर्वनिपातः = भूतशब्दस्य पूर्वनिपातः ।

\* इति केवलसमासः \*

१ इव के साथ समास हो और विभक्ति का अ, लोप हो ।

२ यह अधिकार सत्र है ।

ऽऽनुपूर्व्य-धौगपद्य-सादश्य-सम्प्रति-

साकल्या-ऽन्तवचनेषु २ । १ । ६ ॥

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः । प्रायेणाऽविग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणाऽस्वपद-विग्रहो वा । विभक्तौ,—‘हरि ङि अधि’ इति स्थिते ॥

प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १ । २ । ४३ ॥

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात् ॥

उपसर्जनं पूर्वम् २ । २ । ३० ॥

समासे उपसर्जनं प्राक्प्रयोज्यम् । इत्यधेः प्राक् प्रयोगः । सुपो लुक् । एकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः । ‘अव्ययीभावश्चे’त्यव्ययत्वात्सुपो लुक् । अधिहरि ॥

अव्ययीभाव इति । अत्र अव्ययमिति योगो विभज्यते, अव्ययं समर्थेन सह समस्यते सोऽव्ययीभाव इति च तदर्थः । अपदिशमित्युदाहरणम् । दिशयोर्मध्ये इति च विग्रहः । अविग्रहः=लौकिकविग्रहरहितः । समस्यमानयावत्पदाऽघटित इत्यर्थः । ‘विभक्तौ’—इत्यस्य ‘उदाहरण’मिति शेषः । ‘अधी’त्यस्य च विभक्त्यर्थेऽधिकरणे वर्तमानतया हरिशब्देन समासः ।

समासशास्त्र इति । यथा—प्रकृते समासशास्त्रम्—‘अव्ययं विभक्तौ’ति, तत्र प्रथमानिर्दिष्टम्—‘अव्यय’मिति—तदुपसर्जनसंज्ञमित्यधीत्यस्योपसर्जनसंज्ञा भवति ।

प्राक् प्रयोगः—तस्य समाससंज्ञाविधायकशास्त्रघटकप्रथमान्तपदजन्य-बोधविषयतयोपसर्जनत्वादुपसर्जनं पूर्वमिति शास्त्रेण हरिशब्दात्प्राक् प्रयोगः ।

१ विभक्त्यादि अर्थ में वर्तमान जो अव्यय सो सुबन्त के साथ नित्य-समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभावसंज्ञक हो ।

२ समास शास्त्र में जो प्रथमा निर्दिष्ट उसकी उपसर्जन संज्ञा हो ।

३ समास में उपसर्जन का पूर्वनिपात हो ।

## अव्ययीभावश्च २ । ४ । १८ ॥

अयं नपुंसकं स्यात् ॥

नाऽव्ययीभावादेतोऽन्त्यपञ्चम्याः २ । ४ । ८३ ॥

अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लृक्, तस्य पञ्चमीं विना अमादेशश्च स्यात् ॥ गाः पातीति गोपास्तस्मिन्नित्यधिगोपम् ॥

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २ । ४ । ८४ ॥

अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात् । अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा । कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम् । मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । यवनाना व्यृद्धिर्दुर्यवनम् । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । निद्रा सम्प्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि । विष्णोः पश्चादनुविष्णु । योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः ।

कृतद्धितसमासाश्चेति प्रातिपदिकसञ्ज्ञायामित्यर्थः । तस्मिन्=गोपि । अधिगोपम्, अधिगोपेन । अधिगोपम्, अविगोप इति ह्रस्वाणि ।

उपकृष्णेति । कृष्ण ङस् उपेत्यलौकिकविग्रहः । 'मद्र आम्-सु' इत्यलौकिकविग्रहः । 'यवन आम्-दुर' इत्यलौकिकविग्रहः । 'मक्षिका आम्-निर्' इत्यलौकिकं वाक्यम् । 'हिम ङस्-अति' इत्यलौकिकं वाक्यम् । 'निद्रा ङस्-अति' इत्यलौकिक वाक्यम् । 'हरि ङस्-इति' इत्यलौकिकं वाक्यम् ।

'विष्णु अस्-अनु' । 'रूप-ङस्-अनु' । 'अर्थ-अम्-प्रति' । 'शक्ति ङस्

१ अव्ययीभावसमास नपुंसक हो ।

२ अदन्त अव्ययीभाव समास से परे सुप् का लृक् नहीं हो, किन्तु उसको अमादेश हो, पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर ।

३ अदन्त अव्ययीभाव से परे तृतीया और सप्तमी को बहुलता करके अम् भाव हो ।

रूपस्य योग्यमनुरूपम् । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य  
यथाशक्ति ॥

अव्ययीभावे चाऽकाले ६ । ३ । ८१ ॥

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले । हरेः सादस्यं  
सहरि । ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत् सचक्रम् ।  
सदृशः संख्या ससखि । क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम् । तृणमप्यपरि-  
त्यज्य सतृणमत्ति । अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साऽग्नि ॥

नदीभिश्च २ । १ । २० ॥

नदीभिः सह संख्या समस्यते । ऋत्तमाहारे चायमिष्यते ।  
पञ्चगङ्गम् । द्वियमुनम् ॥

तद्धिताः ४ । १ । ७६ ॥

आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ॥

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५ । ४ । १०७ ॥

शरदादिभ्यश्च स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः समीप-

यथा' इत्यलौकिकं वाक्यम् ।

'हरि-टा-सह' । 'ज्येष्ठ ङस् अनु' । 'चक्र टा सह' । 'सखि टा  
सह' । 'क्षत्र ङस् सह' । 'तृण टा सहेत्यलौकिकं यथायथं बोध्यम् । अग्नि  
टा सहेत्यलौकिकम् ।

अयं = नदीभिश्चेति समासः । पञ्चानां गङ्गानां समाहारः पञ्चगङ्गम् ।  
द्वयोर्यमुनयोः समाहार इति विग्रहः । 'पञ्चन् जस् गङ्गा जस्' इति 'द्वि-औ

१ सह को स आदेश हो अव्ययीभाव में । काल में नहीं हो ।

२ नदीवाचक समर्थ सुबन्त के साथ संख्या वाचक समास को प्राप्त हो ।

३ पञ्चमाध्याय की समाप्ति पर्यन्त इसका अधिकार है ।

४ अव्ययीभाव में शरदादिगणपठित शब्दों से समासान्त टच् प्रत्यय हो ।

मुपशरदम् । प्रतिविपाशम् । \*जर०।य। जर२च । उपजरसमित्यादि॥

अनश्च ५ । ४ । १०८ ॥

अनन्तादव्ययीभावाद् च स्यात् ॥

नैस्तद्धिते ६ । ४ । १४४ ॥

नान्तस्य भस्य टेलोपस्तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम्

नैपुंसकादन्यतरस्याम् ५ । ४ । १०९ ॥

अनन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाद् च स्यात् । उपचर्मम् ।

उपचर्म ॥

क्षयः ५ । ४ । १११ ॥

क्षयन्तादव्ययीभावाद् च स्यात् । उपसमिधम् । उपसमिह् ॥

इत्यव्ययीभावः ॥ २ ॥

‘यमुना आ’ इति चाऽलौकिकविग्रहः । ‘शरद् अस् उपे’त्यलौकिकं वाक्यम् । सामीप्येऽव्ययीभावः । विपाशं विपाशं प्रतीति प्रतिविपाशमित्यत्र वीप्सायामव्ययीभावः । ‘विपाश-अम्-प्रति’इत्यलौकिकं वाक्यम् । विपाट्-नदी-विशेषः । (व्यासतदी) । जरसः समीपम्-उपजरसम् । एवं-उपराजम् ‘उप-समिध’मित्यादि बोध्यम् । ‘आत्मनी’त्यध्यात्मम् । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः ।

\* इत्यव्ययीभावसमासः \*

१ अनन्त अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय हो ।

२ नान्त भस्यक की टि का लोप हो तद्धित परे रहते ।

३ अनन्त जो क्लीब, तदन्त जो अव्ययीभाव, उससे टच् हो विकल्प करके ।

४ क्षयन्त अव्ययीभाव स समासान्त टच् विकल्प से हो ।

## अथ तत्पुरुषः

तत्पुरुषः २ । १ । २२ ॥

अधिकारोऽयं प्राग्वहुव्रीहेः ॥

द्विगुश्च २ । १ । २३ ॥

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात् ॥

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्ता-

पन्नैः २ । १ । २४ ॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुवन्तैः सह वा समस्यते, स च तत्पुरुषः । कृष्णं श्रितः—कृष्णश्रित इत्यादि ॥

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २ । १ । २० ॥

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनाऽर्थेन च सह वा प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः । धान्येनाऽर्थो धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् ? । अक्षणा काणः ॥

कैर्तृकारणे कृता बहुलम् २ । १ । २२ ॥

प्रागिति । 'शेषो बहुव्रीहि'रित्यतः प्रागित्यर्थः । तत्कृतेति लुप्ततृतीयाकम् । तत्पदेन द्वितीयान्तार्थो गृह्यते । अत्र च वाक्यद्वयम् । 'तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेन सह वा समस्यते' इत्येक वाक्यम् । तृतीयान्तमर्थशब्देन सह समस्यते' इत्यपरम् ।

१ 'शेषो बहुव्रीहिः' इसके पूर्व तक तत्पुरुष का अधिकार है ।

२ द्विगु की भी तत्पुरुष संज्ञा हो ।

३ द्वितीयान्त जो है वह श्रितादिप्रकृतिकसुवन्तसमर्थ के साथ विकल्प करके समास को प्राप्त हो । और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ।

४ तृतीयान्त जो है सो तृतीयान्तार्थकृत जो गुणवचन उसके साथ और अर्थ शब्द के साथ समास को प्राप्त हो ।

५ कर्ता में व करण में जो तृतीया वह कृदन्त के साथ बहुलता से समास को प्राप्त हो ।

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् ॥ हरिणा  
त्रातो हरित्रातः । नखैर्भिन्नो नखमिन्नः । कृद्ग्रहणे गतिकारक-  
पूवक्ष्यापि ग्रहणम् । नखनिर्मिन्नः ॥

चतुर्थी तदर्थार्थवलिहितसुखरचितैः २ । १ । ३६ ॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यद्वाचिना, अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा  
प्राग्वत् । यूपाय दारु यूपदारु । \*तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव  
एवेष्टः । तेनेह न-रन्धनाय स्थाली । \*अर्थेन नित्यसमासो  
विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् । द्विजार्थः सूयः । द्विजार्था

प्राग्वत्=समस्यते स तत्पुरुषः । हरिणेति कर्तरि तृतीया । नखैरिति  
च करणे तृतीया । ननु प्रत्ययग्रहणपरिभाषया कृदन्ततदादेरेव ग्रहणाद्धि-  
आदिपदैर्नखादिशब्दानां समासेऽपि निर्भिन्नादिशब्दैः सह समासो न स्यादत  
आह कृद्ग्रहणे इति । एवञ्च 'नि'रित्युपसर्गस्य गतिश्चेति गतित्वेन तत्पूर्व-  
स्यापि 'निर्भिन्न' इत्यस्य कृदन्तत्वेन ग्रहणात्समाससिद्धिः । 'तदर्थे'ति छुप्त-  
तृतीयान्तम् । यूपदार्पित्यत्र--चतुर्थ्यन्तं यूपार्थेति तदर्थो यस्तत्त्वरूपः,  
तदर्थं यत्-(दारु)काष्ठं, तद्वाचकः शब्दो दारुशब्दः, तेन सह चतुर्थ्यन्तस्य  
यूपशब्दस्य समास इत्याशयः । तदर्थेति । तदर्थपदेन च प्रकृतिविकृतिभाव  
एवेष्टः प्राह्य, यथा दारुयूपयोरस्ति प्रकृतिविकृतिभावः, दारुणा हि प्रकृति-  
भूतेन यूपो निर्मायते । यत्र तु प्रकृतिविकृतिभावो नास्ति तत्र नाऽनेन  
समासः । यथा-रन्धनार्थं स्थालीति । अत्र हि रन्धनस्थाल्योर्न प्रकृति-  
विकृतिभावः ।

विशेष्यलिङ्गता=विशेष्यलिङ्गानुसारेणैव लिङ्गमत्र भवति । यथा द्विजार्था  
यवागूरित्यत्र यवागूशब्दस्य विशेष्यस्य स्त्रीलिङ्गनया द्विजार्थेत्यत्रापि स्त्रीलि-

१. चतुर्थ्यन्ताय के वास्ते जो हैं तद्वाचक के साथ, और अर्थादि के साथ  
चतुर्थ्यन्त का समास हो विकल्प से और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञक हो ।

२ तदर्थ करके प्रकृतिविकृतिभाव ही लिया जाता है ।

३ अर्थ के साथ नित्य समास हो और विशेष्यलिङ्गता भी हो ।



यवागूः । द्विजार्थं पयः । भूतवलिः । गोहितम् । गोसुखम् ।  
गोरक्षितम् ॥

पञ्चमी अयेन २ । १ । ३७ ॥

चोराद्वयं चोरभयम् ॥

स्तोकांन्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि स्तेन २ । १ । ३९ ॥

पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः छ । ३ । २ ।

अलुगुत्तरपदे । स्तोकान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्याशा-  
दागतः । दूरादागतः । कृच्छ्रादागतः ॥

पृष्ठी २ । २ । ८ ॥

[ पष्ठयन्तं ] सुवन्तेन प्राग्वत् । राजपुरुषः ॥

पूर्वापराधरो तस्मैकदेशिनैकाधिकरणे २ । २ । १ ॥

ज्ञतेति भावः । अर्थशब्दस्य नित्यपुंस्त्वात् 'परवलि'मिति सूत्रादत्र नित्यपुं  
लिङ्गता प्राप्ता, तद्वाधनाय च विशेष्यलिङ्गतोक्तिः ।

भूताय बलि.—भूतवलिः । गवे हित गोहितम् । पञ्चमीति । पञ्चम्यन्तं  
भयप्रकृतिकेन सुवन्तेन सह वा समस्यते स तत्पुरुषः । स्तोकेति । स्तोकार्थ-  
प्रकृतिकपञ्चम्यन्तं कृच्छ्रप्रकृतिकपञ्चम्यन्तं च क्तान्तप्रकृतिकेन सुवन्तेन सह वा  
समस्यते स तत्पुरुष इत्यर्थः । पञ्चम्या इति । एभ्यः पञ्चम्या अलुगुत्तरपदे  
इत्यर्थः ।

पृष्ठीति । पष्ठयन्तं, सुवन्तेन सह वा समस्यते स तत्पुरुष इत्यर्थः ।

पूर्वापरेति । एकदेशिगणदोऽवयविवाची । एकदेशगणदस्याऽवयवे रूढ-

१ पञ्चम्यन्त जो है सो भयप्रकृतिक सुवन्त समर्थ के साथ समास को प्राप्त  
हो विकल्प करके ।

२ स्तोकार्थप्रकृतिकपञ्चम्यन्त और कृच्छ्रप्रकृतिकपञ्चम्यन्त वह क्तान्तप्रकृतिक  
सुवन्त के साथ समास को प्राप्त हो विकल्प करके और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ।

३ स्तोकादिकेन परे जो पञ्चमी उसका अलुक् हो उत्तरपद परे रहते ।

४ पष्ठयन्त जो प्रातिपदिक वह सुवन्त के साथ समास को प्राप्त हो विकल्पसे ।

५ अवयवी के साथ पूर्वादिक का समास हो वह अवयवी यदि एकत्व सख्या  
निशिष्ट हो तो ।

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसंख्याविशिष्टश्चे-  
दवयवी । षष्ठीसमासापवादः । पूर्वं कायस्य पूर्वकायः । अपरकायः ।  
एकाधिकरणे किम् ? । पूर्वस्थानाणाम् ॥

अर्धं नपुंसकम् २ । २ । २ ॥

समांशवाच्यार्धशब्दो नित्यं क्लीबे, स प्राग्वत् । अर्धं पिप्पल्याः  
अर्धपिप्पली ॥

सप्तमी शौण्डैः २ । १ । ४० ॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्ड  
इत्यादि । द्वितीया-तृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभ-  
क्तीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेयः ॥

दिव्यसंख्ये संज्ञायाम् २ । १ । ५० ॥

‘संज्ञायामेवे’ति नियमार्थं सूत्रम् । पूर्वेषुकामशमी । सप्तर्षयः ।

त्वात् । एकाधिकरणे इत्यस्यार्थमाह—एकत्वेति । अवयविनि एकाधिकरणे=  
एकत्वसंख्याविशिष्टे सतीत्यर्थः । नन्विदं सूत्रं व्यर्थं, कर्मधारयेणैव सिद्धेः,  
ऊर्ध्वकायवदत् आह—षष्ठीसमासापवाद इति । एवञ्च ‘कायपूर्व’ इत्यादि-  
रूपनिरासाय किलेदं सूत्रमित्याशयः । नित्यमिति । ‘पुंस्यर्धोऽर्धं समेऽशके’  
इत्यमरोक्तेः । ‘अर्धपिप्पली’प्यत्र परवल्लिङ्गत्वात्स्त्रीत्वम् ।

शौण्डः = कुशलः । ‘द्वितीयाश्रिते’त्यत्र द्वितीयेति, तृतीया तत्कृते’त्यत्र  
तृतीयेति, ‘चतुर्थी तदर्थे’त्यादौ च चतुर्थीत्यादीनां योगविभागादित्यर्थः ।  
अन्यत्र=सूत्रोक्तातिरिक्तस्थलेऽपि ।

१ नपुंसक लिङ्ग में नित्य वर्तमान जो समांशवाची अर्धशब्द वह अवयवि-  
वाचक समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो विकल्प करके ।

२ सप्तम्यन्त जो है सो शौण्डादिप्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो ।

३ दिव्यवाचक और संख्यावाचक जो शब्द उनका यदि तत्पुरुष समास हो तो  
संज्ञा में ही हो ।

तेनेह न-उत्तरा वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः ॥

तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च २ । १ । ५१ ॥

तद्वितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये  
दिक्सङ्ख्ये प्राग्वत् । पूर्वस्यां शालायां भवः । पूर्वा शाला इति समासे  
जाते-**सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः ।**

द्विपूर्वपदादसंज्ञायां जः ४ । २ । १०७ ॥

अस्माद्धवावर्थे जः स्यादसंज्ञायाम् ॥

तद्वितेष्वचामादेः ७ । २ । ११७ ॥

जिति णिति च तद्वितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । यस्येति  
च । पौर्वशालः ॥ पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ  
**द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ॥**

अत्र हि संज्ञाया अभावान्न समासः । वृत्तिमात्रे=तद्वितवृत्तौ समास-  
वृत्तौ च । यद्यपि 'स्त्रियाः पुंव'दिति सूत्रेणापीदं रूपं सिध्यति, तथापि प्रति  
पदोक्तत्वादिह तदुपन्यासः ।

**आदेरच इति ।** आदिरच् प्रकृते पकारोत्तरोकारः ।

पूर्व ङि-शाला ङि-इत्यत्र भवरूपतद्वितार्थस्य विषयतया-'तद्वितार्थे'ति  
समासे 'पूर्व-शाल' इति जाते-'दिक्पूर्वपदा'दिति अप्रत्यये आदिबृद्धौ यस्येति  
लोपे तद्वितान्ततया प्रातिपदिकत्वे स्वाद्युत्पत्तौ कृत्वे विसर्गे च 'पौर्वशाल'  
इति सिध्यति । अत्र अवान्तरतत्पुरुषस्य महाविभाषया विकल्पे प्राप्ते

१ तद्वितार्थ के विषय में, उत्तरपद परे रहते, और समाहार यदि वाच्य हो  
तो दिग्वाचक और सख्या वाचक जो हैं वे सुबन्त समर्थ के साथ समास को प्राप्त हों।

२ दिक्पूर्वपद में है जिसके ऐसा जो समास उससे भवावर्थ में न प्रत्यय  
हो संज्ञा में ।

३ जित् णित् तद्वित परे रहते अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ।

५ उत्तरपद परे रहते द्वन्द्व और तत्पुरुष समास नित्य हों ।

गौरतद्धितलुकि ५ । ४ । ९२ ॥

गोऽन्तात्तत्पुरुषादृच् स्यात् समासान्तो, न तु तद्धितलुकि ।  
पञ्चगवधनः ।

तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १ । २ । ४२ ॥

संख्यापूर्वो द्विगुः २ । १ । ५२ ॥

‘तद्धितार्थे’त्यत्रोक्तस्त्रिविधः सङ्ख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात् ॥

द्विगुरेकवचनम् २ । ४ । १ ॥

द्विग्वर्थः समाहार एकवत्स्यात् ॥

स नपुंसकम् २ । ४ । १७ ॥

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । पञ्चानां गवां  
समाहारः—पञ्चगवम् ॥

उत्तरपदे परतो द्वन्द्वस्य तत्पुरुषस्य च विकल्पो न भवतीत्यर्थक वचन-  
मेतत् । विकल्पे तु तत्पुरुषप्रयुक्तजभावे ‘पञ्चगोधन’ इत्यनिष्टं रूपमपि  
स्यादित्याशयः ।

तत्पुरुष इति । समानाधिकरणशब्दोऽत्रार्थ आद्यजन्तः । समानाधि-  
करणपदकस्तत्पुरुषः कर्मधारयसंज्ञको भवतीत्यर्थः । समानविभक्तिकतया  
च समानाधिकरण्यम् ।

पञ्चगवमित्यत्र तद्धितार्थेति समासः । विशेषणं=भेदकं । यथा नीलादि-

१ गोशब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो, तद्धित का यदि लुक्  
न हुवा हो तो ।

२ संख्यापूर्वक जो तत्पुरुष उसकी द्विगु संज्ञा हो ।

३ समानाधिकरणपदक जो तत्पुरुष उसकी कर्मधारयसंज्ञा हो ।

४ द्विग्वर्थ जो समाहार वह एकवत् हो ।

५ समाहार में जो द्विगु और द्वन्द्व वह नपुंसक हो ।

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २ । १ । ५७ ॥

भेदकं समानाधिकरणेन भेदेन बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलं  
नीलोत्पलम् । बहुलग्रहणात्क्वचिन्नित्यम्-कृष्णसर्पः । क्वचिन्न-रामो  
जामदग्न्यः ॥

उपमानानि सामान्यवचनैः २ । १ । ५८ ॥

घन इव श्यामो घनश्यामः । \*शाकैर्पार्थिवादीनां सिद्धये  
उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम् । शाकप्रियः पार्थिवः-शाकपार्थिवः ।  
देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मणः ॥

नञ् २ । २ । ६ ॥

नञ् सुपा सह समस्यते ॥

नलोपो नञः ६ । ३ । ७३ ॥

नञो नस्य लोप उत्तरपदे । न ब्राह्मणः-अब्राह्मणः ॥

तस्मान्नुडञि ६ । ३ । ७४ ॥

पदम् । विशेष्यं=भेदम् । यथा-उत्पलादिकम् । समानाधिकरणेन=समान-  
विभक्तिकेन । बहूनर्थान् लातीति बहुलम् । बाहुल्यञ्च यथेच्छं लक्ष्यानुरोधा-  
त्प्रवृत्तिः । घन इवेति । अत्र घनशब्द उपमानवाचकः, श्यामशब्दश्च  
सामान्यवर्धवचनः । उत्तरपदलोपस्य=मध्यमपदलोपस्य । तेन प्रियपूर्व-  
कादिमध्यमपदानां लोपः सिध्यति ।

१ भेदक ( विशेषण ) जो है वह समानाधिकरण भेद ( विशेष्य ) के साथ  
बहुलता करके समास को प्राप्त हो ।

२ उपमान जो है वह सामान्यवचन के साथ समास को प्राप्त हो ।

३ शाकपार्थिवादि के सिद्धि के लिये उत्तरपद का लोप हो ।

४ नञ् जो है वह समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो विकल्प करके ।

५ नञ् के नकार का लोप हो उत्तरपद परे रहते ।

६ उक्त हुवा है नकार जिसका ऐसा जो नञ् उससे उत्तर जो अजादि उसको  
नुट् का आगम हो ।

लुप्तनकारात्तत्र उत्तरपदस्याऽजादेनुडागमः स्यात् । अनश्चः ।

‘नैकधे’त्यादौ तु ‘न’शब्देन सह ‘सुप्सुपे’ति समासः ॥

कुम्भगतिप्रादयः २ । २ । १८ ॥

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः ॥

ऊर्ध्वादिच्चिडाचश्च १ । ४ । ६१ ॥

ऊर्ध्वादयश्च्यन्ता ङाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः ।

ऊरीकृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटीकृत्य । सुपुरुषः ॥ \*प्रादयो

गताद्यर्थे प्रथमया । प्रगत आचार्यः—प्राचार्यः । \*अत्यादयः

क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया । ‘अतिक्रान्तो माला’मिति विग्रहे

एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते १ । २ । ४४ ॥

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्थानं तु तस्य पूर्व-

निपातः ॥

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १ । २ । ४८ ॥

उपसर्जनं यो गोशब्दः, स्त्रीप्रत्ययान्तश्च तदन्तस्य प्रातिपदि-

नैकधेत्यत्र न नञ्शब्दः किन्तु ‘न’ शब्द इति नात्र नलोपादेः प्रसङ्गः,  
नञोऽभावात् । एवञ्च नञ्शब्देन समासं अनेकधेतिरूपन्तु भवत्येवेति ध्येयम् ।

प्राचार्यः । गुरोरपि गुरुरित्यर्थः ।

१ कु और गतिसंज्ञक और प्रादि ये समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों ।

२ ऊर्धादि जो च्यन्त और ङाजन्त इनकी क्रिया के योग में गतिसंज्ञा हो ।

३ प्रादि गताद्यर्थ में प्रथमान्त के साथ समास को प्राप्त हों ।

४ अत्यादि क्रान्ताद्यर्थ में द्वितीयान्त के साथ समास को प्राप्त हों ।

५ विग्रह में जो नियतविभक्तिक उसकी उपसर्जन संज्ञा हो किन्तु उसका पूर्व निपात न हो ।

६ उपसर्जन जो गोशब्द और स्त्रीप्रत्ययान्त, तदन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो ।

कस्य ह्रस्वः स्यात् । अतिमालः । \*अवादयः कुष्टाद्यर्थे तृतीयया ।  
 अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः । \*पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे  
 चतुर्थ्या । परिलानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः । \*निरादयः  
 क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या । निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः-निष्कौशाम्बिः ॥

तत्रोपपदं सप्तमीत्यम् ३ । १ । ९२ ॥

सप्तम्यन्ते पदे 'कर्मणी'त्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत्कुम्भादि,  
 तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात्, [ तस्मिंश्च सत्येव वक्ष्यमाणः प्रत्ययः  
 स्यात् । ]

उपपदमितिङ् २ । २ । १९ ॥

उपपदं सुवन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते । अतिङन्तश्चायं

कौशाम्बी-वत्सदेशराजधानी । सा च प्रयागस्य निकटे इदानीं 'कोसम'  
 इति प्रसिद्धा ।

सूत्रस्थं 'सप्तमीत्य'मिति पदं व्याचष्टे-सप्तम्यन्ते इति । 'उपपद'मित्य-  
 न्वर्थसंज्ञाबलादाह-तद्वाचकमिति । अन्वर्थसंज्ञाबलादेव संज्ञाविधावपि  
 सप्तमीग्रहणेन सप्तम्यन्तं गृह्यते । 'घातो'रित्यधिकारबलाच्च सजिहिते घात्व-  
 धिकारे इत्यर्थो लभ्यते, तेन 'चिल छुडी'त्यत्र छुडन्ते उपपदे इत्यर्थो न  
 भवति । 'तत्रे'त्यंश व्याचष्टे-तस्मिन्निति । उपपदे सतीत्यर्थः 'तत्र'ग्रहणा-  
 भावे तु 'घः कर्मणि घृन्' इत्यादाविव 'कर्मण्य'णित्यादावपि कर्मण्यभिधेयेऽणि-  
 त्यर्थः स्यात्, तथा च कर्तरि अण्प्रत्ययो न स्यात् ।

'कर्मण्य'णित्यत्रेदं सूत्रं स्वयं सङ्गमयति-कर्मणीति । 'कर्मण्य'णित्यत्र  
 सप्तम्यन्तं पदं-कर्मणीति, तद्वाच्यं-कुम्भादि, तद्वाचकं कुम्भपदमुपपद-  
 संज्ञमिति समन्वयः ।

१ सप्तम्यन्त जो कर्मणीत्यादि, पद उसमें वाच्यत्वेन स्थित जो कुम्भादि,  
 तद्वाचक जो पद, उसकी उपपद संज्ञा हो ।

२ उपपद जो वह सुवन्त, वह समर्थ के साथ नित्य समास को प्राप्त हो ।

समासः । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । अतिङ् किम् ? मा भवान् भूत् । 'मा'ङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम् । गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः । व्याघ्री । अश्वक्रीती । कच्छपीत्यादि ।

तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः ५ । ४ । ८६ ॥

प्रकृते-कुम्भ अस् कारेत्यलौकिक, कुम्भं करोतीति च लौकिकं विग्रहं वाच्यम् ।

अतिङ् किमिति । 'सुपे'त्यधिकारात्मकमतिङ् हणेनेति प्रश्नः । अतिङ् हणं ज्ञापयति- 'सुपे'त्येतच्चेहानुवर्त्तते इत्याशयेनाह-मा भवानिति । समासाऽ-भावसूचनाय भवानिति मध्ये उपात्तम् । अतिङ् हणात्सुपेत्येतच्चेहानुवर्त्तते, 'कुगतिप्रादय' इत्यत्रापि- 'कुप्रादयः' 'गति'रिति योगं विभज्य आद्यस्य-कुप्रादयः । सुवन्ताः सुवन्तेन सह समस्यन्ते इत्यर्थः । 'गति'रित्यंशे तु अतिङ् हणमपकृष्यते, सुपेति निवृत्त, तेन गतिसञ्ज्ञकं सुवन्तमतिङ् हन्तेन सह समस्यते इत्यर्थः । तेन गत्युपपदयोः समासः प्राक्सुबुत्पत्तेरिति लभ्यते । स्थालीपुलाकन्यायेन च परिभाषासिद्धिस्तदाह-गतिकारकेति । व्याजिघ्रतीति व्याघ्री । 'आतश्चोपसर्गे' इति कः । आचो प्रशब्देन, आप्रस्य च विशब्देन गतिसमासः । स यदि प्रशब्दस्य सुवन्ततामपेक्षते, तर्हि सुबुत्पत्तये सङ्ख्याविपेक्षणात्ततः प्राग्लिङ्गयोगाल्लिङ्गबोधकश्चाप् स्यात्, जातिलक्षणो ङीष् तु न स्यात्, प्रशब्दमात्रस्य जातिवाचकत्वाऽभावात् । सति टापि चाऽदन्तत्वविरहाच्च ततो ङीष् प्राप्तिरिति सुबुत्पत्तेः पूर्वं समास आस्थितः । एवञ्च 'व्याघ्री'त्यत्र समासानन्तरं जातिवाचकत्वाच्चीप् सिध्यतीत्याशयः ।

अथैन क्रीतेत्यत्र 'कर्तृकरणे' इति सुबुत्पत्तेः पूर्वं समासे 'क्रीतात्करणे'ति ङीष् । सुबुत्पत्त्यनन्तरं समासे तु टापि ङीप् न स्याददन्तत्वविरहात् ।

कच्छेन पिवतीत्यत्र सुपीति योगविभागात्कः । सुबुत्पत्तेः पूर्वमुपपदसमासे जातिलक्षणो ङीष् । सुबुत्पत्त्यनन्तरं समासे तु पूर्वं टापि अदन्तत्वविरहाच्चातिलक्षणो ङीष् न स्यात् ।

१ संख्या और अव्यय है आदि में जिसके और अङ्गुली शब्द है अन्तमें जिसके ऐसा जो तत्पुरुष उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो ।



सङ्ख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात् । द्वे अङ्गुली  
प्रमाणमस्य षड्गुलम् । निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम् ॥

अहःसर्वैकेदशसङ्ख्यान्पुण्याच्च रात्रेः ५ । ४ । ८७ ॥

एभ्यो रात्रेर्च् स्याच्चात्सङ्ख्याव्ययादेः । अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् ॥

रात्राह्राहाः पुंसि २ । ४ । २० ॥

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव । अहश्च रात्रिश्च—अहोरात्रः ।  
सर्वरात्रः । सङ्ख्यातरात्रः । संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् । द्विरात्रम् ।  
त्रिरात्रम् ॥

राजाहःसखिभ्यष्टच् ५ । ४ । ९१ ॥

एतदन्तात्तत्पुरुषाङ्च् स्यात् । परमराजः ॥

आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६ । ३ । ४६ ॥

‘द्व्यङ्गुल’मित्यत्र तद्धितार्थ इति समासः । ‘प्रमाणे लो द्विगोनित्य’मिति  
मात्रचो लुगिति वृत्तिरुक्तम् । द्वयसचो लुगिति तु मनोरमाकृतः ।

निर्गतेति । ‘निरादयः कान्ताद्यर्थे’इति समासः । अहो रात्रिरिति तत्पुरुषस्था-  
ऽसम्भवात् । ‘हेमन्तजिशिरावहोरात्रे चै’त्यत्र द्वन्द्वे समासान्तदर्शनाच्चैत्याशयः ।

सर्वा रात्रिरित्यत्र ‘पूर्वकाले’ति समासः । परमश्चासौ राजा च परमराजः ।  
टचि ‘नस्तद्धिते’ इति टिलोपः । द्वयोः रात्र्योः समाहारो द्विरात्रम् ।  
‘तद्धितार्थे’ति समासः । एवमग्रेऽपि ।

१ अहन् सर्व एकदेश सख्यात और पुण्य शब्दों परे जो रात्रि शब्द उससे  
अच् प्रत्यय हो, चकार से संख्या और अव्यय आदि में हो तो भी रात्रि शब्द  
से अच् प्रत्यय हो ।

२ रात्र और अह अह एतदन्त जो द्वन्द्व और तत्पुरुष वह पुँलिङ्ग में हो ।

३ राजन् अहन् और सखि शब्दों में है अन्त में जिसके पेटा जो तत्पुरुषसमान  
हृत्से टच् हो ।

४ महत् शब्द को आकार अन्तादेश हो, समानाधिकरण उत्तरपद परे  
रहत और जातीयर् प्रत्यय परे रहते ।

महतः आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे  
जातीये-च परे । महाराजः । 'प्रकारवचने जातीयर्' । महा-  
प्रकारो महाजातीयः ॥

अष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६ । ३ । ४७ ॥

आत्स्यात् । द्वौ च दश च द्वादश । अष्टाविंशतिः ॥

त्रैलोक्यः ६ । ३ । ४८ ॥

त्रयोदश । त्रयोविंशतिः । त्रयस्त्रिंशत् ॥

परवल्लिङ्गं द्रव्यतत्पुरुषयोः २ । ३ । २६ ॥

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात् । कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरी-  
कुक्कुटाविमौ । अर्धपिप्पली । \*द्विगुं प्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिस-  
मासेषु प्रतिषेधो वाच्यः । पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः—पञ्चकपालः  
पुरोडाशः ॥

महाश्वासौ राजा च महाराजः । 'सन्मह'दिति समासः ।

प्रकारेति । अनेन सूत्रेण 'महाजातीय' इत्यत्र जातीयप्रत्यये रूपमिद-  
मित्यर्थः ।

अबहुव्रीह्यशीत्योः किम् ? द्वित्रा, द्वयशीति । सन्धिबेलादिषु त्रयो-  
दशीति पाठात्सान्तोऽयमादेशः । त्रैरिति । अस्य सूत्रस्य—त्रिशब्दस्य  
त्रयस् स्यात्पूर्वविषये इत्यर्थः ।

प्रतिषेधः=परवल्लिङ्गतायाः प्रतिषेधः । अयं द्विगुसमासः, 'तद्विगतार्थे'ति  
समासस्य हि सङ्ख्यापूर्वस्य द्विगुसंज्ञाविधानात् । कपालशब्दस्य क्लीबतया  
नपुंसकलिङ्गे प्राप्तेऽनेन निषेधाद्विशेष्यनिष्पन्नता ।

१ द्वि और अष्टन् शब्द को आत्व होय संख्या परे रहते । पर बहुव्रीहि  
समास में और अशीति शब्द परे रहते न होय ।

२ त्रि शब्द को त्रयस् आदेश होय तत्पुरुष समास में ।

३ द्रव्य और तत्पुरुष में परपद की तरः लिङ्ग होता है ।

४ द्विगुसमास और प्राप्त आपन्न अलम्पूर्वक समास और गतिसमास इनमें  
परपद की तरह लिङ्ग न होय ।

प्राप्ताऽऽपन्ने च द्वितीयया २ । २ । ४ ॥

[प्राप्तापन्ने च द्वितीयया] समस्येते । अकारश्चानयोरन्तादेशः ।  
प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः । आपन्नजीविकः । अलं कुमार्यै-  
अलङ्कुमारिः । अत एव ज्ञापकात्समासः । निष्कौशाम्निः ॥

अर्धर्चाः पुंसि च २ । ४ । ३१ ॥

अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः । अर्धर्चः । अर्ध-  
र्चम् । एवं ध्वज-तीर्थ-शरीर-मण्डप-यूप-देहा-ऽङ्कुश-पात्र-सूत्रादयः ।  
सामान्ये नपुंसकम् । भृदु पचति । प्रातः कमनीयम् ॥

इति तत्पुरुषसमासप्रकरणम् ॥ ३ ॥

**अथ बहुव्रीहिः**

शेषो बहुव्रीहिः २ । २ । २३ ॥

अधिकारोऽयं प्राग्बन्धात् ॥

अत एव ज्ञापकात्=प्रतिषेधार्थमादेव । समासः=अलंशब्देन समासः ।  
ऋचोऽर्धम्-अर्धर्चः । 'ऋचपूर'विति अप्रत्ययः । अर्धर्चा इति । सूत्रपद्यादिशब्दा  
नामत्र गणे पाठेऽपि पुंसि प्रयोगो न भवति, शिष्टैरप्रयोगादिति प्रयोगविदः ।

सामान्ये=लिङ्गविशेषाऽविवक्षायाम् । अनियतलिङ्गविषयकमिदम् । तेन  
आदिः पचतीत्यादौ न क्लीबता ।

\* इति तत्पुरुषसमासप्रकरणम् । \*

द्वितीयाश्रितेत्यादिना यस्य त्रिकस्य स्वौजसित्यस्य विशिष्य समासो नोक्तः  
स शेषः । प्रथमान्तमिति यावत् । यद्यपि 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमये'ति प्रथमया  
ऽपि पूर्वं समास उक्त एव, तथाऽपि सूत्रकृता प्रथमान्तेन समासानुक्तेर्न दोषः । ननु

१ प्राप्त और आपन्न ये जो हैं सो द्वितीयान्त के साथ समास को प्राप्त हो  
और अकार अन्तादेश हो ।

२ अर्धर्चादि जो शब्द वे पुलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में हों ।

३ 'चार्थे बन्धः' इस सूत्रतक बहुव्रीहि का अधिकार है ।

अनेकमन्यपदार्थे २ । २ । २४ ॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ॥

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २ । २ । ३५ ॥

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । अत एव ज्ञापकाध्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः ॥

हलन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् दे । ३ । ९ ॥

हलन्ताददन्ताच्च सप्तम्या अलृक् । कण्ठेकालः । प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः । ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतपशू रुद्रः । उद्धृतौदना स्थाली । पीताम्बरो हरिः । वीरपुरुषको ग्रामः ।

प्रथमान्तस्यैव समासे 'कण्ठेकाल' इत्यादौ सप्तम्यन्तस्य कथं समास इति चेत्सप्तमीविशेषणे बहुव्रीह्याविति ज्ञापकात्सप्तम्यन्तेनापि बहुव्रीहिरित्यर्थस्य लभेनाऽदोषात् । अन्येति । समस्यमानपदातिरिक्तपदस्यार्थे इत्यर्थः । कण्ठे कालो यस्यासौ-कण्ठेकालः=नीलकण्ठः । प्राप्तोदक इति । ग्रामकर्मकप्राप्तिकर्तृ उदकं विग्रहार्थः, उदककर्तृकप्राप्तिकर्मेति समासार्थः । अनड्वुत्कर्तृकोद्धहनकर्मीभूतो रथ इति विग्रहार्थः, रथकर्मकोद्धहनकर्ताऽनड्वानिति च समासार्थः । रुद्रसम्प्रदानकोपहरणकर्मीभूतः पशुरिति विग्रहार्थः । पशुकर्मकोपहरणसम्प्रदानं रुद्र इति समासार्थः ।

स्थाल्यवधिकोद्धहरणकर्मीभूत ओदन इति विग्रहार्थः । ओदनकर्मकोद्धरणावधिः स्थालीति च समासार्थः । एवमग्रेऽपि ध्येयम् ।

पीतमम्बरं यस्यासौ-पीताम्बरः । वीरपुरुषा यस्मिञ्चसौ-वीरपुरुषकः ।

१ अनेक जो प्रथमान्त अन्यपद के अर्थ में वर्तमान वह विकल्प से समास को प्राप्त हो, और वह समास बहुव्रीहि सञ्ज्ञक हो ।

२ सप्तम्यन्त और विशेषण का बहुव्रीहि समास में पूर्व निपात हो ।

३ हलन्त और अदन्त से परे जो सप्तमी उसका अलृक् हो ।

\*प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः । प्रपतित-  
पर्णः । प्रपर्णः । \*नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ।  
अविधमानपुत्रः । अपुत्रः ॥

स्त्रियाः पुंवाच्योऽपि पुंस्कादन्तूङ् समानाधिकरणे  
स्त्रियाश्च पूरणी प्रियादिषु च । ३ । ३४ ॥

भाषितपुंस्कात्-अनूङ्-ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः ।  
निपातनात्पञ्चम्या अलुक् , पष्ठ्याश्च लुक् । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते  
यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य  
पुंवाचकस्यैव रूपं स्यात्, समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु  
'शेषाद्विभाषेति वैकल्पिकः कप् । प्रादीति । प्रादिभ्यः परं यद्वातुजं तदन्तस्य  
पदान्तरेण बहुव्रीहिसमासो व्याख्येयः । उत्तरपदस्य=पूर्वपदान्तर्गतस्योत्तरपदस्य  
धातुजस्य वा लोपश्चेति वार्तिकार्थः । यथा 'प्रपतितपर्ण' इत्यादौ प्राद्युत्तरं  
धातुजं-पतित इति, तदन्तं प्रपतित इति, तस्य पर्णशब्देन सह बहुव्रीहिसमासः ।  
पतितशब्दस्य च वा लोप इति भावः । प्रपतितानि पर्णानि यस्यासौ-प्रपतितपर्ण  
इति विग्रहः । नञ इति । नञः परेषामरथ्यर्थवाचिनां पदान्तरेण बहुव्रीहिर्व्या-  
ख्येयः, अस्त्यर्थवाचिनान्तु वा लोप इत्यर्थः । अत्रोभयत्र वैकल्पिकोत्तरपद-  
लोपमात्रं विधेयः, समासेस्तु 'अनेकमन्ये'ति सूत्रेणैव सिद्ध इति विवेकः ।

अलुक्=भाषितपुंस्कादन्तूङ् इत्यत्र पञ्चम्या अलुक् । पष्ठ्याश्च लुक् । एवञ्च  
'भाषितपुंस्कादन्तूङ्' इति प्रयोग उचित इति भावः । भाषितः पुमान्यस्मिन्नर्थे  
स भाषितपुंस्कः, सोऽस्त्यस्य तद्भाषितपुंस्कमिति अर्श आद्यजन्तोऽयमित्या-  
शयेन व्याचष्टे तुल्ये इति ।

१ प्रादि-से परे-जो धातुज, तदन्त का पदान्तर के साथ समास हो और  
उत्तरपद का लोप हो विकल्प से । २ नञ् से परे अस्त्यर्थ वाचक शब्द उसका  
अन्यपद के साथ समास हो और उत्तर पद का लोप हो विकल्प करके ।

२ प्रवृत्तिनिमित्त, तुल्य होते हुए जो भाषितपुंस्क उससे परे ऊङ् का अभाव  
है जिसमें ऐसा जो स्त्रीवाचक शब्द उसको पुंवाचक की तरह रूप हो, समानाधि-  
करण स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद परे रहते । पूरणी प्रियादि परे रहते न हो ।

पूरण्यां प्रियादौ च परतः । 'गोस्त्रियो'रिति ह्रस्वः । चित्रगुः । रूप-  
वद्भार्यः । अनूङ् किम् ? । वामोरुभार्यः ॥ पूरण्यान्तु

अपूरणीप्रमाणयोः ५ । ४ । ११६ ॥

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत्स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहे-  
रस्यात् । कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः—कल्याणीपञ्चमा रात्रयः ।  
स्त्री प्रमाणी यस्य स—स्त्रीप्रमाणः । अप्रियादिषु किम् ? । कल्याणीप्रिय  
इत्यादि ।

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्पञ्च ५ । ४ । ११३ ॥

स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात् । दीर्घसक्थः ।  
जलजाक्षी । स्वाङ्गात्किम् ? । दीर्घसक्थि शकटम् । स्थूलाक्षा वेणु-  
यष्टिः । 'अक्ष्णोऽर्शना'दिति वक्ष्यमाणोऽच् ॥

द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५ । ४ । ११५ ॥

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ । द्विमूर्ध्नः । त्रिमूर्ध्नः ॥

चित्रा गावो यस्यासौ चित्रगुः । रूपवती भार्या यस्यासौ—रूपवद्भार्यः ।  
पञ्चमीति । अत्र पूरण्या परतो न पुंवत् । पञ्चमीशब्दो हि पञ्चानां पूरणो  
पञ्चमीति रीत्या पूरणप्रत्ययान्तः । कल्याणी । प्रिया यस्यासौ—कल्याणीप्रियः=  
मृतस्वपत्नीप्रियः । कल्याणशब्देन मृता भार्याऽभिधीयते । यथा—'कल्याणमाय'  
इति लोके विधुरे प्रयोगः ।

दीर्घ सक्थिनी यस्यासौ दीर्घसक्थः । 'सक्थि क्लीब पुमानूरु' इत्यमरः ।  
जलेज इव अक्षिणी यस्याः सा—जलजाक्षी=कमललोचना ।

स्थूलाक्षेति । अक्षिशब्देनाऽत्र अक्षिसदृशग्रन्थिरभिधीयते । द्वौ मूर्ध्नौ

१ पूरणार्थप्रत्ययान्तं जो स्त्रीलिङ्गं तदन्त से और प्रमाण्यन्त बहुव्रीहि से अप्  
प्रत्यय हो ।

२ स्वाङ्गवाची सक्थि और अक्षि, तदन्त बहुव्रीहि से षच् प्रत्यय होय ।

३ द्वि त्रि शब्द है पूर्व में जिसके ऐसा जो मूर्धन् शब्द उस से ष प्रत्यय  
हो बहुव्रीहि समास में ।

अन्तर्विहिभ्यां च लोमः ५ । ४ । ११७ ॥

आभ्या लोमोऽस्याद्वहुव्रीहौ । अन्तर्लोमः । बहिर्लोमः ॥

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५ । ४ । ११८ ॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानत्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद्वहुव्रीहौ ।

व्याघ्रस्येव पादावस्य—व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्यः किम् ? । हस्तिपादः ।

कुसूलपादः ॥

संख्यासु पूर्वस्य ५ । ४ । १४० ॥

पादस्य लोपः स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ । द्विपात् । सुपात् ॥

उद्भिभ्यां काकुदस्य ५ । ४ । १४८ ॥

लोपः स्यात् । उत्काकुत् । विकाकुत् ॥

पूर्णाद्भिभाषा ५ । ४ । १४९ ॥

पूर्णाकाकुत् । पूर्णाकाकुदः ॥

यस्यासौ द्विभूयः । अन्तर्लोमानि यस्यासौ—अन्तर्लोमः ।

कुसूलेति । कुसूलस्येव पादावस्य कुसूलपादः । कुसूलं—धान्यावपनम् ।

( 'बखारी 'ओवरी' ) । स्थौल्येन चात्र सादृश्यम् । द्वौ पादावस्य द्विपात् ।

शोभनौ पादावस्य सुपात् । उत्=उर्ध्वं काकुद यस्यासावुत्काकुत् ।

काकुदं=तालु । विकृत विशिष्टं वा काकुदं यस्येति विग्रहः ।

पूर्णं काकुदं यस्यासौ—पूर्णाकाकुत् । सुष्ठु हृदयं यस्यासौ—सुहृत् । दुष्टं

१ अन्तर् और बहिर् शब्द हैं पूर्व में जिसके ऐसा जो लोमन् शब्द उस से अप् प्रत्यय होय बहुव्रीहि समास में ।

२ हस्त्यादि से भिन्न उपमानवाचक शब्द से परे जो पादशब्द उसका लोप होय, बहुव्रीहि समास में ।

३ संख्या और सु है पूर्व में है जिसके ऐसा जो पाद शब्द उसका लोप हो बहुव्रीहि में ।

४ उत् और वि से परे जो काकुद शब्द उसका लोप हो बहुव्रीहि समास में ।

५ पूर्ण से परे जो काकुद शब्द उसका लोप हो विकल्प करके ।

सुहृद्दुर्द्वदौ मित्राऽमित्रयोः ५ । ४ । १५० ॥

सुदुर्म्या हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृत्-मित्रम् ।

दुर्द्वत्-अमित्रः ॥

उरःप्रभृतिभ्यः कप् ५ । ४ । १५१ ॥

सोऽपिदादौ ८ । ३ । ३८ ॥

पाशकल्पककाम्येषु [ परेषु ] विसर्गस्य सः ॥

कस्कादिषु च ८ । ३ । ४८ ॥

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः । इति सः ।

व्यूढोरस्कः ॥

इणोः षः ८ । ३ । ३९ ॥

इण उत्तरस्य विसर्गस्य षः स्यात्-पाशकल्पककाम्येषु परेषु ।

प्रियसर्पिष्कः ॥

निष्ठाँ २ । ३ । ३६ ॥

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्व स्यात् । युक्तयोगः ॥

हृदय यस्यासौ दुर्द्वत् ।

व्यूढमुरो यस्याऽसौ व्यूढोरस्कः । व्यूढं=विशालं, सुदृढञ्च । प्रियं सर्पि-  
र्यस्यासौ प्रियसर्पिष्कः । योगो युक्तो येनासौ-युक्तयोगः ।

१ सु और दुर् से परे जो हृदय शब्द उसको हृद् आदेश हो मित्र और  
अमित्र अर्थ में ।

२ उरः प्रभृति गणपठित जो शब्द उनसे कप् प्रत्यय हो ।

३ विसर्जनीय को सकार हो पाश कल्प क काम्य परे रहते ।

४ कस्कादिगण पठित जो शब्द तद्धटक जो इण् उससे परे जो विसर्ग  
उसको पत्व हो । इण् उत्तर से अन्य विसर्ग को सत्व हो ।

५ इण् से उत्तर जो विसर्ग उसको ष हो पाश कल्प क काम्य परे रहते ।

६ निष्ठान्त का बहुव्रीहि समास में पूर्व निपात हो ।



शेषादिभाषा ५ । ४ । १५४ ॥

अनुक्तसमासान्ताद्धव्रीहेः कच्चा । महायशस्कः । महायशः ॥

इति बहुव्रीहिसमासप्रकरणम् ॥ ४ ॥

८००३

अथ द्वन्द्वः

चार्थे द्वन्द्वः २ । २ । २९ ॥

अनेकं सुवन्तं चाऽर्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः । समु-  
च्चयाऽन्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः । तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्वे'-  
ति परस्परनिरपेक्षस्याऽनेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः । 'भिक्षामट-  
गा चानये'त्यन्यतरस्याऽऽनुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः । अनयो-

महद्यशो यस्यासौ—महायशस्कः ।

'अनेकमन्यपदार्थे'इत्यतोऽनेकमित्यनुवर्तते, 'सुवामन्त्रिते' इत्यतः सुबिति  
च । 'समास' इति 'विभाषे'ति चाधिक्रियते, तदाह—अनेकमिति ।

अनेकस्य=प्रकृते ईश्वरस्य गुरोश्च, एकस्मिन्=भजनादिक्रियायाम् ।  
गुरोर्भज्योः परस्परनिरपेक्षत्वञ्च एकस्येश्वरस्य भजनक्रियायामन्वयोत्तर-  
मपरस्य गुरो क्रियापदावृत्त्या तत्रान्वयादेव । आनुषङ्गिकत्वम्—अनुद्देश्यत्वम् ।  
अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेऽन्यतरस्य प्राधान्यमपि लभ्यते, तच्च स्वसम्बन्धि-  
क्रियाया अवश्यकर्तव्यत्वेनैवेत्यवधेयम् । भिक्षामटस्यादौ हि अदर्शनाद्रामना-  
नयञ्चपि भिक्षामटस्येवेति भिक्षा प्रधानं, गवानयनमप्रधानम् ।

१ अनुक्तसमासान्त जो बहुव्रीहि उससे कप् प्रत्यय होय ।

२ अनेक जो सुवन्त चार्थ में वर्तमान सो समास को प्राप्त हों विकल्प से ।

रसामर्थ्यात्समासो न । 'धवखंदिरौ छिन्धी'ति मिलितानामन्वय इतरे-  
तरयोगः । 'संज्ञापरिभाष'मिति समूहः—समाहारः ।

राजदन्तादिषु धरम् २ । २ । ३१ ॥

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात् । दन्तानां राजानो राजदन्ताः ।

\*धर्मादिव्यनियमः । अर्थधर्मौ । धर्मार्थावित्यादि ।

द्वन्द्वे धि २ । २ । ३२ ॥

द्वन्द्वे धिसंज्ञं पूर्वं स्यात् । हरिश्च हरश्च हरिहरौ ॥

अजाद्यदन्ताम् २ । २ । ३३ ॥

द्वन्द्वे पूर्वं स्यात् । ईशकृष्णौ ॥

अल्पाचतरम् २ । २ । ३४ ॥

शिवकेशवौ ॥

पिता मात्रा १ । २ । ७० ॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते । माता च पिता च पितरौ ।  
मातापितरौ वा ॥

मिलितानाम्=परस्परापेक्षाणाम् । 'उद्धृतावयवभेदसमूहस्वरूपाणा'मिति  
शेषः । अन्वयः=एकधर्माविच्छिन्नत्वेनाऽन्वयः । असामर्थ्यात्=एकार्थी-  
भावाऽभावात् । संज्ञा च परिभाषा च अनयोः समाहारः संज्ञापरिभाषम् ।  
समूहः=अनुद्धृतावयवभेदः समूहः । अर्थश्च धर्मश्च-धर्मार्थौ, अर्थधर्मौ च ।

अजादिं च तददन्तश्च—अजाद्यदन्ताम्=अजाद्यकारान्तं शब्दस्वरूपम् ।  
यथा ईशशब्दोऽजादिरकारान्तश्चेति तस्य पूर्वनिपातः ।

१ राजदन्तादि में पूर्व प्रयोगार्हं जो शब्द उसका पर प्रयोग हो ।

२ द्वन्द्व समास में धिसंज्ञक का पूर्व निपात हो ।

३ द्वन्द्व समास में अजादि-अदन्त का पूर्वनिपात हो ।

४ द्वन्द्व समास में अल्पाचतर का पूर्वनिपात हो ।

५ मातृ शब्द के साथ कहा गया जो पितृ शब्द वह विकल्पसे शेष रहता है ।

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाज्ञानाम् २ । ४ । २ ॥

एषां द्वन्द्व एकवत् । पाणिपादम् । मार्दङ्गिकवैणविकम् ।  
रथिकाऽऽस्वारोहम् ॥

द्वन्द्वोऽप्युदपहान्तात्समाहारे ५ । ४ । १०६ ॥

चवर्गान्तादपहान्ताच्च द्वन्द्वादप्युत्थात्समाहारे । वाक् च त्वक्  
च वाक्त्वचम् । त्वक्त्वजम् । शमीदृषदम् । वाक्त्विषम् । छत्रोपा-  
नहम् । समाहारे किम् ? । प्रावृट्शरदौ ॥

इति द्वन्द्वसमासप्रकरणम् ॥ ५ ॥

## अथ रागोराणां

ऋक् पूरब्धूः पथामानदो ५ । ४ । ७४ ॥

‘अ-अनक्षे’ इतिच्छेदः । ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययो-

द्वन्द्वश्चेति । प्राण्यज्ञानां तूर्याज्ञानां सेनाज्ञानाञ्च द्वन्द्व एकवदित्यर्थः ।  
पाणी च पादौ च एषां समाहारः—पाणिपादम् । मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य  
मार्दङ्गिकः । वैणुवादनं शिल्पमस्य वैणविकः । मार्दङ्गिकाश्च वैणविकाश्च एषां  
समाहारः मार्दङ्गिकवैणविकम् । स्त्रक्=माल्यम् । त्रिवाहमण्डपे हवनार्थं  
शमीपत्राणि आरोहरणार्थञ्च दृषदुपनीय स्थाप्यते, तत्रायं प्रयोगः । शमी  
च दृषच्च अनयोः समाहारः शमीदृषदम् । ( शमी=‘जांटी’ ) । वाक्  
च त्विच् च अनयोः समाहारः वाक्त्विषम् । त्विच्=कान्तिः । छत्रञ्च  
उपानहौ च एषां समाहारः छत्रोपानहम् । प्रावृट् च शरच्चानयोरितरेतर-  
योगः—प्रावृट्शरदौ ।

※ इति द्वन्द्वप्रकरणम् ※

१ प्राणि तूर्य सेनाज्ञका जो द्वन्द्व वह एकवत् हो ।

२ चवर्गान्त दान्त षान्त और हान्त इनसे समाहार द्वन्द्व में टच् प्रत्यय  
होता है ।

३ ऋक् पूः अप् धूः ये हैं अन्त में जिससे ऐसा जो समास तदन्त से अ  
प्रत्यय होय । अक्ष अर्थ में जो धू तदन्त से न होय ।

ऽन्तावयवः स्यादक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न । अर्धर्चः । विष्णुपुरम् ।  
विमलापं सरः । राजधुरा । अक्षे तु-अक्षधूः । दृढधूरक्षः । सखि-  
पथः । रम्यपथो देसः ॥

अक्ष्णोऽदर्शनात् ५ । ४ । ७६ ॥

अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात्समासान्तः । गवामक्षीव गवाक्षः ।

उपसर्गादध्वनः ५ । ४ । ८५ ॥

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ॥

नै पूजनात् ५ । ४ । ८९ ॥

पूजनार्थात्परेभ्यः समासान्ता न स्युः । सुराजा । अतिराजा ॥

इति समासान्ताः ॥ इति समासप्रकरणम् ।

— — —

विष्णोः पूरिति विष्णुपुरम् । क्लीबत्वं लोकात् । विमला आपो यत्र तत्-  
विमलापम् । ( सर=झील ) । राजो धूः-राजधुरा । धूः=भारः ।

अक्षे धूः-अक्षधूः । दृढा धूर्यस्यासौ दृढधूः । अत्रोभयत्रापि अक्षसम्ब-  
न्धिन्या धुरः सत्त्वाच्च समासान्तः ।

सख्युः पन्थाः-सखिपथः । रम्यः पन्था यत्रासौ रम्यपथः ।

‘वातायन गवाक्षोऽस्त्री’त्यमरः । ( झरोखा ) । प्राध्व इति । ‘अत्या-  
दयः क्रान्ताद्यर्थे’ इति तत्पुरुषसमासः । शोभनो राजा सुराजा । ‘कुगती’ति  
समासः । एवम्-अतिशयितो राजा अतिराजेत्यत्रापि ।

\* इति समासान्ताः \*

— — —

१ चक्षुर्मित्रपर्याय जो अक्षिशब्द उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो ।

२ उपसर्ग से परे जो अध्वन् शब्द उससे अच् प्रत्यय हो ।

३ पूजनार्थक से परे समासान्त प्रत्यय न हों ।

## अथ तद्धिताः

तत्रादौ सार्धारणप्रत्ययाः

समर्थानां प्रथमादा । ४ । १ । ८२ ॥

इदं पदत्रयमधिक्रियते 'प्राग्दिश' इति यावत् ॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ ॥

एभ्योऽण् स्यात्प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । अश्वपतेरपत्यादि आश्व-  
पतम् । गाणपतम् ॥

दित्वादित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः । ४ । १ । ८५ ॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात् ।  
अणोऽपवादः । दितेरपत्यं दैत्यः । अदितेरादित्यस्य वा—

हँलो यमां यमि लोपः । ८ । ४ । ६४ ॥

हलः परस्य यमो लोपः स्याद्वा यमि । इति यलोपः ।  
आदित्यः । प्राजापत्यः । देवाद्यँजवौ । दैव्यम् । दैवम् । \*वर्हि-

'समर्थाना'मिति 'प्रथमा'दिति, 'वा' इति चाधिक्रियते इत्यर्थः । 'पदत्रय'-  
मित्युक्त्या प्रत्येकं स्वरितत्वं सूचितम् । 'तेन दीव्यति खनति जयति जित'-  
मिति सूत्रात्प्रागर्थेषु । अश्वपतेरपत्यम्, आश्वपतम् । अश्वपतिना निर्वृतम्  
० आश्वपतम् । अश्वपतेरिदम्-आश्वपतमित्यादि । 'तद्धितेष्वचामादे'रित्यादि-  
वृद्धिः । गाणपतेरपत्यादि गाणपतम् । अदितेरपत्यम् आदित्यः । आदित्य-  
स्याऽपत्यम्-आदित्यः । देवस्यापत्यादि दैव्यम् । टिलोपवचनमव्ययानां

१ 'समर्थाना'-'प्रथमात्' और 'वा' इन तीन पदों का 'प्राग्दिशो विभक्तिः'  
इस सूत्र से पूर्व पूर्व अधिकार है ।

२ अश्वपत्यादिगणपठित जो शब्द उनसे अण् प्रत्यय हो प्राग्दीव्यतीय अर्थोंमें ।

३ दिति-अदिति-आदित्य और पत्युत्तरपद इनसे ण्य प्रत्यय हो प्राग्दीव्यतीय अर्थोंमें ।

४ हँल् से परे जो यम् उसका लोप हो यम् परे रहते, विकल्प से ।

५ देव शब्द से यब् और अब् प्रत्यय हो प्राग्दीव्यतीय अर्थों में ।

पष्टिलोपो यञ्च । बाह्यः । ईकञ्च ॥

किति च । ७ । २ । ११८ ॥

किति तद्धिते चाऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । बाहीकः ।

गोरजादिप्रसङ्गे यत् । गोरपत्यादि गन्धम् ॥

उत्सादिभ्योऽञ् । ४ । १ । ८६ ॥

औत्सः ॥

इत्यपत्यादिविकारान्तार्थसाधारणाः प्रत्ययाः ॥ १ ॥

## अथ अपत्याधिकारः

स्त्रीपुंसौ भवनात् । ४ । १ । ८७ ॥

‘धान्यानां भवने’ इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसौ क्रमानञ्छौ स्तः । स्त्रैणः । पौंस्त्रैः ॥

भमात्रे’ इत्यस्याऽनित्यता ज्ञापयितुं, तेन ‘आरातीय’ इत्यत्र टिलोपो न ।  
बहिर्भवः-बाह्यः । बाहीकः ।

गन्धमिति । ‘गवि भवं’ ‘गोर्देवताऽस्य’ ‘गोरिद’मित्यादयोऽर्थः । उत्से  
भवः । ‘उत्स प्रस्रवणं वारिप्रवाहो निर्झरो झरः’ इत्यमरः । स्त्रियाः पुंसो वाऽ-

१ बहिप्स् शब्द की टि का लोप हो और यञ् प्रत्यय हो ।

२ बहिप्स् शब्द से ईकञ् प्रत्यय हो और टि का लोप हो ।

३ अचो के मध्य में जो आदि अच् उसको वृद्धि हो कित् तद्धित परे रहते ।

४ गो शब्द से अजादि के प्रसङ्ग में यत् प्रत्यय हो, प्राग्दीव्यतीय अर्थों में ।

५ उत्सादि गणपठित जो शब्द तत्प्रकृतिक जो सुवन्त उससे अञ् प्रत्यय हो ।

६ ‘धान्यानां भवने क्षेत्रे’ ईसं सूत्र से पूर्व २ अर्थों में स्त्री और पुंस् शब्द से  
नञ् और स्तञ् प्रत्यय हों ।

तस्याऽपत्यम् । ४ । १ । ९२ ॥

षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः ॥

ओर्गुणः । ६ । ४ । १४८ ॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते । उपगोरपत्यम्-औपगवः ।  
आस्वपतः । दैत्यः । औत्सः । खैणः । पौस्तः ॥

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् । ४ । १ । १८२ ॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ॥

एको गोत्रे । ४ । १ । १९३ ॥

गोत्रे एक एवाऽपत्यप्रत्ययः स्यात् । उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवः ।

पत्यादि-खैणः, पौस्तः । तस्येति । तस्येति षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम् ।  
अपत्यमिति सप्तम्यर्थे व्यत्ययेन प्रयमा । एवमप्रेऽपि । उक्ताः=अणयादयः,  
वक्ष्यमाणाः=इत्यादयः ।

नन्वपत्यग्रहणं व्यर्थं, पौत्रादेरपत्यत्वाऽव्यभिचारादत आह-विवक्षित-  
मिति । तेन पौत्रादेः शेषत्वेन विवक्षायां गर्गस्येदमित्यादौ न गोत्रसंज्ञा ।

पौत्रादिः=पौत्र-प्रपौत्र-प्रतिप्रपौत्रादिः ।

एक एवेति । उपगुशब्द एवाऽपत्ये प्रत्ययं लभते न औपगवशब्द इति  
गोत्रापत्येऽपि अनन्तरापत्ये इव अणव भवति नतु औपगवस्यापत्यम्-औपगवि-

१ कृतसन्धि जो षष्ठ्यन्त समर्थ सुवन्त उमसे कहे हुए अणादि प्रत्यय और  
वक्ष्यमाण जो प्रत्यय वे अपत्य अर्थ में विकल्प से हों ।

२ उवर्णान्त जो भसंशक अङ्ग उसका जो अन्त्य अल् उसको गुण हो तद्धित  
प्रत्यय परे रहते ।

३ अपत्यत्वेन विवक्षित जो पौत्रादि उनकी गोत्र संज्ञा हो ।

४ गोत्र अर्थ में एक ही अपत्यसंशक प्रत्यय हो ।

गर्गादिभ्यो यञ् ४ । १ । १०५ ॥

गोत्रापत्ये । गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः । वात्स्यः ॥

यञ्जोश्च २ । ४ । ६४ ॥

गोत्रे यद्यनन्तमनन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे  
न तु स्त्रियाम् । गर्गाः । वत्साः ॥

जीवति तु वंश्ये युवा ४ । १ । १६३ ॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव  
स्यात् ॥

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४ । १ । ९४ ॥

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् । स्त्रियां तु न  
युवसंज्ञा ॥

रिति भवतीत्याशयः । पितृपितामहाद्युत्पादकप्रबन्धो वंशः, तत्र भवो वंश्यः ॥  
तदाह पित्रादाविति । यथा-गर्गो मूलपुरुषः, तस्य यः प्रपौत्रः स पितरि  
पितामहे वा जीवति सति 'युव'संज्ञः । पित्रादौ मृते तु स ( चतुर्थोऽपि )  
गोत्रसंज्ञक एव न युवसंज्ञ इति भावः ।

यूनि=युवसंज्ञके । गोत्रप्रत्ययं यनादिकमुत्पाद्य ततो युवप्रत्यय इत्यर्थः ।

१ गर्गादिगणपठितशब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से यञ् प्रत्यय हो  
गोत्रापत्य में ।

२ गोत्र में जो यन्नन्त-अन्नन्त उसका अवयव जो यञ् और अञ् उसका  
लुक् हो । यदि यञ्-अञ् प्रत्ययकृत बहुत्व हो तो । स्त्रीलिङ्ग में न हो ।

३ वंश में पित्रादि जीवित रहने पर पौत्रादि का अपत्य जो चतुर्थादि,  
उसकी युवसंज्ञा ही होती है ।

४ गोत्रप्रत्ययान्त से ही युवापत्य अर्थ में प्रत्यय हो । स्त्रीलिङ्ग में युवसंज्ञा  
नहीं हो ।



यजिञोश्च ४ । १ । १०१ ॥

गोत्रे यौ यजिञौ तदन्तात्फक् स्यात् ॥

आयनेधीनीयियः फट्खच्छघां प्रत्ययादीनाम् ७ । १ । २ ॥

प्रत्ययादः फस्य आयन्, ढस्य-एय्, खस्य-ईन्, छस्य-ईय्, घस्य इय्--एते स्युः । गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः । दाक्षायणः ॥

अत इञ् ४ । १ । ९५ ॥

अपत्येऽर्थे । दाक्षिः ॥

वाँहादिभ्यश्च ४ । १ । ९६ ॥

वाहविः । औडुलोमिः । \*लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वृत्तान्यः । उडुलोमाः । आकृतिगणोऽयम् ॥

अन्वर्ध्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ४ । १ । १०४ ॥

फगिति । अयं फक् यूनि भवति, 'गोत्रे एक एव प्रत्यय' इत्युक्तेः । अत इति । अदन्तात्पठ्यन्तादिञ् स्यादपत्येऽर्थे । बाहोरपत्यं वाहविः । उडुलोम्नोऽपत्यम् औडुलोमि, औडुलोमी, उडुलोमाः-इत्येवं रूपाणि ।

१ गोत्र अर्थ में जो यज-और इञ् तदन्त से फक् प्रत्यय हो युव अर्थ में ।

२ प्रत्यय के आदि भूत जो फ-ढ-ख-छ-घ इनके स्थान में क्रम से आयन् एय् ईन्-ईय्-इयन् आदेश हों ।

३ अदन्त शब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से इञ् प्रत्यय हो अपत्य अर्थ में ।

४ वाँहादि गणपठित शब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से इञ् प्रत्यय हो अपत्यार्थ में ।

५ लोमन् शब्द प्रकृतिक सुबन्त समर्थ से अपत्य अर्थ में अकार प्रत्यय हो बहुत्व में ।

६ विदादि गणपठित शब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से अञ् हो गोत्र में । परन्तु

एभ्योऽञ् गोत्रे, ये तत्राऽनृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे ।

विदस्य गोत्रं वैदः । वैदौ ॥

यञञोश्च २ । ४ । ६४ ॥

गोत्रे यद्यनन्तमनन्तञ्च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे,  
न तु स्त्रियाम् । विदाः । पुत्रस्यापत्यं पौत्रः । पौत्रौ । पौत्राः । एवं  
दौहित्रादयः ॥

शिवादिभ्योऽण् ४ । १ । ११२ ॥

अपत्ये । शैवः । गाङ्गः ॥

ऋष्यन्धकवृष्णिगुरुभ्यश्च ४ । १ । ११४ ॥

ऋषिभ्यः—वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः—श्वाफल्कः ।

वृष्णिभ्यः—वासुदेवः । गुरुभ्यः—नाकुलः । साहदेवः ॥

मातृशब्दसंख्यासम्भद्रपूर्वायाः ४ । १ । ११५ ॥

विदस्य ऋषिर्वेन गोत्रेऽञ् । विदस्य गोत्रापत्यं वैदः ।

विदा इत्यत्र बहुत्वे 'यञञोश्चेति' अञो लृक् । पौत्रा इति । पुत्रस्या-  
नृषितया ततोऽनन्तरापत्येऽञ् । पुत्रस्यापत्यं पौत्रमिति च विग्रहः । अत्र गोत्र-  
प्रत्ययाऽभावात् बहुत्वेऽञो लृक् । दौहितुरपत्यं दौहित्रः । 'गोत्र' इति निवृत्तम् ।

शिवस्यापत्यं शैवो गणेशः । गङ्गाया अपत्यं गाङ्गो भीष्मः ।

ऋष्येति । एभ्योऽपत्येऽण् स्यात् । वसिष्ठस्यापत्यं वासिष्ठः । द्वयोर्मात्रोरपत्य-  
ऋषिभिन्नं से-अपत्यं अर्थ में अञ् प्रत्यय हो । और ऋषिवाचक शब्द से गोत्र अर्थ  
में अञ् प्रत्यय हो ।

१ गोत्र अर्थ में यञन्त अनन्त जो प्रातिपदिक, तदवयव जो यञ् और अञ्  
उसका लृक् हो । यदि प्रत्यय कृत् बहुत्व हो तो, स्त्रीलिङ्ग को छोड़ कर ।

२ शिवादि गणपठित शब्द प्रकृतिक पष्ठयन्त समर्थ से अण् प्रत्यय हो अपत्यार्थ में ।

३ ऋषि वाचक, अन्धक वाचक, वृष्णिवाचक, गुरुवाचक शब्द प्रकृतिक पष्ठयन्त  
समर्थ से अण् प्रत्यय हो अपत्यार्थ में ।

४ संख्या-सम्-और भद्र पूर्वक जो मातृशब्द उसको उदादेश हो और अण्  
प्रत्यय हो ।

सख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योद्देशः स्यादण् प्रत्यश्च । द्वैमातुरः ।

षाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः ॥

स्त्रीभ्यो ढक् ४ । १ । १२० ॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् । वैनतेयः ॥

कन्यायाः कनीन च ४ । १ । ११६ ॥

चादण् । कानीनो व्यासः कर्णश्च ॥

राजेश्वशुराद्यत् ४ । १ । १३७ ॥

\*राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् ॥

ये चाऽभावकर्मणोः ६ । ४ । १६८ ॥

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्नतु भावकर्मणोः । राजन्यः ।

जातवेवेति किम् ? ।

अन् ६ । ४ । १६७ ॥

अन् प्रकृत्या स्यादणि परे । राजनः । श्वशुर्यः ॥

द्वैमातुरः=गणेशः । तद्धितार्थेति तद्धितार्थे समासः । षण्णां मातृणामपत्यं  
षाण्मातुरः=कार्तिकेयः । कन्याया अपत्यं कानीनः ।

जातावेवेति । प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन जातिश्चेद्वाच्येत्यर्थः । प्रत्ययस्तु अपत्ये  
एव । राज्ञोऽपत्यं राजन्यः क्षत्रियः । राज्ञोऽपत्यं दास्यादावुत्पन्नो राजनः ।

१ स्त्रीप्रत्ययान्तप्रकृतिकपष्ठयन्तसमर्थ से ढक् प्रत्यय हो अपत्यार्थ में ।

२ कन्याशब्दप्रकृतिक पष्ठयन्त समर्थ से अण् प्रत्यय हो, और कन्या शब्द को  
कनीन आदेश हो अपत्य अर्थ में ।

३ राजन् शब्द और श्वशुरशब्द प्रकृतिक पष्ठयन्त समर्थ से यत् प्रत्यय हो अपत्य में ।

४ राजन् शब्द से जाति में ही (अर्थात् प्रकृतिप्रत्यय समुदाय से जाति वाच्य  
हो तो) यत् हो ।

५ तद्धितसंज्ञक यादिप्रत्यय परे रहते अन् प्रकृति से हो, भावकर्म को  
छोड़कर के ।

६ अन् प्रकृति से हो अण्परे रहते ।

१ पात्राद्धः ४ । १ । १३८ ॥

क्षत्रियः । जातावित्येव । क्षात्रिरन्यत्र ॥

२ रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४ । १ । १४६ ॥

३ ठस्येकः ७ । ३ । ५० ॥

अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः स्यात् । रैवतिकः ॥

४ जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् ४ । १ । १६८ ॥

जनपदक्षत्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये । पाञ्चालः ।

\*क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्\* ।

पाञ्चालानां राजा पाञ्चालः । \* पूरोरण् वक्तव्यः ऋ । पौरवः ।

\*पाण्डोर्ज्यङ्\* । पाण्ड्यः ॥

श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर्यः=श्यालः । जनपदेति । जनपदवाची सन् यः क्षत्रिय-  
वाची तत्प्रकृतिकषष्ठ्यन्तादपत्येऽस्यादित्यर्थः । पाञ्चालस्यापत्यं पाञ्चालः ।  
पाञ्चालादिशब्दा हि बहुवचनान्ता, देशविशेषवचनाः, एकवचनान्ताश्च  
क्षत्रियवाचकाः ।

क्षत्रियेति । क्षत्रियेण समानः शब्दो यस्य जनपदस्य असौ क्षत्रियसमान-  
शब्दस्तस्माज्जनपदवाचिनःषष्ठ्यन्ताद्वाजानि वाच्येऽपत्यवत्प्रत्ययो भवतीत्यर्थः ।

( पाञ्चालः=फर्हखाबाद प्रदेश ) । पूरोरपत्यं पौरवः । पौरवौ । पूरवः ।

१ क्षत्रशब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से अपत्यय हो, अपत्यार्थ में, जाति वाच्य  
हो तो । २ रेवत्यादिगणपठितशब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से ठक् प्रत्यय हो ।

३ अङ्ग से परे जो ठ उसको इक आदेश हो ।

४ जनपदवाची होता हुआ जो क्षत्रिय वाची शब्द, तत्प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समय  
सुबन्त से अञ् प्रत्यय हो अपत्य अर्थ में ।

५ क्षत्रियसमानशब्द जो जनपद वाचक शब्द, उसके राजा में अपत्यवत्  
प्रत्यय हो । अर्थात् अपत्य अर्थ में जो प्रत्यय वह राज अर्थ में भी हो ।

६ पूरशब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से अण् प्रत्यय हो अपत्यार्थ में ।

७ पाण्डुशब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से ज्यङ् प्रत्यय हो अपत्य अर्थ में ।

कुरुणादिभ्यो ण्यः ४ । १ । १७२ ॥

कौरव्यः । नैषध्यः ॥

ते तैद्राजाः ४ । १ । १७४ ॥

अजादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः ॥

तैद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम् २ । ४ । ६२ ॥

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लृक्, तदर्थकृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् ।

इक्ष्वाकवः । पञ्चालाः । इत्यादि ॥

कम्बोजाल्लृक् ४ । १ । १७६ ॥

अस्मात्तद्राजस्य लृक् । कम्बोजः । कम्बोजौ ।

\* कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् \* । चोलः । शकः ।

केरलः । यवनः ॥

इत्यपत्याधिकारः ॥ २ ॥

पाण्डोरपत्यं पाण्ड्यः । पाण्डूनां (दक्षिणदिग्भवदेशानां) राजा पाण्ड्यः ।  
पाण्ड्यौ पाण्डवः ।—इत्यादिरूपाणि बोध्यानि । कुरोरपत्यं कौरव्यः । कुरुणा  
राजा कौरव्यः । कौरव्यः, कौरव्यौ, कुरव इत्यादि । निषेधानां राजा, निष-  
धस्थापत्यं वा नैषध्यः । बहुत्वे लृक्-निषधाः । अजादयः—राजन्यपत्ये च  
विहिताः । आदिपदेन पूरवः, पाण्डवः, कुरवः, निषधा इत्यादीनां ग्रहणम् ।  
कम्बोजानां राजा तदपत्यं वा कम्बोजः । कम्बोजौ । कम्बोजाः ।

\* इत्यपत्याधिकारप्रकरणम् \*

१ कुरुशब्द और नकारादि शब्द प्रकृतिक पष्ठयन्त समर्थ से ण्य प्रत्यय हो  
२ पूर्वोक्त अपत्य और राज अर्थ में विहित जो अजादि उनकी तद्राज संज्ञा हो  
३ बहुत्व अर्थ में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लृक् हो, यदि प्रत्ययकृत बहुत्व हो  
तो । स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर के ।

४ कम्बोज शब्द से विहित जो तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उसका लृक् हो ।

५ कम्बोजादिगणपठित शब्दों से परे जो तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उसका लृक् हो

## अथ रक्ताद्यर्थकाः

तेन रक्तं रागात् ४ । २ । १ ॥

अण् स्यात् । रज्यतेऽनेनेति रागः । कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम् ॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ४ । २ । ३ ॥

अण् स्यात् । ऋतिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राऽणि यलोप इति वाच्यम् । पुष्येण युक्तं पौषम्-अहः ॥

लृवविशेषे ४ । २ । ४ ॥

पूर्वेण विहितस्य लृप् स्यात्, षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्या-  
ऽवान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः ॥

दृष्टं साम ४ । २ । ७ ॥

तेनेत्येव । वलिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम ॥

रज्यतेऽनेनेति रागः । बाहुलकात्करणे घञ् । तृतीयान्ताद्रज्जकद्रन्थवाचका-  
दक्षमित्यर्थेऽण् स्यात् । (राग=‘रज्ज’) । नक्षत्रेणेति । नक्षत्रवाचकात्तृतीयान्ता-  
द्युक् इत्यर्थेऽण् स्यात् । यो युक्तः स कालश्चेत् । नक्षत्राऽणि=नक्षत्रवाचका-  
द्विहितेऽणि परतः । पुष्येण=पुष्यसमीपस्थेन चन्द्रमसा । कालस्य=अहो-  
रात्रात्मकस्य । तेनेति । तृतीयान्तात्-दृष्टमित्यर्थेऽण् स्यात् यद्दृष्टं तत्  
साम चेत् ।

१ रागवाचकशब्दप्रकृतिकतृतीयान्त सुबन्त समर्थ से रक्त इस अर्थ में अण् प्रत्यय हो ।

२ नक्षत्र वाचक शब्दप्रकृतिक तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से ‘युक्तः कालः’ इस अर्थ में अण् प्रत्यय हो ।

३ तिष्य और पुष्य के यकार का लोप हो नक्षत्रविहित, अण् परे रहते ।

४ पूर्वसूत्र से विहित जो अत्यय उसका लृप् हो अविशेष अर्थ में । अर्थात् षष्टि-  
दण्डात्मक ( २४ घटे का ) जो काल उसके बीच के किसी विशेष काल की प्रतीति  
न होती हो तो ।

५ तृतीयान्त सुबन्त समर्थ से दृष्ट अर्थ में अण् प्रत्यय हो, वह दृष्ट यदि साम हो ।

वामदेवाङ्ङ्यङ्ङ्यौ ४ । २ । ९ ॥

वामदेवेन दृष्टं साम-वामदेव्यम् ॥

परिवृतो रथः ४ । २ । १० ॥

अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । वस्त्रेण परिवृतो वास्त्रो रथः ॥

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ४ । २ । १४ ॥

शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः ॥

संस्कृतं भक्षाः ४ । २ । १६ ॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात्संस्कृतेऽर्थे । यत्संस्कृतं भक्षाश्चेते स्युः ।

आष्टेषु संस्कृता आष्टा यवाः ॥

साऽस्य देवता ४ । २ । २४ ॥

इन्द्रो देवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बर्हिस्पत्यम् ॥

वामदेवादिति । तृतीयान्तादस्मादेतौ स्त उक्तेऽर्थे ।

परिवृत इति । तृतीयान्तात्परिवृत इत्यर्थेऽण् स्यात्, यः परिवृतः स रथश्चेत् ।

तत्रेति । सप्तम्यन्तादमत्रवाचिनोऽण् स्यादुद्धृतमित्यर्थे । शरावः-  
वर्धमानकः । ( सराई ) शाराव इति । हवनीयौ दनात्किञ्चित्पात्रान्तरे  
उद्धृत इत्यर्थः । साऽस्येति । प्रथमान्तादस्य देवतेत्यर्थे यथाविहितं

१ वामदेवशब्द प्रकृतिकं तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से ङ्यत् और ङ्य प्रत्यय होते हैं ।

२ तत्तत् शब्द प्रकृतिक तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से परिवृत्त अर्थ में अण् प्रत्यय  
हो, वह परिवृत्त यदि रथ हो तो ।

३ अमत्र ( पात्र ) वाचकशब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से उद्धृत अर्थ  
में अण् प्रत्यय हो ।

४ तत्तत् शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त सुबन्त समर्थ से संस्कृत इस अर्थ में अण्  
प्रत्यय हो, वह संस्कृत यदि भक्ष ( खाद्य ) हो तो ।

५ तत्तच्छब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य देवता' इस अर्थ में  
यथा विहित प्रत्यय हो ।

शुक्राङ्गन् ४ । २ । २६ ॥

शुक्रियम् ॥

सोमाङ्ग्यन् ४ । २ । ३० ॥

सौम्यम् ॥

वाय्वृत्पितृषसो यत् ४ । २ । ३१ ॥

वायव्यम् । ऋतव्यम् ॥

रीङ्ऋतः ७ । ४ । २७ ॥

अकृधकारे असार्वधातुके यकारे ष्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य  
रीङादेशः । यस्योति च । पितृयम् । उपस्यम् ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ४ । २ । ३६ ॥

एते निपात्यन्ते । पितुर्भाता पितृव्यः । मातुर्भाता मातुलः ।

प्रत्ययः स्यात् । पशुपतिर्देवताऽस्य—पाशुपतम् । अश्वपत्यादित्वाद्दण् । वार्ह-  
स्पत्यमिति । दित्यदित्येति ण्यः । शुक्रादिति । प्रथमान्तादस्मादुक्तेऽर्थे  
धन् स्यात् । सोमादिति । प्रथमान्तात्सोमशब्दादस्य देवतेत्यर्थेऽण् स्यात् ।

सोमो देवताऽस्य सौम्य हविः । वाय्विति । प्रथमान्तेभ्य एभ्यो  
यदुक्तेऽर्थे । वायुर्देवताऽस्य वायव्यं हविः ।

पितरो देवता अस्य पितृयम् । उषा देवताऽस्य उपस्यम् । उपशब्दः  
सान्तः स्त्रीलिङ्गो दिवो दुहितरमाह । पितुर्भातरिव्यत् । मातुर्ङुलच् । मातृपितृ-

१ शुक्रशब्दप्रकृतिकप्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य देवता' इस अर्थ में  
धन् प्रत्यय हो ।

२ सोमशब्दप्रकृतिकप्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य देवता' इस अर्थ में  
व्यण् प्रत्यय हो ।

३ वायु-ऋतु-पितृ-और उपस् शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य  
देवता' इस अर्थ में यत् प्रत्यय हो ।

४ कृत् मित्र यकार और सार्वधातुक मित्र यकार परे रहते और ण्वि प्रत्यय  
परे रहते ऋदन्त अङ्ग को रीङ् का आदेश हो ।

५ पितृव्य-मातुल-मातामह और पितामह-ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।



मातुः पिता मातामहः । पितुः पिता पितामहः ॥

तस्य समूहः ४ । २ । ३७ ॥

काकानां समूहः काकम् ॥

भिक्षादिभ्योऽण् ४ । २ । ३८ ॥

भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम् । इह  
'भस्याऽहे तद्धिते' इति पुंवद्भावे कृते—

इन्पत्यन्तपत्ये ङ । ४ । १६४ ॥

अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात् । तेन 'नस्तद्धिते' इति  
टिलोपो न । युवतीनां समूहो यौवनम् ॥

ग्रामजनवन्धुभ्यस्तल् ४ । २ । ४३ ॥

'तलन्तं स्त्रियाम्' । ग्रामता । जनता । वन्धुता । \*ग्राम-

भ्यां पितरि वामहच् । तस्येति । षष्ठ्यन्तात्समूहेऽर्थे यथावेहितमणाद्यः स्त्रुः ।  
भिक्षेति । भिक्षादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यः समूहेऽर्थेऽण् स्यात् । भस्य पुंवत्स्याद्धभिन्न  
तद्धिते परे इति वार्तिकार्थः । इह=गार्भिणमित्यत्र । पुंवद्भाव इति ।  
गर्भिणीगन्धस्य पुंवद्भावे कृते । तेन=प्रकृतिभावेन । टिलोपो न=  
इत्थित्यस्य लोपो न । अत्र 'अन्' इति प्रकृतिभावः । अणि अन्  
प्रकृत्या स्यादिति च तदर्थः । तेन 'नस्तद्धिते' इति टिलोपो न ।  
ग्रामेति । एभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यस्तल्स्यात्समूहेऽर्थे । ग्रामाणां समूहो ग्रामता ।

१ तत्तत् शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त सुवन्त समर्थ से समूह अर्थ में यथाविहित  
अणादि प्रत्यय हों ।

२ भिक्षादिगण पठित शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त सुवन्त समर्थ से समूह अर्थ में  
अण् प्रत्यय हो ।

३ ढभिन्न तद्धित परे रहते भसन्शक प्रातिपदिक को पुंवद्भाव हो ।

४ अपत्यार्थ भिन्न अण् परे रहते इन् प्रकृतिक से रहे ।

५ ग्राम जन और वन्धु शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुवन्त से समूह अर्थ  
में तल् प्रत्यय हो ।

सहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् । गजता । सहायता । \*अहः खः  
क्रतौ । अहीनः ॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४ । २ । ४७ ॥

इसुसुसुक्तान्तात्कः ७ । ३ । ५१ ॥

इसुसुसुक्तान्तात्परस्य ठस्य कः । साक्तुकम् । हास्तिकम् ।  
धेनुकम् ॥

तदधीते तद्धेद ४ । २ । ५९ ॥

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७ । ३ । ३ ॥

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः । किं तु ताभ्यां  
पूर्वौ क्रमादौजावागमौ रतः । व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः ॥

गजेति । आभ्या तत्समूहेऽर्थे । गजानां समूहो गजता । सहायानां समूहः  
सहायता । अह इति । षष्ठ्यन्तादहच्छब्दात्खः स्यात्समूहेऽर्थे क्रतुविषये । अहा  
समूहेन साध्यः । अहर्गणसाध्यसुत्याकः क्रतुरित्यर्थः । (सुत्या=अभिषवः) ।  
'अहश्चोरेवे'ति नियमाजस्तद्धित इति टिलोपः । अचित्तेति । षष्ठ्यन्तेभ्य  
एभ्यश्च समूहेऽर्थे । सक्तूनां समूहः-साक्तुकम् । तदधीत इति । द्विती-  
यान्तादध्येतरि वेदितरि च यथाविहितं प्रत्ययाः स्युः ।

वैयाकरण इति । अत्र विशब्देकारस्य स्थाने यणादेशे यकारे पदान्त-

१ गज और सहाय शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से समूह अर्थ में  
तल् प्रत्यय हो ।

२ अहन् शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से ख प्रत्यय हो, क्रतु अर्थ में ।

३ चेतन भिन्न वाची, हस्तिन् शब्द और धेनुशब्दकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से  
ठक् प्रत्यय हो ।

४ इस उम्-उक् और त एतदन्त से परे जो ठक् उस को क आदेश हो ।

५ तत्तद् शब्द प्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से अवीते और वेद इन  
अर्थों में यथाविहित प्रत्यय हो ।

६ पदान्त जो यकार वकार उसमें जो परे उसको वृद्धि न हो किन्तु यकार  
कार से पूर्व को क्रम से ये औ का आगम हो ।

क्रमादिभ्यो जुन् ४ । २ । ६१ ॥

क्रमकः । पदकः । शिक्षकः । मीमांसकः ॥

इति रत्नाधर्थकाः ॥ ३ ॥

**अथ चातुरर्थिकाः**

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४ । २ । ६७ ॥

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देशे औदुम्बरो देशः ॥

तेनैर्निर्वृत्तम् ४ । २ । ६८ ॥

कुशाम्ब्रेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी ॥

तस्य निवासः ४ । २ । ६९ ॥

शिबीनां निवासो देशः शैवः ॥

त्वमरत्येवेति ततः पूर्वमैजागमः । क्रममधीते वेद वा क्रमकः । पदमधीते वेद वा पदकः । शिक्षामधीते वेद वा शिक्षकः । मीमांसामधीते वेद वा मीमांसकः । तदिति । अस्तीत्युपाधिकात् प्रथमान्तादस्मिन्नित्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययाः स्युः, तन्नामा देशश्चेत् । तेनेति । तृतीयान्तान्निर्वृत्तमित्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययाः स्युः । अत्र टिड्ढाणञिति ङीप् । तस्येति षष्ठ्यन्तान्निवास इत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः

१ क्रमादि गण पठित शब्द प्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से अधीते वेद इन अर्थों में जुन् प्रत्यय हो ।

२ प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से अस्मिन् अस्ति इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों, तन्नामा यदि देश हो तो ।

३ तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से निर्वृत्तम् इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ।

४ षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से निवास इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों ।

अदूरभवश्च ४ । २ । ७० ॥

विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम् ॥

जनपदे लुप् ४ । २ । ८१ ॥

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् ॥

लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने १ । २ । १ ॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः । पञ्चालानां निवासो जन-  
पदः पञ्चालः । कुरवः । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः ॥

वरणादिभ्यश्च ४ । २ । ८२ ॥

अजनपदार्थ आरम्भः । वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः ॥

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मत्तुप् ४ । २ । ८७ ॥

क्षयः ८ । २ । १० ॥

क्षयन्तान्मतोर्मस्य वः । कुमुद्वान् । नड्वान् ॥

स्यात् । अदूरेति । षष्ठ्यन्ताददूरभवइत्यर्थे अणादिप्रत्ययः स्यात् ।

चतुर्णामर्थानां समाहारश्चतुरर्थी । तस्यां भवः—चातुरर्थिकः । जनपद-  
स्यैकत्वादेकत्वे प्राप्तेऽतिदेशमाह—लुपीति । युक्त=प्रकृतिः । व्यक्तिः=लिङ्गम् ।

वरणेति । वरणादिभ्यश्चातुरर्थिकस्य लुप् स्यात् । (वरणाः=वरना) ।  
कुमुदेति । एभ्यो ड्मत्तुप् स्याच्चतुरर्थ्याम् । कुमुदानि सन्त्यस्मिन्देशे

१ षष्ठ्यन्त समर्थ से अदूर भव इस अर्थ में अणादि प्रत्यय हो ।

२ जनपद वाच्य होने पर चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् हो ।

३ लुप् होने पर प्रकृति की तरह लिङ्ग और वचन हों ।

४ वरणादि गण पठितशब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से चातुरर्थिक-  
प्रत्यय का लुप् हो ।

५ कुमुद—नड—वेतस शब्दप्रकृतिक समर्थ सुबन्त से चारों अर्थों में  
ड्मत्तुप् प्रत्यय हो ।

६ क्षयन्त से परे जो मत्तुप् का मकार उसको वकारादेश हो ।

माहुपधायाश्च सतोर्वोऽयवादिभ्यः ८ । २ । ९ ॥

मवर्णाऽवर्णान्तान्मवर्णाऽवर्णोपधाच्च यवादिभर्जितात्परस्य सतो-  
र्मस्य वः । वेतस्वान् ॥

नडंशादाड्डुल्ल ४ । २ । ८८ ॥

नड्वलः । शाद्वलः ॥

शिखाया वल्ल ४ । २ । ८९ ॥

शिखावलः ॥

इति चातुरर्थिकाः ॥ ४ ॥

अथ शेषिकाः ।

शेषे ४ । २ । ९२ ॥

अपत्यादिचतुर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राऽणादयः स्युः । चक्षुषा

कुमुद्वान् । 'कुमुद्वान् कुमुदप्राये' इत्यमरः । नडाः सन्त्यत्र नड्वान् । मू च अथ  
अनयोः समाहारः—म, तस्मात्—मात् । वेतसाः सन्त्यत्र वेतस्वान् । 'वेतस्वान्  
बहुवेतसे' इत्यमरः । नडाः सन्त्यत्र नड्वलः । 'शाद्वलः शादहरिते' इत्यमरः ।  
'शादो जम्बालघासयो' इत्यमरः । शिखा अस्त्यस्मिन् देशे शिखावलः ।

अणादय इति प्राग्दीव्यतोऽणित्यादयः सा वारणा प्रत्ययाः । उपनिषदि दृश्यते ।

१ मकार और अवर्ण अन्त में है जिसके, और—मकार-अवर्ण उपधा में है जिसके  
उससे परे जो मतुप् का मकार उसको वकारादेश हो, यवादिगण पठित को छोड़कर ।

२ नड और शादशब्द प्रकृतिक सुबन्त समर्थ से चातुरर्थिक अर्थ में ड्वल् प्रत्यय हो ।

शिखाशब्दप्रकृतिक सुबन्त समर्थ से चातुरर्थिक अर्थ में वल्ल प्रत्यय हो ।

४ अपत्यादि चतुर्थ्यन्त से भिन्न जो अर्थ वह हुआ शेष । उस अर्थ में  
अणादि प्रत्यय हों ।

गृह्यते चाक्षुषं रूपम् । श्रावणः शब्दः । औपनिषदः पुरुषः ।  
 दृषदि पिष्टा दार्षिदाः सक्तवः । चतुर्भिरुह्य चातुरं शकटम् ।  
 चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः । 'तस्य विकारः' इत्यतः प्राक्  
 शेषाधिकारः ॥

राष्ट्रांऽवारपाराद्ध्रौ ४ । २ । ९३ ॥

आभ्यां क्रमाद्ध्रौ स्तः शेषे । राष्ट्रे जातादिः राष्ट्रियः ।  
 अवारपारीणः । \*अवारपाराद्ध्रिगृहीतादपि विपरीताच्चेति  
 वक्तव्यम् । अवारिणः । पारीणः । पारावारीणः । इह प्रकृति-  
 विशेषाद्धादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः  
 समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते ॥

आभ्यांऽवारपाराद्ध्रौ ४ । २ । ९४ ॥

आभ्यः । आमीणः ॥

औपनिषदः । दृषत्=शिलायन्त्रम् ( चक्को 'जाता' ) । चतुर्भिः—'अश्वादिभिः'-  
 रिति शेषः । पूर्वोक्तोदाहरणेषु निरुक्तेष्वर्थेषु अणादिसिद्ध्यर्थमस्य विधायकत्वम्,  
 उत्तरसूत्रजनुवृत्तयेऽधिकारत्वेत्यर्थः । विगृहीतात्=अवारशब्दात्पारशब्दाच्च  
 पृथग्भूतात् । विपरीतात्=पारावारशब्दात् । इह=शेषिके । प्रकृतिविशेषात्=  
 राष्ट्रादिशब्दात् । जातादयः='तत्र जातः' 'तत्र भवः' इत्यादयः । वक्ष्यन्ते=  
 स्वयमेव सूत्रकृता वक्ष्यन्ते । एवञ्च नैते प्रत्यया अनिर्दिष्टार्थतया स्वार्थे  
 भवन्तीत्याशयः ।

१ राष्ट्र और अवारपार शब्दप्रकृतिक सुबन्त समर्थ से जातादि अर्थ में क्रमसे  
 घ और ख प्रत्यय हों ।

२ अवारशब्द से पार शब्द से और विपरीत ( पारावार शब्द ) से भी ख  
 प्रत्यय हो ।

३ आभ शब्द प्रकृतिक सुबन्त समर्थ से जातादि अर्थ में य और और ख  
 प्रत्यय हो ।

नद्यादिभ्यो ढक् ४ । २ । ९७ ॥

नादेयम् । माहेयम् । वाराणसेयम् ॥

दक्षिणापश्चात्पुरस्स्त्यक् ४ । २ । ९८ ॥

दाक्षिणात्यः । पाश्चात्यः । पौरस्त्यः ॥

द्युप्रागपार्गुदक्प्रतीचो यत् ४ । २ । १०१ ॥

दिव्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । उदीच्यम् । प्रतीच्यम् ॥

अव्ययस्यप् ४ । २ । १०४ ॥

अमेहक्वतिसित्रेभ्य एव । अमात्यः । इहत्यः । कत्यः ।

ततस्त्यः । तत्रत्यः । \*त्यवनेर्भुव इति वक्तव्यम् । नित्यः ॥

वृद्धिरस्याचामादिस्तद्वृद्धम् १ । १ । ७३ ॥

यस्य समुदायस्याऽचां मध्ये आदिवृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं स्यात् ॥

त्यदादीनि च १ । १ । ७४ ॥

वृद्धसंज्ञानि स्युः ॥

वृद्धाच्छः ४ । २ । ११४ ॥

नद्यां जातादि-नादेयम् । दक्षिणेति । एभ्यस्त्यक् स्याज्जातादिभ्येषु । दक्षिणेत्याजन्तमव्ययं, साहचर्यात् । दक्षिणस्यामदूरे दक्षिणा, दक्षिणा जातादिः-दाक्षिणात्यः । पश्चाद्भव. पाश्चात्यः । पुरो भवः-पौरस्त्यः । दिवि जातादि-दिव्यम् । प्राचि जातादि प्राच्यम् । अमां भवः-अमात्यः=सचिवः । इह भवः इहत्यः । एवमग्रेऽपि । नितरां भवः-नित्यः=भुवः ।

१ नद्यादि गणपठित शब्द प्रकृतिक समर्थ सुवन्त से जातादि अर्थ में ढक् प्रत्यय हो । २ दक्षिणा-पश्चात्-और पुरस् ये जो अव्यय, एतत् प्रकृतिक सुवन्त समर्थ से जातादि अर्थ में त्यक् प्रत्यय हो । ३ दिव्-प्राच्-अपाच्-उदच् और प्रतीच् शब्द प्रकृतिक सुवन्त समर्थ से जातादि अर्थ में यत् प्रत्यय हो । ४ अव्यय से त्यप् हो । ५ जिस समुदाय के अचों के मध्य में आदिवृद्धि हो वह वृद्धसंज्ञक हो । ६ त्यदादि की भी वृद्धसंज्ञा हो । ७ वृद्धसंज्ञकप्रकृतिक समर्थ सुवन्त से छ प्रत्यय हो जातादि अर्थों में ।

शालीयः । मालीयः । तदीयः । \*वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा।

धक्तव्यः । देवदत्तीयः । दैवदत्तः ॥

गृहादिभ्यश्च ४ । २ । १३८ ॥

गृहीयः ॥

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ४ । ३ । १ ॥

चाच्छः । पक्षेऽण् । युवयोर्युष्माकं वाऽयं युष्मदीयः ॥

अस्मदीयः ॥

तृभिन्नणि च युष्माकाऽस्माकौ ४ । ३ । २ ॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खज्यणि च । यौष्माकीणः ।

आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ॥

तवकममकावेकवचने ४ । ३ । ३ ॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खजि अणि च ।

तावकीनः । तावकः । मामकीनः । मामकः । छे तु—

शालाया भवः—शालीयः । तस्यायं—तदीयः ।

देवदत्तीय इति । वृद्धसंज्ञाया 'वृद्धाच्छ' इति च्छ । अन्यत्र प्राग्दीव्य-  
तीयोऽण् । देवदत्तस्यायं देवदत्तीयः । दैवदत्तः । गृहादिभ्य इति । देश-  
वाचिभ्यो गृहादिभ्यश्चः स्यात् । गृहे जातादि.—गृहीयः । गृहो=देशविशेषः ।  
ततश्च । युवयोर्युष्माकं वाऽयं यौष्माकीण इति विग्रहः । तवायं—तावकीनः,  
तावकः, त्वदीयः ।

१ गृहादिगण पठित शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से छ प्रत्यय हो ।

२ युष्मद्-अस्मद् शब्द प्रकृतिक सुबन्त से खञ् प्रत्यय हो और चकार से छ प्रत्यय हो । पक्ष में अण् प्रत्यय भी हो ।

३ युष्मद्-अस्मद् शब्द को युष्माक और अस्माक आदेश हो खञ् और अण् प्रत्यय परे रहते ।

४ एकार्थवाची जो युष्मद् और अस्मद् शब्द उसको तवक और ममक आदेश हो खञ् और अण् प्रत्यय परे रहते ।



प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७ । २ । १८ ॥

मपर्यन्तयोरेतयोरेकार्थवाचिनोस्त्वर्मा स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च परतः । त्वदीयः । मदीयः । त्वत्पुत्रः । मत्पुत्रः ॥

मध्यान्मः ४ । ३ । ८ ॥

मध्यमः ॥

कालाट्टिञ् ४ । ३ । ११ ॥

कालवाचिम्यष्टञ् स्यात् । कालिकम् । मासिकम् । सांवत्सरिकम् । अन्ययानां भस्मात्रे टिलोपः । सायम्प्रातिकः । पौनःपुनिकः ॥

प्रावृष एण्यः ४ । ३ । १७ ॥

प्रावृषेण्यः ॥

सायञ्चिरम्प्रात्लेप्रगेऽन्ययेभ्यष्ट्युद्युलौ तुद्

च ४ । ३ । २३ ॥

मध्ये जातादिः मध्यमः । काले जातादि कालिकम् । सायं प्रातर्भवः-सायम्प्रातिकः । प्रातरित्यत्र टिलोपः । पुनः पुनर्भवः पौन पुनिकः ।

१ एकार्थवाची जो युष्मद्-अस्मद् शब्द उसके मपर्यन्त भाग को त्व और म-आदेश हो प्रत्यय और उत्तरपद परे रहते ।

२ मध्य शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से जातादि अर्थों में म प्रत्यय हो ।

३ कालवाचक शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से जातादि अर्थों में ठञ् प्रत्यय हो ।

४ अन्ययसञ्शक शब्दों की टि का लोप हो भसञ्शा मात्र में ।

५ प्रावृष् शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से जातादि अर्थों में एण्य प्रत्यय हो ।

६ साय-चिरम्-प्रात्ले-प्रगे इनसे और अन्ययसञ्शक कालवाचक समर्थ सुबन्त से भवादि अर्थ में ट्यु-और ट्युल् प्रत्यय हों । और इन को तुद् का आगम भी हो ।

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्थ्योऽव्ययेभ्यश्च कालत्राचिभ्यश्चतुर्थ्युलौ  
स्तस्तयोस्तुच् च । सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्ण प्रग अनयो-  
रेदन्तत्वं निपात्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् ॥

तत्र जातः ४ । ३ । २५ ॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः । सुग्धने  
जातः सौगन्धः । उःसे जात औत्सः । राष्ट्रे जातो राष्ट्रियः ।  
अवारपारे जातः—अवारपारीणः—इत्यादि ॥

प्रावृषेष्टम् ४ । ३ । २६ ॥

एण्यापवादः । प्रावृषिकः ॥

प्रायमवः ४ । ३ । २९ ॥

तत्रेत्येव । सुग्धे प्रायेण—बाहुल्येन—भवति सौगन्धः ।

संभृते ४ । ३ । ४१ ॥

सुग्धे सम्भवति सौगन्धः ॥

प्रावृषि भव प्रावृषेण्यः=वर्षासु भव । सायं भवं सायन्तनम् । चिरं भवं  
चिरन्तनम् । एवं प्राह्णमव प्राह्णेतनमित्यादि । प्रगेतनं=प्रातर्मवम् । दोषा-  
मव—दोषातनं=रात्रौ भवम् । सुग्धः=देशभेदः ( आगरा जिला ) ।

प्रावृषि जातः—प्रावृषिकः । सप्तम्यन्तात्प्रायमव इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च

१ सप्तम्यन्त समर्थ सुवन्त से जात अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय हों ।

२ प्रावृष शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त सुवन्त समर्थ से ठप् प्रत्यय हो ।

३ तत्तत्प्रातिपदिकसप्तम्यन्त सुवन्त समर्थ से प्रायमव अर्थ में अणादि  
और घादि प्रत्यय यथासम्भव हों ।

४ सप्तम्यन्त समर्थ सुवन्त से सम्भव अर्थ में अणादि तथा घादि प्रत्यय हो ।

कौशाङ्ग ४ । ३ । ४२ ॥

कौशेयं वस्त्रम् ॥

तत्र भवः ४ । ३ । ५३ ॥

सुगन्धे भवः सौगन्धः । औत्सः । राष्ट्रियः ॥

दिगादिभ्यो यत् ४ । ३ । ५४ ॥

दिश्यम् । वर्ग्यम् ॥

शरीरावयवाच्च ४ । ३ । ५५ ॥

दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । \*अध्यात्ममादेष्टुमिष्यते । अध्यात्म  
भवम्--आध्यात्मिकम् ॥

अनुशक्तिकादीनां च ७ । ३ । २० ॥

एषामुभयपदवृद्धिर्भिति णिति किति च । आधिदैविकम् ।  
आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् । आकृतिगणोऽयम् ।

स्युः । सप्तम्यन्तादित्येव । कोशे सम्भवति कौशेयम् ।

तत्रेति । सप्तम्यन्ताद्भवार्थेऽणादयो धादयश्च स्युः । दिशि भवं दिश्यम् ।  
दन्ते भव दन्त्यम् । आत्मनीति अव्यात्मम् । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः ।

देवे इत्यधिदैवम्, अधिदेव भवम्--आधिदैविकम् । इह लोके भवम्-

१ कोश शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से सम्भूत अर्थ में ढञ्  
प्रत्यय हो । २ तत्तत् शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से भवार्थ में  
अणादि और धादि प्रत्यय हों ।

३ दिगादि गण पठित शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से यत् प्रत्यय हो  
भवार्थ में । ४ शरीरावयववाची शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से यत्  
प्रत्यय हो भवार्थ में ।

५ अध्यात्मादि गण पठित समर्थ सुबन्त से ञ् प्रत्यय हो भव अर्थ में ।

६ अनुशक्तिकादि गण पठित शब्दों को उभयपद वृद्धि हो अित्-णित्-कित्  
तद्धित परे रहते ।

जिह्वामूलाल्लेश्यः ४ । ३ । ६२ ॥

जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ॥

वर्गान्ताच्च ४ । ३ । ६३ ॥

कवर्गीयम् ॥

तत आगतः ४ । ३ । ७४ ॥

सुगन्नादागतः सौगन्तः ॥

उपाध्यायस्थानेभ्यः ४ । ३ । ७५ ॥

शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः ॥

विद्यायोनिःसम्बन्धेभ्यो युञ् ४ । ३ । ७७ ॥

औपाध्यायकः । पैतामहकः ॥

ऐहलौकिकम् । परलोके भव-पारलौकिकम् । जिह्वामूले भवं-जिह्वा-  
मूलीयम् । कवर्गे भवं-कवर्गीयम् । तत आगत इति । पञ्चम्यन्तादागत  
इत्यर्थे ऽणादयो घादयश्च स्युः । ठगेति । आयस्थानवाचिनः पञ्चम्यन्तादागत  
इत्यर्थे ठक् स्यात् । ( शुल्कशाला = 'चुहूधर' 'जगातघर' ) । विद्येति ।  
विद्यासम्बन्धवाचिन्यो योनिसम्बन्धवाचिन्यश्च पञ्चम्यन्तेभ्यो युञ् स्यादागत  
इत्यर्थे । उपाध्यायादागत औपाध्यायकः । विद्यासम्बन्धवाची-उपाध्याय-  
शब्दः । पैतामहादागतः-पैतामहकः । योनिसम्बन्धवाचकोऽयम् ।

१ जिह्वामूल और अङ्गुलिशब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से भव अर्थ में छ प्रत्यय हो ।

२ वर्गान्तशब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्तसमर्थ सुबन्त से भव अर्थ में छ प्रत्यय हो ।

३ तत्तत्-शब्दप्रकृतिक पञ्चम्यन्त समर्थ से आगत अर्थ में अणादि और  
घादि प्रत्यय हों ।

४ आयस्थानवाचक शब्दप्रकृतिक पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त से आगत अर्थ में  
ठक् प्रत्यय हो ।

५ विद्यासम्बन्धवाची और योनिसम्बन्धवाची शब्दप्रकृतिक पञ्चम्यन्त  
समर्थ सुबन्त से आगत अर्थ में युञ् प्रत्यय हो ।

हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४ । ३ । ८१ ॥

समादागतं समरूप्यम् । विषमरूप्यम् । पक्षे—गहादित्वाच्छः ।  
समीयम् । विषमीयम् । देवदत्तरूप्यम् । देवदत्तम् ॥

भयट् च ४ । ३ । ८२ ॥

समभयम् । देवदत्तभयम् ॥

प्रभवति । ४ । ३ । ८३ ॥

हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा ॥

तद्गच्छति पथिदूतयोः ४ । ३ । ८५ ॥

सुगन्धे गच्छति सौगन्धः पन्था दूतो वा ॥

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४ । ३ । ८६ ॥

सुगन्धमभिनिष्क्रामति सौगन्धं कान्यकुब्जद्वारम् ॥

हेत्विति । हेतुवाचकान्मनुष्यवाचकाच्च पञ्चम्यन्तात् आगत, इत्यर्थे रूप्यः स्यात् । मयट् चेति । हेतुमनुष्येभ्यो भयडित्यर्थः । प्रभवतीति । पञ्चम्यन्तात्प्रभवतीत्यर्थेऽणादयो धादयश्च स्युः । तद्गच्छेति । द्वितीयान्ताद्गच्छतीत्यर्थेऽणादयो धादयश्च स्युः, यो गच्छति स चेत्पन्था दूतो वा । अभिनीति । द्वितीयान्तादभिनिष्क्रामतीत्यर्थेऽणादिप्रत्ययः स्यात्, यन्निष्क्रामति तद्वारचेत् । ( अभिनिष्क्रामति = उस ओर निकलता है ) ।

१ हेतु वाचक और मनुष्यवाचक शब्द प्रकृतिक पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त से आगत अर्थ में रूप्य प्रत्यय हो ।

२ हेतुवाचक और मनुष्यवाचक शब्द प्रकृतिक पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्तसे आगत अर्थ में मयट् प्रत्यय भी होता है ।

३ पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त से प्रभवति इस अर्थ में अजादि और घादि प्रत्यय हों ।

४ द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'गच्छति'—इस अर्थ में अणादि और घादि प्रत्यय हों । जाने वाला यदि-मार्ग-वा दूत हो तो ।

५ द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'अभिनिष्क्रामति' इस अर्थ में अणादि घादि प्रत्यय हों जो निकलता है वह यदि द्वार हो तो ।

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे । ४ । ३ । ८७ ॥

शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः ॥

सोऽस्य निवासः । ४ । ३ । ८९ ॥

सुभ्रो निवासोऽस्य सौमनः ॥

तेन<sup>३</sup> प्रोक्तम् । ४ । ३ । १०१ ॥

पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् ॥

तस्येदम् । ४ । ३ । १२० ॥

उपगोरिदम्—औपगवम् ॥ इति शैषिकाः ॥ ५ ॥

## अथ विकारार्थकाः

तस्य विकारः । ४ । ३ । १३४ ॥

\*अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः । अश्मनो विकारः—

अधिकृत्येति । द्वितीया-न्तादधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यर्थेऽणादयो धाद-  
यश्च स्युः ।

शारीरकीय इत्यत्र वृद्धाच्छ ।

सोऽस्येति । प्रथमान्तादस्य निवास इत्यर्थेऽणादयः स्युः ।

तेनेति । तृतीया-न्तात्प्रोक्तमित्यर्थेऽणादयः स्युः । पाणिनीयमिति ।  
वृद्धाच्छ इतिच्छ । तस्येति । पष्ठ्यन्ताद्विकार इत्यर्थेऽणादयः स्युः । इह अनिति

१ द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'अधिकृत्य कृत' इस अर्थ में अणादि प्रत्यय  
हों जो किया गया हो वह यदि ग्रन्थ हो तो ।

२ तत्तत्प्रातिपदिक प्रकृतिक प्रथमान्त सुबन्त समर्थ से 'अस्य निवास' इस  
अर्थ में अणादि प्रत्यय हों ।

३ तत्तत् शब्द प्रकृतिक तृतीयान्तसमर्थ सुबन्त से प्रोक्त इस अर्थ में अणादि-  
प्रत्यय हों ।

४ तत्तत्प्रकृतिक पष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से इदम्—अर्थ में अणादि प्रत्यय हों ।

५ तत्तत्प्रकृतिक पष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से विकार अर्थ में अणादि प्रत्यय हो ।

६ अश्मन् शब्द की टि का लोप हो विकार अर्थ में ।

आश्मः । भास्मनः । मार्त्तिकः ॥

अवयवे च प्राण्योषविष्टोभ्यः । ४ । ३ । १३५ ॥

चाद्विकारे । मयूरस्याऽवयवो विकारो वा मायूरः । मौर्व काण्ड  
भस्म वा । पैप्पलम् ॥

भयङ्ग्वैनयोर्भाषायाश्च भक्ष्याच्छादनयोः । ४ । ३ । १४३ ॥

प्रकृतिमात्रान्मयद्वा स्यात् विकारावयवयोः । अदममयम् ।  
आश्मनम् । अभक्ष्येत्यादि किम् ? । मौद्गः सूपः । कार्पासम्-  
आच्छादनम् ॥

नित्यं धृङ्शरादिभ्यः । ४ । ३ । १४४ ॥

आम्रमयम् । शरमयम् ॥

गोश्च पुरीषे । ४ । ३ । १४५ ॥

प्रकृतिभावः प्राप्तः । मृत्तिकाया विकारः-मार्त्तिकः । अवयवे चेति । षष्ठ्यन्ते-  
भ्य एभ्योऽवयवे विकारे चाऽणादयः स्युः । मूर्वाया अवयवो विकारो वा-मौर्व  
काण्ड, भस्म वा । काण्डमवयवः, भस्म-विकारः । [ मूर्वा=ओपधिभेदः ] ।

मयङ्ङ्वेतेति । षष्ठ्यन्तात्प्रकृतिमात्रान्मयद्वा स्यादेतयोः=विकारावयवयो  
रर्थयोः, न तु भक्ष्ये आच्छादने च ।

नित्यमिति । एभ्यो नित्यं मयट् विकारावयवयोरर्थयोः ।

आम्रस्य विकारः-आम्रमयम् । ( 'अमाचट्' 'अमरस' ) ।

गोश्चेति । गोशब्दात्पुरीषेऽर्थे मयट् । गोविकारो गव्यं-दुग्धादि ।

१ प्राणी वाचक व ओपधि वाचक शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त से अवयव  
और विकार अर्थ में अणादि प्रत्यय हों ।

२ यत्किञ्चित्प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से मयट् प्रत्यय विकल्प से हो  
विकार और अवयव अर्थ में । भक्ष्य और आच्छादन अर्थ में न हो ।

३ वृद्ध सन्धक और शरादि गणपठित शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से नित्य  
ही मयट् प्रत्यय हो, विकार और अवयव अर्थ में ।

४ गोशब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से पुरीष अर्थ में मयट्  
प्रत्यय हो ।

गोः पुरीषं गोमयम् ॥

गोपयसोर्यत् ४ । ३ । १६० ॥

गोमयम् । पयस्यम् ॥

इति विकारार्थकाः । ( इति प्राग्दीव्यतीयाः ) ॥ ६ ॥

## अथ ठगधिकारः

प्राग्बहतेष्टम् ४ । ४ । १ ॥

‘तद्वहती’त्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ॥

तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ४ । ४ । २ ॥

अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितो वा आक्षिकः ॥

संस्कृतम् ४ । ४ । ३ ॥

दध्ना संस्कृतं दाधिकम् । मारीचिकम् ॥

पयसो विकारः—पयस्यं (=‘खोवा’ ‘भावा’ ‘मलाई’ ‘रवड़ी’ आदि) ।

प्रागिति । ‘तद्वहति रथयुगप्रासङ्ग’मित्यत प्राक् । तेनेति । तृतीयान्ता-  
देषु चतुर्थ्येषु ठक् । संस्कृतमिति । तृतीयान्तात्संस्कृतमित्यर्थे ठक् । मरीचैः  
संस्कृतं मारीचिकम् । ( संस्कृत=‘भावित’ । ( छोंक दिया हुआ ) ) ।

१ गो शब्द और पयसशब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से विकार अर्थ में  
यत् प्रत्यय हो ।

२ तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्—इस सूत्र से पूर्व २ ठक् प्रत्यय का अधिकार है

३ तृतीयान्त सुबन्त समर्थ से दीव्यति—खनति—जयति—जितम्—इन चारों  
अर्थों में ठक् प्रत्यय हो ।

४ तृतीयान्त सुबन्त समर्थ से संस्कृत अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।



तरति ४ । ४ । ५ ॥

तेनेत्येव । उडुपेन तरति औडुपिकः ॥

चरति ४ । ४ । ८ ॥

तृतीयान्ताद्गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोऽक् स्यात् । हस्तिना चरति हास्तिकः । दध्ना चरति दाधिकः ॥

संसृष्टे ४ । ४ । २२ ॥

दध्ना संसृष्टं दाधिकम् ॥

उञ्छति ४ । ४ । ३२ ॥

वदराण्युञ्छति वादरिकः ॥

रक्षति ४ । ४ । ३३ ॥

समाजं रक्षति सामाजिकः ॥

शब्ददुर्गं करोति ४ । ४ । ३४ ॥

तरतीति । तृतीयान्तात्तरतीत्यर्थे ठक् । उडुपं=नौका । (जहाज) । हस्तिना चरति=गच्छति । दाधिक इति । दध्ना चरति=भक्षयति । संसृष्ट इति । तृतीयान्तात्संसृष्टेऽर्थे ठक् । संसृष्टं=संसिक्तम् । (मिलाया हुआ) ।

उञ्छतीति । द्वितीयान्तादुञ्छतीत्यर्थे ठक् स्यात् । उञ्छनम्=कणश आदानम् । ('दाना—दाना चुगना' 'विनना') रक्षतीति । द्वितीयान्ताद्रक्षतीत्यर्थे ठक् ।

१ तृतीयान्त सुबन्त समर्थ से 'तरति'—इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

२ तृतीयान्त सुबन्त समर्थ से गच्छति—भक्षयति—इन अर्थों में ठक् प्रत्यय हो ।

३ तृतीयान्त सुबन्त समर्थ से संसृष्ट (मिलाया हुआ) इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

४ द्वितीयान्त सुबन्त समर्थ से 'उञ्छति' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

५ द्वितीयान्त सुबन्त समर्थ से 'रक्षति' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

६ शब्द और दुर्ग प्रकृतिक द्वितीयान्त सुबन्त समर्थ से करोति—इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

शब्दं करोति शाब्दिकः । दर्दुरं करोति दार्दुरिकः ॥

धर्मं चरति । ४ । ४ । ४१ ॥

धार्मिकः । अधर्माच्चेति वक्तव्यम् ।

शिल्पम् । ४ । ४ । ५५ ॥

मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः ॥

प्रहरणम् ४ । ४ । ५७ ॥

तदस्येत्येव । असिः प्रहरणमस्य आसिकः । धानुष्कः ॥

शीलम् । ४ । ४ । ६१ ॥

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः ॥

निकटे वसति । ४ । ४ । ७३ ॥

नैकटिको भिक्षुकः ॥

इति ठगधिकारः ॥ ७ ॥

दर्दुरः वायभाण्डविशेषः । दार्दुरिकः=कुलालः । धर्ममिति ।

द्वितीयान्ताद्धर्मशब्दाच्चरतीत्यर्थे ठक् । अधर्मं चरति-आधार्मिकः ।

शिल्पमिति । प्रथमान्ताच्छिल्पमित्यर्थे ठक् ।

प्रहरणमिति । प्रथमान्तात्प्रहरणमस्येत्यर्थे ठक् ।

धानुष्क इति । इह इसुसुक्तान्तादिति कः ।

शीलमिति । प्रथमान्ताच्छीलमस्येत्यर्थे ठक् । निकट इति । सप्त-  
म्यन्ताभिकटशब्दाद्वसनीत्यर्थे ठक् । भिक्षुक इति । संन्यासी हि ग्रामस्य

१ धर्मं प्रकृतिकद्वितीयान्तं सुबन्तं समर्थं मे 'चरति'-इस अर्थ से ठक् प्रत्यय हो ।

२ अधर्मं शब्द प्रकृतिक द्वितीयान्तं समर्थं से चरति-इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

३ तत्तत्प्रातिपदिकप्रकृतिक प्रथमान्तं सुबन्तं समर्थं से अस्य शिल्पम्-इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

४ प्रथमान्तं सुबन्तं समर्थं से 'अस्य प्रहरणम्'-इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

५ प्रथमान्तं सुबन्तं समर्थं से 'शीलमस्य' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।

६ निकट शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्तं सुबन्तं समर्थं से वसति-इस अर्थ में ठक् हो ।

## अथ प्राग्वित्तियाः ।

प्राग्वित्तियत् । ४ । ४ । ७६ ॥

‘तस्मै हित’मित्यतः प्राग् यदधिक्रियते ॥

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् । ४ । ४ । ७६ ॥

रथं वहति रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्ग्यः ॥

धुरो यङ्कौ । ४ । ४ । ७७ ॥

‘हलि चे’ति दीर्घे प्राप्ते-॥

न भङ्कुर्धुराम् । ८ । २ । ७९ ॥

भस्य कुर्धुरोश्चोपधाया इको दीर्घो न स्यात् । धुर्यः । धौर्यः ॥

नौवयोवर्मविषमूलमूलसीतानुलाम्यस्तार्थतुल्य-

प्राप्यवध्याऽऽनाम्यसंभसमितसंमितेषु ४ । ४ । ९१ ॥

निकटे वसति, भिक्षार्थं च ग्राममायाति । तद्वहतीति । द्वितीयान्तेभ्यो रथा-  
दिभ्यो यत्स्याद्वहतीत्यर्थे । रथ्यः=वृषभाश्वादिः । युगं=रथाङ्गम् । प्रासङ्गः  
वृषभस्कन्धे आसङ्गनीय काष्ठम् ।

धुर इति । द्वितीया-ताङ्कुरा-न्दात् वहतीत्यर्थे यत्-टकौ स्तः । धुरं  
वहति धुर्यः । नौवय इति । नावादिभ्योऽष्टम्यस्तार्थादिष्वर्थेषु यत्स्यात् । तार्थ=

१ तस्मै हितम्-इस सत्र से पूर्व २ यत् प्रत्यय का अधिकार जानना ।

२ रथ-युग-प्रासङ्ग शब्द प्रकृतिक द्वितीयान्त सुवन्त समर्थ से ‘वहति’ इस  
अर्थ में यत्प्रत्यय हो ।

३ धुर-शब्द प्रकृतिक द्वितीयान्त सुवन्त समर्थ से ‘वहति’-इस अर्थ में यत्  
और ढक् प्रत्यय हो ।

४ भस-शक कुर और धुर शब्द की उपधा भूत जो इक् उस को दीर्घ नहीं हो ।

५ नौ-वयस्-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता तुला-एतत् शब्दप्रकृतिक तृतीयान्त  
सुवन्त समर्थ से क्रम से तार्थ्य-तुल्य-प्राप्य-वध्य-आनाम्य-सम-समित-  
समित-इन अर्थों में यत् प्रत्यय हो ।

नावा ताय नाव्यं जलम् । वयसा तुल्यो वयस्यः । धमण  
प्राप्यं धर्म्यम् । विषेण वध्यो विष्यः । मूलेन आनाम्यं मूल्यम् ।  
मूलेन समो मूल्यः । सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया संमितं  
तुल्यम् ॥

तत्र साधुः ४ । ४ । १८ ॥

अग्र साधुः—अग्रयः । सामसु साधुः सामन्यः । 'ये चाभाव-  
कर्मणो'रिति प्रकृतिभावः । कर्मण्यः । शरण्यः ॥

समाया यः ४ । ४ । १०५ ॥

सभ्यः

इति यतोऽवधिः । इति प्राग्घटतीयाः ॥ ८ ॥

सन्तरणीयम् । शक्यार्थे ण्यत् । वयस्यः=सखा । धर्म्यं=स्वर्गादि । आनाम्य-  
मिति । मूलं नाम पटादीनामुत्पत्त्यर्थं वणिग्भिर्विनियुक्तं धनम् । ( 'मूलधन'  
'पूजी' ) । आनाम्यञ्च मूलेन लाभार्थं यद्द्रव्यमात्मानं प्रति अवशेषीक्रियते  
( आत्मन उपकारकं क्रियते ) तत् । ( लाभः ) । लोके तु यावता द्रव्येण  
पटादिकं विक्रीयते तन्मूल्यशब्देनोच्यते । एवञ्च लाभार्थं व्युत्पन्नस्य तस्य तत्र  
निरुद्धा लक्षणा बोध्या । मूलेन-बुद्धेन-समः=तुल्यः ।

सीता-हलदण्डः । रेखा च । तथा समितं=सङ्गतं=निम्नोन्नतादिरहितं  
कृतम् । समीकृतमिति यावत् । संमितं=तुलितम् ।

साधुः=कुशलः । कर्मणि साधुः=कर्मण्य । शरणे साधुः=शरण्यः ।  
'शरणं गृहरक्षित्रो'रित्यमरः । समायां साधुः=सभ्यः ।

१ तत्तत्प्रातिपदिक प्रकृतिक सप्तम्यन्त सुबन्त समर्थे से साधु ( कुशल )  
अर्थ में यत् प्रत्यय हो ।

२ समाशब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त सुबन्त समर्थे से साधु अर्थमें य प्रत्यय हो ।

## अथ छयतोरधिकारः

प्राक् क्रीताच्छः ५ । १ । १ ॥

तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते ॥

उगवादिभ्यो यत् ५ । १ । २ ॥

प्राक् क्रीतादित्येव । उवर्णान्ताद्गवादिभ्यश्च यत् स्यात् ।

छस्यापवादः । शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु । गव्यम् । \*नाभि नभं  
च । नभ्योऽक्षः । नभ्यमञ्जनम् ॥

तस्मै हितम् ५ । १ । ५ ॥

वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक् ॥

शरीरावयवाद्यत् ५ । १ । ६ ॥

दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । नस्यम् ।

शङ्कुः कीलकम् । ( खंटा ) । गव्यं-गुडचणकादिकम् । अक्षः-स्थान-  
नाभिप्रवेगनीयं काष्ठम् । अञ्जनं-तैलादिदानम् । ( उंगाना ) । गोधुक्-  
गोपालः । दन्तेभ्यो हितं-दन्त्यम् । नासिकायै हितं-नस्यम् । 'नस् नासिकाया'  
इति नसादेशः ।

१ तेन क्रीतम् इस सूत्र से पूर्व २ छ प्रत्यय का अधिकार है ।

२ तेन क्रीतम्-इस सूत्र से पूर्व २ उवर्णान्त जो शब्द-और गवादि गणपठि  
जो शब्द-तत्प्रकृतिक चतुर्थ्यन्त सुबन्त समर्थ से हित अर्थ में यत् प्रत्यय हो ।

३ नाभि शब्द के स्थान में नभ आदेश हो, यत् प्रत्यय परे रहते ।

४ तत्तत् प्रातिपदिक प्रकृतिक चतुर्थ्यन्त सुबन्त समर्थ से हित अर्थ में छ  
प्रत्यय हो ।

५ शरीराऽवयववाचक शब्दप्रकृतिक चतुर्थ्यन्त सुबन्त समर्थ से हित अर्थ  
में यत् प्रत्यय हो ।

आत्मान्विश्वजनभोगोत्तरपदात्त्वः ५ । १ । ९ ॥

आत्माध्वानौ खे ६ । ४ । १६९ ॥

एतौ खे प्रकृत्या स्तः । आत्मने हितम् आत्मनीनम् । विश्व-  
जनीनम् । मातृभोगीणः ।

इति छयतोः पूर्णोऽवधिः ( इति प्राक्क्रीतायाः ) ॥ ९ ॥

**अथ ०अधिकारः ।**

प्राग्बलेष्टञ् ५ । १ । १८ ॥

'तेन तुल्य'मिति वर्ति वक्ष्यति ततः प्राक् ०अधिक्रियते ॥

तेन क्रीतम् ५ । १ । ३७ ॥

सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम् । प्रास्थिकम् ॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ५ । १ । ४१ ॥

तस्येश्वरः ५ । १ । ४२ ॥

विश्वजनीनमिति । विश्वो जनः=विश्वजन , विश्वजनाय हितं-विश्वज-  
नीनम् । कर्मधारयादेवेष्टयत् । मातृभोगाय=मातृशरीराय हितं-मातृभोगीणः ।  
अट्कुप्वाङिति णत्वम् । वक्ष्यति रूत्रकृत् । तेनेति । तृतीयान्तत्वात् क्रीतमि-  
त्यर्थे ०ञ् । साप्ततिकं यानादिकम् । प्रस्थेन तन्मि तेन धान्यादिना क्रीतं-प्रास्थिकं=  
तैलं-शाकादिकम् । सर्वेति । सर्वभूमिशब्दात्पृथिवीशब्दाच्च अणञौ स्त  
इत्यर्थः । अनुशक्तिकादिषु सर्वभूमिशब्दः पठ्यते, अत उभयपदवृद्धिः ।

१ आत्मन्-विश्वजन-और भोग ये उत्तर पद में है जिसके ऐसे प्रातिप-  
दिक प्रकृतिक चतुर्थ्यन्त समर्थ सुबन्त से हित अर्थ में खप्रत्यय हो ।

२ आत्मन् और अध्वन्-शब्द प्रकृति से रहते हैं खप्रत्यय परे रहते ।

३ 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः'-इस सूत्र से पूर्व २ ०ञ् प्रत्यय का अविकार है ।

४ तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से क्रीत इस अर्थ में ०ञ् प्रत्यय हो ।

५ सर्वभूमि और पृथिवी शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से निमित्तादि  
अर्थ में अण अञ् प्रत्यय हों ।

६ षष्ठ्यन्त से ईश्वर अर्थ में अण् और अञ् प्रत्यय हो ।

सर्वभूमिपृथिवीम्यामणजौ स्तः ॥ अनुशतिकादीनां च ।

सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः । पार्थिवः ॥

पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्त-  
त्यशीतिनवतिशतम् । ५ । १ । ५९ ॥

एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते ॥

तदहति । ५ । १ । ६३ ॥

लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताङ्गादयः स्युः । श्वेत-

च्छत्रमहति श्वेतच्छत्रिकः ॥

दण्डादिभ्यो यत् ५ । १ । ६६ ॥

एभ्यो यत्स्यात् । दण्डमहति दण्ड्यः । अर्ध्यः । वध्यः ॥

सार्वभौमश्चक्रवर्ती । पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः=राजा ।

पङ्क्तिरिति । पञ्च पदानि ( =पादाः ) परिमाणमस्य-पङ्क्तिः-छन्दोभेदे  
क्रमभेदे दशसङ्ख्यायाश्च । अत्र पञ्चनृशब्दस्य टिलोपः, तिप्रत्ययः, चोः कुरिति  
कुत्वम् । द्वौ दश तौ परिमाणमस्य विंशतिः । प्रकृतेर्विनादेशः, शतिप्रत्ययः,  
अपदत्वञ्च निपात्यते । तेन नस्यानुस्वारः । एवं-त्रयो दशतः परिमाणमस्य-  
त्रिंशत् । चत्वारो दशतः परिमाणमस्य चत्वारिंशत् । एवमग्रेऽपि । दश दशत  
परिमाणमस्य शतम् । अत्र प्रत्ययादेशादयः स्वयमूहनीयाः । दण्ड्यः=अपराधी ।  
अर्धमहति-अर्ध्यः=आचार्यातिथिराजादिः ।

१ अनुशतिकादिगणपठित शब्दों को उसयपद वृद्धि हो ।

२ पङ्क्ति-विंशति-आदि शब्द निपातन से साधु होते हैं ।

३ द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से लब्धुं योग्यो भवति-इस अर्थ में ठादि  
प्रत्यय हों ।

४ दण्डादि गणपठित शब्द प्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से यत् प्रत्यय हो ।

तेन निर्वृत्तम् ५ । १ । ७९ ॥

अह्ना निर्वृत्तम् आह्निकम् ॥

इति ठञोऽधिः ( इति प्राग्वतीयाः ) ॥ १० ॥

**अथ त्वत्तलोरधिकारः**

तेन तुल्यं क्रिया चेदिति ५ । १ । ११५ ॥

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवदधीते । क्रिया चेदिति किम् ? ।

गुणतुल्ये मा भूत् । पुत्रेण तुल्यः, स्थूलः ॥

तत्र तस्येव ५ । १ । ११६ ॥

मथुरायामिव मथुरावत् सुप्ते प्राकारः । चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गावः ॥

तस्य भावत्यतलौ ५ । १ । ११९ ॥

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः । गोर्भावो गोत्वम् । गोता ।

तेनेति । तृतीयान्तात्कालवाचिनष्ठञ् । आह्निकमिति । अहश्चोरेवेति नियमाच्चस्तद्धित इति टिलोपो न ।

तेनेति । तृतीयान्तात्तुल्यमिन्त्यर्थे वतिः, यत्तुल्यं क्रिया चेत्सा भवति । तत्रेति । सप्तम्यन्तात्षष्ठ्यन्ताच्च इवार्थे वतिः ।

तस्येति । षष्ठ्यन्तात्त्वतलौ स्तो भावे । भावइति । यथा-द्रव्यत्वं जातिः । प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारत्वात् । 'गोते'त्यत्र 'तलन्त स्त्रिया'मिति स्त्रीलिङ्गता ।

१ काल वाचक तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से निर्वृत्त ( तयार हुआ ) इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ।

२ तत्तत्प्रातिपादिक प्रकृतिक तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से 'तुल्य' अर्थ में वति प्रत्यय हो । जिससे तुल्य हो वह यदि क्रिया हो तो ।

३ सप्तम्यन्त अथवा षष्ठ्यन्त-समर्थ सुबन्त से इव अर्थ में वति प्रत्यय हो ।

४ तत्तत्प्रातिपादिक प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से भाव अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय हो । प्रकृति जन्य जो बोध-उसमें जो प्रकारीभूत हो उसको 'भाव' कहते हैं ।



त्वा<sup>१</sup>न्तं ह्रीवम् । [ तलन्तं स्त्रियाम् ] ।

औ च त्वात् ५ । १ । १२० ॥

‘ब्रह्मणस्त्व’ इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते । अपवादैः सह समावेशार्थनिदम् । चकारो नञ्स्त्वञ्भ्यामपि समावेशार्थः । स्त्रिया भावः स्त्रैणम् । स्त्रीत्वम् । स्त्रीता । पौंस्वम् । पुंस्त्वम् । पुंस्ता ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिच्वा ५ । १ । १२२ ॥

वावचनमणादिसमावेशार्थम् ॥

रं ऋतो हलादेर्लघोः ६ । ४ । १६१ ॥

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यादिष्टेमेयस्सु परतः ॥

पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम् ।

टः<sup>५</sup> ६ । ४ । १५५ ॥

भस्य टेलोप इष्टेमेयस्सु । पृथोर्भावः प्रथिना ॥

इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ५ । १ । १३१ ॥

नञ्स्त्वञ्भ्यां-स्त्रीपुसाभ्यामिति विहिताभ्याम् । वावचनमिति । इगन्तलघुपूर्वेषु पृथुमृदुप्रभृतिषु ‘इगन्ताच्च लघुपूर्वा’दित्यणः समावेशः, चण्डखण्डादिषु ‘गुणवचनब्राह्मणादिभ्य’इति प्यजः समावेश, बालवत्सादिषु ‘प्राणमृज्जाती’ति

१ त्व प्रत्ययान्त जो प्रातिपदिक वह नपुमक लिङ्ग में होता है । और तल् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग में होता है ।

२ ‘ब्रह्मणस्त्व.’ इस सूत्र से पूर्व त्व और तल् प्रत्यय का अधिकार जानना ।

३ पृथ्वादिगणपठित षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय हो विकल्प से ।

४ हलादि जो लघु ऋकार उसको रभाव हो इष्टन्-इमनिच्-ईयसुन् प्रत्यय परे रहते ।

५ पृथु-मृदु-भृश-कृश-दृढ पण्वृढ इन शब्दों के ही लघु ऋकार को रभाव हो ।

६ भस्यञ्चकी टि का लोप, हो इष्टन् इमन् ईयस् प्रत्यय परे रहते ।

इगन्ताल्लधुपूर्वात् प्रातिपदिकाद्भावेऽण् प्रत्ययः । पार्थिवम् ।  
मृदिमा । मार्दवम् ॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ५ । १ । १२३ ॥

चादिमनिच् ॥ शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । दार्ढ्यम् । द्रढिमा ॥

गुणवाचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५ । १ । १२४ ॥

चाद्भावे ॥ जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम् । मूढस्य भावः  
कर्म वा मौढ्यम् । ब्राह्मण्यम् । आकृतिगणोऽयम् ॥

सख्युर्यः ५ । १ । १२५ ॥

सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम् ॥

कैपिज्ञात्योर्ढक् ५ । १ । १२७ ॥

कापेयम् । ज्ञातेयम् ॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५ । १ । १२८ ॥

वयोवचनलक्षणस्याऽन समावेश इत्याशयः । पृथुता=स्थूलता । वर्णति ।  
वर्णवाचकेभ्यो दृढादिभ्यश्च ष्यञ्, इमनिच् ।

जाड्यं=मूर्खता । मौढ्यं=मूढता । ब्राह्मण्यं=नपःसम्पत् । कपीति ।  
आभ्या ढक् स्याद्भावकर्मणोः । कपेर्भावः कर्म वा कापेयम् । सेनापतेर्भावः कर्म

१ इगन्त जो लधुपूर्व प्रातिपदिक उत्तसे भाव में अण् प्रत्यय हो ।

२ वर्णवाचक और दृढादिगणपठित शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से  
भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय हो । चात्-इमनिच् प्रत्यय भी हो ।

३ गुणवाचक और ब्राह्मणादि गणपठित शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त  
से कर्म और भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय हो ।

४ सखिशब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से कर्म और भाव अर्थ में 'य'  
प्रत्यय हो ।

५ कपि और ज्ञाति शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से भाव-कर्म में ढक्  
प्रत्यय हो ।

६ पत्यन्त और पुरोहितादि गणपठित शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त  
से भाव कर्म अर्थ में यक् प्रत्यय हो ।

सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् ॥

इति त्वतलोरेधिकारः ॥ ११ ॥

## अथ भवनाद्यर्थकाः ।

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ५ । २ । १ ॥

भवत्यस्मिन्निति भवनम् । भुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम् ॥

त्रीहिशांल्योढक् ५ । २ । २ ॥

त्रैहेयम् । शालेयम् ॥

हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ५ । २ । २३ ॥

ह्योगोदोहशब्दस्य हियङ्गुरादेशो विकारार्थे खञ्च निपात्यते ।  
दुह्यते इति दोहः-क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारः-हैयङ्गवीनं  
नवनीतम् ॥

तदस्यै सजातं तारकादिभ्य इतच् ५ । २ । ३६ ॥

वा सैनापत्यम् । पुरोहितस्य भावः कर्म वा पौरोहित्यम् । त्रीहीति ।

आभ्यां ढक् स्यादुक्तेऽर्थे । त्रीहीणां शालीनां च भवनं क्षेत्रं-त्रैहेयम् । शालेयम् ।

दोहइति । कर्मणि घञ् । ह्योगोदोहस्य=पूर्वदिने दुग्धस्य गोपयसो

विकार इत्यर्थः । [ भवखन ] । तदस्येति । प्रथमान्तेभ्य एभ्योऽस्य सजातं

१ धान्यवाचक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'भवने क्षेत्रे' अर्थ में खञ् प्रत्यय  
हो । ( भवन=होने योग्य ) ।

२ त्रीहि और शालि शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'भवने क्षेत्रे'  
इस अर्थ में ढक् प्रत्यय हो ।

३ 'हैयङ्गवीनम्'-यह शब्द साधु हो संज्ञा में । [ अर्थात् ह्योगोदोह शब्द  
को हियङ्गु आदेश हो और खञ् प्रत्यय हो विकार अर्थ में ] ।

४ तारकादिगणपठितशब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य-सजातम्'  
इस अर्थ में इतच् प्रत्यय हो ।

तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं नमः । पण्डितः । आकृति-  
गणोऽयम् ॥

प्रमाणे द्वयसद्दधनप्रमात्रचः ५ । २ । २७ ॥

तदस्येत्यनुवर्तते । ऊरु प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम् । ऊरु-  
द्वयम् । ऊरुमात्रम् ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५ । २ । ३९ ॥

यत्परिमाणमस्य—यावान् । तावान् । एतावान् ॥

किमिदम्भ्यां वो घः ५ । २ । ४० ॥

आभ्यां वतुप् स्याद्वकारस्य घश्च ॥

ईदंकिमोरीशकी ६ । ३ । ९० ॥

दृग्दृशवतुषु इदम् ईश् किमः कीः । कियान् । इयान् ॥

संख्यायां अवयवे तयप् ५ । २ । ४२ ॥

पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम् ॥

मित्यर्थे इतच् स्यात् । 'सञ्ज.त'मिति एकत्वमविवक्षितम् । सामान्ये नपुसकं,  
तेन पुंसि स्त्रियामपि द्विवचनादौ चेदं सूत्रं प्रवर्तते एव । पण्डा-विवेकशालिनी  
बुद्धिः- सञ्जाताऽस्य-पण्डितः ।

प्रमाण इति । प्रथमान्तादस्य प्रमाणमित्यर्थे एते प्रत्ययाः स्युः ।  
यावानिति । 'आ सर्वनाम्न' इत्याकारोऽन्तादेशः । यत्प्रमाणमस्य यावान् ।

१ प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य प्रमाणम्' इस अर्थ में—द्वयसच्-  
दधनच् और मात्रच् प्रत्यय हों ।

२ यत्-तत् और एतत् शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य  
परिमाणम्' इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो ।

३ किम् इदम् शब्दसे वतुप् हो, वकार को घकार हो ।

४ इदम् को 'ईश्' किम् को 'की' आदेश हो, दृग् दृश वतु परे रहते ।

५ संख्यावाचकशब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अवयवाः—अस्य' इस  
अर्थ में तयप् प्रत्यय हो ।

द्वित्रिभ्यां तयस्थाऽयच्चा ५ । २ । ४३ ॥

द्वयम् । द्वितयम् । त्रयम् । त्रितयम् ॥

उभौडुदा लो नित्यम् ५ । २ । ४४ ॥

उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात्स चोदात्तः । उभयम् ॥

तस्य पूरणो ङट् ५ । २ । ४८ ॥

एकादशानां पूरण एकादशः ॥

नान्तादसंख्यादेर्भट् ५ । २ । ४९ ॥

ढटो मडागमः । पञ्चानां पूरणः पञ्चमः । नान्तात्किम् ? ॥

ति विंशतेर्ङिति ६ । ४ । १४२ ॥

विंशतेर्मस्य तिशब्दस्य लोपो ङिति परे । विंशः । असंख्यादेः

किम् ? । एकादशः ॥

षट्कृतिकतिपयचतुरां शुक् ५ । २ । ५१ ॥

तत् प्रमाणमस्य तावान् । द्वाववयवौ यस्य तद्-द्वयम् । एवम्-त्रयोऽवयवा  
यस्य तत्-त्रयम् । उभौ अवयवौ यस्य तत्-उभयम् ।

विंशतेः पूरणः विंशः ।

१ द्वि-त्रि शब्द से विहित जो तयप् प्रत्यय उसको अयच् आदेश हो विकल्प  
करके ।

२ उभशब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से विहित जो तयप्-उसको  
अयच् आदेश से हो । और वह उदात्त हो ।

३ षष्ठ्यन्त सुबन्त समर्थ से पूरण इस अर्थ में ङट् प्रत्यय हो ।

४ संख्या आदि में नहीं है जिसके ऐसा जो नान्त संख्यावाची उससे परे जो  
ङट् प्रत्यय उसको मट् का आगम हो ।

५ भसञ्चक जो विंशति शब्द उसके 'ति' का लोप हो, ङित् परे रहते ।

६ षट्-कति-कतिपय और चतुर् शब्द-इनको शुक् आगम हो, ङट् परे रहते ।

एषां थुगागमः स्याद्धुटि । षण्णां पूरणः षष्ठः । कतिथः ।  
कतिपयशब्दस्याऽसङ्ख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाद्धट् । कतिपयथः ।  
चतुर्थः ॥

द्वेस्तीर्थः ५ । २ । ५४ ॥

डटोऽपत्रादः । द्वयोः पूरणो द्वितीयः ॥

त्रेः सम्प्रसारणं च ५ । २ । ५५ ॥

तृतीयः ॥

श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते ५ । २ । ८४ ॥

श्रोत्रियः । वेत्यनुवृत्तेः—छन्दसः ॥

पूर्वादिनिः ५ । २ । ८६ ॥

पूर्वं कृतमनेन पूर्वा ॥

कतीना पूरणः-कतिथः । कतिपयाना पूरणः-कतिपयथः । ज्ञापका-  
दिति । तस्य पूरणे डट् इति डटः 'सङ्ख्याया अवयवे' इत्यतः 'सङ्ख्याया'  
इत्यनुवर्त्य विधानादिहाऽप्राप्तावप्यत एव ज्ञापकाद्धुटिति भावः । त्रेरिति ।  
षष्ठ्यन्तात्रिशब्दात्तीयप्रत्ययः स्यात्पूरणे । त्रेः सम्प्रसारणञ्चेत्यर्थः ।

छन्दः (वेदम्) अधीते इति श्रोत्रियः=एकशाखाध्यायी । छन्दोऽधीते  
इति वाक्यस्याऽर्थे श्रोत्रियनादेशो निपात्यते । अनुवृत्तेरिति । 'तावत्तियं  
ग्रहणमिति छवे'ति सूत्राद्वापदमनुवर्त्तने इत्यर्थः । छान्दस इत्यत्र तदधीते  
इति अध्येत्रण् ।

पूर्वमिति । पूर्वमिति द्वितीयान्तात्क्रियाविशेषणादिनिः । अत्र च

१ द्विशब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय हो ।

२ त्रिशब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से तीय प्रत्यय हो, पूरण अर्थ में,  
और त्रिशब्द को सम्प्रसारण भी हो ।

३ छन्दोऽधीते इसके अर्थ में श्रोत्रियन् आदेश निपातनं हो ।

४ पूर्वशब्दप्रकृतिकद्वितीयान्त क्रियाविशेषण से इनि प्रत्यय हो अनेन इस अर्थमें ।

संपूर्वाच्च ५ । २ । ८७ ॥

कृतपूर्वी ॥

इष्टादिभ्यश्च ५ । २ । ८८ ॥

इष्टमनेन—इष्टी । अधीती ॥

इति भवनाद्यर्थकाः ॥ ११ ॥

**अथ मत्वर्थीयाः ।**

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५ । २ । ९४ ॥

गावोऽस्याऽस्मिन्वा सन्ति गोमान् ।

तसौ मत्वर्थे १ । ४ । १९ ॥

तान्तसान्तौ मसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे । गरुत्मान् ।

‘वसोः सम्प्रसारणम्’ । विदुष्मान् । \*गुणवैचनेभ्यो मतुपो

‘श्राद्धमनेन भुक्त’मिति सूत्रादनेनेति कर्तृपदानुवृत्त्या क्रियां विना कर्तुरसम्भवेन यां काश्चित्क्रियामध्याहृत्य प्रत्ययो विधेयः । तदाह—कृतमिति । इष्टी=कृतयज्ञः । अधीती=अधीतविद्यः । तदस्येति । प्रथमान्तादस्यास्तीति अस्मिन्नस्तीति वाऽर्थे मतुप् स्यात् । इतिशब्दो विषयविशेषलाभार्थः । तदुक्तं

‘भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने ।

संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुवादयः ॥’ इति ॥

विद्वांसोऽस्य अस्मिन्वा सन्ति—विदुष्मान् ।

१ सपूर्वं जो पूर्व शब्द उस से इनि प्रत्यय हो ।

२ इष्टादिशब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से इनि प्रत्यय हो अनेन इस अर्थ में ।

३ प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से अस्यास्ति और अस्मिन्नस्ति अर्थ में मतुप् इत्यय हो ।

४ तान्त और सान्त की मसंज्ञा हो मत्वर्थ प्रत्यय परे रहते ।

५ गुण वाचक से विहित जो मतुप् प्रत्यय उसका लुक् हो ।

लुगिष्ठः । शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः । कृष्णः ॥

प्राणिस्थादातो लज्जन्यतेऽस्याम् ५ । २ । ९६ ॥

चूडालः । चूडावान् । प्राणिस्थात्किम् ? । शिखावान् दीपः ।  
प्राण्यङ्गादेव । नेह मेधावान् ॥

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१०० ॥

लोमादिभ्यः शः । लोमशः । लोमवान् । रोमशः । रोमवान् ।  
पामादिभ्यो नः । पामनः । \*अङ्गात्कल्याणे । अङ्गना ।  
लक्ष्म्या अच । लक्ष्मणः । पिच्छादिभ्य इलच् । पिच्छिलः ।  
पिच्छवान् । उरसिलः । उरस्वान् ।

गुणेति । गुणे गुणिनि च प्रसिद्धेभ्यः शुक्लादिभ्यो मत्तुपो लृक् । शुक्ल  
इति । अत्र मत्तुपो लृक् । प्राणिष्येति । प्राणिस्थात्प्राण्यङ्गवाचकादाकारान्ताल-  
ज्या स्यादुक्तेऽर्थे । चूडाऽस्त्यस्य चूडालः । 'चूडा शिखा केशपाशः' इत्यमरः ।  
(चूडा='चोटी' 'बुन्दी') । मेधावानिति । प्राणिस्थत्वेऽपि मेधायाः प्राण्यङ्ग-  
त्वाऽभावात् लच् ।

लोमेति । लोमादिभ्यः शः, पामादिभ्यो नः, पिच्छादिभ्य इलच्स्यादु-  
क्तेऽर्थे । लोमानि सन्त्यस्य लोमशः । पाम अस्यातीति--पामनः । 'पाम  
पामा विचर्विके' इत्यमरः ।

प्रशरः=कल्याणमङ्गं यस्याः सा--अङ्गना । पिच्छमस्त्यस्य अस्मिन्वा

१ प्राणिस्थ ( प्राण्यङ्गवाचक ) आकारान्त शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त से लच्  
प्रत्यय विकल्प से हो अस्यास्ति-इस अर्थ में ।

२ लोमादि गणपठितशब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ भुवन्त से श प्रत्यय हो  
एवं पामादि और पिच्छादि गणपठित शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ भुवन्त से  
क्रम से न और इलच् प्रत्यय हो ।

३ अङ्ग शब्द से कल्याण अर्थ में न प्रत्यय हो ।

४ लक्ष्मी शब्द को अकार अन्तादेश हो और चकार से न प्रत्यय भी हो ।



दन्ता उन्नत उरच् ५ । २ । १०६ ॥

उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य दन्तुः ॥

केशादिभ्योऽन्त्यतरस्थाम् ५ । २ । १०७ ॥

केशवः । केशी । केशिकः । केशवान् ।

अन्येभ्योऽपि दृश्यते । मणिवः ॥

अर्णसो लोपश्च । अर्णवः ॥

अतं इनिठनौ ५ । २ । ११५ ॥

दण्डी । दण्डिकः ॥

ब्रीह्यादिभ्यश्च ५ । २ । ११६ ॥

ब्रीही । ब्रीहिकः ॥

अस्मायामेधास्रजो विनिः ५ । २ । १२१ ॥

पिच्छिलः । प्रशस्तम्--उरोऽस्त्यस्य उरसिलः । प्रगस्ता केशाः सन्त्यस्य केशवः । केशीत्यादि ।

मणिरस्त्यस्य-मणिवः--नागभदः । अर्णः=जलमस्त्यस्मिन् अर्णवः=समुद्रः । अत इति । अदन्तादिनिठनौ स्तो मत्वर्थे । दण्डीऽस्त्यस्य दण्डी । दण्डिकः । ब्रीह्येति । ब्रीह्यादिभ्य इनिठनौ स्तो मत्वर्थे ।

अस्मेति । अस्मादिभ्यो विनिः स्थान्मत्वर्थे ।

१ दन्तशब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से उन्नत अर्थ में उरच् प्रत्यय हो ।

२ केश शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से व प्रत्यय विकल्प से हो मत्वर्थ में ।

३ केश शब्द से अन्य जो शब्द उनसे भी व प्रत्यय होता है ।

४ अर्णस् शब्द से व प्रत्यय हो और अन्त्य अल् का लोप हो ।

५ अदन्त शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से इनि और ठन् प्रत्यय हो ।

६ ब्रीह्यादि गण पठित शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ से इन् और ठ्व प्रत्यय हो मत्वर्थ में ।

७ असन्त और माया-मेधा और स्रज् शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से विनि प्रत्यय हो मत्वर्थ में ।

यशस्वी । यशस्वान् । मायावी । मेधावी । सग्वी ॥

वाचो ग्मिनिः ५ । २ । १२४ ॥

वाग्मी ॥

अर्शआदिभ्योऽच् ५ । २ । १२७ ॥

अर्शस्यस्य विधन्ते अर्शसः । आकृतिगणोऽयम् ॥

अहंशुभभोर्युस् ५ । २ । १४० ॥

अहंयुः अहङ्कारवान् । शुभंयुस्तु शुभान्वितः ॥

इति मत्वर्थीयाः ॥ १२ ॥

## अथ प्राग्दिशीयाः ।

प्राग्दिशो विभक्तिः ५ । ३ । १ ॥

‘दिक्शब्देभ्य’ इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः स्युः ॥

किं सर्वनामबहुभ्योऽद्धादिभ्यः ५ । ३ । २ ॥

‘किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चे’ति प्राग्दिशोऽधिक्रियते ॥

पञ्चम्यास्तसिल् ५ । ३ । ७ ॥

वाचइति । वाचो ग्मिनिः स्यान्मत्वर्थे । अर्शइति । अर्शआदिभ्योऽच् स्यान्मत्वर्थे । अर्शसः=अर्शो रोगी ( बेवाशीर रोग वाला ) ।

१ वाच् शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ स्रजन्त से ग्मिनि प्रत्यय हो मत्वर्थ में ।

२ अशस् आदि गण पठित शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ से अच् प्रत्यय हो मत्वर्थ में ।

३ ‘अह’ ‘शुभ’ शब्दों से युस् प्रत्यय हो मत्वर्थ में ।

४ दिक्शब्देभ्यः’ इससे पूर्व वक्ष्यमाण जो प्रत्यय उनकी विभक्ति संज्ञा हो ।

५ ‘किं सर्वनामबहुभ्योऽद्धादिभ्यः’ यह दिक्शब्देभ्यः इससे पूर्व पूर्व अधिकार होता है ।

६ द्यादि भिन्न किं सर्वनामबहुशब्दप्रकृतिक पञ्चम्यन्त से तसिल् प्रत्यय विकल्प से हो ।

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल्वा स्यात् ॥

कुं तिहोः ७ । २ । १०४ ॥

किमः कुः स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परतः। कुतः। कस्मात्।

इदम् इश् ५ । ३ । ३ ॥

प्राग्दिशीये परे । इतः ॥

अन् ५ । ३ । ५ ॥

एतदः प्राग्दिशीये । अनेकाल्वात्सर्वादेशः । अतः । अमुतः।

यतः । ततः । बहुतः । व्यादेस्तु-द्वाभ्याम् ॥

पर्यभिभ्यां च ५ । ३ । ६ ॥

आभ्यां तसिल् स्यात् । परितः । सर्वत इत्यर्थः । अभितः ।

उभयत इत्यर्थः ॥

सप्तम्यांश्च ५ । ३ । १० ॥

कुत्र । यत्र । तत्र । बहुत्र ॥

इदम्भो हः ५ । ३ । ११ ॥

कस्मादिति कुतः । अस्मादिति-इतः । अनिति । एतदोऽनादेशः प्राग्दिशीये परतः । नकरोऽयं नानुबन्धः, किन्त्वादेशावयवः, तेन सर्वादेशः । 'न लोपः प्रातिपदिके'ति नलोपः । अमुष्मादिति अमुतः । बहुभ्य इति बहुतः । सप्तम्या इति । किं सर्वनामबहुभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च स्यात् । कस्मिन्निति

१ किम् शब्द को कु आदेश हो तादि हादि विभक्ति सन्धक प्रत्यय परे रहते।

२ इदम् शब्द को इश् आदेश हो प्राग्दिशीय विभक्ति परे रहते ।

३ एतत् शब्द को अन् आदेश हो, प्राग्दिशीय विभक्ति परे रहते ।

४ परि और अभि शब्द से तसिल् प्रत्यय हो ।

५ व्यादि भिन्न किं सर्वनाम बहुशब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त से चल् प्रत्यय हो ।

६ इदम् शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त से ह प्रत्यय हो ।

त्रलोऽपवादः । इह ॥

किमोऽत् ५ । ३ । १२ ॥

वाग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात्किमोऽद्धा स्यात् । पक्षे त्रल् ॥

क्वोऽति ७ । २ । १०५ ॥

किमः क्वादेशः स्यादति । क्व । कुत्र ॥

इतरभ्योऽपि दृश्यन्ते ५ । ३ । १४ ॥

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । दृशि-  
ग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् ।  
तं भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । एवं दीर्घायुः । देवानां  
प्रियः । आयुष्मान् ॥

सर्वैकान्यकिञ्चिदादः काले दा ५ । ३ । १५ ॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् ॥

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५ । ३ । ६ ॥

कुत्र । बहुषु इति बहुतः । अस्मिन्निति इह । कस्मिन्निति क्व । कुत्र ।  
एवमिति । ततो दीर्घायुः, तत्र दीर्घायुः, ततो दीर्घायुषम्, तत्र दीर्घायुष-  
मित्याधूह्यम् । एवं ततो देवानांप्रियः । तत्र देवानांप्रिय इत्यपि । एव  
तत आयुष्मान्, तत्र आयुष्मानित्यादि ।

१ किम् शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त सुबन्त से अत् प्रत्यय हो विकल्प से ।

२ किम् शब्द को क्व आदेश हो अत् परे रहते ।

३ पञ्चमी सप्तमी से अतिरिक्त विभक्ति अन्त में जिसके उससे (प्रथमान्त  
द्वितीयान्त से ) भी तसिलादि प्रत्यय देखे जाते हैं ।

४ सर्व-एक अन्य किञ्चित् तद् शब्द प्रकृतिक ( कालार्थक ) सप्तम्यन्त सुबन्त  
से स्वार्थ में दा प्रत्यय हो ।

५ सर्व शब्द को स आदेश हो दादि प्राप्तिदशीय प्रत्यय परे रहते ।

हादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन् काले-  
सदा । सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काले  
किम् ? । सर्वत्र देशे ॥

इदमो हिंल् ५ । ३ । १६ ॥

‘सप्तम्यन्तात् काले’ इत्येव ॥

एतौ रथोः ५ । ३ । ४ ॥

इदमशब्दस्य एत इत इत्यादेशौ स्तो रेफादौ यकारादौ च  
प्राग्दिशीये परे । अस्मिन्काले एतर्हि । काले किम् ? । इह देशे ॥

अनद्यतने हिंलन्यतरस्याम् ५ । ३ । २१ ॥

कर्हि । कदा । यर्हि । यदा । तर्हि । तदा ॥

एतदः ५ । ३ । ५ ॥

‘एत’ ‘इत’ एतौ स्तो रेफादौ यकारादौ च प्राग्दिशीये । एत-  
स्मिन्काले एतर्हि ॥

प्रकारवचने थाल् ५ । ३ । २३ ॥

एकस्मिन् काले एकदा । तस्मिन् काले तदा ।

कस्मिन् काले ( अनद्यतने ) कर्हि । एवमप्रेऽपि ।

१ इदम् शब्द प्रकृतिक सप्तम्यन्त से काल् अर्थ में हिंल् प्रत्यय हो ।

२ इदम् शब्द को एत और इत ये आदेश हों रेफादि व यकारादि प्राग्दिशीय  
परे रहते ।

३ किमादि से अनद्यतन में हिंल् प्रत्यय विकल्प से हो ।

४ एतत् शब्द को एत-इत ये आदेश हों रेफादि-यकारादि प्राग्दिशीय  
विभक्ति परे रहते ।

५ द्रथादिभिन्न जो प्रकारवृत्ति जो किं सर्वनाम बहुशब्द उनसे थाल् प्रत्यय  
हो स्वार्थ में ।

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्याल् स्यात् स्वार्थे । तेन प्रकारेण-तथा । यथा ॥

इदमस्थमुः ५ । ३ । २४ ॥

थालोऽपवादः ।

\*एतदोऽपि वाच्यः ॥

अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम् ॥

किमश्च ५ । ३ । २५ ॥

केन प्रकारेण कथम् ॥

इति प्राग्दिशीयाः ॥ १४ ॥

**अथ प्राग्दिशीयाः ।**

अतिशयैने तमविष्ठनौ ५ । ३ । ५५ ॥

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः । अयमेवामतिशयेन

आढ्यः-आढ्यतमः । लघुतमः । लघिष्ठः ॥

तिङश्च ५ । ३ । ५६ ॥

तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् ॥

१ येन प्रकारेण-यथा ।

अयमेवामतिशयेन लघुरिति-लघिष्ठः ।

१ प्रकारवृत्ति इदम् शब्द प्रकृतिक सुबन्त से थमुप्रत्यय हो-स्वार्थ में ।

२ इदम् शब्द से यमु प्रत्यय हो ।

३ एतत् शब्द से भी थमुप्रत्यय हो ।

४ प्रकारवृत्ति किमशब्द प्रकृतिक सुबन्त से थमुप्रत्यय हो स्वार्थ में ।

५ अतिशयविशिष्टार्थवृत्तिशब्दप्रकृतिक सुबन्त से तमप्-और इष्टप् प्रत्यय हो स्वार्थ में ।

६ अतिशय अर्थ द्योत्य होने पर तिङन्त से तमप् प्रत्यय हो ।

तरसमपौ धः १ । १ । २२ ॥

एतौ घसंज्ञौ स्तः ॥

किमेतिडच्यैयधादांश्चद्रव्यप्रकर्षे ५ । ४ । ११ ॥

किम एदन्तात्तिडोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु  
द्रव्यप्रकर्षे । किन्तमाम् । प्राहेतमाम् । पचतितमाम् । उच्चैरतमाम् ।  
द्रव्यप्रकर्षे तु-उच्चैरतमस्तरुः ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरवीयसुनौ ५ । ३ । ५७ ॥

द्वयोरैकस्याऽतिशये विभक्त्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः ।  
पूर्वयोरपवादः । अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः । लधीयान् ।  
उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः । पटीयांसः ॥

प्रशस्यस्य श्रः ५ । ३ । ६० ॥

अस्य श्रोदेशः स्यादजाधोः परतः ॥

अतिशयेन किमिति किन्तमाम् । द्विवचनेति । द्वयोरर्थयोर्वचनं  
द्विवचनम् । येन पदेनार्थद्वयमुच्यते तद्द्विवचनमिति यावत् । विभक्त्यर्थ-  
विभज्यम् । द्विवचनञ्च विभज्यञ्चानयोः समाहारः-द्विवचनविभज्यं,  
तच्च तदुपपदञ्च-द्विवचनविभज्योपपदं, तस्मिन्निति विग्रहः । एवञ्च  
द्वयैवाचके विभज्य चोपपदे सतीत्यर्थः । उपोच्चरितञ्च पदम्-उपपदं न तु  
कृत्रिमम्, तद्धितविधौ तदसम्भवात् । द्वयोरैकस्य अतिशये द्योत्ये विभक्त्ये  
चोपपदे आभ्यामेतौ स्तः । द्विवचनोपपदमुदाहरति-अयमिति । विभज्यो-  
पपदे उदाहरति-उदीच्या इति । अत्र प्राच्या विभज्याः ।

१ तरप्-तमप् प्रत्यय की घसंज्ञा हो ।

२ किम्-और एदन्त शब्द और तिङन्त और अव्यय-से विहित जो घ  
तदन्त से आमुप्रत्यय हो । परन्तु द्रव्य प्रकर्ष-में न हो ।

३ दोनों के मध्य में से एक का अतिशय द्योत्य होने पर और विभक्त्य  
उपपद रहने पर सुबन् और तिङन्त से तरप् और ईयसुन् प्रत्यय हो ।

४ प्रशस्य शब्द को श्र आदेश हो, अजादि(इष्टन् ईयसुन्)प्रत्यय परे रहते ।

प्रकृत्यैकाच् ८ । ४ । १८३ ॥

इष्टादिष्वैकाच् प्रकृत्या स्यात् । श्रेष्ठः । श्रेयान् ॥

ज्यै च ५ । ३ । ६१ ॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यादिष्टेयसोः । ज्येष्ठः ॥

ज्यादादीयसः ८ । ४ । १८० ॥

आदिः परस्य । ज्यायान् ॥

वहोर्लोपो भू च बहोः ६ । ४ । १५८ ॥

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद्बहोश्च भूरादेशः । भूमा । भूयान् ॥

इष्टैस्य यिच् च ६ । ४ । १५९ ॥

बहोः परस्य इष्टस्य लोपः स्यादिडागमश्च । भूयिष्ठः ॥

विन्मत्तोर्लुक् ५ । ३ । ६५ ॥

विनो भतुपश्च लृक् स्यादिष्टेयसोः । अतिशयेन स्रवी स्रजिष्ठः ।

स्रजौयान् । अतिशयेन त्वभवान्—त्वचिष्ठः । त्वचीयान् ॥

ईषदसमासौ कल्पदेश्यदेशीयरः ५ । ३ । ६७ ॥

प्रकृत्येति । तेन 'टे'रिति 'नस्'द्धिते' इति च 'टिलोपो न । श्रेष्ठः ।

ज्यादादिति । अतिशयेन प्रशस्य इति श्रेयान् । अतिशयेन प्रशस्यः—

ज्येष्ठः । ज्यादिति । ज्यादुत्तरस्य ईयसुन आकारोदेशः । अतिशयेन बहुः—भूमा ।

१ एकाच् प्रकृति से रहे इष्टादि परे रहते ।

२ प्रशस्य को ज्य आदेश हो इष्टन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते ।

३ ज्य से उत्तर जो ईयसुन् प्रत्यय उसको आकार आदेश हो ।

४ बहुशब्द से परे इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय का लोप हो और बहुशब्द को भू आदेश हो ।

५ बहुशब्द से परे इष्टन् प्रत्यय का लोप हो और इष्टन् को इट् का आगम हो ।

६ विन् और मत्तुप् प्रत्यय का लृक् हो इष्टन् और ईयसुन् परे रहते ।

७ ईषदसमासि अर्थ में कल्पद् देश्य और देशीयर् प्रत्यय हो ।



ईषदूनो विद्वान्--विद्वत्कल्पः । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः ।

पचतिकल्पम् ॥

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात् ५ । ३ । ६८ ॥

ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुवन्ताद्बहुच्वा स्यात्स च प्रागेव न

तु परतः । ईषदूनः पटुः-बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपः किम् ? ।

यजतिकल्पम् ॥

प्राग्वीत्का ५ । ३ । ७० ॥

‘इवे प्रतिकृता’वित्यतः प्राक्काधिकारः ॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ५ । ३ । ७१ ॥

काऽपवादः । तिङ्श्चेत्यनुवर्तते ॥

अज्ञाते ५ । ३ । ७२ ॥

कस्यायमश्वः-अश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वकैः । (ओकार-

सकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच् , अन्यत्र सुवन्तस्य ) ।

युष्मकामिः । युष्मकयोः । त्वयका ॥

कुत्सिते ५ । ७ । ७४ ॥

कुत्सितोऽश्वः-अश्वकः ॥

तिङन्तादुदाहरति-पचतिकल्पमिति । बहुपटुः=किञ्चिच्चतुरः ।  
अनुवर्त्तत इति । मण्डूकप्लुत्येति भावः । एवञ्च ‘पचतकी’त्यादौ तिङन्तेभ्यो-  
ऽप्यकच् ।

१ ईषदसमाप्तिविशिष्ट अर्थ में सुवन्त से बहुच् प्रत्यय हो विकल्प करके और  
वह प्रकृति से पूर्व में ही हो, परे न हो ।

२ ‘इवे प्रतिकृतौ’-इस सूत्र से पूर्व कप्रत्यय का अधिकार है ।

३ अव्ययसन्धक और सर्वनामसन्धक शब्दों की टि से पूर्व अकच् प्रत्यय हो ।

४ अज्ञात अर्थ में क प्रत्यय हो ।

५ तत्सम्प्रातिपदिक से कुत्सित अर्थ में क प्रत्यय हो ।

किंयस्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५ । ३ । ९२ ॥

अनयोः कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः ॥

वा बहूनां जातिपरिग्रहे डतमच् ५ । ३ । ९३ ॥

जातिपरिग्रहे इति प्रत्याख्यातमाकरे । बहूना मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा स्यात् । कतमो भवतां कठः । यतमः । ततमः । वाप्रहणमकर्जर्थम् । यकः । सकः ॥

इति प्राग्विधीयाः ॥ १५ ॥

## अथ स्वार्थिकाः

इव प्रतिकृतौ ५ । ३ । ९६ ॥

क-स्यात् । अश्व इव प्रतिकृतिः—अश्वकः । सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् । अश्वकः ॥

तत्प्रकृतवचने मयट् ५ । ४ । २१ ॥

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं, तस्य वचनं प्रतिपादनम् । भावे अधिकरणे वा ल्युट् । आवे—प्रकृतम्—अन्नम्—अन्नमयम् । अपूप-मयम् । द्वितीये तु—अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्व ॥

कठः = कठशाखाध्यायी । अध्येतृप्रत्ययस्य 'कठचरकादि'तिङ् । अश्व एव—अश्वकः । प्रतिकृति = मूर्तिः । (मूर्ति तसवीर' 'फोटो' )

१ दोनों में से एक का निर्धारण करने पर किं यत् और तत् शब्द से डतरच् प्रत्यय हो ।

२ अनेकों के मध्य में एक का निर्धारण करने पर कि-यन्—और तत्-शब्द से डतमच् प्रत्यय हो विकल्प से ।

३ प्रथमान्त से इव अर्थ में कन् प्रत्यय हो वह सदृश यदि प्रतिकृति हो तो ।

४ प्रथमान्त से प्रकृतवचन में मयट् प्रत्यय हो ।

प्रज्ञादिभ्यश्च ५ । ४ । ३८ ॥

अण् स्यात् । प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । दैवतः ।

वान्धवः ॥

बहुलपार्थक्यस्य कारकादन्यतरस्याम् ५ । ४ । ४२ ॥

बहूनि ददाति बहुशः । अल्पशः ॥

\*आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम् ॥

आदौ-आदितः । मध्यतः । अन्ततः । पृष्ठतः । पार्श्वतः ।

आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण-स्वतः । वर्णतः ॥

कृष्यैस्तिथोगे संपद्यकर्तरि च्विः ५ । ४ । ५० ॥

\*अभूततद्भाव इति वक्तव्यम् ॥

विकारात्मतां प्राप्नुवत्या प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात्स्वार्थे

च्चिर्वा स्यात्करोत्यादिभिर्योगे ॥

अस्यै च्चौ ७ । ४ । ३२ ॥

अवर्णस्य ईत्स्यात् च्चौ । वेलोपे च्च्यन्तत्वादव्ययत्वम् ।

अणिति । स्वार्थे इति शेषः । बन्धुरेव-वान्धवः । अल्पेभ्यो ददति  
अल्पशः । 'तद्धितश्चासर्वविभक्ति'रित्यव्ययत्वम् । मध्ये इति मध्यतः । वर्णेन  
वर्णतः । सार्वविभक्तिकस्तसि ।

अव्ययत्वमिति । च्च्यन्तस्य निपाततया 'स्वरादिनिपातमव्यय'मिति

१ प्रज्ञादिगणपठित शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त से अण् प्रत्यय हो स्वार्थ में ।

२ बहुर्थक और अल्पार्थक जो कारक उससे अस् प्रत्यय हो विकल्प से ।

३ आद्यादि गणपठित शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त से तसि प्रत्यय हो ।

४ विकारात्मत्व को प्राप्त होने वाली जो प्रकृति उसमें वर्तमान जो विकार-

वाची शब्द उससे स्वार्थ मे च्वि प्रत्यय हो विकल्प से कृ-भू-और अस्ति के योग में ।

५ अवर्ण को ईकारादेश हो च्विप्रत्यय परे रहने ।

अकृष्णः कृष्णः संपद्यते तं करोति कृष्णीकरोति । ब्रह्मीभवति ।  
गङ्गीस्यात् ।

\*अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम् ॥

दोषाभूतमहः । दिवाभूता रात्रिः ॥

विमोषा साति कात्स्न्ये ५ । ४ । ५२ ॥

चिविषये सातिर्वा स्यात्साकल्ये ॥

सात्पदाद्योः ८ । ३ । १११ ॥

सस्य पत्वं न स्यात् । कृत्स्नं शस्त्रमग्निः - संपद्यते-अग्निसा-  
द्भवति । दधि सिञ्चति ॥

च्वौ च ७ । ४ । २६ ॥

च्वौ च परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात् । अग्नीभवति ॥

अव्ययानुकरणादध्यजवरार्धादनितौ

डाच् ५ । ४ । ५७ ॥

अथेव अवर्त्तन्यूनं, न तु ततो न्यूनम् । अनेकाजिति यावत् ।  
तादृशमर्थं तस्य तस्माद्धाच् स्यात्, कृम्वरिताभिर्योगे ।

अव्ययत्वमित्यर्थः । सिञ्चतीति । पदादित्वात्सिञ्चतीत्यत्र सस्य षो न । शस्त्र-  
मिति जानावेकवचनं, सर्वाणि शस्त्राणीत्यर्थः ।

१ अव्ययसम्बन्धी अवर्ण को इत्वं न हो च्विप्रत्यय परे रहते ।

२ च्वि के विषय में साति प्रत्यय हो विकल्प से, कात्स्न्य ( सम्पूर्ण ) अर्थ  
द्योत्य हो तो ।

३ पद के आदि का जो सकार और साति प्रत्यय का सकार उसको पत्वं न हो ।

४ च्वि प्रत्यय परे रहते पूर्व को दीर्घ हो ।

अव्ययानुकरण, जो शब्द, अध्यजवरार्द्ध ( अर्थात्-दो अच् से कम नहीं हैं  
अर्थ में जिसके) उससे डाच् प्रत्यय हो कृ-भू-अस्ति के योग में इति परे न हो तो ।

\*डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् ॥

—इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम् ।

\*नित्यमाभ्रेडिते डाचीति वक्तव्यम् ॥

डाच्परं यदाभ्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात् ।

इति तकारपकारयोः पकारः । पटपटाकरोति । अन्यक्तानुकरणात्

किम् ? । ईपत्करोति । अजवरार्धात्किम् ? । श्रत्करोति । अवरति

किम् ? । खरटखरटाकरोति । अनितौ किम् ? । पटिति करोति ॥

इति स्वार्थिकाः ॥ १८ ॥ इति तद्धिताः ॥

## अथ स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ॥

स्त्रियाम् । ४ । १ । ३ ॥

अधिकारोऽयं 'समर्थाना' मिति यावत् ।

अजाचतष्टाप् । ४ । १ । ४ ॥

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत्स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप्स्यात् ।

द्वे=द्वित्वम् ।

\*इति श्रीगुरुप्रसादगाल्त्रिविरचितायां सरलायां तद्धितप्रकरणम्\*

अजगन्ध आदिर्यस्यासौ—अजादिः । अजादिश्च उच्चारणयोः समाहारः—

१ डाच् प्रत्यय की विवक्षा में द्वित्व हो बहुलता से ।

२ डाच् परे हैं जिसके ऐसा जो आभ्रेडित उसके परे रहते पूर्व पर के वर्ण को पररूप हो ।

३ "समर्थाना प्रथमाद्वा" इस सूत्र तक "स्त्रियाम्" यह अधिकार होता है ।

४ अज शब्द है आदि में जिसके ऐसा जो अनादिगण उसका और अकारान्त का-वाच्य जो स्त्रीत्व, वह द्योत्य होने पर तद्योतक टाप् प्रत्यय हो ।

अजा । एडका । अश्वा । चटका । मूषिका । बाला । वत्सा । होडा ।  
मन्दा । विलाता । मेधा । गङ्गा । सर्वा । इत्यादि ।

उगितश्च । ४ । १ । ६ ॥

उगिदन्तात्प्रातिपदिकात्त्रिधा ङीप्स्यात् । भवती । भवन्ती । पचन्ती ॥

टिड्ढाणञ्द्वयसञ्जदध्नञ्मात्रचतयप्ठक्ठञ्-

कञ्करपः । ४ । १ । १५ ॥

अनुपसर्जनं यद्विदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रिया  
ङीप्स्यात् । कुरुचरी । नदट्-नदी । देवट्-देवी । सौपर्णेयी ।  
ऐन्द्री । औत्सी । ऊरुद्वयसी । ऊरुदध्नी । ऊरुमात्री । पञ्चतयी ।

अजाद्यत्, तस्मात् अजाद्यतः । अच् प्रत्याहारः आदिर्यस्येति तु नार्थः,  
'सङ्ख्याया' इत्यादिनिर्देशात् । अजेति । 'अजत्वजातिविशिष्टा स्त्री'ति विग्रहे  
'जातेरस्त्री'ति ङीष्ं बाधित्वा टाप् । एवम् एडका, अश्वा, चटका, मूषि-  
केत्यत्रापि बोध्यम् । बाला वत्सा होडा मन्दा विलातयत्र बालत्ववयोविशिष्टा  
स्त्री बालेत्येव विग्रहः । 'वयसि प्रथमे' इति ङीप् बाधित्वा टाप् ।

भवन्तीति । शतृप्रत्ययान्तत्वेनोगित्वान्ङीप् । कुरुषु चरतीति कुरु-  
चरी । अत्र चरेष्ट इति टप्रत्ययः । टित्वान्ङीप् । नदीति । पचादिषु  
'नदट्' इत्यादि निपातनाद्वित्वान्ङीप् ।

सुपर्ण्या अपत्यं स्त्री सौपर्णेयी । स्त्रीभ्यो ङक् । निरनुबन्धकस्याऽस-  
म्भवाङ्ठपदेन ङको ग्रहणम् । इन्द्रो देवता अस्या ऐन्द्री । 'सास्य देवते'-  
त्यण् । उत्से भवा-औत्सी । 'उत्सादिभ्योऽञ्' । ऊरु प्रमाणमस्या ऊरुद्वयसी ।  
'प्रमाणे द्वयसञ्जदध्नञ्मात्रचः' इति द्वयसजादि । पञ्च अवयवा अस्या-

१ उगिदन्त जो प्रातिपदिक उससे ङीप् प्रत्यय हो स्त्रीत्व छोत्य हो तो ।

२ अनुपसर्जन जो टिप्, तदन्त जो प्रातिपदिक और ढ-अण्-अञ्-द्वयसच्-  
दध्नच्-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ् और पचरप् पतत्प्रत्ययान्ते जो प्रातिपदिक  
उससे ङीप् हो स्त्रीत्व छोत्य हो तो ।

आक्षिकी । प्रास्थिकी । लावणिकी । यादृशी । इत्वरी ।

\*नञ् स्तब्धकृत् ख्युं स्तरुणानलुनानामुपरंख्यानम् ॥

खैणी । पौंसी । शक्तिकी । याष्टीकी । आढ्यङ्करणी ।  
तरुणी । तलुनी ।

यञश्च । ४ । १ । १६ ॥

यञन्तात् स्त्रियां ङीप्स्यात् । अकारलोपे कृते ॥

हल्स्तद्धितस्य ६ । ४ । १५० ॥

हलः परस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोप इति परे । मार्गी ॥

प्राचां षफ तद्धितः । ४ । १ । १७ ॥

यञन्तात् षफो वा स्यात्स च तद्धितः ॥

पञ्चतथी । 'सङ्ख्याया अवयवे तयप्' । अक्षैर्दोष्यति आक्षिकी । 'तेन  
दीव्यती'ति ठक् ।

लवणं पण्यमस्याः लावणिकी । 'लवणाठ्ठ्' । यादृशीति । 'त्य-  
दादिषु दृश' इति कञ् । 'आ सर्वनाम्न' इत्याकारः । एति तच्छोला इत्वरी ।  
'इण्णशजिसर्तिभ्यः करप्' । स्त्रियां जाता खैणी । पुंसि भवा पौंसी ।  
'स्त्रीपुंसाभ्या' मिति नञ्स्तब्धौ । शक्तिः प्रहरणमस्याः शाक्तिकी । 'शक्ति-  
यष्टयोरीकक्' । अनाढ्य आढ्यः क्रियतेऽनयेति विग्रहः । 'आढ्यमुभये'ति कृञ्  
ख्युन् । तरुणत्वविशिष्टा स्त्री तरुणी । एवं तलुनी । तरुणी । तलुनी=युवतिः ।

लोप इति । 'यस्येति चे'त्यकारलोपे कृते ।

मार्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री मार्गी ।

१ नञ् स्तब्ध-ईकक् और ख्युन् प्रत्ययान्त जो प्रातिपदिक-और तरुण तलुन  
जो प्रातिपदिक उनसे ङीप् प्रत्यय हो स्त्रीत्व चोत्थ हो तो ।

२ यञ् प्रत्ययान्त जो प्रातिपदिक उससे ङीप् प्रत्यय हो स्त्रीत्व चोत्थ हो तो ।

३ हल् से परे तद्धित उपधाभूत जो यकार का लोप हो ईकार पर रहते ।

४ यञ् प्रत्ययान्त जो प्रातिपदिक उससे षफप्रत्यय हो विकल्प से और उसकी  
तद्धितसंज्ञा हो ।

षिद्धौरादिभ्यश्च ४ । १ । ४१ ॥

षिद्धो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीप्स्यात् । गार्ग्यायणी<sup>१</sup> । नर्तकी ।

गौरी । अनङ्गुही । अनङ्गुही । आकृतिगणोऽयम् ॥

वर्थसि प्रथमे ४ । १ । २० ॥

प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात्स्त्रिया ङीप्स्यात् । कुमारी ॥

द्विगोः ४ । १ । २१ ॥

अदन्ताद्विगोर्ङीप्स्यात् । त्रिलोकी । अजादित्वात्रिफला ।

अयनीका सेना ॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४ । १ । ३९ ॥

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात्प्रातिपदिकाद्वा ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च । एनी । एताः रोहिणी । रोहिता ॥

गार्ग्यस्य गोत्रापत्यं स्त्री गार्ग्यायणी ।

कुमारत्ववयोविशिष्टा स्त्री कुमारी । त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी । 'तद्धितार्थे'ति द्विगु ।

त्रयाणामनीकानां समाहारः अयनीका । अजादेराकृतिगणत्वाद्वाप् ।

अनीकम्=अप्रमाण ।

एतत्त्वगुणविशिष्टा स्त्री एता । 'चित्रं किमीरकल्माषशवलैताश्च कर्तुरे' इत्यमरः । एता=चित्रवर्णवती ।

१ यित् प्रत्ययान्तं जो प्रातिपदिक और गौरादिगणपठित शब्द जो प्रातिपदिक उनसे ङीप् प्रत्यय हो ।

२ प्रथम वयोवाची जो अदन्त प्रातिपदिक उससे ङीप् प्रत्यय हो ।

३ द्विगु समास में अदन्त जो प्रातिपदिक उससे ङीप् हो ।

४ वर्णवाची जो अनुदात्तान्त तोपध तदन्त जो अनुपसर्जन प्रातिपदिक उससे ङीप् प्रत्यय हो विक्ल्प से और तकार को नकारादेश हो ।



बोनो गुणवचनात् ४ । १ । ४४ ॥

उदन्ताद्गुणवाचिनो वा ङीप्स्यात् । मृद्वी । वृद्धः ॥

बह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ४५ ॥

एभ्यो वा ङीप् स्यात् । बह्वी । बहुः ॥

\*कृदिकौरादङिनः ।

रात्रिः । रात्री ॥

\*सर्वतोऽङिन्नर्थादित्येके ॥

शकटी । शकटिः ॥

पुंयोगादौख्यायाम् ४ । १ । ४८ ॥

या पुमाख्या पुंयोगात्त्रियां वर्तते ततो ङीप् । गोपस्य  
स्त्री गोपी ॥

\*पालकान्तात्र ।

कृदिनि । कृदिकारान्तात् क्तिन्नन्तवर्जितान्ङीप् । सर्वत इति । न  
केवल कृदिकारान्तादेव, किन्तुहि, सर्वस्मादपि क्तिन्नर्थवर्जितादित्येके आचार्या  
मन्यन्ते इत्यर्थः । पुमाख्या=पुवाचकः । पचाद्यजन्तोऽयम् ।

१ गुणवाची जो उदन्त प्रातिपदिक उससे ङीप् हो विकल्प से स्त्रीत्वे द्योत्ये ।

२ बह्वादि गणपठित जो प्रातिपदिक उससे ङीप् प्रत्यय हो विकल्प से ।

३ क्तिन् अवयव भिन्न जो ङीप् का इकार तदन्त जो प्रातिपदिक उससे ङीप्  
प्रत्यय हो विकल्प से ।

४ क्तिन्नर्थ प्रत्ययावयव से भिन्न जो इकार तदन्त प्रातिपदिक मात्र उससे  
ङीप् प्रत्यय हो विकल्प से किसी आचार्य के मत में ।

५ जो पुवाचक शब्द पुयोग से स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान हो, उससे ङीप् हो ।

६ पालक शब्द अन्त में जिसके ऐसा जो शब्द उससे ङीप् प्रत्यय न हो ।

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुपः ७ । ३ । ४४ ॥

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्याऽकारस्येकारः स्यादापि, स आप् सुपःपरो न चेत् । गोपालिका । अश्वपालिका । सर्विका । कारिका । अतः किम् ? । नौका । प्रत्ययस्थात्किम् ? । शक्नोतीति शका । असुपः किम् ? । बहुपरित्राजका नगरी ॥

\*सूर्यादेवतायां चाव्वाच्यः ॥

सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । देवताया किम् ? ।

\*सूर्याऽगस्त्ययोश्छे च ङ्यां च\* ॥

यलोपः । सूरि । कुन्ती । मानुषीयम् ॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडाहिमारण्ययवयवनमातुला-  
चार्याणामानुक् ४ । १ । ४९ ॥

एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च । इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी ।  
वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी ।

\*हिमारैष्ययोर्महत्त्वे ॥

महद्भिर्महिमानी । महदरण्यम्—अरण्यानी ।

इयमिति । इयं=कुन्ती, मानुषी, न देवीत्याशयः । हिमेति । हिमाऽरण्ये-

१ प्रत्यय का जो ककार उससे पूर्व जो अकार उसको इकारादेश हो, आप् परे रहते यदि वह आप् सुप् से परे न हो ।

२ सूर्य शब्द यदि देवता अर्थ में वर्तमान हो तो चाप् प्रत्यय हो तो ।

३ सूर्य और अगस्त्य शब्द का जो यकार उसका लोप हो छ और ङी प्रत्यय परे रहते ।

४ इन्द्र-वरुण-भव-शर्व रुद्र-मृड-हिम-अरण्य-यव-यवन-मातुल और आचार्य इनको आनुक् का आगम हो और इनसे ङीष् प्रत्यय हो ।

५ हिम और अरण्य शब्द से महत्त्व अर्थ में ङीष् और आनुक् हो ।

\*यवाद्दोषे ॥

दुष्टो यवो यवानी ॥

\*यवनाल्लिप्याम् ॥

यवनानां लिपिर्यवनानी ॥

\*मातुलोपाध्याययोरानुष्वा ॥

मातुलानी । मातुली । उपाध्यायानी । उपोध्यायी ॥

\*आचार्यादणत्वं च ॥

आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी ॥

\*अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे ॥

अर्याणी । अर्या । क्षत्रियाणी । क्षत्रिया ॥

क्रीतार्त्तिकरणपूर्वात् । ४ । १ । ५० ॥

शब्दाभ्यां महत्त्वे ङीष् आनुक् च भवति । यवानी='अजवाईन' इति प्रसिद्धा ।

मातुलस्य स्त्री मातुलानी (= 'मामी' ) ।

उपाध्यायस्य स्त्री उपाध्यायानी । अर्यैव अर्याणी । 'अर्याणी स्वयंभर्या स्यात्क्षत्रिया क्षत्रियाण्यपि' इत्यमरः ।

१ यव शब्द से दोष अर्थ में ङीष् और आनुक् हो ।

२ यवन शब्द से लिपि अर्थ में ङीष् और आनुक् होता है ।

३ मातुल और उपाध्याय शब्द से ङीष् हो और आनुक् का आगम हो विकल्प से ।

४ आचार्य शब्द से ङीष् और आनुक् हो । और णत्व का अभाव हो ।

५ अर्य और क्षत्रिय शब्द से स्वार्थ में ङीष् और आनुक् हो विकल्प से ।

६ क्रीत शब्द अन्त में और करणकारक आदि में है जिसके ऐसा जो अदन्त प्रातिपदिक उससे ङीष् हो ।

क्रीतान्ताददन्तात्किरणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात् । वल्लक्रीती ।  
कचिन्न । धनक्रीता ॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४ । १ । ५४ ॥

असंयोगोपधमुपसर्जन यत्स्वाङ्गं तदन्ताददन्तान्ङीष्वा स्यात् ।  
केशानतिक्रान्ता अतिकेशी । अतिकेशा । चन्द्रमुखी । चन्द्रमुखा ।  
असंयोगोपधात्किम् ? । सुगुल्फा । उपसर्जनात्किम् ? । सुशिखा ॥

न क्रोडादिबह्वचः ४ । १ । ५६ ॥

क्रोडादिबह्वचश्च स्वाङ्गान् ङीष् । कल्याणक्रोणा । आकृति-  
गणोऽयम् । सुजघना ।

नरवसुखात्संज्ञायाम् ४ । १ । ५८ ॥

न ङीष् ॥

पूर्वपदात्संज्ञायामगः ८ । ४ । ३ ॥

वलेण क्रीता वल्लक्रीती । धनेति । 'कर्तृकरणं' इत्यत्र बहुलग्रहणा-  
त्कचित्सुबुत्पत्त्यनन्तर समासे सुबुत्पत्तेः पूर्व टाप्यदन्तत्वाऽभावात् ङीप्-  
त्याशयः ।

कल्याणं क्रोडं यस्याः सा कल्याणक्रोडा । 'न ना क्रोडं भुजान्तरम्,  
इत्यमरः । सुष्ठु जघन यस्याः सा-सुजघना । 'पश्चाच्चितम्ब. स्त्रीकव्याः  
कृत्वे तु जघन पुरः' इत्यमरः ।

१ संयोगोपध से भिन्न उपसर्जन जो स्वाङ्गवाचिशब्द, तदन्त जो अदन्त  
प्रातिपदिक, उससे ङीष् हो विकल्प से ।

२ क्रोडादिगणपठित जो प्रातिपदिक और बह्वच-स्वाङ्गवाची जो प्रातिपदिक  
उससे ङीष् प्रत्यय नहीं हो ।

३ नरवसुखशब्दान्त जो प्रातिपदिक उससे ङीष् नहीं हो सन्धा में ।

४ पूर्वपद में स्थित जो निमित्त ( रेफ प्रकार ) उससे परे जो नकार उसको  
गत्व हो सन्धा में । परन्तु गकार के व्यवधान में नहीं हो ।

पूर्वपदस्यान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात्संज्ञायां, न तु भकार-  
व्यवधाने । शूर्पणखा । गौरमुखा । संज्ञायां किम् ? । तान्त्रमुखी  
कन्या ॥

जातिरस्त्रीविषयादयोपधात् ४ । १ । ८३ ॥

जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां  
डीप् स्यात् । तटी । वृपली । कठी । बह्वची । जातेः किम् ?  
मुण्डा । अस्त्रीविषयात्किम् ? । बलाका । अयोपधात्किम् ? । क्षत्रिया ॥

योपधप्रतिषेधे ह्यगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः ।

हयी । गवयी । मुकयी । हलराद्धितस्येति यलोपः । मनुषी ॥

\*मत्स्यस्य ड्याम् ॥

यलोपः । मत्सी ॥

ईतो मनुष्यजातेः ४ । १ । ८५ ॥

डीप् । दाक्षी ॥

ऊङुतः ४ । १ । ८६ ॥

उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामृड् स्यात् । ऊङुः ।  
अयोपधात्किम् ? । अव्यर्थब्राह्मणी ॥

दक्षस्य गोत्रापत्य स्त्री दाक्षी । 'अत इ'जितीअन्तान्नीषि 'यस्येति च'-

१ नित्य स्त्रीलिङ्ग से भिन्न और यकारोपध से भिन्न जो जातिवाचक वस्तु  
डीप् हो ।

२ योपध के प्रतिषेध में ह्य गवय-मुकय-मनुष्य और मत्स्य इनका प्रतिषेध  
नहीं होता है । अर्थात् इनसे योपधों से भी डीप् होता है ।

३ मत्स्यशब्दावयव यकार का लोप हो डी परे रहते ।

४ मनुष्यजातिवाचक इत्यन्त से डीप् हो ।

५ यकारोपध से भिन्न मनुष्यजाति वाचक उदन्त प्रातिपदिक से ऊङ् हो  
स्त्रीत्व चोत्पद्य हो तो ।

पङ्क्तौश्च ४।१।६८॥

पङ्क्तुः ।

॥ श्वश्रुः ॥

॥

उत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९॥

उपमानवाचि पूर्वपदमूलत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ्

स्यात् । करभोरुः ॥

संहितसफलेक्षणवामादेश्च ४।१।७०॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम् । संहितोरुः । शफोरुः । लक्षणोरुः ।

वामोरुः ॥

शार्ङ्गरवाचो ङीन् ४।१।७१॥

शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात् ।

तीकारलोपः । कर्भाविव ऊरु यस्याः सा करभोरुः । 'मृगिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहि' इत्यमरः ।

संहितौ ऊरुयस्याः सा संहितोरुः । संहितौ=मिलितौ । शफाविव संश्लिष्टौ

१ पङ्क्तु शब्द से ऊङ् हो खीलिङ्गमें ।

२ श्वश्रु शब्द के उकार और अकार का लोप हो, और ऊङ् प्रत्यय हो ।

३ उपमानवाचक शब्द पूर्वपद में और ऊरु शब्द उत्तर पद में है जिसके ऐसा जो प्रातिपदिक उससे ऊङ् हो ।

४ संहित-शफ-लक्षण और वामा ये शब्द आदि में जिसके और ऊरु शब्द उत्तर पद में है जिसके ऐसा जो प्रातिपदिक उससे ऊङ् हो ।

५ शार्ङ्गरवादि गणपठित जो प्रातिपदिक, और अन् का जो अकार तदन्त जो जातिवाचक प्रातिपदिक-उससे ङीन् प्रत्यय हो ।

शार्ङ्गरवी । वैदी । ब्राह्मणी । नृनरयोर्वृद्धिश्च । नारी ॥ .

यूनस्तिः ४ । १ । ७७ ॥

युवन्शब्दास्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात् । युवतिः ॥

इति स्त्रीप्रत्ययाः ॥

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका ।

कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥ १ ॥

इति श्रीवरदराजकृतलघुसिद्धान्तकौमुदी [ समाप्ता ] ॥

ऊरु यस्याः सा क्षफोरुः । वामौ-सुन्दरौ-ऊरु यस्याः सा वामोरुः ।  
शृङ्गोरपत्यं स्त्री शार्ङ्गरवी । विदस्य गोत्रापत्यं स्त्री वैदी ।

शास्त्रान्तरे=तर्कादिशास्त्रे, काव्ये कोशादौ च प्रविष्टानाम्=अन्तर्भूता-  
नाम् । उपकारिका=उपकारकारिका । केचित्तु-‘शास्त्रान्तरे अप्रविष्टाना’मिति  
च्छित्वा-शास्त्रान्तरज्ञानविकलानां बालानामपि उपकारिकेत्यर्थमाहुः ।

इति पण्डितराज-न्यायरत्न-मरुमण्डल प्रचण्डमार्त्तिण्ड-श्रीस्नेहिरामजि-  
च्छास्त्रिणां पौत्रेण, प्रतिवादिभयङ्कर-न्यायाचार्य-श्रीशिवनारायण-  
शास्त्रिणाम्पुत्रेण, सतीसार्वभौमराजलक्ष्मीगर्भसम्भवेन, श्री-  
गुरुप्रसादशास्त्रिणा सङ्कलिताया लघुसिद्धान्तकौमुदीविषमपद-  
टीकायां सरलाख्यायां स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ।



१ नृ और नर प्रातिपदिक से डीन् हो और वृद्धि हो ।

२ युवन् शब्द से ति प्रत्यय हो स्त्रीत्व द्योत्य हो तो ।

इति श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिकृता लघुकौमुदीभाषाटीका

[ प्रथम श्रावणकृष्णा १४-१९९६ ]

## अथ लघुसिद्धान्तकामुदास्थसूत्राणा- मकरादिवर्णानुक्रमेण सूची ।

१ अइउण् । २ ऋलृक् । ३ एओङ् । ४ ऐऔच् ।  
 ५ हयवर्ट् । ६ लण् । ७ अमङ्गणम् । ८ झभञ् । ९ धढधष् ।  
 १० जवगडदश् । ११ खफछठयचटत् । १२ कपय् ।  
 १३ शपसर् । १४ हल् । इति १४ माहेश्वराणि सूत्राणि ।

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
२७१ अकथितं च	१ । ४ । ५१	१०४ अचः	६ । ४ । १३८
२६० अकर्तरि च	३ । ३ । १९	१७४ } अचः परस्मिन्	१ । १ । ५७
२३१ अकर्मकाच्च	१ । ३ । ४५	२१९ }	
१५१ अकृत्सार्वधातु०	७ । ४ । २५	६१ अच्च घेः	७ । ३ । ११९
२९ अक. सवर्णे दीर्घः	६ । १ । १०१	३०१ अजाद्यदन्तम्	२ । २ । ३३
३०३ अक्षणोऽदर्शनात्	५ । ४ । ७६	३६० अजाद्यतष्टाप्	४ । १ । ४
१५० अचस्तास्वत्	७ । २ । ६१	२२२ अज्ज्ञनसमा सनि	६ । ४ । १६
३१७ अचित्तहस्ति-	४ । २ । ४७	३५६ अज्ञाते	५ । ३ । ७३
७५ अचि र ऋतः	७ । २ । १००	२०९ अज्ञे. सिचि	७ । २ । ७१
२०६ अचि विभाषा	८ । २ । २१	५१ अट्कुप्वाड्	८ । ४ । २
६७ अचि रनुधातु	६ । ४ । ७७	१७ अणुदित्सवर्णस्य	१ । १ । ६९
२८ अचोऽन्त्यादिटि	१ । १ । ६४	१३८ अत आदेः	७ । ४ । ७०
६२ अचो णिति	७ । २ । ११५	३०८ अत इञ्	४ । १ । ९५
२४३ अचो यत्	३ । १ । ९७	३४८ अत इनिठनौ	५ । २ । ११५
३४ } अचो रहाभ्याम्	८ । ४ । ४६	१४१ अत उपधायाः	७ । २ । ११६
८७ }		१७७ अत उत्	६ । ४ । ११०



पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
१४२ अत एकहल्	६।४।१२०
३५३ अतिशायने	५।३।५५
८९ अतो गुणे	६।१।९७
२७ अतो दीर्घो यञि	७।३।१०१
५२ अतो भिस् ऐस्	७।१।९
७८ अतोऽम्	७।१।२४
४४ अतो रोरप्लुता	६।१।११३
१३५ अतो घेयः	७।२।८०
१४६ अतो लोपः	६।४।४८
१४१ अतो हलादेर्लघोः	७।२।७
१३२ अतो हेः	६।४।१०५
२४८ अतः कृकमि	८।३।४६
४१ अत्रानुनासिकः	८।३।२
१०७ अत्वसन्तस्य	६।४।१४
१८७ अदभ्यस्तात्	७।१।४
७ अदर्शनं लोपः	१।१।६०
११२ अदस औ	७।२।१०७
३१ अदसो मात्	१।१।१२
११२ अदसोऽसेर्दादु	८।२।८०
१७१ अदिप्रभृतिभ्यः	२।४।७२
३१९ अदूरभवश्च	४।२।७०
२३ अदेङ्गुणः	१।१।२
१७२ अदः सर्वेषाम्	७।३।१००
८१ अद्भुतरादिभ्यः	७।१।२५
३२९ अधिकृत्य	४।३।८७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
६१ अनङ् सौ	७।१।९३
२० अनचि च	८।४।४७
१२९ अनद्यतने लृट्	३।३।१५
१३४ अनद्यतने लृट्	३।२।१११
३५२ अनद्यतने हिल्	५।३।२१
२८१ अनश्च	५।४।१०८
८९ अनाप्यकः	७।२।११२
१०५ अनिदितां हल	६।४।२४
१७२ अनुदात्तोपदेश	६।४।३७
१२५ अनुदात्तङितः	१।३।१२
२०२ अनुदात्तस्य चर्दु	६।१।५९
२२८ अनुनासिकस्य	६।४।१५
४१ अनुनासिकात्	८।३।४
२३३ अनुपराभ्यां कृजः	१।३।७९
३२६ अनुगतिका	७।३।२०
३८ अनुस्वारस्य	८।४।५८
३०८ अनृप्यानन्त	४।१।१०४
२९५ अनेकमन्यप	२।२।२४
३० अनेकालिशत्	१।१।५५
३१० अन्	६।४।१६७
३५० अन्	५।३।५
५७ अन्तरं बहिर्यो	१।१।३६
२९८ अन्तर्बहिर्भ्यां च	५।४।११७
२९ अन्तादिवच्च	६।१।८५
२६८ अन्यथैवंकथमि	३।४।२७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
२४९ अन्येभ्योऽपि	३।२।७५
३०६ अपत्यं पौत्र	४।१।१६२
२३१ अपहवे ज्ञ	१।३।४४
२७४ अपादाने	२।३।२८
६२ अपृक्ता एकाल्	१।२।४१
११४ अपो भि	७।४।४८
६८ अपृन्तृच्स्वसृ	६।४।११
२९७ अप्पूरणी	५।४।११६
२६४ अ प्रत्ययात्	३।३।१०२
२३९ अभिज्ञावचने	३।२।११२
३२८ अभिनिष्कामति	४।३।८६
२३३ अभिप्रत्यतिभ्यः	१।३।८०
१७९ अभ्यासस्यास	६।४।७८
१७३ अभ्यासाच्च	७।३।५५
१२९ अभ्यासे चर्च	८।४।५४
५० अमि पूर्वः	६।१।१०७
६६ अन्वार्थनद्यो	७।३।१०७
८६ अन्संबुद्धौ	७।१।९९
१६३ अयामन्तात्वा	६।४।५५
२४८ अर्द्धिषदजन्त	६।३।६७
१८८ अर्तिपिपत्योश्च	७।४।७७
२५८ अर्तिधूलसू	३।२।१८४
२२१ अर्तिहीन्ली	७।३।३६
४७ अर्थवदधातु	१।२।४५
२९४ अर्थर्चा. पुसि	२।४।३१

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
२८५ अर्थ नपुंसकम्	२।२।२
९३ अर्वणत्रसा०	६।४।१२७
३४९ अर्शआदिभ्योऽच्	५।२।१२७
२० अलोऽन्त्यस्य	१।१।५२
६२ अलोऽन्त्यात्	१।१।६५
२६६ अलंखल्वोः	३।४।१८
३०१ अल्पाचतरम्	२।२।३४
८२ अल्लोपोऽनः	६।४।१३४
३१ अवहस्फोटा०	६।१।१२३
३३० अवयवे च	४।३।१३५
२६५ अवे तृत्रोर्वञ्	३।३।१२०
३५९ अव्यक्तानुकर	५।४।५७
३५६ अव्ययसर्वना	५।३।७१
३२२ अव्ययात्त्यप्	४।२।१०४
१२२ अव्ययादाप्सुपः	२।४।८२
१२२ अव्ययीभावश्च	१।१।४१
२७९ अव्ययीभावश्च	७।४।१८
२८० अव्ययीभावे	५।४।१०७
२८० अव्ययीभाव	६।३।८१
२७७ अव्ययीभावः	२।१।५
२७७ अव्ययं विभक्ति	२।१।६
३०४ अश्वपत्यादिभ्यश्च	४।१।८४
९५ अष्टन आ विभक्तौ	७।२।८४
९५ अष्टाभ्य औश्	७।१।२१
१७३ असिद्धवदत्रा	६।४।२१

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
१४० असंयोगालिद्	१।२।५
१३८ अस्तिसिचोऽपृक्ते	७।३।९६
१७८ अस्तेर्भू.	२।४।५२
८२ अस्थिदधि	७।१।७५
१२६ अस्मद्युत्तमः	१।४।१०७
३४८ अस्मायामेवा	५।२।१२१
३५८ अस्य च्वौ	७।४।३२
१८४ अस्यतिवक्ति	३।१।५२
११५ अहन्	८।२।६८
३४९ अहंशुभमोर्युस्	५।२।१४०
२९२ अहःसर्वैकदेश	५।४।८७

## [ आ ]

६० आ कडारादेका	सज्ञा १।४।१
२५५ आक्रेस्त ञील	३।२।१३४
७२ आङि चापः	७।३।१०५
६१ आङो ना स्त्रियाम्	७।३।१२०
३४० आ च त्वात्	५।१।१२०
१९० आ च हौ	६।४।११७
११६ आ ञीनद्यो	७।१।८०
६६ आटश्च	६।१।९०
१३८ आडजादीनाम्	६।४।७२
१३३ आङुत्तमस्य	३।४।९२
६६ आण्न्धाः	७।३।११२
१५३ आत औ णलः	७।१।३४
२४६ आतश्चोप	३।१।१३६

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
२४७ आतोऽनुपसर्गे	३।२।३
१५९ आतो ङितः	७।२।८१
६० आतो घातोः	६।४।१४०
२३७ आतो युक्	७।३।३३
२६६ आतो युच्	३।३।१२८
१५३ आतो लोप इटि	६।४।६४
१५४ आतः	३।४।११०
१६२ आत्मनेपदेष्वनतः	७।१।५
२०३ आत्मनेपदेष्वन्य	३।१।५४
२५० आत्ममाने खश्च	३।२।८३
३३७ आत्मन्विश्वजन	५।१।९
३३७ आत्माव्वानौ खे	६।४।१६९
८ आदिरन्त्येन	१।१।७१
१४३ आदिर्जिडुडवः	१।३।५
१५४ आदेच उप	६।१।४५
५३ आदेशप्रत्यय	८।३।५९
३७ आदेः परस्य	१।१।५४
२४ आद्गुणः	६।१।८७
९० आद्यन्तवदेक	१।१।२१
३९ आद्यन्तौ टकितौ	१।१।४६
२७४ आघारोऽविक	१।४।४५
१३३ आनि लोट्	८।४।१६
२५५ आने मुक्	७।२।८२
२९२ आन्महतः	६।३।४६
२६८ आभीक्ष्ण्ये णमुल्	३।४।२२

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
५५ आमि सर्वनाम्नः	७।१।५२
१६० अमेतः	३।४।९०
१४६ आमः	२।४।८१
१५९ आ+प्रत्ययवत्	१।३।६३
२४० आयनेयीनीथियः	७।१।२
१४५ आयादय आर्घ	३।१।३१
१७४ आर्घधातुके	२।४।३५
१३० आर्घधातुकं शेषः	३।४।११४
१२९ आर्घधातुकस्येङ्	७।२।३५
१३१ आशिषि लिङ्	३।३।१७३
१०९ आ सर्वनाम्नः	६।३।९१
१८४ आहस्यः	८।२।३५

[ इ ]

८१ इकोऽचि विभक्तौ	७।१।७३
३३ इकोऽसवर्णे	६।१।१२७
२२२ इको झल्	१।२।९
१९ इको यणचि	६।१।७७
३४० इगन्ताच्च	५।१।७७
२४६ इगुपधज्ञा	३।१।१३५
८५ इग्यणः सम्भ्र	१।१।४५
२६४ इञ्	३।३।१०१
१५९ इजदिश्चगुरु	३।१।३६
१३८ इट ईटि	८।२।२८
१६१ इटोऽत्	३।४।१०६
१७२ इडत्यति	७।२।६६

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
१८० इणो गा लुङि	२।४।४५
१७२ इणो यण्	६।४।८१
१६० इणः धीप्वङ्लुङ्	८।३।७८
२९९ इणः ष.	८।३।३९
३५१ इतराम्योऽपि	५।३।१४
१३४ इतश्च	३।४।१००
९४ इतोऽत्सर्वनाम	७।१।८६
३६८ इतो मनुष्यजातः	४।१।६५
३५० इदम् इश्	५।३।३
३५३ इदमस्थमुः	५।३।२४
८८ इदमो मः	७।२।१०८
३५२ इदमो हिङ्	५।३।१६
३५० इदमो हः	५।३।११
१४३ इदितो तुम्	७।१।५८
७४ इडस्रयाम्	७।३।११७
८८ इदोऽय् पुंसि	७।२।१११
३४३ इदंकिमोरीश्	६।३।९०
३१६ इनण्यनपत्ये	६।४।१६४
३६५ इन्द्रवरुणभव	४।१।४९
१३ इन्द्रे च	६।१।१२४
९१ इन्हन्पूषा	६।४।१२
१९३ इरितो वा	३।१।५७
३५७ इवे प्रतिकृतौ	५।३।९६
१५७ इषुगमियमां छः	७।३।७७
३४६ इष्टादिभ्यश्च	५।२।८८

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३५५ इष्टस्य यिच् च	६।४।१५९	२४ उपदेशेऽजनु	१।३।२
३१७ इसुसुचान्तात्कः	७।३।५१	१५० उपदेशेऽत्वतः	७।२।६२
[ ई ]		२९० उपपदमतिद्	२।२।१९
२१९ ई च गणः	७।४।९७	२८८ उपमानानि	२।१।५५
३१ ईद्वेद्विवचनं	१।१।११	२२७ उपमानादाच्चारं	३।१।१०
२४३ ईधति	६।४।६५	१७८ उपसर्गप्रादु	८।३।८७
३५५ ईपदसमाप्तौ	५।३।६७	२८ उपसर्गादिति	६।१।९१
२६५ ईपहु.सुधु	३।३।१२६	२७ उपसर्गाः क्रियायोगे	१।४।५९
१९० ई हत्यघोः	३।४।११३	३०३ उपसर्गादध्वनः	५।४।८५
[ उ ]		१४२ उपसर्गादसमा	८।४।१४
३३६ उगादिभ्यो यत्	५।१।२	१६५ उपसर्गस्यायतौ	८।२।१९
३६१ उगितश्च	४।१।६	२५१ उपसर्गे च	३।२।१९
९२ उगिदचां सर्व	७।१।७०	२६२ उपसर्गे घोः	३।३।९२
११ उच्चैरुदात्तः	१।२।२९	२७८ उपसर्जनं पूर्वम्	२।२।३०
३३२ उच्छति	४।४।३२	२३४ उपाच्च	१।३।८४
२५९ उणादयो बहुलम्	३।३।१	२१३ उपात्प्रतियत्न	६।१।१३९
१५७ उत्तश्च प्रत्यया	६।४।१०६	३४४ उमादुदात्तो	५।२।४४
१७५ उत्तो वृद्धिर्लुकि	७।३।८९	१०८ उमे अभ्यस्तम्	६।१।५
३०५ उत्सादिभ्योऽञ्	४।१।८६	२५ उरण् २५रः	१।१।५१
१०५ उद ईत्	६।४।१३९	१४६ उरत्	७।४।६६
२३१ उदध्वरः सक	१।३।५३	२९० उरः प्रमृति	५।४।१५१
२६७ उदितो वा	७।२।५६	१६८ उश्च	१।२।१२
१८८ उदोध्यपूर्वस्य	७।१।१०२	१७७ उषविदजागृभ्यो	३।१।३८
३६ उदः स्थास्तम्भोः	८।४।६१	१५४ उस्यपदान्तात्	६।१।९६
२९८ उद्विम्या काकु	५।४।१४८	[ ऊ ]	
		१०१ ऊकालोऽञ्जस्व	१।२।२७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३६८ ऊक्तुतः	४।१।६६	५० एकवचनं संवु०	२।३।४९
२६३ ऊतियूति	३।३।९७	२८९ एकविभक्ति चा	१।२।४४
३६९ ऊत्तरपदा	४।१।६९	१४७ एकाच उपदेजे०	७।२।१०
१८५ ऊर्णोतिर्विभाषा	७।३।९०	८५ एकाचो वशो०	८।२।३७
१८६ ऊर्णोतिर्विभाषा	७।२।६	९२ एकाजुत्तरपदे णः	८।४।१२
२८९ ऊर्थादिचिन्हा	१।४।६१	३०६ एको गोत्रे	४।१।९३

[ क ]

३०२ कक्षपूरब्धूः	५।४।७४
१८९ कच्छ-यूताम्	७।४।११
६९ कत उत्	६।१।१११
२०० कतश्च संयो	७।२।४३
१५५ कतश्च संयोगा	७।४।१०
६८ कृतो हिसर्व	७।३।११०
१५० कृतो भारद्वा	७।२।६३
३४ कृत्यकः	६।१।१२८
९६ कृतिविमदधृक्	३।२।५९
६८ कदुशनस्पुक्	७।१।९४
१५५ कद्वनोः स्ये	७।२।७०
७७ कनेभ्यो ङीप्	४।१।५
३०९ कण्यन्धकृ	४।१।१४४
२४५ कहलोर्ण्यत्	३।१।१२४
२०५ कत इक्षातोः	७।१।१००
२६१ कदोरप्	३।३।५७

[ ए ]

१०१ एकवचनस्य	७।१।३२
--------------	--------

५० एकवचनं संवु०	२।३।४९
२८९ एकविभक्ति चा	१।२।४४
१४७ एकाच उपदेजे०	७।२।१०
८५ एकाचो वशो०	८।२।३७
९२ एकाजुत्तरपदे णः	८।४।१२
३०६ एको गोत्रे	४।१।९३
३० एः पदान्तादति	६।१।१०९
२८ एहि पररूपम्	६।१।९४
५० एद्दस्वात्सम्बुद्धे	६।१।६९
८३ एच इग्रस्वादेशे	१।१।४८
२१ एचोऽयवायावः	६।१।७८
२४८ एजेः खश्	३।२।२८
११२ एत ईद्वहुवचने	८।२।८१
१६१ एत ऐ	३।४।९३
४६ एतत्तदोः सु	६।१।१३२
३५२ एतदः	५।३।५
२४४ एतिस्तुशास्त्र०	३।१।१०९
३५२ एतेतौ रयो.	५।३।४
१८० एतेलिङि	६।४।२४
२६ एत्येधल्यूट्	६।१।८९
१६१ एरच्	३।३।५६
६७ एरनेकाचो	६।४।८२
१३१ एरः	३।४।८६
१५४ एलिङि	६।४।६७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
[ ओ ]		२८२ कर्तृकरणेकृता	२।१।३२
१९५ ओतः श्यनि	७।३।७१	२७३ कमणा यमभिप्रैति	१।४।३२
३३ ओत्	१।१।१५	२७० कर्मणि द्वितीया	२।३।३
२५३ ओदितश्च	८।२।४५	२४७ कर्मण्यन्	३।२।१
२९ ओमाङोश्च	६।१।९५	२३८ कर्मवत्कर्मणा	३।१।८७
३०६ ओर्गुणः	६।४।१४६	२२८ कष्टाय कमणे	३।१।१४
५३ ओसि च	६।३।४००	२९० कस्कादिषु च	८।३।४८
२२० ओः पुयज्यपरे	७।४।८०	४३ कानाम्रेडिते	८।३।१२
७० ओः सुपि	६।४।८३	२२७ काम्यच्च	३।१।९०
[ औ ]		२५९ कालसमयवेलासु	३।३।१६७
७२ औह आपः	७।१।१८	३२४ कालाष्टन्	४।३।११
७१ औतोऽम्शसोः	६।१।९३	३०५ किति च	७।२।११८
६३ औत्	७।३।११८	१३६ किदाशिषि	३।४।१०४
[ क ]		३५३ किमश्च	५।३।२५
२२९ कण्वादिभ्यो यक्	३।१।२७	३४३ किमिदंभ्यां वो घः	५।२।४०
३१० कन्यायाः कनीन	४।१।११६	३५४ किमेत्तिङ्व्यय	५।४।११
३४१ कपिज्ञात्योर्द	५।१।१२७	३५१ किमोऽत्	५।३।१२
१६२ कमेर्णिङ्	३।१।३०	८८ किमः कः	७।२।१०३
३१२ कम्बोजाल्लुक्	४।१।१७५	२०६ किरतौ लवने	६।१।१४०
२५० करणे यजः	३।२।८५	३५७ कियत्तदो	५।३।९२
२३० कर्तरि कर्म	१।३।१४	३४९ किंसर्वनाम	५।३।२
२४२ कर्तरि कृत्	३।४।६७	२८९ कुगतिप्रादयः	२।२।१८
१२७ कर्तरि शप्	३।१।६८	३५० कु तिहोः	७।२।१०४
२७० कर्तुरीप्सित	१।४।४९	३५६ कुत्सिते	५।७।७४
२७३ कर्तृकरणयोः	२।३।१८	४२ कुप्वोः क	८।३।३७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३१९ कुमुदनध्वेतसे	४।२।८७	३५१ काति	७।२।१०५
३१२ कुम्भनादिभ्यो	४।१।१७२	९६ किन्प्रत्ययस्य	८।२।६२
१४१ कुहोरचु	७।४।६२	२४९ किप् च	३।२।७६
२४७ कुजो हेतु	३।२।२०	३११ क्षत्राद्धः	४।१।१३८
१४६ कृथानुप्रयु	३।१।४०	२५३ क्षायो मः	८।२।५३
४७ कृतद्धित	१।०।४६	२२४ क्षुम्नादिषु च	८।४।४९
२४३ कृत्यल्युटो	३।३।११३	१८३ क्तस्याचि	७।३।७२
२४२ कृत्याः	३।१।९५	[ ख ]	
९६ कृदतिङ्	३।१।९३	४१ खरवसानयो	८।३।१५
१२२ कृन्मेजन्तः	१।१।३९	३७ खरि च	८।४।५५
३५८ कृभ्वस्तियोगे	५।४।५०	२५० खित्यनव्ययस्य	६।३।६६
१४९ कृष्टमृष्टस्तु	७।२।१३	६३ ख्यत्यात्परस्य	६।१।११२
३४८ केशाद्धो	५।२।१०९	[ ग ]	
३२६ कोशाद्धञ्	४।३।४२	६७ गतिश्च	१।४।६०
१३६ किरिति च	१।१।५	२३२ गन्धनावक्षेप	१।३।३२
२५१ फफवत्	१।१।२६	१५७ गमहनजन	६।४।९८
२६१ कत्रेर्मन्मित्यम्	४।४।२०	१५८ गमेरिट्पर	७।२।५८
१२२ कत्वातोऽनुक्कसुन.	१।१।४०	३०७ गर्गादिभ्यो यञ्	४।१।१०५
२२६ क्यचि च	७।४।३३	३२३ गहादिभ्यश्च	४।२।१३८
२२७ क्यस्य विभाषा	६।४।५०	१८१ गाङ्कुटादि	१।२।१
३१८ कमादिभ्यो लुन्	४।२।६१	१८१ गाङ् लिटि	२।४।४९
१५२ क्रमं परस्मैप	७।३।७६	१३७ गातिस्थाधु	२।४।७७
३६६ कीतात्करणपूर्वात्	४।१।५०	३४१ गुणवचन	५।१।१२४
२१३ कथादिभ्यः श्रा	३।१।८१	१८६ गुणोऽपृक्के	७।३।९१
२५४ कसुश्च	३।२।१०७	१५६ गुणोऽर्तिसयो	७।४।२९



पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
२२३ गुणो यङ्लुकोः	७।४।८२	९९ हेप्रथमयोरम्	७।१।२८
१४५ गुपूधूपविच्छि	३।१।२८	६६ हेरान्नधा। तीभ्यः	७।३।११६
२६४ गुरोश्च हलः	३।३।१०३	५२ डेयः	७।१।१३
२४६ गेहे क.	३।१।१४४	३३ इणोः कुक्	८।३।२८
७१ गोतो णित्	७।१।९०	४७ ङ्याप्प्रातिपदि	४।१।१
३०७ गोत्राद्यून्यस्त्रि	४।१।९४	[ च ]	
३३१ गोपयसोर्यन्	४।३।१६०	१६४ चङि	६।१।११
२८७ गोरतद्धित	५।४।९२	२४५ चजोः कुघि	७।३।५२
३३० गोश्च पुरीषे	४।३।१४५	८६ चतुरनडुहोरा	७।१।९८
२८९ गोत्रियोरप	१।२।४८	२८३ चतुर्थी तदर्था	२।२।३६
१९५ ग्रहिज्यावयि	६।१।१६	२७३ चतुर्थी सम्प्रदाने	२।३।१३
२१७ ग्रहोऽलिटि	७।२।३७	३३२ चरति	४।४।८
३१६ ग्रामजनवन्धु	४।२।४३	२४७ चरेष्टः	३।२।१६
३२१ ग्रामाद्यख्यौ	४।२।९४	३२ चादयोऽसत्त्वे	१।४।५७
[ घ ]		३०० चार्थे छन्दः	२।२।२९
२६० घञि च भाव	६।४।२७	१९७ चिणो छक्	६।४।१०४
१८२ घुमास्थागापा	६।४।६६	१९८ चिण् ते पदः	३।१।६०
६१ घेङिति	७।३।१११	२३६ चिण्भावकर्म	३।१।६६
१७८ घ्वसारेक्षाव	६।४।११९	४९ चुद्	१।३।७
[ ङ ]		७७ चोः कुः	८।२।३०
४० ङमो हस्वादचि	८।३।३२	१०५ चौ	६।३।१३८
६१ ङसिङ्सोश्च	६।१।११०	२५७ च्छोः श्रुङनुनासिके	६।४।१९
५५ ङसिङ्योः	७।१।१५	१३६ च्लि छङि	३।१।४३
३० ङित्व	१।१।५३	१३७ च्लेः सिच्	३।१।४४
७४ ङिति हस्वश्च	१।४।६	३५९ च्यौ च	७।४।२६

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि

सूत्राङ्काः

[ छ ]

२६५ छादेर्घेऽव्युपसर्गस्य ६।४।९६

४३ छे च ६।१।७३

[ ज ]

१०८ जक्षित्यादयः ६।१।६

३११ जनपदशब्दात् ४।१।१६८

३१९ जनपदे छप् ४।२।८१

२११ जनसनखनाम् ६।४।४२

१९८ जनिवध्योश्च ७।३।३५

५८ जराया जरस ७।२।१०१

२५६ जल्पभिक्ष ३।२।१५५

७९ जरशसोः शि. ७।१।२०

६० जसि च ७।३।१०९

५४ जसः शी ७।१।१७

१९० जहातेश्च ६।४।११६

२६७ जहातेश्च क्त्वि ७।३।४३

३६८ जातेरलीविषया ४।१।६३

३२७ जिहामूलाङ्गुले ४।३।६२

३०७ जीवति तु ४।१।१६३

१८७ जुसि च ७।३।८३

१८७ जुहोत्यादिभ्यः २।४।७५

२१५ जृस्तम्भुभुचु ३।१।५८

१९७ राजनोर्जा ७।३।७९

३५५ ज्य च ५।३।६१

३५५ ज्यादादीयस ६।४।१६०

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि

सूत्राङ्काः

२६३ ज्वरत्वर ६।४।२०

[ झ ]

३७ झयो होऽन्यतर ८।४।६२

२८१ झयः ५।४।१११

३१९ झयः ८।२।१०

३७ झरो झरि सवर्णे ८।४।६५

२० झलां जश् झशि ८।४।५३

३६ झलां जशोऽन्ते ८।२।३९

१४९ झलो झलि ८।२।२६

१७० झपस्तथोर्घो ८।२।४०

१६१ झस्य रन् ३।४।१०५

१३५ झेर्जुस ३।४।१०८

१२७ झोऽन्तः ७।१।३

[ ट ]

५१ टाडसिडसा ७।१।१२

३६१ टिड्ढाणञ् ४।१।१५

१५८ टित आत्मन ३।४।७९

८० टेः ६।४।१४३

३४० टेः ६।४।१५५

२६२ ट्वितोऽथुच् ३।३।८९

[ ठ ]

३२७ ठगायस्थानेभ्यः ४।३।७५

३११ ठस्येक ७।३।५०

[ ड ]

६३ डति च १।१।२५

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

४० ङः सि धुद् ८।३।२९

२६१ द्वितः कितः ३।३।८८

[ ङ ]

१७० ङो ङे लोपः ८।३।१३

४५ ङलोपे पूर्वस्य ६।३।१११

[ ण ]

१४१ णलुत्तमो वा ७।१।९१

२१८ णिचश्च १।३।७४

१९३ णिजां त्रयाणाम् ७।४।७५

१६३ णिश्चिद्विश्रुभ्यः ३।१।४८

१६४ णेरनिटि ६।४।५१

१४१ णो नः ६।१।६५

१६४ णौ चङ्युप ७।४।१

२६४ ण्यासश्च्यो ३।३।१०७

२४५ ण्वुल्चौ ३।१।१३३

[ त ]

१२४ तङानावात्मने० १।४।१००

३२७ तत आगत. ४।३।७४

२५१ तत्पुरुषे कृति ६।३।१४

२९१ तत्पुरुषस्याङ्गु ५।४।८६

२८२ तत्पुरुषः २।१।२२

२८७ तत्पुरुषः समाना १।२।४२

३५७ तत्प्रकृतवचने ५।४।२१

२२० तत्प्रयोजको हेतु १।४।५५

३२५ तत्र जातः ४।३।२५

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

३३९ तत्र तस्येव ५।१।११६

३२६ तत्र भवः ४।३।५३

३३५ तत्र साधुः ४।४।९८

३१४ तत्रोद्धृतम् ४।२।१४

२९० तत्रोपपदम् ३।१।९२

३१७ तदधीते ४।२।५९

३३८ तदर्हति ५।१।६३

३१८ तदस्मिन्नस्तीति ४।२।६७

३४२ तदस्य संजातं ५।२।३६

३४६ तदस्यास्त्यस्मि ५।२।९४

९८ तदोः सः साव ७।२।१०६

३२८ तद्गच्छति ४।३।८१

२८० तद्धिताः ४।१।७६

१८६ तद्धितश्चा सर्व १।१।३८

२८६ तद्धितार्थोत्तर २।१।५१

२९ तद्धितेष्वचा ७।२।११७

३१२ तद्वाजस्य २।४।६२

३३४ तद्गृहति रथ ४।४।७६

१७७ } तनादिकृन्भ्यः ३।१।७९

२१० } तनादिभ्यः २।४।७९

२११ तनादिभ्यः २।४।७९

२३५ तनोतिर्यकि ६।४।४४

२३ तपरस्वत्कालस्य १।१।७०

२३७ तपोऽनुतापे च ३।१।६५

२४२ तयोरेव कृत्य ३।४।७०

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३३२ तरति	४।४।५	१३० तासस्त्यो	७।४।५०
३५४ तरत्तमपौ घ.	१।१।२२	३५३ तिङश्च	५।३।५६
३२३ तवकममका	४।३।३	१२५ तिङ्घ्नीणि	१।४।१०१
१०१ तवममौ ङसि	७।२।९६	१२६ तिङ्शित्सार्वं	३।४।११३
२४२ तव्यतव्या	३।१।९६	२५८ तितुनतय	७।२।९
३४६ तसौ मत्वर्थे	१।४।१९	२४ तिसस्त्रि	३।४।७८
१३२ तस्थस्थमिपाम्	३।४।१०१	२०९ तिप्यनस्तोः	८।२।७३
२८८ तस्मान्नुडचि	६।३।७४	१०६ तिरसस्तिर्यलोपे	६।३।९४
५१ तस्माच्छसो नः	६।१।१०३	३४४ ति विंशते	६।४।१४२
३७ तस्मादित्युत्तरस्य	१।१।६७	२२१ तिष्ठतेरित्	७।४।५
१४३ तस्मान्नुडचि	७।४।७१	२०४ तीषसह	७।२।४८
३२३ तस्मिन्नेणि च	४।३।२	२०१ तुदादिभ्यः श	३।१।७७
१९ तस्मिन्निति	१।१।६६	१०१ तुभ्यमह्यो ङयि	७।२।९५
३३६ तस्मै हितम्	५।१।५	२५९ तुमुन्पुलौ	३।३।१०
३१८ तस्य निवासः	४।२।६९	१३ तुल्यास्यप्रय	१।१।९
४३ तस्य परमात्रे	८।१।२	१३१ तुह्योस्तात	७।१।३५
३४४ तस्य पूरणे ङट्	५।२।४८	६८ तृज्वत्क्रोष्टुः	७।१।९५
३३९ तस्य भावस्त्व	५।१।११९	२०८ तृणह डम्	७।३।९२
८ तस्य लोपः	१।३।९	८३ तृतीयादिषु भाषित	७।१।७४
३२९ तस्य विकारः	४।३।१३४	२७९ तृतीयासप्तम्योर्ब	२।४।८४
३१६ तस्य समूहः	४।२।३७	२८२ तृतीया तत्कृता	२।१।३०
३०६ तस्यापत्यम्	४।१।९२	२५६ तृन्	३।२।१३५
३२९ तस्येदम्	४।३।१२०	१६७ तृफलभज	६।४।१२२
३३७ तस्येश्वरः	५।१।४२	३१२ ते तद्वाजाः	४।१।१७४
१२५ तान्येकवचन	१।४।१०२	३३७ तेन क्रीतम्	५।१।३७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

३३९ तेन तुल्यम्	५।१।११५
३३१ तेन दीव्यति	४।४।२
३१८ तेन निर्वृतम्	४।२।७८
३३९ तेन निर्वृतम्	५।१।७९
३२९ तेन प्रोक्तम्	४।३।१०१
३१३ तेन रक्तं रागात्	४।२।१
१३३ तेन प्राग्धातोः	१।४।८०
१०३ तेमयावेक	२।१।२२
३६ तोलिं	८।२।६०
३६ तोः षि	८।४।४३
२५५ तौ सत्	३।२।१२७
१०९ त्यदादिषु दृशो	३।२।६०
६५ त्यदादीनामः	७।२।१०२
३२२ त्यदादीनि च	१।१।७४
७५ त्रिचतुरोः	७।२।९९
२९३ त्रैल्लयः	६।३।४८
६४ त्रैल्लयः	७।१।५३
३४५ त्रैःसम्प्रसारणं च	५।२।५५
१०० त्वमावेकवचने	७।२।९७
१०३ त्वामौ द्वितीया	८।१।२३
९९ त्वाहौ सौ	७।२।९४

[ थ ]

१४३ थलि च सेटि	६।४।१२१
१५९ थास' से	३।४।८०
९४ थो न्यः	७।१।८७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

[ द ]

३२२ दक्षिणापश्चात्	४।२।९८
३३८ दण्डादिभ्यो यत्	५।१।६६
१९२ दधस्तथोश्च	८।२।३८
२५४ दधातेर्हिः	७।४।४२
३४८ दन्त उञ्जत	५।२।१०६
१६५ दयायासश्च	३।१।३७
८९ दश्च	७।२।१०९
१७७ दश्च	८।२।७५
२३१ दाणश्च सा चे	१।३।५५
८४ दादेर्धातोर्घः	८।२।३२
१९२ दाघा घदाप्	१।१।२०
३५७ दाम्नीशस	३।२।१८२
२८६ दिक्पूर्वपदाद्	४।२।१०७
२८६ दिक्संख्ये सशा	२।१।५०
३२६ दिगादिभ्यो यत्	४।३।५४
३०४ दित्यदित्या	४।१।८५
८७ दिव उत्	६।१।१३१
८७ दिव औत्	७।१।८४
१९४ दिवादिभ्यः श्यञ्	३।१।६९
१९६ दीढो युडचि	६।४।६३
१९७ दीपजनबुध	३।१।६१
१७९ दीर्घ इण.किति	७।४।६९
५९ } दीर्घाज्जसि च	६।१।१०५
६५ }	

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
२२४ दीर्घोऽकितः	७।२।८३
१६४ दीर्घो लघोः	७।४।९४
१३९ दीर्घ च	१।४।१२
१३ दूराद्धूते च	८।२।८४
२५३ दृढः स्थूल	७।२।२०
२५० दशो क्वनिप्	३।२।९४
३१३ दृष्ट साम	४।२।७
२५४ दो दद्धो.	७।४।४६
१६५ धुञ्चो लुङि	१।३।९१
३२२ धुप्रागपागुद	४।२।१०१
३०२ द्वन्द्वश्च प्राणि	२।४।२
३०२ द्वन्द्वाञ्चुद	५।४।१०६
३०१ द्वन्द्वे घिः	२।२।३२
२८७ द्विगुरेकवचनम्	२।४।१
२८२ द्विगुश्च	२।१।२३
३६३ द्विगोः	४।१।२१
९० द्वितीयाटौस्त्वेनः	२।४।३४
१०० द्वितीया च	७।२।८७
२८२ द्वितीया श्रिता	२।१।२४
३४४ द्वित्रिभ्या तयस्या	५।२।४३
२९७ द्वित्रिभ्यां षः	५।४।११५
१४७ द्विर्वचनेऽचि	१।१।५९
३५४ द्विवचनविभ	५।३।५७
३४५ द्वेस्तीयः	५।२।५४
२९३ द्यष्टनः सख्या	६।३।४७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
४८ द्येकयोर्द्विवच	१।४।२२
[ ध ]	
३३३ धर्म चरति	४।४।४१
२२० धातोरेकाचो हला	३।१।२२
२४१ धातोः	३।१।९१
२२१ धातोः कर्मणः	३।१।७
८४ धात्वादे षः सः	६।१।४६
३४२ धान्यानां भवने	५।२।१
१६० वि च	८।२।२५
३३४ धुरो यङ्ङकौ	४।४।७७
२७० ध्रुवमपायेऽपादा	१।४।२४
[ न ]	
२६७ न क्ता सेट्	१।२।१८
३६७ न क्रोडादि	४।१।५६
३१३ नक्षत्रेण युक्तः	४।२।०
३६७ नखमुखात्सना	४।१।५८
२०० न गतिर्हिंसा	१।३।१५
९१ न विसम्बुद्धोः	८।२।८
२८८ नञ्	२।२।६
३२० नडशादाड्झलच्	४।२।८८
७५ न तिसृचतम्	६।४।४
२८० नदीभिश्च	२।१।२०
३२२ नद्यादिभ्यो ढक्	४।२।९७
२४६ नन्दिग्रहि	३।१।१३४
१८५ नन्दाः संयोगा	६।१।३

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३५ न पदान्ताद्वा	८।४।४२	३८ नश्चापदान्तस्य	८।३।२४
३९ नपरे नः	८।३।२७	४२ नश्छन्धप्रज्ञान्	८।३।७
७९ नपुसकस्य झलचः	७।१।७२	७७ न पटस्वस्त्रादि	४।१।१०
७८ नपुसकाच्च	७।१।१९	९३ न सम्प्रसारणे	६।१।३७
२८१ नपुसका	५।४।१०९	९१ न संयोगाद्धम	६।४।१३७
२६४ नपुसके भावे	३।३।११४	२८१ तस्तद्धिते	६।४।१४४
३०३ न पूजनात्	५।४।६९	११३ नहिवृत्ति	६।३।११६
२१२ } नभकुर्छुराम्	८।२।७९	११३ नहो घः	८।२।३४
३३४ }		१०६ नाञ्चः पूजायाम्	६।४।३०
६८ न भूमधियो.	६।४।८५	४९ नादिचि	६।१।१०४
१३७ न माढयोगे	६।४।७४	३४४ नान्तादसंख्या	५।२।४९
११२ न सु ने	८।२।३	१९३ नाभ्यस्तस्याचि	७।३।८७
२८३ नम.स्वस्ति	२।३।१६	१०८ नाभ्यस्ताच्छतुः	७।१।७८
२२९ न यदि	३।२।११३	५३ नामि	६।४।३
३१७ न ग्वाभ्यां पदा	७।३।३	२७९ नाव्ययीभावा	२।४।८३
२१६ न लिङि	७।२।३९	३३३ निक्ते वसति	४।४।७३
६४ न लुभता	१।१।६३	३६८ नित्यवीप्सयोः	८।१।४
२८८ नलोपो नञः	६।३।७३	२१२ नित्यं करोतेः	६।४।१०८
६२ नलोप प्राप्ति	८।२।७	२२३ नित्यं कौटिल्ये	३।१।२३
९१ नलोप. सुप्	८।२।२	१३३ नित्यं हितः	३।४।९९
५० न विभक्तौ	१।३।४	३३० नित्यं वृद्धशरा	४।३।१४४
१६६ न वृद्धयश्चतु	७।२।५९	३२ निपात एका	१।१।१४
१६७ न शसदद	६।४।१२६	२६० निवासचित्ति	३।३।४१
१०९ नशेर्वा	८।२।६३	२९९ निष्ठा	२।२।३६
४० नश्च	८।३।३०	२५१ निष्ठा	३।२।१०२

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
२५१ निष्ठायां सेटि	६।४।५२	५१ पदान्तस्य	८।४।३७
११ नीचैरनुदात्तः	१।२।३०	४३ पदान्ताद्वा	६।१।७६
११० नुम्बिसर्जनीय	८।३।५८	२९३ परवलिङ्ग द्वन्द्व	२।३।२६
७१ नृ च	६।४।६	४८ परश्च	३।१।२
४२ नृन्पे	८।३।१०	१२८ परस्मैपदानाम्	३।४।८२
१४९ नेटि	७।२।४	३१४ परिवृतो रथः	४।२।१०
२४९ नेद्वशि कृति	७।२।८	२३० परिव्ययेभ्यः	१।३।१८
९० नेदमदसोरकोः	७।१।११	२३३ परेर्मृष.	१।३।८२
७६ नेयङ्कुवड्स्थाना	१।४।४	१२० परोक्षे लिट्	३।३।११५
१४० नेर्गदनदपत्	८।४।१७	१८ परः सन्निकर्ष.	१।४।१०९
२०० नेर्विश.	१।३।१७	३५० पर्याभभ्याश्च	५।३।९
९५ नोपधाया.	६।४।७	१५३ पाघ्राध्मास्या	७।३।७८
३३४ नौवयोधर्म	४।४।९१	१०४ पाद. पत्	६।४।१३०
२२७ न क्ये	१।४।१५	२९८ पादस्य लोपो	५।४।१३८
[ प ]		३०१ पिता मात्रा	१।२।७०
३३८ पङ्क्तिर्विशति	५।१।५९	३१४ पितृव्यमातुल	४।२।३
३६९ पङ्गोश्च	४।१।६८	१३९ पुगन्तलघूप	७।३।८६
२५० पचो व्रः	८।२।५२	४२ पुमः खद्यम्परे	८।३।६
२८४ पञ्चमी भयेन	२।१।३७	२५८ पुवः संज्ञायाम्	३।२।१८५
१०१ पञ्चम्या अत्	७।१।३१	१५८ पुषादिध्रुता	३।१।५५
३४९ पञ्चम्यास्तसिल्	५।३।७	२८९ पुंयोगादाख्या	४।१।४८
२८४ पञ्चम्याः स्तोका	६।३।२	२८५ पुंसि सज्ञाया	३।३।११८
६३ पति. समास एव	१।४।८	१११ पुंसोऽसुद्	७।१।८९
३४१ पत्यन्तपुरोहि	५।१।१२८	२९८ पूर्णाद्विभाषा	५।४।१४९
९४ पथिमथ्यूमु	७।१।८५	२६ पूर्वत्रासिद्धम्	८।२।१



पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३६७ पूर्वपदात्संज्ञा	८।४।३	३३६ प्राक् क्रीताच्छः	५।१।१
५६ पूर्वपरावर	१।१।३४	२७६ प्राक्कडारात्	२।१।३
२३२ पूर्ववत्संज्ञः	१।३।६२	३५६ प्रागिवात् कः	५।३।७०
३४५ पूर्वादिनिः	५।२।८६	३३४ प्राग्धितायत्	४।४।७५
५७ पूर्वादिभ्यो नव	७।१।१६	३४२ प्राग्दिशः	५।३।१
२८४ पूर्वापरावरोत्तर	२।२।१	३३१ प्राग्वद्वत्तेष्टक्	४।४।१
१२८ पूर्वोऽभ्यासः	६।१।४	३३७ प्राग्वत्तेष्टञ्	५।१।१८
३४० पृथ्वादिभ्य इ	५।१।१२१	३६२ प्राचाप्फतद्धितः	४।१।१७
२४४ पोरदुपधात्	३।१।९८	३४७ प्राणिस्थादा	५।२।९६
३५२ प्रकारवचने धाल्	५।३।२३	२६९ प्रातिपदिकार्थ	२।३।४६
३५५ प्रकृत्यैकाच्	६।४।१६३	३२ प्रादयः	१।४।५८
३५८ प्रज्ञादिभ्यश्च	५।४।३८	२३३ प्राद्वहः	१।३।८१
६४ प्रत्ययलोपे	१।१।६२	२९२ प्राप्तापज्ञे च	२।२।४
३६५ प्रत्ययस्थात्	७।३।४४	३२५ प्रायभवः	४।३।३९
६४ प्रत्ययस्य लृक्	१।१।६१	३२५ प्रावृषष्टप्	४।३।२६
३२४ प्रत्ययोत्तरपदयो	७।२।९८	३२४ प्रावृष एण्यः	४।३।१७
४७ प्रत्ययः	३।१।१	२४८ प्रियवशे वदः	३।२।३८
५८ प्रथमचरम	१।१।३३	३१ प्लुतप्रगृह्या	६।१।१२५
४९ प्रथमयो पूर्व	६।१।१०२	२१६ प्वादीनां ह्रस्वः	७।३।८०
२७८ प्रथमानिर्दिष्टम्	१।२।४३	[ च ]	
१०० प्रथमायाश्च द्वि	७।२।८८	६३ बहुगणवत्	१।१।२३
३२८ प्रभवति	४।३।८३	५२ बहुवचने क्षल्येत्	७।३।१०३
३४३ प्रमाणे द्वय	५।२।३७	१०२ बहुवचनस्य	८।१।२१
३५४ प्रशस्यस्य श्रः	५।३।६०	२९७ बहुव्रीहौ	५।४।११३
३३३ प्रहरणम्	४।४।५७	४९ बहुषु बहुवचनम्	१।४।२१

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३५५ बहोर्लोपो	६।४।१५८
३५८ बह्वल्पायां च्छस्	५।४।४२
३६४ बह्वादिभ्यश्च	४।१।४५
३०८ बाह्वादिभ्यश्च	४।१।९६
१८४ ब्रुव ईद्	७।३।९३
१८४ ब्रुवो तच्चिः	२।४।५३
१८४ ब्रुवः पञ्चाना	३।४।८४

[ भ ]

२३८ भञ्जेश्च चिणि	६।४।६३
१२९ भवतेरः	७।४।७३
९४ भस्य टेलोपः	७।३।८८
२३४ भावकर्मणोः	१।३।१३
२५९ भावे	३।३।१८
३१६ भिक्षादिभ्योऽण्	४।३।३८
२४७ भिक्षासेना	३।२।१७
१८८ भियोऽन्यतरस्याम्	६।४।११५
१८७ भीहोमृदुर्वा	३।१।३९
२१० } भुजोऽनवने	१।३।६६
२३२ }	
१२८ भुवो लुक्	६।४।८८
२८ भूवादयो घातवः	१।३।१
१३७ भूसुवोस्तिङि	७।३।८८
१९१ मृजामित्	७।४।७६
२४५ भोज्यं भक्ष्ये	७।३।६९
४४ भोभगोअघो	८।३।१७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
१०१ भ्यसोऽभ्यम्	७।१।३०
२०१ भ्रस्जो रोपघ	६।४।४७
२५६ भ्राजभास	३।२।१७७

[ म ]

९२ मधवा बहुलम्	६।४।१२८
३२४ मध्यान्मः	४।३।८
२५० मनः	३।२।८२
३३ मय उभो वो वा	८।३।३३
३२८ मयद् च	४।३।८२
३३० मयड्वैतयो	४।३।१४३
१९६ मस्जिनशोर्झलि	७।१।६०
१३६ माङि लुङ्	३।३।१७५
३०९ मातृत्संख्या	४।१।११५
३२० मादुपधायाश्च	८।२।९
२२१ मिता ह्रस्वः	६।४।९२
७९ मिदचोऽन्त्या	१।१।४७
१९७ मीनातिमिनो	६।१।५०
१२ मुखनासिका	१।१।८
२४४ मृजेर्विभाषा	३।१।११३
२४५ मृजेर्द्विः	७।२।११४
१३२ मेर्निः	३।४।८९
३८ मोऽनुस्वारः	८।३।२३
८८ मो नो घातोः	८।२।६४
३८ मो राजि समः	८।३।२५
२०६ म्रियतेर्लुङ्	१।३।६१

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
२५४ म्वोश्च ८।२।६५

[ य ]

२२५ यङोऽचि च २।४।७४  
२२५ यङो वा ७।३।९४  
५९ यचि भम् १।४।१८  
२६२ यजयाच ३।३।९०  
३०७ यजोश्च २।४।६४  
३६२ यजश्च ४।१।१६  
३०८ यजिजोश्च ४।१।१०१  
३४३ यत्तदेतेभ्यः ५।२।३९

२२ यथासंख्यमनु १।३।१०  
१५५ यमरमनमा ७।२।७३  
३६ यरोऽनुनासिके ८।४।४५  
५० यस्मात्प्रत्यय १।४।१३  
२२४ यस्य हलः ६।४।४९  
७८ यस्येति च ६।४।१४८  
७३ याढापः ७।३।११३  
१३५ यासुट् पर ३।४।१०३  
९७ युजेरसमासे ७।१।७१  
९९ युवावौ द्विव ७।२।९२  
२४५ युवोरनाकौ ७।१।१  
१०२ युष्मदस्मदो. षष्ठी ८।१।२०  
१०१ युष्मदस्मदोरना ७।२।८६  
१०१ युष्मदस्मद्भ्याम् ७।१।२७  
३२३ युष्मदस्मदोरन्य ४।३।१

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
१२६ युष्मद्युपपदे १।४।१०५  
३७० यूनस्तिः ४।१।७७  
१०० यूयवयौ जसि ७।२।९३  
६५ यू स्यास्यौ १।४।३  
२१२ ये च ६।४।१०९  
३१० ये चाभाव ६।४।४३  
२११ ये विभाषा ६।४।१६८  
१०० योऽचि ७।२।८९  
११३ यः सौ ७।२।११०

[ र ]

३४० र ऋतोहृत्ता ६।४।१६१  
३३२ रक्षति ४।४।३३  
१५२ रदाभ्यां नि ८।२।४२  
१९६ रघादिभ्यश्च ७।२।४५  
२६७ रलो व्युप १।२।२६  
८७ रषाभ्याम् ८।४।१  
३०१ राजदन्तादिषु २।२।३१  
२५० राजनि युधि कृ ३।२।९५  
३१० राजश्चशुराद्यत् ४।१।१३७  
२९२ राजाह.सखि ५।४।९१  
२९२ राजाह्लाहाः २।४।२९  
६९ रात्सस्य ८।२।२४  
७१ रायो हलि ७।२।८५  
२५७ राहोपः ६।४।२१  
३२१ राष्ट्रावारपारा ४।२।९३

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
१६८ रिङ् शयम्	७।४।२८
१३० रि च	७।४।५१
२२४ रीगृदुपधस्य च	७।४।९०
३१५ रीङ् ऋतः	७।४।२७
२०७ रुधादिभ्यः श्रम्	३।१।७८
३११ रेवत्यादिभ्यः	४।१।१४६
४५ रोऽसुपि	८।२।६९
४५ रो रि	८।३।१४
८८ रोः सुपि	८।३।१६
११० र्वी०पधायाः	८।२।७६

[ ल ]

१७५ लङः शाकटा	३।४।१११
३५४ लटः शतृ	३।२।१२४
२४० लट् स्मे	३।२।११८
५१ लशक्वतद्धिते	१।३।८
१३५ लिङाशिपि	३।४।११६
१६१ लिङः सीगुट्	३।४।१०२
१३५ लिङ. सलोपो	७।२।७९
१३८ लिङ्निमित्ते	३।३।१३९
१८२ लिङ्सिचा	१।२।११
२१६ लिङ्सिचो	७।२।४२
१५९ लिटस्तङ्गयो	३।४।८१
१२८ लिटि धातो	६।१।८
२५४ लिट् कानज्वा	३।२।१०६
१२९ लिट् च	३।४।११५

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
१७१ लिट्यन्यतर	२।४।४०
१६९ लिट्यभ्यासस्यो	६।१।१७
२०३ लिपिसिचि	३।१।५३
१८३ लुवा दुह	७।३।७३
१७४ लुङि च	२।४।३
१३६ लुङ्	३।२।११०
१३४ लुङ्लुङ्लुङ्	६।४।७१
१७२ लुङ्तनोर्धरल	२।४।३७
१३० लुट्. प्रथमस्य	२।४।८५
३१९ लुपि युक्तवत्	१।२।५१
३१३ लुग्विशेषे	४।२।४
२५५ लट्. सद्वा	३।३।१४
१३१ लृट् शेषे च	३।३।१३
१३१ लोट् च	३।३।१६२
१३२ लोटो लङ्वत्	३।४।८५
१५६ लोपश्चास्यान्य	६।४।१०७
१९१ लोपो यि	६।४।११८
१३५ लोपो व्योर्वलि	६।१।६६
२५ लोप. शाक	८।३।१९
३४७ लोमादि	५।२।१००
१२३ लः कर्मणि च	३।४।६९
१२४ ल परस्मैपदम्	१।४।९९
२६४ ल्युट् च	३।३।११५
२५२ ल्वादिभ्यः	८।२।४४

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि

सूत्राङ्काः

[ व ]

१८५ वच उम्	७।४।२०
१६९ वचिस्वपि	६।१।१५
१४४ वदप्रजहलन्त	७।२।३
३६३ वयसि प्रथमे	४।१।२०
३१९ वरणादिभ्यश्च	४।२।८२
३२७ वर्गान्ताच्च	४।३।६३
३४१ वर्णदृढादिभ्यः	५।१।१२३
३६३ वर्णादनुदात्तात्तो	४।१।३९
२४० वर्तमानसामी	३।३।१३१
१२४ वर्तमाने लट्	३।२।१२३
७० वर्षाभ्यश्च	६।४।८४
८६ वसुसंसु	८।२।७२
१११ वसोः सम्प्र	६।४।१३१
३४९ वाचो गिमनिः	५।२।१२४
१९४ वा जृम्रमु	६।४।१२४
८५ वा डुहमुह	८।२।३३
११६ वा नपुंसकस्य	७।१।७९
२२ वान्तो यि प्रत्यये	६।१।७९
१५४ वान्यस्य संयो	६।४।६८
३८ वा पदान्तस्य	८।४।५९
३५७ वा बहूनाम्	५।३।९३
१५२ वा भ्राश	३।१।७०
३१४ वामदेवाङ्ग्य	४।२।९
७७ वामि	१।४।५

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि

सूत्राङ्काः

७६ वाम्गसोः	६।४।८०
३१५ वाञ्छृष्टुपिबु	४।२।३१
५३ वावसाने	८।४।५६
४४ वा शरि	८।३।३६
२४२ वा सत्पु	३।१।९४
८६ वाह ऊढ्	६।४।१३२
२०७ विज इट्	१।२।२
२४९ विद्वनोरनुना	६।४।४१
१७७ विदाकुर्व	३।१।४१
२५५ विदेः शतु	७।१।३६
१७६ विदो लटो वा	३।४।८३
३२७ विद्यायोनि	४।३।७७
१२४ विधिनिमन्त्र	३।३।१६१
३५५ विन्मतोर्लुक्	५।२।६५
२३० विपराम्या जेः	१।३।१९
४६ विप्रतिषेधे परं	१।४।२
४९ विभक्तिश्च	१।४।१०४
१९५ विभाषा घ्राघेद्	२।४।७८
८२ विभाषा द्विद्योः	६।४।१३६
३२८ विभाषा चिण्णमु	७।१।६९
१९९ विभाषा चेः	७।३।५७
६९ विभाषा तृतीया	७।१।९७
७३ विभाषा दिक् स	१।१।२८
१८१ विभाषा छङ्	२।४।५०
३५९ विभाषा साति कात्स्न्ये	५।४।५२

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३५६ विभाषा सुपो	५।३।६८
१६३ विभाषेऽः	८।३।७९
१८५ विभाषोर्णोः	१।२।३
४८ विरामोवसानं	१।४।११०
२८८ विशेषणं विशेष्य	२।१।५६
९८ विश्वस्य वसुस्य	६।३।१२८
४२ } विसर्जनीयस्य	८।३।३४
४४ }	
३२२ वृद्धाः	४।२।११४
२६ वृद्धिरादैच्	१।१।१
२६ वृद्धिरेचि	६।१।८८
३२२ वृद्धिर्धस्याच्चा	१।१।७३
१६६ वृद्धयःस्यसनोः	१।३।९२
१८९ वृत्तोवा	७।२।३८
९४ वरपृक्तस्य	६।१।६७
३६४ वोतो गुण	४।१।४४
२३४ व्याङ्परि	१।३।८३
९७ व्रश्चघ्नस्य	८।२।३६
३४२ व्रीहिशाल्योर्दक्	५।२।२
३४८ व्रीह्यादिभ्यश्च	५।२।११६

[ श ]

२०५ शदेशिशतः	१।३।६०
११७ शप्स्यनोर्नित्यम्	७।१।८१
३३२ शब्ददर्दुरं क	४।४।३४
२२८ शब्दवैरकलहा	३।१।१७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३२६ शरीरावयवाच्च	४।३।५५
३३६ शरीरावयवा	५।१।६
८८ शरोऽचि	८।४।४९
२०० शर्पूर्वाः खय.	७।४।६१
१८२ शल इगुप	३।१।४५
३८ शरछोऽटि	८।४।६३
१०० शसो न	७।१।२९
३४ शात्	८।४।४४
३६९ शाङ्गैरवा	४।१।७३
२४४ शास इदङ्	६।४।३४
१७१ शास्तिवसि	८।३।३१
३२० शिखाया वलच्	४।२।८९
४० शि तुक्	८।३।३१
३३३ शिल्पम्	४।४।५५
३०९ शिवादिभ्योऽण्	४।१।११२
७९ शि सर्वनाम	१।१।४२
१८० शोढो षट्	७।१।६
१८० शोढ सार्ध	७।४।२१
३३३ शीलम्	४।४।६१
३५१ शुक्राङ्गन्	४।२।२६
२५३ शुभः कः	८।२।५१
१८९ शूद्रप्रा ह्रस्वोवा	७।४।१२
२०२ शे मुचादी	७।१।५९
१२५ शेष्वात्कर्तरि	१।३।७८
३०० शेष्वादिभाषा	५।४।१५४

पृष्ठाङ्का सूत्राणि	सूत्राङ्काः
३२० शेषे	४।२।९२
१२६ शेषे प्रथमः	१।४।१०८
९९ शेषे लोपः	७।२।९०
६० शेषो ध्यसखि	१।४।७
२९४ शेषो बहु	२।२।२३
१७८ श्रसोरलोपः	६।४।१११
२०८ श्राजलोपः	६।४।२३
१९० श्राभ्यस्तयोरातः	६।४।११२
१५६ श्रुतः श्रु च	३।१।७४
३४५ श्रोत्रियदछन्दो	५।२।८४
२०० श्रयुकः किति	७।२।११
१८७ श्लौ	६।१।१०
९३ श्वयुवमघोना	६।४।१३३

[ ष ]

३४४ षट्कतिकिति	५।२।५१
८७ षट्चतुर्भ्यश्च	७।१।५५
६४ षड्भ्यो लुक्	७।१।२२
१६९ षढो. कः सि	८।२।४१
२८४ षष्ठी	२।२।८
२७४ षष्ठी शेषे	२।३।५०
३६३ षिद्गौरादिभ्यश्च	४।१।४१
२५६ षः प्रत्ययस्य	१।३।६
३५ षुना ष्टु.	८।४।११
९४ ष्णान्ता षट्	१।१।२४

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
[ स ]	
६२ सख्युरसन्बुद्धौ	७।१।९२
३४१ सख्युर्यः	५।१।१२६
२१८ सत्यापपाश	३।१।२५
३८७ स नपुंसकम्	२।४।१७
१४५ सनाद्यन्ता धा	३।१।३२
२५६ सनागंस	३।२।१६८
२२३ सनि ग्रहगुहोश्च	७।२।१२
२२२ सन्वतोः	६।१।९
१६४ सन्वतः	७।४।७९
१६४ सन्वल्लघुनि	७।४।९३
३४६ सपूर्वाच्च	५।२।८७
२८५ सप्तमी शौण्डैः	२।१।४०
२९० सप्तमीविशेषणे	२।२।३५
२७५ सप्तम्यधिकरणे च	२।३।३६
३५९ सप्तम्याल्ल	५।३।१०
२५१ सप्तम्यां जनेर्ङः	३।२।९७
३३५ सभाया यः	४।४।१०५
२७६ समर्थः पदविधिः	२।२।१
३०४ समर्थानां प्रथमा	४।१।८२
२३१ समवप्रविभ्यः	१।३।२२
२१२ समवाये च	६।१।१३८
२३१ समस्तृतीया	१।३।५४
२६६ समानकर्तृका	३।४।२१
२६७ समासेऽनञ्पूर्वे	७।१।३७

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्रङ्काः
११ समाहारः स्वरि	१ । २ । ३१
१०५ समः समि	६ । ३ । ९३
४१ सम. मुटि	८ । ३ । ५
४८ सरूपाणामेक	१ । २ । ६४
३० सर्वत्र विभा	६ । १ । १२२
६२ सर्वनामस्थाने	६ । ४ । ८
५४ सर्वनाम्नः	७ । १ । १४
७३ सर्वनाम्न. स्याद्	७ । ३ । ११४
३३७ सर्वभूमिपृथिवी	५ । १ । ४१
३५१ सर्वस्य सोऽन्य	५ । ३ । ६
५४ सर्वादीनि	१ । १ । २७
३५१ सर्वैकान्य किं	५ । ३ । १५
१६१ सवाभ्याम्	३ । ४ । ९१
४४ ससजुषो रुः	८ । २ । ६६
२७६ सह सुपा	२ । १ । ४
१०६ सहस्य सन्निः	६ । ३ । ९५
१७० सहिवहोरो	६ । ३ । ११२
२५१ सहे च	३ । २ । ९६
८७ सहेः साड. सः	८ । ३ । ५६
३५९ सात्पदाद्योः	८ । ३ । १११
२७० साधकतम क	१ । ४ । ४२
१०७ सान्तमहतः	६ । ४ । १०
१०२ साम आकम्	७ । १ । ३३
३२४ सायंचिरम्प्राहे	४ । ३ । २३
१५६ सार्ववातुकमपित्	१ । २ । ४

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
१२७ सार्वधातु	७ । ३ । ८४
२३४ सावधातुके यक्	३ । १ । ६७
८६ सावनडुहः	७ । १ । ८२
३१४ सास्य देवता	४ । २ । २४
१८९ सिचि च पर	७ । २ । ४०
१५२ सिचि वृद्धिः	७ । २ । १
१३९ सिजभ्यस्त	३ । ४ । १०९
२०९ सिपि धातो र्वा	८ । २ । ७४
१६१ सुद् तिथोः	३ । ४ । १०७
५९ सुञ्जनुसकस्य	१ । १ । ४३
२२६ सुप आत्मनः	३ । १ । ८
५२ सुपि च	७ । ३ । १०२
२२६ सुपो धातु	२ । ४ । ७१
४८ सुपः	१ । ४ । १०३
१९ सुप्तिञन्तम्	१ । ४ । १४
२४९ सुप्यजातौ	३ । २ । ७८
२९९ सुहृद्दुर्हृदौ मित्रा	५ । ४ । १५०
१९८ सृजिदशो	६ । १ । ५८
१९४ सेऽसिचि	७ । २ । ५७
१३२ सेर्ह्यपि च	३ । ४ । ८७
४६ सोऽचि लोपे	६ । १ । १३४
३२९ सोऽस्य निवा	४ । ३ । ८९
२९९ सोऽपदादौ	८ । ३ । ३८
३१५ सोमाद्व्याण्	४ । २ । ३०
९२ सौ च	६ । ४ । १३



पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः
२८७ संख्यापूर्वो	२।१।५२	२६२ स्त्रियां क्तिन्	३।३।९४
३४३ संख्याया अव	५।२।४२	७६ स्त्रियाः	६।४।७९
२९८ संख्यामुपूर्वस्य	५।४।१४०	२९६ स्त्रिया. पुंव	६।३।३४
२१२ संपरिम्या क	६।१।१३७	३०५ स्त्रीपुसाभ्याम्	४।१।८७
८६ सप्रसारणाच्च	६।१।१०८	३१० स्त्रीभ्यो ङक्	४।१।१२०
७२ संवुद्धौ च	७।३।१०६	१९२ स्याध्वोरिच्च	१।२।१७
३३ संवुद्धौ शाक	१।१।१६	५२ स्थानिवददेशो	१।१।५६
२७० संवोधने च	२।३।४७	२० स्थानेऽन्तरतमः	१।१।५०
३२५ सभूते	४।३।४१	१०९ स्पृशोऽनुदके	३।२।५८
२५२ संयोगादेरातो	८।२।४३	२०५ स्फुरतिस्फुल	८।३।७६
२० संयोगान्तस्य लोपः	८।२।२३	१३६ स्मोत्तरे लङ् च	३।३।१७६
१३९ संयोगे गुह	१।४।११	१३० स्पतासी	३।१।३३
३३२ संसृष्टे	४।४।२२	२३५ स्यसिचूसीयुद्	६।४।६२
३३१ संस्कृतम्	४।४।३	२१९ } स्वतन्त्रः कर्ता	१।४।५४
३१४ संस्कृतं भक्षाः	४।२।१६	२७२ }	
३६९ सहितशफलक्षण	४।१।७०	२६२ स्वपो नन्	३।३।९१
२२२ स. स्यार्धधातुके	७।४।४९	५७ स्वमशति	१।१।३५
९८ स्कोः संयोगा	८।२।२९	८१ स्वमोर्नपु	७।१।२३
२१५ स्तम्भुस्तुम्भु	३।१।८२	१४८ स्वरतिभूति	७।२।४४
२१५ स्तन्मेः	८।३।६७	११७ स्वरादिनिपा	१।१।३७
१९९ स्तुसुधून्म्य.	७।२।७२	१२५ स्वरितजितः	१।३।७२
२८४ स्तोकांति	२।१।३९	३६७ स्वाङ्गाच्चोप	४।१।५४
३४ स्तोः रञुना रञु	८।४।४०	१९९ स्वादिभ्यः	३।१।७३
३६० स्त्रियाम्	४।१।३	५९ स्वादिध्वसर्व	१।४।१७
७७ स्त्रियां च	७।१।९६	४७ स्वौजसमौद्	४।१।२

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि	सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः सूत्राणिः	सूत्राङ्काः
[ ह ]			
१६० ह एति	७।४।५२	२१४ हिनुमीना	८।४।१५
१७४ हनो वध	२।४।४२	२०६ हिंसायाम्	६।१।१४१
१७३ हन्तेर्जः	६।४।३६	१७२ हुक्षल्म्यो	६।४।१०१
२९५ हलदन्तात्सम	६।३।९	१५६ हुस्नुवो. सार्व	६।४।८७
२३२ हलन्ताच्च	१।२।१०	३२८ हेतुमनुष्ये	४।३।८१
६ हलन्त्यम्	१।३।३	२४० हेतुहेतुमतो	३।३।१५६
२६५ हलश्च	३।३।१२१	२२० हेतुमति च	३।१।२६
३६२ हलस्तद्धितस्य	६।४।१५०	३९ हे मपरे वा	८।३।२६
१२८ हलादि. शेषः	७।४।६०	३४२ हैयङ्गवीनम्	५।२।२३
१८९ हलि च	८।२।७७	८४ हो ढ.	८।२।३१
८९ हलि लोपः	७।२।११३	९२ हो हन्तेर्णिञ्जेषु	७।३।५४
४५ हलि सर्वेषाम्	८।३।२२	१४४ ह्यन्तक्षण	७।२।५
१९ हलोऽनन्तराः	१।१।७	५३ हस्वनद्यापो	७।१।५४
३०४ हलो यमा यमि	८।४।६४	६० हस्वस्य गुणः	७।३।१०८
२५२ हलः	६।४।२	२४४ हस्वस्य पिति	६।१।७१
२१५ हल. इनः सा	३।१।८३	१६८ हस्वादज्ञात्	८।२।२७
६२ हल्ङ्याभ्यो	६।१।६८	८० हस्वो नपुसके	१।२।४७
४४ हशि च	६।१।११४	१३९ हस्वं लघु	१।४।१०
		१२९ हस्वः	७।४।५९

इति लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थसूत्राणामकारादिवर्णानुक्रमसूची ।

अथ लघुकौस्तुभप्रश्नप्रदीपतः

प्रयोगलेखनप्रकारः ।

ब्रह्मर्षिः ।

ब्रह्मा ऋषिरित्यत्र 'आद्गुण' इत्यनेनाऽकारऋकारयोस्स्थाने अकारे गुणे 'उरण् रपरः' इति रपरे च ब्रह्मर्षिरिति सिद्धयति । पक्षे 'ऋत्यकः' इत्यनेन ह्योत्तरवर्त्याकारस्य ह्रस्वे प्रकृतिभावे च कृते ब्रह्म ऋषिरिति सिध्यति ।

उत्थानम् ।

उत् स्थानम्—इत्यत्र 'उदः स्यास्तम्भोः पूर्वस्य' इति पूर्वसवर्णः क्व स्यादित्याशङ्काया तस्मादित्युत्तरस्य, इत्यनेन स्थेत्यकारस्य प्राप्ते तं प्रवाध्य 'आदेः परस्य' इत्यनेन सकारस्य पूर्वसवर्णे यत्वे उद् य् थानम्' इति दशाया झरो झरीत्यनेन थलोपे 'खरिचेति दकारस्य तकारे तत्सिद्धिः ।

शिवो वन्द्यः ।

शिव सु वन्द्यः, इत्यत्र ससञ्जुषो रुः, इति सस्य रुत्वे हशि च, इत्यनेन रोरुत्वे 'आद्गुणः' इत्यनेन पूर्वपरयोः स्थाने गुणे च शिवो वन्द्यः' इति ।

मनोरथः ।

मनस् रथः—इत्यत्र 'ससञ्जुषो रुः' इत्यनेन सस्य रुत्वे कृते 'हशि चे' त्यनेन रोरुत्वे प्राप्ते 'रोरि' इत्यनेन च रस्य लोपे प्राप्ते अनयोर्मध्ये

कतरेण भाव्यमित्याशङ्क्याम् विप्रतिषेधे परं कार्यम् इति सूत्रबलेनात्र परत्वात् 'रोरि' इत्यनेन लोप एव प्राप्ते पूर्वत्रासिद्धमिति सूत्रेण हसि च इति सूत्रस्य सपादसप्ताध्यायीस्थत्वाद् 'रोरि' इत्यस्य च त्रिपादिस्थत्वात्, हसि च' इति सूत्रापेक्षया 'रोरि' इत्यस्याऽसिद्धत्वेन 'हसि चे' इत्यनेन रस्योत्वे 'आद्गुणः इति गुणे च कृते मनोरथ इति सिध्यति ।

**सख्युः, पत्युः, क्रोष्टुः, इति ।**

सखिशब्दात्प्रातिपदिकत्वेन ङसि, अनुबन्धस्येत्संशालोपे 'इको यणचि', इति यणि सख् य् अस् इति जाते 'ख्यत्यात्परस्य' इत्यकारस्योकारादेशे सस्य रत्वे विसर्गे च सख्युरिति ।

पतिशब्दात् पष्ठ्येकवचने ङसि विभक्तौ, अनुबन्धलोपे 'इको यणचि' इति यणादेशे 'ख्यत्यात्परस्य, - इत्यकारस्योकारे सस्य रत्वे विसर्ग च पत्युरिति ।

क्रोष्टुशब्दात् ङस् विभक्तौ 'लशक्वतद्धिते, इति ङकारस्येत्संशया लोपे विमोषा तृतीयादिष्वचि इत्यनेन क्रोष्टोस्तृज्ज्वावे ऋत उत् इति सूत्रेण ऋकाराकारयोः स्थाने उदादेशे रपरे च रात्स्येति सकारस्य लोपे रेफस्य विसर्गे क्रोष्टुरिति । पक्षे 'वेदिति' इति गुणे 'ङसिङसोश्चेति पूर्णरूपे सस्य रत्वे विसर्गे च क्रोष्टोः, इति सिद्ध्यति ।

**अयात् ।**

या धातोः 'लुङि'त्यनेन लुङि 'तिससञ्जी'त्यादिना लुङ् स्तिपि 'ल्लुङी'ति ल्लौ' 'ल्लेःसिच्' इति ल्लेः सिजादेशे 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वङ्दाचः, इत्यङागमे 'इत-चेति सूत्रेण तिप् इकारलोपे 'गातिस्यालुपाभूयः सिचः परस्मैपदेपु' इति सिचो लुकि अयादिति रूपम् ।

## एधाश्चके ।

एध् धातोः 'परोक्षे लिट्' इति लिटि अनुबन्धलोपे 'इजादेश्च युष्मतोऽनृच्छः' इति सूत्रेणामि कृते 'आमः' इति लिटो लुकि एध् आम् इति जाते 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इत्यनेन लिट्परककृञि अनुप्रयुक्ते एधाम् कृ लिट् इति जाते 'लिट्स्तञ्जयोरेशिरेच्' इति एशि कृते ञलोपे च जाते एधाम् कृ ए इत्यवस्थायाम् 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे 'उरत्' इत्यभ्यासऋकारस्थाने अकारे रपरे च 'हलादिः शेषः' इति शेष-हल्लोपे एधाम् क कृ ए इति जाते 'कुहोश्चुरित्यनेन कस्य चकारे मस्याऽनुत्कारे परसवणे' 'इको यणचि'ति यणि च कृते एधाश्चके इति सिद्धम् ।

## अवोढाम् ।

वह् धातोर्लुङि तसि च्लौ सिचि अनुबन्धलोपे 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' इति तसस्तामि 'लुङ्लुङ्लृङ्श्चङुदाचः' इत्यटि, अ वह् सु ताम् इति जाते 'झलो झलीति सलोपे 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे 'अप्रस्तथोर्धोऽधः' इति तस्य धत्वे 'ष्टुना ष्टुः' इति धस्य ढत्वे अ वढ् ढाम् इति जाते ढो ढे लोपः' इति ढलोपे 'सहिवहोरोदवर्णस्य' इति वकारोच्चरवर्तिनोऽकारस्यौ-कारे कृते अवोढाम् इति रूपम् ।

## पारदृश्वा ।

पारं दृष्टवान् इति विग्रहे 'दृशोः क्वनिप्' इति क्वनिपि 'हलन्त्यम्' इति पत्येत्संज्ञायाम् 'उपदेशोऽजनुनासिक इत्' इतीकारस्येत्संज्ञायाम् 'लशक्वतद्धिते' इति ककारस्येत्संज्ञाया 'तस्य लोपः' इत्यनेन पस्य इकारस्य कस्य च लोपे पारदृश् वन् इति जाते प्रातिपदिकत्वात्सौ हलङ्वादिना सोर्लोपे सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धाविति नान्तोपधाया दीर्घत्वे नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य, इति नलोपे च कृते पारदृश्वा इति सिद्धम् ॥

## गार्ग्यायणी ।

गार्ग्यशब्दात् प्राप्तां ष्फ तद्धित इति ष्फ प्रत्यये षः प्रत्ययस्येति प्रकारस्येत्संज्ञाया तस्य लोभ इति लोपे च 'आयनेयीनियः फढखल्लघां प्रत्ययादीनामिति सूत्रेण फस्यायनादेशो नस्य णत्वे यस्येति चेत्युकारलोपे गार्ग्यायण इति सम्भवे, षिद्गौरादिभ्यश्चेति डाषि डकारभकारयारित्संज्ञाया लोपे च यच्च भमिति भसंज्ञायाम् यस्येति चेति णकारोत्तरस्याकारस्य लोपे च कृते गार्ग्यायणीति जायते ।

## वस्त्रकीती ।

वस्त्रैः कृता या सा वस्त्रकीतीत्यत्र वस्त्रकीतिशब्दात् 'क्रीतात्करणपूर्वात्, इति डाषि डकारभकारयारित्संज्ञाया लोपे च यच्च भमिति भसंज्ञाया यस्येति चेति' अकारलोपे प्रातिपदिकत्वे हल्ङादिलोपे च सिद्धिः ।

## पौर्वशालः ।

पूर्वस्था शालाया भवः—इति विग्रहे 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इति तद्धितार्थे समासे सुपो लुकि पूर्वा शाला इति जाते 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' इत्यनेन पुंवद्भावे 'दिक्पूर्वपदात् संज्ञाया जः' इत्यनेन अप्रत्यये—अनुबन्धलोपे 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यनेन षकारात्तरवत्युङ्कारस्योत्तरवृद्धौ 'यस्येति च' इत्यनेन भसंज्ञकस्य लकारोत्तरवर्त्याकारस्य लोपे विभक्तिकाय च पौर्वशाल इति सिद्धम् ॥

## तवल्कारः ।

तव ल्कार इत्यवस्थायाम् आद्गुणः' इति पूर्वपरयोः स्थाने स्थानप्रयत्नसाम्यात् अल्पे गुणे उरण् रपरः इति लपरे च कृते तवल्कार इति ॥

## विष्ण इह ।

विष्णो इहेत्यवस्थायाम् एचोऽयवायावः इति सूत्रेण णकारोत्तरवर्तिनं ओकारस्य यथासंख्यमनुदेशः समानामिति साहाय्येनावदेशे विष्ण अव् इह इति दशायां लोपः आकल्यस्येति वकारलोपे कृते आद्गुण इति शास्त्रेण प्रातो गुणो न भवति पूर्वत्रासिद्धमिति शास्त्रेण सपादसताध्यायिनः, आद्गुण इति सूत्रदृष्ट्या त्रिपादिनो लोपः आकल्यस्येत्यस्यासिद्धत्वेन मध्ये वकारेण व्यवधानात्, तेन विष्ण इह इति । लोपाऽभावपक्षे तु विष्ण-विह इति रूपं जायते ।

## सञ्छम्भुरित्यादि ।

सन् शम्भुः इत्यत्र गि तुक् इत्यनेन पदान्तस्य नस्य तुकि अनुबन्धलोपे शङ्छोटि इत्यनेन शम्भुरिति शकारस्य छत्वे 'सन् त्छम्भुरिति जाते स्तोः श्चुना श्चुरिति तकारस्य श्चुत्वेन चकारे पुनस्तेनैव सूत्रेण नेकारस्य ञ्चुत्वेन अकारे अरो अरि सवर्ण इति चकारलोपे सञ्छम्भुरिति, चलोपामावे सञ्छम्भुरिति, छत्वाऽभावे तकारस्य चुत्वे सञ्छम्भुरिति, तुगभावपक्षे नस्य चुत्वेन अकारे सञ्छम्भुरिति एवं रूपचतुष्टयं भवति ।

## सखा ।

सखिशब्दात् प्रातिपदिकत्वेन सौ 'अनङ् सौ' इति सूत्रेणाऽनङि अनेकाल्शित्सर्वस्य, इत्यनेन सर्वस्य सखिशब्दस्य स्थाने प्राप्ते-तं प्रत्राय डिच्चेत्यनेनान्त्यखकारोत्तरवर्तीकारत्याऽनङि कृते अनुबन्धलोपे सखअन् सु इत्यवस्थायाम् 'अलोऽन्त्यात् पूर्वउपधा' इत्यनेनोपधासंज्ञाया 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ, इत्यनेन नान्तस्योपधाया दीर्घे 'उपदेशोऽजनुनासिक इत्' इत्यनेन सोरोरित्संज्ञाया 'तस्य लोपः, इति लोपे 'अपृक्त एकाल्

प्रत्ययः' इत्यनेन सस्याऽपृक्तसंज्ञायाः 'हल् ह्रस्वयो दीर्घात्सुतिस्त्वपृक्तं हल्' इत्यनेन सकारलोपे, 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपे च सखा-इति सिद्धम् ।

## मधोनः ।

मधवन्गन्दात् शसि शकारस्येत्संज्ञाया लोपे च 'श्वयुवमधोनाम-तद्धिते' इति सम्प्रसारणे 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'आद्गुणः'-इति गुणे सत्य रत्वे विसर्गे च मधोन इति दिक् ।

## गोपायाश्चकार ।

ऊकारेत्संज्ञकगुपधातोः 'गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः, इत्याय-प्रत्यये पुगन्तलवूपघस्य चेति गुणे च 'जाते' सनाद्यन्ता धातव इति गोपाय इत्यस्य धातुत्वे धातुत्वात् परोक्षे लिङिति लिटि गोपाय इत्यस्यानेकाप्त्वात् 'कास्यनेकाजाम् वक्तव्यः' इति वार्तिकेनामि अतो लोप इत्यकारलोपे गोपाय आम् लिट् इति जाते हलन्त्यमित्यनेनामो मकारस्येत्संज्ञायाः तस्य लोप इति तस्य लोपे च प्राप्ते आस्कासोराम् विधानान्मस्येत्वाभावेन लोपामावे 'आमः' इति लिटो लुकि गोपायाम् इति जाते 'वृश्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति सूत्रेण लिट्प्रकृज्जोऽनुप्रयोगे लिट्स्तिपि तिपो णलि-अनुबन्धलोपे गोपायाम् कृ अ इति जाते 'लिटि धातोरनभ्यासस्ये'ति कृज्जो द्वित्वे पूर्वोऽभ्यास इति पूर्वस्य कृज्जोऽभ्याससंज्ञायाम् उरदिति अभ्यासकृकारस्य अकारे उरण्परं इति रपरे हलादिः शेष इति रेफस्य लोपे, कुहोश्चुरिति पूर्वस्य ककारस्य चकारे मोऽनुस्वार इति मकारस्यानुस्वारे वापदान्तस्येति परसवर्णे-अचोऽङिति इति वृद्धौ उरण्पर इति रपरत्वे तत्सिद्धिः ।



## अचीकमत ।

कम धातोः सकाशात् 'कमेणिङ्' इत्यनेन णिङि 'अत उधायाः' इति वृद्धौ ततः कामीत्यस्य धातुसंज्ञायां 'लुङ्' चेति लुङि तस्य तादेशे 'ल्लि लुङी'ति ल्लौ णिश्रितृलुभ्यः कर्तरि चङ् इति ल्लेश्चङि—अनुबन्ध-स्येत्संज्ञाया लोपे च काम् इ अत इति स्थिते 'णेगनिटि' इति णेलोपे 'णौ चङयुगधाया ह्रस्वः' इत्युपधाह्रस्वे कृते चङीत्यनेन कमित्यस्य द्वित्वे 'हलादिः शेषः' इति मलापे क काम् अत इति दशायां 'कुहोञ्चु' रित्यनेनाऽभ्यास-ककारस्य चकारे 'सन्वल्लुनि चङ्परेऽनगलापे' इत्यनेन सन्वद्भावे 'सन्व-तः' इत्यभ्यासाकारस्येकारे, 'दीर्घो लघोः' इत्यनेनाभ्यासेकारस्य दीर्घे 'लुङ्लङ्ल्लङ्क्ष्वङ्मुदाचः' इत्यनेन अडागमे च-अचीकमत-इति सिद्धम् ।

## प्राच्छति ।

प्र ऋच्छति इत्यत्र उपसर्गाः क्रियायोगे इति सूत्रेण प्र इत्यत्योप-सर्गसंज्ञायामुपसर्गादिति धातौ इति पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धौ उरण् रपर इति रपरत्वे च प्राच्छति-इति सिद्धम् ।

## गवाग्रम् ।

गो अग्रमिति विग्रहे सर्वत्र विभाषायाः इति सूत्रेण प्राप्तं प्रकृति-स्मार्त्वं परत्वात् प्रवाच्य अवङ् स्फोटायनस्येति-अवङि अनुबन्धस्य ङकारस्ये-त्संज्ञाया लोपे च 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति सूत्रेण वकारोत्तरवर्त्यकार-अग्रे-धटकाद्याऽकारयोः स्थाने दीर्घे गवाग्रम् इति सिद्धम् ।

## हरौ ।

हरिशब्दात् प्रातिपदिकत्वे डि विभक्तौ-अनुबन्धलोपे 'शेषो ध्यसखि,  
इति हरीत्यस्य प्रिसंज्ञायाम् 'अचघेः', इत्यनेन डेरौकारादेशे प्रिसंज्ञकस्ये-  
कारस्य चाऽकारादेशे वृद्धौ च हराविति साधु ।

## अनङ्वान् ।

अनङ्गुह्वात् सुविभक्तौ 'मिदचोऽन्त्यात्परः, इतिशास्त्रमहिम्ना  
चतुरेनङ्गुहोराभुदात्तः, इतिसूत्रेणोकारात् परे आमि कृते अनुबन्धलोपे  
'सावनङ्गुहः' इति-आमः परे नुमि कृते-उकारमकारयोरित्संज्ञायां लोपे  
च-अनङ्गुआन् ह्नु इति जाते उकारलोपे 'हृष्टयाभ्यः' इत्यादिसूत्रेण  
सुस्यलोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति हकारलोपे च कृते प्राप्तस्य 'न लोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य' इति शास्त्रस्य दृष्ट्या 'पूर्वनासिद्धम्' इतिशास्त्रबलेन  
संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वात् नलोपाऽभावे 'इको यणचि' इति सूत्रेण ङका-  
रोत्तरवर्त्युकारस्य वकारे अनङ्गवानिति सिद्धम् ।

## आभ्याम् ।

इदंशब्दात् म्याम् विभक्तौ 'त्यदादीनामः' इति मस्यात्वे अतो  
गुणे, इति पररूपे, हलिलोपः, इति-इद्भागस्य लोपेप्राप्ते 'अलोऽन्त्यस्य,  
इति सूत्रेण दस्यैव लोपः स्यात्-इत्याशङ्क्याम् 'नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरन-  
भ्यासविकारे' इति परिभाषया अलोऽन्त्यस्याऽप्राप्तौ-इद्भागस्यैव लोपे-अव-  
शिष्टाकारस्य 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इतिशास्त्रसाहाय्येन सुपि च इति सूत्रेण  
दीर्घत्वे आन्यामिति रूपं जातम् ।

## अमीभिः ।

अदस्र्शब्दात् तृतीयाबहुवचने भिसि समागताया 'त्यदादीनामः'  
इति सस्यात्वे 'अतो गुणे' इतिररूपे च कृते नेदमदसोरिति ऐस्निपेधे  
'बहुवचने झल्ये'दिति सूत्रेणाकरस्यैत्वे 'एत ईद्रुवचने' इत्येकारस्यैत्वे  
दकारस्य मकारे 'ससजुपो रुः' इति सकारस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गे च कृते  
अमीभिरिति सिद्धम् ।

## अशिश्नियत् ।

शिधातोर्लुङि तिसस्त्रीति लुङ्स्तिपि 'च्लि लुटि' इति लौ णिश्रि-  
दुश्रुभ्यः कर्तरि चङ् इति चङि अनुबन्धलोपे च श्रि-अ-ति इति स्थिते  
'चङि' इति श्रित्यस्य द्वित्वे 'हिलादिः शेषः' इति रलोपे च कृते शिश्रि  
अ ति इति जाते 'लुङ्लङ्लृङ्स्त्वङुदाचः' इत्यटि 'अन्निश्नुधातुभ्रुवा  
य्वोरियङुवडौ, इति इकारस्येयडादेशे 'इतरच' इति तिप इकारलोपे  
अशिश्नियत् इति सिद्धयति ।

## अनुरूपम् ।

रूपस्य योग्यम् अनुरूपमिति विग्रहे 'अव्ययं विभक्ती'त्यादि सूत्रेण  
समासे 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इत्यनेन अनु-इत्यस्योपसर्जन-  
संज्ञायाम् 'उपसर्जनं पूर्वम्,' इत्यनेनोपेत्यस्य प्राक्प्रेयोगे 'सुपो धातुप्रा-  
तिपदिकयोः' इत्यनेन सुपोलुकि ततः प्रातिपदिकत्वेन सौ, अनुबन्धलोपे  
'अव्ययादाप्सुपः' इति सोर्लुकि प्राते 'नाव्ययीभावादतोऽस्त्वपञ्चम्या'  
इत्यनेनामि 'अमिपूर्वः' इति पूर्वरूपे अनुरूपमितिसिद्धम् ।

## जनमेजयः ।

जनान् एजयति इति विग्रहे णिजन्तएजिधातोः 'एजेः खश्' इति खशि खशयोर्लोपे 'कर्त्तरि श'त्रिति अपि अनुबन्धलोपे कर्तृकर्मणोरित्यादिना कर्मणि पष्ठ्यां समासेन प्रातिपदिकत्वात् सुपो लोपे 'अतो गुणे' इति परस्मै 'अवर्द्धिपजन्तस्य मुम्' इति मुभि उकारमकारयोर्लोपे जनम् एज् इ अ इति जाते 'सार्वधातुकार्यधातुकयोः' इति सूत्रेण णिच हकारस्य गुणे 'एचोयवा-यावः' इति एकारस्यायादेशे विभक्तिकाव्यं च कृते जनमेजय इति सिद्धम् ।

## अहर्गणः ।

अहन् गण-इत्यवस्थायां 'रोः सुवि' इति सूत्रेण सम्पूर्णस्याऽहन् शब्दस्य क्त्वे प्राते 'अलोऽन्त्यस्य' इति परिभाषासूत्रेण अन्त्यनकारस्य क्त्वे अनुबन्धलोपे अहर्गण इति सिद्धम् ।

## बहुश्रेयस्याम् ।

बहुश्रेयसीशब्दात् प्रातिपदिकत्वेन डि विभक्तौ ङकारस्येत्संज्ञाया लोपे च 'यूस्याख्यौनदी, इति सूत्रेण बहुश्रेयसीत्यस्य नदीसंज्ञायाम् 'आण् नद्याः, इत्यादि च 'डेराम्नद्याम्नीभ्य इति डेरामि 'इकोयणची'ति यणादेशे वृद्धौ च बहुश्रेयस्यामिति सिद्धम् ।

## पन्थाः ।

पथिनुशब्दात् सौ 'पथिमथ्यसुक्षामात्' इत्यनेननकारस्यात्वे 'इतो-त्सर्वनामस्थाने' इति थकारोत्तरवर्तीकारस्याकारे 'थो न्य.' इति थस्य न्या-

देशे 'अः' सवर्णेदीर्घः इति दीर्घं तु इत्यस्योच्चारण्यत्वात् लोपेन नम्य  
रुत्वे विसर्गे पन्था इति जातम् ।

### प्राचः ।

प्र पूर्वकात् अच्-धातोः विनिति जन्मिभक्तौ 'अनिदितां एव उप-  
धायाः कृत्ति, इति सूत्रेण नम्य लोपे 'अचः' इत्यनेनापारलोपे, चो, इति  
पूर्वस्वाणो दीर्घं प्राच्-जसु इति दजायां अन्येत्तजायां लोपे न मकारस्य रुत्वे  
विसर्गे च प्राचः—इति साधु ।

### अचूचुरत् ।

चुर-धातोः 'सत्पापपात्रे'त्वादिनासूत्रेण निचि- 'पुनस्त-चूचुरत् न'  
इत्यनेन गुणे 'चोरि—इत्यस्य धातुसंज्ञाया 'धातुत्वान्मुक्तिं कृत्स्तिपि अज-  
गमे क्लौ णिश्रिष्टुभ्यः कर्तरि च-इत्यनेन क्लेकृत्—अनुबन्धलोपे 'इत्त-  
श्चे'त्यनेन इवारलोपे 'णिरनिटि' इत्यनेन णेलोपे णौच-इत्यावातस्यः, इत्य-  
नेन उपधाह-वे 'चि' इति द्वित्वे अभ्यासादिवाचं 'दीर्घो लघोः' इत्यनेना-  
भ्यासस्य दीर्घं अचूचुरदिति जातम् ।

### रूपवद्भायः ।

रूपवती भार्या यस्य इति विग्रहे 'अनेकमन्यपदाये' इत्यनेन समासे  
समासात् मुपो लुकि 'स्त्रियाः पुंनद्रापितपुंस्कादनू- समानाधिकरणे क्रिया-  
भपूरणीप्रियादिषु' इति रूपवतीत्यस्य पुंनद्रावे 'गोत्रियोक्तसज्जनस्य' इति  
भार्या इत्यस्य वकारोत्तरवर्त्याकारस्य ह्रस्वे स्वाद्युत्पत्तौ विभक्तिकार्यं रूपवद्-  
भार्याः—इति जातम् ।

## एतन्मुरारिः ।

एतद् मुरारिः-इत्यत्र 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिकोवा, इत्यनेन स्थान-  
प्रयत्नैक्यात् दकारस्य मकारे एतन्मुरारिरिति, अनुनासिकाऽभावपक्षे एतद्-  
मुरारिरिति च सिध्यति ।

## क्रोष्टुः ।

क्रोष्टु शब्दात् ङसि विभक्तौ अनुबन्धकार्ये 'विभाषातृतीयादिष्वचि,  
इत्यनेन क्रोष्टु-इत्यस्य वृज्वद्भावे क्रोष्टु अस् इति स्थिते 'ऋत् उत्, इति  
पूर्वपरयोस्त्वैररे च 'शत्सस्य, इति सस्य लोपे 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'  
इत्यनेन रस्य विसर्गे क्रोष्टुः इति । 'वृज्वद्भावाऽभावपक्षे धिसंज्ञाया  
'घेडि' इति गुणे 'ङसिङ सोश्च, इति पूर्वरूपे क्रोष्टोः-इति रूपं जायते ।

## कुम्भकारः ।

कुम्भं करोतीति विग्रहे 'कर्मण्यण्' इत्यनेनाऽणि णकारस्येत्संज्ञाया  
लोपे कर्मणि षष्ठ्या च उपपदसमासे प्रातिपदिकसंज्ञाया प्रातिपदिकत्वेन  
'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' इत्यनेन सुपोऽङ्कि कुम्भ कृ अ इति स्थिते 'अचो-  
ऽङिति इत्यनेन ऋ-इत्यस्यवृद्धौ रपरत्वे प्रातिपदिकत्वे विभक्तिकार्ये च  
कुम्भकार इति सिद्धम् ।

## चित्रगुः ।

चित्रा गावो यस्य इति विग्रहे 'अनेकमन्यपदार्थे, इत्यनेन बहु-  
व्रीहिसमासे कृत्तद्धितेतिप्रातिपदिकत्वात् 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' इति सुपो-  
ऽङ्कि 'स्त्रिया. पुंवद्भाषितपुंस्कादन्वृत् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु,  
इत्यनेन चित्रेत्यस्य पुंवद्भावे गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य, इत्यनेन गो इत्यस्य

ओकारस्य ह्रस्वे प्रातिपदिकत्वेन 'स्वाद्युत्पत्तौ विप्रक्तिः कार्यं च चित्रगुः  
इति साधु ।

### यूनः ।

युवन् शब्दात् द्वितीयावहुवचने शसि समागते लशक्वतद्धिते इति  
रास्येत्संज्ञाया तस्य लोप इति लोपे च कृते युवन् अस् इति स्थिते स्वयुव-  
मघोनामतद्धिते इति वकारस्योकारे सम्प्रसारणे यु उ अन् अस् इति जाते  
सम्प्रसारणाच्चेति उकाराकारयोः स्थाने पूर्वरूपे 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति  
दीर्घे यून अस् इति दशाया पुनरपि स्वयुवमघोनेत्यादिना वकारस्य सम्प्र-  
सारणे प्राते न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणमिति प्रातस्य सम्प्रसारणस्य निषेधे  
सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गे च कृते यून इति रूपं जायते ।

### षट्सन्तः ।

षट्सन्तः—इत्यत्र 'डःसिधुट्, इत्यनेन सस्य घुटि 'आद्यन्तौ टकितौ,  
इति ब्रलेन सस्यादौ कृते षट्षुट्सन्त इति स्थिते—इत्सञ्ज्ञालोपयोश्च कृता-  
योः 'खरिच' इत्यनेन धकारस्य तकारे पुनः डस्य टत्वे च कृते षट्सन्त  
इति साधु ।

इयं प्रक्रियाऽत्रत्या भाषा च नाऽस्माकमिति अत्रत्यसूक्ष्मबुद्धीना न वयं  
दोषभाज इति तु गौडाः ।

१९०१ १९३७

## लघुकौमुद्याः ३७ वर्षाणां प्रश्नपत्राणि

१९०१

- १ प्राच्छेति, गवाग्रम्, रामश्चिनोति, वाग्धरिः, हरीरम्यः कथमेतेषा साधुत्वम् ।
- २ हरौ, मत्याम्, दध्नि, एतानि रूपाणि साधयत ।
- ३ अनड्वान्, आभ्याम्, अष्टौ, अमीभिः एतेषा सिद्धिप्रकारः प्रदर्शनीयः ।
- ४ बभूविथ, शृण्वः, अग्निश्रियत्, आनक्, गृहाण, अवीभवत्, एतेषा साधुत्वं प्रदर्शयत ।
- ५ अनुरूपम्, महादेवः, ज्यायान्, एतेषा साधुत्वमुच्यताम् ।
- ६ जनमेजयः, द्रोणः, अनयोः साधुत्वं ब्रूत ।
- ७ कारिका, मातुलानी । अनयोः सिद्धिं प्रदर्शयत ।

१९०२

- १ कृष्णार्धिः, भगवाँस्तनोति, अहर्गणः, एष हसति—एतानि रूपाणि साधयत ।
- २ सवेधाम्, सखा, बहुश्रेयस्याम्, तिसृणाम्, श्रुक्षु, पन्थाः, प्राचः, यूनाम् । एते साध्याः ।
- ३ गोपायाञ्चकार, अयुः, इयाज, एधि, अजनि, असात्, अचूचुरत् । एषा सिद्धिं प्रदर्शयत ।
- ४ भाविता, अमाजि, अनयोः साधुत्वमुच्यताम् ।
- ५ सुशर्मा । पञ्चमानं चैत्रं पश्य । अनयोः साधुत्वं ब्रूत ।
- ६ हरित्रातः, रूपवद्भार्यः, द्वैमातुरः, तावकीनः, त्रिलोकी, चन्द्रमुखी ।  
एतेषां शब्दानां साधनं स्वाधीतव्याकरणानुसारेण कार्यम् ।



## १९०३

- १ विष्णोऽव, एतन्मुरारिः, सञ्छमुः, हरिश्शेते । कथमेतेषां साधुत्वम् ? ।
- २ हरिणा, सखा, क्रोष्टुः, दध्ना । एतानि रूपाणि साधयत ।
- ३ अनड्वान्, असौ, पुमान्, अमूषाम् । एषां सिद्धिप्रकारः प्रदर्शनीयः ।
- ४ अभूवन्, जन्मतुः, वोढा, जहि, अजनि, अगिनट् । एषां साधुत्वं प्रदर्शयत ।
- ५ राजयुत्वा, क्षामः । अनयोः साधुत्वमुच्यताम् ।
- ६ कुम्भकारः, चित्रगुः, गार्ग्यः, मेघाव्री । एषा साधुत्वं ब्रूत ।
- ७ गोपालिका, आचार्यानी । एते साध्वौ ।

## १९०४

- १ प्रौढः, प्रार्च्छति, तच्छास्त्रम्, एष विष्णुः । एतानि साध्यानि ।
- २ हरौ, पत्युः, सर्वस्याम्, धुट्पु, अष्टानाम्, चतसृणाम्, युष्माकम् ।  
एषा साधुत्वं प्रदर्शयत ।
- ३ भवेयुः, उवोढ, वत्स्यति, शेरते, अत्रोधि, अकार्षीत् एषा शब्दानां साधनं  
कार्यम् ।
- ४ कुरुचरः, भिन्नः, अन्नरूपम्, अनश्वः, पौरन्दरिः, तावकीनः, एषा  
साधुत्वं विग्रहवाक्यानि च ब्रूत ।
- ५ पाचिका, पचन्ती, चन्द्रमुखी, एषा सिद्धिं प्रदर्शयत । स्वपरिगृहीत-  
व्याकरणानुसारेणोचराणि कार्याणि ।

## १९०५

- १ कृष्णार्विः, सञ्छम्मुः, मनोरथः, उत्थानम् । एतानि रूपाणि साधयत ।
- २ सवेषाम्, सत्याम्, दध्ना, पन्थाः, तुभ्यम्, धीमान्, अहोभ्याम् । एषा  
साधुत्वं प्रदर्शयत ।
- ३ अभवन्, अशिश्रियत्, ईयतुः, अजुह्वुः, बुभूषति । एषां सिद्धिप्रकारः  
प्रदर्शनीयः ।

४ प्रियंवदः, उपकृष्णम्, लूनः, वीरपुरुषकः, गार्ग्यः, वैयाकरणः । एषां साधुत्वं विग्रहवाक्यानि च ब्रूत ।

५ मृद्धी, चन्द्रमुखी, वरुणानी । एषा सिद्धिं प्रदर्शयत ।

स्वाधीतव्याकरणानुसारेणाक्षराणि लेख्यानि ।

१९०६

१ हरेज्व, गवेन्द्रः, भो देवाः, मनोरथः । एतानि साधयत ।

२ सख्युः, क्रोष्टुः, दधनि, धुक्षु, मधोनः, महान्, अस्थाः । एषां साधुत्वं ब्रूत ।

३ बभूव ईजतुः, अधिजगे, जुहुषि, गृहाण । एषा सिद्धिप्रकारः प्रदर्शनीय ।

४ राजयुध्वा, हित्वा, अनश्वः, चित्रगुः, वैयाकरणः, तावकीनः, एषां साधुत्वं विग्रहवाक्यानि च ब्रूत ।

५ पचन्ती, सर्पिका, सुमुखी, एषा सिद्धिं प्रदर्शयत ।

१९०७

१ कृष्णार्द्धिः, गवाग्रम्, सञ्छम्भुः, शिवोज्ज्वः । एतानि साधयत ।

२ सखा, बहुश्रेयस्याम्, सर्वस्याम्, अस्मै, यूतः, उदीचः, पुमान् । एषा साधुत्वं ब्रूत ।

३ अभूवम्, गापायाञ्चकार, अधिजगे, विभति, गृहाण । एतान् साधयत ।

४ जनसेजयः, उपकृष्णम्, महाराजः, औपगवः, लघोयान् । एषा साधुत्वं विग्रहवाक्यानि च प्रदर्शयत ।

१९०८

१ प्रार्छति, तच्छिवः, प्राङ्मुखः, मनोरथः । एतानि रूपाणि साधयत ।

२ हरेः, क्रोष्टुः, मत्याम्, पन्थाः, अध्वानाम्, अमुष्यै । एषा साधुत्वं प्रदर्शयत ।

३ प्रभवणि, एषाञ्चक्रे, ईजतु, भुञ्जाष्ट, अविमः, वृर्गात्, एषा सिद्धिप्रकारः प्रदर्शनीयः ।

४ शिष्यः, पचमानं चैत्रं पश्य, महाराजः, चित्रगुः, सैनापत्यम्, राजन्यः ।

एषा साधुत्वं विग्रहवाक्यानि च ब्रूत ।

५ गोपी, गार्ग्यायणी, अतिकेशी । एषा सिद्धिं प्रदर्शयत ।

१९०९

- १ कृष्णर्षिः, षट्सन्तः, पुंस्कोकिलः, शिवोऽर्च्यः। एतानि रूपाणि साधयत ।
- २ हरे, बहुश्रेयस्याम्, दध्ना, मधवान्, तिरुश्चः, एषा सिद्धिं प्रदर्शयत ।
- ३ बभ्रुव, अचीकमत, अधिजगे, बभ्रष्ठ, एषां सिद्धिप्रकारः प्रदर्शनीयः ।
- ४ देयम्, सरसिजम्, अव्यात्मम्, पीताम्बरः, गार्ग्यायणः, ज्यायान्, एषा साधुत्वं विग्रहवाक्यानि च ब्रूत ।
- ५ गार्गी, चन्द्रमुखी, नारी, एतानि रूपाणि साधयत ।

१९१०

- १ उपैधते, उत्थानम्, भो देवाः, एतानि रूपाणि साधयत ।
- २ सर्वेषाम्, सखा, श्रियै, पन्याः, पुमान् । एषां साधुत्वं प्रदर्शयत ।
- ३ अगौताम्, ईयतुः, अविमः, अक्राक्षीत् । एषा सिद्धिप्रकारः प्रदर्शनीयः ।
- ४ जनमेजयः, रागाः, उपकृष्णम्, व्यूढोरस्कः, सैनापत्यम्, भूयिष्ठः । एषा साधुत्वं विग्रहवाक्यानि च ब्रूत ।
- ५ सर्विका, शर्वाणी, दाक्षी । एतानि रूपाणि साधयत ।

१९११

- १ गव्यूतिः, त्रवल्कारः, प्रेजते, उपैति, किम्बुक्तम्, विद्धोऽस्ति खति, सन्तः, नैः पाहि, चकिंस्त्रायस्व, एष विष्णुः, सैष दागरथी रामः, एतेषा सन्धि-विश्लेषः कार्यः । अत्र सूत्राणामुपस्थापनमनपेक्षितम् ।

- २ 'प्रश्नः' इत्यत्र कथं न इश्चुत्वम् ? 'सम्राट्' इत्यत्र मस्य कथं नानुस्वारः ? 'पट्ते' इत्यत्र कथं न षटुत्वम् ? 'त आगच्छन्ति' इत्यत्र च कथं न स्वरसन्धिः ?

- ३ उमशब्दस्य सर्वादिगणे कथं पाठः ? ।

- ४ त्रयः, प्रध्य, प्ररीणि, लिट्सु, विश्वाराट् । एतेषा साधुत्वं प्रदर्शनीयम् ।
- ५ देव, अनडुह्, मातुल, च्वशुर, नर, शकट, युवन्, एतेषां स्त्रिया प्रथ-मैकवचने रूपाणि ब्रूत ।

- ६ अरण्यानी, यवानी, एनी, एतानि साधयत ।  
 ७ श्रेष्ठः, एतर्हि, कदा, त्रैणम्, प्रावृषेण्यम्, एतानि साधयत ।  
 ८ सुराजा, द्रव्यकुलम्, भूतपूर्वः, दुर्यवनम्, नखनिर्मित्रम्, पञ्चगवम्,  
 अब्राह्मणः, स्त्रीप्रमाणः, जलजाक्षी, एतेषा विग्रहवाक्यानि प्रदर्शयानि ।  
 ९ मा स्म भूः, जक्षिम, अविभक्तः, व्यत्स्यति, मदीष्ट, दीयते, जरीयहते ।  
 एतानि साधयत ।  
 १० मिदेलिमाः, दानीयाः, कृशः, पक्वः, जगन्वान्, वराकः, दर्शकः, पाकः,  
 वेपथुः, सम्पत्तिः । एतेषां प्रकृतिप्रत्ययविश्लेषः कार्यः ।

१९१२

- १ गो—अग्रम् इति स्मिते कानि सन्धिकार्याणि प्राप्नुवन्ति ? । कृतेषु  
 सन्धिकार्येषु कानि चास्य रूपाणि जायन्ते ।  
 २ अद्रिः, मद्यम्, भृष्टः, अतिचम्पाः । एतानि साधयत ।  
 ३ धिसंज्ञाकार्याणि सोदाहरणानि ब्रूत ।  
 ४ कण्ठेकालः, धनश्यामः, यूपदारु, अधिहरि । एतेषा विग्रहवाक्यानि साधक-  
 सूत्राणि च ब्रूत ।  
 ५ भूयिष्ठः, कथम्, भ्रदिमा, पाणिनीयम्, एतेषा प्रकृतिप्रत्ययविश्लेषः कार्यः ।  
 ७ चिकीर्षा, यशः, कालिम्मन्या, अस्तानि, बीभूयुः । एतान् साधयत ।

१९१३

- १ श्वश्रुः, मानुषी, शकटी, मन्दा, एतानि साधयत ।  
 २ पितरौ, प्रपर्णः, राजदन्तः, अतिमालः । एतेषा विग्रहवाक्यानि साधक-  
 सूत्राणि च ब्रूत ।  
 ३ श्रेवान्, कर्हि, अतः, अर्णवः, ह्यङ्गवीनम् । एतेषां प्रकृतिप्रत्ययविश्लेषः  
 कार्यः ।  
 ४ 'सुधा क्षीरनिधिं मन्नाति' इत्यस्य गौणकर्मत्वविवक्षाया 'सुधाम् इत्यस्य'  
 किरूपं भविष्यति । २

- ५ पाकः, स्तोत्रम्, जगन्वान्, अदायि, अशिनट्, एतानि साधयत ।  
 ६ 'आसेतसिचो ऽपृक्ते', एति सूत्रे 'अस्ति', इत्यस्य कोऽर्थः ।  
 ७ नदीसंज्ञाकार्याणि सोदाहरणानि ब्रूत ।  
 ८ पुंस्कोकिलः, किम् हलयति, तच्छिवः । विष्ण इति । कर्कन्धु । एतेषां  
 सन्धिविश्लेषः कार्यः ।

१९१४

- १ गव्यूतिः । उपैधते । उत्थानम् । तच्छिवः । एतानि साधयत ।  
 २ सखा । पत्युः । सर्वस्याम् । जरसः । श्रीपम् । हे अनड्वन् । यूनः ।  
 युष्माकम् । एतानि साधयानि ।  
 ३ अधिहरि । अभूवन् । ऐधिद्वम् । वर्त्यति । अजुह्वुः । एतानि साधयत  
 ४ कुश्चरः । यशस्करी । अनश्वः । उपकुष्णम् । गार्ग्यः । एतानि साधयत  
 ५ गौरी । मृद्वी । गोपी । सुमुखी । एतेषां सिद्धिं प्रदर्शयत ।

१९१५

- १ यवनानी, रोहिणी, मन्दा, गौरमुखा । एतानि साधयत ।  
 ३ बहुपदुः, उच्चकैः, क्व, प्रथिमा, अधार्मिकः । एषा प्रकृतिप्रत्ययविश्लेषः  
 कार्यः ।  
 ३ युक्तयोगः, अहोरात्रः, शाकपार्थिवः, दुर्यवनम्, शङ्कुलाखण्डः । तेषु  
 विग्रहवाक्यानि साधारणसूत्राणि च ब्रूत ।  
 ४ आधारमेदान् सोदाहरणान् प्रदर्शय ।  
 ५ 'षष्ठी शेषे' इति 'शेष' इत्यस्य कोऽर्थः ? ।  
 ६ दुष्करः, निकायः, पारदृश्वा, अविस्ते, अरुणत्, आनर्च । एतानि साधयत  
 ७ पयः, एतयोः, अनडुद्म्याम्, श्रियाम् । एतानि साधयत ।  
 ८ 'विष्णो इति इति स्थिते कानि रूपाणि सिध्यन्ति ? ।  
 ९ के कदा ग्रन्थसंज्ञा प्राप्नुवन्ति ? किञ्च तत्संज्ञाफलम् ? ।

१९१६

- १ यशस्करी, जनमेजयः, प्रियंवदः, उष्णभोजी, पण्डितम्मन्यः । एतानि साधयत ।
- २ स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः, कदागमिष्यसि, एष गच्छामि, यजति युधिष्ठिरः, पुत्रमध्यापयेद् भवान्, एषा साधुत्वमुपपादनीयम् ।
- ३ पुत्रीयति, कृष्णति, वरीवृताञ्चक्रे । एतान्यपि साधयत ।
- ४ भयम्, कापेयम्, भवनम्, ऊरुदन्तम्, इयान् । एषा प्रकृतिप्रत्यय-विश्लेषः कार्यः ।
- ५ चित्रगुः, व्याघ्रपात्, आचार्यः, निष्कौशाम्बिः, पूर्वकायः । एषा विग्रह-वाक्यानि साधकसूत्राणि च ब्रूत ।
- ६ गव्यूतिः, प्रौहः, सन्तः, हरीरम्यः, संस्कर्ता । एषा सन्धिविश्लेषः कार्यः । नून-पाहि इति स्थिते कानि रूपाणि सिध्यन्ति ? ।
- ८ निर्जर, सर्व, हरि, मति, विश्वपा, श्री-एषा द्विद्विमक्तिषु कानि रूपाणि भवन्ति ? ।

१९१७

- १ गवाग्रम्, उत्तमनम्, सञ्जम्भुः, मनोरथः, एषु सन्धिकार्याणि ब्रूत ।
- २ विश्वपः क्रोष्टुः सुधिया, महान् एतेषा सिद्धिं लिखत ।
- ३ अमवन् अगोपीत् अध्यगीष्ट अचकथत, एतानि साधयत ।
- ४ अतिष्ठिपत्, वाग्रजाञ्चक्रे, राजानति, आरिता । एषा साधुत्वं विशदं निरूपयत ।
- ५ ग्लानः, वैयाकरणः, त्वचिष्टः । एषु विशेषकार्याणि निर्दिशत ।
- ६ गाङ्ग, शुक्लीकृत्य, जलजाक्षा, रम्यपथः, एनी । एतेषा सिद्धिप्रकारः प्रदर्शनीयः ।

१९१८

- १ कृष्णर्धिः, गङ्गे अमू, तच्छिवः, शिवोऽर्च्यः, उत्थानम्, सञ्जम्भुः, सन्तः, कथमेते साधवः ? ।
- २ हरिमतिदधियुष्मच्छन्दाना चतुर्थी पञ्चमीसप्तम्येकवचनेषु कीदृशानि रूपाणि ? कथञ्च तत्सिद्धिः ? ।

३ अचीकमत, अचकमत, अगात्, एषा सिद्धिः ? । जिघत्सति, वरी-  
वृत्यते, सस्वौ, हरिसुपकुरुते । एषु विशेषकार्याणि प्रदर्शयत ।

४ गार्ग्यः, राजयुध्वा, अत्र कः प्रत्ययः ? सन् द्विजः, प्राट्, स्तोत्रम्, क्ष्निः,  
स्मारं स्मारं नमति शिवम् । कथमेतेषा साधुत्वम् ? ।

५ गार्ग्यः, द्वैमातुरः, रूपवद्भार्यः एषां सिद्धिप्रकारः कः ? कश्च विग्रहः ? ।

६ गार्गी, गोपी, शर्वाणी, दाक्षी । एतानि रूपाणि साधयत ।

१९१९

१ तवल्कारः, विष्ण इह, सुखार्तः । चक्रिस्त्रायस्व, सञ्जम्भुः, एतानि रूपाणि  
साधयत ।

२ सर्वेषाम्, सखा, श्रियै, पुमान्, पन्थाः, कतरत्, अनेन, मवोनः, अमीषु ।  
कथमेते साधवः ? ।

३ अगौप्ताम्, ईयतुः, अजुह्वुः, चिकाय, अक्राक्षीत्, वरीवृत्यते, पथीनति,  
अत्रीभवत् । एतेषां साधनप्रकारः प्रदर्शनीयः ।

४ जनमेजयः, सुकरः, रागः, सैनापत्यम्, तावकीनः, वैयाकरणः, उपकृष्णम्,  
अनखः, व्यूढोरस्कः । कथमेतेषा साधुत्वं ? कश्च विग्रहः ।

५ सर्विका, चन्द्रमुखी, युवतिः, गङ्गीस्यात्, सर्वस्मिन्नात्मास्ति । एते प्रयोगाः  
साधनीयाः ।

१९२०

१ अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः, तपरस्तत्कालस्य, इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य, ह्रस्वश्च  
निपात एकाजनाङ्, एतेषामुदाहरणप्रदर्शनपुरस्सरमर्थं लिख ।

२ नृः पाहि, रामाय, सर्वस्मै, जरसौ, विश्वपः सुपदः, लिट्त्सु, एते प्रयोगाः  
साधनीयाः ।

३ रमायाः, सर्वस्याः, ज्ञानानि, मवोनः, यज्वनः, वृत्रहणौ, विदुषः, पिपठीः,  
एतानि साधय ।

४ एधाचक्रे, अभूत्, अव्याचीत्, अभ्राक्षीत्, अमार्क्षीत्, अभृक्षत्,  
उपस्किरति, भाविता । भविता । एतेषा साधनप्रक्रिया वक्तव्या ।

५ गान्धनावक्षेपणसेवेनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृजः । एतत्सूत्रा-  
र्थोदाहरणानि प्रदर्शय ।

६ अङ्कुलाखण्डः, अक्षगौण्डः, नखनिर्मितः, गोहितम्, पञ्चगवधनः । एतेषां समासविधायकानि सूत्राणि वद ।

७ 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म', 'कर्तृकर्मणोः कृति' गतिबुद्धि—'कर्मणा यममि-  
त्रैति'—'एतेषामर्थं सोदाहरणं लिख ।

८ सारीचिकम्, धानुष्कः, युग्मः, दर्शनीयमानी, त्राणः, अरित्रम्, दर्शकः  
पचेलिमाः—एते साधनीयाः । १९२१

१ गवाग्रम्, मार्तण्डः, आच्छत्, तच्छ्लोकेन, एपको रुद्रः, क्रोष्टा, श्रीणाम्,  
एतानि सन्धिविधेयपुरस्सरं तत्तत्कार्यविधायकसूत्रप्रदर्शनेन साधनीयानि ।

२ विद्वान्, वृत्रघ्नः, युष्माकम्, उदीचः, असौ, उपानत्, दीव्यन्ती ।  
एतानि रूपाणि साधयत ।

३ आतीत्, अगोपीत्, अगमत्, अत्रपिष्ट, ऊर्णविषीष्ट, जहाहि, नत्स्यति,  
एतेषा साधनप्रकारः प्रदर्शनीयः ।

४ दुधविव, क्रष्टा, उपस्किरति, आजीत्, उपस्कृतं ब्रूते, अजीगणत्, अति-  
ष्ठिपत्, कथमेतेषा साधुत्वम् ? ।

५ चिकीर्षति, वात्रजाञ्चके, अवोभूवीत्, वाच्यति, राजानति, अवतिष्ठते,  
विरमति । एषा विग्रहवाक्यानि साधकसूत्राणि च ब्रूत ।

६ भावयिषीष्ट, तायते, मिद्यते काष्ठम्, यजति स्म, देयम् मार्ग्यं, वगंवद,  
रागः, श्रावं श्रावम् । एषु विशेषकार्याण्युल्लिखत ।

७ ग्राममजा नयति, वनस्थ दूरे, उपकृष्णम्, कुम्भकारः, कल्याणप्रियः, एषु  
कारकसमासादिविधायकानि ब्रूत ।

८ पौंसः, ग्रामीणः, युष्मदीयः, मातुलानी, सौपणेयी, अश्वपालिका, धन-  
क्रीता, वैदी, एतानि साधयत ।

१९२२

१ हर इह, पचेते इमौ, सर्पिष्टमम्, कौस्कान्, स गम्भुः, एतानि विश्लेष-  
पूर्वकं तत्तत्कार्यविधायकसूत्रदर्शनेन साधय ।

२ द्वितीयायै, कति, बहुश्रेयस्याम्, तिस्रः, यज्वनः, एतानि साधयत ।

३ अष्टो, आवाम्, अमी, अगादीत्, जुगोपिथ, एषा साधुत्वं दर्शयत ।



४ उवोढ, जहि, अधिजगिरे, स्तरिषीष्ट, असात, एषां सूत्रोल्लेखपूर्वकं साधुत्वं ब्रूत ।

५ बुभूषति, नरीनृत्यते, एदिधिषते, अभिक्षिपति, अलम्भि, एते । विग्रह-वाक्यानि साधकसूत्राणि च दर्शयत ।

६ गां दोग्धि पयः, भातुः स्मरति, नखनिर्मिन्नः, पञ्चगवधनः, द्वादश । विगोषकार्ये प्रदर्शयैतानि साधयत ।

७ कानीनः, मैक्षम्, अतिकेशी, मानुषी, वामोरुः । अत्रपूर्वोक्तोदाहरणद्वये केन कस्मिन्नर्थे कः प्रत्ययः ? । परोदाहरणत्रये विशेषसूत्राणि ब्रूत ।

१९२३

१ गवेन्द्रः, चक्रि अत्र, संस्कर्ता, एष विष्णुः । अत्र सन्धिकार्ये विशेषसूत्रो-पन्यासैदर्शनीयम् ।

२ (क) विश्वपा, नरि, चतसृणाम्, दक्षि, युङ्, आसु, तुदन्ती, एतानि पदानि साधनीयानि ।

(ख) पिबध्यै, कृत्वा, अधिहरि । किंसंस्कानीमानि पदानि इति गाल्प्रमाणा-नुपदं दर्शनीयानि ।

३ एधै, विदाकुर्वन्तु, तस्तार, गृहाण, अब्रीमवत्, इदामति । अत्र प्रकृति-प्रत्ययनिदर्शनपूर्वकं सिद्धिप्रकारः स्फुटीकरणीयः ।

४ (क) सरोजम्, हितम्, राशः, प्रकृत्य । अत्र के प्रत्ययाः ? ।

(ख) पञ्चगङ्गम्, अतिमालः, पितरौ, एषु पदेषु समसनविधिमुक्त्वा, पाशु-पतम्, शालीयः, ज्येष्ठः, चन्द्रमुखी, कल्याणक्रोडा, एतानि रूपाणि साधनीयानि ।

१९२४

१ कृष्णर्धिः, शिवेहि, विष्णो इति, चक्रिस्त्रायस्व, तृढः, एतानि सन्धिविग्ले-षपूर्वकं तत्तत्कार्यविधायकसूत्रप्रदर्शनेन साधनीयानि ।

२ प्रथमे, सख्युः, कति, क्रोष्टुः, मतये । वारिणे । एषां साधुत्वं दर्शयत ।

३ आतीत्, अगोपीत्, अगमत्, अक्षपिष्ट, जहाहि, नत्स्यति, एतेषां साधनप्रकारः प्रदर्शनायः ।

४ आत । क्राम्यति । अचकमत, आदत् । धुक्षीष्ट । पिपूर्त्तः । एषा सूत्रो-  
ल्लेखपूर्वकं साधुत्वं ब्रूत ।

५ कथयति । अजिषत् । जिघत्सति । अबोभवीत् । दायिता । मार्ग्यः ।  
कालिमन्या । एषा विग्रहवाक्यानि साधकसूत्राणि च प्रदर्शयत ।

६ ग्रामादायाति । सुमद्रम् । अनश्वः । महायशस्कः । दैत्यः । हिमानी ।  
मत्सी । एतानि तत्तत्कार्यं प्रदर्श्य साधु साधनीयानि ।

१९२५

१ श्रीशः । शिवच्छाया । प्रत्यङ्ङात्मा । गार्ङ्गिज्य । शम्भू राजते । एतेषु  
सन्धिकार्याणि दर्शयत ।

२ रामस्य । हरेः । क्रोष्टुः । रमायाः । वारिणः । अनङ्वान् । राजा । त्वया ।  
अ होभ्याम्, पर्यासि । केषां शृण्वाना कस्यां विमत्ताविमानि रूपाणि ? । २५

३ जगद, जहार, जन्मतुः, जन्मतुः, उद्विजिता, एते कथं सिध्यन्ति ? । १५

४ चिकीर्षति, प्रतिष्ठते, हितम्, चरित्रम्, पाकः । एषु विशेषकार्य-  
विधायकानि शास्त्राणि लिखत । १५

५ उपकृष्णम् । परमराजः । चित्रगुः । राजन्यः । मेधावी । कुमारी । युवतिः,  
एते साधनीयाः ।

१९२६

१ आङ्गीत् । अमृषत । आनञ्छ । दिदीयिरे । अचकथत्-एतानि साध्यन्ताम्

२ निर्मक्षिकम् । पञ्चगवधनः । सर्वरात्रः । अलङ्कुमारिः । सुपात् । अश्व-  
क्रीती । एषु समासनामनिर्देशपुरस्सरं विशेषकार्याणि दर्शय ।

३ वृत्यः । गृहम् । विजावा । भावितः । चक्राणः । खनित्रम् । भोजंभोजम् ।  
लेखित्वा । हारणा-एषु कस्मिन्नर्थे कस्कः प्रत्ययः ? ।

४ राजनः, बन्धुता, पैतामहकः, धौरेयः, सातेयम्, विंशः, श्रेयान्-एषु  
विग्रहनिर्देशपुरस्सरं साधनप्रकारः प्रदर्शनीयः ।

५ अपूपमयं पर्व । पटपटाकरोति । गार्गी । चन्द्रमुखी । गवयी । सूरी ।  
अबोभूयिष्ट । सर्पिषो जानीते । एतानि साधनीयानि । २०

१९२७

१ गो यूतिः, चक्री-अत्र, उद्, स्थानम्, सः-एषः । एतेषु सन्धिकार्याणि

सप्रमाणं निरूप्य, वृद्धि—कर्म—द्विगुसंज्ञाविधायकानि सूत्राणि सोदाहर-  
णानि प्रदर्शनीयानि । २०

७ त्रिचतुःशब्दयोः पुंसि स्त्रियां च रूपाणि संसाध्य, इदंशब्दस्य स्त्रिया  
रूपाणि लेख्यानि । २०

३ अभूवम्, अकामत्, एधाचकृद्ध्वे, अवोचत्, जहिहि, एतेषु त्रीन् प्रयो-  
गान् संसाध्य कृष विलेखने इति घातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपाणि  
साधनीयानि । २०

४ अवीभवत्, जिवत्सति, वरीवृताञ्चके, अत्रोमविष्यत्, असृष्ट, गन्दायते,  
एतेषु चतुरः प्रयोगान् प्रसाध्य अभाजि इति रूपं साधनीयम् । २०

५ मृज्यः, पण्डितम्मन्यः शमित्वा, एतेषु द्वौ प्रयोगौ प्रसाध्य तत्रैव विषये  
पश्चान्तरीयरूपमपि प्रदर्श्य—महाराजः तावकीनः, अरण्यानी, एते  
प्रयोगाः साधनीयाः । २०

### १९२८

१ कृष्णैकत्वम्, गवाग्रम्, वाग्धरिः, लक्ष्मीच्छाया, शिवोऽर्च्यः । मनो-  
रथः । एते प्रयोगाः सूत्रोपन्यासेन साधु साध्यन्ताम् ।

२ सर्वेषाम् । मत्याम् । प्रराम्याम् । चत्वारः । मधवा । अद्भिः । एते  
प्रयोगाः सूत्रनिर्देशं साध्यन्ताम् । १५

३ आसीत् । अगौप्सीत् । अम्लासीत् । एधिष्ट । जहि । अद्भुधत् । ससौ ।  
एते प्रयोगाः सूत्रोपन्यासेन साध्यन्ताम् ।

४ अचूचुरत् । अवीभवत् । वरीवृत्यते । दायिषीष्ट । चेषम् । विदन् ।  
द्युत्तित्वा । एते प्रयोगाः सूत्रोपन्यासेन साध्यन्ताम् । २०

५ अनश्वः । स्थूलाक्षा । राजदन्तः । औपगवः । वैयाकरणः । तृतीयः ।  
एषु तत्तत्कार्याणि समुल्लिख्य, कर्तृ—करण—सम्प्रदानसंज्ञाविधायकानि  
सूत्राणि लिख्यन्ताम् । ३०

### १९२९

१ हरे—इह, विष्णो इति, ब्रह्मा—ऋषिः, सन्—शम्भुः, चक्रिन्—त्रायत्  
एषु संहितायां कानि रूपाणि भवन्ति २ संसाध्य दर्शयत । २०

२ रामेण, हरिणा, पत्न्यौ, मत्याम्, वारीणाम्, मधवा, अष्टौ, चत्वारि,  
एतानि वचनोपन्यासपुरस्सरं साधयत ।

- ३ जुगोप्य, आदिथ, जधनिथ, चकरतुः, चक्रतुः, अगान, स्तमान, कया प्रक्रिययैते साधुता प्रतिपद्यन्ते ? । २०
- ४ परमराजः, षाण्मातुरः, चित्रगुः, आदित्यः, आवपतः, पारावारीणः, गोमान्, मेधावी, एषु विशेषकार्याणि दर्शयत । २०
- ५ इत्यः, शप्यम्, प्रशः, उच्छ्रूतः द्यूत्वा, कुमारी, युवतिः, प्रत्ययविशेषान् प्रदर्श्य साधयैतान् ।

१९३०

- १ गिव-एहि, सन्-शम्भुः, चक्रिन्-त्रायस्व, चिद्-मयम्, आसु स्थितिषु संहिताया कानि रूपाणि सिध्यन्ति कथं च तानीति साधु दर्शयत । १६
- २ कति, सख्या, क्रोष्टा, दध्ना, अष्टौ, अहानि, चत्वारि, एतान् साधयत ।
- ३ अभूत्, जग्मतुः, जक्षतुः, विभितात्, उद्विजिता, आनक्, स्तमान । एतान् मूत्रोपन्यासपुरस्सरं साधयत । २२
- ४ अचूचुरत्, बुभूषति, सन्तिष्ठते, भाविता, लूनः, द्यूत्वा, प्रदाय । एषु विविधकार्याणि वचनान्युपन्यस्य दर्शनीयानि । १६
- ५ हरये नमः, एधोदकस्योपस्कुरुते, परमराजः, चित्रगुः, जलजाक्षी, गर्गाः, स्वामी, कुमारी, युवतिः, श्वः, एतेषा साधनप्रकारः स्पष्टमुपपादनीयः ।

१९३१

- १ विष्णो इति, उद् स्थानम्, भोस् देवाः, सस् शम्भुः अत्र स्थितौ सिद्ध-रूपाणि स्फुटं संसाध्य दर्शनीयानि । १०
- २ विश्वपि, बहुश्रेयस्याम्, सर्वस्याम्, मत्याम्, षण्णाम्, अधीनाम्, युष्माकम्, अमीषाम् । विशेषकार्यप्रदर्शनपुरस्सरमेतान् साधयत । २०
- ३ भूयास्ताम् । हयास्ताम्, अभक्षाताम्, अवक्षाताम्, अधुक्षाताम्, वैशद्येन सावनीया एते । २०
- ४ बुध्-युध् भ्रस्ज-मस्ज धातूनां लिटि, थलि, मुच्-सिच् मृग्-ङ्गिष्-धातूनां लुङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपभेदान् वचनोपन्यासपुरस्सरं साधयत । २०
- ५ चिकीर्षति, राजीयति, व्यतिष्णन्ति, इष्यते, भुग्नः, वराकी, वेला भोक्तुम्, अपामार्गः, हात्वा, सर्पिषो जानीते, पञ्चगङ्गम्, पञ्चगवम्, रम्यपथः, शाराव ओदनः, क्षत्रियाः-एते कथं सिद्ध्यन्ति ? ।

१९३२

१ हर इह, शिवेहि, उत्थानम्, मनोरथः, रामाय, निर्ज्वरसो, विश्वपः—  
एते प्रयोगाः सूत्रनिर्देशेन साधु साधनीयाः ।

२ सर्वस्याम्, शानानि, विज्वौहः, युष्माकम्, उशनाः, अनूनि—एतेषां  
साधनं विधेयम् । २०

३ भवति, अभूत्, गोपायाञ्चकार, एधाञ्चके, जघास, जुहोति, शणादि,  
कुरुतः, गणयति एते धात्वर्थनिर्देशेन साधनीयाः । १५

४ पिपठिपति, बोभूयते, पुत्रीयति, देयम्, भिन्नः, प्रकृत्य । एते प्रकृति-  
प्रत्ययनिर्देशेन साधनीयाः । १५

५ हरि भजति, कटे शेते, अधिहरि, राजपुरुषः, चित्रगुः—एषु आद्यद्वये  
कारकविभक्तिं प्रदर्श्याऽन्त्येषु विग्रहप्रदर्शनेन साधनं विधेयम् । १५

६ औपगवः, वैयाकरणः, गोमयम्, दण्डी, कुतः, युवतिः एते सूत्र-  
निर्देशेन साधनीयाः । १५

१९३३

१ हर इह, गो अग्रम्, पुंस्कोकिलः, देवायिह, सर्वेषाम्, हरेः, कोटुः—  
एते प्रयोगाः साधु साध्यन्ताम् । २१

२ तिष्ठः, प्ररीणाम्, राज्ञः, पत्न्याः, एतेषां साधनं विधेयम् । १०

३ भूयात्, आतिष्ठ, कामयाञ्चके, विदाङ्करोतु, नत्स्यति, अस्तम्भीत्,  
अजीगणत् एते प्रयोगा धात्वर्थनिर्देशपुरस्सरं साधनीयाः । २१

४ चिकीर्षति, शिष्यः, धामः, सुपानः, गयित्वा, विग्रहपुरस्सरं साधन-  
प्रकारः प्रदर्शनीयः । १५

५ उपराजम्, पञ्चगवम्, दीर्घसक्थः, प्राखो रथः, एतेषां विग्रहप्रदर्शन-  
पुरस्सरं साधनं प्रदर्श्यताम् । १२

६ राजन्यः, यौवतम्, राष्ट्रियः, तर्हि, एता, वृषली, मत्सी । एते प्रयोगाः  
सविग्रहं साध्यन्ताम् । २१

१९३४

१ प्रष्टौहः, गोऽग्रम्, किंशुक्तम्, तच्छूलोकेन, देवायिह । एषु सन्धि-  
कार्याणि सूत्रनिर्देशपुरस्सरं लिखत । १०

२ सः+गच्छति । कवी+अमू । गौः+चरति । मानो+इति—एषा संश्लिष्ट-  
रूपाणि सप्रमाणं प्रदर्शयत । १२

३ 'सखि, भ्रू' एतयोः सप्तम्येकवचने रूपे संसाध्य 'पप्, पिपठिष्, अदस्',  
एषा सप्तमीबहुवचने रूपाणि साधयत । २०

४ क्रमु पादविक्षेपे, डुदाज् दाने, दीङ् क्षये एषा लुङि प्रथमपुरुषैक-  
वचने कीदृशानि रूपाणि, कश्च तत्सिद्धिप्रकारः ? ।

५ गुप् रक्षणे, दोङ् क्षये, ह्री लजायाम् एषा लिटि प्रथमपुरुषैकवचने  
विशेषकार्यनिर्देशपुरस्सरं रूपाणि संसाध्यन्ताम् । १५

६ जिधत्सति, भुग्नः, भावितः, हरिणा एषा सिद्धिप्रकारः कः ? । १०

७ अतिहिमम्, पञ्चगवम्, चित्रगुः, त्रिमूर्धः—एषा विग्रहनिर्देशपुरस्सरं  
समासविधायकानि सूत्राणि निर्दिशत । १०

८ प्राण्मातुरः, शारावः, श्रोत्रियः, क्षत्रियाणी एषु विग्रहार्थप्रदर्शनपुर-  
स्सरं प्रत्ययविधायकानि सूत्राणि निर्दिशत । ८

१९३५

१ शिवेहि, अमी ईगाः, अहर्गणः, देवा इह । एषु प्रयोगेषु सन्धिकार्याणि  
तत्प्रतिबन्धकानि सूत्राणि दर्शनीयानि । १५

२ रामाय, सर्वेषाम्, पत्यौ, मत्याम्, लिट्त्सु, त्वयि, प्राचः, पुंभ्याम्,  
अहःसु, धनूंषि । एतानि पदानि संक्षिप्तोपयुक्तप्रक्रियया साधनीयानि ३०

३ अभूवम्, अक्षैषीः, अशृणवम्, जगन्थ, जघनिय, दधाय, अनजानि,  
अक्षत, स्तमान, गृहाण एतान् विशेषकार्याणि प्रदर्श्य साधयत । ३०

५ बुभूषति, प्रतिष्ठते, स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः, आहत्य, भुग्नः,  
हित्वा, परपराजः, वाहीकः, मेधावी, अमृतः । एते साधनीयाः । २५

१९३६

१ कृष्णार्द्धिः, उ उमेशः, किल्ह्लादयति, शम्भू राजते एतेषु सूत्रोल्ले-  
खपूर्वकं सन्धिकार्याणि दर्शयत । २०

२ पूर्वस्मात्, प्रव्यम्, श्रीणाम्, कतरत्, राजमिः, युष्मभ्यम्, समीचः,  
दक्, तुदन्ती, उदेतोः एतानि संक्षिप्तप्रक्रियया साधनीयानि । ३०

३ आतिष्म, अहत, दासीष्ट, ससौ, लोमिता, कुर्वीत, गृहाण, अजीगणत् ।

—एतानि रूपाणि सन्धक् साधनीयानि । ३२

४ जिघत्सति, सरोजम्, उष्निमम् एते प्रयोगाः साधनीयाः । ९

५ धावतोऽश्वात्पतति, यूषदारु, औत्सः, गोपी- एषु प्रयोगेषु विशेष-  
कार्याणि दर्शनीयानि । ९

१९३७

१ ( क ) सुद्वयुपास्यः, गवाग्रम्, उत्थानम्, शिवोऽर्च्यः, एते प्रयोगाः  
साध्यन्ताम् । १२

(ख) 'अहो ईशा' इत्यत्र किं सन्धकार्यं प्राप्तम्? कथं वा तदभावः?  
इति लेखनीयम् । ३

२ 'युष्मद्' शब्दस्य सर्वासु विभक्तिषु, 'श्रु श्रवणे' इत्यस्य लिटि, 'शीङ्  
स्वप्ने' इत्यस्य च लुङि रूपाणि लेख्यानि ।

३ रामाय, बहुश्रेयस्याः, सर्वस्य, दध्ना, चतुर्णाम्, युष्माकम्, अमुष्य,  
अहोन्याम्, पिधानम्,—एषां मध्ये सप्त प्रयोगाः साधनीयाः । २१

४ अभूवन्, अचीकमत, विदाचकार, जहीहि, अपादि, दुधविंथ, उपास्कि-  
रत्, तृणेढि, उपस्कुरुते, प्रमिमीते, अचूचुरत्,— एतेषु प्रयोगेषु अष्टौ  
साधनीयाः । २३

५ ( क ) बोभवाचकार, याञ्जा, अन्यथाकारम्, अर्द्धपिप्पली, अर्द्धर्चः,  
पारलौकिकम्, प्रथिमा, भूयिष्ठः, इन्द्राणी, एतेषां मध्ये षट् प्रयोगा  
साध्यन्ताम् । १८

( ख ) 'अकथितञ्चे'ति सूत्रस्योदाहरणानि प्रदर्शनीयानि । ४

१९३८

१ गव्यूतिः, प्राणम्, सन्नच्युतः, शम्भू राजते एषु प्रयोगेषु सग्राह्यं  
सन्धकार्यं दर्शयत । १२

२ 'विष्णो इति' इति स्थिते कानि कानि कार्याणि भवन्ति कानि च रूपाणि?  
स्पष्टं—लिखत । ३

३ हरेः, प्रथिय, स्त्रियम्, हे मधु, चतुर्णाम्, अमीभिः, अनया, दीव्यन्ति-  
एषु केचन सप्त प्रयोगाः साधनीयाः । २१

४ अभूवन्, भैजे, जघसिथ, जिह्नीयात्, स्यति, स्तर्यात्, औनत्, कुर्व-

- न्ति, स्तारिपीठ, अजीगणत्—एषु कान्यपि सप्त रूपाणि साधनीयानि । २८  
 ५ पिपठिपति, वोभूयात्, अस्तावि, पचेलियाः, सुगर्भा, हितम्, द्युति-  
 त्वा, सह्रि, अहोरात्रः,—एषु केऽपि पट् प्रयोगाः साधनीयाः । १८  
 ६ श्वाफल्कः, पित्र्यम्, पटपटाकरोति, गकटी, अतिकेशी—एषु कान्यपि  
 चत्वारि रूपाणि साधयत । ८  
 ७ 'सखि'शब्दस्य सर्वासु विभक्तिषु, 'गुप्' धातोर्लटि, 'मीञ्' धातो-  
 र्लङि—रूपाणि लेखनीयानि । १०

१९३९-

- १ क, छ, ड, घ, म, श, इत्येतेषां वर्णानां कानि ब्राह्मप्रयत्नानि । ६  
 २ शिवेहि, अमुकेऽत्र, सँस्कर्ता, मनोरथः, एतेषां प्रयोगाणां सशास्त्रं  
 सिद्धिं प्रदर्शयत । १६

अथवा

- गो+अग्रम्, त्वं+करोषि, सन्+शम्भुः, नृन्+पाहि, इत्यस्या स्थितौ कानि  
 रूपाणि भवन्ति, कथञ्च तत्सिद्धिरिति ससूत्रं प्रतिपादयत ।  
 ३ रामाय, स्त्रियै, विश्वौहः, वभूव, मिमीते, अहिनः,—एषु प्रयोगेषु ससूत्रं  
 सिद्धिप्रकारं लिखत । २४  
 ४ अब्रामोत्, अलमि, अवावा, शुभंयुः, मानुषी, विप्राय गा ददाति ।  
 एतान् प्रयोगान् सम्यक् प्रसाधयत । २४  
 ५ अन्तादिवच्च, प्रथमलिङ्गग्रहणं च, नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे,  
 आद्यन्तवदेकस्मिन्—एतेषां शास्त्राणां सोदाहरणमर्थं ब्रूत । १०

अथवा

- नेर्गद०, पात्राव्मा० दाम्मीश०, अव्ययं विभक्ति०, पङ्क्तिविंशति०, एतानि  
 केवलानि सूत्राणि सम्पूर्णानि शुद्धानि विलिखत ।  
 ६ समासः कतिविधः । कानि च तदुदाहरणानीति स्पष्टं प्रतिपादयत १०  
 ७ त्रिषु लिङ्गेषु द्वि, त्रि, चतुर् शब्देष्वन्यतमस्य, युष्मदस्मदोरन्यतरस्य  
 च सर्वासु विभक्तिषु रूपाणि विलिख्य, लिङ् आस्वादने, ब्रूञ् व्यक्ताया  
 वाचि धात्वोरनयोरन्यतरस्य सर्वलकारेषु प्रथमं रूपञ्च स्पष्टं लिखत । १०



\* श्रीः \*

श्रीगुरुप्रसादशास्त्रिसङ्कलितो

लघुकौमुदीस्थोदाहरणार्थः ।



उदाहरणम्      अर्थः  
 सुद्धयुपास्यः=विद्वानों के उपासनीय-  
 भगवान् विष्णु, या राजा  
 मध्वरिः='मधु' दैत्य के शत्रु विष्णु  
 भगवान्  
 धात्रशः=ब्रह्माजी का अश  
 लोकृतिः='लृ' यह स्वरूप । या 'लृ'  
 के समान टेढी आकृति है जिस  
 की ऐसा मनुष्य, या लंगूर  
 विष्णवे=विष्णु भगवान् के लिए  
 नायकः=नेता प्रधान ।  
 पावकः=अग्नि या पवित्रकर्ता  
 गव्यम्=गौ का विकार दुग्ध, दधि,  
 घृत, गोमूत्र, गोमय आदि  
 नाव्यम्=नौका से पार उतरने योग्य-  
 जल  
 गायूतिः=दो कोस  
 उपेन्द्रः=इन्द्र के छोटे भाई वामन  
 भगवान्  
 गङ्गोदकम्=गङ्गाजी का उदक-जल  
 कृष्णार्द्धिः=श्रीकृष्ण भगवान् की समृद्धि

उदाहरणम्      अर्थः  
 तवल्कारः=तेरा लटकार  
 हर इह=हे हरि ! यहां ।  
 विष्णु इह=हे विष्णु !  
 कृष्णोक्तवम्=श्रीकृष्ण भगवान् की  
 एकता  
 गङ्गौघः=गङ्गा का प्रवाह  
 देवैश्वर्यम्=देवताओं का ऐश्वर्य  
 कृष्णोत्कण्ठ्यम्=श्रीकृष्ण भगवान् की  
 उत्कण्ठा  
 उपैति=आता है  
 उपैधते=समीप बढ़ता है  
 प्रष्टौहः=सिखाने के लिये जिस बछड़े  
 के गले से काष्ठ बांध देते हैं  
 उस बछड़े को 'प्रष्टवाट्' कहते  
 हैं (तस्य प्रष्टौहः) प्रष्टवाट् का  
 उपेतः=जाया हुआ, प्राप्त हुआ  
 मा भवान् प्रेदिषत्=आप अधिक न  
 बढ़ाइए  
 अक्षौहिणी=सेनाविशेष ।

उदाहरणम् अर्थः  
 प्रौढः=अधिक तर्क या उत्तम तर्क करनेवाला  
 प्रौढः=पोढ़ा, अधेढ़  
 प्रौढिः=प्रौढता [ वदप्यन ]  
 प्रैषः=प्रेरणा  
 प्रैष्यः=नौकर  
 सुखार्तः=सुख से प्राप्त हुआ  
 परमर्तः=परम प्राप्ति युक्त  
 प्रार्णम्=अधिक ऋण  
 वत्सतरार्णम्=बछड़े का ऋण  
 कम्बलार्णम्=कम्बल का ऋण  
 वसनार्णम्=वस्त्र का ऋण  
 ऋणार्णम्=एक ऋण को दूर करने के लिये लिया गया दूसरा ऋण  
 प्राचर्चति=अधिक चलता है या ज्यादा जमता है  
 प्रेजते=अधिक प्रदीप्त होता है  
 उपोषति=जलाता है  
 शकन्धुः=शक देश का कूप  
 कर्कन्धुः=वेर  
 मनोषा=बुद्धि  
 मार्तण्डः=सूर्य  
 शिवायो नमः=शिवजी को नमस्कार हो  
 शिवेहि=हे शिवजी ! आइये  
 दैत्यारिः=दैत्यों के शत्रु विष्णु

उदाहरणम् अर्थः  
 श्रीशः=लक्ष्मो के पति भगवान् विष्णु  
 विष्णुदयः=विष्णु भगवान् का अभ्युदय  
 होतृकारः=होता का ऋकार  
 हरेऽव=हे हरि, रक्षा करो  
 विष्णोऽव=हे विष्णु, रक्षा करो  
 गो अग्रम्=गौ का अग्रभाग  
 चित्रगवग्रम्=विचित्र गौएँ जिसके हैं उस पुरुष का अग्र भाग  
 गोः=गौ का  
 गवाग्रम्=गौ का अग्रभाग  
 गवाक्षः=खिड़की, मोखा या झरोखा  
 गवि=गौ में  
 गवेन्द्रः=गोस्वामी साण्ड  
 आगच्छ कृष्ण रे अत्र गौश्ररति= हे श्रीकृष्ण ! आइये यहाँ गौ चरती है ।  
 हरी एतौ=ये दोनों हरि हैं  
 विष्णु इमौ=ये दोनों विष्णु हैं  
 गङ्गे अमू=ये दोनों गङ्गाये हैं  
 अमी ईशाः=ये प्रभु हैं  
 रामकृष्णाम् आसाते=ये बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्र बैठे हैं  
 अमुकेऽत्र=वे यहाँ हैं ?  
 इन्द्रः=इ हैं ! यह इन्द्र है !

उदाहरणम् । अर्थः  
उ उमेशः=क्या ये महादेव हैं ?

आ एवं तु मन्यसे=क्या अब तुम  
ऐसा मानने लगे हो ?

आ एव किल तत्=हां वह बात ऐसी  
ही है

श्रोणाम्=थोड़ी गर्म

अहो ईशाः=अहो ये राजा हैं

विष्णो इति=हे विष्णु ऐसा

किम्बुक्तम्=क्या कहा होगा ?

चक्रि अत्र=विष्णु यां तेली यहाँ हैं

गौर्यौ=दो गौरी

वाप्यरवः=वापी में वोडा

ब्रह्मर्षिः=ब्रह्म ऋषि

आर्च्छत्=चला गया

इत्यप्सन्धिः ।

अथ हप्सन्धिप्रकरणम् ।

रामश्चेते=राम सोते हैं

रामश्चिनोति=श्रीराम चुनते हैं

सच्चित्त=सत् और ज्ञान स्वरूप

शार्ङ्गिञ्जय=हे शार्ङ्गधनुर्धारी विष्णो !

आपकी जय हो

विद्वनः=विद्वलना या गति विशेष

प्रश्नः=पूछना

पेष्टा=पीसने वाला

तद्दीका=वह टीका

उदाहरणम् अर्थः  
चक्रिण्डौकर्स=हे चक्रधारी ! अपि  
जाते हैं

षट् सन्तः=छः सत्पुरुष

षट्ते=वे छै

ईदृष्टे=स्तुति करता है

सर्पिष्टमम्=बढिया घृत

षण्णाम्=छै ( पुरुषों ) का

षण्णवति=छियानवें

षण्णगार्यः=छै नगरी

सन् षष्ठः=छठा श्रेष्ठ ( है )

वागीशः=बृहस्पति

एतन्मुरारिः=ये भगवान् मुरारि हैं

तन्मात्रम्=केवल वही

चिन्मयम्=ज्ञानस्वरूप

तल्लयः=उसमें लय होना

विद्वोऽस्ति=विद्वान् लिखता है

उत्थानम्=उठना, उन्नति

उत्तम्भनम्=उठाना, उभारना

वाग्धरिः=बोलने में सिंह

तच्छिवः=वह शिव ( है )

तच्छ्लोकेन=उस श्लोक से

हरिं वन्दे=हरि को मैं नमस्कार

करता हूँ । यशांसि=यश

आक्रंस्यते=आक्रमण करेगा

मन्यसे=तुम मानते हो

उदाहरणम्

अर्थः

उदाहरणम्

अर्थः

शान्तः=शान्त

अङ्कितः=चिह्नित

अश्रितः=पूजित

कुण्ठितः=रुका हुआ

दान्तः=जितेन्द्रिय

भुम्भितः=गुथा हुआ

त्वङ्करोषि=पुम करते हो

संवत्सरः=वर्ष (संवत्)

सप्राट्=चक्रवर्ती राजा

किं हल्लयति=क्या चलाया जाता है?

किं ह्यः=कल क्या था ?

किं हल्लयति=क्या चलाया जाता है ?

किं ह्यदयति=क्या प्रसन्न करता है ?

किं हुते=क्या छिपाता है ?

पट्सन्तः=छै सज्जन

प्राट् पठः=छठा पूजित है

सुगण् पठः=छठा अच्छा गणितज्ञ है

सन्त्सः=वह सत्पुरुष है

सञ्छ+भुः=श+भु सत् है

प्रत्यङ्ङात्मा=अन्तरात्मा

सुगण्णोशः=प्रच्छा गणितज्ञों का ईश

सन्नच्युतः=अच्युत भगवान् नित्य है

संस्कर्त्ता=संस्कार करने वाला

पुस्कोकिलः=कोकिल (कोयल)

चक्रिस्त्रायस्व=हे चक्रधारी, विष्णो !

आप रक्षा करो

प्रशान्तनोति=शान्त पुरुष विस्तार करता है

हन्ति=मारता है

नृन्=पाहि=मनुष्यों की रक्षा करो

कौरकान्=किन २ को

शिवच्छाया=शिवजी की छाया

लक्ष्मीच्छाया=लक्ष्मी की छाया

इति हल्लसन्धिः ।

अथ विसर्गसन्धिः ।

विष्णुस्त्राता=श्री विष्णु रक्षक हैं

हरिरोते=हरि सोते हैं

शिवोऽर्च्यः=शिवजी पूज्य हैं

शिवो वन्द्यः=शिवजी वन्दनीय है

देवा इह=देवता यहां हैं

भो देवा ! =हे देवताओ !

भगो नमस्ते=हे भगवान् ! आपको

नमस्कार है

अथो याहि=पापी जा यहाँ से

अहरहः=प्रतिदिन

अहर्गणः=दिनसमूह, अहर्गण

अहर्भाति=दिन सुशोभित है

पुनः रमते=पुनः खेलता है

हरी रम्यः=हरि रमणीय हैं

शम्भू राजते=श+भु विराजते हैं

उदाहरणम् अर्थः  
 अजर्वाः=तुमने बार बार ग्रहण किया  
 तृढः=हिंसित  
 वृढः=उद्यत, तैयार हुआ  
 मनोरथः=इच्छा  
 पुष विष्णु=यह विष्णु हैं  
 स शम्भुः=वह शम्भु हैं  
 एषको रुद्रः=ये भगवान् रुद्र हैं  
 असः शिवः=शिव वह नहीं है  
 एषोऽत्र=यह यहां है  
 सेमामविद्धि प्रभृतिम्—इसे देने में  
 आप समर्थ हैं वह आप हमें  
 इस प्रभृति-प्रकृष्टधारणा को दे।  
 सैष दाशरथी रामः=ये वे दशरथ  
 के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी हैं  
 इति विसर्गलन्धिः ।  
 अथाज-तापुं लिङ्गप्रकरणम्  
 रामः=भगवान्-श्रीराम  
 कृष्णः=भगवान्-श्रीकृष्ण  
 सर्वः=सब । विश्वः=सब  
 उभौ=दोनों  
 उभयः=दो अवयववाली ( भणि )  
 अन्यः=दूसरा  
 अन्यतरः=दो में से एक  
 इतरः=इतर  
 त्वत्=अन्य

उदाहरणम् अर्थः  
 त्वः=मित्र  
 नेमः=आधा  
 सप्तः=सब  
 सिमः=सब  
 पूर्वः=पहला  
 अपरः=दूसरा  
 अवरः=अधम  
 दक्षिणः=दक्षिण  
 उत्तरः=उत्तर  
 अधरः=नीचा  
 स्वः=आप और अपना ।  
 अन्तरः=बाहर या पहिननेका कपड़ा  
 पुकः=पुक  
 प्रथमः=पहला  
 चरमः=अन्तिम  
 कतिपयः=कई एक  
 द्वितयः=दूसरा  
 अल्पः=थोड़ा  
 अर्धः=आधा  
 निर्जरः=देवता  
 विश्वपाः=विश्व को पालन करने  
 वाले विष्णु ।  
 शङ्खमाः=शङ्ख बजाने वाला  
 हाहाः=गन्धर्व  
 हरिः=पापहर्ता विष्णु

उदाहरणम्

अर्थः

कविः=कविता करने वाला

सखा=मित्र

पतिः=पति

भूपतिः=राजा

कति=कितने ?

प्रथः=तीन

प्रियत्रिः=जिसको तीन प्यारे हैं वह

द्वौ=दो

पपीः=सूर्य

वातप्रमीः=भृग

वदुःश्रयसी=वहुत कल्याण चाहने वाली स्त्रियो वाला पुरुष

अतिलक्ष्मीः=लक्ष्मी को अति क्रमण करने वाला । लक्ष्मी से श्रेष्ठ ।

प्रधीः=प्रकृष्ट ध्यानवाला

ग्रामणीः=सुखिया ( लम्बरदार )

नीः=लेजाने वाला

सुश्रीः=सुन्दर श्री वाला

यवक्रोः=जौ खरीदने वाला

सुधधीः=पवित्र बुद्धिवाला

सुधीः=पण्डित

सुखोः=सुख चाहने वाला

सुतो =पुत्र चाहने वाला

शम्भुः=शिव

भानु =सूर्य

उदाहरणम्

अर्थः

क्रोष्टा=भीदड

हूहू =गन्धर्व

अतिचमू=सेना को अतिक्रमण करने वाला ।

खलपृ =खलिहान को साफ करने वाला

सुलू=अच्छा काटने वाला (नाऊ)

स्वभूः=ब्रह्मा

वर्षाभू=मेढक

दभू=सर्प, कपि, वज्र और सूर्य

करभू=हाथ से पैदा हुआ । (नख)

धाता=ब्रह्मा

नप्ता=दौहित्र या पौत्र

पिता=पिता

जामाता=जमाई

ना=भनुष्य

गौ=गौ

रा =धन

ग्लौः=चन्द्रमा

इत्यजन्ता पुँलिङ्गाः ।

अथाज-रास्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

रमा=लक्ष्मीजी

दुर्गा=दुर्गा

अम्बिका=दुर्गा

उदाहरणम्	अर्थः	उदाहरणम्	अर्थः
सर्वा=सब		ननान्दा=ननन्द	
विश्वा=सब स्त्री		दुहिता=पुत्री	
उत्तर-पूर्वा=ईशान कोण		याता=देवराणो जेठानी,	
द्वितीया=दूसरी		माता=माता	
तृतीया=तीसरी		द्यौः=आकाश	
अम्बा=माता या दुर्गा		राः=धन	
अल्ला=माता		नौः=नौका	
अम्बा=माता			
जरा=वृद्धावस्था		इत्यजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्	
गोपाः=गोपी		अथ। जन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्	
मतिः=बुद्धि		ज्ञानम्=ज्ञान	
बुद्धिः=बुद्धि		धनम्=धन	
तिन्न=तीन स्त्रियां		वनम्=वन	
द्वे=दो स्त्रियां		फलम्=फल	
गौरी=पार्वती या गौर स्त्री		कतरत्=दो में से कौन सा कुल ?	
नदी=नदी		कतमत्=बहुतों या तीनों में से कौन सा कुल ?	
लक्ष्मी=लक्ष्मी		इतरत्=इतर । दूसरा ।	
तरी=नौका		अन्यत्=और	
स्त्री=स्त्री		अन्यतरद्=दो में से एक	
श्रीः=लक्ष्मी		अन्यतमम्=इन सब में से एक	
धेनुः=नई ब्याई गौ		एकतरम्=दोनों में से एक ( कुल )	
भ्रूः=भ्रुकुटि		श्रीपम्=धनरक्षक ( कुल )	
स्वयम्भूः=माया प्रकृति		वारि=जल	
स्वसा=वहिन		दधि=दही	

उदाहरणम्  
अस्थि=हड्डी  
सक्थि=ऊरु । सौथिल जांव  
अक्षि=आंख  
सुधि=बुद्धिमान् कुल  
मधु=शहद, मदिरा  
सुलु=अच्छा काटने वाला  
धातृ=धारण या पोषण करने वाला  
( कृष्ण )  
शारु=शानी कुल  
मधु=सुन्दर आकाशयुक्त दिन  
प्ररि=धनिक कुल  
सुसु=सुन्दर नौका वाला कुल  
इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥  
जिट्=वाटने वाला  
धुक्=वृद्धने वाला  
ध्रुक्=द्रोह करने वाला  
सुक्=मोहित करने वाला  
रुक्=वसन करने वाला  
स्निक्=स्नेहकरने वाला  
विश्ववाट्=विश्व+सर  
अनङ्गाद्=वैल  
श्वस्तम्=गिरा हुआ  
ध्वस्तम्=नष्ट हुआ  
तुराषाट्=इन्द्र  
सुधौ=सुन्दर आकाश वाला दिग्ग

अर्थः उदाहरणम् अर्थः  
चत्वारः=चार  
प्रशान्=शान्त  
कः=कौन ?  
अयम्=यह ( निकटस्थ )  
राजा=राजा  
ब्रह्मनिहः=ब्रह्म में जिसकी निष्ठा हो  
यज्वा=यज्ञ करने वाला  
ब्रह्मा=ब्रह्मा  
वृत्रहा=इन्द्र  
शार्ङ्गि=शार्ङ्गधनुषारी विष्णु  
यशस्वी=यश वाला  
अर्थमा=सूर्य । देवविरोध  
पूषा=सूर्य  
मध्वान्=इन्द्र  
इवा=कुत्ता  
युवा=जवान युवक  
अर्वा=घोड़ा  
पन्था.=मार्ग, रास्ता  
मन्थाः=दही मथने का दण्ड।  
ऋभुक्षाः=इन्द्र  
पञ्च=पाँच  
अष्टौ=आठ  
ऋत्विक्=ऋत्विज् । यज्ञ करने वाला  
पुङ्=योगी  
सुयुक्=सुयोगी



उदाहरणम्

खन्=लंगड़ा

राट्=राजा

विभ्राट्=बड़ा, अत्यन्त शोभित

देवेट्=देवपूजक

विश्वभृट्=ब्रह्मा

परित्राट्=संन्यासी

विश्वराट्=विश्वेश्वर भगवान्, सूर्य

भृट्=भूजने वाला

रयः=वह

सः=वह

यः=जो

पुषः=यह ( अत्यन्त निकट स्थित )

त्वम्=तू

अहम्=मैं

सुपात्=सुन्दर पैर वाला

अग्निमत्=अग्निमन्थन करने वाला

प्राड्=अच्छा चलने वाला या पूज्य

प्रत्यङ्=पीछे

उदङ्=उत्तर

सम्यङ्=ठीक चलने वाला

सम्यङ्=साथी, मित्र

तिर्यङ्=देबा चलने वाले पशु पक्षी

क्रुङ्=क्रौञ्चपक्षी

पयोसुक्=मेघ

सहान्=बड़ा

अर्थः

उदाहरणम्

धीमान्=बुद्धिमान्

भवान्=आप

भवन्=होता हुआ

ददत्=देता हुआ

जक्षत्=खाता व हंसता हुआ

जाग्रत्=जागता हुआ

दरिद्रत्=दरिद्र होता हुआ

शासत्=शासन करता हुआ

चकासत्=दीप्त होता हुआ

गुप्=रक्षक

तादृक्=वैसा

विट्=वनिया

नक्=नष्ट होने वाला

धृतस्पृक्=धृतस्पर्श करने वाला

दधक्=तिरस्कर्ता

रत्नमुट्=रत्न का चोर

षट्=छै

पिपठीः=पढ़ने की इच्छा वाला

चिकीः=करने की इच्छा वाला

विद्वान्=पण्डित

पुमान्=पुरुष

उशना=शुक्राचार्य

अनेहा=समय

पुरुदशाः=इन्द्र

वेधाः=ब्रह्मा

अर्थः

उदाहरणम् अर्थः  
 असौ=वह ( पुरुष )  
 इति हलन्तपुलिङ्गप्रकरणम् ।  
 उपानत्=जूता  
 उष्णिक्=पगड़ी  
 द्यौः=आकाश  
 गीः=वाणी  
 पूः=पुरी । नगरी  
 चतस्रः=चार स्त्रियाँ  
 का=कौन स्त्री  
 इयस्=यह स्त्री  
 स्या=वह स्त्री  
 सा=वह स्त्री  
 युषा=यह स्त्री ( अत्यन्तनिकट )  
 वाक्=वाणी  
 आपः=जल  
 दिक्=दिशा  
 दृक्=आंख  
 त्विद्=कान्ति  
 सजूः=मित्र (सखी)  
 आशीः=आशीर्वाद  
 असौ=वह स्त्री  
 स्पन्दुत्=अच्छे वैलों वाला ( कुल )  
 वाः=जल  
 चत्वारि=चार  
 किम्=क्या ?

उदाहरणम् अर्थः  
 इदम्=यह  
 एतत्=यह  
 अहः=दिन  
 दण्डि=दण्ड वाला कुल  
 सुपथि=सुमार्ग वाला वन  
 ऊर्क=अन्न तेज और बल  
 तत्=वह  
 यत्=यह  
 एतत्=यह  
 गवाक्=योपूजक । गौके पीछे जानेवाला  
 शकृत्=मल ( दूटी )  
 ददत्=देता हुआ  
 तुदत्=दुःख देता हुआ  
 पचत्=पाचन करता हुआ ( कुल )  
 दीन्यत्=खेलता हुआ  
 धनुः=धनुष  
 चक्षुः=आंख  
 हविः=हवि, घी  
 पयः=दूध । लाल  
 सुपुम्=सुपुरुषों वाला कुल  
 अदः=यह वेस्तु  
 इति हलन्तनपुसकलिङ्गप्रकरणम् ॥  
 स्वर=स्वर्ग  
 अन्तर=बीच में  
 प्रातर=प्रातः काल

उदाहरणम्	अर्थः	उदाहरणम्	अर्थः
पुनरु=फिर		स्वयम्=आप	
समुतरु=अन्तर्धान		वृथा=व्यर्थ	
उच्यैस्=ऊचा		नक्तम्=रात्रि	
नीचैस्=नीचा		न=नहीं	
शनैस्=धीरे २		ननु=नहीं	
ऋधक्=सचमुच		हेतौ=कारण	
ऋते=विना		इद्ध। = प्रकाश	
युगपत्=एक साथ		अद्धा=स्फुट व निश्चय	
आरात्=दूर व समोप		सामि=आधा	
पृथक्=भिन्न		ब्राह्मणवत्=ब्राह्मण के समान	
ह्यस्=वीता हुआ दिन		क्षत्रियवत्=क्षत्रिय के समान	
इवस्=आगामी दिन		सना सनत् सनात्=नित्य	
दिवा=दिन		उपधा=भेद वा धूस	
रात्रौ=रात		तिरस्=टेढा	
सायम्=सायंकाल		अन्तरा=गाय्य में	
चिरम्=देर		अन्तरेण=विनष्ट	
मनाक्=किञ्चित्		ज्योक्=शीघ्र	
ईषत्=थोडा		कम्=जल, सिर, सुख	
जोषम्=चुप		शम्=कल्याण	
पूणीम्=चुप		सहसा=अकस्मात्	
बहिस्=बाहर		विना=विना	
अवस्=बाहर		नाना=अनेक	
अधस्=नीचे		स्वस्ति=मङ्गल व कल्याण	
समयां=समीप		स्वाहा=देवदान में	
निकषा=समीप		स्वधा=पितृदान में	



उदाहरणम्  
 त्वै ( न्वै ) द्वै = वितर्क  
 रै = दीन  
 स्वाहा = देवहविर्दान  
 स्वधा = पितृदान  
 वषट् = देवदान  
 तुम् = तू  
 तथाहि = जैसे कि =  
 खलु = निश्चय  
 किल = ऐतिह्य मे  
 अथो अथ = अनन्तर  
 सुष्ठु = अच्छी  
 स्या = अतीत काल  
 आदह = निन्दा  
 अवदत्तम् = दिया।  
 अहंयुः = अहकारो  
 अस्तिक्षीरा = विद्यमान दुग्धवाली गौ  
 अ-आ-इ-ई-उ-ऊ = सम्बोधन  
 ए-ऐ-ओ-औ = सम्बोधन  
 पशु = सम्यक्  
 शुक्लम् = शीघ्र  
 यथाकथाञ्च - अनादर में  
 प्याट् - अङ्ग - है - हे = सम्बोधन  
 भोः - अये - पाट् = सम्बोधन  
 छ - हिंसा  
 विपु = नाना

अर्थः  
 उदाहरणम्  
 एकपदे = सहसा  
 युत् = निन्दा  
 आतः = इस कारण  
 अतः = उस कारण  
 स्मार स्मारम् = स्मरण कर २ के  
 जीवसे = जीने के लिये  
 पिबध्यै = पीने के लिये  
 कृवां = करके  
 उदेतोः = उदय होकर  
 विसृपः = फैलकर  
 अधिहरि = हरि से  
 वाचा = वाणी  
 निशा = रात्रि  
 दिशा = दिशा  
 वगाहः = स्नान  
 पिधानम् = ढकना  
 इत्यव्ययार्थनिर्देशः ।  
 भू = होना  
 अत - निरन्तर गमन  
 धिध = जाना  
 चिती = चेतना  
 शुच् = शोक करना  
 गद = स्पष्ट बोलना  
 णद = अव्यक्त शब्द करना ( नाद )  
 हुनदि = समृद्धि

उदाहरणम्	अर्थः
अर्च=पूजा में	
ब्रज=जाना	
कटे=वरसना और ढकना	
गुप्त=पीलन करना	
क्षि=नाश होना	
तप=संताप करना	
कम्पु=चलना	
पा=पीना	
गलै=गलानि	
हृ=कुटिलता	
श्रु=सुनना	
गम्ल=जाना=( गमन )	
पुध=वृद्धि=बढ़ना	
कम्पु=इच्छा करना	
अथ=चलना	
धुत=दीप्त होना	
श्विता=सफेद करना	
जि मदा=चिकना होना	
जिद्विदा= , , ,	
जिद्विदा=पसीना आना और छोड़ना	
रुच=चमकना व अच्छा लगना	
घुट=घोटना	
शुभ=शोभित होना	
क्षुभ=खुंथ होना	

उदाहरणम्	अर्थः
णम तुभ=हिंसा	
ससु ग्रसु ध्वसु=गिरना । लट्ट होना	
ध्वंसु=चलना	
सम्पु=विश्रवास करना	
वृत्तु=वर्तना	
दद=देना	
त्रपूष्=लजित होना	
श्रिज्=सेवा करना	
भृज्=पीलन करना । भरना	
हृज्=हरना, चराना	
भृज्=धारण करना	
णीज्=लेजाना	
हुपचप्=पकाना	
भज-भजन करना	
यज-पूजा करना, संग करना, दान देना	
वह=वहन करना	
इति भ्वादिप्रकरणधात्वर्थाः ।	
अद=खाना	
हन=मारना, चलना	
यु=मिलना या अलग होना	
या=पहुंचना, जाना	
वा=वहना, सुगली करना	
भा=चमकना	
ष्णा=स्नान करना, पवित्र होना	

उदाहरणम्	अर्थः	उदाहरणम्	अर्थः
आ=पकाना । सीजाना		ओहाङ्=जाना	
दा=निन्दित गमन		डुभृज्=धारण करनी, पालना, पोसना	
प्सा=खाना		डुदाञ्=देना	
रा=देना		दुधाञ्=धारण करना, पालन	
ला=लेना		पोषण करना	
दाप्=काटना		गिजिर्=साफ करना	
पा=रक्षा करना		पोषण करनी	
ख्या=कहना		इति शुहोत्यादयः ।	
विद=जानना		दिडु=खेलना, जय की इच्छा, लेन-देन का व्यवहार करना, चमकना, स्तुति करना, प्रसन्न होना, मदमत्त होना, सोना, इच्छा करना,	
अस्=होना		धिडु=सीना	
इण्=जाना		नृती=नाचना	
शीङ्=सोना		त्रसो=घबराना । उद्विग्न होना	
इङ्=पढ़ना		शो=छीलना । तेज करना ।	
डुह=दूहना		छो=काटना । छाँटना	
दिह्=बढ़ना		षो=नाश करना	
लिह=चाटना		दो=काटना	
मूञ्=बोलना		व्यध्=मारना ( वीधना )	
ऊर्णुञ्=ढकना		पुध्=पुष्ट करना	
इत्यदादिधात्वर्थाः ।		अुध्=सुखना	
हु=होम करना, खाना या लेना		णश=नष्ट होना	
जिभी=डरना		षूड्=उत्पन्नकरना	
ही=लजित होना			
पृ=पालना, पूरा करना			
ओहाक्=छोड़ना			
मोङ्=नापना, शब्द करना			

उदाहरणम्

अर्थः

उदाहरणम्

अर्थः

दृङ्=दुःखी होना

मिल=मिलना

दीङ्=क्षीण होना

मुञ्च=छोड़ना

ढीङ्=आकार में उड़ना

लुप्=काटना । लोप करना

पीङ्=पीना

विद्=प्राप्त करना

माङ्=तोलना

पित्त=सींचना

जनी=जन्मना प्रादुर्भाव

लिप=लीपना

दीपि=चमकना

कृती=काटना

पद=चलना

स्विद=स्विन्न होना

विट=होना

पिश=पीसना

बुध=जानना

ओत्रश्चू=काटना

युध=लड़ना

व्यच=उगना

सृज=छोड़ना । त्यागना

उद्धि=चीनना, उगना

मृप=सहन करना

अच्छ=जाना । इन्द्रियों को शिथिल

गह=प्राधना

होना । जमना

इति दिवादयः ।

उज्ज=त्यागना

धुज=स्नान कराना सोमलता को

लुभ=लुभाणा

शृटना, मद्य बनाना

चिज्=इकठा करना ( चुनना )

वृष तृभ=वृष होना

सृज्=उकेना

मृड पृड=सुखी होना

धूज्=कापना

शुन=जाना

इति स्वादयः ॥

क्षु=इच्छा करना

तुद=कष्ट देना

कुड=कुटिलता करना ।

णुद=प्रेरणा करना

पुद=मिलना, जोड़ना ।

अस्ज=भुनना

स्फुर=खिलना । विकसित होना ।

शृप=जोड़ना

स्फुर स्फुल्ल=फरेपना

=पूनुक्ति करना ।



उदाहरणम्	अर्थः
दुमस्जो=नहाना । मजन	
स्जो=तोडना, रोगीहोना ।	
भुजो=टेढा होना ।	
विश=प्रवेश करना ।	
मृश=स्पर्श करना ।	
पद्ले=विखरना	जाना, दुःखी
होना ।	
शद्ल=छीजना ।	
कृ=विखेरना ।	
गृ=निगलना ।	
प्रच्छ=पूछना ।	
मृड्=भरना ।	
पृड्=उद्योग करना ।	
जुपी=प्रीति तथा सेवा करना ।	
ओविजी=डरना, कांपना उद्विग्नहोना	
इति पुदादयः ॥ ६ ॥	
रुधिर=रोकना ।	
मिदिर=भेदन करना ।	
छिदिर=तोडना ।	
युजिर=जोडना ।	
रिचिर=रिक्त होना ।	
विचिर=पृथक् होना ।	
जुदिर=पीसना ।	
उच्छदिर=चमकना, खेलना ।	
उचृदिर=भारना अनादर करना ।	

उदाहरणम्	अर्थः
कृती=कातना ।	
हिसि=हिंसा करना ।	
उन्दी=भिगोना ।	
अञ्जू=प्रकट करना, चिकनाकरना,	
सुन्दर होना, जाना ।	
तन्पू=सकुचित होना ।	
ओविजी=भय करना, कांपना ।	
शिष्ट=पीसना ।	
पिष्ट=पीसना ।	
भञ्जो=तोडना ।	
भुज=पालना, खाना ।	
जिह्न्धी=चमकना	
विद=विचार करना ।	

इति रुधादिधात्वर्थाः

तनु=निस्तार करना, फैलाना ।

पणु=दान लेना

क्षणु क्षिणु=मारना ।

तृणु=खाना ।

डुकृण्=करना ।

वणु=मांगना ।

मणु=जानना,

इति तनादिधात्वर्थाः ।

डुक्रोण्=अदल बदल करना खरीदना,  
बेचना ।

उदाहरणम् अर्थः  
 ग्रीज-वृत्त करना, इच्छा करना  
 श्रीज-पकाना  
 मीज-मारना  
 पिज-बांधना  
 स्कुज-उछलना, उठाना  
 स्तम्भु स्तुम्भु स्कम्भु स्कुम्भु-रोकना  
 युज-बांधना ।  
 वनूज-शब्द करना  
 हज्ज्-मारना  
 पूज्-पवित्र करना  
 लूज्-काटना  
 स्तृज्-ढकना  
 कृज्-मारना  
 वृज्-स्वीकार करना  
 धूज्-कपाना  
 ग्रह-लेना  
 कुष-निकालना खुरचना  
 अश-खाना  
 मुष-खुराना  
 शा-जानना  
 वृड्-भजन करना । स्वीकार करना  
 इति क्रियादयः ।  
 चुर-चोरी करना  
 कथ कहना

उदाहरणम् अर्थः  
 गण-गिनना  
 इति पुरादयः  
 आवयति-होने के लिये प्रेरणा  
 करता है  
 स्थापयति-ठहराता है  
 यदयति-चेष्टा करवाता है  
 ज्ञपयति-बताता है  
 पिपठिषति-पढ़ने की इच्छा करता है  
 जिवत्सति-खाना चाहता है  
 चिकीर्षति-करना चाहता है  
 बुभूषति-होना चाहता है  
 वोभूयते-बारम्बार वा अच्छी तरह  
 से होता है  
 वाग्ययते-टेढा चलता है  
 वरीवृत्यते-बार बार वा अच्छी  
 तरह से होता है  
 नरोनृत्यते-बार बार व अच्छी तरह  
 नाचता है  
 जरीगृह्यते-बारं बार वा अच्छी  
 तरह से ग्रहण करता है  
 वोभवीति-बारं बार वा अच्छी  
 तरह से होता है  
 पुत्रीयति-अपने लिए पुत्र चाहता है  
 राजीयति-अपने लिए राजा चाहता है  
 वाच्यति, गीर्यति-अपने लिए वाणी

उदाहरणम्      अर्थः  
 चाहता है  
 पूर्यति-अपने लिए नगरी चाहता है  
 दिव्यति अपने लिए स्वर्ग चाहता है  
 समिच्यति अपने लिये समिधा  
 (लकड़ी) चाहता है ।

पुत्रकास्यति-अपने लिये पुत्र  
 चाहता है  
 विष्णूयति द्विज ब्राह्मण को विष्णु की  
 तरह मानता है  
 स्वति अपने समान व धन की तरह  
 मानता है

राजानति राजा के समान मानता है  
 पथीनति-मार्ग की तरह मानता है  
 कष्टायते-पाप करना चाहता है  
 शब्दायते-शब्द करता है  
 धटयति-बड़ा बनाता है

इति नामधातुप्रकरणम् ॥

कण्डूयति-खुजलाता है  
 व्यतिलुनीते-अन्य के योग्य काटने  
 को अन्य काटता है  
 व्यतिगच्छन्ति-दूसरों के योग्य गमन  
 को दूसरे करते हैं  
 व्यतिध्वन्ति-अन्य के योग्य हनन  
 को अन्य करते हैं

उदाहरणम्      अर्थः  
 निविशते-प्रवेश होता है  
 परिक्रीणीते-खरीदता है  
 विक्रीणीते-बेचता है  
 अवक्रीणीते-खरीदता है  
 विजयते-विजय पाता है  
 पराजयते-हारता है  
 सतिष्ठते-ठहरता है  
 अवतिष्ठते-ठहरता है । बैठता है  
 प्रतिष्ठते-जाता है । पैठा है ।  
 वितिष्ठते बैठता है  
 शतमपजानीते-सौ रूप्यों को  
 छिपाता है  
 सर्पिषो जानीते-धी से प्रवृत्त होता है  
 धर्ममुच्चरते-धर्म को उल्लङ्घन  
 करता है  
 रथेन सञ्चरते-रथ से घूमता है  
 दास्या संयच्छते दासी को देता है  
 एदिधिषते-बढ़ना चाहता है  
 निविविक्षते-प्रविष्ट होना चाहता है  
 रथेनो वर्तिकासुत्कुसते-वाज चिड़िया  
 पर झपटता है  
 उत्कुसते चुगली करता है  
 हरिमुपकुसते-हरि की सेवा  
 करता है

उदाहरणम् अर्थः  
 परदारान् प्रकुस्ते-परस्त्री में सहसा  
 प्रवृत्त होता है। बलात्कार करता है  
 एधो दक्ष्णोपस्कृस्ते-काष्ठ जल का  
 पुष्पग्रहण करता है  
 कथाः प्रकुस्ते-कथा कहता है  
 शतं प्रकुस्ते-सौ रुपया घर्मार्थ  
 लगाता है  
 कटं करोति-चटाई बनाता है  
 ओदनं भुङ्क्ते-भात खाता है  
 महीं मुनक्ति-पृथ्वी की रक्षा करता  
 इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ।  
 अनुकरोति-नकल करता है  
 पराकरोति-दूर करता है  
 अभिक्षिपति-फेंकता है  
 प्रवहति-बहता है  
 परिमृपति-सहन करता है  
 विरमति-हटता है  
 यशदत्तमुपरमति-यशदत्त को  
 हटाता है  
 इति परस्मैपदप्रक्रिया  
 भूयते-होना  
 अनुभूयते-अनुभव किया जाता है  
 भाव्यते-भावित किया जाता है  
 बुभूष्यते-होने के लिये इच्छा की  
 जाती है

उदाहरणम् अर्थः  
 वोभूयते-वोभूयते बारं बार हुआ  
 जाता है  
 स्तूयते-स्तुति किया जाता है  
 अर्यते-प्राप्त किया जाता है  
 रग्यते-रगरण किया जाता है  
 खस्यते-गिरना  
 नन्द्यते-आनन्दित होना  
 हज्यते-यज्ञ किया जाता है ।  
 तायते-विस्तार किया जाता है  
 अनुतप्यते-पश्चात्ताप किया  
 जाता है  
 दीयते-दिया जाता है  
 धीयते-धारण किया जाता है  
 भज्यते-भजन किया जाता है  
 लभ्यत-प्राप्त किया जाता है  
 पच्यते पकता है  
 मिथत-हटता है  
 रगरसि कृष्ण ! गोकुले वत्स्यामः  
 हे कृष्ण ! क्या आपको स्मरण है  
 कि हम लोग गोकुल में रहते थे ।  
 अभिजानासि कृष्ण ! यदनेऽम्भु-  
 जमहि हे कृष्ण ! याद है ?  
 कि वनमें हम लोग खाया करते थे

उदाहरणम् अर्थः  
 यजति रा। युधिष्ठिरः युधिष्ठिर ने  
 यज्ञ किया  
 कदाऽऽगतोऽसि कब आये ?  
 अयमागच्छामि अयमागमं वा-  
 यह आही रहा हूँ  
 कदा गमिष्यसि कब जाओ ?  
 एष गच्छामि गमिष्यामि वा यह  
 (अभी-) जा रहा हूँ  
 कृष्णः नमस्ते सुखं यायात् यदि  
 कृष्ण को नमस्कार करेगा तो  
 सुखी होगा ।  
 कृष्ण नमस्यति चेत्सुखं यास्यति  
 श्रीकृष्ण को नमस्कार करेगा तो  
 सुख पाएगा  
 हन्तीति पलायते मारता है इस  
 लिये भागता है  
 यजेत यज्ञ करे  
 इह भुञ्जत यहाँ खावे  
 इहाऽऽसीत भवान् (इच्छा हो तो)  
 आप यहाँ बैठिये  
 पुत्रमध्यापयेत्तवान् आप मेरे पुत्र  
 को पढ़ाइये  
 कि भो ! वेदमधीयीत, उत तर्कम्  
 कहिए क्या मैं वेद पढ़ूँ वा तर्क ?

उदाहरणम् अर्थः  
 भो ! भोजनं लभेय भाई भोजन  
 मुझे भी दे  
 एधितव्यम् बढ़ने योग्य है  
 एधनीयम् बढ़ना चाहिए  
 चेतव्यः चयनीय-सञ्चय करना  
 चाहिए  
 पचेलिमाः पकाने योग्य  
 मिदेलिमाः भेदन करने योग्य  
 रानीयम् साबुन उबटना  
 दानीयः दान देने योग्य ब्राह्मण  
 भेयम् चुनने योग्य  
 देयम् देने योग्य  
 स्लेयम् म्लानि के योग्य  
 शप्यम् शाप देने योग्य  
 लभ्यम् पाने लायक  
 इत्थः जाने योग्य  
 स्तुत्यः स्तुति योग्य  
 शिष्यः शिक्षा देने योग्य छात्र  
 इत्यः वर्तने योग्य  
 आदृत्यः आदरणाई  
 जुष्यः सेवनीय  
 सृज्यः साफ करने योग्य  
 कार्यम् कर्तव्य काम  
 हार्यम् हरणीय  
 धार्यम् धारण के योग्य

उदाहरणम्	अर्थः	उदाहरणम्	अर्थः
मान्यः-शोधनीय		मिक्षाचरः-भिक्षु	
भोज्यम्-खाने लायक		सेनाचरः-सैनिक	
भोग्यम्-भोगने योग्य		आदायचरः-लेकर घूमनेवाला	
कारकः-करने वाला		यशस्करी-यश देनेवाला विद्या	
कर्ता-कर्त्ता		श्राद्धकरः-श्राद्ध करनेवाला	
नन्दनः-आनन्द करने वाला		वचनकरः-आशाकारी	
प्राही-ग्रहण करने वाला		जनमेजयः-जनमेजय राजा	
स्थायी-स्थिर		प्रियंवदः-मीठा बोलनेवाला	
मन्त्री-मन्त्री, सलाह देने वाला		वशंवदः-आशाकारी	
पुधः-पण्डित		सुशर्मा-अच्छा मारनेवाला	
कृशः-कृश		प्रातरित्वा-प्रातः जानेवाला	
ज्ञः-जाननेवाला		विजावा-जन्मनेवाला	
प्रियः-प्यारा		अवावा-दूर करनेवाली ब्राह्मणी	
किरः-वखेरनेवाला		रोट्-रेट्-हिंसक	
प्रज्ञ-पण्डित		सुगण्-गणितका अच्छा शाता	
सुमलः-जल्दी घबड़ानेवाला		उखाक्षत्-बटुए से गिरा हुआ	
गृहम्-घर		पर्णध्वत्-पत्ते से गिरा हुआ	
कुम्भकारः-कुम्हार		बाह्रभट्-घोड़े पर से गिरा	
गोदः-गौ देनेवाला		उष्णभोजी-गर्म गर्म खाने वाला	
घनदः-घन देनेवाला		दर्शनीयमानी-अपने को सुन्दर	
कम्बलदः-कम्बल देनेवाला		मानने वाला	
गोसन्दायः-गोदेनेवाला		पण्डितमन्यः, पण्डितमानी-अपने	
भूलविभुजः-जड़को उखाड़नेवाला रथ		को पण्डित मानने वाला	
महीध्र कुध्रः-वर्त		कालिम्मन्या-अपने को काली मानने	
कुपचरः-कुप देशमें घूमनेवाला		वाली स्त्री ।	

उदाहरणम्

अर्थः

सोमयाजी-सोम यज्ञ करने वाला

अग्निष्टोमयाजी-अग्निष्टोम यज्ञ

करने वाला

पारदृश्वा-पारदर्शि, पारङ्गत

राजयुष्वा-राजा को जिसने युद्ध

कराया

राजकृत्वा-राजा बनाने वाला

सहयुध्वा-साथ युद्ध कराने वाला

सहकृत्वा-साथ करने वाला

सरसिजम् सरोजम्-कमल

प्रजा-सन्तान या प्रजा

स्नातम्-स्नान किया

स्तुतः-स्तुति किया गया

कृतवान्-किया

शीर्णः-वखेरा गया

भिन्नः-भिन्न

छिन्नः-काटा गया

द्राणः-टेढा मेढा गया ।

ग्लानः-उदास

लूनः-कटा

जीनः-वृद्ध

भुनः-टेढा

उच्छून-फूला हुआ

शुष्कः-सूखा

पक्वः-पका

उदाहरणम्

अर्थः

क्षामः-कृश

भावितः-छोक दिया हुआ

भावितवान्-भावना दिया

ददः-दद

हितम्-रखा हुआ

दत्तः-दिया ।

चक्राणः-करने वाला ।

जगन्वान्-जाने वाला ।

पचन्तं-पचमानम्-पकाते हुए ।

सन् द्विजः श्रेष्ठ ब्राह्मण ।

विदन्-विद्वान् ।

करिष्यन्तं करिष्यमाणम् करने

वाले को ।

कर्ता-करने वाला ।

जल्पकः-अधिक बोलने वाला

भिक्षाकः-भिक्षु ।

कुट्टाकः-कूटने वाला ।

लुप्टाकः-लूटने वाला । डाकू

वराकः-बेचारा ।

वराकी-बेचारी ।

चिकीर्षुः-करने की इच्छा वाला ।

आशंसुः-आशा करने वाला ।

भिक्षु-सन्ध्यासी ।

विभ्राट्-अधिक शोभावाला ।

भा.-कान्ति ।

उदाहरणम्

धूः-धुरी

विद्युत-विजली

ऊर्ज-बल वा तेज

पूः-पुरी

जूः-रोगी । ज्वरी

आवस्तुत्-पत्थर की स्तुति करने वाला

प्राट्-प्रश्नकर्ता

आयतस्तूः-आयत की स्तुति करने वाला

कटप्रूः-चटाई बनाने वाला

श्रीः-लक्ष्मी

दात्रम्-दातर्ली

नेत्रम्-नेता, रस्ती, नेत्र ।

शस्त्रम्-आयुध

योत्रं योक्त्रम्-जोता

स्तोत्रम् स्तुति का साधन

तोत्रम्-चाबुक

सेत्रम्-चान्धने की रस्ती

सेक्त्रम्-सेवन पात्र

मेढ्रम्-लिङ्ग

पत्रम्-वाहन, पत्ता

दंष्ट्रा-जाड, दाड

नद्धी-चर्मरज्जु

अरित्रम्-नौकाचलाने का दण्ड

अर्थः

उदाहरणम्

लवित्रम्-काटने का साधन

घवित्रम् भृगचर्मनिर्मित पखा

सवित्रम् प्रमवसाधन यन्त्रविशेष

खनित्रम् खननसाधन, खनती

सहित्रम्-रसनिकालनेका सौचा

चरित्रम्-चरित्र

पवित्रम् पवित्री

कारुः शिल्पी कारीगर

वायुः वायु

पायुः-गुदा

जायुः-औषध

मायुः-पित्त

स्वादुः-स्वादु

आशु शीघ्र

द्रेष्टुम्-देखने के लिये

दर्शकः-देखेगा इसलिए

भोक्त्रुम्-खाने के लिये]

पाकः पाक

रागः रङ्ग

रङ्ग रङ्गभूमि स्टेज

निकायः संघात

कायः शरीर

गोमयनिकायः गोबर की राशि

जयः-विजय

चयः-समूह

अर्थः



उदाहरणम्	अर्थः	उदाहरणम्	अर्थः
करः करना, या हाथ		धूनिः-कांपना	
गरः- निगलना, विष		पूनिः पवित्र करना	
यवः मिलना, जौ,		सम्पत् सम्पत्ति	
लवः काटना		विपत् विपत्ति	
स्तवः स्तुति		आपत् आपत्ति	
पवः पवित्रता		सम्पत्तिः सम्पत्ति	
प्रस्थ कच्चा सेरभर ( प्रायः तीन पाव )		विपत्तिः-विपत्ति	
विघ्नः विघ्न		जूः-ज्वर रोगी	
पवित्रमम् पका हुआ		तूः शीघ्रकारी	
उत्त्रिमम् बोया हुआ		सूः चलने वाले	
वेपथुः कंपकंपी		ऊः रक्षक	
यज्ञः यज्ञ		मूः-बांधने वाला	
याच्ना मांगना		इच्छा-इच्छा	
यत्नः प्रयत्न		चिकीर्षा करने की इच्छा	
विघ्नः बिछलना		पुत्रकाम्या-अपने लिये पुत्र की	
अर्नः-अर्न		इच्छा	
रक्षणः रक्षा		ईर्ष्या चेष्टा	
स्वप्नः स्वप्न		कारणा यातना, तीव्र पीडा	
प्रधिः रथ की नेमि		हारणा हराना	
उपधिः दम्भ, ढोंग		हसितम्-हसनम् हंसना	
कृतिः क्रिया		दन्तच्छदः ओष्ठ	
स्तुतिः स्तुति		आकरः खान	
कीर्णि बखेरना		अवतारः- उतरना, उतार	
लूनिः काटना		अवस्तारः कनात, पर्दा	
		रामः-श्रीराम	

उदाहरणम्  
अपामार्गः-औगा, चिचिडा  
दुष्कर-कठिन  
ईषत्करः सुकरः-सरल  
ईषत्पान-सरलता से पेय  
दुष्पानः-दुःख से पेय  
सुपानः-सुख से पेय  
अलं दत्वा गत दो  
पीत्वा खलु-मत पीओ  
मा कार्ष्णि-मत करो  
अलङ्कारः-भूषण  
सुक्त्वा-छोड़कर  
मुक्त्वा-खाकर  
पीत्वा-पी कर  
शयित्वा-सो कर  
कृत्वा-करके  
द्युतित्वा-द्योतित्वा-प्रकाशित होकर  
लिखित्वा-लिख कर  
वर्तित्वा-होकर  
सेवित्वा सेवा करके  
एषित्वा ईच्छा करके  
भुक्त्वा-खाकर  
शमित्वा-शान्तत्वा-शान्त होकर  
देवित्वा-धृत्वा-खेलकर  
हित्वा-धारण करके  
हित्वा-हात्वा-छोड़ कर

अर्थः उदाहरणम्  
प्रकृत्य-प्रारम्भ करके  
स्मारं स्मारम्-स्मरण कर करके  
स्मृत्वा स्मृत्वा-,,  
पायम्पायम्-पी पी कर  
भोजम्भोजम्-खा खा कर  
श्रावंश्रावम्-सुन सुन कर  
अन्यथाकारम्-दूसरी तरह  
एवङ्कारम्-इस प्रकार  
कथङ्कारम्-किस प्रकार  
इत्थङ्कारम्-इस प्रकार  
शिरोऽन्यथाकृत्वा भुङ्क्ते-शिर को टेढ़ा  
करके भोजन करता है  
उच्चैः-ऊँचा नीचैः-नीचा  
कृष्णः-कृष्ण श्रीः-लक्ष्मी  
ज्ञानम्-ज्ञान  
तटः, तटी, तटम्-तट  
द्रोणो व्रीहिः-द्रोण [१६ सेर] धान्य  
एकः-एकः द्वौ-दो  
बहवः-बहुत से  
हे राम !-हे राम !  
हरिं भजति-हरि को भजता है  
हरिः सेव्यते-हरि की सेवा करता है  
लक्ष्म्या सेवितः-लक्ष्मी से सेवित  
गा दोग्धि पयः-गौ से दूध दूहता है

उदाहरणम् अर्थः  
 बलिं याचते वसुधाम्—बलि राजा से  
 पृथ्वी मांगता है  
 तण्डुलानोदनं पचति—चावलों से भात  
 बनाता है  
 गर्गान् शतं दण्डयति—गर्गों को सौ  
 रुपया दण्ड ( जुर्माना ) देता है  
 प्रजमवरुणद्धि गाम्—प्रज में गौ को  
 रोकता है  
 माणवकं पन्थानं पृच्छति—लडके से  
 रास्ता पूछता है  
 वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्ष से फल  
 तोड़ता है  
 माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा—बालक  
 को धर्मोपदेश देता है  
 शतं जयति देवदत्तम्—देवदत्त से सौ  
 (रुपया) जीतता है  
 सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति—क्षीरसागर  
 को मथकर अमृत निकालता है  
 देवदत्तं शतं मुष्णाति—देवदत्त से सौ  
 चुराता है  
 ग्राममजां नयति हरति कर्षति वा—ग्राम  
 में वकरी को ले जाता है  
 बलिं भिक्षते वसुधाम्—बलि से पृथ्वी  
 मांगता है  
 माणवकं धर्मं भाषते—बालकको धर्मो-  
 पदेश करता है

उदाहरणम् अर्थः  
 रामेण बालेन हतो वाली—राम ने बाण  
 से वाली को मारा  
 विप्राय गां ददाति—ब्राह्मण को गौ  
 देता है  
 हरये नमः—हरि को नमस्कार  
 प्रजाभ्यः स्वस्ति—प्रजाओं का कल्याण  
 अग्नये स्वाहा—अग्नि के लिए (हवि)  
 पितृभ्यः स्वधा—पितरों के लिए (कव्य)  
 दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः—दैत्यों के प्रति  
 हरि पर्याप्त है  
 ग्रामादायाति—ग्राम से आता है  
 धावतोऽश्वात्पतति—दौड़ते हुए घोड़े से  
 गिरता है  
 राज्ञः पुरुषः—राजा का सिपाही  
 सतां गतम्—सत्पुरुषों की चाल  
 सर्पिषो जानीते—घी के उपाय से प्रवृत्त  
 होता है  
 मातुः स्मरति गीता को स्मरण  
 करता है  
 एधो दक्ष्योपस्कुर्वते—लकड़ी जल में  
 गुणों को करती है  
 भजे शम्भोश्चरणयोः—शम्भु के चरणों  
 को भजता हूँ  
 कटे आस्ते—चटाई पर बैठा है  
 स्थाल्यां पचति—बटुए में पकाता है

उदाहरणम्

अर्थः

मोक्षे इच्छास्ति-मोक्षविषयक इच्छा  
सर्वस्मिन्नात्मास्ति-सब में आत्मा है  
वनस्य दूरे अन्तिके वा-वन के दूर

या समीप

भूतपूर्वः-पहिले हो चुका  
वागर्थ्याविब-शब्द और अर्थ के समान  
अधिहरि-हरि में  
अधिगोपम्-गोप में

उपकृष्णम्-कृष्ण के पास

सुमद्रम् गद्र [ श्यालकोट पञ्जाब ] देश  
की समृद्धि

दुर्वचनम् यवनों (यूनानियों) की दुर्गति

निर्मक्षिकम्-मक्षिकाओं का अभाव

अतिहिमम्-हिम का नाश

अतिनिद्रम्-अब सोना उचित नहीं

इतिहरि-हरि शब्द का प्रकाश

अनुविष्णु-विष्णु के पीछे

अनुरूपम्-स्वरूप योग्य

प्रत्यर्थम्-अर्थ अर्थ के प्रति

यथाशक्ति-शक्त्यनुसार

सहरि-हरि का सादृश्य

अनुज्येष्ठम्-ज्येष्ठ के क्रम से

सचक्रम्-चक्र के साथ

ससखि-मित्र के सदृश

सक्षत्रम् क्षत्रियों की बढ़ती

उदाहरणम्

अर्थः

सतृणम्-तृण तक भी खाता है

साग्नि-अग्निग्रन्थपथ्यन्त पढ़ता है

पञ्चगङ्गम्-पञ्च गङ्गाओं का समाहार

द्वियमुनम् दो यमुनाओं का समा-  
हार

उपशरदम्-शरद ऋतु के समीप

प्रतिविपाशम्-विपाश [ व्यासा ]

नदी पर

उपजरसम्-बुढ़ापे के समीप

उपराजम्-राजा के समीप

अध्यात्मम्-आत्मा में

उपचर्मम्-चर्म के समीप

उपसमिधम्-समिधा के समीप

कृष्णश्रित-कृष्ण के आश्रित

शङ्कुलाखण्ड-सरोता से किया हुआ

डुकड़ा

धान्यार्थः-धान्य से मतलब

अक्षणा काणः-आँख से काना

हरित्रातः-हरि से रक्षित

नखमिच्छः-नखों से फाड़ा गया

यूपदारु-यज्ञस्तम्भ के लिए लकड़ी

रन्धनाय स्थाली-रान्धने के लिए

बटुली

द्विजार्थः सूपः-ब्राह्मण के लिए दाल

द्विजार्था यवागूः-ब्राह्मण के लिए

लप्सी

उदाहरणम्

अर्थः

द्विजार्थं पथः—ब्राह्मण के लिए दूध  
भूतबलिः—भूतों के लिए बलि  
गोहितम्—गौ के लिए हित  
गोमुखम्—गौबो के लिए मुखप्रद  
गोरक्षितम्—गौबों के लिए रखा हुआ  
चोरभयम्—चोर से भय

स्तोकान्मुक्तः थोड़े से छूटा

अन्तिकादागतः—समीप से आया

अभ्याशादागतः

दूरादागतः—दूर से आया

कृच्छ्रादागतः कष्ट से आया

राजपुरुषः—सजा का [ पुसिस ]

पूर्वकायः—शरीर का अग्रभाग

अपरकायः—शरीर का पिछला भाग

पूर्वैच्छात्राणाम्—छात्रों में पहिला

अर्धपिप्पली—पिप्पली का आधा भाग

अक्षशौण्ड—जूवा खेलने में लम्पट

पूर्वेषुकामशमी—पूर्व इषुकामशमी देश

सप्तर्षयः—सात ऋषि

उत्तरा वृक्षाः—उत्तर वृक्ष

पञ्च ब्राह्मणाः—पांच ब्राह्मण

पौर्वशाल—पहिली शाला [ हवेली ]

में होने वाला

पञ्चगवधनः—पांच गौ जिसका धन है

यह पुरुष

उदाहरणम्

अर्थः

पञ्चगवम्—पांच सौ

नीलोत्पलम्—नील कमल

कृष्णसर्पः—सांप की एक जाति

रामो जामदग्न्यः—जमदग्नि के पुत्र

परशुरामजी

घनश्यामः—मेव के समान श्याम

शाकपार्थिवः—शाकप्रिय राजा

देवब्राह्मणः—देवपूजक ब्राह्मण । पूजारी

अब्राह्मणः—ब्राह्मणेतर

अनश्वः—गंधहा

नैकधा—अनेक प्रकार से

कुपुरुषः—निन्दित मनुष्य

जरीकृत्य—स्वीकार करके

शुक्लीकृत्य—सफेद करके

पटपटाकृत्य—पट पट ऐसा शब्द करके

सुपुरुषः—सज्जन पुरुष

प्राचार्यः—आचार्य के गुरु

अतिमालः—माला को अतिक्रमण करने

वाला

अवकोकिल—कोकिलाओं से पूजित

पर्यध्ययन—पढ़ने से उदास

निष्कौशाम्बिः—कौशाम्बी से निकला

हुआ

कुम्भकारः—कुम्हार

व्याघ्री—बघेरिन

उदाहरणम् - अर्थः  
 अश्वक्रीती-घोड़े से खरीदी हुई  
 कच्छपी-कछुवी  
 अङ्गुलम्-दो अंगुलि भर  
 निरङ्गुलम्-अंगुलियों से निकला हुआ  
 अहोरात्रः-दिन रात  
 सर्वरात्रः-सारी रात  
 संख्यातरात्रः-गिनी हुई रात्रियाँ  
 द्विरात्रम्-दो रात  
 त्रिरात्रम्-तीन रात  
 परमराजः-बड़ा राजा  
 महाराजः-महाराज  
 महाजातीयः-महान्  
 द्वादश-बारह  
 अष्टाविंशतिः-अठ्ठाईस  
 कुक्कुटमयूरी-कुक्कुट (मुर्गा) और  
 मयूरी  
 पञ्चकपालः-पांच खप्परो में संस्कार  
 किया हुआ चरु  
 प्रातर्जीविकः-आपन्नजीविकः-जिसकी  
 जीविका लग गई है  
 अलङ्कुमारि कुमारी के लायक  
 अर्धर्चम्-आधा का आधा भाग  
 श्रुदु पचति मुलायम पकाता है  
 प्रातःकमनीयम्-मनोहर प्रभात  
 कण्ठकालः-नीलकण्ठ शिव-

उदाहरणम् - अर्थः  
 प्राप्नोदक-जिसमें जल धुस गया  
 है वह ग्राम  
 ऊढरथः-रथ को जिसने वहन किया  
 है ऐसा वैल  
 उपहृतपशुः-पशु जिसको भेंट किया  
 गया है ऐसा श्व  
 उद्धृतौदना-भात जिसमें से निकाल  
 लिया है ऐसी बटुई  
 पीताम्बरः-पीले वस्त्रों वाला हरि  
 वीरपुरुषकः-वीर पुरुष वाला गांव  
 अपर्णः-गिरा हुआ पत्ता  
 अपुत्रः-पुत्ररहित  
 चित्रगुः-चित्र विचित्र गौओं वाला  
 रूपवस्त्रार्थः-रूपवती पत्नी वाला  
 वामोरुभार्यः-जिसकी भार्या सुन्दर  
 ऊँचवाली है  
 कल्याणीपञ्चमा-पांचवीं रात कल्याण-  
 कारिणी है जिनमें  
 स्त्रीप्रमाण-स्त्री को प्रमाण मानने वाला  
 कल्याणीप्रिय-कल्याणकारिणी स्त्री  
 जिसकी प्यारी है  
 दीर्घसक्थ-लम्बे ऊँच वाला  
 जलजाक्षी-कमलनयनी  
 दीर्घसक्थि-लम्बे धुर वाला सम्राट्  
 स्थूलाक्षा-मोटी आँखों (पुरुषों)  
 वाली लाठी

उदाहरणम् अर्थः

द्विमूर्धः—दो सिर वाला

त्रिमूर्धः—तीन सिर वाला

अन्तर्लोमः—जिसके भीतर बाल हों

बहिर्लोमः—जिसके बाहर बाल हों

ऐसा कम्बल

व्याघ्रपात्—व्याघ्र की तरह पैरों वाला

हस्तिपादः—हाथी के तरह पैर वाला

कुसूलपादः—ओवरी की तरह पैरों वाला

द्विपात्—दो पैर वाला

सुपात्—सुन्दर पैरों वाला

उत्काकुत्—जिसका तालु ऊपर को उठा हुआ हो

विकाकुत्—जिसका तालु विकृत हो

पूर्णाकाकुदः—जिसका तालु पूर्ण है

सुहृत्—मित्र

दुर्हृत्—शत्रु

व्यूढोरस्कः—गठीले वक्षःस्थल वाला

प्रियसर्पिष्कः—धृत जिसको प्रिये हो

युक्तयोगः योगी

महायशस्कः—महान् यश वाला

ईश्वरं गुरु च भजस्व—ईश्वर और गुरु को भजो ।

भिक्षामट गां चानय—भिक्षा मांगलावो और गौ को भी ले आवो ।

उदाहरणम् अर्थः

धवखदिरो छिन्धि—धव व खदिर को काटो ।

संज्ञापरिभाषम्—संज्ञा और परिभाषा

राजदन्तः—आगे का ऊपरी दांत

अर्थधर्मौ—अर्थ और धर्म

हरिहरौ—विष्णु और शिव

इशकृष्णौ—महादेव और कृष्ण

पितरौ—माता और पिता

पाणिपादम् = हाथ पैर

मार्दाङ्गिकवैणविकम्—मृदङ्ग बजाने वालों

और वशी बजाने वालों का समूह

रथिकाश्वारोहम् = रथिक और धुङ्

सवारों का समूह

वाक्त्वचम्—वाणी और त्वचा

त्वक्क्षजम्—त्वचा, माला

शमीदृषदम्—जोंटी और पत्थर

वाक्त्वचम्—वाणी, और कान्ति

छत्रोपानहम्—छाता और जूता

प्रावृट्शरदौ—वर्षा और शरद ऋतु

अर्धर्चः—ऋचा का आधा भाग

विष्णुपुरम्—विष्णु का पुर

विमलपम्—निर्मल जल वाला सरोवर

राजधुरा = राज्य का भार

अक्षधूः—अक्ष में लगी धुरी

दृढधूः—दृढ धुरी वाली नाभि

उदाहरणम्-

अर्थः

सखिपथः-मित्र का मार्ग

रम्यपथः-रमणीय मार्ग वाला देश

गवाक्षः-झरोखा । खिड़की

प्राध्वः-रास्ते को प्राप्त हुआ रथ

सुराजा-शोभन राजा

अतिराजा सुन्दर श्रेष्ठ राजा

आश्वपतम्-अश्वपति का पुत्र आदि

गणपतम्-गणपति का अपत्य आदि

दैत्यः-दिति के पुत्र

आदित्यः-अदिति के अपत्य, सूर्य

आदित्यः-आदित्य के पुत्र

प्रजापत्यः-प्रजापति का पुत्र आदि

दैव्यम् दैवम्-देवता का अपत्य आदि

बाह्य बाहीकः-बाहर होने वाला

गव्यम्-गौ का अपत्य आदि

औत्सः-उत्स (क्षरने) का पुत्र आदि

औत्सः-औत्स का पुत्र आदि

पौत्सः-पुरुष का अपत्य आदि

औपगवः-उपगु का पुत्र

गार्ग्यः-गर्ग का गोत्रापत्य

वात्स्यः-वत्स का गोत्रापत्य

गर्गाः-गर्ग गोत्र वाले

वसाः-वत्स गोत्र वाले

गार्ग्यार्यणः-गर्ग का युवापत्य

दाक्षायणः-दक्ष का युवापत्य

उदाहरणम्

अर्थः

दाक्षिः-दक्ष का अपत्य

बाह्विः-बाहु का पुत्र

औडलोमिः-उडलोमा का अपत्य

बैदः-विद का गोत्रापत्य

पौत्रः=पुत्र का अपत्य [ पोता ]

शैवः=शिवजी का पुत्र

गाङ्गः=गङ्गाकापुत्र भीष्म

वासिष्ठः=वसिष्ठ का पुत्र

वैश्वामित्रः=विश्वामित्र का पुत्र

श्वाफल्कः=श्वफल्क का पुत्र [ अकर ]

वासुदेवः=वसुदेवजी के पुत्र श्रीकृष्ण

नाकुलः=नकुल का पुत्र

साहदेवः=सहदेव का पुत्र

द्वैमातुरः=दो माताओं के पुत्र गणेशजी

षाण्मातुरः=छै माताओं के पुत्र का-

त्तिकेय

सांमातुरः=सांमातुरः=सती पुत्र

वैनतेयः=विनता का पुत्र गरुड

कानीनः=कन्या का पुत्र कर्ण व व्यास

राजन्यः=क्षत्रिय

श्वशुर्यः=श्वशुर का पुत्र [ साला ]

राजनः=राजा का पुत्र

क्षत्रियः=क्षत्रिय जाति

क्षत्रिः=क्षत्रिय का जात्यन्तर पुत्र

रैवतिकः=रेवती का पुत्र

पाञ्चालः=पाञ्चाल देश के राजा का पुत्र



उदाहरणम्	अर्थः	उदाहरणम्	अर्थ
पौरव = पुर का पुत्र		वायव्यम् = वायु जिसका देवता है	
पाण्ड्यः = पाण्ड्य देशीय राजा का पुत्र		ऋतव्यम् = ऋतु जिसका देवता है	
कौरव्यः = कुरु का पुत्र		पित्र्यम् = पितृदेवताके	
नैषध्यः = निषध (टेहरीका) राजा का पुत्र		उषस्यम् = उषस् देवता है जिसका	
इक्ष्वाकवः = इक्ष्वाकुगोत्रोत्पन्न		पितृव्यः = चाचा व ताऊ	
पञ्चालाः = पञ्चाल देश का राजा		भातुलः = मामा	
कम्बोजः = कम्बोज देश का राजा		मातामहः = नाना	
चोलः = चोल देश का राजा व तत्पुत्र		पितामहः = दादा	
शकः = शक [सीरिया] देश का राजा		काकम् = काकों का समूह	
व तत्पुत्र		भैक्षम् = भिक्षाओं का समूह	
केरलः = केरल (मलयालम्) देश का राजा		गार्भिणम् = गर्भिणियों का समूह	
यवनः = यवन (यूनान) देश का राजा		यौवनम् = युवतियों का समूह	
काषायम् = गेरुआ रंग हुआ वस्त्र		मामता = मामों का समूह	
पौषम् = पुष्य नक्षत्र वाला दिन		जनता = जनसमूह	
अथ पुष्यः = आज पुष्य है		बन्धुता = बन्धुओं का समूह	
वासिष्ठम् = वसिष्ठ से ६४ साम		गजता = हाथियों का समूह	
वामदेव्यम् = वामदेव से ६४		सहायता = सहायकों का समूह	
वाह्नः = वस्त्र से ढका हुआ रथ		अहीनः = कई दिनों में होने वाला यज्ञ	
शाराव = सकोरेमें निकाला हुआ चावल		साक्नुकम् = सत्तुओं का समूह	
आष्टाः = भुजें चणा		हास्तिकम् = हस्तियों का समूह	
ऐन्द्रम् = इन्द्रदेवताक हवि		धैनुकम् = गोंसमूह	
पाशुपतम् = पशुपतिदेवताक हवि		वैयाकरणः = व्याकरण का पढ़ने वाला	
वार्हस्पत्यम् = वृहस्पतिदेवताक हवि		या व्याकरण का जानकार	
शुक्रियम् = शुक्रदेवताक हवि		क्रमकः = क्रमपाठी	
सौम्यम् = सोमदेवताक हवि		पदकः = पदपाठी	

उदाहरणम्

अर्थः

शिक्षकः=शिक्षापाठी

मीमांसकः=मीमांसा पढने वाला

औदुम्बरः=जिस देश में गूलर के पेड़ हों (देशविशेष)

कौशाम्बी=कुशाम्ब राजा की बसाई नगरी (कोसम-प्रयाग)

शैबः=शिवियों का निवास (सिंधी)

वैदिशम्=विदिशा नदी के समीप का नगर (मिलसा)

पञ्चालः=पञ्चाल जाति का निवास देश (फर्रुखाबाद)

कुरवः=कुरवों का निवास देश (कुरुक्षेत्र)

कलिङ्गाः=कलिङ्गों का निवास देश (राजमहेन्द्री)

वरणाः=वरणा नदी के समीप होने वाला नगर (बनारस)

कुमुद्राग्रः=कुमुद जिस देश में प्रायः हों

नङ्गान्=डंठल जिस देश में हों

वेतस्वान्=वेत जिसमें अधिक हो वह देश

नङ्गलः=नङ प्राय देश

शाद्वलः=घास वाला देश

शिखावलः=शिखावाला देश

उदाहरणम्

अर्थः

चाक्षुषम्=चक्षुर्ग्राह्य रूप

श्रावणः=श्रोत्रग्राह्य शब्द

औपनिषदः=उपनिषदों में कहा गया आत्मा

दर्षदाः=पत्थर पर पीसे हुए ससू

चातुरम्=चार, बैलों के ले जाने योग्य रथ

चातुर्दशम्=चतुर्दशी को दिखाई देने वाला-राक्षस

राष्ट्रियः=राष्ट्र में होने वाला, राजा का शाला

अवारपारीणः, अवारीणः, पारीणः,

पारावारीणः=आर पार जाने वाला

ग्राम्यः, ग्रामीणः=ग्राम में होने वाला

नादेयम्=नदी में होने वाला

माहेयम्=मही नदी में होने वाला

वाराणसेयम्=बनारस में होने वाला

दाक्षिणात्यः=दक्षिण में होने

पाश्चात्यः=पश्चिम होने वाला

पौरत्यः=पूर्व में होने वाला

दिव्यम्=स्वर्ग में होने वाला

प्राच्यम्=पूर्व में होने वाला

अप्राच्यम्=पश्चिम में होने वाला

उदीच्यम्=उत्तर में होने वाला

प्रतीच्यम्=पश्चिम में होने वाला

उदाहरणम्	अर्थः	उदाहरणम्	अर्थः
अमात्यः=मन्त्री, साथी		कालिकम्=समय पर होने वाला	
इहत्यः=यहाँ का		मासिकम्=मास में होने वाला वेतन	
कृत्यः=कहाँ का ?		सावत्सरिकम्=वर्ष में होने वाला श्राद्ध	
ततरत्य-तत्रत्यः=वहाँ का		सायम्प्रातिकः=सायं प्रातः होने वाला	
नित्य =नित्य		पौनः पुनिकम्=बारं बार होने वाला	
शालीयः=बर में उत्पन्न		प्रावृषेण्यः=वर्षा ऋतु में होने वाला	
मालीयः=माला में		सायन्तनम्=सायं होने वाला	
तदीयः=उसका		चिरन्तनम्=पुराना	
देवदत्तीयः=देवदत्तः=देवदत्त का		प्राहेतनम्=पूर्वाह्ण में होने वाला	
गहीयः=गह देश में पैदा हुआ		प्रगेतनम्=प्रातः कालिक	
युष्मदीयः=आपका		दोषातनम्=रात्रि में होने वाला	
अस्मदीयः=हमारा		स्रौग्धनः=क्षुधन ( आंगरा ) देश में	
यौष्माकीणः=आपका		होने वाला	
आस्माकीनः=हमारा		औत्सः झरने में हुआ	
यौष्माकः=आपका		राष्ट्रियः=राज्य में हुआ	
आस्माकः=हमारा		प्रावृषिकः=वर्षा काल में होने वाला	
तावकीनः=तुमारा		स्रौग्धनः=क्षुधन में प्रायः होने वाला	
तावकः= , ,		कौशेयम्=रेशमी वस्त्र	
मामकीनः=मेरा		दिश्यम्=दिशा में होने वाला	
मामकः= , ,		वर्ग्यम्=वर्ग में होने वाला	
त्वदीयः=तुमारा		दन्त्यम्=दातो में होने वाला वर्ण	
मदीयः=मेरा		सकार आदि	
त्वत्पुत्रः=तेरा पुत्र		कण्ठ्यम्=कण्ठ में होने वाला अकार	
मत्पुत्रः=मेरा पुत्र		हकार आदि	
मध्यमः=मध्य में होने वाला		आध्यात्मिकम्=आत्मा में होने वाला	

उदाहरणम् अर्थः  
 आधिदैविकम्=देवो मे होने वाला  
 आधिभौतिकम्=भूतों [ प्राणियों ] मे होने वाला  
 ऐहलौकिकम् इस लोक मे होने वाला  
 पारलौकिकम्=परलोक मे होने वाला  
 जिह्मसूलीयम्=जिह्वा के मूल मे होने वाला  
 अङ्गुलीयम्=अंगुली  
 कवर्गीयम्=कवर्ग मे होने वाला  
 सौख्यम्=सुख देश से आया  
 शौल्कशालिक-पुगी घर से आया  
 औपाध्यायक=उपाध्याय से आगत  
 पैतामहक=पितामह से आगत  
 समरूप्यम्=समीप्यम्=यम से आगत  
 विषमीयम्=विषम से आगत  
 देवदत्तरूप्यम्=देवदत्त से आगत  
 सममयम्=सम से आगत  
 देवदत्तमयम्=देवदत्त से आगत  
 हैमवती=हिमालय से प्रकाशित होने वाली गङ्गा । पार्वती  
 शारीरकीय=शरीर व आत्मा सम्बन्धि वर्णन करने वाला ग्रन्थ  
 सौधन=सुधन देश वासी  
 औपगवम्=उपगु सम्बन्धी वस्तु  
 अश्वम्=पत्थर का विकार

उदाहरणम् अर्थः  
 मार्तिकम्=मट्टी का विकार  
 मायूरम्=मोर का अङ्ग या विकार  
 मौवम्=मूर्वा [ ओषधि ] की ढण्डी या भस्म  
 पैप्पलम्=पिप्पली विकार  
 अश्ममयम्=पत्थर का अवयव या विकार  
 मौद्रः=मृग का विकार  
 आम्रमयम्=आम का अवयव या विकार  
 कार्पासम्=रूपास [ रुई ] का विकार  
 गोमयम्=गोबर  
 शरभयम्=शरविकार या अवयव  
 गोव्यम्=गोविकार  
 पयस्यम्=दूधका विकार खोवा आदि  
 आक्षिक=पासों से खेलने वाला  
 दाधिकम्=दही से संस्कृत  
 मारीचिकम्=मरिचों से संस्कृत  
 औडुपिक=जहाज से पारजाने वाला  
 हास्तिक=हाथी सवार  
 दाधिकः=दही से खाने वाला  
 दाधिकम्=दही से मिला हुआ  
 वादरिकः=बेर चुगने वाला  
 सामाजिक=समाज का रक्षक सभासद

उदाहरणम्	अर्थः	उदाहरणम्	अर्थः
शाब्दिकः = शब्द करने वाला		कर्मण्यः = कर्म में प्रवीण	
दार्ढुरिकः = सिंही का भाण्ड विशेष बनाने वाला कुम्हार		गरण्यः = शरणागत रक्षक	
धार्मिकः = धर्मात्मा		सभ्यः = सभासद	
आधर्मिकः = अधर्मी		शङ्कव्यम् = खूटा बनाने की लकड़ी	
भार्दजिकः = मृदङ्ग बजाने वाला		गव्यम् = गौ के लिये	
आसिकः = नलवारिया		नभ्यः = चक्रनाभिछिद्र का दण्ड	
धानुक्कः = धनुर्धारी		नभ्यम् = नाभिके छिद्र का अञ्जन [घी]	
आपूपिक = पूड़ा खाने वाला		वत्सीयः = बछड़ों का हितैषी गोपाल	
नैकटिक = ग्राम के निकट रहने वाला		दन्त्यम् = दन्तों के हितकारी	
भिक्षु		कण्ठ्यम् = कण्ठहितकारी	
रथ्यः = रथ का वहन करने वाला घोड़ा		नस्यम् = सूंघनी	
युग्यः = युग [जूवा] को उठाने वाला बैल		आत्मनीनम् = अपने अनुकूल	
प्रासङ्ग्यः = काष्ठविशेष में जुड़ा बैल		विश्वजनीम् = सबके अनुकूल	
धुर्यः = धौरेयः = धुरी को उठाने वाला		मातृभोगीणः = माता के अनुकूल	
नाव्यम् = नौका से तरने योग्य जल		साप्ततिकम् = सप्तर से खरीदा गया	
वयस्यः = समान अवस्था वाला मित्र		प्रास्थिकम् = सेर धान्य से खरीदा हुआ	
धर्म्यम् = धर्म से प्राप्त करने योग्य		सार्वभौमः = चक्रवर्ती	
विष्यः = विष से मारने योग्य		पार्थिवः = पृथिवी का ईश्वर	
मूल्यम् = मूल्य		श्वेतच्छत्रिकः = श्वेत छत्र के योग्य	
मूल्यः = मूल के समान		दध्यः = दण्डनीय	
सीत्यम् = हलसे जोता हुआ खेत		अर्घ्यः = अर्घ योग्य, पूजनीय	
तुल्यम् = तोला हुआ		वध्यः = वध के योग्य	
अग्र्यः = अग्रणीः		आह्निकम् = एक दिन में तैयार हुआ	
सामन्यः = सामवेद में निपुण		ब्राह्मणवत् = ब्राह्मण के समान	
		पुत्रेण तुल्यः स्थूल = पुत्र के समान मोटा	

उदाहरणम्  
मधुरावत्-मधुरा के समान  
चैत्रवत्-चैत्र की तरह  
गोत्वम्-गोत्वजाति  
स्त्रीणम्-स्त्रीत्वजाति  
पौस्तम्-पुरुषार्थ  
प्रथिमा-पार्थवम्-गोटापन  
मार्दवम्-मृदुता  
शौक्यम्-शुक्लिमा-शुक्लता  
दार्ढ्यम्-द्रढिमा-दृढता  
जाड्यम्-जडता मूर्खता  
मौढ्यम् मूढता  
ब्राह्मण्यम्- ब्राह्मणत्व, जप तप  
सख्यम्-मित्रता  
कापेयम्-कपिता, चाञ्चल्य  
ज्ञातेयम् ज्ञातिकर्म  
सेनापत्यम् सेनापति का काम आदि  
पौरोहित्यम् पुरोहिताई आदि  
मौद्गीनम्-मूंग का खेत  
त्रैहेयम्=धान का खेत  
शालेयम्=शाठी चावल का खेत  
हैयङ्गवीनम्=नौनी घी  
तारकितम्=तारों से गोभित गगन  
पण्डितः=बुद्धिमान्  
ऊरुद्वयसम् }  
ऊरुद्वधनम् } जांघतक  
ऊरुमात्रम् }

अर्थः

उदाहरणम्

अर्थः

तावान् = उतना  
एतावान् = इतना  
क्रियान् = कितना  
इयान् = इतना  
पञ्चतथम् = पांचों का समूह  
द्वयम्, द्वितयम् = जोड़ी  
त्रयम्-त्रितयम् = तीन अवयव वाला  
उभयम् = दोनों  
एकादशः = ग्यारहवाँ  
पञ्चमः = पाचवाँ  
विंशः = बीसवाँ  
षष्ठः = छठा  
कतिथः-कतिपयथः = कौनसा  
श्रोत्रियः = वेदपाठी  
पूर्वा = पहिले करने वाला  
कृतपूर्वा = जिसने पहिले किया हो  
इष्टी = जिसने यज्ञ किया हो  
अधीती = पठित  
गोमान् = गौ वाला  
गरुत्मान् = गरुड  
विदुष्मान् = विद्वानों से शोभित  
शुक्लः = श्वेत [ वस्त्र ]  
कृष्णः = काला [ वस्त्र ]  
चूडालः = फेज पात्र वाला मुकुट वाला  
शिखावान् = चोटी वाला दीपक

उदाहरणम्      अर्थः  
 मेधावान् = बुद्धिमान्  
 लोमशः, रोमशः = बालों वाला  
 पामनः = पोंव रोगी  
 अङ्गना = शोभन अङ्गो वाली सुन्दरी  
 लक्ष्मणः = लक्ष्मीवान्, लक्ष्मणजी  
 पिच्छिलः = चिकना  
 दन्तुरः = ऊँचे दान्तों वाला  
 केशवः = उत्तम केशों वाला  
 मणिवः = नागविशेष  
 अर्णवः = समुद्र  
 दण्डी, दण्डक = दण्डवाला  
 ब्रीही, ब्रीहिक = धान्य वाला  
 यशस्वी = कीर्तिमान्  
 मायावी = माया वाला  
 मेधावी = बुद्धिमान्  
 स्रग्वी = माला पहिने हुए  
 वाग्मी = अच्छा बोलने वाला  
 अर्शसः = बवासीर का रोगी  
 अहंयुः = अहङ्कारी  
 शुभंयुः = शुभान्वित  
 कुतः = कहा से  
 इतः = यहां से  
 अतः = इसलिए  
 अमुतः = उससे  
 य तः = जिससे

उदाहरणम्      अर्थः  
 ततः = उससे  
 बहुतः = बहुतों से  
 परितः = चारों तरफ से  
 अभितः = दोनों तरफ से  
 कुत्र = कहाँ      यत्र = जहाँ  
 तत्र = वहाँ  
 बहुत्र = बहुत जगह  
 इह = यहां      क = कहाँ  
 ततोभवान्, तत्रभवान् = पूज्य  
 दीर्घायुः = दीर्घायु  
 देवानाम्प्रियः = मूर्ख देवप्रिय  
 आयुष्मान् = चिरजीवी  
 सदा = सदा । सर्वदा = सदा  
 अन्यदा = और समय  
 कदा = कब      यदा = जब  
 तदा = तब      एतर्हि = अब  
 कर्हि = कब      यर्हि = जब  
 तर्हि = तब  
 तथा = उसी तरह  
 यथा = जिस तरह  
 इत्थम् = इस प्रकार  
 कथम् = किस प्रकार  
 आल्यतमः = अत्यन्त धनी  
 लघुतमः, लघिष्ठः = अत्यन्त छोटा  
 किन्तमाम् = क्या

उदाहरणम्

प्राज्ञेतिमाम् = तडके

पचतिमाम् = अतिशयपकाता है

उच्चैस्तमाम् = अति ऊँचापन

उच्चैस्तमः = अति ऊँचा [ वृक्ष ]

लघुतरः, लघीयान् = बहुत छोटा

पटुतराः, पटीयासः = बहुत पटु

श्रेष्ठः-श्रेयान्-अत्यन्त प्रशंसनीय

ज्येष्ठः-ज्यायान् बड़ा, श्रेष्ठ

भूमा-भूयान्-बहुत

भूयिष्ठः-बहुत

त्वचिष्ठः-अधिक कड़ी त्वचा वाला

अश्वकः-कोई घोड़ा

सजीयान् सजिष्ठः-बहुत मालाधारी

विद्वत्कल्पः-विद्वद्देशीयः-विद्वद्देश्यः

विद्वान् के समान

पचतिकल्पम्=असमाप्त प्रकार के वाला

बहुपटुः-थोड़ा चतुर

उच्चकैः-ऊँचा

नीचकैः-नीचा

सर्वकैः-[अक्षात्] सब ने

युष्मकाभिः-तुम सब ने

युवकयोः-तुम दोनों का

त्वयका-तैने

अश्वकः-निन्दित घोड़ा

अर्थः

उदाहरणम्

अर्थः

कतरः-कौनसा । यतर-जौनसा

ततरः-तौनसा । कतमः-कौनसा

यतमः-जौनसा । ततमः-तौनसा

यकः-जौ । सकः-वह

अश्वकः-खिलौने का घोड़ा

अश्वकः-घोड़ा

अन्नमयम्-अन्न जिसमें अधिक हो

अपूपमयम्-अधिक पूडोवाला

अन्नमयः-अन्नप्रचुर [ यज्ञ ]

अपूपमयम्-अपूपबहुल

प्राज्ञः-बुद्धिमान्

प्राशी-बुद्धिमती

दैवतः-देवता

वान्धवः-भाई बन्धु

बहुशः-बारंबार

अल्पशः-थोड़ा थोड़ा

आदितः-आदि में

मध्यतः-मध्य में

अन्ततः-अन्त में

पृष्ठतः-पीछे से

पार्श्वतः-पार्श्व से

स्वरतः-स्वर से

वर्णतः-वर्ण से । अक्षर से

कृष्णीकरोति-काला करता है



उदाहरणम् अर्थः  
 प्रह्वीभवति - यज्ञ होता है  
 गङ्गीस्यात्-गङ्गा होवे  
 दोषाभूतम्-रात की तरह बना हुआ दिन  
 दिवाभूता=दिन की तरह प्रकाशमान रात  
 अग्निसाद्भवति=जलता है  
 दधि सिञ्चति=दही सींचता है  
 अग्नीभवति=अग्नि हो रहा है  
 पटपटकरोति=पट पट करता है  
 ईषत्करोति=थोड़ा करता है  
 श्रत्करोति=श्रत् ऐसा शब्द करता है  
 खरटखरटाकरोति=खरट २ करता है  
 पटिति करोति=पटत् ऐसी अव्यक्त ध्वनि करता है  
 अजा=बकरी  
 एङका=मेड़ी । अश्वा-घोड़ी  
 चटका=चिड़ी । मूषिका = चूही  
 वाला = लड़की, १६ वर्ष तक की स्त्री  
 वत्सा = बच्ची  
 होडा = बाला  
 मन्दा = बालिका  
 विलाता = बाला या नवयौवना स्त्री  
 भवती = आप  
 सवन्ती = होती हुई

उदाहरणम् अर्थः  
 पचन्ती = पकाती हुई  
 दीव्यन्ती = खेलती हुई  
 कुरुचरी = कुरु देश में घूमने वाली नदी = नदी  
 देवी = देवी  
 सौपर्णेयी = सुपर्णों की कन्या  
 ऐन्द्री = पूर्वदिशा  
 औत्सी = झरने से उत्पन्ना  
 ऊरुद्वयसी-ऊरुदधनी-ऊरुमात्री-ऊरु प्रमाण वाली  
 पञ्चतयी = पांच वाली  
 आक्षिक्ती = पासा से खेलने वाली  
 यादशी = जैसी  
 इत्वरी = घूमने वाली कुलटा  
 खैणी = स्त्रीसम्बन्धी  
 पौस्नी = पुरुष सम्बन्धी  
 शाक्तीकी = सांग वाली  
 याष्टीकी = यष्टिवाली  
 आव्यङ्करणी = धनी बनाने वाली  
 तरुणी, तलुनी = युवति  
 गर्गी = गर्ग गोत्रोत्पन्ना  
 गार्ग्यायणी = गर्गगोत्रोत्पन्ना  
 नर्तकी = नटी  
 गौरी = पार्वती

उदाहरणम् , अर्थः  
 अनडुही, अनड्वाही=गौ  
 कुमारी=कन्या  
 त्रिलोकी=तीनों लोक  
 त्रिफला=हरड, बहेडा, आमला  
 त्र्यनीका=सेना  
 एता, एनी=चितकधरी  
 रोहिता, रोहिणी=लाल रङ्ग की  
 मृद्वी, मृदु=कोमलाङ्गी  
 बहुः, बह्वी=बहुत  
 शकटी, शकटि=गाड़ी  
 गोपी=गोप की स्त्री  
 गोपालिका=गोप की स्त्री  
 अश्वपालिका=घोड़े पालने वालेकी स्त्री  
 सर्विका=सब  
 कारिका=श्लोक  
 सूर्या=सूर्य की स्त्री  
 इन्द्राणी=इन्द्र की स्त्री  
 वरुणानी=वरुण की स्त्री  
 भवानी=पार्वती  
 हिमानी=बर्फ का समूह  
 अरण्यानी=बड़ा भारी जङ्गल  
 नौका=नौका । शका=ममर्था  
 बहुपरित्राजका=अधिक सन्यासी  
 जिसमें हो ऐसी नगरी (काशी)  
 सूरी=सुन्ती

उदाहरणम् अर्थः  
 यवानी=दुष्ट जौ ( अजवाइन )  
 यवनानी=यूनानी लिपि  
 मातुलानी मातुली=मामी  
 उपाध्यायानी उपाध्यायी=गुरु स्त्री  
 आचार्यानी=आचार्य की स्त्री  
 अर्याणी अर्या=वैश्या स्त्री  
 क्षत्रियाणी क्षत्रिया=क्षत्रिया स्त्री  
 वस्त्रक्रीती=वस्त्रों से खरीदी हुई  
 धनक्रीता=धन से खरीदी हुई स्त्री  
 अतिकेशी अतिकेशा =बहुत केशों  
 वाली स्त्री  
 चन्द्रमुखी=चन्द्रमा की तरह मुखवाली  
 सुगुल्फा=सुन्दरगुल्फ [टकेणा] वाली  
 शिस्ता=चोटी  
 कल्याणक्रोडा=कल्याण उरःस्थलवाली  
 घोड़ी  
 मुजघना=सुन्दर जघन ( नाभि के  
 नीचे का भाग ) वाली  
 शूर्पणखा=रावण की बहिन  
 गौरमुला=किसी स्त्री का नाम है  
 ताम्रमुखी=लाल मुख वाली कन्या  
 तटी-तट, किनारा  
 वृषली=शहरी  
 कठी कठगोत्रोत्पन्ना  
 बह्वची बहुत ऋचायें पढ़ने वाली

उदाहरणम्	अर्थः	उदाहरणम्	अर्थः
मुण्डा-मुण्डित स्त्री		श्वश्रू-पति की माता, सास	
बलाका-वकपङ्क्ति, कामुकी		करभोरुः-गोल लम्बी ऊरु वाली	
क्षत्रिया-क्षत्रियाणी		संहितोरु. शफोरुः = मिले हुए जंघा	
हथी-घोड़ी		वाली	
गवयी गवय स्त्री [ जंगली-गाय ]		लक्षणोरुः = सुलक्षण जंघा वाली	
मुकथी-खच्चरी		वामोरुः = सुन्दर जंघा वाली	
मत्सी-मछली.		शाङ्करवी = शृङ्गार की पुत्री	
दाक्षी-दक्षगोत्रोत्पन्ना स्त्री		वैदी = विदगोत्रोत्पन्ना स्त्री	
कुरुः-कुरु की अपत्य स्त्री		ब्राह्मणी = ब्राह्मण जाति स्त्री	
अध्वर्युः-ब्राह्मणी		नारी = स्त्री	
पद्मः पद्म स्त्री		युवतिः = युवा स्त्री	

इति अर्थसहिता लघुकौमुदीप्रयोगसूचिः ।

हरि ॐ तत्सत्



( शब्दों और धातुओं के रूपों का उत्तम संग्रह )

## \* रूपकोमुदी \*

संप्रदेकज्ञा

काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान्—श्रीगुरुप्रसादशास्त्री

न्यायकारणाचार्य, न्यायप्रवर्तक, दर्शनाचार्य ।

[ मित्रिलपत्र-क्षीराजस्थान-सरकृत भोजेज, काशी ]

सज्जनों !

काशी की प्रथमा परीक्षा में अब लघुकोमुदी में बाएँ पृष्ठ शब्दों के तथा धातुओं के रूप भी पूरे जाते हैं । परन्तु अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं छपी है, जिसमें लघुकोमुदी के क्रम से शब्दों के उभय धातुओं के सब रूप दिए हों ।

अतः परीक्षार्थी छात्रों को क० से दो शब्दों तथा धातुओं के रूपों को याद करना पड़ता है । जिससे बालकों को अवश्य कठिनाती होती है ।

इस कठिनाती को दूर करने के लिए ( बालकों के लाभार्थ ) हमने यह 'रूपकोमुदी' तैयार की है ।

इसमें लघुकोमुदी के अनुसार सभी शब्दों के तथा धातुओं के रूप अविकल रूप से दिए गए हैं इससे छोटे २ बालकों को कठिनाती में उभा परीक्षार्थी विद्यार्थियों को रूपों के अभ्यास करने में बड़ी सुविधा होगी ।

अतः परीक्षार्थी छात्रों को इसकी एक २ प्रति आज ही संग्रहीत बाँधिपे । इससे परीक्षा में बड़ी सहायता मिलेगी । आज ही बाँट दी जाय । पुस्तक हाथों हाथ निकल रही है । ( कलकत्ता ३२ वेणी साइज ) प्रोजेक्ट कारगज पृष्ठ संख्या ६५० सुन्दर कपड़े की जिल्द का मूल्य—१।=)

पुस्तक मिलने की प्रती

भार्गव प्रतियोगलय, गायधाट, बनारस ।

‘मास्टर’ मणिमीत्रायाः १०८ भण्डः ( आ० १० १ )

प्रथमपरीक्षायां निर्धारितम्

अष्टमरीक्षितं चकार चकारम् ॥

[ भाषाटीकासहितम् ]

वि. गो. टी. कृष्ण.

प्रकाशकः

मास्टर खेलाडीलाल ऐशद सन्स,

संस्कृत बुक डिपो,

कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

शाखा

मुरादपुर, बाँकीपुर, पटना ।

मूल्यमाणकचतुष्टयम् ।



ॐ



कमल-लोचन राम दयानिधे !





Master' Manimala series No. 108 (Akh. 1)

---

THE  
**Parikshitakarak**

OF THE  
**PANCHATANTRA**  
BY  
**Shri Vishnusharma.**

TRANSLATED INTO HINDI  
BY  
**Mannalal 'Abhimanyu' M.A.**

*Fourth Edition.*

PUBLISHED BY  
**Master Khelari Lal & Sons.,**

Sanskrit Book Depot  
**Kachauri Gall, Benares City.**  
Branch:—Moradpur, Bankipore,  
**PATNA**

**1940**

*Price 4 Annas.*

---

[ All rights reserved by the publisher. ]

Publisher:

J. N. Yadava Proprietor, Master Khelarilal & Sons  
Sanskrit Book Depot, Kachauri Gali, Banares City

Printer:—

Master Printing Works, Bulanala, Benares City

---

श्रीविष्णुशर्मसङ्कलितस्य

पञ्चतन्त्रस्य

अपरीक्षाकारकम् ।

१०८ १२८५-१३

टीकाकारः

श्रीमन्नलाल ‘अभिभन्यु’ एम० ए०

मन्त्र-६१

प्रकाशकः

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐएड सन्स

संस्कृतबुकडिपो,

कचौड़ी गली, बनारस सिटी ।

२०१३

शाखा

मुरादपुर, बाँकीपुर,

पटना ।

चतुर्थ संस्करणम् ।

सन् १९४० ई०

मूल्यमात्रकचतुष्टयम् ।



# अपरोक्षितकारकेस्य कथानामनुक्रमणिका ।

५००

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
मणिभद्रादीनां कथा	१
( १ ) देवशर्मग्राहणकथा ।	१३
( २ ) चतुर्ग्राहणपुत्रकथा	१७
( ३ ) सिंहकारकग्राहणकथा	३०
( ४ ) मूर्खपरिहृतकथा	३४
( ५ ) एकबुद्धि-शतबुद्धि-सहस्रबुद्धिकथा	४१
( ६ ) शृगालगर्दभकथा	४६
( ७ ) मन्थरकौलिककथा	५३
( ८ ) स्वभावकृपणग्राहणकथा	६३
( ९ ) चन्द्रनृपतिकथा	६६
( १० ) विकालराक्षसकथा	८१
( ११ ) त्रिस्तनीकन्याकथा	८७
( १२ ) चण्डकर्मराक्षसकथा	८८
( १३ ) एकोदशपृथग्प्रोवभारण्डपक्षिणः कथा	९८
( १४ ) ब्रह्मदत्तग्राहणकथा	१०३



# अपरीक्षितकारकम् ।

अथेदमारभ्यतेऽपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रम् ।  
यस्यायमादिमः श्लोकः

अब यह अपरीक्षितकारक नाम का पाँचवाँ तन्त्र प्रारम्भ होता है, जिसके आरम्भ का यह श्लोक है

कुट्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम् ।

तन्नरेण न कर्तव्यं नापितेनात्र यत्कृतम् ॥१॥

जो अच्छी तरह न देखा गया हो, अच्छी तरह न जाना गया हो, अच्छी तरह सुना न गया हो और भली भाँति न विवेचन किया ( जाँचा ) गया हो उसे, इस संसार में, मनुष्य को चाहिए कि न करे, जैसा कि नाई ने किया ॥ १ ॥

तद्यथानुश्रूयते अस्ति दक्षिणात्ये जनपदे पाटलि-  
पुत्रं नाम नगरम् । तत्र मणिभद्रो नाम श्रेष्ठो प्रतिवसति  
स्म । तस्य च धर्मार्थकाममोक्षकर्माणि कुर्वतो विधिवशा-  
द्धनक्षयः सञ्जातः । ततो विभवक्षयादपमानपरम्परया परं  
विषादं गतः । अथान्यदा रात्रौ सुप्तश्चिन्तितवान्—‘अहो !  
धिगियं दरिद्रता ॥ उक्तं च

सो ऐसा सुना जाता है, कि दक्षिण देश में पाटलिपुत्र नाम का एक नगर है । वहाँ मणिभद्र नाम का एक सेठ रहता था ।

प्रश्नः अधोलिखितवाक्यस्य हिन्दीभाषया व्याख्या कार्या ( सन् १९३५ )  
विभवक्षयादपमानपरम्परया परं विषादं गतः ।



उसके, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के कर्म करते हुए, भाग्यवशात् धन का नाश हो गया । तदनन्तर वैभव के नाश होने के कारण बारम्बार अनादर की प्राप्ति से अत्यन्त दुःखित हुआ । तब किसी रात्रि में सोता हुआ विचारने लगा 'अरे ! इस दरिद्रता को धिक्कार है ! कहा है

शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुले जन्म ।

न विराजन्ति हि सर्वे वित्तविहीनस्य पुरुषस्य ॥२॥

शील ( सदाचार ), पवित्रता, क्षमा ( सहनशीलता ), उदारता, मधुरता और कुलीनता ये सब ( गुण ) धनहीन मनुष्य को कुछ भी शोभा नहीं देते ॥ २ ॥

मानो वा दर्पो वा विज्ञानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा ।

सर्वे प्रणश्यति समं वित्तविहीनो यदा पुरुषः ॥३॥

जब मनुष्य निर्धन होता है तब सगान ( अथवा \* वित्त-समुन्नति ) अहंकार, † शिल्पकला, विलास और सुबुद्धि सब एक साथ नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

प्रतिदिवसं याति लयं वसन्तवाताऽऽहतेव शिशिरश्रीः ।

बुद्धिर्बुद्धिमतामपि कुटुम्बभरचिन्तया सततम् ॥४॥

वसन्त के पवन ( मलय-मारुत ) द्वारा आहत शिशिर ऋतु की शोभा के समान, बुद्धिमानों की भी बुद्धि, सर्वदा प्रति दिन परिवार-पोषण की चिन्ता में नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिः पुरुषस्य मन्दविभवस्य ।

धृत लवण-तैल-तण्डुल-वस्त्रेन्धन-चिन्तया सततम् ॥५॥

\* मानश्चित्तसमुन्नतिः' इत्यमरः ।

† 'मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः' इत्यमरः ।

बड़े विद्वान् भन्द-विभव ( निर्धन ) पुरुष की भी बुद्धि सदैव धी, नमक, तेल, चावल, कपड़ा, ईन्धन की चिन्ता के कारण नष्ट हो जाती है ॥ ५ ॥

भगनमिव नष्टतारं, शुष्कमिव सरः, श्मशानमिव रौद्रम् ।  
प्रियदर्शनमपि रुतं भवति गृहं धनविहीनस्य ॥ ६ ॥

निर्धन मनुष्य का भवन देखने योग्य सुन्दर होने पर भी तारा-रहित आकाश, सूखे सरोवर और भयंकर-श्मशान की भाँति-रुखा ( मालूम ) होता है ॥ ६ ॥

न विभाव्यन्ते लघवो वित्तविहीनाः पुरोऽपि निवसन्तः ।  
सततं जातविनष्टाः पयसामिव बुद्बुदाः पयसि ॥ ७ ॥

धनहीन लघु पुरुष सर्वदा आगे ( समीप ) में निवास करते हुए भी, जल में उत्पन्न होकर बाद में उसी में विलीन हुए जल के बुलबुले के समान, मालूम नहीं पड़ते ॥ ७ ॥

सुकुलं कुशलं सुजनं विहाय कुलकुशलशीलविकलेऽपि ।  
आढ्ये कल्पतराविव नित्यं रज्यन्ति जननिवहाः ॥ ८ ॥

जन-समूह सद्वंशोत्पन्न, प्रवीण और सज्जन पुरुष को छोड़कर कुलहीन, मूर्ख और शीलरहित धनी मनुष्य के प्रति, कल्पवृक्ष की भाँति सदैव प्रेम करते हैं ॥ ८ ॥

विफलमिह पूर्वसुकृतं विधावन्तोऽपि कुलसमुद्भूताः ।  
यस्य यदा विभवः स्यात्तस्य तदा दासतां यान्ति ॥ ९ ॥

इस लोक में पूर्व उपकार व्यर्थ है, क्योंकि अच्छे कुल में उत्पन्न विद्वान् भी जब जिसके पास ऐश्वर्य ( धन ) होता है तब उसके दासत्व को स्वीकार कर लेते हैं ॥ ९ ॥

लघुरयमाह न लोकः कामं गर्जन्तमपि पतिं पयसाम् ।

सर्वमलज्जाकर-यत्कुर्वतीह परिपूर्णाः ॥१०॥

स्वेच्छा से गर्जते हुए पयोनिधि ( सागर ) को मनुष्य 'यह लघु है' ऐसा नहीं कहते; ( ठीक है ) परिपूर्ण लोग ( धनवान् ) इस संसार में जो करते हैं वह उनके लिये लज्जा का कारण नहीं होता ॥१०॥

एवं सम्प्रधार्य भूयोऽप्यचिन्तयत् 'यदेहमनशनं कृत्वा प्राणानुत्सृजामि । किमनेन नो व्यर्थजीवितव्यसनेन ?' एवं निश्चयं कृत्वा सुप्तः ।

ऐसी धारणा कर, फिर भी विचार करने लगा कि 'मैं अनशन कर प्राणों को छोड़ दूँ । इस हमारे व्यर्थ जीवन के दुःख से क्या लाभ ?' ऐसा निश्चय कर सो गया ।

अथ तस्य स्वप्ने पद्मनिधिः क्षणिकरूपी दर्शनं दत्त्वा प्रोवाच 'भो श्रेष्ठिन् ! मा त्वं वैराग्यं गच्छ । अहं पद्मनिधिस्तव पूर्वपुरुषोऽपार्जितः । तदनेनैव रूपेण प्रातस्त्वद्ग्रहमागमिष्यामि । ततस्त्वयाऽहं लगुडप्रहारेण शिरसि ताडनीयः, येन कनकमयो भूत्वाऽक्षयो भवामि ।'

तब उसके स्वप्न में पद्मनिधि ने बौद्ध संन्यासी के रूप में दर्शन देकर कहा - 'हे सेठ जी ! तुम निराश मत हो । मैं पद्मनिधि तुम्हारे पूर्वजों द्वारा उपार्जित किया गया हूँ । अतः इसी रूप से प्रातःकाल तुम्हारे घर में आऊँगा । तब तुम मेरे शिर पर डण्डे से मारना, जिससे सुवर्ण रूप होकर अक्षय हो जाऊँगा ।

अथ प्रातः प्रबुद्धः सन् स्वप्नं स्मरंश्चिन्ताचक्रमारुढ-  
स्तिष्ठति 'अहो ! सत्योऽयं स्वप्नः, किम्वा असत्यो भवि-

प्यति ? न ज्ञायते । अथवा नूनं मिथ्या भाव्यम्, यतोऽहं केवलं वित्तमेव चिन्तयामि । उक्तं च

तव प्रातःकाल जागकर स्वप्न का स्मरण करता हुआ इस प्रकार चिन्ता से आक्रान्त था कि 'अहो ! यह स्वप्न सत्य है या असत्य होगा, यह भी मालूम नहीं होता । अथवा निस्सन्देह मिथ्या होगा, क्योंकि मैं केवल धन ही की चिन्ता किया करता हूँ ।' कहा है

व्याधितेन सशोकेन चिन्ताग्रस्तेन जन्तुना ।

कामार्तेनाथ मत्तेन दृष्टः स्वप्नो निरर्थकः ॥११॥

व्याधिग्रस्त ( रोगी ), शोक युक्त, चिन्ताकुल, काम पीड़ित और मत्त प्राणी द्वारा देखा हुआ स्वप्न निष्फल होता है ॥११॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्य भार्यया कश्चिन्नीपितः पादप्रक्षालनायाऽऽहूतः ॥ अत्रान्तरे च यथानिर्दिष्टः क्षणिकः सहसा प्रादुर्भव । अथ स तमालोक्य महष्टमना असिन्नकाष्ठदण्डेन तं शिरस्यताडयत् । सोऽपि सुवर्णमयो भूत्वा तत्क्षणाद्भूमौ निपतितः ।

इसी समय उसकी गृहिणी (सेठायन) ने किसी नार्ई को पादप्रक्षालन ( नख काटने और पैरों में महावर लगाने ) के लिए बुलाया । इसी बीच पूर्व-वाक्यानुसार बौद्धसंन्यासी एकाएक प्रकट हुआ । तब उसने उसे देखकर, प्रसन्नचित्त हो, समीप रक्खी हुई लकड़ी से उसके शिर में मारा । वह भी सुवर्णमय होकर उसी क्षण धरणीतल पर गिर पड़ा ।

प्रश्नः निम्नाद्धितगयभागस्य सरलहिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः-(सन् १९३७)

अथ स तमालोक्य .. .. येन प्रभूतं दण्डकं मे भवति ।

अथ श्रेष्ठी निभृतं स्वगृहमध्ये कृत्वा नापितं सन्तोष्य  
 भोवाच-‘तदेतद्धनं वस्त्राणि च मया दत्तानि गृहाय ।  
 भद्र ! पुनः कस्यचिन्नाख्येयोऽयं वृत्तान्तः ।’ नापितोऽपि  
 स्वगृहं गत्वा व्यचिन्तयत् ‘नूनमेते सर्वेऽपि नश्रकाः  
 शिरसि दण्डहताः काञ्चनमया भवन्ति । तदहमपि प्रातः  
 प्रभूतानाहूय लघुदैः शिरसि हन्मि, येन प्रभूतं हाटकं मे  
 भवति ।’ एवं चिन्तयतो महता कष्टेन निशाऽतिचक्राम ।

तदनन्तर, सेठ ने एका-रा में अपने गृह के भीतर ले आकर  
 नाई को सन्तुष्ट कर कहा ‘यह मेरे दिए हुए धन और वस्त्र स्वीकार  
 करो । हे भद्र ! फिर किसी से यह वृत्तान्त न कहना ।’ नाई भी  
 अपने घर जाकर विचार करने लगा ‘निश्चय ही क्षपणक, शिर  
 पर डण्डे से मारने पर, सुवर्ण के हो जाते हैं । सो मैं भी प्रातः  
 काल बहुत से ( बौद्ध संन्यासियों को ) बुलाकर डण्डे से शिर पर  
 प्रहार करूँ, जिससे बहुत सुवर्ण मेरे पास होजाय ।’ इस प्रकार  
 चिन्ता करते हुए अत्यन्त कष्ट के साथ उसकी रात्रि बीती ।

अथ प्रभातेऽभ्युत्थाय बृहस्पगुडमेकं प्रगुणीकृत्य,  
 क्षपणकविहारं गत्वा जिनेन्द्रस्य भद्रक्षिणात्रयं विधाय,  
 जानुभ्यामवनिं स्पृष्ट्वा, वक्त्रद्वारन्यस्तोत्तरीयाञ्चलस्तोर-  
 स्वरेणोमं श्लोकमपठत्

तब प्रभात में उठ कर, एक बड़ी लकड़ी तैयार कर, बौद्ध  
 संन्यासियों के विहार में जाकर, जिनेन्द्र ( बुद्ध भगवान् ) की  
 तीन प्रदक्षिणा ( फेरी ) करके धुटने के बल पृथ्वी को स्पर्शकर ( अर्थात् )

\* ‘विहारो अभयो रन्ध्रे लीलायां सुगतालये’ इति मेदिनी ।

वैठकर ) मुँह में दुपट्टा लपेटे हुए उसने उच्च स्वर से इस श्लोक को पढ़ा

‘जयन्ति ते जिना येषां केवलज्ञानशालिनाम् ।

आजगानः स्मरोत्पत्तौ मानसेनोपरायितम् ॥१२॥

केवल ज्ञानवान् और जिनके मन में जन्म ही से काम की उत्पत्ति ऊसर की भाँति रही है ( अर्थात् जिनके मन में कभी भी वासना का आविर्भाव तक नहीं हुआ है ) वे बौद्ध ( बोधिसत्व ) उत्कृष्ट हैं ॥ १२ ॥

अन्यच्च

और भी,

सा जिह्वा या जिनं स्तौति, तच्चित्तं यज्जिने रतम् ।

तावेव च करौ श्लाघ्यौ, यौ तत्पूजाकरौ करौ ॥१३॥

वही ( यथार्थ में ) जिह्वा है जो बुद्ध की स्तुति करती है, वही चित्त है जो बुद्ध में आसक्ति रखती है और वे ही प्रशंसनीय हाथ हैं जो ( हाथ ) उनकी पूजा करने वाले हैं ॥ १३ ॥

तथा च ।

और भी

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं

पश्याऽनङ्गशरातुरं जनमिमं, त्राताऽपि नो रक्षसि ।

मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमान्

सेर्ष्यमारवधूभिरित्यभिहितो बौद्धो जिनः पातु वः ॥१४॥

समाधि क बहाने किस सुन्दरी की चिन्ता करते हो । क्षण भर के लिए अपनी आँख खोल कर कामदेव के बाण से पीड़ित इस जन की ( अर्थात् मेरी ) ओर देखो, रक्षक होकर भी तुम

रक्षा नहीं करते। अतः तुम वस्तुतः दयावान् नहीं हो, तुम मे  
बढ़ कर और कौन पुरुष दया-रहित होगा। ईर्ष्या के सहित कामदेव  
की वधुओं से इस प्रकार कहे गए बौद्धमन-प्रवर्तक भगवान् बुद्ध  
तुम्हारी रक्षा करें † ॥१४॥

एवं संस्तुत्य ततः प्रवानज्जपणकमासाद्य क्षितिनिहित-  
जानुचरणाः, 'नमोऽस्तु ! वन्दे' इत्युच्चार्य लब्धधर्मवृद्ध्या-  
शीर्वादः सुखमालिकाऽनुग्रहलब्धव्रतादेश उत्तरीयनिवद्ध-  
ग्रन्थिः सप्रश्रयमिदमाह 'भगवन् ! अद्य विहरणक्रिया  
'समस्तमुनिसमेतेनाऽस्मद्गृहे कर्तव्या ।'

इस तरह स्तुति करने के बाद प्रधान बौद्ध संन्यासी के निकट  
जाकर, पृथ्वी पर घुटने के बल बैठे हुए, उसने कहा—'आपको नम-  
स्कार है, मैं आपकी वन्दना करता हूँ।' ऐसा कह कर और धर्म-  
वृद्धि (अर्थात् धर्म में तुम्हारी बुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती रहे) का आशी-  
र्वाद पाकर, सुखदायक माला के अनुग्रह (समर्पण) से व्रत की  
आज्ञा पाए हुए और गले में दुपट्टा लपेटे हुए उसने विनय पूर्वक  
यह कहा 'हे भगवन् ! आज भिन्ना भोजन के निमित्त भ्रमण  
करने की क्रिया, सम्पूर्णा मुनिजनों के सहित, मेरे घर करें (अर्थात्  
मेरे घर पर आप लोग आकर भोजन करें) ।

स आह 'भोः श्रावक ! धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि ?

† श्रीहर्षदेव प्रणीत 'नागानन्द' नाटक का यह पहला श्लोक है।

प्रश्नः—अधोलिखितगद्यस्य शुद्धहिन्दीभाषयाऽनुवादः कार्यः (सन् १९३४, ३८)

एवं संस्तुत्य.....नैवं भूयोऽपि वाच्यम् ।

प्रश्नः—अधोलिखितगद्यस्य सरलसंस्कृतेन व्याख्याः कार्या ( १९३८ )

एवं संस्तुत्य.....सप्रश्रयमिदमाह ।

किं वयं ब्राह्मणसमानाः, यत् आमन्त्रणं करोषि ? वयं सदैव तत्कालपरिचर्याया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः । तेन कृच्छ्रादभ्यर्थितास्तद्गृहे प्राणधारणमात्रामशनक्रियां कुर्मः । तद्गम्यताम् । नैवं भूयोऽपि वाच्यम् ।'

उसने कहा हे श्रावक ! धर्म के ज्ञाता होकर भी क्यों, इस प्रकार कह रहे हो ? क्या हम लोग, ब्राह्मणों की तरह हैं जिससे निमन्त्रणा दे रहे हो ? हम लोग तो सर्वदा उपयुक्त काल की उपासना ( भोजन करने के समय ) से भ्रमण करते हुए किसी अद्भालु श्रावक को देख कर उसके घर चले जाते हैं । और उसकी अत्यन्त प्रार्थना पर उसके घर पर प्राणरक्षार्थ भोजन की क्रिया करते हैं । सो चले जाओ, फिर ऐसा मत कहना ।'

तच्छ्रुत्वा नापित आह—'भगवन् ! वेदस्यहं युष्मद्धर्मम् । परं भवतो बहुश्रावका आह्वयन्ति । साम्प्रतं पुनः पुस्तकाच्छादनयोग्यानि कर्पटानि बहुमूल्यानि प्रगुणीकृतानि । तथा पुस्तकानां लेखनाय लेखकानां च वित्तं सञ्चितमास्ते । तत्सर्वथा कालोचितं कार्यम् ।' इत्युक्त्वा स्वगृहं गतः ।

उसे सुन कर नाई ने कहा 'भगवन् ! मैं आपके धर्म को जानता हूँ । परन्तु आप लोगों को बहुत श्रावक ( सरावगी ) लोग बुलाते हैं । इस समय पुस्तक बाँधने के योग्य बहुमूल्य कपड़े इकट्ठे किए हैं । तथा पुस्तकों के लिखने के लिए लेखकों के निमित्त धन भी एकत्रित किया है, सो सर्वथा जो समयानुसार हो उसे कीजिए ।' ऐसा कह कर अपने घर चला गया ।



तत्र च गत्वा खादिरमयं लघुदं सज्जीकृत्य कपाट-  
युगलं द्वारे समाधाय, सार्वप्रहरैकसमये भूयोऽपि विहारद्वार-  
माश्रित्य, सर्वान्क्रमेण निष्क्रामतो गुरुभार्यनया स्वगृहमान-  
यत् । तेऽपि सर्वे कर्पटवित्तलोभेन भक्तियुक्तानपि परिचित-  
श्रावकान्परित्यज्य बहुष्टमनसस्तस्य पृष्ठतो ययुः । अथवा  
साध्विदमुच्यते—

वहाँ जाकर खैर की लकड़ी ठीक ( तैयार ) कर घर के दोनों  
किवाड़ बन्द कर, डेढ़ पहर के बाद फिर भी विहार ( नौदों के मठ )  
के द्वार पर आकर सब के क्रमानुसार निकलने पर बड़ी प्रार्थना  
( अत्यन्त आग्रह ) कर अपने घर ले आया । वे सब भी कपड़ा  
और धन के लोभ से भक्ति-संयुक्त और परिचित श्रावकों का परित्याग  
कर प्रमुदित मन से उसके पीछे र गये । अथवा ठीक ही कहा है

एकाकी गृहसन्त्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।

सोऽपि संवाह्यते लोके तृणया पश्य कौतुकम् ॥१५॥

जो अकेला, भवनरहित, और हस्त रूपी पात्र वाला, दिगम्बर  
संन्यासी है वह भी तृण द्वारा आकृष्ट होता है, इस आश्चर्य को देखो॥

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।

चक्षुःश्रोत्रे च जीर्यन्ते तृणैका तरुणायते ॥१६॥

वृद्ध होने पर केश पक जाते हैं, और बुढ़े होने से दाँत भी जीर्ण  
( टूट और शिथिल ) हो जाते हैं तथा आँख-कान भी जीर्ण हो जाते  
हैं ( अर्थात् आँखों से कम दिखाई पड़ता है और कानों से कम  
सुनाई पड़ता है ); किन्तु एक तृण ही तरुण होती जाती है ॥१६॥

ततः परं गृहमध्ये तान्प्रवेश्य द्वारं निमृत्तं पिधाय

लघुदमशरैः शिरस्यताडयत् । तेऽपि ताड्यमाना एके  
मृताः, अन्ये भिन्नमस्तकाः फूत्कर्तुमुपचक्रमिरे । अनान्तरे  
तमाक्रन्दमाकर्ण्य कोटरक्षपालैरभिहितम्—‘भो भोः ! किमयं  
महान्कोलाहलो नगरमध्ये ? तद्गम्यतां, गम्यताम् ?’ ते  
च सर्वे तदादेशकारिणस्तत्सहिता वेगात्तद्गृहं गत्वा  
तावद्बुधिरसावितदेहाः पलायमाना नग्नका दृष्टाः ।

तब घर में उनको प्रवेश करा कर, दरवाजे को अच्छी तरह  
बन्द कर, डगडे से शिर पर प्रहार किया । उन मारे गए हुए में  
एक मर गया, दूसरे शिर फूटने पर चीखने लगे । इसी बीच उस  
चीत्कार के शब्द को सुनकर कोटरक्षपाल ( दुर्गरक्षक, फौतवाल )  
ने कहा ‘हे ! नगर में यह बड़ा कोलाहल कैसा मचा है ? सो  
जाओ ! जाओ !!’ उसकी आज्ञा पालन करने वाले उसके सहित  
तेजी से उस घर में जाकर खून से लथपथ शरीर वाले संन्यासियों  
को उन्होंने भागते हुए देखा ।

पृष्टाश्च ‘भोः ! किमेतत् ?’ ते प्रोचुर्यथावस्थितं नापि-  
तद्वृत्तान्तम् । तैरपि स नापितो वद्धो हतशेषैः सह धर्मा-  
धिष्ठानं नीतः । तैर्नापितः पृष्टः ‘भोः ! किमेतद्भवता-  
कुकृत्यमनुष्ठितम् ?’ स आह ‘किं करोमि ? मया श्रेष्ठि-  
मणिभद्रगृहे दृष्ट एवंविधो व्यतिकरः ।’ सोऽपि सर्वं मणि-  
भद्रवृत्तान्तं यथादृष्टमकथयत् ।

प्रश्न. अधोलिखितवाक्यस्य संस्कृतेन व्याख्या कार्या (सन् १६३५, ३७).  
मया श्रेष्ठिमणिभद्रगृहे दृष्ट एवंविधो व्यतिकरः ।

प्रश्न. निम्नाङ्कितः सन्दर्भः स्वसंस्कृतेन व्याख्येयः ( सन् १६३६ )  
ते प्रोचुर्यथावस्थितं नापितद्वृत्तान्तम् । ..... एवंविधो व्यतिकरः ।

उन संन्यासियों से उन्होंने पूछा--‘अरे ! यह क्या बात है ।’ तब उन्होंने नाई के वृत्तान्त को सब बतला दिया । तब उन लोगों ने नाई को बाँध लिया और सृतको में से बचे हुए ( संन्यासियों ) के साथ वे कचहरी में पहुँचे । उन लोगों ने नाई से पूछा ‘अरे ! तुमने यह क्या कुकर्म किया है ?’ उसने कहा ‘मैं क्या करूँ ? मैंने सेठ मणिभद्र के घर में ऐसी ही घटना देखी थी ।’ तब फिर सब मणिभद्र के वृत्तान्त को जैसा देखा था वैसे कह दिया ।

ततः श्रेष्ठिनमाहूय भणितवन्तः ‘भो श्रेष्ठिन् ! किं खया कश्चित्क्षपणको व्यापादितः ?’ ततस्तेनाऽपि सर्वः क्षपणकवृत्तान्तस्तेषां निवेदितः । अथ तैरभिहितम्--‘अहो ! शूलभारोप्यतामसौ दुष्टात्मा कुपरीक्षितकारी नापितः ।’ तथाऽनुष्ठिते तैरभिहितम्--

तब सेठ को बुला कर उन लोगों ने कहा कि ‘हे सेठ ! क्या तुमने किसी बौद्ध-संन्यासी को मारा था ?’ तब उसने भी क्षपणक के सब वृत्तान्त को उनमें निवेदन कर दिया । तदनन्तर उन लोगों ने कहा ‘अहो ! इस दुष्टात्मा को शूली पर चढ़ा दो । यह नाई किसी बात को बिना अच्छी तरह समझे हुए काम करने वाला है’ वैसे करने पर उन्होंने कहा

कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम् ।

तन्नरेण न कर्तव्यं नापितेनाऽत्र यत्कृतम् ॥ १७ ॥

जो अच्छी तरह देखा न गया हो, अच्छी तरह जाना न गया हो, अच्छी तरह सुना न गया हो, भली भाँति विवेचन न किया गया हो उसे इस संसार में मनुष्य को चाहिये कि न करे, जैसा कि नाई ने किया ॥ १७ ॥

अथवा ठीक ही कहा है

अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम् ।

पश्चाद्भवति सन्तापो ब्राह्मण्यां नकुलार्थतः ॥१८॥

विना परीक्षा किए हुए कोई कार्य न करना चाहिए, और अच्छी तरह विवेचना करनेके उपरान्त कार्य करना चाहिए क्योंकि बाद में नेवले के लिए ब्राह्मणी की भौति, दुःख होता है ॥१८॥

मणिभद्र आह 'कथमेतत् ?' ते धर्माधिकारिणः प्रोचुः—

मणिभद्र ने कहा 'यह कथा किस प्रकार है ?' उन धर्माधिकारियों ने कहा

( कथा १ )

करिणश्चिदधिष्ठाने देवशर्मा नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति राग । तस्य भार्या सुतमजनयत् । तस्मिन्नेव दिने काचित् नकुली तत्रैव नकुलमेकं प्रसूय मृता । अथ सा सुतवत्सला दारकवत्तमपि नकुलं स्तन्यदानाभ्यङ्गमर्दनादिभिः पुषोष । परं तस्य न विश्वसिति; अपत्यस्नेहस्य सर्वस्नेहातिरिक्तया सततमेवमाशङ्कते 'यत्कदाचिदेष स्वजातिदोषवशात्प्रियस्य स्वदारकस्य विरुद्धमाचरिष्यतीति ।' उक्तं च

किसी नगर में देवशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था । उसकी प्रश्न अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम् ।

पश्चाद्भवति सन्तापो ब्राह्मण्यां नकुलार्थतः ॥

इत्यमुं श्लोकमुद्दिश्यैका कथा स्वसंस्कृतेन लेख्या ( सन् १६३७ )

प्रश्न देवशर्मा ब्राह्मणनकुलकथा स्वसंस्कृतेन संक्षेपतो वर्णनीया

( सन् १६३५ )

सहधर्मिणी ने पुत्र उत्पन्न किया । उसी दिन कोई नेवली उसी स्थान पर एक नेवले को जन्म देकर मर गयी । तब पुत्र के प्रति प्रेमवाली उस (ब्राह्मणी) ने अपने बालक की भाँति उस नेवले को भी राजन के दुग्धदान, शरीर में तैल आदि लगाने एवं हाथ-पैर मीजने से पालन किया, परन्तु उसका विश्वास न करती थी; सन्तति-प्रेम सब स्नेहों से उत्तम होने के कारण सर्वदा इस प्रकार की आशङ्का करती थी कि कहीं यह ( नेवला ) अपनी जाति के दोष से भरे प्रिय पुत्र के विरुद्ध आचरण न करे ।' कहा है

कुपुत्रोऽपि भवेत्पुंसां हृदयानन्दकारकः ।

दुर्विनीतः कुरूपोऽपि मूर्खोऽपि व्यसनी खलः ॥१६॥

दुर्विनीत, कुरूप, मूर्ख, व्यसनप्रिय, दुष्ट कुपुत्र भी मनुष्यों के हृदय में आनन्द देने वाला होता है ॥१६॥

एवं च भाषते लोकश्चन्दनं किल शीतलम् ।

पुत्रगात्रस्य संस्पर्शश्चन्दनादतिरिच्यते ॥२०॥

लोग यह कहते हैं कि चन्दन शीतल होता है, किन्तु पुत्र के शरीर का स्पर्श चन्दन से भी शीतलता में अधिक बढ़ जाता है ॥२०॥

सौहृदस्य न वाञ्छति जनकस्य हितस्य च ।

लोकाः प्रपालकस्याऽपि यथा पुत्रस्य बन्धनम् ॥२१॥

मनुष्य लोग मित्र, पिता, हितकारी, और विशेष रीति से पालन करने वाले के बन्धन की भी उतनी अभिलाषा नहीं करते जितनी पुत्र के स्नेह-बन्धन की ( अभिलाषा करते हैं ) ॥२१॥

अथ सा कदाचिच्छय्यायां पुत्रं शाययित्वा जलकुम्भ-  
मादाय पतिमुवाच 'ब्राह्मण ! जलार्थमहं तडागे यामि,  
त्वया पुत्रोऽयं नकुलाद्रक्षणीयः ।' अथ तस्यां गतायां

ब्राह्मणोऽपि 'कश्चिन्महात्मा दरिद्रेभ्यः बहुधनं वितरति'  
इति परम्परया श्रुतां वार्तामनुरगृत्य अतिदरिद्रतया तमुद्देशं  
गन्तुमिच्छन्, विलम्बे गमनञ्च धनप्राप्तिप्रतिकूलं तर्कयन्,  
चिरं सुतनिर्विशेषलालितं नकुलं बालकरक्षायाय नियुज्य  
निर्गतः ।

किसी समय उसने, शय्या पर पुत्र को शयन करा कर जल के  
थड़े को लेकर, पति से कहा 'हे ब्राह्मण ! जल ( लाने ) के लिए  
मैं तालाब पर जाती हूँ, तुम इस पुत्र की नेवले से रक्षा करना ।'  
तब उसके चले जाने पर ब्राह्मण भी 'कोई महात्मा दरिद्रों को बहुत  
धन देते हैं' ऐसी परस्पर से सुनी हुई बात का स्मरण कर, बहुत  
दरिद्र होने के कारण उसी के पास जाने की इच्छा करता हुआ,  
और विलम्ब करके जाने में धन की प्राप्ति न होगी ऐसी तर्कना  
करता हुआ, चिरकाल तक पुत्र के समान लालन किए हुए नेवले को  
बालक की रक्षा के लिए नियुक्त कर (दान लेने के लिए) चला गया ।

अत्रान्तरे दैववशात्कृष्णसर्पो विलान्निष्क्रान्तः । नकु-  
लोऽपि तं स्वभाववैरिणं भ्राता भ्रातृ रक्षणार्थं सर्पेण सह  
युद्ध्वा तं खण्डशः कृतवान् । ततोऽसौ रुधिराध्वावित-  
वदनः सानन्दं स्वव्यापारप्रकाशनार्थं मातुः सम्मुखे गतः ।  
माताऽपि तं रुधिरक्लिन्नमुखमवलोक्य—'अनेन दुरात्मना मे  
दारको भक्षितः' इति शङ्कितचिन्ता कोपात्तस्थोपरि तं  
जलकुम्भं निक्षिप्य व्यापादितवती ।

इसी बीच भाग्यवश एक काला साँप झिल से निकला; नेवले ने  
सहज शत्रु जान कर, भाई की रक्षा के लिए, सर्प के साथ युद्ध

कर, उसे टुकड़े २ कर डाला । तब यह खून से रंगा हुआ मुँहवाला नेवला आनन्दपूर्वक अपनी क्रिया को प्रगट करने के लिए माता के आगे गया । माता ने भी खून से रंगे हुए उसके मुँह को देखकर 'इस दुरात्मा ने मेरे बालक को खा लिया है' ऐसा शङ्कित चित्त होने पर, कुपित हो, उसके ऊपर जल के घड़े को फेंक कर भार डाला ।

ततः सम्भावितपुत्रवधशोकेन भूयोभूयः आत्मशिरो-  
वक्षःस्थलञ्च ताडयितुमारब्धः । एवं सानकुलं व्यापाद्य याव-  
त्प्रलपन्ती द्रुतमागच्छति, तावद्गृहीतनिर्वापं समायान्तं ब्राह्मणं  
समीक्ष्य शोकसन्तप्तहृदया पुत्रस्य नकुलस्य च वार्तां सर्वा-  
मेवावर्णयत्, किञ्चिद्दूरे व्यापाद्यमानं नकुलञ्चादर्शयत् ।

तब सम्भावना किए हुए पुत्र के मरण से उसने बारम्बार अपने शिर और उरःस्थल को पीटना आरम्भ किया । इस प्रकार नेवले को मार कर ज्योंही प्रलाप करती हुई शीघ्रही भीतर आने लगती है, त्योंही दान लेकर आए हुए ब्राह्मण को देखकर उस शोक से सन्तप्त हृदयवाली ब्राह्मणी ने पुत्र और नेवले का सब वृत्तान्त वर्णन कर दिया और कुछ दूर मारे हुए नेवले को भी दिखला दिया ।

ज्ञात्वैतद्ब्राह्मणोऽपि तथा सह विलपन् गृहस्थन्तरमाग-  
त्य तत्र च सुतस्तथैव सुप्तस्तिष्ठति । पार्श्वे च कृष्णसर्पं स्वण्डशः  
कृतमवलोक्य, नकुलार्थं परं विधादमुपाययौ । ततः सा  
ब्राह्मणी सुस्थशरीरसुतमुखदशनात् प्रवृत्तशोकावेगे

अन अघोलिखितवाक्यस्य संस्कृतेन व्याख्या कार्या ( सन् १६३५, ३७ )

अत्रान्तरे गृहीतनिर्वाप. समायातो यावत्पश्यति तावत्पुत्रशोकाभितप्त  
ब्राह्मणी प्रलपति ।

प्रशमिते सति ब्राह्मणमाह—‘भो भो लोभात्मन् ! अति-  
लोभाभूतेन त्वया न कृतं मद्बचः । तदनुभव साम्प्रतं  
पुत्रमृत्युदुःखवृक्षफलम् । अथवा साधिवदमुच्यते—

इसे जानकर ब्राह्मण भी उसके साथ विलाप करता हुआ  
घर के भीतर आकर और वहाँ लड़के को उसी तरह सोया  
हुआ और पास में काले साँप को दुकड़े र किए हुए देख कर,  
नेवले के लिए अत्यन्त दुःखित हुआ । तब उस ब्राह्मणी ने, स्वस्थ  
शरीर वाले पुत्र का मुँह देखने से प्रबल शोक के वेग के कम होने  
पर, ब्राह्मण से कहा, ‘अरे लोमी ! अत्यन्त लोभ के वशीभूत  
हो तुमने मेरी बात न मानी, इस लिए इस समय पुत्र की मृत्यु  
से उत्पन्न हुए दुःखरूपी वृक्ष के फल का अनुभव करो । अथवा  
ठीक ही कहा है

अतिलोभो न कर्तव्यो लोभं नैव परित्यजेत् ।

अतिलोभाभिभूतस्य चक्रं भ्रमति मस्तके ॥२२॥

अत्यन्त लालच भी न करना चाहिए और सर्वथा लालच छोड़  
भी न देना चाहिये । अत्यन्त लोभ से वशीभूत मनुष्य के मस्तक-  
पर चक्र घूमता रहता है ॥२२॥

तच्छ्रुत्वा ब्राह्मण आह ‘कथमेतत् !’ सा प्राह

से सुन कर ब्राह्मण ने कहा ‘यह किस प्रकार की कथा है ?’  
उत्तरे कहा

( कथा २ )

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः परस्परं



मित्रतां गता वसन्ति स्म । ते दारिद्र्योपहताः परस्परं  
मन्त्रं चक्रुः 'अहो ! धिगिधं दरिद्रता !! उरुं च—

किसी नगर में चार ब्राह्मण के पुत्र परस्पर मित्र भाव को प्राप्त  
होकर रहते थे । उन लोगों ने दरिद्रता से पीड़ित (दुःखित) होकर आपस  
में सलाह किया, कि 'अरे ! इस दरिद्रता की धिक्कार है । कहा है

वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितं

जनेन हीनं बहुकष्टकावृतम् ।

तृणानि शय्या परिधानवल्कलं

न बन्धुमध्ये धनहीनजीवितम् ॥२३॥

बल्कि बाघ हाथी से आक्रान्त, मनुष्यों से रहित ( निर्जन ),  
बहुत काँटों से भरा हुआ वन अच्छा है, और तृण की शय्या एवं  
पेड़ की छाल का वस्त्र भी श्रेयस्कर है; किन्तु बन्धुओं के बीच  
धनरहित होकर जीना अच्छा नहीं है ॥२३॥

तथा च

और भी

स्वामी द्वेष्टि सुसेवितोऽपि, सहसा प्रोज्झन्ति सखन्धवा  
राजन्ते न गुण्यास्त्यजन्ति तनुजाः, स्फारीमन्त्यापदः ।  
भार्या साधु सुवंशजाऽपि भजते नो, यान्ति मित्राणि च  
न्यायारोपितविक्रमाण्यपि नृणां येषां न हि स्याद्धनम् ॥२४॥

अच्छी तरह सेवा किया गया भी प्रसु आदर नहीं करता,

प्रश्नः १ अधोलिखितवाक्यस्य स्वसंस्कृतेन व्याख्या कार्या ( सन् ३६ )

ते च दारिद्र्योपहताः परस्परं मन्त्रं चक्रुः ।

\* 'बान्धवो शातिसुहृदोः' इति मेदिनी ।

सन्धेवान्धव निष्कारणं त्याग देते हैं, गुण आदि शोभित नहीं होते, पुत्र छोड़ देते हैं, आपत्ति विस्तृत हो जाती है, सर्वशोत्पन्न भार्या भी अच्छी तरह सेवा नहीं करती, और नीतिमार्ग से आरोपित पुरुषार्थ प्राप्त ( अर्थात् न्याय-परायण ) मित्र भी उनके पास नहीं आते जिनके पास धन नहीं रहता ॥२४॥

शूरः सूरूपः सुभगश्च वाग्मी

शस्त्राणि शास्त्राणि विदाङ्कुरोति ।

अर्थं विना नैव यशश्च मानं

प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्यलोके ॥२५॥

इस संसार में शूर रूपशाली, सर्व-लोकप्रिय, वचन-पटु, शस्त्र तथा शास्त्र का ज्ञाता मनुष्य ( भी ) धन के बिना न तो कीर्ति और न प्रतिष्ठा पाता है ॥२५॥

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम

सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।

अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव

वाह्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥२६॥

वही ज्यो को त्यों इन्द्रियाँ हैं, वही नाम है, वही अकुण्ठित बुद्धि है और वचन भी वही है; किन्तु धन की गर्मी से हीन हुआ वही मनुष्य क्षण भर ही में दूसरा हो जाता है, यही विचित्र है\* ॥

तद्गच्छामः कुत्रचिदर्थाय ।' इति सम्मन्त्र्य स्वदेशं  
पुरं च स्वसुहृत्सहितं बान्धवयुतं गृहं च परित्यज्य प्रस्थिताः । अथवा साध्विदमुच्यते

\* भर्तृहरिविरचित नीतिशतक देखिए ।

सो कहीं धन कमाने के लिए चलना चाहिए' ऐसी मन्त्रणा कर अपने देश, नगर और सुहृद् और जाति बान्धव युक्त घर को छोड़ कर, जन लोगों ने प्रस्थान किया। अथवा ठीक ही कहा है

सत्यं परित्यजति, मुञ्चति बन्धुवर्गं,

शीघ्रं विहाय जननीमपि जन्मभूमिम् ।

सन्त्यज्य, गच्छति विदेशमभीष्टलोकं

चिन्ताकुलीकृतमतिः पुरुषोऽत्र लोके ॥२७॥

इस संसार में चिन्ता से व्याकुल चित्तवाला पुरुष सत्य को, बन्धु वर्ग को, शीघ्र जननी और जन्मभूमि को, और प्रियजन को छोड़कर विदेश चला जाता है ॥२७॥

एवं क्रमेण गच्छन्तोऽवन्तीं प्राप्ताः । तत्र सिन्धुजले  
कृतस्तानां महाकालं प्रणम्य यावन्निर्गच्छन्ति, तावद्-

\* सौराष्ट्रे सोमनाथश्च, श्रीशैले मल्लिकार्जुनः ।

उज्जयिन्यां महाकालः, उज्जैनश्च महेश्वरः ॥

परल्यां वैजनाथश्च, डाकिन्यां भीमशङ्करः ।

सेतुबन्धे तु रामेशो, नागेशो दारुकावने ॥

हिमालये तु केदारो, धृष्येशस्तु शिवालये ।

वाराणस्यां तु विश्वेशः, त्र्यम्बको गौतमीतटे ॥

'शिप्रया परिक्षिता विजितामरलोकद्युतिरवन्तिभूज्जयिनी नाम नगरी ।'  
( इति कादम्बर्याम् ) ।

रघुवंशे 'असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्तदूरे किल चन्द्रमौलेः ।

तमित्तपक्षेऽपि सह प्रियामिज्योत्स्नावतो निविशति प्रदोषान् ॥

उक्तं च स्कन्दपुराणेः आकाशे तारक लिङ्गं, पाताले हाटकेश्वरम् ।

मर्त्यलोके महाकालं, दृष्ट्वा काममवाप्नुयात् ॥

भैरवानन्दो नाम योगी सम्मुखो बभूव । ततस्तं ब्राह्मणो-  
चितविधिना सम्भाव्य तेनैव सह तस्य मठं जग्मुः । अथ  
तेन ते पृष्टाः 'कुतो भवन्तः समायाताः ? कयास्यथ ?  
किं प्रयोजनम् ?' ततस्तैरभिहितम्—'वयं सिद्धियात्रिकाः ।  
तत्र यास्यामो यत्र धनाप्तिमृत्युर्वा भविष्यतीत्येवास्माकं  
निश्चयः । उक्तं च

इस प्रकार क्रम से जाते हुए वे अवन्ती ( उज्जैन ) पहुँचे ।  
वहाँ शिप्रा ( आधुनिक वेतवा ) नदी के जल में स्नान कर महाकाल  
( उज्जयिनी के ज्योतिर्लिंग ) को प्रणाम कर ज्योंही निकलते हैं,  
त्योंही भैरवानन्द नाम का एक योगी सामने आया । तब उसे  
ब्राह्मणोचित विधि से आदर-सत्कार कर उसी के साथ उसके मठ  
में गये । तब उसने उन सबसे पूछा 'आप कहाँ से आ रहे हैं ?  
कहाँ जायेंगे ? क्या अभिप्राय है ?' तब उन सबने उत्तर दिया—  
'हमने कार्य सिद्धि के लिए यात्रा की है, अतः वहाँ जायेंगे जहाँ  
धन की प्राप्ति हो अथवा मृत्यु हो जाय । ऐसा हम लोगों का निश्चय  
है । कहा भी है

दुष्प्राप्याणि बहूनि च लभ्यन्ते वाञ्छितानि द्रव्यानि ।  
अवसरतुलिताभिरलं तनुभिः साहसिकपुरुषाणाम् ॥२८॥

साहसी पुरुषों को मौके पर चेष्टा किए हुए शरीर से दुर्लभ  
और अभिलषित बहुत धन प्राप्त होते हैं ॥२८॥

तथा च

और भी

अर्थ— 'सम्भाव्य' शब्दस्य संस्कृतपर्यायशब्दा लेख्याः ( १३३६ )

पतति कदाचिन्नभसः खाते पातालतोऽपि जलमेति ।

दैवमचिन्त्यं बलवद्वलवान् तु पुरुषकारोऽपि ॥२६॥

कभी नभ ( आकाश ) से जल पुष्करिणी आदि में गिरता है और कभी पाताल से निकलता है । भाग्य अचिन्तनीय और बल-युक्त है, और निश्चय ही पौरुष भी उससे कम बलवान नहीं है ॥२६॥

अभिमतसिद्धिरशेषा भवति हि पुरुषस्य पुरुषकारेण ।

दैवमिति यदपि कथयसि पुरुषगुणः सोऽप्यदृष्टारूपः ॥३०॥

पौरुष से पुरुष की सब प्रकार की अभिलाषा पूर्ति होती है और जिसे भाग्य कहते हो वह भी 'अदृष्ट' नाम का पुरुष का ही गुण है ॥३०॥

भयमतुलं गुरुलोकात्पृणमिव तुल्यन्ति साधुसाहसिकाः ।

प्राणानद्भुतमेतच्चरितं चरितं ह्युदाराणाम् ॥ ३१ ॥

सत्कार्य में साहस युक्त मनुष्य गुरुजनों से तुलनारहित भय एवं प्राणों की तुलना, तृण के समान करते हैं ( अर्थात् गुरुजनों के प्रतिकूल आचरण करने के भय एवं प्राणनाश की परवाह न कर साहसी पुरुष सत्कार्य में प्रवृत्त होते हैं ) । उदार पुरुषों का यह स्वभाव आश्चर्यजनक चरित्र है ॥३१॥

क्लेशस्याङ्गमदत्त्वा सुखमेव सुखानि नेह लभ्यन्ते ।

मधुभिन्मथनाऽऽयस्तैराश्लिष्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम् ॥३२॥

अङ्ग को क्लेश न देकर, इस संसार में, किसी को अनायास सुख की प्राप्ति नहीं होती । मधु नामक दैत्य को मारने वाले ( विष्णु भगवान् ) ने क्षीरसागर के मथन से थके हुए बाहुओं द्वारा लक्ष्मी को आलिङ्गन किया था ॥३२॥

१ 'पुष्करिण्यां तु खातम्', इत्यमरः । २ आयस्तैः—श्रान्तैः ।

तस्य कथं न चला स्यात्पत्नी विष्णोर्नृसिंहकस्यापि ?

'मासांश्चतुरो निद्रां यः सेवति जलगतः सततम् ॥३३॥

जो जल में स्थित हो चार महीने निरन्तर सोते हैं उन नरसिंह मति वाले विष्णु भगवान् की भी पत्नी ( लक्ष्मी ) क्यों न चञ्चला हो ? ॥३३॥

दुरधिगमः परभागो यावत्पुरुषेण साहसं न कृतम् ।

जयति तुलामधिरूढो भास्वानिह जलदपटलानि ॥३४॥

इस लोक में तब तक बड़प्पन दुर्लभ है जब तक पुरुष पुरुषार्थ नहीं करता; ( जिस प्रकार ) तुलाराशि में प्राप्त हुआ सूर्य मेघवृन्दों पर विजय लाभ करता है ॥३४॥

तत्कथ्यतामस्माकं कश्चिदनोपायो विवरप्रवेश-शाकिनी-  
साधन-श्मशानसेवन-महामांसविक्रय-साधकवर्तिप्रभृतीना-  
मेकतम इति । अद्भुतशक्तिमर्वाञ्छ्रूयते । वयमप्यतिसाह-  
सिकाः । उक्तं च

सो हमको कोई धन-प्राप्ति करने का उपाय, पाताल गमन, शाकिनी ( योगिनी ) साधन, श्मशान सेवन, नरमांस विक्रय, साधकवती, आदि में से कोई एक बतलाओ । 'आप अद्भुत शक्ति वाले हैं' ऐसा सुना जाता है । और हम भी बड़े साहसी हैं । कहा है

महान्त एव महतामर्थं साधयितुं क्षमाः ।

ऋते समुद्रादन्यः को विभर्ति बडवानलम् ? ॥३५॥

१ विष्णु भगवान् आपादशुक्ल ११ को शयन करते हैं और कार्तिक शुक्ल एकादशी को उठते हैं ।

यथा 'शेते विष्णु सदऽऽपादे कार्तिके च विबुध्यते'

महान् पुरुष ही बड़े लोगों के काम को सम्पादन करने में समर्थ होते हैं। समुद्र के अतिरिक्त 'बड़वानल' को और कौन धारण कर सकता है ? ॥ ३५ ॥

भैरवान-दोऽपि तेषां सिद्धयर्थं बहूपायं सिद्धवर्तिचतुष्टयं कृत्वाऽऽर्पयत् । आह च—'गम्यतां हिमालयदिशि । तत्र सम्प्राप्तानां यत्र वर्तिः पतिष्यति, तत्र निधानमसन्दिग्धं प्राप्स्यथ । तत्स्थानं खनित्वा निधिं गृहीत्वा व्याधुव्यताम् ।'

भैरवानन्द ने भी उनकी सिद्धि के लिये बहुत धनार्जनसाधक, चार सिद्ध बत्ती बनाकर अर्पण किया और कहा 'हिमालय की ओर जाओ । वहाँ उपस्थित होनेपर जहाँ बत्ती गिरे वहीं निःसन्देह खजाना मिलेगा । उस स्थानको खोदकर धन लेकर लौट आना ।'

तथाऽनुष्ठिते तेषां गच्छतामेकतमस्य हस्ताद्वर्तिर्निपपात । अथासौ यावत्तं प्रदेशं खनति तावत्ताम्रमयी भूमिः । ततस्तेनाभिहितम् 'अहो ! गृह्यतां स्वेच्छया ताम्रम् ।' अन्ये प्रोचुः—'भो मूढ ! किमनेन क्रियते ? यत्प्रभूतमपि दारिद्र्यं न नाशयति । तदुत्तिष्ठ । अग्रतो गच्छामः ।' सोऽब्रवीत्—

१-बड़वानल की कथा महाभारत ( आदिपर्व अ० १८०-१८३ ) हरिवंश ( अध्याय १४ ) तथा प्रयागमाहात्म्य में भिन्न २ प्रकार की मिलती है । बड़वानल का दूसरा नाम और्वानल है ? म्यानिअर विलियम्स का कथन है कि यह ज्वालामुखी का आलंकारिक वर्णन है ।

प्रश्नः - अधोलिखितवाक्यस्य स्वसंस्कृतेन व्याख्या कार्या ( सन् ३६ )

तत्स्थानं खनित्वा निधिं गृहीत्वा व्याधुव्यताम् ।

प्रश्नः 'निधान' शब्दस्य संस्कृतपर्यायशब्दा लेख्या ( सन्-३८ )

यान्तु भवन्तः । नाहमग्रे यास्यामि ।' एवमभिधाय ताम्रं यथेच्छया गृहीत्वा प्रथमो निवृत्तः ।

वैसा करने पर उन जाने वालों में से एक के हाथ से बत्ती गिर पड़ी । तब यह जब उस स्थान को खोदता है तो तौबे की भूमि दिखाई पड़ी । तब उसने कहा- 'हे ! अपनी इच्छा के अनुसार तौबा ले लीजिए ।' दूसरों ने कहा - 'अरे मूर्ख ! इससे क्या होगा ? जो तौबा प्रचुर रूप में भी दरिद्रता को नाश नहीं कर सकता । सो उठो, आगे चलो ।' उसने कहा - 'आप लोग जावें; मैं आगे न जाऊँगा ।' ऐसा कह कर यथेच्छ तौबा लेकर पहला लौट गया ।

ते त्रयोऽप्यग्रे प्रस्थिताः । अथ किञ्चिद्गानं गतस्या-  
ग्रेसरस्य वर्तिर्निपपातः । सोऽपि यावत्स्वनितुमारब्धस्ता-  
वद्रूप्यमयी चित्तिः । ततः हर्षितः प्राह यत्- 'भोः ! गृह्यतां  
यथेच्छया रूप्यम् । नाग्रे गन्तव्यम् ।' तावूचतुः 'भोः !  
पृष्ठतस्ताम्रमयी भूमिः, अग्रतो रूप्यमयी ।' तन्ननमग्रे सुवर्ण-  
मयी भविष्यति । किं चानेन प्रभूतेनापि दारिद्र्यनाशो न  
भवति । अतो वामग्रे यास्यावः ।' एवमुक्त्वा द्वावप्यग्रे  
प्रस्थितौ । सोऽपि स्वशक्त्या रूप्यमादाय निवृत्तः ।

वे तीनों आगे चले । तब कुछ दूर जाने वाले (अग्रगामी) आगे के मनुष्य की बत्ती गिर पड़ी । तब ज्यों वह खोदने लगा तब चाँदी से भरी हुई पृथ्वी मिली । तब हर्षित होकर उसने कहा कि 'हे ! अपनी इच्छा के अनुसार चाँदी ले लो; आगे मत जाओ ।' उन दोनों ने उत्तर दिया 'हे भाई पीछे तौबे से भरी हुई पृथ्वी मिली थी । आगे (यहाँ) चाँदी से भरी हुई मिली तो निःसन्देह ही आगे



सुवर्णमयी पृथ्वी होगी, और क्या (कहें) इसके बहुत से लेने पर भी दरिद्रता का नाश न होगा। इस लिए हम दोनों तो आगे जायेंगे।' ऐसा कह कर वे दोनों आगे चल दिए। वह भी अपने सामर्थ्या-  
नुकूल चाँदी लेकर लौट गया।

अथ तयोरपि गच्छतो रेकस्थाये वर्तिः पपात । सोऽपि  
महृष्टो यावत्स्वनति, तावत्सुवर्णभूमिं दृष्ट्वा द्वितीयं प्राह- 'भोः!  
मृत्पतां स्वेच्छया सुवर्णम् । सुवर्णादन्यन्न किञ्चिदुत्तमं भवि-  
ष्यति ।' स प्राह- 'भूढ ! न किञ्चिद्वेत्सि । भाक्ताभ्रम्, ततो  
रूप्यम्, ततः सुदर्णम् । तन्नूनमतः परं रत्नानि भविष्यन्ति ।  
येषामेकतमेनापि दारिद्र्यनाशो भवति । तदुत्तिष्ठ । अग्रे  
गच्छावः । किमनेन भारभूतेनापि प्रभूतेन ?' स आह-  
'गच्छतु भवान् । अहमत्र स्थितस्त्वां प्रतिपालयिष्यामि ।'

तब उन दोनों के ( आगे ) जाने पर एक की बत्ती आगे गिर  
पड़ी। प्रसन्न होकर जब खोदने लगा तब सुवर्णमय पृथ्वी को देख  
कर, दूसरे से उसने कहा 'हे भाई ! अपनी इच्छा से सोना ले  
लो । सुवर्ण से बढ़कर और कुछ उत्तम न होगा ।' उसने कहा  
'अरे मूर्ख ! तू कुछ नहीं जानता । पहले तौवा मिला था, फिर  
चाँदी और तब सुवर्ण मिला है, अब निरसन्देह ही इसके आगे  
रत्न होंगे । जिस एकमात्र ही के पाने से दरिद्रता का नाश हो  
जायगा । सो ज़ाँ तो आगे चलें । इसकी अधिक भारी बोझा देने से  
क्या लाभ ?' उसने कहा 'आप जायें । मैं यहीं स्थित होकर  
आपकी राह देखता रहूँगा ।'

तथाऽनुष्ठिते सोऽपि गच्छन्नेकोकी ग्रीष्माकप्रतापस-  
न्तप्ततनुः पिपासाकुलितः सिद्धिमार्गच्युत इतश्चेतश्च बभ्राम ।

अथ आभ्यन् तत्रैव प्रदेशे पुरुषमेकं रुधिरसावितगात्रं भ्रम-  
चक्रमस्तकमपश्यत् । ततो द्रुततरं गत्वा तमबोचत् 'भोः !  
को भवान् ? किमेवं चक्रेण भ्रमता शिरसि तिष्ठसि ?  
कथय मे, यदि कुत्रचिज्जलमस्ति ।'

वैसा करने पर वह अकेला जाता हुआ ग्रीष्मऋतु के सूर्य के प्रभाव से सन्तप्त शरीर वाला, प्यास से व्याकुल और इष्ट भाग से च्युत होकर ( रास्ता भूल जाने के कारण ) इधर उधर घूमने लगा । इस तरह घूमता हुआ, उसी स्थल पर एक रक्त से आच्छान्त (लहू लुहान) शरीर वाले और शिर पर चक्र घूमते हुए मनुष्य को देखा । तब अत्यन्त शीघ्र जाकर उसने उससे पूछा — 'हे आप कौन हैं ? किस प्रकार शिर पर चक्र घूमते हुए आप स्थिर हैं ? मुझसे कहो, यदि कहीं जल मिल सके ?'

एवं तस्य प्रवदतस्तच्चक्रं तत्क्षणात्तस्य शिरसो  
ब्राह्मणमरात्के चटितम् । स आह 'भद्र ! किमेतत् ? स  
आह—'ममाप्येवमेवैतच्छिरसि चटितम् ।' स आह—'तत्कथय,  
कदैतदुत्तरिष्यति ? भवती मे वेदनां वर्तते ।' स आह—  
'यदा त्वमिव कश्चिद्भूतसिद्धिवर्तिरेवमागत्य त्वामालाप-  
यिष्यति, तदा तस्य मरात्के चटिष्यति ।' स आह—'किया-  
कालस्तवैवं स्थितस्य ?' स आह—'साम्प्रतं को राजा  
धरणीतले ।' स आह—'वीणावत्सराजः ।'

प्रश्नः अधोलिखितवाक्यस्य स्वसंस्कृतेन व्याख्या कार्या (सम् १६३६)

यदा त्वमिव कश्चिद्भूतसिद्धिवर्तिरेवमागत्य त्वामालापयिष्यति,  
तदा तस्य मरात्के चटिष्यति ।

इस प्रकार उसके कहते ही वह चक्र उसी क्षण उसके शिर से ब्राह्मण के मस्तक पर चढ़ गया । उसने कहा 'हे भद्र ! यह क्या हुआ ? उसने कहा 'मेरे शिर पर भी इसी प्रकार यह चढ़ा था ।' उसने कहा 'तो यह तो कहो, कब यह उतरेगा ? मुझे बड़ी पीड़ा होती है ।' उसने कहा 'जब तुम्हारे समान कोई सिद्धवती लिए इस प्रकार आकर तुमसे बात करेगा, तब यह उसके मस्तक पर चढ़ेगा ।' उसने कहा 'तुम्हें इस प्रकार रहते कितना समय हुआ ?' उसने कहा 'इस समय पृथ्वी पर कौन राजा है ?' उसने कहा-- 'वीणावत्स राजा है ।'

स आह 'अहं तावत्कालसंख्यां न जानामि । परं यदा रामो राजाऽऽसीत्तदाऽहं दारिद्र्योपहतः सिद्धिवर्तिमादायाऽनेन पथा समायातः । ततो मयाऽन्यो नरो मस्तकधृतचक्रो दृष्टः, पृष्टश्च । ततश्चैतज्जातम् ।' स आह--'भद्र ! कथं तवैवं स्थितस्य भोजनजलप्राप्तिरासीत् ?' स आह 'भद्र ! धनदेन निधानहरणभयात्सिद्धानामेतच्चक्रपतनरूपं भयं दर्शितम् । तेन कश्चिदपि नाऽगच्छति । यदि कश्चिदायाति, स क्षुत्पिपासानिद्रारहितो जरामरणवर्जितः केवलमेवं वेदनामनुभवतीति । तदाज्ञापय मां स्वगृहाय ।' इत्युक्त्वा गतः ।

उसने कहा 'मैं तो समय-संख्या नहीं जानता, पर जब राम राजा थे तब मैं दरिद्रता के कारण पीड़ित होकर सिद्धवती लेकर इसी मार्ग से आया था । तब मैंने एक मनुष्य जिसके मस्तक पर चक्र था उसे देखा और पूछा । तब मुझ भी इसी प्रकार हो गया ।' उसने कहा 'हे भद्र ! कैसे इस प्रकार रहते हुए तुमको अन्न और जल की प्राप्ति होती थी ? उसने उत्तर दिया 'भद्र ! कुबेर ने

\*निधि-हरण के भय से सिद्धों को यह चक्रपतन रूपी भय दिखाया है । जिसमे कोई भी नहीं आता; यदि कोई आता है, तो वह भूख-ज्यास-नींद से रहित वृद्धावस्था और मृत्यु से रहित हो केवल इस प्रकार पीड़ा का अनुभव करता है । सो मुझे अपने घर जाने के लिए आज्ञा दो ।' ऐसा कह कर चला आया ।

अथ तस्मिंश्चिरयति स सुवर्णसिद्धिस्तस्यान्वेषणपर-  
रात्पदपङ्क्त्या यावत्किञ्चिद्वनीन्तरमागच्छति, तावद्बुधिर-  
सावितशरीरस्तीक्ष्णचक्रेण मस्तके भ्रमतां संवेदनः कृत्वा-  
नुपविष्टस्तिष्ठतीति ददर्श । तत्समीपवर्तिना भूत्वा सवाप्यं  
पृष्ठः 'भद्र ! किमेतत् ?' स आह 'विधिनियोगः ।' स  
आह—'कथं तत् ? कथय कारणमेतस्य ।' सोऽपि तेन  
पृष्ठः सर्वं चक्रवृत्तान्तमकथयत् । तच्छ्रुत्वाऽसौ तं विगर्हयन्नि-  
दमाह—'भोः लोभात्मन् ! अदूरदर्शिन ! निषिद्धस्त्वं  
मयाऽनेकशो नाश्रुणोः मे वाक्यम् । तत्किं क्रियते ? विद्या-  
वानपि कुलीनोऽपि बुद्धिरहितः, लाभाभिभूतश्च त्वमेवं  
पराभवमलब्धाः । अथवा साध्विदमुच्यते

तब उसके देर करने पर वह सुवर्णसिद्धि उसको खोजता हुआ,  
उसके पैरों के चिह्न का अनुसरण करता हुआ ज्योंही किसी दूसरे

\* महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकर-कच्छपौ ।

मुकुन्द कुन्द-नीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥

प्रश्न—अथ तस्मिंश्चिरयति स... उपविष्टस्तिष्ठति ।

सन्दर्भ एष सरलसंस्कृतेन व्याख्यातव्य । ( सन् १९३७ )

प्रश्नः विधिति योगशब्दस्यार्थः हिन्दीभाषायां लेख्यः ( सन् १९३६ )

वन में जाता है तो उसे रक्त से भीगा शरीर, तीक्ष्ण चक्र मस्तक पर घूमते, वेदनायुक्त विलाप करते बैठे हुए देखा। तब उसके निकट पहुँच कर आँखों में आँसू भर कर उसने उससे पूछा 'हे भद्र ! यह क्या ?' उसने उत्तर दिया 'भाग्य की ऐसे ही आज्ञा है।' उसने कहा 'वह कैसे ? इसका कारण तो कहो।' उससे पूछा गया हुआ उसने चक्र की सब बात कह दी। उसे सुन कर उसकी निन्दा करता हुआ उसने यह कहा 'अरे लोभी ! अदूरदर्शी ! तुम्हें मैंने कई बार रोका, किन्तु मेरी बात न सुनी। सो क्या किया जाय ? विद्यावान् और कुलीन होने पर भी तुम बुद्धिहीन और लोभी हो इसलिए इस प्रकार पराभव पाये। अथवा ठीक ही कहा है

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा ।

बुद्धिहीना विनश्यन्ति तथा ते सिंहकारकाः' ॥३६॥

बुद्धि अच्छी है वैसी विद्या अच्छी नहीं है; विद्या से बुद्धि उत्तम है। बुद्धिहीन पुरुष सिंह बनाने वालों की भाँति, नष्ट होते हैं' ॥३६॥

चक्रधर आह 'कथमेतत् ?' सुवर्णसिद्धिराह

चक्रधर ने पूछा 'यह कैसी कथा है ?' सुवर्णसिद्धि ने कहा-

( कथा ३ )

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः परस्परं मित्रभावमुपगता वसन्ति स्म । तेषां त्रयः शास्त्रपारंगताः, परन्तु बुद्धिरहिताः । एकस्तु बुद्धिमान्, केवलं शास्त्रपराङ्मुखः । अथ तैः कदाचिन्मित्रैर्मन्त्रितम्—'को गुणो विद्याया

प्रश्न. 'वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा' ।

बुद्धिहीना विनश्यन्ति तथा ते सिंहकारकाः ।'

अर्थ—श्लोक - बुद्धिर्यैका कथा स्वसंस्कृतेन वर्णनीया ( सन् १६३६ ३५ )

येन देशान्तरं गत्वा भूपतीन् परितोष्यार्थोपार्जना न क्रियते ? तत्पूर्वदेशं गच्छामः ।

किसी स्थान में चार ब्राह्मणों के पुत्र परस्पर मित्रभाव को प्राप्त होकर रहते थे । उनमें से तीन शास्त्र क ज्ञाता थे, पण्डित बुद्धिरहित थे । और एक बुद्धिमान, किन्तु शास्त्र से अनभिज्ञ था । तदनन्तर उन मित्रों ने कभी भन्त्रणा ( सलाह ) की, कि विद्या से क्या फल हुआ यदि परदेश जाकर राजा को प्रसन्न कर धन उपार्जन न किया ? इसलिए पूर्व देश ( कलकत्ता आदि की ओर ) चले ।

तथाऽनुष्ठिते, किञ्चिन्मार्गं गत्वा तेषां ज्येष्ठतरः प्राह—  
‘अहो ! अस्माकमेकश्चतुर्थो भूढः, केवलं बुद्धिमान् । न च राजप्रतिग्रहो बुद्ध्या लभ्यते विद्यां विना । तन्नासौ स्वोपा-  
जितं दास्यामि । तद्गच्छतु गृहम् ।

वैसा करने पर, कुछ राह जाकर ( रास्ता तय कर ) उनमें से बड़े ने कहा— ‘अहो ! हम में एक चौथा ही मूर्ख है, किन्तु है बुद्धिमान् । और राजा से दान केवल बुद्धि से, विद्या के बिना, नहीं मिलता । सो हम अपने कमाए हुए धन में से इसे न देंगे, सो यह घर चला जाय ।

ततो द्वितीयेनाभिहितम् ‘भोः सुबुद्धे ! गच्छ त्वं स्वगृहे, यतस्ते विद्या नास्ति ।’ ततस्त्वृतीयेनाभिहितम्  
‘अहो ! न युज्यत एवं कर्तुम् । यतो वयं बाल्यात्मभृत्ये-  
कत्र प्रोहिताः । तदागच्छतु महानुभावोऽस्मदुपाजितवित्तस्य  
समभागी भविष्यतीति । उक्तं च

प्रश्न — अधोलिखितवाक्यस्य संस्कृतेन व्याख्या कार्या ( सन् १६३५ )  
कोशुणो विद्यया येन देशान्तरं गत्वा भूपतीन् परितोष्य अर्थोपार्जना न क्रियते ।

तब दूसरे ने कहा 'हे सुबुद्धि ! तुम घर चले जाओ, क्योंकि तुम्हें विद्या नहीं ( आती ) है ।' तब तीसरे ने कहा 'अहो ! ऐसा करना उचित नहीं है, क्योंकि हम सब वाल्यावस्थासे एक ही स्थान में खेलते रहे हैं, सो यह महानुभाव भी आवे और हमारे कमाए धन के बराबर का हिस्सेदार हो । कहा है

किं तथा क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला ।

या न वेश्येव सामान्या पथिकैरुपभुज्यते ॥३७॥

उस लक्ष्मी से क्या किया जा सकता है जो केवल कुलवधू के समान है और जो सामान्या वाराङ्गना की भाँति पथिकों से नहीं उपभुक्त की जाती है ? ॥ ३७ ॥

तथा च  
और भी:

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥३८॥

'यह हमारे हैं यह दूसरे हैं' ऐसा विचार लुब्धचित्त वालों का है । उदारचित्तवालों के लिए तो पृथ्वी भर कुटुम्ब है ॥३८॥

'तदागच्छत्वेषोऽपि' इति । तथानुष्ठिते, तैर्मागाश्रितै-  
रद्व्यां मृतसिंहस्यास्थीनि दृष्टानि । ततश्चैकेनाभिहितम्—  
'अहो ! अद्य विद्याप्रत्ययः क्रियते । कतिचिदेतानि  
मृतसत्त्वस्यास्थीनि तिष्ठन्ति । तद्विद्याप्रभावेण जीवनसहितं  
कुर्मः । अहमस्थिसञ्चयं करोमि ।' ततश्च तेनौत्सुवधाद-  
स्थिसञ्चयः कृतः ।

प्रश्नः ततश्च 'निषिद्ध', इत्येतानि वाक्यानि यस्या उद्धृतानि  
तां कथां सरलसंस्कृतभाषाभाषित्य संक्षेपेण कथय ( सन् १६३४ )

इस लिए यह भी आवे ।' वैसा करने पर उन पथिकों ने वन में मरे हुए सिंह की हड्डियां देखीं । तब एक ने कहा 'अहो ! आज ( पूर्व में पढ़ी हुई ) विद्या की परीक्षा की जाय । ये किसी मरे हुए जीव की हड्डियां हैं, सो विद्या के प्रभाव से इसे जीवित करना चाहिए । मैं हड्डी एकत्रित कर देता हूँ ।' तब उसने उत्सुकता के कारण हड्डी एकत्रित की ।

द्वितीयेन चर्ममांसरुधिरं संयोजितम् । तृतीयोऽपि यावज्जीवनं सञ्चारयति, तावत्सुबुद्धिना निषिद्धः—'भोः ! तिष्ठतु भवान् । एवं पिहो नृपाद्यते । यद्येनं सजीवं करिष्यसि, ततः सर्वानपि व्यापादयिष्यति' । इति तेनाभिहितः स आह—'धिङ् मूर्ख ! नाहं विद्याया विफलतां करोमि ।'

दूसरे ने चर्म, मांस और रक्त से युक्त किया । तीसरा जब उस में जीवन का सञ्चार करने ( प्राण डालने ) लगा तो उसे सुबुद्धि ने रोका 'हे ! आप ठहरें, यह सिंह बनाया जाता है । यदि इसे प्राणयुक्त ( जीवित ) करोगे तो यह सब को मार डालेगा ।' ऐसा उनके कहने पर उसने कहा 'मूर्ख ! तुम्हें धिक्कार है ! मैं अपनी विद्या निष्फल न करूँगा ।'

ततस्तेनाभिहितम् 'तर्हि प्रतीक्षस्व क्षणं, यावदहं वृक्षमारोहामि ।' तथाऽनुष्ठिते, यावत्सजीवः कृतस्तावत्ते त्रयोऽपि सिंहेनोत्थाय व्यापादिताः । स च पुनर्वृक्षादवतीर्य गृहे गतः । अतोऽहं ब्रवीमि 'वरं बुद्धिर्न सा विद्या' इति । अतः परमुक्तं च सुवर्णसिद्धिना

प्रश्न ततश्च.....निषिद्धः' इत्येतानि वाक्यानि अरथा उद्धृतानि तां कथां सरल संस्कृतभाषामाश्रित्य संक्षेपेण कथय (सन् १६३४)



तब उसने कहा 'तो ज़ाण भर ठहरो जब तक मैं वृत्त पर चढ़ जाता हूँ !' ऐसा करने पर जब वह जीवित किया गया तब सिंह ने उठ कर उन तीनों को मार डाला । और वह याद में वृत्त से उतर कर अपने घर चला गया । इसी से कहता हूँ 'बुद्धि अच्छी है बल्कि वैसी विद्या अच्छी नहीं' इत्यादि । इसके अनन्तर सुवर्ण-सिद्धि ने कहा

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिताः ।

सर्वे ते हास्यतां यान्ति यथा ते मूर्खपण्डिताः ॥३६॥

शास्त्र में निपुण होने पर भी जो लौकिक व्यवहार से अनभिज्ञ हैं वे सब, मूर्ख पण्डितों की भाँति, उपहासास्पद होते हैं ॥३६॥

चक्रधर आह 'कथमेतत् ?' सोऽब्रवीत्

चक्रधर ने कहा 'यह कैसी कथा है ?' उसने कहा

( कथा ४ )

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणाः परस्परं मित्रत्वमापन्ना वसन्ति स्म । बालभावे तेषां मतिरजायत 'आः ! देशांतरं गत्वा विद्याया उपार्जनं क्रियते ।' अथान्यरिगन्धिवसे ब्राह्मणाः परस्परं निश्चयं कृत्वा विद्योपार्जनार्थं कान्यकुब्जे गताः । तत्र च विद्यापठे गत्वा पठन्ति ।

किसी स्थान में चार ब्राह्मण परस्पर मित्र होकर रहते थे । बाल्यावस्था ही में उनकी मति हुई कि 'दूसरे देश में जाकर, विद्या की प्राप्ति करनी चाहिये' । तब दूसरे दिन वे सब ब्राह्मण परस्पर प्रश्न निम्नाङ्कितं श्लोकमुद्दिश्यैका कथा स्वसंस्कृते लेख्या (सन् १६३६)

अपि शास्त्रेषु कुशला.....यथा ते मूर्खपण्डिताः ।

निश्चय कर विधोपार्जन के लिये कान्यकुब्ज देश (वर्तमान कन्नौज) में गये । और वहाँ पाठशाला में जाकर पढ़ने लगे ।

एवं द्वादशाब्दानि यावदेकचित्तया विद्याकुशलास्ते सर्वे सञ्जाताः । ततस्तैश्चतुर्भिर्मिलित्वोरुम्—‘वयं’ सर्वविद्यापारे गताः । तदुपाध्यायमुत्कलापयित्वा स्वदेशे गच्छामः ।<sup>१</sup> एवं मन्त्रयित्वा ब्राह्मणा उपाध्यायमुत्कलापयित्वा अनुज्ञां लब्ध्वा च पुस्तकानि नीत्वा प्रचलिताः । यावत्किञ्चिन्मार्गं यान्ति, तावद् द्वौ पन्थानौ समायातौ दृष्ट्वा उपविष्टाः सर्वे ।

इस प्रकार बारह वर्ष दत्तचित्त होने से वे सब विद्या में पारङ्गत हो गए । तब उन चारों ने मिल कर कहा ‘हम सब विद्या में निपुण हो गये, सो गुरु को सन्तुष्ट कर अपने देश चलना चाहिये ।’ इस प्रकार सलाह कर, ब्राह्मण लोग उपाध्याय को सन्तुष्ट कर, आज्ञा प्राप्त कर, और पुस्तक लेकर चज दिए । जब कुछ दूर रास्ता जाते हैं तो दुराहा मित्रा देख कर सब बैठ गये ।

तत्रैकः प्रोवाच—‘केन मार्गेण गच्छामः?’ एतस्मिन्समये तस्मिन्पत्तने कश्चिद्वणिक्पुत्रो मृतः । तस्य दाहार्थं महाजनो गतोऽभूत् । ततश्चतुर्णां मध्यादेकेन पुस्तकमवलोकितम्

<sup>१</sup> सर्वविद्याश्चतुर्दशविद्याः अङ्गानि वेदाश्चत्वारो भोमासा न्यायविस्तरः ।

धर्मशास्त्रं पुराणेष्व विद्या, ह्येताश्चतुर्दश ॥

प्रश्न. अधोलिखितवाक्यस्य स्वसंस्कृतेन व्याख्या कार्या ( सन् १६३६ )

वयं सर्वविद्यापारे गता , तदुपाध्यायमुत्कलापयित्वा स्वदेशे गच्छामः ।

प्रश्न.—निम्नाङ्कितपदस्य संस्कृतपर्यायशब्दो लेख्य ( १६३८, ३६ ई० )

‘उत्कलापयित्वा’

उनमें से एक ने कहा 'किस मार्ग से जाना चाहिये ?' इसी समय उसी नगर में कोई वनिये का लड़का मर गया था । उसकी दाह-क्रिया के लिये महाजन जाते थे । तब चारों में ( के बीच ) से एक ने पुस्तक खोल कर देखा:-

॥ 'महाजनो येन गतः स पन्थाः ।' इति ।

॥ 'तन्महाजनमार्गेण गच्छामः ।'

'महाजन ( महान् पुरुष ) जिस मार्ग से गमन करे । वही मार्ग है ।' तब उसने कहा 'तो महाजन के मार्ग से जाना चाहिये ।'

अथ ते परिडिता यावन्महाजनमेलापकेन सह यान्ति,  
तावद्रासभः कश्चित्त्र श्मशाने दृष्टः । अथ द्वितीयेन पुस्तक-  
मुद्धाव्याड्यलोकितमुक्तं च

तदनन्तर जब वे परिडित महाजनों के साथ जा रहे थे कि श्मशान में कोई गदहा उन्होंने देखा । तब दूसरे ने पुस्तक खोल कर देखा और कहा

॥ 'उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुमङ्कटे ।

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स वान्धवः ॥४०॥

सुख, दुःख, दुर्भिक्ष, शत्रु-सङ्कट, राजद्वार ( कचहरी, हाईकोर्ट ) तथा श्मशान में जो साथ दे वही बन्धु है ॥ ४० ॥

तदहो ! अयमस्मदीयो वान्धवः ।' ततः कश्चित्स्य  
श्रीवायां लगति । कोऽपि पादौ प्रक्षालयति । अथ तैः  
परिडितैः दिशामवलोकनं कुर्वन्निरेव, कश्चिदुष्टो द्रुतं गच्छन्

॥ अतिविभिन्ना रूढतयश्च मित्रा नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

दृष्टः । तैश्चोक्तम् 'एतत्किम् ?' तावत्तृतीयेन पुस्तक-  
मुद्धाव्योक्तम् ।

सो अहो ! यह हमारा बान्धव है । तब कोई तो उसके गले में  
लिपट गया, और कोई पाँव धोने लगा । तब दिशा अवलोकन  
करने वाले परिदृश्यों ने किसी ऊँट को तेजी से जाते हुए देखा ।  
उन्होंने कहा- 'यह क्या है ?' तब तीसरे ने पुस्तक खोलकर कहा

'धर्मस्य त्वरिता गतिः' । तन्नूनमेव धर्मः साक्षात् ।  
'धर्म की तीव्र गति होती है ।' तो यह निश्चय ही साक्षात् धर्म है ।

चतुर्थेनोक्तम् 'इष्टं धर्मेण योजयेत्' ।

चौथे ने कहा इष्ट को धर्म के साथ जोड़ देना चाहिये ।

'तद्बान्धवोऽयमस्माकं धर्मेण नियुज्यताम् ।' अथ तैश्च  
रासभ उष्ट्रग्रीवायां बद्धः ।

तो यह हमारा बान्धव धर्म के साथ नियुक्त कर दो । तब उन  
सब ने गधे को ऊँट की गर्दन में बाँध दिया ।

तत्तु केनचिद्रजकस्याग्रे कथितम् । श्रुत्वा चासौ  
रजकस्तेषां मूर्खपरिदृशानां प्रहारकरणाय समायातः,  
दृष्ट्वा च तं दूरत एव ते प्रनष्टाः । ततः स्तोकं पन्थान-  
मतिक्रम्य, प्रधावद्भिस्तैः काचिन्नदी समासादिता । तस्या  
जलमध्ये पलाशपत्रमायान्तं दृष्ट्वा परिदृतेनैकेनोक्तम्

१ क्षयां वित्तं क्षयां चित्तं, क्षया जीवति मानव ।

यमस्य करुणा नास्ति, धर्मस्य त्वरिता गतिः ॥

२ सत्कुले योजयेत्कन्या, पुत्रं विद्यासु योजयेत् ।

व्यसने योजयेच्छत्रं, इष्टं धर्मेण योजयेत् ॥

किसी ने धोबी के आगे ( यह वृत्तान्त ) कह दिया । सुनकर, जब वह धोबी उन मूर्ख पण्डितों को मारने के लिए आया, तब उसे दूर ही से देखकर वे भाग गए । इसके अनन्तर आगे कुछ दूर जाने पर उन भागने वालों को कोई नदी मिली । उसके जल में पलास के पत्ते को आते हुए देखकर एक पण्डित ने कहा

‘आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति ।’

‘जो यह पत्र आ रहा है वह हम लोगों को पार लगा देगा ।’

इत्येतत्कथयित्वा तत्पत्रस्योपरि पतितो यावन्नद्या नीयते, तावत्तं नीयमानमवलोक्याऽन्येन पण्डितेन केशान्तं गृहीत्वोत्तमम्

ऐसा कह कर उस पत्ते के ऊपर कूद पड़ा ( बैठ गया ) और जब नदी उसे ( बहा ) ले चली तब उसे बहते हुए देखकर, दूसरे पण्डित ने चोटी ( शिखा ) पकड़ कर कहा

‘सर्वनाशो समुत्पन्ने अर्थं त्यजति पण्डितः ।

अर्थेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुःसहः ॥४१॥

सर्वनाश उत्पन्न होने पर विद्वान् लोग आधा छोड़ देते हैं; और आधे से कार्य करते हैं; क्योंकि सर्वनाश असहनीय है ॥४१॥

इत्युक्त्वा तस्य शिररछेदो विहितः । अथ तैश्च पश्चाद्गत्वा कश्चिद्ग्राम आसादितः । तेऽपि ग्रामीणैर्निमन्त्रिताः पृथक्पृथग्गृहेषु नीताः । तत एकस्य सूत्रिका घृतखण्डसंयुक्ता भोजने दत्ता । दृष्ट्वा च तां विचिन्त्य पण्डितेनोक्तं यत्

१ पत्ता के नाम — पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्यां छदः पुमान् ।

वाहन के नाम — सर्वं स्याद्वाहनं यानं युग्मं पत्रं च धोरणम् ॥

ऐसा कह कर उसका सिर काट लिया । तब वेबाद में किसी गाँव में पहुँचे । उन्हें ग्रामीण लोग निमन्त्रित कर पृथक् २ घरों में ले गये । तब एक को भोजन में घी और खाँड़ से मिली हुई सर्वई दी गयी । तब उसे देखकर और विचार कर पण्डित ने कहा कि-

‘दीर्घसूत्री विनश्यति ।’ इति

‘दीर्घसूत्री ( आलसी ) नष्ट होता है ।’

एवमुक्त्वा भोजनं परित्यज्य गतः । तथा द्वितीयस्य

‘मण्डकाः दत्ताः । तेनाप्युक्तम्

‘अतिविस्तारविस्तीर्णं तद्भवेन्न चिरायुषम् ।’

स च भोजनं त्यक्त्वा गतः ।

ऐसा कह कर भोजन छोड़कर चला गया । दूसरे को मण्डक दिया गया वह भी ‘अत्यन्त विस्तार से जो विस्तृत (बहुत लम्बा चौड़ा) होता है वह दीर्घजीवनप्रद नहीं होता’ ऐसा कह कर भोजन छोड़ कर चला गया ।

अथ तृतीयस्य वटिकाभोजनं दत्तम् । तत्रापि पण्डितेनोक्तम्-

‘छिद्रेष्वनर्था बहुलोभवन्ति ।’

एवं ते त्रयोऽपि पण्डिताः क्षुत्क्षामकण्ठा लोकैर्हास्यमाना-  
स्ततः स्थानात्स्वदेशं प्रत्यागताः ।’

१ वारिणा कोमलां कृत्वा समितां साधु मर्दयेत् ।

हस्तचालनया तस्या लोप्त्री सम्यक् प्रसारयेत् ॥२१॥

अधोमुखघटस्थैतां विस्तृतां प्रक्षिपेद्वहि ।

भृदुना वह्निना साध्य सिद्धो मण्डक उच्यते ॥२२॥ इति भावप्रकाशः ॥

प्रश्न अधस्तनस्य राब्दस्यार्थः हिन्दीभाषायां लेख्य (सन् १९३६)

‘क्षुत्क्षामकण्ठा’ ।

तीसरे को बड़ा भोजन के लिए दिया गया । वहाँ भी उस परिदत्त ने कहा 'छिद्र में अनर्थ बहुत होते हैं ।' इस प्रकार वे तीनों परिदत्त जुधा के कारण सूखे हुए कण्ठवाले जनसाधारण से हँसी को प्राप्त हुए उस स्थान से अपने देश को लौट आए ।

अथ सुवर्णसिद्धिराह 'यत्त्वं लोकव्यवहारमज्ञान-  
न्मया वार्यमाणोऽपि न स्थितः, तत ईदृशीमवस्थामुपगतः ।  
अतोऽहं ब्रवीमि 'अपि शास्त्रेषु कुशलाः' इति ।

तब सुवर्णसिद्धि ने कहा कि 'तुम लोक व्यवहार को न जानते हुए, मुझ से रोके जाने पर भी न रुके सो उभी से इस प्रकार की अवस्था को प्राप्त हुए हो । इसी से मैं कहता हूँ 'शास्त्र में निपुण भी' ' इत्यादि ।

तच्छ्रुत्वा चक्रधर आह 'अहो ! अकारणमेतत् ।

उसे सुनकर चक्रधर ने कहा 'अहो ! यह तो अकारण है,

सुबुद्धयोऽपि नश्यन्ति दुष्टदैवेन नाशिताः ।

स्वल्पबुद्धयोऽप्येकस्मिन्कुले नन्दन्ति सन्ततम् ॥४२॥

महान् बुद्धि वाले भी दुर्दैव से आक्रान्त होने पर नष्ट होते हैं और किसी कुल में अल्पमतिवाले सर्वदा आनन्दित रहते हैं ॥४२॥

उक्तं च-

कहा है

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं,

सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।

जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः,

कुतमयत्नोऽपि गृहे न जीवति ॥४३॥

यत्न से अपरिपालित पुरुष भी भाग्य से स्थित रहता है, किन्तु

यत्न से पालित व्यक्ति भाग्य से उपेक्षित नहीं स्थित रहता । वन में छोड़ा हुआ अनाथ भी जीता है, किन्तु यत्न करने पर भी घर में नहीं जीता ॥४३॥

तथा च—

और भी:

शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं लम्बते च सहस्रधीः ।

एकबुद्धिरहं भद्रे ! क्रीडामि विमले जले ॥४४॥

हे भद्रे ! यह शतबुद्धि ( नाम की मछली ) शिर पर स्थित है, सहस्रधी ( नाम की मछली ) लटकती है और मैं एकबुद्धि ( नाम का मेढक ) निर्मल जल में क्रीड़ा करता हूँ ॥४४॥

सुवर्णसिद्धिराह 'कथमेतत् ?' स आह—

सुवर्णसिद्धि ने कहा 'यह कैसे ?' उसने कहा

( कथा ५ )

करिगश्चिज्जलाशये शतबुद्धिः सहस्रबुद्धिश्च द्वौ  
मत्स्यौ- निवसतः राग । अथ तयोरेकबुद्धिर्नाम मण्डूको  
मित्रतां गतः । एवं ते त्रयोऽपि वेलायां कञ्चित्कालं सुभा-  
षितगोष्ठीसुखमनुभूय भूयोऽपि सलिलं प्रविशन्ति । अथ  
कदाचित्तेषां गोष्ठीगतानां जालहस्तधीवराः प्रभूतै-

प्रश्नः - शतबुद्धि सहस्रबुद्धिमत्स्यकथा स्वसंस्कृतेन सक्षेपतो वर्णनीया

( १६३५ )

प्रश्न. निम्नाङ्कितस्य गद्यस्य हिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः ( १६४० )

एवं ते त्रयोऽपि .....तत्प्रभातेऽत्राऽऽगमिष्यामः ।

प्रश्न-अधोलिखितसन्दर्भस्य सरलहिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः (सन् १६३६)

अथ कदाचित्तेषां गोष्ठीगतानां .....मयं न कार्यम् ।



मत्स्यैर्व्यापादितैर्मस्तके विधृतैरस्तमनवेलायां तस्मिञ्जला-  
शये समायाताः । ततः सलिलाशयं दृष्ट्वा मिथः प्रोचुः—  
'अहो ! बहुमत्स्योऽयं हृदो दृश्यते, स्वल्पसलिलश्च ।  
तत्प्रभातेऽत्राऽऽगमिष्यामः ।' एवमुक्त्वा स्वगृहं गताः ।

किसी तालाब में शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि नामक दो मछलियाँ  
रहती थी । तब उनका एकबुद्धि नाम का मेढ़क मित्र हुआ । यों वे  
तीनों कुछ देर तक जलाशय के किनारे वातचीत के आनन्द को  
अनुभव कर फिर जल में प्रवेश कर जाते थे । किसी समय वे संलाप  
कर रहे थे कि हाथ में जाल लिये मल्लाह लोग बहुत सी मछलियों  
को मार कर शिर पर रक्खे हुए सूर्यास्त के समय उस जलाशय के  
समीप पहुँचे । तब जलाशय देखकर उन लोगों ने परस्पर कहा  
'ओ ! इस सरोवर में तो मछली बहुत और थोड़ा जल मालूम  
पड़ता है । सो प्रभात के समय यहाँ आवेंगे ।' इस प्रकार कह कर  
वे अपने घर गये ।

मत्स्याश्च विषण्णवदना मिथो मन्त्रं चक्रुः । ततो  
मण्डूक आह—'भोः शतबुद्धे ! श्रुतं धीवरोक्तं भवता ?  
तत्किमत्र युज्यते कर्तुम् ? पलायनमवष्टम्भो वा । यत्कर्तुं  
युक्तं भवति तदादिश्यतामद्य ।' तच्छ्रुत्वा सहस्रबुद्धिः  
प्रहस्य आह—'भो मित्र ! मा भैषीः, यतो वचनसारण-  
मात्रादेव भयं न कार्यम् । उक्तं च

तब मत्स्य अत्यन्त दुःखित हो परस्पर सलाह करने लगे ।

प्रश्न. निम्नाङ्कितपदस्य संस्कृतपर्यायशब्दो लेख्यः—(सन् १६३८)  
'विषण्णवदना ।'

मेढक ने कहा, 'हे शतबुद्धि ! तुमने मल्लाहों की बात सुनी ? सो अब यहाँ क्या करना चाहिए ? भागना अथवा अलक्षित भाव में ठहरना । जो करना उचित हो उसे आज ( अब ) कहो ।' यह सुन कर सहस्रबुद्धि ने हँसकर कहा 'हे मित्र ! भयभीत न हो, क्योंकि केवल बात सुनने ही से डरना न चाहिए । कहा है

सर्पाणां च खलानां च सर्वेषां दुष्टचेतसाम् ।

अभिभाया न सिध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत् ॥४५॥

सर्पों, धूर्तों, और दुर्जन पुरुषों के मनोगत विचार नहीं सिद्ध होते, इसी कारण तो यह जगत् वर्तमान (सुरक्षित) है ॥४५॥

तत्तावत्तेषां भागमनमपि न सम्पत्स्यते, भविष्यति वा, तर्हि त्वां बुद्धिप्रभावेणाऽऽत्मसहितं रक्षयिष्यामि । यतोऽनेकां सलिलगतिचर्यामहं जानामि ।' तदाकुर्य शतबुद्धिराह 'भोः ! युक्तमुक्तं भवता ! सहस्रबुद्धिरेव भवान् । अथवा साध्विदमुच्यते

सो पहले तो उनका आना भी सम्भव नहीं है, और यदि (कदाचित्) आवेंगे, तो तुम्हारी और अपनी, बुद्धि के अनुसार, रक्षा करूँगा । क्योंकि मैं अनेक प्रकार के तैरने की प्रकिया को जानता हूँ ।' इसे सुनकर शतबुद्धि ने कहा, 'अहो ! तुमने ठीक कहा । तुम सहस्रबुद्धि हो । अथवा यह ठीक कहा जाता है

बुद्धेर्बुद्धिमतां लोके नास्त्यगम्यं हि किञ्चन ।

बुद्ध्या यतो हता न-दाश्वाण्वयेनाऽसिपाणयः ॥४६॥

जगत् में बुद्धिमानों की बुद्धि के आगे कोई वस्तु अगम्य नहीं

अन्तः- निम्नाङ्कितपदस्य संस्कृतपर्यायशब्दो लेख्य ( १६३८ )

'सलिलगतिचर्याम्' ।

है ; क्योंकि बुद्धि द्वारा चाणक्य ने, हाथ में तलवार लिये नन्दवंश के नवराजाओं का, विनाश किया ॥४६॥

तथा च—

और भी

न यत्रास्ति गतिर्वायो रश्मिनां च विवस्वतः ।

तत्रापि प्रविशत्याशु बुद्धिर्बुद्धिमतां • सदा ॥४७॥

जहाँ वायु, और सूर्य की किरणों का प्रवेश नहीं है वहाँ भी बुद्धिमानों की बुद्धि शीघ्र ही सर्वदा प्रवेश कर जाती है ॥४७॥

ततो वचनश्रवणमात्रादपि पितृपर्यायाऽऽगतं जन्म-  
स्थानं त्यक्तुं न शक्यते । उक्तं च—

इस लिये केवल बात ही सुनकर बाप-दादों से चली आयी जन्मभूमि छोड़ी नहीं जा सकती । कहा है

न तत्स्वर्गेऽपि सौख्यं स्याद्विव्यस्पर्शनशोभने ।

कुस्थानेऽपि भवेत्पुंसां जन्मनो यत्र सम्भवः ॥४८॥

मनुष्यों को दिव्य वस्तु के स्पर्श से मनोरम स्वर्ग में भी वह सुख नहीं प्राप्त होता जो सुख जिस स्थान पर जन्म का सम्भव (उत्पत्ति) होता है उस (माधारण) कु-स्थान पर सुख मिलता है ।

तन्न कदाचिदपि गन्तव्यम् । अहं त्वां सुबुद्धिप्रभावेण रक्षयिष्यामि ।' मण्डूक आह—'भद्रौ ! मम तावदेकैव बुद्धिः, पलायनपरा । तदहमन्यं जलाशयमधैव सभार्यो यास्यामि ।' एवमुक्त्वा स मण्डूको रात्रावेवाऽन्यजलाशयं गतः ।

सो कहीं न जाना चाहिये । मैं तुम्हारी, अपनी सबुद्धि के प्रभाव से, रक्षा करूँगा ।' मण्डूक ने कहा 'हे भद्र पुरुषो ! मेरी तो एक ही बुद्धि है, उसे तो भागना ही सूझ पड़ता है । इस लिए

मैं दूसरे सरोवर में आज ही स्त्री-सहित जाऊँगा ।' ऐसा कह कर वह मेढ़क रात्रि में ही दूसरे तालाब में चला गया ।

धीवरैरपि प्रभात आगत्य जघन्य-मध्यमोत्तम-जलचरा मत्स्य कूर्म मण्डूक-कर्कटादयो गृहीताः । तावपि शतबुद्धि-सहस्रबुद्धी सभायौ पलायमानौ चिरमात्मानं गतिविशेष-विज्ञानैः कुटिलचारेण रचन्तौ जाले पतितौ व्यापादितौ च ।

मल्लाह लोगों ने भी प्रभातकाल में आकर निकृष्ट (छोटे) मध्यम (मझोले) उत्तम (बड़े) जल-जन्तुओं, मछली, कछुआ, मेढ़क केकड़े आदि को पकड़ लिया। ये दोनों शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि पत्नी-सहित भागते हुए बहुत देर तक अपनी विशेष गति के ज्ञान और कुटिल आचरण से रक्षा करते हुए भी, जाल में फँस गये और मारे गये ।

अथापराहसमये महृष्टास्ते धीवराः स्वगृहं प्रति प्रस्थिताः ।

गुरुत्वाच्चैकेन शतबुद्धिः स्कन्धे कृतः । सहस्रबुद्धिः प्रलम्ब-मानो नीयते । ततश्च वापीकण्ठोपगतेन मण्डूकेन तौ तथा नीयमानौ दृष्ट्वाऽमिहिता स्वपत्नी-‘प्रिये ! पश्य पश्य—

अनन्तर तीसरे पहर प्रसन्न हो वे मल्लाह अपने घर की ओर चल दिये। भारी होने के कारण एक ने शतबुद्धि को कन्धे पर रखा । और सहस्रबुद्धि को लटका कर ले चले । तब बावली के समीप स्थित मेढ़क ने, उन दोनों को उस प्रकार लिये जाते हुए देखकर, अपनी भार्या से कहा ‘हे प्यारी ! देखो, देखो—

शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं लम्बते च सहस्रधीः ।

एकबुद्धिरहं भद्रे ! क्रीडामि विमले जले ॥४६॥

यह शतबुद्धि शिर पर है, सहस्रबुद्धि लटकती है और हे कल्याणि ! मैं एकबुद्धि स्वच्छ जल में विहार करता हूँ ॥४६॥

अतश्च 'वरं बुद्धिर्न सा विद्या' इत्यादि यद्भवता  
उक्तं, तत्रेयं ये मतिर्यत्, 'नैकान्ते बुद्धिरपि प्रमाणम् ।'  
सुवर्णसिद्धिराह—'यद्यप्येतदस्ति, तथापि मित्रवचनमनुल-  
ङ्घनीयम् । परं किं क्रियते, निवारितोऽपि मया न स्थिता-  
ऽतिलौल्याद्विद्याहङ्कारोच्च । अथवा साध्विदमुच्यते

अतः 'बुद्धि अच्छी है बल्कि वैसी विद्या उत्तम नहीं है...'  
इत्यादि जो आपने कहा उसमे मेरी सम्मति यह है कि 'केवल बुद्धि  
ही प्रमाणस्वरूप नहीं है ।' सुवर्णसिद्धि ने कहा 'यद्यपि ऐसा है,  
तो भी मित्र की बात उल्लंघनीय नहीं है । परन्तु क्या किया जाय ?  
मेरे रोकने पर भी अति चपलता एवं विद्या के अभिमान के कारण  
न रुके । अथवा ठीक ही कहा है

साधु मातुल ! गीतेन मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः ।

'अपूर्वोऽयं मणिर्वद्धः सम्प्राप्तं गीतलक्षणां ॥५०॥

धन्य हो मामा ! मेरे कहने पर भी गानप्रिय होने के कारण चुर  
न हुए । उसी से यह अपूर्व मणि बँधवाकर गान का पुरस्कार प्राप्त किये

चक्रधर आह 'कथमेतत् ?' सोऽब्रवीत्

चक्रधर ने पूछा 'यह कैसी कथा है ? उसने कहा

( कथा ६ )

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने उद्धतो नाम गर्दभः प्रतिवसति स्म ।

स सदैव रजकगृहे भारोद्वहनं कृत्वा रात्रौ स्वेच्छया

प्रश्नः १ अधोलिखितवाक्यस्य स्वसंस्कृतेन व्याख्या कार्या ( सन् ३७ )

अतोऽहं ब्रवीमि, नैकान्ते बुद्धिरपि प्रमाणम् ।

प्रश्नः २- अधोलिखितवाक्यस्य हिन्दीभाषया व्याख्या कार्या ( सन् ३५ )

यद्यप्येतदस्ति तथापि मित्रवचनमनुल्लङ्घनीयम् ।

पर्यटति । ततः प्रत्यूषे बन्धनभयात्स्वयमेव रजकगृहमा-  
याति । रजकोऽपि ततरतं बन्धनेन नियुनक्ति । अथ तस्य  
रात्रौ पर्यटतः क्षेत्राणि कदाचिच्छृगालेन सह मैत्रौ  
सञ्जाता । स च पीवरत्वाद्दृष्टिभङ्गं कृत्वा कंकटिकाक्षेत्रे  
शृगालसहितः प्रविशति । एवं तौ यहच्छया चिर्भटिका-  
भक्षणं कृत्वा प्रत्यूहं प्रत्यूषे स्वस्थानं व्रजतः ।

किसी स्थान पर उद्धत नामक गदहा रहता था । वह सर्वदा  
धोबी के घर में बोलू डोकर रात्रि में अपनी इच्छानुसार घूमा  
करता था । तदनन्तर प्रभातकाल ही बन्धन के भय से स्वयं ही  
धोबी के घर में आ जाया करता था । धोबी भी तब उसको बन्धन  
में नियुक्त करता था । एक समय उसे रात्रि में खेत में धूमते हुए  
किसी सियार से भिन्नता हो गयी । वह मोटा होने के कारण वृत्ति  
भङ्ग ( डँडवार डॉक ) कर ककड़ी के खेत में सियार के साथ धुस  
जाता । इस प्रकार वे दोनों इच्छानुसार ककड़ी खा कर, प्रतिदिन  
उषाकाल के समय अपने स्थान को चले जाते थे ।

अथ कदाचित्तेन सदोद्धतेन रासमेन क्षेत्रमध्य-  
स्थितेन शृगालोऽभिहितः 'भो भगिनीसुत !- पश्य,  
पश्य !! अतीवनिर्मला रजनी । तदहं गीतं करिष्यामि ।  
तत्कथय कतमेन राजेण करोमि ।' स आह 'माम !  
किमनेन वृथानर्थप्रचालनेन ? यतश्चौरकर्मप्रवृत्तावावां  
निभृतैश्च चौरजारैरत्र स्थातव्यम् ।' उक्तं च-

प्रेरन् निम्नाङ्कितगद्यमागम्य सरलहिन्दीभाषायामनुवाद. कार्य. (सन् १९३६)

अथ तस्य रात्रौ पर्यटत क्षेत्राणि ..... यतश्चौरकर्मप्रवृत्तावावाम् ।

किसी समय उस मदोद्धत गद्गहे ने खेत में स्थित हो, सियार से कहा 'हे भाँजे ! देखो ! देखो ! यह निशा बड़ी स्वच्छ है । सो मैं तो गीत गाऊँगा । सो कहो किस राग में गाऊँ ?' उसने कहा—'मामा ! इस वृथा के उत्पात (अन्त्य पुलाने) से क्या लाभ ? क्योंकि हम दोनों चोरी के काम में प्रवृत्त हो रहे हैं । चोर और जार (उपपत्ति) को तो संसार में मोन रहना चाहिए । कहा है

कासयुक्तस्त्यजेचौर्यं, निद्रालुश्चेत्स पुंश्चलीम् ।

जिह्वालौन्यं रजाऽऽक्रान्तो जीवितं योऽत्र वाञ्छति ॥५१॥

इस संसार में यदि जीने की अभिलाषा करे तो खौंसीवाले को चोरी, निद्राभिभूत को कुलटा स्त्री और रोग से आक्रान्त पुरुष ( अर्थात् रोगी ) को जिह्वा का स्वाद छोड़ देना चाहिये ॥५१॥

अपरं त्वदीयं गीतं न मधुरस्वरम् । शङ्खशब्दानुकारं दूरादपि श्रूयते । तदत्र चेन्ने रजापुरुषाः सुप्ताः सन्ति । ते उत्थाय वधं बन्धं वा करिष्यन्ति । तद्भक्षय तावदमृतमयी-श्चिर्भटीः । मा त्वमत्र गीतव्यापारपरो भव ।'

दूसरे, तुम्हारा गाना भी तो मधुर स्वर का नहीं है । वह तो शंख-ध्वनि की भाँति दूर ही से सुनाई पड़ना है और इस खेत में रखवाली करनेवाले मनुष्य भी सोये हैं । वे उठकर मारेंगे । अथवा बंधेंगे । सो तब तक अमृत के समान मीठी ककड़ी खाओ । यहाँ गीतगाने के व्यापार में मत लगे ।'

तच्छ्रुत्वा रासभ आह—'भोः ! वनाश्रयत्वात्त्वं गीत-रसं न वोत्स । तेनैतद्ब्रवीषि । उतां च—

प्रश्नः — अघोलिखितगद्यस्य संस्कृतभाषया व्याख्या कार्मा (सन् १६३४)

मास । किमनेन वृथानर्थप्रचालनेन\*\*\* गीतव्यापारपरो भव ।

उसे सुनकर गदहे ने कहा - 'अरे ! जंगल में रहने के कारण तुम गीत का स्वाद ( मञ्जा ) नहीं जानते । इसी कारण ऐसा कहते हो । कहा है

शरज्ज्योत्स्नाहते दूरं तमसि प्रियसन्निधौ ।

धन्यानां विशति श्रोत्रे गीतभङ्गारजा सुधा ॥५२॥

शरद्वृष्टि में ज्योत्स्ना ( चन्द्रकिरण ) द्वारा अन्धकार दूर होने पर प्रेमी जनों के समीप गीत की भङ्गार से उत्पन्न हुई सुधा ( अमृत ), भाग्यवान् मनुष्यों के कान में प्रवेश करती है ॥५२॥

शृगाल आह—'माम ! अस्त्येतत् । परं न वेत्सि त्वं गीतम् । केवलमुन्नदसि । तत्किं तेन स्वार्थभ्रंशकेन ?' रक्षिभ आह 'धिग्धिङ्मूर्ख ! किमहं न जानामि गीतम् ?' तद्यथा तस्य भेदाः, शृणु

सियार ने कहा मामा ! बात तो ऐसी ही ( सत्य ) है, किन्तु तुम गीत नहीं जानते केवल बड़ी जोर से चिल्लाते हो । सो उस निज हानिकारक गान से क्या लाभ ?' गदहे ने कहा—'अरे मूर्ख ! तुम्हें धिक्कार है ! ! क्या मैं गाना नहीं जानता ? सो उसका भेद ये हैं, सुनो

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनारचैकविंशतिः ।

तालास्त्वेकोनपञ्चाशत्तिस्रो मात्रा लयास्त्रयः ॥५३॥

सात स्वर ( निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत तथा

स्वरलक्षणान्तु श्रुत्यन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरागात्मकः ।

स्वतो रञ्जयति श्रोतुश्चितं स स्वर उच्यते ॥'

प्रश्नः—अधोलिखितसन्दर्भस्य सरलहिन्दीभाषायामनुवाद कार्यः ( सन् ३६ )

'अस्त्येतत्, परं न वेत्सि'—क्षणेनाभ्युत्थितः ।



पञ्चम ), तीन ग्राम ( षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम, एवं गान्धार ग्राम ),  
इक्कीस मूर्च्छना ( स्वरों का आरोहावरोह ), उनचीस ताल, तीन  
मात्रा, तीन लय ( द्रुत, मध्य और विलम्बित ) ॥ ५३ ॥

स्थानत्रयं यतिपञ्च षडास्यानि रसा नव ।

रागाः षट्त्रिंशतिर्भावाश्चत्वारिंशत्ततः स्मृताः ॥५४॥

तीन स्थान, पाँच यति ( विरामस्थान ), छ मुख, नव रस  
( शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत  
तथा शान्त रस ) छत्तीस राग, चालीस भाव ॥ ५४ ॥

स्वरलक्षणान्तु 'श्रुत्यन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणकात्मकः ।

स्वतो रजयति श्रोतुश्चितं स स्वर उच्यते ॥'

सप्तस्वराः 'निषादर्षम-गान्धार षड्ज मध्यम-धैवताः ।

पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वरः ॥'

नारदीयशिक्षायान्तु-षड्जं वदति मयूरो, गावो रन्मन्ति चर्षभः ।

अजा वदति-गान्धारं, कौञ्चो वदति मध्यमम् ॥

पुष्पसाधारणो काले पिकः कूजति पञ्चमम् ।

अश्वस्तु धैवतं वक्ति, निषादं वक्ति कुञ्जरः ॥

ग्रामलक्षणम् यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि ।

तथा स्वराणां सन्दोहो "ग्राम" इत्यभिधीयते ॥

ग्रामत्रयम् षड्जग्रामो भवेदादौ, मध्यमग्राम एव च ।

गान्धारग्राम इत्येतद्ग्रामत्रयमुदाहृतम् ॥

तथा नन्दावर्तोऽथ जीमूतः सुभद्रो ग्रामकाष्ठयः ।

षड्ज-मध्यम-गान्धारास्त्रयाणां जन्महेतवः ॥

मूर्च्छनालक्षणम्-कमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् ।

सा मूर्च्छेत्युच्यते ग्रामस्या एताः सप्तसप्त च ।

तथाः त्रयो लयाश्च विज्ञेया द्रुत-मध्य-विलम्बिताः ॥

पञ्चाशीत्यधिकं ह्येतद्गीताज्ञानां शतं रघृतम् ।

स्वयमेव पुरा भोक्तुं भरतेन श्रुतेः परम् ॥५५॥

ये एक सौ पच्चीस गीतों के अङ्ग प्रसिद्ध हैं । स्वयं नाट्य-शास्त्र-रचयिता भरतमुनि ने प्राचीन समय में श्रुति ( वेद ) का सारांश ( अथवा ) तदनन्तर इसको बतलाया है ॥५५॥

नान्यद्गीतात्प्रियं लोके देवानामपि दृश्यते ।

शुष्कस्तायुस्वराह्लादात्पक्षं जग्राह रावणः ॥५६॥

संसार में देवताओं को भी गीत से अधिक प्रिय वस्तु नहीं है; क्योंकि शुष्क-स्तायुभयी-वीर्यातन्त्री से उत्पन्न स्वर के आनन्दोत्पादक होने के कारण त्र्यक्ष ( त्रिलोचन, महादेवजी ) को रावण ने बशीभूत किया था ॥ ५६ ॥

तत्कथं भगिनीसुत ! मामनभिज्ञं वदन्निवारयसि ?

शृगाल आह 'माम ! यद्येवं तदहं तावद्दृष्टोद्धारस्थितः क्षेत्रपालमवलोकयामि ।' त्वं पुनः स्वेच्छया गीतं कुरु ।' तथाऽनुष्ठिते रासभरदनमाकर्ण्य क्षेत्रपः क्रोधादन्तान्धर्षयन्प्रधावितः । ततो यावद्रासभो दृष्टस्तावन्लघुदप्रहारैस्तथा हतः, यथा प्रताडितो भूपृष्ठे पतितः । ततश्च सच्छिद्रमुख-खलं तस्य गले बद्ध्वा क्षेत्रपालः प्रसुप्तः । रासभोऽपि स्वजातिस्वभावाद्गतवेदनः क्षणेनाभ्युत्थितः । उक्तं च—

सो हे भाञ्जे ! क्यों मुझे अनभिज्ञ कह कर निषेध करता है ?' सियार ने कहा 'मामा ! यदि ऐसा ही है तो मैं डेड़वार के दर्वाजे

प्रश्न. — निम्नाङ्कित गद्यभागस्य सरलहिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः (सन् १९३७)

तत्कथं भगिनीसुते ! ..... क्षणेनाभ्युत्थितः ।

पर बैठ खेत की रक्षा करने वाले को देखती हूँ । तुम फिर अपनी इच्छा (चैन) से गाओ ।' वैसा करने पर गदहा की रेंकने की आवाज सुनकर क्षेत्रपाल क्रोध से दाँत पीसता हुआ दौड़ा । और ज्यों ही उसने गदहे को देखा त्यों ही लाठी की चोट से इतना मारा कि वह मार खाने से पृथ्वी पर गिर पड़ा । तब छिद्र सहित उलूखल उसके गले में बाँधकर क्षेत्रपाल सो गया । और गदहा भी अपनी जाति के स्वभाव के कारण पीड़ा रहित हो ज़ण ही में उठ खड़ा हुआ । कहा है -

सारमेयस्य चाश्वस्य रासभस्य विशेषतः ।

मुहूर्तात्परतो न स्यात्प्रहारजनितः व्यथा ॥५७॥

कुत्ता, घोड़ा और विशेष कर गदहा - इनको मुहूर्त भर के बाद प्रहारजनित व्यथा (पीड़ा) नहीं रहती ॥५७॥

ततस्तमेवोलूखलमादाय धृतिं चूर्णयित्वा पलायितुमा-  
रब्धः । अत्रान्तरे शृगालोऽपि दूरादेव तं दृष्ट्वा सस्मितमाह -

तब उसी उलूखल को लेकर उस डँडवार को तोड़ कर भागने लगा । इसी समय सियार ने दूर ही से उसे देखकर हँसते हुए कहा -  
साधु मातुल ! गीतेन मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः ।

अपूर्वोऽयं मणिवर्द्धः सम्प्राप्तं गीतलक्षणां ॥५८॥

धन्य हो मामा ! मेरे कहने पर भी सङ्गीत-प्रिय होने के कारण चुप न हुए, उसी से यह अपूर्व मणि बँधवा कर गाने का पुरस्कार प्राप्त किया ॥५८॥

तद्भवानपि मया वार्यमाणोऽपि न स्थितः ।' अथवा -

साध्विदमुच्यते

सो तुम भी मुझ से रोके जाने पर भी न रुके । अथवा ठीक ही कहा है -

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः ।

स एव निधनं याति यथा मन्थरकौलिकः ॥५६॥

जिसको स्वयं बुद्धि नहीं है और न जो मित्र की कही हुई बात को मानता है वह, मन्थरक नाम कौलिक की भाँति, मृत्यु को प्राप्त होता है ॥५६॥

चक्रधर आह 'कथमेतत् ?' सोऽब्रवीत्-

चक्रधर ने कहा 'यह कैसी कथा है ?' उसने कहा

( कथा ७ )

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने मन्थरको नाम कौलिकः प्रतिवसति  
रा । तस्य कदाचित्पट्टकर्मणि कुर्वतः सर्वपट्टकर्मकाष्ठानि  
भग्नानि । ततः स कुठारभादाय वने काष्ठार्थं गतः ।

किसी स्थान में मन्थरक नामक एक कौलिक ( जुलाहा ) रहता  
था । किसी समय वह चुनते हुए उसके सब वस्त्र चुननेवाले करघे  
की सब लकड़ियाँ टूट गयीं । तब वह कुल्हाड़ी लेकर वन में लकड़ी  
के लिए गया ।

स च समुद्रतटं यावद्भ्रमन्प्रयातः, ततश्च तत्र शिशुपा-  
पादपस्तेन दष्टः । ततश्चिन्तितवान् 'महानयं वृक्षो  
दृश्यते । तदनेन कर्त्तितेन प्रभूतानि पट्टकर्मोपकरणानि  
भविष्यन्ति' इत्यवधार्य तस्योपरि कुठारमुत्तिष्ठत्तवान् ।

प्रश्न - अधालिखितसन्दर्भस्य शुद्धहिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः ( सन् १९३५ )

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने मन्थरको नाम 'अहमेन' कर्तयिष्यामि ।

प्रश्नः यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः ।

स एव निधनं याति यथा मन्थरकौलिकः ॥

इत्यमुं श्लोकमुद्दिश्यैका कथा स्वसंस्कृतेन लेख्या । ( सन् १९३६ )

वह जब धूमता र समुद्र के किनारे गया, तब वहाँ शिंशप (सीसों) वृक्ष को उसने देखा। तदनन्तर विचार करने लगा। 'यह वृक्ष बड़ा मालूम पड़ता है। सो इसके काटने से वस्त्रवयनयन्त्र के बहुत से उपकरण (सामग्री) हो जायँगे।' ऐसा निश्चय कर उसके ऊपर कुल्हाड़ी से प्रहार किया।

अथ तत्र वृक्षे कश्चिद्व्यन्तरः समाश्रित आसीत् । तेनाभिहितम् 'भोः ! मदाश्रयोऽयं पादपः सर्वथा रक्षाणीयः, यतोऽहमत्र महासौख्येन तिष्ठामि समुद्रकल्लोलस्पर्शनाञ्छीतवायुनाऽऽप्यायितः ।'

उस वृक्ष पर कोई प्रेत रहता था। तब उसने कहा—'अरे ! यह वृक्ष मेरा निवासस्थान है। अतः सब प्रकार से इसकी रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि मैं यहाँ सागरन्तरङ्ग के सम्पर्क के कारण हवा ठंडी होने से अभरहित होकर बड़े सुख से रहता हूँ।'

कौलिक आह 'भोः ! किमहं करोमि ? दाससामग्रीं विना मे कुडुम्बं बुभुक्षया पीड्यते । तरगादन्यत्र शीघ्रं गम्यताम् । अहमेनं कर्तयिष्यामि ।'

कौलिक ने कहा 'अहो ! मैं क्या करूँ ? लकड़ी के सामान (औजार) के बिना मेरा कुडुम्ब भूख से पीड़ित है। इसलिए किसी दूसरे जगह चले जाइये। मैं इसे काटूँगा।'

व्यन्तर आह 'भोः ! तुष्टस्त्वाहम् । तत्प्राथर्यतामभीष्टं किञ्चित् । रक्षैनं पादपम्' इति । कौलिक आह

अनः- निम्नाङ्कितगद्यभागस्य सरलहिन्दीभाषायामनुवाद-कार्यः (सन् १९३७)

अथ तत्र वृक्षे कश्चिद्व्यन्तरः ..... रक्षैनं पादपमिति ।

‘यद्येवं तदहं स्वगृहं गत्वा स्वमित्रं स्वभार्या च पृश्नाऽऽगमिष्यामि । ततस्त्वया देयम् ।’

प्रेत ने कहा ‘हे ! मैं तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट हुआ हूँ । अतः कोई अभिलषित वर माँगो । इस पेड़ को रहने दो ।’ कौलिक ने कहा ‘यदि ऐसा है तो मैं अपने घर जाकर अपने मित्र और अपनी स्त्री से पूँछकर आता हूँ । तब तुम वही देना ।’

अथ ‘तथा’ इति प्रतिज्ञाते व्यन्तरेण, स कौलिकः महृष्टः स्वगृहं प्रतिनिवृत्तः । यावदग्रे गच्छति, तावद्ग्राम-प्रवेशे निजसुहृदं नापितमपश्यत् । ततस्तस्य व्यन्तरवाक्यं निवेदयामास—‘यदहो मित्र ! मम कश्चिद्व्यन्तरः सिद्धः । तत्कथय किं प्रार्थये ? अहं त्वां प्रष्टुमागतः ।’

तब ‘बहुत अच्छा’ ऐसी प्रतिज्ञा प्रेत से कराने पर वह कौलिक-प्रसन्न हो अपने घर की ओर चला । ज्योंही वह आगे जाता है त्योंही ग्राम में प्रवेश करने पर उसने अपने मित्र नाई को देखा । तब उससे प्रेत की बात को निवेदन किया कि ‘हे मित्र ! मुझे कोई प्रेत सिद्ध हुआ है । सो कहो, उससे क्या माँगू ? मैं तुमसे पूँछने के लिए आया हूँ ।’

नापित आह ‘भद्र ! यद्येवं तद्राज्यं प्रार्थय । येन त्वं राजा भवसि, अहं त्वन्मन्त्री च । द्वावपीह सुखमनुभूय परलोकसुखमनुभवावः । उक्तं च

नाई ने कहा ‘हे भद्र ! यदि ऐसी बात है तो राज्य माँगो । जिससे तुम राजा हो, और मैं तुम्हारा मन्त्री होऊँ । हम दोनों

प्रश्न अघस्तनस्य शब्दस्यार्थः हिन्दीभाषाया लेख्यः ( सन् १९३६ )

‘व्यन्तर’

इस लोक में सुख का अनुभव (भोग) कर परलोक से भी सुखी रहें। कहा है:

राजा दानपरो नित्यमिह कीर्तिमवाप्य च ।

तत्प्रभावात्पुनः स्वर्गे स्पर्धते त्रिदशैः सहः ॥६०॥

नित्य दान करनेवाला राजा इस संसार में कीर्ति लाभ कर उसके प्रभावसे पुनः स्वर्ग में देवताओं के साथ स्पर्धा करता है ॥६०॥

कौलिक आह 'अस्त्येतत्परम्, तथापि गृहिणीं पृच्छामि।' स आह 'भद्र ! शास्त्रविरुद्धमेतद्वत्स्त्रिया सह

मन्त्रः, यतस्ताः स्वप्नमतयो भवन्ति । उक्तं च

कौलिक ने कहा 'यह तो ठीक है; किन्तु अपनी सहधर्मिणीसे 'पृष्ठ लूँ।' उसने कहा 'हे भद्र ! स्त्री के साथ सलाह करना यह शास्त्र के विरुद्ध है । क्योंकि वे अल्पबुद्धि वाली होती है । कहा है—

भोजनाच्छादने दद्यात्तुकाले च सङ्गमम् ।

भूषणाद्यं च नारीणां न ताभिर्मन्त्रयेत्सुधीः ॥६१॥

विद्वान् को चाहिए कि स्त्रियों को भोजन, वस्त्र, भूषण दें और ऋतुकाल से सङ्गम करें; किन्तु उनसे सलाह न करें ॥६१॥

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्राप्रशासितः ।

तद्गृहं क्षयमायाति भार्गवो हीदमब्रवीत् ॥६२॥

जहाँ स्त्री (सलाह देनेवाली), धूर्त, बालक दण्ड दिये बिना रहते हैं वह घर ध्वंस को प्राप्त हो जाता है—ऐसा भार्गव (महर्षि शुक्राचार्य) ने कहा है ॥६२॥

नावत्स्यात्सुप्रेसन्नाऽऽस्यस्तावद्गुरुजने रतिः ।

पुरुषो योषितां यावन्न शृणोति वचो रहः ॥६३॥

तब तक मनुष्य प्रसन्न मुखवाला और गुरुजनों से प्रेम रखने

वाला होता है, जब तक यह एकान्त में स्त्रियों की बात नहीं सुनता॥

एताः स्वार्थपरा नार्यः केवलं स्वसुखे रताः ।

न तासां वल्लभः कोऽपि सुतोऽपि स्वसुखं विना॥६४॥

ये स्वार्थपरायणा स्त्रियाँ केवल अपने सुख में लीन रहती हैं । अपने सुख के बिना उनका कोई प्रिय नहीं है, अधिक क्या कहे, पुत्र भी ( प्रिय ) नहीं है ॥ ६४ ॥

कौलिक आह 'तथापि प्रष्टव्या सा मया । यतः पतिव्रता सा । अपरं, तामपृष्ट्वाऽहं न किञ्चित्करोमि ।' एवं तमभिधाय सत्वरं गत्वा तामुवाच 'प्रिये ! अचाराणां कश्चिद्व्यन्तरः सिद्धः । स वाञ्छितं प्रयच्छति । तदहं त्वां प्रष्टुमागतः । तत्कथय, किं प्रार्थये ? एष तावन्नाम मित्रं नापितो वदत्येवं यत्, 'राज्यं प्रार्थयस्व' इति ।

कौलिक ने कहा 'तौ भी मुझे उससे पूछ लेना चाहिये; क्योंकि वह 'पतिव्रता है । दूसरे, मैं बिना उससे पूछे कुछ नहीं करता ।' ऐसा उससे कहकर शीघ्र जाकर उससे कहा 'हे प्यारी ! आज हमें कोई प्रेत सिद्ध हुआ है । वह अभिलषित ( पदार्थ ) देता है । सो मैं तुमसे पूछने के लिए आया हूँ । सो कहो, क्या माँग लूँ ? यह मेरा मित्र नाई तो यह कहता है कि राज्य माँग लो ।'

साऽऽह 'आर्यपुत्र ! का मतिर्नापितानाम् । तन्न कार्यं तद्वचः । उक्तं च

उसने कहा 'हे पति ! नाइयों को क्या बुद्धि होती है ? सो उसके वचनानुसार मत कीजिए । कहा है

१ पति या नाभिचरति मनोवाक् क्वाय-सयता ।

सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥



चारलौर्वन्दिभिर्नोचैर्नापितैर्बालकैरपि ।

मन्त्रं न मतिमान्कुर्यात्सार्धं भिक्षुभिरेव च ॥६५॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि चारण ( नट ), वन्दी ( स्तुति करने वाले भाट ), नीच, नाई, बालक और भीख माँगनेवालों के साथ मन्त्रणां न करें ॥ ६५ ॥

अपरं महती क्लेशपरम्परैषा राज्यस्थितिः, सन्धि-  
विग्रह-यानाऽऽसन-संश्रय-द्वैधीभावादिभिः कदाचित्पुरुष-  
स्य सुखं न प्रयच्छतीति । यतः

दूसरे, यह राज्यपालन करना तो कष्टकी परम्परा है । सन्धि

प्रश्नः अधोलिखितवाक्यस्य सरलसंस्कृतभाषया व्याख्या कार्या (सन् १९३४)  
महती क्लेशपरम्परैषा राज्यस्थितिः ।

१ अत्रामर. सन्धिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः ॥

षड्गुणाः शक्यस्तिस्व. प्रभावोत्साहमन्त्रजा ।

क्षयः स्यान् च वृद्धिश्च त्रिवर्गो नीतिवेदिनाम् ॥

तत्रारिविजिगीषोर्व्यवस्थाकरणमैवयं सन्धि. । विरोधो विग्रहः ।  
विजिगीषोररिं प्रति यात्रा यानम् । तयोः ( अरिविजिगीष्वोः ) मिथः  
प्रतिबद्धशक्तयो. कालप्रतीक्षया तूष्णीमवस्थानमासनम् ॥

अरिणा पीड्यमानस्य बलवदाश्रय सश्रय. ।

दुर्बलप्रबलयोर्वाचिकमात्मसमर्पणं द्वैधीभाव. ॥

कामन्दकीये — वलीयसामित्युक्तस्तु नृपोऽन्योन्यप्रतिक्रियः ।

आपन्न 'सन्धि' मन्विच्छेत् कुर्वाणः कालयापनम् ।

अमर्षोपगृहीताना मन्युसन्तप्तचेतसाम् ।

परम्परापकारेण पुंसा भवति 'विग्रह.' ॥

आत्मनोऽभ्युदयाकाङ्क्षी पीड्यमान. परेण वा ।

देशकालबलोपेतः प्रारभेत हि 'विग्रहम्' ॥

(सुलह) (जब राजा बलवान् शत्रु से आक्रान्त हो जाय और कोई उपाय न सूझे तो विपद्ग्रस्त हो काल व्यतीत करता हुआ सन्धि कर ले । यह सोलह प्रकार की होती है ), विग्रह ( विरोध ), यान ( शत्रु पर चढ़ाई करने के लिए यात्रा करना ), आसन ( शत्रु और विजिगीषु के परस्पर तुल्यशक्ति होने के कारण आक्रमण की प्रतीक्षा करना ), संश्रय ( शत्रु से पीड़ित होने पर शक्तिशाली राजा का आश्रय ग्रहण करना ), द्वैधीभाव ( दो शत्रु हों तो दोनों से मिल कर वाङ्मात्र ही से आत्मसमर्पण करना ) आदि कभी भी पुरुष को सुख नहीं देते । क्योंकि -

यदैव राज्ये क्रियतेऽभिषेकस्तदैव याति व्यसनेषु बुद्धिः ।

घटा नृपाणामभिषेककाले सहाम्भसैवाऽपदमुद्गिरन्ति ६६

जब राज्याभिषेक किया जाता है तो उसी समय से बुद्धि व्यसनों में आसक्त होती है । राजाओं के अभिषेक के समय, धड़े ( तीर्थजलपरिपूर्ण कलश ) जल के साथ ही आपत्ति भी उड़ेलते हैं ।

तथा च ।

उत्कृष्टबलवीर्यस्य विजिगीषोर्जयैषियाः ।

गुणानुरक्तप्रकृतेर्यात्रा 'यान' मिति स्मृतम् ॥

परस्परस्य सामर्थ्याविधाता 'दासन' स्मृतम् ।

अरेश्च विजिगीषोश्च ( तत्पञ्चविधमुच्यते ) ॥

उच्छिद्यमानो बलिना निरुपायप्रतिक्रियः ।

कुलोद्भूत सत्यभार्यमाश्रयेत चलोत्कटम् ॥

'द्वैधीभावो' द्विधा प्रोक्ताः स्वतन्त्र-परतन्त्रयोः ।

स्वतन्त्र उक्तो ह्यन्यस्तु यः स्यादुभयवेतनः ॥

बलिनोद्विषतोर्मध्ये वाचाऽऽत्मानं समर्पयन् ।

द्वैधीभावेन वर्तेत काकाक्षिवदलक्षितः ॥

और भी:

रामस्य व्रजनं वने निवसनं पाण्डोः सुतानां वनं  
वृष्णीनां निधनं नलस्य वृपते राज्यात्परिश्रंशनम् ।  
सौदासं तदवस्थमर्जुनवधं सञ्चिन्त्य लङ्केश्वरं

दृष्ट्वा राज्यकृते विडम्बनगतं तस्मान्न तद्वाञ्छयेत् ॥६७॥

दशरथपुत्र राम का ( चौदह वर्ष के लिए ) वन गमन, राजा पाण्डु के पुत्रों ( युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन-नकुल एवं सहदेव ) की वन-यात्रा, यदुवंशियों का ( प्रभासक्षेत्र में ) नाश, निषधराज नल का राजव्युत्त होना <sup>१</sup>सुदास-पुत्र कल्मषपाद की वह अवस्था, <sup>२</sup>कार्तवीर्य अर्जुन का वध और लङ्काधिपति रावण का राज्य के लिये

१ ये अयोध्यापति राजा ऋतुपर्ण के प्रपौत्र तथा राजा सुदास के पुत्र थे । इनके सौदास, मित्रसह और कल्मषपाद ये तीन नाम थे । एक बार इन्होंने वशिष्ठ को नरभास खिलाने की चेष्टा की । जिससे क्रुपित हो वशिष्ठ ने शाप दिया कि 'तुम राक्षस हो जाओ ।' महाराज भी उन्हें शाप देने जा रहे थे, किन्तु महारानी दमयन्ती के कहने से रुक गये और वह शाप जल अपने पैरों पर डाल लिया जिससे उनके पैर काले हो गए । तभी से सौदास का नाम कल्मषपाद हुआ । पुन राजा के अनुनय करने पर वशिष्ठ ने बारह वर्ष के लिए एक व्रत का अनुष्ठान बतलाया, जिसके करने से वे बारह वर्ष के बाद शाप-मुक्त हो गए ।

२ ये नर्मदा नदी के तीरस्थ हैहयराज्य के अधिपति थे । कार्तवीर्य का दूसरा नाम हैहय और अर्जुन भी था । महिष्मती नगरी में इनकी राजधानी थी । ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि एक समय सेना सहित क्षुधा एवं पिपासा से व्याकुल होकर ये जमदग्नि ऋषि के आश्रम में ठहरे । जमदग्नि ने कपिला गौ के प्रभाव से इनका सत्कार किया । कपिला के गुणों पर अनुरक्त हो इन्होंने ऋषि से उसे माँगी । किन्तु ऋषि ने अस्वीकार किया ।

क्लेश का अनुभव देखकर ( मेरा यह कथन है, कि ) विडम्बना के कारण उस राज्य की कामना ( बुद्धिमान् को ) न करनी चाहिए ॥६७॥

यदर्थं भ्रातरः पुत्रा अपि वाञ्छन्ति ये निजाः ।

वधं राज्यकृतां राज्ञां तद्राज्यं दूरतस्त्यजेत् ॥६८॥

जो अपने भाई और पुत्र हैं वे भी जिस ( राज्य ) के लिए राज्य करते हुए राजा के वध करने की इच्छा रखते हैं तो ऐसे राज्य को दूर ही से नमस्कार कर दे ( अर्थात् छोड़ दे ) ॥६८॥

कौलिक आह- 'सत्यमुक्तं भवत्या । तत्कथय किं प्रार्थये ?'

कौलिक ने कहा 'तू ने ठीक कहा । सो कहो, कि उससे क्या माँगूँ ?'

साऽऽह 'त्वं तावदेकं पटं नित्यमेव निष्पादयसि ।

तेन सर्वा व्ययशुद्धिः सम्पद्यते । इदानीं त्वमात्मनोऽन्य-

द्ब्राह्मणं द्वितीयं शिरश्च याचस्व । येन पटद्वयं सम्पाद-

अतः बलपूर्वक उसे हरण कर ले जाना चाह । परन्तु परास्त होकर लौट गये । तब एक बड़ी सेना लेकर जमदग्नि के आश्रम पर चढ़ाई की । इस युद्ध में जमदग्नि मारे गये । युद्धक्षेत्र से कपिला ब्रह्मलोक को चली गयी । परशुराम आये तब उन्होंने अपनी माता रेणुका के मुखे से पितृवध का वृत्तान्त सुना । उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि कार्तवीर्य के साथ इस पृथ्वी को इक्कोसवार क्षत्रिय-शून्य कर दूँगा । तदनन्तर परशुराम और कार्तवीर्य से युद्ध हुआ, जिसमें कार्तवीर्य मारे गये ।

अनन्त निम्नाङ्कितगद्यभागस्य सरलहिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः १६३८)

कौलिक आह-सत्यमुक्तं भवत्या । लोकद्वयस्योपार्जना भविष्यति ।

यसि पुरतः पृष्ठतश्च । एकस्य मूल्यान गृहे यथापूर्वं व्ययं  
सम्पादयिष्यसि । द्वितीयस्य मूल्यान विशेषकृत्यानि करि-  
ष्यसि । एवं सौख्येन स्वजातिमध्ये श्लाघ्यमानस्य कोलो  
यास्यति । लोकद्वयस्योपार्जनं भविष्यति ।'

उसने कहा 'तुम तो एक वस्त्र नित्य ही बुन लिया करते हो ।  
जिससे सब खर्च चलता है । इस समय तुम अपने लिए दो मुजा  
और दूसरा सिर और माँग लो । जिससे आगे और पीछे ( दोनों  
ओर ) से दो कपड़ा बुन सको । एक वस्त्र के मूल्य से घर का  
खर्च पहले की तरह चला सकोगे । और दूसरे वस्त्र के मूल्य से  
विशेष कृत्य ( दान, धर्म आदि ) कर सकोगे । इस प्रकार सुख-  
पूर्वक अपनी जाति में प्रशंसित हो समय कटेगा । और ऐहिक एवं  
पारलौकिक दोनों की सिद्धि होगी ।

सोऽपि तदाकर्ण्य महष्टः प्राह 'साधु पतिव्रते !  
साधु, युक्तमुक्तं भवत्या । तदेवं करिष्यामि । एष मे  
निश्चयः ।' ततोऽसौ गत्वा व्यन्तरं प्रार्थयान् वक्रे—'भोः ! यदि  
भमेप्सितं प्रयच्छसि, तदेहि मे द्वितीयं बाहुयुगलं शिरश्च ।'

उसने भी उसे सुनकर, प्रसन्न हो कहा—'धन्य साध्वी ! धन्य !!  
तूने ठीक कहा । सो ऐसा ही करूँगा । ऐसा मैंने निश्चय कर लिया है !'  
तब इसने जाकर प्रेत से प्रार्थना की कि 'हे ! यदि मुझे अभिलषित  
वर देते हो, तो मुझे दो मुजा और एक सिर और लगा दो ।'

एवमभिहिते तत्तत्तयादेव द्विशिरश्चतुर्बाहुश्च सञ्जातः ।  
ततो हृष्टमना यावद्गृहमागच्छति, तावन्नोक्तै 'राक्षसोऽयम्'

अन अधोलिखितपदयोः संस्कृतपर्यायशब्दा लेख्याः (सं० १६३६)

श्लाघ्यमानस्य, व्यन्तरम् ।

इति मन्यमानैर्लगुड-पाषाण-प्रहारैस्ताडितो मृतश्च । अतोऽहं  
ब्रवीमि 'यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा' इति ।

ऐसा कहने पर उसी क्षण वह दो सिर और चार हाथ वाला  
हो गया। तदनन्तर प्रसन्नचित्त हो जब घर आ रहा था तब लोगों ने  
'यह राज्ञस है' ऐसा जानकर लाठी और पत्थर से प्रहार किया  
जिससे वह मर गया । अतः मैं कहता हूँ 'जिसको स्वयं बुद्धि  
नहीं है...' इत्यादि ।

चक्रधर आह 'भोः ! सत्यमेतत् । सर्वोऽपि जनो-  
ऽश्रद्धेयामाशापिशाचिकां प्राप्य हास्यपदवीं याति । अथवा  
साध्विदमुच्यते केनापि

चक्रधर ने कहा 'हे भाई ! यह सत्य है ।- सब लोग अद्धा न  
करने योग्य आशा ( लृष्णा ) रूपिणी पिशाचिनी को पाकर उप-  
हासास्पद होते हैं । अथवा किसी ने ठीक कहा है

अनागतवर्ती चिन्तामसम्भाव्यां करोति यः ।

स एव पाण्डुरः शेते सोमशर्मपिता यथा' ॥ ६६ ॥

जो अनुपस्थित और सम्भावना रहित चिन्ता को करता है, वह,  
सोमशर्मा के पिता की भाँति, पीला होकर सोता है' ॥ ६६ ॥

सुवर्णसिद्धिराह—'कथमेतत्' ? सोऽब्रवीत्

सुवर्णसिद्धि ने पूछा 'यह कैसी कथा है ?' उसने कहा

( कथा ८ )

कस्मिंश्चिन्नगरे कश्चित्स्वभावकृपणो नाम ब्राह्मणः

प्रश्नः—अधोलिखितवाक्यस्य सरलसंस्कृतभाषया व्याख्या कार्या (सन् १९३४)

सर्वोऽपि जनोऽश्रद्धेयामाशापिशाचिकां प्राप्य हास्यपदवीं याति ।

प्रश्नः—अधोलिखितानां वाक्यानां हिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः (सन् १९३९)

कस्मिंश्चिन्नगरे " " प्रभृतं सुवर्णं भविष्यति ।

प्रतिवसति स्म । तेन भिक्षार्जितैः सत्तुभिर्भुक्तशेषैः कलशः  
सम्पूरितः । तं च घटं नागदन्तेऽवलम्ब्य तस्याधस्तात्खट्वां  
निधाय सततमेकदृष्ट्या तमवलोकयति ।

किसी नगर में कोई स्वभावकृपण नामक ब्राह्मण रहता था ।  
उसने भिक्षा से पाये हुए और खाने से बचे हुए सत्तुओं से धड़ा  
भर दिया । उस बड़े को खूँटी में लटका कर उसके नीचे खाट  
बिछाकर सर्वदा एकटक नजर से उसे देखा करता था ।

अथ कदाचिद्वात्रौ सुप्तश्चिन्तयाभास—‘यत्परिपूर्णोऽयं  
घटस्तावत्सत्तुभिर्वर्तते । तद्यदि दुर्भिक्षं भवेत्तदानेन  
रूप्यकाणां शतमुत्पद्यते । ततस्तेन मया अजाद्वयं ग्रही-  
तव्यम् । ततः पाण्मासिकप्रसववशात् ताभ्यां यूयं भवि-  
ष्यति । ततोऽजाभिः प्रभूता गा ग्रहीष्यामि । गोभिर्महि-  
षीर्भहिषीभिर्वडवाः ।

इसके बाद किसी दिन रात्रि में शयन करते हुए उसने विचार  
किया कि ‘यह धड़ा तो सत्तू से पूरा भरा है । सो यदि दुर्भिक्ष  
( अकाल ) पड़ जाय तो इससे सौ रुपया हो जायगा । तब उससे  
मैं दो बकरियाँ खरीदूँगा । तब छः छः महीने पर बच्चा देने से  
उतसे झुण्ड हो जायगा । तब फिर उन बकरियों से गायें खरीदूँगा ।  
गौओं से भैंस और भैंस से घोड़ियाँ खरीदूँगा ।

वडवाप्रसवतः प्रभूता अश्वा भविष्यन्ति । तेषां विक्र-  
यात्प्रभूतं सुवर्णं भविष्यति । सुवर्णेन चतुःशालं गृहं  
सम्पद्यते । ततः कश्चिद्ब्राह्मणो मम गृहमागत्य भ्रातृवय-  
स्कां रूपाढ्यां कन्यां दास्यति । तत्सकाशात्पुत्रो मे भवि-  
प्रश्नः २-सोमशर्मपितुः कथा संक्षेपेण संस्कृतभाषया वर्णनीया (सन् १६३४)

प्यति । तस्याहं सोमशर्मेति नाम करिष्यामि । ततस्तस्मिन्-  
आनुचलनयोग्ये सञ्जातेऽहं पुस्तकं गृहीत्वाऽश्वशालायाः  
पृष्ठदेश उपविष्टस्तदवधारयिष्यामि ।

घोड़ियों के बच्चे होने से बहुत से घोड़े हो जायँगे । उसके बेचने  
से बड़ा सोना (धन) मिलेगा । सोना से फिर एक चौमञ्जिला घर  
बनवाऊँगा । इसके बाद कोई ब्राह्मण मेरे घर पर आकर अपनी  
नवयुवती रूपवती कन्या देगा । उसके द्वारा मुझे एक पुत्र होगा ।  
उसका मैं सोमशर्मा नाम रखूँगा । तब उसके धुटने के बल चलने  
के योग्य होने पर मैं पुस्तक लेकर धुड़साल ( तबेला ) के पीछे  
बैठकर पढ़ूँगा ।

अत्रान्तरे सोमशर्मा मां दृष्ट्वा जनन्युत्सङ्गाज्जानुमचलन-  
परोऽश्वखुरासन्नवर्ती मत्समीपमागमिष्यति । ततोऽहं  
ब्राह्मणीं कोपाविष्टोऽभिधास्यामि—‘गृहाण तावद्भालकम् ।’  
साऽपि गृहकर्मव्यग्रतयाऽराद्वचनं न श्रोष्यति । ततोऽहं  
समुत्थाय तां पादप्रहारेण ताडयिष्यामि ।’

इतने में सोमशर्मा मुझे देखकर माता की गोद से धुटनों के  
बल ( बकैयों ) चलता हुआ, घोड़ों के टाप ( खुर ) के पास से  
होता हुआ मेरे समीप आवेगा । तब मैं ब्राह्मणी से क्रोध में आकर  
कहूँगा कि ‘अपने लड़के को तो पकड़ ( उठा ) ।’ वह भी घर के  
कामों में लगी रहने के कारण मेरी बात न सुनेगी । तब मैं उठकर  
उसे लात की चोट से मारूँगा ।

एवं तेन ध्यानस्थितेन तथैव पादप्रहारो दत्तो यथा  
स धटो भग्नः सक्तुभिः पाण्डुरतां गतः । अतोऽहं ब्रवीमि  
‘अनागतवर्ती चिन्ताम्’ इति ।



इस प्रकार उस ध्यान-मग्न ने ऐसी लात मारी कि वह थड़ा फूट गया । और सत्तुओं से पीला हो गया । इस लिये मैं कहता हूँ कि 'जो अनुपस्थित चिन्ता की' इत्यादि ।

सुवर्णसिद्धिराह 'एवमेतत् । कस्ते दोषः । यतः सर्वोऽपि लोभेन विडम्बितो बाध्यते । उक्तं च

सुवर्णसिद्धि ने कहा 'यह ऐसा ही है । तुम्हारा दोष क्या है ? क्योंकि सब लोग लोभ से प्रतारित ( तिरस्कृत ) हो बाध्य किए जाते हैं । कहा है

यो लौल्यात्कुर्वते कर्म नैवोदकमवेक्षते ।

विडम्बनामवाप्नोति स यथा चन्द्रभूपतिः ॥७०॥

जो चञ्चलता ( लोभ ) से कर्म करता है और उसके फल ( परिणाम ) का विचार नहीं करता वह, चन्द्र राजा के समान, विडम्बना ( क्लेश ) को प्राप्त होता है ॥७०॥

चक्रधर आह 'कथमेतत् ?' स आह

चक्रधर ने पूछा 'यह कैसी कथा है ?' उसने कहा

( कथा ६ )

कस्मिंश्चिन्नगरे चन्द्रो नाम भूपतिः प्रतिवसति स्म ।  
तस्य पुत्रा वानरक्रीडारता वानरयूथं नित्यमेवानेकभोजन-

† 'उदकः फलमुत्तरम्' इत्यमर ।

अननः अघोलिखितवाक्ययो सरलसंस्कृतभाषया व्याख्या कार्या (सन् १६३४)

( १ ) कस्ते दोषो यतः सर्वोऽपि लोभेन विडम्बितो बाध्यते ।

( २ ) यो लौल्यात्कर्म कुर्वते नैवावेक्षते चोदकं स विडम्बनामवाप्नोति ।

अननः 'विडम्बित' शब्दस्यार्थ हिन्दीभाषायां लेख्यः ( सन् १६३६ ) .

भक्ष्यादिभिः पुष्टिं नयन्ति राजा । अथ वानरयूथाधिपो यः  
स औशनस-बाहस्पत्य-चाणक्यमतवित् तदनुष्ठाता च ता-  
न्सर्वानप्यध्यापयति स्म ।

किसी नगर में चन्द्र नामक नरपति रहता था । उसके पुत्र, जो चन्द्रों के साथ खेल खेलते थे, चन्द्र के समूह को नित्य ही विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थ के भोजन से पुष्ट करते थे । तब चन्द्रों के मुखड का जो अधिपति था, वह औशनस (महर्षि शुक्र) बाहस्पत्य (बृहस्पति) और चाणक्य (कौटिल्य, विष्णुगुप्त) के मत को जानने वाला ( नीतिशास्त्र का ज्ञाता ) था, और उस ( नीति-मत ) के अनुसार अनुष्ठान करने वाला था, एवं उन सब ( चन्द्रों ) का पढ़ाया भी करता था ।

अथ तरिगन् राजगृहे लघुकुमारवाहनयोग्यं भेषयूथमस्ति ।  
तन्मध्यादेको जिह्वालौण्यादहर्निशं निःशङ्कं महानसे प्रविश्य  
यत्पश्यति तत्सर्वं भजति । ते च सूपकारा यत्किञ्चित्काष्ठं  
मृण्मयं भाजनं कांस्यपात्रं ताम्रपात्रं वा पश्यन्ति, तेनाशु  
ताडयन्ति ।

तब उस राज-भवन में छोटे राजकुमारों की सवारी के योग्य मेढ़ों का मुखड था । उन ( मेढ़ों ) में एक ( मेढ़ ) जिह्वा की चपलता से दिन-रात निडर हो पाकशाला ( रसोई घर ) में प्रवेश कर जो देखता वह खा जाता था । वे रसोई बनानेवाले जो कुछ एकड़ी मिट्टी का वर्तन, काँसे या ताँवे का पात्र देखते, उसी से शीघ्र मारते।

प्रश्न- 'लघुकस्य' सस्कृतपर्यायशब्दों लेख्यः ( सन् १९३८ )

प्रश्न- 'सूपकार' शब्दस्यार्थं हिन्दीभाषायां लेख्यः ( सन् १९३९ )

सोऽपि वानरयूथपस्तद्दृष्ट्वा व्यचिन्तयत् 'अहो !  
 मेषसूपकारकलहोऽयं वानराणां जयाय भविष्यति, यतो-  
 ऽन्नास्वादलम्पटोऽयं मेषो, महाकोपाश्च सूपकारा यथास-  
 वरुणा भरन्ति । तद्यदि वस्तुनोऽभावात्कदाचिदुल्मुकेन  
 ताडयिष्यन्ति, तदोष्णमिचुरोऽयं मेषः स्वल्पेनाऽपि वह्निना  
 प्रज्वलिष्यति ।'

उस बन्दर यूथ-पति ने भी उसे देख कर विचार किया-‘अरे !  
 मेढ़ और भोजन बनाने वालों का यह भगड़ा बन्दरों के नाश के  
 लिए होगा । क्योंकि यह मेढ़ भोजन के चखने का लालची है, और  
 बड़े क्रोधी रसोई बनाने वाले समीप की वस्तु से मारते हैं । सो यदि  
 (किसी) चीज के न रहने से कभी जलती हुई लकड़ी से मारेंगे तो  
 बहुत ऊन वाला यह मेढ़ अत्यन्त अल्पहीमें अग्निद्वारा जल जायगा ।

तदह्यमानः पुनरश्वकुट्यां समीपवर्तिन्यां प्रवेक्ष्यति ।  
 सापि तृणम्राचुर्याज्ज्वलिष्यति । ततोऽश्वा वह्निदाहमवा-  
 प्स्यति । शालिहोत्रेण पुनरेतदुक्तम्-‘यद्वानरवसया-  
 ऽश्वानां वह्निदाहदोषः प्रशाम्यति ।’ तन्नूनमेतेन भाव्यमत्र  
 निश्चयः ।’ एवं निश्चित्य सर्वान्वानरानाहूय रहसि  
 प्रोवाच । यतः

सो जलता हुआ यह फिर समीप की धुड़साल में घुस जायगा ।  
 यह (धुड़साल) भी घास की अधिकता से जलने लग जायगी ।’ तत्र

प्रश्नः—अधोलिखितवाक्यस्य सरलसंस्कृतभाषया व्याख्या कार्या (सन् १९३४)

शालिहोत्रेण पुनरेतदुक्तं यद्वानरवसयाऽऽश्वानां वह्निदाहदोषः प्रशाम्यति

घोड़े भी अग्नि से जलने लग जायेंगे । \* शालिहोत्र ने पुनः कहा है कि “बन्दरों की चरबी से घोड़ों का अग्नि से जलने का दोष शान्त होता है ।” सो निःसन्देह ही यह होगा, ऐसी मेरी धारणा है ।’ ऐसा निश्चय कर सब बन्दरों को बुला कर एकान्त में उसने कहा कि  
‘मेघेण सूपकाराणां कलहो यत्र जायते ।

स भविष्यत्यसन्निध्यं वानराणां क्षयावहः ॥७१॥

मेढ़ से और रसोई बनाने वालों का जहाँ विवाद होता है वह (विवाद) निःसन्देह ही बन्दरों के नाश के निमित्त होता है ॥७१॥

तस्मात्स्यात्कलहो यत्र गृहे नित्यमकारणः ।

तद्गृहं जीवितं वाञ्छन्दूरतः परिवर्जयेत् ॥७२॥

इसलिए जिस घर में सर्वदा अकारण ही झगड़ा होता हो तो जीवन की इच्छा रखने वाले मनुष्य को चाहिए कि उस घर को दूर ही से छोड़ दे ॥७२॥

तथा च

और भी:

कलहान्तानि हर्षाणि कुवाक्यान्तं च सौहृदम् ।

कुराजान्तानि राष्ट्राणि कुकर्मन्ति यशो नृणाम् ॥७३॥

कलह से बड़े २ घर नाश हो जाते हैं, दुर्वाक्य से मैत्री नष्ट हो जाती है, बुरे राजा से देश नष्ट हो जाते हैं तथा दुष्कर्म से मनुष्यों के यश नष्ट हो जाते हैं ॥७३॥

तत्र यावत्सर्वेषां संचयो भवति, तावदेतद्राजगृहं सन्त्यज्य वनं गच्छामः ।’ अथ तत्तस्य वचनमश्रद्धयं

\* इनकी बनाई हुई अश्व चिकित्सा की एक पुस्तक मिलती है ।

श्रुत्वा मदोद्धता वानराः ग्रहस्य प्रोचुः- 'योः ! भवतो  
वृद्धभावाद्बुद्धिवैकल्यं सञ्जातं, येनैतद्ब्रवीषि । उक्तं च-

सो जब तक सबका नाश न हो तब तक इस राजभवन को छोड़ कर  
वन में चल देना चाहिए ।' तब उसके अविश्वसनीय बात को सुन कर  
मदोद्धत(अभिमानी)बन्दरोंने हँस कर कहा 'हे ! आपकी वृद्धावस्था  
के कारण विपरीत बुद्धि हुई है, जिससे ऐसा कह रहे हैं । कहा है

वदनं दशनैर्हीनं लाला स्रवति नित्यशः ।

न मतिः स्फुरति क्वापि बाले वृद्धे विशेषतः ॥७४॥

( बालक और वृद्ध दोनों के ) मुख दाँत रहित, सर्वदा लार  
टपकाने वाला होता है । किसी की बाल्यावस्था में बुद्धि विकसित  
नहीं होती, विशेष कर वृद्धावस्था में तो और भी नहीं ॥७४॥

न वयं स्वर्गसमानोपभोगान्नानाविधान्भक्ष्यविशेषान्रा-  
जपुत्रैः स्वहस्तदत्तानमृतकल्पान्परित्यज्य तत्राटव्यां कषाय-  
कटु-तिक्त-क्षारे-रूक्षफलानि भक्षयिष्यामः ।' तच्छ्रुत्वा-  
ऽश्रुकलुषां दृष्टिं कृत्वा स प्रोवाच- 'रे रे मूर्खाः ! यूयमेतस्य  
सुखस्य परिणामं न जानीथ । किं न पापरसास्वादनप्रायमेत-  
त्सुखं परिणामे विषवद्भविष्यति ? तदहं कुलक्षयं स्वयं  
नावलोकयिष्यामि । साम्प्रतं वनं यास्यामि । उक्तं च-

हम लोग राजकुमारों के हाथ से मिलने वाले स्वर्गसुख के  
समान अनेक प्रकार के अमृत समान खाद्य पदार्थों को छोड़कर उस  
जंगल में कसैले, कड़वे, खारे, तीते, रूखे फलों को न खाएँगे ।' इसे

प्रश्न अथोलिखितवाक्यस्य सरलसंस्कृतभाषया व्याख्या कार्या

किं न पापरसास्वादनप्रायमेतत्सुखं परिणामे विषवद्भविष्यति ? (सन् १६३५)

सुन कर अपने नेत्रों को अश्रुपरिपूर्णा कर उसने कहा 'अरे मूर्खों ! तुम लोग इस सुख के परिणाम को नहीं जानते हो । क्या यह सुख पाप रूपी रसके आस्वादन की भाँति नहीं है ? जो परिणाम मे विष के तुल्य होगा । सो मैं कुडुम्ब-नाश को स्वयं नहीं अवलोकन करूँगा । इस समय मैं वन जाऊँगा । कहा है :

मित्रं व्यसनसम्प्राप्तं स्वस्थानं परपीडितम् ।

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम् ॥७५॥

विपत्ति में पड़े हुए मित्र को, शत्रु से आक्रान्त अपने स्थान को, देश-भङ्ग और कुडुम्ब-नाश को जो मनुष्य नहीं देखते, वे धन्य हैं' ।

एवमभिधाय सर्वास्तान्परित्यज्य स यूथाविपोऽटव्यां गतः ।

ऐसा कह कर, उन सबको छोड़ कर, वह यूथाध्यक्ष वनमें चला गया ।

अथ तस्मिन्गतेऽन्यस्मिन्नहनि स मेघो महानसे प्रविष्टो यावत्सूपकारेण नान्यत्किञ्चित्समासादितम्, तावदर्द्धज्वलितकाष्ठेन ताड्यमानो जाज्वल्यमानशरीरः शब्दायमानोऽश्वकुट्यां प्रत्यासन्नवर्तिन्यां प्रविष्टः ।

तब उसके चले जाने के दूसरे दिन बाद वह मेढ़ पाकशाला में धुसा । तब रसोई बनाने वाले ने कोई दूसरी वस्तु न पाकर अध-जली लकड़ी से उसे मारा, वह जलता हुआ शरीर वाला शब्द करता हुआ निकट-स्थित अश्वशाला में धुस गया ।

तत्र तृणप्राचुर्ययुक्तायां क्षितौ तस्य प्रलुठतः सर्वत्रापि वह्निज्वालास्तथा समुत्थिताः, यथा केचिदश्वाः स्फुटितलो-

प्रज्ञ निम्नाङ्कितगद्यभागस्य सरलहिन्दीभाषायामनुवाद कार्यः (सन् १९३६)

अथ तस्मिन् गतेऽन्यस्मिन्नहनि - जनसमूहमाकुलीचक्रुः ।

चनाः पञ्चत्वंगताः, केचिद्वन्धनानि त्रोटयित्वाऽर्धदग्ध-  
शरीरा इतश्चेतश्च हेषायमाणा धावमानाः सर्वमपि जन-  
समूहमाकुलीचक्रुः ।

वहाँ घास की बहुलता युक्त पृथ्वी पर उसके लोटने से सब  
तरफ इस प्रकार अग्नि की लपट उठी कि किसी घोड़े की आँख  
फूट गयी, और वे मर गये, कोई बन्धन तोड़ा कर अध-जला शरीर  
होकर इधर उधर हिनहिनाते हुए और दौड़ते हुए, सब लोगों को  
धबड़ाहट में डाल दिये ।

अत्रान्तरे राजा सविषादः शालिहोत्रज्ञान्वैद्यानाहूय  
प्रोवाच-‘ओः ! प्रोच्यतामेषामश्वानां कश्चिदाहोपशमनोपायः !’  
तेऽपि शास्त्राणि पिलोक्य प्रोचुः-‘देव ! प्रोक्तमत्र विषये  
भगवता शालिहोत्रेण । यत्

इसी बीच राजा ने दुःखित हो, शालिहोत्र-विरचित अश्व-  
चिकित्सा शास्त्र के ज्ञाता वैद्यों को बुलाकर, पृष्ट्वा-‘हे ! इन घोड़ों को  
ज्वाला को शांत करने का कोई उपाय बतलाओ !’ उन लोगों ने  
शास्त्र देखकर कहा ‘महाराज ! इस विषय में भगवान् शालिहोत्र  
ने कहा है कि

कपीनां मेदसा दोषो वह्निदाहसमुद्भवः ।

अश्वानां नाशमभ्येति तमः सूर्योदये यथा ॥७६॥

घोड़ों के अग्नि ज्वाला से उत्पन्न रोग, बन्दरों की चरबी से  
सूर्य के उदय होने पर अन्धकार की भाँति, नष्ट हो जाते हैं ॥७६॥

तत्क्रियतामेतच्चिकित्सतं द्राक्, यावदेते न दाहदोषेण

प्रश्नः ‘शालिहोत्रज्ञ’ शब्दस्यार्थः हिन्दीभाषायां लेख्य ( सन् १९३६ )

विनश्यन्ति ।' सोऽपि तदोक्तं समस्तवानरबंधमादिष्टवान् ।  
किं बहुना ? सर्वेऽपि ते वानरा विविधायुध-लगुड-पाषा-  
णादिभिव्यापादिता इति ।

सो इनकी चिकित्सा शीघ्र कीजिये जिसमे ये जलने के रोग से  
नष्ट न हो जायें ।' उस ( राजा ) ने यह सुनकर सारे वन्दरों को  
मारने के लिए आज्ञा दी । अधिक क्या ? वे सब वन्दर अनेक  
प्रकार के हथियार, लकड़ी और पत्थर आदि से मार डाले गये ।

अथ सोऽपि वानरयूथपस्तं पुत्र-पौत्र-भ्रातृसुत-भागि-  
नेयादिसंचयं ज्ञात्वा परं विषादमुपागतः । स त्यागाहारक्रियो  
चनाद्वनं पर्यटति । अचिन्तयेच्च—'कथमहं तस्य नृपापसद-  
स्यानृणताकृत्येन अपकृत्यं करिष्यामि । उक्तं च

तब वह वन्दर यूथाधिपति भी उस पुत्र-पौत्र-भतीजा-भाऊजा आदि  
के नाश को भालूम कर अत्यन्त विषादयुक्त हुआ । वह आहार  
क्रिया ( भोजन ) को छोड़कर एक वन से दूसरे वन में विचरना करने  
लगा । और उसने विचार किया कि, ' किस प्रकार मैं उस नृपापसद  
( नीच राजा ) से बदला रूपी कर्म को अपकार करके लूँ । कहा है—  
मर्षयेद्धर्षणां योऽत्र वंशजां परनिर्मिताम् ।

भयाद्वा यदि वा कामात्स ज्ञेयः पुरुषाधमः ॥७७॥

इस संसार में जो भय से अथवा कामना ( इच्छा ) से कुल के  
परनिर्मित ( दूसरे के किए हुए ) निरादर को सहन करता है, उसे  
मनुष्यों में नीच जानना चाहिए ॥७७॥

अन. —अधोलिखितवाक्यस्य स्वसंस्कृतेन व्याख्या कार्या ( सन् १६३७ )

कथमहं तस्य नृपापसदस्यानृणताकृत्येनोपकृत्यं करिष्यामि ।



अथ तेन वृद्धवानरेण कुत्रचित्पिपासाकुलेन भ्रमता  
पद्मिनीपण्डमण्डितं सरः समासादितम् । तद्यावत्सूक्ष्मेक्षि-  
कयाऽवलोकयति, तावद्वनचरमनुष्याणां पदपङ्क्तिप्रवे-  
शोऽस्ति, न निष्क्रमणमिति अवलोकितवान् । ततश्चिन्ति-  
तम् नूनमत्र जलान्ते दुष्टग्राहेण भाव्यम् । तत्पद्मिनी-  
नालमादाय दूरस्थोऽपि जलं पिबामि ।'

तब वह वृद्ध बन्दर कहीं प्यास से व्याकुल होकर धूमते हुए  
कमलिनी समूह से शोभित एक सरोवर के पास पहुँचा । तब ज्योंही  
गौर से उसे देखता है तब उसने देखा कि अरण्य में रहने वाले  
मनुष्यों के जाने के समय का पद-चिह्न तो है, किन्तु निकलने का  
नहीं । तब उसने विचार किया 'निःसन्देह इस जल में दुष्ट ग्राह  
(धड़ियाल) होगा । इसलिए कमलिनी के मृणाल-तन्तु से दूर स्थित  
हो मैं जलपान करूँ ।'

तथाऽनुष्ठिते तन्मध्याद्राक्षसो निष्क्रम्य रत्नमालाविभू-  
षितकण्ठस्तमुवाच—'भोः ! अत्र यः सलिले प्रवेशं करोति,  
स मे भक्ष्यः' इति । तन्नास्ति धूर्ततरस्त्वत्समोऽन्यो,  
यत्पानीयमनेन विधिना पिबति । ततस्तुष्टोऽहम् । प्रार्थ-  
यस्व हृदयवाञ्छितम् ।'

वैसा करने पर, उसके भीतर से निकल कर रत्नमाला से सुशो-  
भित कण्ठवाले राक्षस ने उससे कहा 'अरे ! इस जल में जो

प्रश्न. 'सूक्ष्मेक्षिकया' पदस्य संस्कृतपर्यायशब्दो लेख्यः ( सन् १६३८ )

प्रश्न. निम्नाङ्कितगद्यभागस्य सरलहिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः (सन् १६३६)

अथ तेन वृद्धवानरेण कुत्रचित् .. प्रार्थयस्व हृदयवाञ्छितम् ।

प्रवेश करता है, वह मेरा भक्ष्य (भोजन) है ।' सो तुम से बढ़ कर और कोई दूसरा धूर्त न होगा, जो पानी को इस विधि से पीता हो । इसलिए मैं तुम से प्रसन्न हूँ । अपना अभिलषित वरदान माँग लो ।'

कपिराह 'भोः ! कियती ते भक्षणशक्तिः ? स आह—'शतसहस्रायुतलक्षायपि जलप्रविष्टानि भक्षयामि । बाह्यतः शृगालोऽपि मां दूषयति ।' वानर आह 'अस्ति मे केनचिद्भूपतिना सहात्यन्तं वैरम् । यद्येनां रत्नमालां मे प्रयच्छसि, तत्सपरिवारमपि तं भूपतिं वाक्प्रपञ्चेन लोभयित्वाऽत्र सरसि प्रवेशयामि ।' सोऽपि श्रद्धेयं वचस्तस्य श्रुत्वा रत्नमालां दत्त्वा प्राह 'भो मित्र ! यत्समुचितं भवति तत्कर्तव्यम्' इति ।

बन्दर ने पूछा 'हे राजा ! तुममें भक्षण करने की कितनी ताकत है ?' उसने उत्तर दिया 'सौ, हजार, दसहजार, लाख भी जल में घुसे हों तो मैं उन्हें भक्षण कर सकता हूँ, किन्तु बाहर में तो सियार भी मुझे दूषित (तिरस्कृत) कर सकता है ।' बन्दर ने कहा—'मेरा किसी राजा के साथ अत्यन्त वैर है । यदि इस रत्नहार को मुझे दे दो, तो मैं परिवार के सहित उस राजा को अपनी बात के जाल में फँसाकर इस सरोवर में प्रविष्ट करा दूँ ।' उसने भी विश्वास युक्त उसके वचन को सुनकर रत्न-माला देकर, कहा 'हे मित्र ! जो उचित हो सो करो ।'

वानरोऽपि रत्नमालाविभूषितकण्ठो वृक्षप्रासादेषु परिभ्रमन्नैर्दृष्टः, पृष्ठश्च 'भो यूथप ! भवानियन्तं कालं कुत्र स्थितः ? भवतेदग्रत्नमाला कुत्र लब्धा ? या दीप्त्या

सूर्यमपि तिरस्करोति ।' वानर प्राह—'अस्ति कुत्रचिदरण्ये  
युक्ततरं महत्सरो धनदनिर्मितम् । तत्र सूर्येऽर्धोदिते रविवारे  
यः कश्चिन्निमज्जति, स धनदप्रासादादीदृशरत्नमालाविभू-  
षितकण्ठो निःसरति ।'

बन्दर भी रत्नहार से सुशोभित कण्ठवाला होकर वृक्षों और  
महलों पर धूमता हुआ लोगों से देखा गया तब लोगों ने पूछा—'हे  
यूथपति ! तुम इतने दिनों तक कहाँ रहे ? तुम्हें ऐसी रत्नमाला  
कहाँ से मिली ? जो अपनी कान्ति ( चमक ) से सूर्य का भी निरा-  
दर करती है ।' बन्दर ने उत्तर दिया कि 'किसी वन में एक  
अज्ञात बड़ा सरोवर कुवेर द्वारा बनवाया हुआ है । वहाँ सूर्य के  
आधे निकलने पर रविवार के दिन जो कोई स्नान करता है, वह  
कुवेर की कृपा से इस प्रकार रत्नमाला से विभूषित कण्ठवाला  
होकर निकलता है ।'

अथ भुभूजा तदाकथ्य, स वानरः समाहूतः, पृष्ठश्च—  
'भो यूथाधिप ! किं सत्यमेतत् ? रत्नमालासनार्थं सरो-  
ऽस्ति कापि ?' कपिराह 'स्वामिन् ! एष प्रत्यक्षतया  
सत्कण्ठस्थितया रत्नमालया प्रत्ययस्ते । तद्यदि रत्नमालया  
प्रयोजनं तन्मया सह कमपि प्रेषय, येन दर्शयामि ।' तच्छ्रुत्वा  
नृपतिराह 'यद्येवं, तदहं सपरिजनः स्वयमेष्यामि । येन  
प्रभूता रत्नमालाः सम्पद्यन्ते । वानर आह 'एवं क्रियताम् ।'

तब राजा ने यह सुनकर उस बन्दर को बुलाया और पूछा—'हे  
यूथपति ! क्या यह सत्य है, कहीं रत्नहार से युक्त कोई सरोवर है ?'  
बन्दर ने उत्तर दिया 'महाराज ! यह प्रत्यक्ष मेरे गले में लटकती

हुई रत्नमाला ही आपके विश्वास के हेतु है । सो यदि रत्नहार की आवश्यकता हो, तो मेरे साथ किसी को भेजिए जिससे उसे दिखादूँ ।' यह सुनकर राजा ने कहा 'यदि ऐसी बात है तो मैं सपरिवार स्वयं ( वहाँ ) जाऊँगा जिससे बहुत से रत्नहार मिलें ।' बन्दर ने कहा 'ऐसा ही कीजिये ।'

तथाऽनुष्ठिते भूपतिना सह रत्नमालालोभेन सर्वे कलत्र-  
भृत्याः प्रस्थिताः । वानरोऽपि राज्ञा दोलाधिरूढेन स्वोत्सङ्गे  
आरोपितः सुखेन प्रीतिपूर्वमानीयते । अथवा साध्विदमुच्यते-  
वैसा करने पर राजा के साथ रत्नमाला के लोभ से सब स्त्री  
और अनुचर खाना हुए । बन्दर को भी पालकी में बैठा हुआ  
राजा अपनी गोद में बैठा कर सुख से प्रीति पूर्वक ले गया । अथवा  
ठीक ही कहा है

तृष्णो देवि ! नमस्तुभ्यं यथा वित्तान्विता अपि ।

अकृत्येषु नियोज्यन्ते आस्यन्ते दुर्गमेष्वपि ॥७८॥

हे तृष्णा ( आशा ) देवी ! तुम्हे नमस्कार है । जिससे धनवान्  
पुरुष भी न करने योग्य कामों में प्रवृत्त होते हैं और अगम्य स्थानों  
में भी भटकते हैं ॥७८॥

तथा च

और भी

इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते ।

लक्षाधिपस्तथा राज्यं राज्यस्थः स्वर्गमीहते ॥७९॥

सौ रुपयावाला हजार रुपये की इच्छा करता है, हजार रुपये

प्रश्नः अधस्तनस्य पद्यस्य स्वसंस्कृतेन व्याख्या विवेका ( सन् १९४० )

'तृष्णो देवि ! नमस्तुभ्यं..... दुर्गमेष्वपि ।'

वाला लाख की स्पृहा करता है, और लक्ष्मणी राज्य की तथा राज्याधिपति स्वर्ग की कामना करता है ॥७६॥

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।

जीर्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायते ॥७७॥

वृद्ध होने पर बाल पक जाते हैं, और दाँत हिजने लग जाते हैं, आँख कमजोर हो जाती है और कानों से कम सुनाई पड़ता है; केवल एक तृष्णा ही तरुण होती जाती है ॥७७॥

अथ तत्सरः समासाद्य वानरः प्रत्युषसमये राजान-  
मुवाच—‘देव! अत्रार्थोदिते सूर्येऽन्तःप्रविष्टानां सिद्धिर्भवति ।  
तत्सर्वोऽपि जन एकदैव प्रविशतु । त्वया पुनर्मया सह  
प्रवेष्टव्यं, येन पूर्वदृष्टस्थानमासाद्य प्रभूतास्ते रत्नमाला  
दर्शयामि ।’

तब उस सरोवर के पास पहुँच कर वन्दर ने वधाकाल में राजा से कहा ‘महाराज ! सूर्य के आगे उदय होने पर इसमें प्रवेश करने वालों की सिद्धि होगी; सो सब लोग एक साथ इसमें प्रवेश कर जायँ, फिर आप मेरे साथ प्रवेश करें, जिससे पहले के देखे हुए स्थान में पहुँचकर बहुत सी रत्नमाला दिखलाऊँ ।’

अथ प्रविष्टास्ते लोकाः सर्वे भक्षिता राक्षसेन । तत-  
स्तेषु चिरायमाणेषु राजा वानरमाह—‘भो यूथाधिप ! किमिति  
चिरायते मे जनः ?’ तच्छ्रुत्वा वानरः सत्वरं वृक्षमारुह्य राजा-  
नमुवाच—‘भो दुष्टनरपते ! राक्षसेनाऽन्तःसलिलस्थितेन  
भक्षितस्ते परिजनः । साधितं मया कुलक्षयजं वैरम् । तद्ग-  
म्यताम् । त्वं स्वामीति मत्वा नात्र प्रवेशितः । उतां च—

तब उन सब के प्रवेश करने पर राजस ने सबको भक्षण कर लिया । तदनन्तर उनके देर करने पर राजा ने वन्दर से कहा 'हे यूथपति ! मेरे परिजन क्यों इतनी देर कर रहे हैं?' यह सुनकर वन्दर ने, शीघ्र ही पेड़ पर चढ़कर, राजा से कहा 'अरे दुष्ट राजन् ! जल के भीतर स्थित राजस ने तुम्हारे परिवार को खा लिया है । मैंने कुटुम्बनाश से उत्पन्न वैर का बदला ले लिया । सो चले जाओ । तुम्हें प्रभु जानकर इसमें प्रवेश मैंने नहीं कराया । कहाँ है

कृते प्रतिकृतिं कुर्याद्विसिते प्रतिहिंसितम् ।

न तत्र दोषं पश्यामि दुष्टे दुष्टं समाचरेत् ॥८१॥

उपकार करनेवाले के साथ उपकार करे, हिंसा करनेवाले के प्रति हिंसा करे, मैं उसमें दोष नहीं देखता, क्योंकि दुष्ट के साथ दुष्टता का वर्ताव करना चाहिए ॥८१॥

तत्त्वया भम कुलक्षयः कृतः, भया पुनस्तव' इति ।  
अथैतदाकर्ण्य राजा कोपाविष्टः पदातिरेकाकी यथाऽऽथान-  
तमार्गेण निष्क्रान्तः । अथ तस्मिन्भूपतौ गते राजसरात्सो  
जलान्निष्क्रम्य सानन्दमिदमाह

सो तुमने मेरे कुल का नाश किया और मैंने तुम्हारे कुल का ।  
तब उसे सुनकर राजा क्रोधित हो पैदल ही अकेले जिस मार्ग से  
आया था उसी से लौट गया । तब उस राजा के चले जाने के बाद,  
पृथ हुआ राजस जल से निकल कर आनन्दपूर्वक यह कहने लगा

'हतः शत्रुः कृतं मित्रं रत्नमाला न हारिता ।

नालेन पिवता तोयं भवता साधु वानर !' ॥८२॥

हे वन्दर तुम धन्य हो ! मृणालिका से तुमने जलपान किया,

अनायास ही शत्रु का वध किया, मित्र पाया, और रत्नहार भी न खोया' ॥८२॥

अतोऽहं ब्रवीमि 'यो लौल्यात्कुरुते कर्म' इति ।

इसी से मैं कहता हूँ कि 'जो मनुष्य चपलता से कर्म करता है' इत्यादि ।

एवमुक्त्वा भूयोऽपि स चक्रधरमाह—'भो मित्र ! प्रेषय मां, येन स्वगृहं गच्छामि ।' चक्रधर आह—'भद्र ! आप-  
दर्थे, धनमित्रसंग्रहः क्रियते । तन्नामैवंविधं त्यक्त्वा क  
यास्यसि ? उक्तं च

ऐसा कहकर फिर भी उसने चक्रधर से कहा 'हे मित्र ! मुझे आज्ञा दो जिससे मैं अपने घर जाऊँ ।' चक्रधर ने कहा—'हे मित्र ! आपत्ति के (समय के) लिए धन और मित्र का संग्रह किया जाता है । सो मुझे इस तरह छोड़कर कहाँ जाओगे ?' कहा है

यस्त्यक्त्या सापदं मित्रं याति निष्ठुरतां सुहृत् ।

कृतघ्नस्तेन पापेन नरके यात्यसंशयम्' ॥८३॥

जो मित्र आपत्ति में फँसे हुए मित्र को छोड़कर निष्ठुर होकर चला जाता है, वह कृतघ्न उस पाप से नरक में जाता है इसमें संशय नहीं' ॥८३॥

सुवर्णसिद्धिराह 'भोः ! सत्यमेतत्, यदि गम्यस्थाने शक्तिर्भवति । एतत्पुनर्मनुष्याणामगम्यस्थानम् । नास्ति कस्यापि त्वासुन्मोचयितुं शक्तिः । अपरं, यथा यथा चक्रभ्रमवेदनया तव मुखविकारं पश्यामि, तथा तथाऽहमे-

तज्जानामि यद्द्रागच्छामि, मा कश्चिन्ममाप्यनर्थो भवे-  
दिति । यतः

सुवर्णसिद्धि ने कहा 'हाँ ! यह ठीक है यदि सुगम स्थल में  
शक्ति हो । इसके अतिरिक्त यह स्थल मनुष्यों के लिए अगम्य  
स्थान है । किसी में तुम्हारे छोड़ने की शक्ति नहीं है । इसके अति-  
रिक्त, जब जब चक्र के घूमने की पीड़ा से तुम्हारे मुँह की हालत  
देखता हूँ, तब तब मैं यह सोचता हूँ कि, शीघ्र ही चला जाऊँ  
अन्यथा कदाचित् मेरे ऊपर भी यह अनर्थपात न हो जाय । क्योंकि-

यादृशी वदनच्छाया दृश्यते तव वानर !

विकालेन गृहीतोऽसि यः परैति स जीवति' ॥८४॥

हे बन्दर ! तुम्हारे मुख की जैसी छाया देखता हूँ उससे मालूम  
होती है कि विकराल ( राजस ) से आक्रान्त हुए हो, सो जो ( इस  
सङ्कट से ) भागे वह जीवे ॥८४॥

चक्रधर आह 'कथमेतत् ?' सोऽब्रवीत्

चक्रधर ने कहा 'यह कैसी कथा है ?' उसने कहा

( १० )

कस्मिंश्चिन्नगरे भद्रसेनो नाम राजा प्रतिवसति सः ।

तस्य सर्वलक्षणसम्पन्ना रत्नवती नाम कन्याऽस्ति । तां  
कश्चिद्राजसो जिहीर्षति । रात्रावागत्योपशुङ्क्ते च । परं  
कृतरक्षोपधानां हर्तुं न शक्नोति । साऽपि तत्समये रक्तः-  
सान्निध्यजामवस्थामनुभवति कम्पादिभिः ।

किसी नगर में भद्रसेन नामक राजा रहता था । उसकी सम्पूर्णा  
लक्षणाँ से युक्त रत्नवती नाम की एक कन्या थी । उसे कोई



राक्षस हरण करने की इच्छा करता था, और रात्रि में आकर भोग करता था । परन्तु उस ( कन्या ) की रक्षा के उपाय करने के कारण उसे हरण करने में समर्थ न होता था । वह भी उस (राक्षस के साथ सम्भोग करते) समय उसके संसर्ग से उत्पन्न अवस्था को कम्पादि से अनुभव करती थी ।

एवमितिक्रामति काले कदाचित्स राजसो मध्यनिशायां गृहकोणे स्थितः । साऽपि राजकन्या स्वसखीमुवाच 'सखि ! पश्यैष विकालः समये नित्यमेव मां कदर्थयति । अस्ति तस्य दुरात्मनः प्रतिपेयोपायः कश्चित् ?' तच्छ्रुत्वा राजसोऽपि व्यचिन्तयत् 'नूनं यथाहं, तथान्योऽपि कश्चिद्विकालनामाऽस्या हरणाय नित्यमेवागच्छति; परं सोऽप्येनां हर्तुं न शक्नोति । तत्तावदश्वरूपं कृत्वाऽश्वमध्यगतो निरीक्षयामि, किं रूपः स, किं प्रभावश्चेति ?' एवं राजसोऽश्वरूपं कृत्वाऽश्वानां मध्ये तिष्ठति ।

इस प्रकार बहुत समय बीतने पर किसी समय वह राजस आधी रात में घर के कोने में स्थित हुआ । उस राजकन्या ने भी अपनी सखी से कहा—'हे सखी ! यह विकाल (विशेष यम के तमान) रात्रि में नित्य मुझे क्लेश दिया करता है । उस दुष्टात्मा के निवारण के लिए क्या कोई उपाय है ?' उसे सुनकर राजस ने विचार किया कि 'निश्चय जिस प्रकार मैं हूँ, उसी प्रकार दूसरा भी कोई विकाल नाम का । इस ( कन्या ) के हरण के निमित्त, नित्य ही आता है । परन्तु वह भी इसे हरण करने में समर्थ नहीं होता । सो तब तक थोड़े का रूप धारण कर, थोड़े के बीच स्थित होकर निरीक्षण करूँ

कि वह किस रूप और कितने प्रभाव का है ? इस प्रकार वह राजस घोड़े का रूप धारण कर घोड़ों के बीच स्थित हो रहा ।

तथाऽनुष्ठिते, निशीथसमये राजगृहे कश्चिदश्वचौरः  
अविष्टः । स च सर्वानश्वानवलोक्य तं राजसमश्वतमं  
विज्ञायाऽधिरूढः । अत्रान्तरे राजसश्चिन्तयामास- 'नूनमेव  
विकालनामा मां चौरं' मत्वा कोपाभिहन्तुमागतः, तत्किं  
करोमि ?' एवं चिन्तयन्सोऽपि तेन खलीनं मुखे निधाय  
कशाधातेन ताडितः ।

वैसा करने पर आधीरात के समय राजमहल में कोई घोड़ों का चोर आया । और वह सब घोड़ों को देख कर उस राजस को अश्वश्रेष्ठ जान कर उस पर चढ़ बैठा । इसी समय राजस ने सोचा कि 'निःसन्देह यह विकाल मुझ चोर जान कर कुपित हो मारने आया है । तब मैं क्या करूँ ?' इस प्रकार वह चिन्ता कर ही रहा था कि उसने लगाम को मुँह में जगाकर चाबुक से मारा ।

अथासौ भयत्रस्तमनाः प्रधावितुमारब्धः । चोरोऽपि  
दूरं गत्वा खलीनाकर्षणेन तं स्थिरं कर्तुमारब्धवान् । स  
तु केवलं वेगाद्वेगतं गच्छति ।

तब इतने भयभीत चित्त हो भागना शुरू किया । चोर ने भी दूर जाकर लगाम खींच कर उसे रोकने प्रयत्न किया । किन्तु वह नौ केवल बड़ो तेजी से भागने लगा ।

अथ तं तथाऽगणितखलीनाकर्षणं मत्वा चौरश्चिन्तया-  
मास 'अहा ! नैवविधा वाजिनो भवन्त्यगणितखलीनाः ।  
तन्नूनमनेनाश्वरूपेण राजसेन भवितव्यम् । तद्यदि कश्चि-

त्पांशुलं भूमिदेशमवलोकयामि, तदात्मानं तत्र पातयामि ।  
नान्यथा मे जीवितव्यमस्ति ।'

तदनन्तर उस (राक्षस) को वैसा लगाम खींचने की परवाह न करने वाला जान कर चोर ने विचार किया कि, 'अरे ! इस प्रकार के लगाम की परवाह न करने वाले तो घोड़े नहीं होते । सो वस्तुतः यह घोड़े के रूप में राक्षस होगा, सो यदि कोई घूलिभूया भूमि को देखूँगा तो वहाँ कूद पड़ूँगा नहीं तो ( बिना कूदे ) मेरा जीवन न रहेगा ।'

एवं चिन्तयत इष्टदेवतां रगरतस्तस्य सोऽश्वो वटपृष्ठस्य  
तले निष्क्रान्तः । तौरोऽपि वटमरोहमासाद्य तत्रैव विलग्नः ।  
ततो द्वावपि तौ पृथग्भूतौ परमानन्दभाजौ जीवितविषये  
सन्ध्याभ्याशौ सम्पन्नौ ।

इस प्रकार उसके चिन्ता करते और इष्ट देवता का स्मरण करते वह घोड़ा एक बरगद के पेड़ के नीचे उपस्थित हुआ । चोर भी बरगद की लटकती हुई ( डाली ) शाखा को पकड़ कर वहीं लटक गया । तब वे दोनों अलग २ होकर अत्यन्त आनन्दित हो, जीवन के विषय में पुनः आशा वाले हुए ।

अथ तत्र वटे कश्चिद्राक्षससुहृद्गानरः स्थित आसीत् ।  
तेन राक्षसं त्रस्तमालोक्य व्याहृतम् 'भो मित्र ! किमेकं  
यत्लाध्यतेऽलीकभयेन ? त्यक्त्वोऽयं मानुषः, भक्ष्यताम् ।'

उस बरगद पर राक्षस का मित्र कोई बन्दर बैठा हुआ था ।  
उसने राक्षस को भयभीत देख कर कहा 'हे मित्र ! क्यों मिथ्या  
अप्य के कारण भागते हो ? यह मनुष्य तो तुम्हारा भक्ष्य है ;  
अतः इसे खा जाओ ।'

सोऽपि वानरवचो निशम्य स्वरूपमाधाय शङ्कितमनाः  
स्खलितगतिर्निवृत्तः । चौरोऽपि तं वानराहूतं शाला कोपा-  
तस्य लांगूलं लम्बमानं मुखे निधाय चर्वितवान् । वान-  
रोऽपि तं राक्षसाभ्यधिकं मन्यमानो भयान्न किञ्चिदुक्ता-  
वान्, केवलं व्यथार्तो निमीलितनयनस्तिष्ठति । राक्षसो-  
ऽपि तं तथाभूतमवलोक्य श्लोकमेनमपठत्

वह भी बन्दर की बात सुन कर, अपना स्वरूप धारण कर  
शङ्कितचित्त हो लड़खड़ाते हुए लौटा । चोर भी उसे बन्दर द्वारा  
धुलाया हुआ जान कर, क्रोधित हो, उसकी लम्बी पूँछ को मुँह  
में डाल चबाने लगा । बन्दर ने उसे राक्षस से भी अधिक जान  
कर भय के कारण कुछ न कहा; केवल दर्द से दुःखी हो आँख  
बन्द किए हुए बैठा रहा । राक्षस ने भी उसे उस प्रकार ( की  
अवस्था में ) देखकर इस श्लोक को पढ़ा

‘यादृशी वदनच्छाया दृश्यते तव वानर !—

विकालेन गृहीतोऽसि यः परैति स जीवति’ ॥८५॥

‘हे बन्दर ! तुम्हारे मुख की जैसी कान्ति दिखाई पड़ती है  
उससे मालूम होता है कि विकाल से आक्रान्त हो, सो जो ( इस  
सङ्कटावस्था से ) भागे बँह बचे’ ॥८५॥

प्रनष्टश्च ।

और भाग गया ।

तत्प्रेषय मां, येन ममापि कश्चिदनर्थो न भवेत्, त्वरित-  
मेव च गृहं गच्छामि । त्वं पुनरनुमुङ्क्ष्वात्र स्थित एव  
लोभवृत्तफलम् ।’ चक्रधरः प्राह—‘भोः ! अकारणमेतत् ।

दैववशात्सम्पद्यते नृणां शुभाशुभम् । उक्तं च -

सो मुझे भी जाने की आज्ञा दो, जिससे मेरा भी कोई अन्त्य-  
पात न हो और जल्दी ही मैं घर चला जाऊँ । और तुम यहाँ रह  
कर अपने लोभ रूपी वृक्ष का फल ( परिणाम ) भोगो ।' चक्रधर  
ने कहा ' भाई ! यह अकारण हुआ है । भाग्य के वश से मनुष्यों  
को शुभ और अशुभ की प्राप्ति होती है । कहा है

दुर्गास्त्रिकूटः परितः समुद्रो

रत्नांसि योधा धनदाच्च वित्तम् ।

शस्त्रं च यस्योशनसा प्रणीतं

स रावणो दैववशाद्विपन्नः ॥८६॥

जिसका दुर्गा चित्रकूट पर्वत, खाई समुद्र, योधा राक्षस, कुंवर  
से धन-लाभ, शस्त्र शुक्र-प्रणीत था ऐसा रावण दैवयोग से  
नाश हुआ ॥८६॥

तथा च ।

और भी

[ अन्धकः कुब्जकरचैव त्रिस्तनी राजकन्यकाः ]

त्रयोऽप्यन्यायतः सिद्धाः सम्मुखे कर्मणि स्थिते ॥८७॥

अन्धा, कुब्जा और तीन स्तनवाली राजकुमारी ये तीनों  
अन्याय से भी पूर्व कर्म ( भाग्य ) के अनुकूल होने पर सिद्ध हुए  
( अर्थात् अपनी कुरूपता से मुक्त हो गए ) ॥८७॥

सुवर्णसिद्धिराह 'कथमेतत् ?' सोऽब्रवीत्

सुवर्णसिद्धि ने कहा 'यह कैसे ?' उसने कहा

प्रस्तः अधोलिखितवार्क्यस्य संस्कृतेन व्याख्या कार्थ्या ( सन् १६३५ )

दैववशात् सम्पद्यते नृणां शुभाशुभम् ।

( कथा ११ )

अस्त्युत्तरापथे मधुपुरं नाम नगरम् । तत्र मधुसेनो नाम  
राजा बभूव । तस्य कदाचिद्विषयसुखमनुभवतस्त्रिस्तनी कन्या  
बभूव । अथ तां त्रिस्तनीं जातां श्रुत्वा स राजा कञ्चुकिनः  
प्रोवाच यत्—‘भोः ! त्यज्यतामियं त्रिस्तनीं गत्वा दूरेऽरण्ये,  
यथा कश्चिन्न जानाति ।’ तच्छ्रुत्वा कञ्चुकिनः प्रोचुः—‘महाराज !  
ज्ञायते यदनिष्टकारिणी त्रिस्तनी कन्या भवति । तथापि  
ब्राह्मणा आहूय प्रष्टव्या येन लोकद्वयं न विरुध्यते । यतः

उत्तरापथ ( उत्तर भारतवर्ष ) में मथुरा नाम का एक नगर है ।  
वहाँ मधुसेन नामका राजा हुआ । उसको कभी विषय भोग का  
अनुभव करते हुए, तीन स्तनवाली कन्या हुई । तब उस तीन स्तन-  
वाली को उत्पन्न हुआ सुन कर राजा ने कञ्चुकी<sup>१</sup> लोगों से  
कहा कि ‘हे ! इस तीन स्तन-वाली को दूर बन में जाकर छोड़  
आओ, जिससे किसी को मालूम न हो ।’ यह सुनकर कञ्चुकियों  
ने कहा ‘महाराज ! यह तो विदित ही है कि तीन स्तनवाली  
कन्या अनिष्ट-कारिणी होती है । तौ भी ब्राह्मणों को बुला कर पूछा  
जाय, जिससे दोनों (इह और पर) लोक में निन्दा न हो । क्योंकि—

१ ‘सौविदल्ला, कञ्चुकिनः’ इत्यमरः । तल्लक्षणा यथा

‘अन्तःपुरचरो राजान्वृद्धो विप्रो गुणान्वितः ।

सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकोत्थमिधीयते ॥’

अथवा

‘ये विप्राः सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः ।

ज्ञानविज्ञानकुशलाः कञ्चुकोत्थाश्च ते स्मृताः ॥’

यः सततं परिपृच्छति शृणोति सन्धारयत्यनिशम् ।

तस्य दिवाकरकिरणैर्नलिनीव विवर्धते बुद्धिः ॥८८॥

जो मनुष्य सर्वदा पूछता है, सुनता है, और उसे नित्य धारण करता है तो उसकी बुद्धि उसी प्रकार बढ़ती है जिस प्रकार सूर्य की किरणों से पद्मिनी परिवर्द्धित होती है ॥८८॥

तथा च

और भी:

पृच्छकेन सदा भाव्यं पुरुषेण विजानता ।

राक्षसेन्द्रेष्टहीतोऽपि प्रश्नान्मुक्तो द्विजः पुरा ॥८९॥

विज्ञ पुरुष को सदा प्रश्नकर्ता होना चाहिए । क्योंकि प्राचीन समय में किसी राक्षस-श्रेष्ठ से पकड़े जाने पर कोई ब्राह्मण प्रश्न ही द्वारा मुक्त हुआ था ॥८९॥

राजा आह- 'कथमेतत् ?' ते भोक्षुः

राजा ने कहा 'यह कथा कैसी है ?' उन्होंने कहा

(कथा १२-)

देव ! कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे चण्डकर्मा नाम राक्षसः प्रति-  
वसति स्म । एकदा तेन भ्रमताऽऽव्यां कश्चिद्ब्राह्मणः समा-  
सादितः । ततस्तस्य स्कन्धमारुह्य प्रोवाच- 'भाः ! अग्रेसरो  
गम्यताम् ।' ब्राह्मणोऽपि भयत्रस्तमनास्तमादाय प्रस्थितः ।

राजन् ! किसी वन-स्थली में चण्डकर्मा नाम राक्षस रहता था । एक समय वन में धूमते हुए उसे कोई ब्राह्मण मिला । तब उसके कन्धे पर चढ़ कर उसने कहा- 'अरे ! आगे चल ।' ब्राह्मण भी भय से व्याकुल चित होकर उसको लेकर चला ।

अथ तस्य कमलोदरकोमलौ पादौ दृष्ट्वा ब्राह्मणो  
राक्षसमपृच्छत्—‘भोः ! किमेवंविधौ ते पादावतिकोमलौ ?’  
राक्षस आह ‘भोः ! व्रतमस्ति । नाहमार्द्रपादो भूमिं  
स्पृशामि ।’ ततस्तच्छ्रुत्वाऽऽत्मना भोक्तोपायं चिन्तयन्तरः  
भासः । ततो राक्षसेनाभिहितम् ‘भोः ! यावदहं स्नानं  
कृत्वा देवताऽर्चनविधिं विधायाऽगच्छामि, तावत्त्वयाऽतः  
स्थानादन्यत्र न गन्तव्यम् ।’

उस ( राक्षस ) के कमल ( गर्भ ) के बीच वाले भाग के तुल्य  
कोमल चरणों को देख कर ब्राह्मण ने राक्षस से पूछा—‘हे ! तुम्हारे  
पैर इतने कोमल क्यों हैं ?’ राक्षस ने उत्तर दिया ‘हे ! मेरा नियम  
है, कि मैं भीगे पैर से पृथ्वी का स्पर्श नहीं करता ।’ तब इसे सुन  
कर अपने उद्धार ( छुटकारा ) के उपाय को सोचता हुआ वह एक  
छालाव के पास पहुँचा । तब राक्षस ने कहा ‘हे ! जब तक मैं  
स्नान कर देवता की पूजा करके न आऊँ तब तक तुम इस स्थान  
से अन्यत्र कहीं मत जाना ।’

तथानुष्ठिते द्विजश्चिन्तयामास—‘नूनं देवतार्चनाविधेरु-  
र्ध्वं मामेष भक्षयिष्यति । तद्द्रुततरं गच्छामि, येनैव आर्द्र-  
पादो न मम पृष्ठमेष्यति ।’ तथानुऽष्ठिते राक्षसो व्रतभङ्ग-  
भयात्तस्य पृष्ठं न गतः । अतो वयं ब्रूमः, ‘पृच्छकेन  
सदा भाव्यम्’ इति ।

वैसा करने पर ब्राह्मण ने विचार किया कि ‘निःसन्देह देवता  
की पूजा करने के उपरान्त मुझे यह भक्ष्य कर जाएगा । सो बड़ी  
तेजी से चला जाऊँ, जिससे यह भीगा पाँव होने के कारण मेरी



पीठ पर सवार न हो सके ।' वैसा करने पर राजास अपने नियम के टूटने के भय से उसकी पीठ पर न चढ़ सका । इसलिए हम कहते हैं कि 'विज्ञ पुरुष को सर्वदा प्रश्न करना चाहिए' इत्यादि ।

अथ तेभ्यस्तच्छ्रुत्वा राजा द्विजानां ह्य प्रोवाच—'भो ब्राह्मणाः ! त्रिस्तनी मे कन्या समुत्पन्ना । तत्किं तस्याः प्रतिविधानमस्ति ? न वा ?' ते प्राचुः—'देव ! श्रूयताम्—

तव उनसे यह सुन कर राजा ने ब्राह्मणों को बुला कर कहा 'हे ब्राह्मणो ! तीन स्तनवाली मुझे एक कन्या उत्पन्न हुई है । सो क्या उसका कोई विधान है ? अथवा नहीं है ?' उन्होंने कहा महाराज सुनिये

हीनाङ्गी वाधिकाङ्गी वा या भवेत्कन्यका नृणाम् ।

भर्तुः स्यात्सा विनाशाय स्वशीलनिधनाय च ॥६०॥

कोई अङ्ग से रहित अथवा कोई अधिक अङ्गवाली कन्या यदि किसी मनुष्य को होती है तो वह अपने पति के विनाश (मृत्यु) के लिए और अपने चरित्र के नाश के लिए होती है ॥६०॥

या पुनस्त्रिस्तनी कन्या याति लोचनगोचरम् ।

पितरं नाशयत्येव सा द्रुतं नात्र संशयः ॥६१॥

और फिर कही तीन स्तनवाली कन्या ( पिता के ) दृष्टिगोचर होती है तो वह अपने पिता का शीघ्र नाश करती है, इसमें संशय नहीं ॥६१॥

तस्यादस्या दर्शनं परिहरतु देवः । तथा यदि कश्चिद् द्राह्यति, तदेनां त्रयै दत्त्वा देशत्यागेन नियोजयितव्य इति । एवं कृते लोकद्वयाऽविरुद्धता भवति ।'

इस लिए महाराज इसको देखना छोड़ दें । और यदि कोई विवाह करे तो इस कन्या को उसे देकर देश-निकाला की आज्ञा दे दीजिए । ऐसा करने से दोनों लोक बने रहेंगे ।

अथ तेषां तद्वचनमाकर्ण्य स राजा पटहशब्देन सर्वत्र घोषणामाज्ञापयामास 'अहो ! त्रिस्तनी राजकन्यां यः कश्चिदुद्गाहयति, स सुवर्णलक्ष्मणाप्नोति, देशत्यागं च ।' एवं तस्यामाघोषणायां क्रियमाणायां महान् कालो व्यतीतः । न कश्चित् प्रतिगृह्णाति । सापि यौवनोन्मुखी सञ्जाता सुगुप्तस्थानस्थिता यत्नेन रक्ष्यमाणा तिष्ठति ।

तब उनकी इस बातको सुनकर राजा ने डुंगी पिटवा कर सब जगह यह घोषणा करने की आज्ञा दी कि 'हे भाई ! तीन स्तनवाली राजकन्यासे जो कोई विवाह करे तो उसे एक लाख अशरफी मिलेगी, किन्तु देश छोड़ना पड़ेगा ।' इस प्रकार उस घोषणा को बहुत समय बीत गया । किन्तु कोई उससे विवाह करने के लिए राजी न होता था । वह भी युवती हुई अत्यन्त गुप्त स्थान में रहती हुई प्रयत्न पूर्वक रक्षा की जाती थी ।

अथ तत्रैव नगरे कश्चिदन्धस्तिष्ठति । तस्य च मन्थरकनामा कुब्जोऽग्रेसरो यष्टिग्राही । ताभ्यां तं पटहशब्दमाकर्ण्य मिथो मन्वितम्—'स्पृश्यतेऽयं पटहः । यदि कथमपि देवात्कन्यां लभ्यते, तदा सुवर्णप्राप्तिश्च भवति । मुखेन सुवर्णप्राप्त्या कालो व्रजति । अथ यदि तस्या दोषतो मृत्युर्भवति, दारिद्र्योपात्तस्यास्य क्लेशस्य पर्यन्तो भवति । उक्तं च

उसी नगर में कोई अन्धा रहता था। उसके मन्थरक नाम का एक कुवड़ा आगे २ लकड़ी पकड़ा कर चलने वाला था। उन दोनों ने उस डुग्गी की आवाज सुनकर परस्पर विचार किया कि 'इस डुग्गी को स्पर्श किया ( बजाया ) जाय। यदि किसी प्रकार भाग्य से कन्या मिल गई तो धन की प्राप्ति हो जायगी। और आसानी से, सुवर्ण (अशरफी) प्राप्ति के कारण, समय बीतेगा और यदि उसके दोष से मृत्यु हो गयी तो दरिद्रता से उत्पन्न इस दुःख का अन्त हो जायगा। कहा है

लज्जा रोगः स्वरमधुरता बुद्धयो यौवनश्रीः

कान्तासङ्गः स्वजनममता दुःखहानिर्विलासः।

धर्मः शास्त्रं सुरगुरुमतिः शौचमाचारचिन्ता

पूर्णे सर्वे जठरपिठरे प्राणिनां सम्भवन्ति ॥६२॥

लज्जा, प्रेम, स्वर-माधुर्य, बुद्धि, यौवन-शोभा, कान्तासक्ति, अपने लोगों की ममता, क्लेशनाश, विभ्रम, धर्म, शास्त्र, देवगुरु से श्रद्धा, पवित्रता, सदाचार का अनुष्ठान ये सब प्रेष्ट रूपी थाली के भरने पर मनुष्यों के होते हैं ॥६२॥

एवमुक्त्वाऽन्धेन गत्वा स पटहः स्पृष्टः, उत्तञ्च

‘भोः ! अहं तां कन्यामुद्वाहयामि, यदि राजा मे प्रयच्छति ।’

ततस्तैः राजपुरुषैर्गत्वा राज्ञे निवेदितम् ‘देव ! अन्धकेन

केनचित्पटहः स्पृष्टः । तदत्र विषये देवः प्रमाणम् ।’ राजा माह-

ऐसा कह कर अन्धे ने जाकर उस डुग्गी को स्पर्श किया ( बजाया ) और कहा ‘हे ! मैं उस कन्या के साथ विवाह करूंगा यदि मुझे राजा दे ।’ तब उन सिपाहियों ने जाकर राजा से निवेदन किया ‘महाराज ! किसी अन्धे ने डुग्गी को स्पर्श किया

( बजाया ) है । सो इस बारे में महाराज ही प्रमाण हैं ( हज़ूर ही मालिक हैं ) चाहें जैसा करें ।' राजा ने कहा

मन्धो वा वधिरो वाऽपि कुष्ठो वाऽप्यन्त्यजोऽपि वा ।

प्रतिगृह्णातु तां कन्यां सल्लज्जां स्वाद्विदेशगः ॥६३॥

अन्धा, बहिरा, कोढ़ी, अन्त्यज कोई भी हो वह उस कन्या को लाख अशरफी के साथ ग्रहण करे और देश से बाहर चला जाय ॥

अथ राजादेशात्तैः रक्षापुरुषैस्तं नदीतीरे नीत्वा सुवर्ण-  
लक्षणेण समं विवाहविधिना त्रिस्तनीं तस्मै दत्त्वा जलधाने-  
निधाय कैवर्ताः प्रोक्ताः 'भोः ! देशान्तरं नीत्वा कस्मि-  
न्विदधिष्ठानेऽन्धः सपत्नीकः कुब्जकेन सह मोचनोयः ।'

तब राजा की आज्ञा से उन सिपाहियों ने, उस ( अन्धे ) को नदी के किनारे ले जाकर, एक लाख अशरफी के सहित, विवाह की विधि से उस तीन स्तनवाली को उसे देकर, नौका पर चढ़ा कर, मेल्लाहों से कहा 'अरे ! दूसरे देश में ले जाकर किसी स्थान पर उसी सहित अन्धे को कुबड़े के साथ छोड़ देना ।'

तथानुष्ठिते विदेशमासाद्य कस्मिन्विदधिष्ठाने कैवर्त-  
दर्शिते त्रयोऽपि मूढ्येन गृहं प्राप्ताः सुखेन कालं नयन्ति-  
रा । केवलमन्धः पर्यङ्के सुप्तस्तिष्ठति । गृहव्यापारं मन्थरकः  
करोति । एवं गच्छता कालेन त्रिस्तन्याः कुब्जकेन सह  
विकृतिः समपद्यत । अथवा साद्विदमुच्यते

वैसा करने पर विदेश में पहुँच कर किसी स्थान में, जो मेल्लाहों से बताया गया था वहाँ, वे तीनों रूपये से घर खरीद कर सुखपूर्वक समय बिताने लगे । केवल अन्धा ही पलङ्ग पर

सोना था । गृहकार्य मन्थरक करता था । इस प्रकार समय बीतने पर तीन स्तनवाली का कुण्ड के साथ व्यभिचार हुआ । अथवा ठोक कहा है -

यदि स्याच्छीतलो वह्निश्चन्द्रमा दहनात्मकः ।

सुखादः सागरः स्त्रीणां तत्सतीत्वं प्रजायते ॥६४॥

यदि अग्नि शीतल हो जाय, चन्द्रमा जलाने वाला हो जाय, सागर ( का जल ) स्वादिष्ट हो जाय तब कही स्त्रियों में पातिव्रत्य आ सकता है ॥६४॥

अथान्येद्युस्त्रिस्तन्या मन्थरकोऽभिहितः—‘भोः सुभग ! यद्येषोऽन्यः कथञ्चिद्द्व्यापाद्यते, तदावयोः सुखेन कालो याति । तदन्विष्यतां कुत्रचिद्विषम्, येनास्मै तत्प्रदाय सुखिनी भवामि ।’

तब दूसरे दिन त्रिस्तनी ने मन्थरक से कहा—‘हे प्यारे ! यदि यह अन्या किसी प्रकार मारा जाय तो हम दोनों का समय चैन से कटे । सो कहींसे विष लाओ, जिसे इसको देकर मैं सुखी हो जाऊँ ।’

अन्यदा कुञ्जकेन परिभ्रमता मृतः कृष्णसर्पः प्राप्तः । तं गृहीत्वा प्रहृष्टमना गृहमभ्येत्य तामाह—‘सुभगे ! लब्धोऽयं कृष्णसर्पः । तदेनं खण्डशः कृत्वा प्रभूतशुण्ठ्यादिभिः संस्कार्यैर्विकलनेत्राय मत्स्यामिषं भणित्वा प्रयच्छ, येन द्राग्विनश्यति । यतोऽस्य मत्स्यस्यामिषं सदा प्रियम् ।’ एवमुक्त्वा मन्थरको वाह्ये गतः ।

किसी दिन कुण्ड ने घूमते हुए एक मरा हुआ साँप पाया । उसे उठा कर प्रसन्नचित्त हो, घर में आकर, उस ( त्रिस्तनी ) से कहा—

‘अरी सुलक्षणे ! यह काला साँप मुझे मिला है । सो इसे टुकड़े कर बहुत से सोंठ आदि मसालों से पका कर इस नेत्र-विहीन को, मछली का मांस कह कर दे दो । जिससे जल्द ही मर जाय । क्योंकि इसे मछलीका मांस सर्वदा प्रिय है ।’ ऐसा कह कर मन्थरक बाहर चला गया ।

साऽपि प्रदीप्ते वहौ कृष्णसर्पे खण्डशः कृत्वा तक्रमा-  
दाय गृहव्यापाराकुला तं विकलान्तं सप्रश्रयमुवाच-आर्य-  
पुत्र ! तवाभीष्टं मत्स्यमांसं समानीतम्, यतस्त्वं सदैवैतत्पृ-  
च्छसि । ते च मत्स्या वहौ पाचनाय तिष्ठन्ति । तद्यावदहं  
गृहकृत्यं करोमि, तावत्त्वं दर्वीमादाय क्षणमेकं तान्प्रचालय ।  
सोऽपि तदाकर्ण्य हृष्टमनाः स्रक्कणी परिलिहन्द्गतमुत्थाय  
दर्वीमादाय प्रमथितुमारब्धः ।

उमने भी जलती हुई आग में काले साँप को टुकड़े कर  
( डाल कर ) मट्ठा देकर, गृहकाय में व्यग्रता प्रकट करती हुई,  
उस अन्धे से विनयपूर्वक कहा ‘हे पति ! तुम्हारा अभिलषित  
मछली का मांस लायी हूँ, क्योंकि तुम सदा ही उसके लिए पूछा  
करते थे । वे मछलियाँ अग्नि में पक रही हैं । सो जब तक मैं घर  
का काम करूँ, तब तक आप करछुल लेकर थोड़ी देर तक चलाते  
रहिये ।’ वह भी यह सुनकर, हर्षित-चित्त हो-ओष्ठ-प्रान्त चाटते  
हुए, शीघ्र उठकर, करछुल लेकर चलाने लगा ।

अथ तस्य मत्स्यामिषं मथतो विषगर्भवाप्येण संस्पृष्टं  
नीलपटलं चक्षुर्भ्यामगलेत् । असावप्यन्धा बहुश्रुणं मन्यमाना  
विशेषान्नेत्राभ्यां वाष्पग्रहणमकरोत् । ततो लब्धदृष्टिर्जातो

यावत्पश्यति, तावत्तन्मध्ये कृष्णसर्पखण्डानि केवलान्ये-  
वावलोकयति ।

तब उसके उस समय मछली के मांस के चलाते हुए उस धुएँ  
से, जिसके भीतर विष था, उसके नेत्रों की कालिमा क समूह को  
लगा जिससे वह गल गया । इस अन्धे ने भी उस ( धुएँ ) को  
बहुत गुणकारी जानकर, और भी अधिक, नेत्रों से भाग लिया ।  
तब ( वह ) दृष्टि प्राप्त कर ज्यों ही देखता है तो भट्ठे से केवल  
काले साँप के टुकड़ों को ( उसने ) अवलोकन किया ।

ततोऽचिन्तयत्--'अहो ! किमेतत् !! मम मत्स्यामिषं  
कथितमासीदनया । एतानि तु कृष्णसर्पखण्डानि । तत्रा-  
पदिजानामि सम्यक् त्रिस्तन्याश्चेष्टितं किं मम वधोपाय-  
क्रमः ? कुब्जस्य वा ? उताहो अन्यस्य वा कस्यचित् ?'  
एवं विचिन्त्य स्वाकारं गूहनन्धवत्कर्म करोति यथा पुरा ।

तब उसने विचार किया--'अरे ! यह क्या है !! मुझ से तो  
मछली का मांस इसने कहा था; किन्तु ये तो काले साँप के टुकड़े  
हैं । सो मैं इस त्रिस्तनी की सब कार्रवाई को मालूम करूँ कि क्या  
मेरे मारने का उपाय है ? या कुबड़े के, अथवा अन्य किसी के  
( मारने का उपाय है ) ?' इस प्रकार सोच विचार कर अपनी  
आकृति को अप्रकट किए पहले की तरह अन्धे के समान कर्म  
करने लगा ।

अत्रातरेकुब्जः समागत्य निःशङ्कतयाऽऽलिङ्गनचुम्ब-  
नादिभिस्त्रिस्तनीं सेवितुमुपचक्रे । सोऽप्यन्धस्तमवलोकय-  
अपि यावन्न किञ्चिच्छृण्वं पश्यति, तावत्कोपव्याकुलमनाः

पूर्ववच्छयनं गत्वा कुब्जं चरणाभ्यां संगृह्य सामर्थ्यात्स्व-  
भ्रातृकोपरि भ्रामयित्वा त्रिस्तनीं हृदये व्यताडयत् । अथ  
कुब्जप्रहारेण तस्यास्तृतीयः स्तन उरसि प्रविष्टः । तथा बला-  
न्मस्तकोपरि भ्रामणेन कुब्जः प्राञ्जलतां गतः । अतोऽहं  
ब्रवीमि 'अन्धकः कुब्जकश्चैव' इति ॥ ]

इसी समय कुबड़ा आकर निःशङ्क भाव से आलिङ्गित और  
पुम्ब्रन प्रदान आदि से त्रिस्तनी के साथ रमण करने लगा । उस  
अन्धे ने उसे देख कर जब कोई शस्त्र न पाया तो क्रोध से व्याकुल-  
चित्त हो पूर्ववत् शयनागार में जाकर, कुबड़े की टाँग पकड़ कर  
अपनी ताकत भर अपने शिर के ऊपर घुमाकर, त्रिस्तनी के हृदय  
पर दे मारा । तब कुबड़े की चोट से उसका तीसरा स्तन उसके  
पक्षास्थल में घुस गया । और बलपूर्वक शिर के ऊपर घुमाने से  
कुबड़ा सीधा हो गया । इसीलिए मैं कहता हूँ—'अन्धा और कुबड़ा  
.....' इत्यादि । ]

सुवर्णसिद्धिराह—'भोः ! सत्यमेतत् । दैवानुकूलतया  
सर्वं कल्याणं सम्पद्यते । तथापि पुरुषेण सतां वचनं  
कार्यम् । न पुनः असंहतेन कदाचिदपि भवितव्यम्, यः  
स्वल्प एवमेव वर्तते, स त्वमिव नूनं विनश्यति । तथा च—

सुवर्णसिद्धि ने कहा 'हे ! यह सत्य है । भाग्य के अनुकूल  
होने से सब कल्याण हो होता है । तौ भी पुरुष को सज्जनों की  
ज्ञात माननी चाहिए । और फिर बिना मेज के कभी न होना  
चाहिए । जो इस प्रकार ( असंगठित ) होगा वह पुम्हारी तरह  
निःसन्देह नष्ट होगा । और भी



एकोदराः पृथग्ग्रीवा अन्योन्यफलभक्षिणः ।

असंहता विनश्यन्ति भारण्डा इव पक्षिणः ॥६५॥

बिना मेल के आदमी एक पेट, भिन्न मस्तकवाले, परस्पर फल के खाने वाले, भारण्ड नामक पक्षी की भाँति, नष्ट होते हैं ॥६५॥

चक्रधर आह 'कथमेतत् ?' सोऽब्रवीत्

चक्रधर ने पूछा 'यह कैसी कथा है ?' उसने कहा

( कथा १३ )

कस्मिंश्चित्सरोवरे भारण्डनामा पक्ष्येकोदरः पृथग्ग्रीवः प्रतिवसति स्म । तेन च समुद्रतीरे परिभ्रमता किञ्चित्फलभृतकल्पं तरङ्गाक्षिप्तं सम्भासम् । स च तद्दृष्ट्वा यन्निदमाह—अहो ! बहूनि मयाऽमृतप्रायाणि समुद्रकल्लोलाहृतानि फलानि भक्षितानि । परमपूर्वोऽस्याऽऽस्वादः । तर्हि पारजात-हरिचन्दन-तरुसम्भवम् ! किं वा किञ्चिदमृतमयफलमव्यक्तेनापि विधिनाऽऽपतितम् ॥'

किसी तालाब में भारण्ड नामक पक्षी एक पेटवाला कि.तु दो मस्तकवाला रहता था । उसने समुद्र के किनारे घूमते हुए किसी अमृत के समान, लहर से फँके हुए (एक) फल को पाया । उसने उसे खाते हुए कहा 'अहा ! मैंने बहुत से अमृत तुल्य, समुद्र की लहर से फँके हुए, फलों को खाया है । किन्तु इसका स्वाद तो अपूर्व है ! सो क्या यह पारिजात, वृक्ष अथवा हरिचन्दन के वृक्ष से उत्पन्न हुआ है ? अथवा अव्यक्त (दैव-योग) से कोई अमृतमय फल गिरा है ?'

एवं तस्य ब्रुवतो द्वितीयमुखेनाभिहितम् 'भोः !  
यद्येवं तन्ममापि स्तोकं प्रयच्छ, येन जिह्वासौख्यमनु-  
भवामि ।' ततो विहस्य प्रथमवक्त्रेणाभिहितम् 'आव-  
योस्तावदेकमुदरम्, एका तृप्तिश्च भवति । तत किं पृथग्भ-  
क्षितेन ? वरमनेन शोषेण प्रिया तोष्यते ।' एवमभिधाय तेन  
शेषं भारण्ड्याः भदत्तम् । साऽपि तदारयाद्य महृष्टतया-  
ऽऽलिङ्गन-पुम्बन-सम्भावनाद्यनेकचाटुपरा बभूव । द्वितीयं  
मुखं तद्दिनादेव प्रभृति सोद्वेगं सविषादं च तिष्ठति ।

इस तरह उसके कहने पर दूसरे मुँह ने कहा 'हे ! यदि ऐसा  
है, तो मुझे भी थोड़ा सा देना, जिससे जिह्वा के सुख को अनुभव  
करूँ ।' तब हँस कर पहले मुँह ने कहा — 'हमारा तुम्हारा तो एक  
ही पेट है, और एक ही तृप्ति होती है । तो अलग २ खाने से क्या  
योजन ? अच्छा तो यह होगा कि इस शोष बचे हुए ( अवशिष्ट-  
भाग ) से प्रिया को सन्तुष्ट किया जाय ?' ऐसा कह कर उसने  
शेष भाग भारण्डी को दे दिया । वह भी उसका आश्चर्यजनक  
विषय हो, आलिङ्गन-पुम्बन आदि आदर प्रदर्शन और विविध  
प्रकार के प्रिय वर्ताव में संलग्न हुई । दूसरा मुँह उसी दिन से  
उत्तेजना युक्त तथा दुःखी रहने लगा ।

अथान्येद्युर्द्वितीयमुखेन विषफलं प्राप्तम् । तद्दृष्ट्वा-  
ऽपरमाह 'भोः ! निस्त्रिश ! पुरुषाद्यम ! निरपेक्ष ! मया  
विषफलमासादितम् । तत्तवापमानाञ्जनायाभि ।' अपरेणा-  
भिहितम्—'भूर्ख ! मा भैवं कुरु । एवं कृते द्वयोरपि विनाशो  
अविष्यति ।' अथैवं वदन्तं तेन पूर्वपमानात् फलं भक्षि-

तम् । किं बहुना ? द्वावपि विनष्टौ । अतोऽहं ब्रवीमि  
'एकोदराः पृथग्वीवाः' इति । ]

तब किसी दूसरे दिन दूसरे मुँह ने विषफल पाया । उसे देख कर दूसरे ( पहले ) मुँह से कहा 'अरे ! निर्दय ! लुद्र पुरुष ! दूसरे की उपेक्षा करने वाला ! मैंने विष फल पाया है । सो तुम्हारे अपमान के कारण खा रहा हूँ ।' दूसरे ( पहले मुँह ) ने कहा 'अरे मूर्ख ! ऐसा मत करो । ऐसा करने पर दोनों का विनाश होगा ।' तब इस प्रकार कहने पर भी उसने पूर्व के अपमान के कारण उस फल को खा लिया । अधिक कहने से क्या लाभ ? वे दोनों मर गए । इसी लिए मैं कहना हूँ 'एक पेट और भिन्न र शिर...' इत्यादि । ]

चक्रधर आह 'सत्यमेतत् । त्वद्वचनमनाकार्यत्वात्प-  
रित्यज्य च एकाकिनागच्छता मया दुःखमेतदनुभूयते,  
तद्गच्छ गृहम् ।' एवं श्रुत्वा सुवर्णसिद्धिस्तमनुशाप्य स्व-  
गृहं प्रति निवृत्तः ।"

चक्रधर ने कहा - 'यह सत्य है । तुम्हारी बात को अनसुनी ( न मान ) कर और तुम्हें छोड़ कर, अकेला आने वाला मैं इस दुःखका अनुभव कर रहा हूँ । सो तुम जाओ ।' ऐसा सुनकर सुवर्ण-  
सिद्धि उससे आज्ञा लेकर अपने घर की ओर लौट गया ।"

अथ ब्राह्मणी एवमुक्त्वा पुनः ब्राह्मणमाह—'यत्त्वया-  
ऽप्यतिलुब्धेन न कृतं मद्वचः, तेनैवोदशीऽवस्थोपागता ।  
अतोऽहं ब्रवीमि—'अतिलोभो न कर्तव्यः' इति ।

तब ब्राह्मणी ने इतना कहने के बाद फिर भी ब्राह्मण से कहा

कि-‘तुमने अत्यन्त लालच के कारण मेरी बात न मानी, उसीसे ऐसी दशा सम्मुख आयी। इसी से मैं कहती हूँ-‘बहुत लालच न करना चाहिए...’ इत्यादि।

तच्छ्रुत्वा देवशर्मा कथयति-‘यस्य गृहेऽशनजातं किमपि नारित, तस्य जीविकार्थं भिक्षाऽदनं न पुनरति-लोभकारणं भवितुमर्हति। त्वमेवापरीक्षितकारिणी, येन चिरं पुत्रवत्स्निह्यमानं, सुखप्रसुप्तस्य स्वपुत्रस्य कृष्णसर्पात् रक्षितारममुं नकुलं सविशेषमज्ञात्वैव सहसा विनाशयन्त्या त्वयाऽतोवाक्यमनुष्ठितम्।’

उसे सुनकर देवशर्मा कहने लगा कि ‘जिसके घरमें भोजन के लिए कुछ भी नहीं हो तो उसका जीविका के निमित्त, भिक्षाके लिए भ्रमण करना अत्यन्त लोभ का कारण नहीं होता। तुम्हीं विवेचना करने वाली नहीं हो, जिससे चिरकाल तक पुत्र के समान लालित, सुख से सोये हुए अपने पुत्र की काले साँप से रक्षा करने वाले इस नेवले को, पूरा धृतान्त विशेष रूपसे न जानकर, सहसा मार कर तुमने अत्यन्त अकार्य किया।

सा तु तथाविधं भर्तृवाक्यं निशम्यापरीक्षितकारि-  
ताया दोषं विभाव्य च नकुलार्थं परं सन्तापमाययौ,  
तद्व्यथशोकेन च प्रमुक्तकण्ठं चिरमरुदत्। अतोऽस्माभि-  
रुच्यते-‘अपरीक्ष्य न कर्तव्यम्’ इति।

वह भी इस प्रकार पति की बात सुनकर अपने असमीक्षित्व के दोष को विभावना कर, नेवले के लिए अत्यन्त सन्तप्त हुई। और उसके वध से उत्पन्न शोक के कारण गला फाड़ र कर बहुते

देर तक रोयी। इस लिए हम कहते हैं 'बिना परीक्षा किए हुए न करना चाहिये' इत्यादि।

मणिभद्र आह—'सत्यमेतत्, सम्यगुपदिष्टमत्र भवद्भिः, साम्प्रतमनुमन्यतामयं जनं स्वगृहगमनाय।' ततो धर्माधिकारिभिरुक्तं—'गच्छतु स्वगृहं भवान्, परमेकाकिना न गन्तव्यम्। उक्तं च

मणिभद्र ने कहा 'यह ठीक है, आप लोगों ने अच्छी तरह से उद्देश दिया। अब इस मनुष्य (मुम्ता) को अपने घर जाने के लिए अनुमति दीजिए।' तब धर्माधिकारियों ने कहा 'अपने घर आप जाँय, किन्तु अकेले न जाँय। कहा है—

एकः स्वादु न भुञ्जीत नैकः सुप्तेषु जागृयात् ।

एको न गच्छेदध्वानं नैकश्चार्थान्प्रचिन्तयेत् ॥६६॥

अकेले स्वादिष्ट पदार्थ न खाना चाहिए, सोये हुए पुरुषों में अकेला न जागे, अकेला रास्ता न चले और न अकेला आवश्यक कार्य का विचार करे ( अर्थात् और लोगों से भी सलाह ले लेना चाहिए ) ॥६६॥

अपि च

और भी—

अपि कापुरुषो मार्गे द्वितीयः क्षेमकारकः ।

ककटेन द्वितीयेन जीवितं परिरक्षितम् ॥६७॥

राह में कायर ( निकम्मा ) पुरुष को भी साथ में दूसरा रख कर ले जाने से अत्यन्त हितकर होता है; जिस प्रकार दूसरे

राक्षसक कर्कट (कुत्तीरक) ने (किसी ब्रह्मदत्त नामक पथिक के) जीवन की रक्षा की ॥६७॥

सुवर्णसिद्धिराह-‘कथमेतत् ?’ सोऽब्रवीत्

‘सुवर्णसिद्धि’ ने कहा ‘यह कथा किस प्रकार है?’ उसने कहा—

( कथा १४ )

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने ब्रह्मदत्तनामा ब्राह्मणः प्रतिवसति-  
 रा । स च प्रयोजनवशाद्ग्रामे प्रस्थितः स्वमात्राभिहितः-  
 'वत्स ! कथमेकाकी प्रजसि ? तदन्विष्यतां कश्चिद्द्वितीयः  
 सहायः ।' स आह 'अम्ब ! मा भैषीः । निरुपद्रवोऽयं  
 भार्गवः । कार्यवशादेकाकी गमिष्यामि ।'

किसी स्थान में ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण रहता था । जब वह कार्यवश गाँव की ओर खाना होने लगा तो उसकी माता ने कहा—  
‘पुत्र ! अकेले क्यों जाते हो ? कोई दूसरा सहायक खोजो ।’ उसने  
कहा ‘माता ! भय मत करो । यह माग बिना खटके का है ।  
प्रयोजन के कारण अकेला ही जाऊँगा ।’

अथ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा समीपस्थवाण्याः सका-  
शात्कर्कटमादाय मात्राभिहितः 'वत्स ! अवर्यं यदि  
गन्तव्यं तदैव कर्कटोऽपि सहायो भवतु । तदेनं गृहीत्वा  
प्रश्नः ॥ १ ॥

प्रश्न अधोलिखितवाक्याना हिन्दीभाषयाऽनुवाद. क्रियताम्  
(१) कस्मिंश्चिदधिष्ठाने

(१) कस्मिंश्चिदधिष्ठाने ब्रह्मरत्ननामा ब्राह्मणः "युहोता गच्छ (१६३२)

"

गच्छ ।' सोऽपि मातुर्वचनादुभाभ्यां पाणिभ्यां तं संगृह्य कर्पूरपुटिकामध्ये निधाय पात्रमध्ये संस्थाप्य च शीघ्रं प्रस्थितः ।

तब उसके उस निश्चय को जानकर निकट ही की बावली से एक केकड़ा लाकर, माता ने कहा 'पुत्र यदि जाने का इरादा ही कर लिये हो तो यह केकड़ा तुम्हारा सहायक होगा । अतः इसे लेकर जाओ ।' वह भी माता के वचन से दोनों हाथों से उसे ग्रहण कर कपूर की थैली में रख कर वर्तन में डाल कर जल्दी से रवाना हुआ ।

अथ गच्छन्ग्रीष्मोष्मणा सन्तप्तः कश्चिन्मार्गस्थं वृक्ष-  
मासाद्य तत्रैव प्रसुप्तः । अत्रान्तरे वृक्षकोटराभिर्गत्य कृष्ण-  
सर्पस्तत्समीपमागतः । स च कर्पूरसुगन्धसहजप्रियत्वात्  
परित्यज्य वस्त्रं विदार्याभ्यन्तरगतां कर्पूरपुटिकामतिलौ-  
ल्यादभक्षयत् । सोऽपि कर्कटस्तत्रैव स्थितः सन् सर्प-  
प्राणानपाहरत् ।

तब जाते हुए, ग्रीष्म ऋतु की गरमी से सन्तप्त होकर, किसी राह में स्थित वृक्ष के पास पहुँच कर वहीं सो गया । इसी समय वृक्ष के खोखले से निकल कर एक काला साँप उसके पास आया । और वह कपूर की सुगन्धि से स्वाभाविक प्रीति रहने के कारण, उसे छोड़ कर, वस्त्र फाड़ कर भीतर रखी हुई कपूर की थैली को अत्यन्त चञ्चलता के कारण चबाने लगा । उसमें रहते हुए उस केकड़े ने सर्प के प्राण ले लिये ।

ततो ब्राह्मणः प्रबुद्धः पश्यति यदेको मृतः कृष्णसर्पः

निजपार्वे कर्पूरपुटिकोपरि स्थितस्तिष्ठति । तं दृष्ट्वा  
व्यचिन्तयत्—‘कर्कटेनायं हतः’ इति प्रसन्नो भूत्वाऽब्रवीत्—  
‘भोः ! सत्यमभिहितं मम मात्रा, यत्पुरुषेण कोऽपि सहायः  
कार्यः, नैकाकिना गन्तव्यम् ।’ यतो मया श्रद्धापूरित-  
चेतसा तद्वचनमनुष्ठितम्, तेनाहं कर्कटेन सर्पव्यापादना-  
द्रक्षितः । अथवा साध्विदमुच्यते

तब ब्राह्मण जागकर देखता है कि एक मरा हुआ काला साँप  
अपनी बगल में कपूर की थैली के ऊपर पड़ा है । उसे देखकर  
( उसने ) विचार किया कि ‘कर्कड़े ने इसे मारा है ।’ और प्रसन्न  
होकर कहा कि ‘अहो ! मेरी माता ने सत्य कहा था कि पुरुष को  
कोई सहायक रखना चाहिए ।’ चूँकि मैंने श्रद्धायुक्त मन से उस  
वचन के अनुरूप किया, उसी से मैं कर्कट द्वारा मारे हुए सर्प से  
बचा । अथवा ठीक ही कहा है

क्षीणः स्रवति शशी रविष्ट्रौ वर्धयति पाथसां नाथम् ।  
अन्ये विपदि सहाया धनिनां श्रियमनुभवन्त्यन्ये ॥६८॥

चन्द्रमा क्षीण होने पर भी अमृत बरसाता है और वही सूर्य  
द्वारा कला की वृद्धि होने पर जलनिधि [ समुद्र ] को बढ़ाता है ।  
आपत्ति आने पर दूसरे सहायक होते हैं और धनियों की सम्पत्ति  
को भोगने वाले और ही होते हैं ॥६८॥

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥६९॥

मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषधि और गुरुजनों में  
जिसकी जैसी भावना होती है उसको वैसी ही सिद्धि भी होती है ॥



एवमुक्त्वाऽसौ ब्राह्मणो यथाभिप्रेतं गतः । अतोऽरणा-  
भिरुच्यते- 'अपि कापुरुषो मार्गे' इति । सोऽपि मणि-  
भद्रस्तेषामेतेषुपदेशवचनमाकलय्य ताननुज्ञाप्य केनचित्स-  
हायेन स्वगृहं गत्वा सुखेन भोगं भुञ्जानश्चिरं तस्थौ ।

इति श्रीविष्णुशर्मविरचिते पञ्चतन्त्रेऽपरोक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रं समाप्तम् ।

ऐसा कह कर यह ब्राह्मण अपने अभीष्ट स्थान को गया । अतः  
हम सब कहते हैं 'कायर (निकम्मा) मनुष्य भी मार्ग में' इत्यादि ।  
वह मणिभद्र सेठ भी उनकी इन उपदेश की बातों को गाँठमें बाँध  
कर, उनसे आज्ञा लेकर, किसी सहायक के साथ अपने घर जाकर,  
सुखपूर्वक भोग को भोगता हुआ बहुत दिन तक [ जीवित ] रहा ।

इति श्रीविष्णुशर्मविरचिते पञ्चतन्त्रे श्रीमन्नलाल 'अभिमन्यु'

एम० ए० कृत-भाषाटीकायामपरोक्षितकारकं

नाम पञ्चमं तन्त्रं समाप्तम् ।





# लघुकौमुदी

पं० श्रीसूर्यनारायण शुक्ल व्याकरणाचार्य,  
प्रोफेसर, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज,  
बनारस कृत सरल, सुबोध,  
परीक्षोपयोगी टीका  
'बालमनोरमा'  
सहित ।

व्याकरण शास्त्र की पुस्तकों में सरल मति के विद्यार्थियों को सर्व प्रथम लघुकौमुदी पढ़ायी जाती है । इसकी शैली उत्तम है, फिर भी शास्त्र की गहनता के कारण अनेक विद्वानों ने विविध स्थानों से टीका टिप्पणी करके प्रकाशित की है । किन्तु उपरोक्त कौमुदी टीका के विचार से सर्वप्रथम रखी जा सकती है, क्योंकि इसकी टीका अतीव सरल, आवश्यकमात्र विस्तृत तथा सुस्पष्ट है ।

छपाई सफाई उत्तम, पाठ शुद्ध, जिल्द अत्यन्त आकर्षक होने पर भी मूल्य केवल २)

प्राप्तिस्थान

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो,  
कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

शाखा मुरादपुर, बाँकीपुर, पटना ।

३१३

सोपान

प्रथमा - प्रह्लादवली

परीक्षोपयोगि प्रयोगार्थमञ्जरी नाम्ना

हिन्दुविष्णुया डल्लुक्ता

विः श्रीप्रीतुलसी जी जी



रचयिता

श्रीशिवदत्तभिषगाम्नी



\* श्रीः \*

सोतरा

# प्रथमा प्रश्नावली ।

परीक्षोपयोगि ‘प्रयोगार्थमञ्जरी’नाम्न्या  
हिन्दीटिप्पण्याऽलङ्कृता ।

गोरक्ष(ख)पुरमण्डलान्तर्गत-‘मन्मौली राज्य’निवासि-श्रीयुक्त-  
पण्डितश्रीकान्तमिश्रशर्मणाऽपुत्रेण सुप्रसिद्ध-कोविद-  
कुलप्रसूत-पण्डित-श्रीसन्तशरणमिश्रशर्मणाऽपुत्रेण  
पण्डितश्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिणा  
विरचिता संपादिता च ।

सा च

काशीस्थ-‘संस्कृत-बुक डिपो’ इत्यस्याध्यक्षैः  
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स महोदयैः  
स्वीये ‘मास्टर-प्रिण्टिङ्ग-वर्क्स’ नाम्नि  
यन्त्रालये मुद्रापयित्वा प्रकाशिता ।

...

प्रकाशकः

जे० एन० यादव, प्रोप्राइटर,  
मारटर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,  
संस्कृत बुकडिपो,  
कचौड़ीगली, बनारस, सिटी ।

शाखा  
मारटर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,  
संस्कृत बुकडिपो,  
मुरादपुर, बाँकीपुर,  
पटना ।

मुद्रकः

श्रीमन्नालाल अभिमन्यु एम० ए०  
मारटर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स,  
बुलानाला, काशी ।

\* बृहत्कभैरवाय नमः \*



सब सहृदय सत्पुरुष इस बात से सहमत हैं कि शिरीष सुमन के समान सुकुमार शेमुषी वाले शिष्यवर्गों का संस्कृत कालेजीय प्रथम-सरोवर के सोपान पर समारूढ होना सुपरिश्रम साध्य है। सब सद्ग्रन्थों का सम्पूर्णतया स्वाध्याय होने पर भी शैली की अनभिज्ञता स्वान्तः करण में सर्वदा शल्य के सदृश व्यथाकारक होती है। सरणि में इन बातों के समझने की आवश्यकता पड़ती है कि

- (१) परीक्षक के प्रश्न का क्या तात्पर्य है।
- (२) कितना उत्तर देना आवश्यक है।
- (३) किन निरर्थक उत्तरों से परीक्षक का चित्त कम नम्बर देने की ओर प्रवृत्त होता है आदि।

इन कठिनाइयों की समुचित व्यवस्था करने के लिए एक दम आधुनिक शैली से उत्तरमाला संग्रथन कर के मैंने सन् १९३० से लेकर १९४० तक के लघुकौमुदी के प्रश्न पत्रों का संग्रह कर,

- (१) 'प्रयोगार्थमञ्जरी' नामक हिन्दी टिप्पणी-जिस में प्रयोग, शब्द और धातुओं के अर्थ दिए गये हैं के साथ,
- (२) सन् १९४० की नवीन नियमावली के अनुसार परीक्षो-पयोगि वर्तमान कालिक शैली के अनुसार,



( ३ ) लघुकौमुदी से इतर प्रश्नपत्रों के उत्तर संक्षेप में पथ-प्रदर्शन मात्र ही दिये गये हैं ।

तदनन्तर मैं इस पुराण के प्रकाशक महोदय जी को सहर्ष हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने असंख्य छात्रों के हितार्थ प्रयत्न पूर्वक इसे प्रकाशित किया है । और सर्वदा संस्कृत-साहित्य की उन्नति के लिये दीन छात्र जनों के अनेक प्रकार की सहायता-प्रदान करने में प्रयत्नशील रहते हैं ।

और साथही गोरक्षपुर मण्डलान्तर्गत 'पाण्डेय भठवा' ग्राम निवासी पं० श्रीविश्वनाथ पाण्डेयजी का बहुत कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस कार्यमें प्रवृत्त होने के लिये मुझे विशेष प्रोत्साहन दिया है, और मैं इनकी उस दिव्य कृपा के लिये हार्दिक धन्यवाद देते हुए आशा करता हूँ कि उत्तरोत्तर उत्साह बढ़ाते हुए चिरकाल के लिये अनु-गृहीत करेंगे ।

इस पुराण की प्रेसकापी वगैरह लिखने में हमारे 'चिर-जीवी' भ्रातृपुत्र पं० रामावतार मिश्र ने बड़ा परिश्रम किया है, अतः उनके सहस्र आशीर्वाद देते हुए उनके अभ्युदय की कामना करता हूँ ।

विशेषतया पाठक गणों से नम्र-निवेदन है कि इस में मनुष्य धर्म वश संशोधनादि या यन्त्रालय के दोषवश जो कुछ त्रुटियाँ रह गई हों उन पर क्षमा प्रदान करते हुए पुस्तक से व्यक्तिगत लाभ उठाते हुए परीक्षा में समुत्तीर्ण होकर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे ।

गच्छतः स्वल्पं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।

हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥ इति ॥

‘भैरवाष्टमी’

२२ नवम्बर १९४० ई०

विदुषामनुचरः

श्रीशिवदासमिश्रशास्त्री ।

❀ अकारादिवर्णानुक्रमेण प्रयोगानुक्रमणिका ❀

प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः	प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः
[ अ ]			
अष्टौ	५	अक्रमीत्	५३
अहानि	५	अदात्	५४
अभूत्	६	अदास्त	५४
अज्ञपुरी	८	अतिदिभम्	५६
अष्टानाम्	१७	अमी ईशाः	५६
अमीषाम्	१७	अहर्गणः	५९
अभक्षाताम्	१७	अहरसु	१६
अवक्षीताम्	१९	अभूवम्	६२
अधुक्षाताम्	१९	अक्षैषीः	६२
अमुचत्	२०	अष्टणवम्	६२
अमुक्	२१	अनजानि	६४
असिचत्	२१	अक्षत्	६४
असिक्त	२१	अमुतः	६७
अमृक्षत्	२१	अहत्	७२
अरुक्षत्	२२	अहो ईशाः	७७
अपाभार्गः	२५	अमुष्यै	७६
अभूत्	३१	अहोन्पाम्	७९
अधिहरि	३६	अभूवन्	८०
अस्तम्भीत्	४४	अचीकमत	८०
अजीगणत्	४४	अपादि	८१
अमीषु	५३	अन्ययाकारम्	८४
		अर्धपिप्पली	८४

प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः	प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः
अर्धर्चः	८४	[ इ ]	
'अकथितं च' इति सूत्रस्योदाह०	८५	इज्यते	२३
अमीभिः	८६	इन्द्राणी	८५
अनया	८६	[ उ ]	
अस्तावि	९२	उद्विजिता	७
अहोरात्रः	९४	उत्थानम्	१४
अतिकेशी	९५	उपराजम्	४६
अमुकेऽत्र	९९	उ उमेशः	६८
अहिनः	१०२	उदेतोः	७१
अबोभोत्	१०२	उत्त्रिमम्	७४
अलाभि	१०२	उपादिभूत	८२
अवावा	१०३	उपस्कुहते	८२
'अस्मद्' शब्दस्य रूपाणि	१०७	[ ए ]	
अध्यय	११२	एधोदकस्योपस्कुहते	११
अनद्ध	११३	एधाञ्चक्रे	३२
अमुया	११३	एता	४८
अबोभवुः	११४	एधस्व	११४
अध्यात्मम्	११६	[ औ ]	
'अतिचमू' शब्दस्य रूपाणि	१२०	औपगवः	३७
[ आ ]		औत्सः	७४
आनक्	८	औनत्	९१
आतिष्ठ	४२	[ क ]	
आद्रुत्यः	६६	कति	१
आतिस्म	७१	कोष्ट	४
आश्मनम्	११७	कुमारी	१६

प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः	प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः
कुष्ठः	३३	गोमयनिकायः	११५
कटे शेते	३६	[ च ]	
कुतः	३८	चक्रिधायस्व	३३
क्रोष्टुः	४०	चिन्मयम्	३३
कामयाज्यके	४२	चत्वारि	३५
किम्बुक्तम्	५०	चित्रगुः	३९
कवी श्रमू	५१	चिकीर्षति	२३
कुण्डलिः	६७	चतुर्णाम्	७८
किर्लहादयति	६८	'चतुर्' शब्दस्य रूपाणि	१०६
कतरत्	६९	[ ज ]	
कुर्वीत	७३	जग्मतुः	६
कुर्वन्ति	९१	जक्षतुः	६
[ ग ]		जलजाक्षी	१२
गर्गाः	१२	जघास	३३
गोपायाञ्चकार	३३	जुहोति	३३
गणयति	३४	जिह्वाय	५५
गोमयम्	३७	जिघत्सति	७५
गो श्रमम्	३९	जगन्ध	६३
गौश्वरति	५१	जघनिथ	६३
गृह्णाण	६५	जहीहि	८१
गोपी	७४	जघसिथ	९०
गवाम्	७६	जिह्रियात्	९०
गभूतिः	८७	[ त ]	
'गुप्' धातोर्लटि रूपाणि	८६	तिस्रः	४०
गाः	११३	तर्हि	४८

प्रयोगाः	पृष्ठाङ्कः	प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः
तच्छ्लोकेन	५१	[ घ ]	
त्वयि	६०	घनूँषि	६१
उदन्ति	७१	धावतोऽश्वात्पतति	७४
वृणोति	८२	धर्ममुच्चरते	११५
त्वक्क करोषि	१००	[ न ]	
'त्रि' शब्दस्य रूपाणि	१०६	निर्जरसौ	२६
तच्छिवः	१११	नत्स्यति	४४
स्वया	११२	नृपाहि	१००
[ द ]		नैकटिकः	११८
दक्षा	५	'निर्जर'शब्दस्य रूपाणि	११६
द्युत्वा	१०	[ प ]	
देयम्	३५	प्रदाय	१०
दण्डी	३८	परमराजः	११
देवायिह	४०	पञ्चगवम्	२५
दीर्घसक्थः	४७	विपठिषति	३४
दिदीये	५४	पुत्रोयति	३५
इषाथ	६३	प्रकृत्य	३५
ईक	७०	पुस्तकोकिलः	३६
दासिध	७२	पन्थाः	४१
दुधविथ	८२	पञ्चगवम्	४६
दिव्यन्ति	८६	प्राध्वो रथः	४७
द्युतित्वा	९३	प्रष्टौहः	५०
'द्वि'शब्दस्य रूपाणि	१०५	पिपठीषु	५३
दक्षि	११३	पत्यौ	६०
द्वैमातुरः	११७	प्राचः	६१

अयोगाः	पृष्ठाङ्काः	अयोगाः	पृष्ठाङ्काः
पुंभ्याम्	६१	'घूञ'घातोः रूपाणि	१०८
प्रतिष्ठते	६५	[ भ ]	
पूर्वस्मात्	६८	भाविता	१०
प्रध्यम्	६८	भो देवाः !	१५
पिभानम्	७६	भूयास्ताम्	१८
प्रभोणीते	८३	भुरजः	२४
पारलौकिकम्	८४	भवति	३०
प्रथिमा	८४	भिन्नः	३५
प्राणम्	८७	भूयात्	४२
प्रधिय	८८	भानो हति	५१
पचेलिभाः	९२	भ्रुवाम्	५२
पिच्यम्	९४	भावितः	५६
पटपटाकरोति	९५	भूयिष्ठः	८५
पपरतुः	११४	भेजे	८९
[ व ]		भवेयुः	११२
विमितात्	७	[ म ]	
बुभूषति	९	भत्याम्	१६
बहुश्रेयस्याम्	१६	ममङ्क्थ	२०
वभर्षे	२०	मनोरथ	२८
बोभूयते	३४	भत्सी	४९
बाहीकः	३६	मेधावी	६६
बहुश्रेयस्याः	७६	'मीञ'घातोर्लुङि रूपाणि	६७
बोभवाञ्चकार	८३	मिमीते	१०१
बोभूयात्	९२	मानुषी	१०३
बभूव	१०१	मातुः स्मरति	११५

प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः	प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः
मीमांसकः	११७	[ ल ]	
मातृभोगीणः	११८	लूनः	१०
'मधवन्' शब्दस्य रूपाणि	११८	लिङ्सु	६०
[ य ]		लोमिता	७३
युवतिः	१३	'लिङ्' धातोः रूपाणि	१०८
युष्माकम्	१७	'लण्' सूत्रेऽकारस्येत्यादि	११०
यौवतम्	४८	[ व ]	
युष्मभ्यम्	७०	विष्णो इति	१४
युपदार	७४	विश्वपि	१५
'युष्मद्' शब्दस्य रूपाणि	७७	व्यतिगन्ति	२३
याञ्चा	८४	वराकी	२४
[ र ]		वेलाभोक्तुम्	२४
राजीयति	२३	विश्वपः	२६
रम्भपथः	२६	विश्वोहः	३०
रामाय	२८	विबुधः	३०
छणद्धि	३३	वैयाकरणः	३७
राजपुरुषः	३६	वारीणाम्	४१
राज्ञः	४१	विदाङ्करोतु	४३
राजन्यः	४७	वृषली	४९
राष्ट्रीयः	४८	विदाञ्चकार	८१
राजभिः	७०	विप्राय गां ददाति	१०४
राजानति	११५	विष्णो इह	११०
रूपवद्भार्यः	११६	[ श ]	
'रुध्' धातोः रूपाणि	१२१	शिवेहि	२
		श्वः	१३

प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः	प्रयोगाः	पृष्ठाङ्काः
जाशव ओदनः	२६	सर्विषो जानीते	२५
शिष्यः	४५	सर्वेषाम्	४०
शयित्वा	४६	सुपानः	४१
श्रोत्रियः	५७	स गच्छति	५९
शम्भू राजते	६८	सख्यौ	५२
श्रीणाम्	६९	सर्वेषाम्	५२
श्रु'धातोर्लिटि रूपाणि	७७	स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः	६१
'शीङ्'धातोर्लुङि रूपाणि	७८	समीचः	७०
इवफिरक	८४	सखा	७२
शकटी	५५	सरोजम्	७३
शुभंयुः	१०१	सुधुपास्वः	७६
शास्त्रीयः	११७	सर्वस्यै	७८
श्रु'धातोः रूपाणि	१२०	सन्नच्युतः	८७
[ ष ]		स्त्रियम्	८८
परणाम्	१७	स्वति	९०
पट्टेसु	१२	स्तर्यात्	९०
पाणमातुरः	१७	स्तरिषोष्ट	९१
[ स ]		सुशर्मा	९३
सञ्चल्युः	२	सहरि	९४
सख्या	४	'सखि'शब्दस्य रूपाणि	९६
स्तभान	८	संस्कारा	९६
मंतिष्ठते	६	स्त्रियै	१०१
सखी	१२	सुगणवष्ट.	१११
स शम्भुः	१५	सखा	१११
सर्वस्याम्	१६	सखिपथः	११६



प्रयोगः	पृष्ठाङ्काः	प्रयोगः	पृष्ठाङ्काः
[ ह ]		हरी रम्यः	११०
हरये नमः	११	'हन्' भातोः रूपानि	१२१
हर्षास्ताम्र	१८	[ न ]	
हात्वा	२५	क्षत्रिया	२६
हर इह	२७	क्षामः	२८
हरि भजति	३६	क्षत्रियाणी	५८
हरेः	४०	[ त्र ]	
हारणा	४६	त्रिमूर्धः	४७
हित्वा	५१	[ ङ ]	
हे मधु !	८८	ज्ञानानि	६०
हितम्	९३		



ॐ श्रीसरस्वत्यै नमः ॐ

श्रीपण्डितशिवदेवमिश्रशास्त्रिविरचिता

सोतरा

प्रथमा प्रश्नावली ।

अधीशं सर्वविद्यानां श्रीशिवं कल्याणलयम् ।  
वन्देऽहं पितरौ चाऽचर्यो निर्विघ्नं कार्यसिद्धये ॥

सन् १९३०

लघुकौमुद्यां प्रश्नाः

- १ शिव + ऐहि, सन् + शग्नुः, चक्रिन् + त्रायम्ब, चिद् + मयम्,  
आसु स्थितिषु संहिताया कानि रूपाणि सिध्यन्ति कथं च  
तानीति साधु दर्शयत । १६
- २ कति, सख्या, क्रोष्टा, दन्ता, अष्टौ, अहानि, चत्वारि, एतान्  
साधयत । २२
- ३ अमूत्, जग्मत्, जप्तुः, विभितात्, उद्विजिता, आनक्,  
स्वभान्, एतान् सूत्रोपन्यासपुरस्सरं साधयत । २२
- ४-अच्युत्, बुभूषति, सन्तिष्ठते, भाविता, लून, द्यूत्वा, प्रदाय,  
एषु विशिष्टकार्याणि वचनान्युपन्यस्य दर्शनीयानि । १६
- ५-हरये नमः, एधोदकस्योपस्कुरुते, परमराज, चित्रगुः, जलजाक्षा,  
गर्गाः, स्रग्वी, कुमारी, युवतिः, श्वः, एतेषां साधनप्रकार-  
स्पष्टमुपपादनीयः । २५

## उत्तराणि

प्र० [ १ ] 'शिवेहि ।

'शिवXआXइहि' इत्यत्र "आइगुणः" इति सूत्रेण गुणे प्राप्ते "अकः सवर्णे दीर्घः" इत्यनेन दीर्घे च प्राप्ते 'द्वयोर्मध्ये कतरेण भाव्यम्' इत्योशङ्कायां धातूपसर्गयो कार्यस्यान्तरङ्गत्वेन "असिद्धं वहिरङ्गमन्तरङ्गे" इति परिभाषया दीर्घस्यासिद्धत्वेन पूर्वं गुणे एकारे कृते 'शिव+एहि' इति स्थिते, ततः "अन्तादिवच्च" इति सूत्रसहकारेण "ओमाडोश्च" इत्यनेन वकारोत्तरवर्तिन अकारादेकाररूपे आडि परे पूर्वपरयोः स्थाने पररूपे कृते 'शिवेहि' इति रूपं साधु ।

सञ्छम्भुः ।

'सन्+शम्भुः' इति दशाया "शि तुक्" इति सूत्रेण पदान्तस्य नकारस्य शकारे परे तुगागमेऽनुबन्धलोपे 'सन्+त्+शम्भुः' इति स्थिते "शश्छाऽटि" इति सूत्रेण शम्भुघटकराकारस्य छकारे कृते 'सन्+त्+छम्भुः' इति स्थिते "स्तोः श्चुना श्चुः" इति सूत्रेण तकारस्य चुत्वेन चकारे ततश्चकारयोगाद् नकारस्य चुत्वेन अकारे च कृते सति 'सञ्छम्भुः' इति रूपं सिद्धम् । यत्र "भरो भरि सवर्णे" इति सूत्रेण वैकल्पिके चलोपे तत्र 'सञ्छम्भुः' इति प्रथमं रूपम् । चलोपामावपक्षे 'सञ्छम्भुः' इति द्वितीय रूपम् । छत्वाभावपक्षे चुत्वे कृते 'सञ्च शम्भुः' इति तृतीयम् । तुकोऽभावपक्षे-नकारस्य चुत्वेन अकारे 'सञ् शम्भुः' इति चतुर्थम् ।

## आवश्यक सूचना

सन् १९४० और ४१ के नयी नियमावली के अनुसार पुराने प्रश्न पत्रों में भी आप हुए प्रयोगों के अर्थ टिप्पणी में लिख दिये गए हैं । इस लिए पाठकाण को किसी प्रकार का सन्देह नहीं होना चाहिए ।

१ हे शिव ! आइये । २ शम्भु भगवान सत् हैं ।

एवं क्रमेण चत्वारि रूपाणि भवन्तीति बोध्यानि ।

५ 'चकिंत्वायस्व ।

'चकिन् + त्रायस्व' इत्यत्र "नश्छव्यप्रशान्" इति सूत्रेण नकारस्य सत्वेऽनुबन्धलोपे "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" इत्यनेन वैकल्पिकेऽनुनासिकत्वे "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" इति सूत्रेण रेफस्य विसर्गे 'चकि + त्रायस्व' इति स्थिते, ततो "विसर्जनीयस्य सः" इत्यनेन विसर्गस्य स्थाने सकारे 'चकिंत्वायस्व' इति । अनुनासिकाभावपक्षे "अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः" इत्यनेनाऽनुस्वारे कृते 'चकिंत्वायस्व' इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

✓ चिन्मयम् ।

† 'चिद् + मयम्' इत्यवस्थायां "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" इति सूत्रेण मकारेऽनुनासिके परे दकारस्य स्थाने दन्तस्थानजन्यत्वसादर्याद् वैकल्पिकेऽनुनासिके नकारे प्राप्ते तन्मवाच्य "प्रत्यये भाषायां नित्यम्" इति वार्तिकेन मयटि परे दकारस्य नित्यमनुनासिके नकारे 'चिन्मयम्' इति रूपं सिद्धम् ।

प्र० [ २ ] कति ।

३ 'कति' शब्दात्, "कृतद्धितसमासाश्च" इति सूत्रेण प्रातिपदिक-संज्ञाया, जसि विभक्तावनुबन्धलोपे, "बहुगणवतुडति संख्या" इति

\* तथा चात्र रूपसंग्रहश्लोकः

'जठौ जवठा जवशा जशविति चतुष्टयम् ।

रूपाणामिह तुक्-छत्र-चलोपानां विकल्पनात् ॥ इति ॥

† —चिदेवेति त्रिग्रहे "नित्यं वृद्धरादिभ्यः" इत्यस्मिन्सूत्रे 'नित्यम्' इति योगविभागात्स्वार्थे 'मयट्' प्रत्ययो बोध्यः ।

१ हे चक्रवारी भगवन् ! आप रक्षा करो । २ ज्ञानस्वरूप या चेन स्वरूप । ३ कितने ।

सूत्रेण सख्यासंज्ञायां “उति च” इत्यनेन षट्संज्ञायां, ततः “प्रत्ययस्य लुक्-श्लु-लुपः” इत्यनेन लुक्संज्ञायां “षड्भ्यो लुक्” इत्यनेन जसो लुकि “प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्” इत्यनेन प्रत्ययलक्षणात्वात् “जसि च” इति सूत्रेण गुणे प्राप्ते तं प्रवाच्य “न लुमताऽङ्गस्य” इत्यनेन प्रत्ययलक्षणनिषेधाद्गुणामावे सति “कति” इति रूपं सिद्धम् ।

१० संख्या ।

‘सखि’ शब्दात्प्रातिपदिकसंज्ञायां तृतीयैकवचने ‘टा’ विभक्तौ समागतायां “लुङ्” इति सूत्रेण टकारस्येत्संज्ञायां कृताया “तस्य लोपः” इति सूत्रेण लोपे च कृते “इको यणचि” इत्यनेन यणि ‘सख्या’ इति रूपं सिद्धम् ।

११ क्रीडा ।

प्रातिपदिकसंज्ञकत्वात् ‘क्रोष्टु’ शब्दात्सौ विभक्तौ वचनान्वलोपे “तृप्त्वत्क्रोष्टुः” इति सूत्रेण तृप्त्वत्त्वादेन ‘क्रोष्टु’ शब्दस्य क्रोष्टृभावे जाते “ऋतो ङिःसर्वनामस्थानयोः” इति सूत्रेण प्राप्तं गुणं बाधित्वा “ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च” इति सूत्रेणानङि कृतेऽनुबन्धलोपे च सति ‘क्रोष्टृन् + सु’ इति जाते “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इति सूत्रेण सोःकारस्येत्संज्ञायां कृतायां लोपे च सति, ततो “हल्ङ्भ्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्वपृक्तं हल्” इत्यनेन सकारस्य लोपे “अन्तु\*न्-तृच्-स्व-न्-तृ-न्-तृ-त्वाद्-तृ-त्-होतृ-पोतृ-प्रशास्तृणाम्” इति सूत्रेण दीर्घे, ततो “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इत्यनेन नकारस्य लोपे च कृते ‘क्रीडा’ इति रूपं सिद्धम् ।

\* अत्र तृन्तृजन्तत्वादेव दीर्घे सिद्धे नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । नियमाकारश्च ‘उणादिनिष्पन्नानां तृन्तृच्प्रत्ययान्तानां सज्ञाशब्दानामुपधादीर्घश्चेत्तहि नप्त्रादीनामेव’ इति, तेन पितृभ्रातृभृतीनां दीर्घो न भवतीति शम् ।

१ मित्र । २ गौदङ्ग [ सियार ] ।

दध्ना ।

प्रातिपदिकसंज्ञकात् — १ 'दधि' शब्दात्पृतीयैकवचने 'टा' विभक्तौ वनुबन्धलोपे 'दधि + आ' इति स्थिते "अस्थि-दधि राक्थ्यदणामनङ्गुदात्तः" इति सूत्रेणानङादेशोऽनुबन्धलोपे 'दधन् + आ' इति जाते "अल्लोपोऽनः" इत्यनेनानोऽकारस्य लोपे 'दध्ना' इति रूपस्य सिद्धिः ।

अष्टौ ।

प्रातिपदिकत्वात् २ 'अष्ट' शब्दाज्जसि विभक्तौ 'अष्टभ्य' इति वक्तव्ये 'अष्टाभ्य' इति कृतात्वनिर्देशात् हलादिपरत्वाभावेऽपि जश्शसोर्विषये आत्वस्य कल्पनात् "अष्टन आ विभक्तौ" इति सूत्रेण नकारस्याऽऽत्वे 'अष्ट | आ + जस्' इति स्थिते "अकः सवर्णे दीर्घः" इत्यनेन-सवर्णादीर्घे "अष्टाभ्य औश" इत्यनेन जस औशादेशोऽनुबन्धलोपे "वृद्धिरेचि" इत्यनेन वृद्धौ 'अष्टौ' इति रूप सिद्धम् ।

अहानि ।

प्रातिपदिकसंज्ञकात् ३ 'अहन' शब्दाज्जसि विभक्तौ "जश्शसोः शिः" इति सूत्रेण जस श्वादेशे "शि सर्वनामस्थानम्" इत्यनेन सर्वनाम-स्थानसंज्ञायां शकारस्येत्संज्ञाया "तस्य लोपः" इत्यनेन लोपे च सति "सर्वनामस्थाने चाऽस+वृद्धौ" इति सूत्रेण दीर्घे 'अहानि' इति रूपं सिद्धम् ।

चत्वारि ।

प्रातिपदिकसंज्ञक ४ 'चतुर' शब्दात् नपुंसके जसि, शशि वा विभक्तौ "जश्शसोः शिः" इत्यनेन जस श्वादेशे "शि सर्वनामस्थानम्" इत्यनेन सर्वनामस्थानसंज्ञाया "चतुरनङ्गुदोराभुदात्तः" इत्यनेनाऽऽभ्यनु-बन्धलोपे "इका यणचि" इति सूत्रेण यणि, कञन्तत्वभावाभुभोऽभावे 'चत्वारि' इति रूपं साधु ।

१ दही । २ आठ । ३ दिन । ४ चार ।

प्र० [ ३ ] अभूत् ।

‘सत्तार्थकात् ‘भू’ धातो. “लुङ्” इति सूत्रेण लुङि, अनुबन्धलोपे तस्य स्थाने “तिप्-तस्-भि-सिप्-थस्-थ-मिब्व-वस्-मस्-तातां-भ-थासाथां-ध्वमिङ्-वहि-महिङ्” इत्यनेन तिपि, अनुबन्धलोपे “लुङ्-लङ्-लृङ्-वडुदात्तः” इति सूत्रेणाडागमेऽनुबन्धलोपे “इतश्च” इत्यनेन इकारस्य लोपे “कर्त्तरि शप्” इति सूत्रेण शप वाधित्वा “चिल लुङि” इत्यनेन “चिल”प्रत्यये “च्लेः सिच्” इत्यनेन सिचि ‘अभू+सिच्।त्’ इति जाते “गाति-स्था-घु-पा भूभ्यः सिचः पर-स्मैपदेषु” इत्यनेन सिचो लुकि “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सूत्रेण तिप्ः सार्वधातुकत्वात् “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इत्यनेन गुणे प्राप्ते “भूसुबोस्तिङि” इत्यनेन निषेधे ‘अभूत्’ इति रूप निष्पन्नम् ।

जग्मतुः ।

‘गम्ल’ ‘गतौ’ इत्यस्माद्धातोः “परोक्षे लिट्” इति सूत्रेण लिटि अनुबन्धलोपे, तस्य स्थाने “तिस्रिभ्” इत्यादिना प्रथमपुरुषद्विवचने ‘तस्-’प्रत्यये “परस्मैपदानां एतत्तुसुस्थलथुसखल्वमाः” इति सूत्रेण तसोऽतुसादेशे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इत्यनेन द्वित्वे ‘गम्+गम्+अतुस्’ इति स्थितौ ‘पूर्वोऽभ्यासः’ इत्यनेन प्रथम‘गम्’ इत्यस्याभ्यास-संज्ञाया “हलादिः शेषः” इत्यनेन मकारस्य लोपे ‘गम्+गम्+अतुस्’ इत्य-वस्थायां “कुहोऽश्चुः” इत्यनेन मकारस्य जकारे “गम-हन-जन खन-घर्सा लोपः विङ्गयनाङ्” इत्यनेनोपधालोपे, सकारस्य सत्वे विसर्गे च सति ‘जग्मतुः’ इति रूप सिद्धम् ।

जघातुः ।

‘अद्’ ‘भक्षणे’ इत्यस्माद्धातोः “परोक्षे लिट्” इत्यनेन लिटि “तिप्-तस्-भि-सिप्-थस्-थ-मिब्व-वस्-मस्-तातां-भ-थासाथां-

“ध्वमिह्-वहि-महिह्” इत्यनेन तसि “परस्मैपदानां एलतुसुस्थ-  
लथुसण्वमाः” इत्यनेन तसोऽनुसादेशे “लिट्यन्यतरस्याम्” इत्यनेन  
धस्लादेशे “लिटि घातोरनभ्यासस्य” इत्यनेन द्वित्वे “पूर्वोऽ-  
भ्यासः” इत्यनेनाभ्याससंज्ञायां “ह्लादिः शेषः” इत्यनेन सकारस्य  
लोपे च कृते ‘घ । घस् + अतुस्’ इति भूते “कुहोश्चुः” इत्यनेन घका-  
रस्य भकारे कृते “अभ्यासे चर्च” इत्यनेन भकारस्य जकारे “गम-हन-  
जन-खन-घसां लोपः किङ्त्यनङि” इत्यनेनोपवालोपे ‘ज + घ् + स्  
+ अतुस्’ इति भूते “स्वरि च” इत्यनेन चर्त्वेन घकारस्य ककारे “शासि-  
वसिघसीनां च” इत्यनेन सकारस्य षकारे, रुत्वविसर्गयोश्च सतोः  
‘जक्षुः’ इति रूपं सिद्धम् ।

विभितात् ।

‘विभी--भये’ इत्यस्माद्धातोः “लोट् च” इत्यनेन लोटि, तस्य  
स्थाने त्रिपि “कर्त्तरि शण्” इत्यनेन शपि “कुहोत्यादिभ्यः श्लुः”  
इत्यनेन शपः श्लौ “श्लौ” इत्यनेन द्वित्वे “ह्रस्वः” इत्यनेन ह्रस्वे  
“अभ्यासे चर्च” इति सूत्रेण भकारस्य बकारे “परः” इत्यनेन त्रिप-  
इकारस्योत्वे “तुह्योस्तातडाशिष्यन्यतरस्याम्” इत्यनेन तातडादेशे  
“भियोऽन्यतरस्याम्” इत्यनेन वैकल्पिके ईकारस्य ह्रस्वे ‘विभितात्’  
इति । ह्रस्वाभावपक्षे ‘विभीतात्’ इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

उद्विजिता ।

उत्पूर्वात् २ ‘विज’धातोः “अनघतने लुट्” इत्यनेन लुटि, अनुव-  
न्धलोपे, तस्य स्थाने ‘त’प्रत्यये “स्यतासौ लुलुटोः” इत्यनेन तासि-  
प्रत्यये, इडागमेऽनुवन्धलोपे “लुटः प्रथमस्य डारौरसाः” इत्यनेन  
डादेशे, टिलोपे “विज ईट्” इत्यनेन डित्वाद्युणाभावे ‘उद्विजिता’  
इति रूपं सिद्धम् ।



आनक् । ५

१ 'अञ्जू'धातोः "अनद्यतने लङ्" इत्यनेन लङि, लङ्स्तिपि, अनुबन्धलोपे "इतश्च" इत्यनेन तिप इकारलोपे "रुधादिभ्यः शम्" इत्यनेन शभि, शभयोर्लोपे "आभ्रलोपः" इत्यनेन नकारस्य लोपे "आडजादीनाम्" इत्यनेनाडागमेऽनुबन्धलोपे, वृद्धौ "हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्" इत्यनेन तकारस्य लोपे "चोः कुः" इत्यनेन कुत्वेन जकारस्य गकारे "वाऽवसाने" इत्यनेन त्रत्वेन गकारस्य ककारे 'आनक्' इति रूप साधु ।

स्तमान ।

२ 'स्तम्'धातोर्लोटि, लोट सिपि, सिप स्थाने 'सेर्ह्यपिच्च' इति सूत्रेण हौ "स्तम्भु-न्तुम्भु-स्कम्भु स्कुम्भु रकुम्भ्यः श्नुश्च" इति सूत्रेण 'श्ना'प्रत्यये 'स्तम्भु-न्ना-हि' इति भूते, ततः "हलः श्नः शानञ्भौ" इति सूत्रेण श्नः शानजादेशेऽनुबन्धलोपे, शित्वात्सार्वधातुकत्वे-ऽपिच्चेन ङित्त्वे ङित्वात् "अनिदितां हल उपधायाः ङित्ति" इत्यनेन नकारस्य लोपे "अतो हेः" इत्यनेन, हेर्ङ्कि 'स्तमान' इति रूपं सिद्धम् ।

प्र० [ ४ ] अचूचुरत् ।

'चुर' स्तोत्रे, इत्यस्माद्धातोः "सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक रोना-लोम-त्वच-वर्म-वर्णं पूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्" इत्यनेन णिच्यनुबन्धलोपे 'चुर+इ' इति भूते "पुगन्तलधूपधस्य च" इत्यनेन लधूपधगुणे संयोगे च 'चोरि' इति जाते तस्य "सनाद्यन्ता धातवः" इति सूत्रेण धातुत्वाल्लङ्स्तिपि, तिप इकारलोपे, च्लौ "णिश्चिद्रूपभ्यः कर्त्तरि चङ्" इत्यनेन च्लेश्चङि, चङ्योर्लोपे 'चोरि+अ+त्' इति स्थिते

१ प्रकट करना, मलना, सुन्दर होना, जाना । २ रोकना ।

३ चुराना ।

“शोरनिटि” इत्यनेन शोरोपे ‘चोर+अ+त्’ इति भूते “शौ चङ्+युपधाया ह्रस्वः” इत्यनेनोपधाह्रस्वे “चङि” इत्यनेन द्वित्वे “हलादिः शेषः” इत्यनेनाभ्यासरकारस्य लोपे “लुङ्-लङ्-लुङ्+वडुदात्तः” इत्येनाट्यनुबन्धलोपे “सन्वल्लघुनि चङ्+परेऽनङ्+लोपे” इत्यनेन सन्वद्धावे “दीर्घो, लघोः” इत्यनेनाभ्यासस्य दीर्घे “अचूचुरत्” इति रूपं सिद्धम् ।

‘बुभूषति’

‘भू’धातोः “धातोः कर्मणाः समानकर्तृकादिच्छायां वा” इत्यनेन ‘सन्’प्रत्यये “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इत्यनेन इटि प्राप्ते तम्प्रवाध्य “सनि अहगुहोश्च” इत्यनेन इटो निषेवे “सावेधातुकार्धधातुकयोः” इत्यनेन गुरो प्राप्ते “इको भल्ल” इत्यनेन कित्वाद्गुणाभावे “सन्त्यङोः” इत्यनेन द्वित्वे ‘पूर्वोऽभ्यासः’ इत्यनेनाभ्याससंज्ञाया “ह्रस्वः” इत्यनेनाभ्यासस्य ह्रस्वे “अभ्यासे चर्च” इत्यनेन [ भला जशः खयां चरः ] पूर्वमकारस्य वकारे “आदेशप्रत्यययोः” इत्यनेन सकारस्य पकारे ‘बुभूष’ इति स्थिते “सनीधन्ता धातवः” इत्यनेन धातुसंज्ञाया धातुत्वात् “वर्तमाने लट्” इत्यनेन लटि, तस्य स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे च कृते ‘बुभूष+ति’ इति जाते “कर्तरि शप्” इत्यनेन शपि, अनुबन्धलोपे ‘बुभूष+अ+ति’ इति स्थितौ “अतो गुरो” इत्यनेन पररूपे च सति ‘बुभूषति’ इति रूपं सिद्धम् ।

‘सनिष्ठते’ । २

सम्पूर्वात् ‘स्या’धातोर्लटि “समवप्रविभ्यः स्थः” इत्यनेनाऽऽत्मनेपदे, लट् स्थाने ‘त’प्रत्यये, शपि, ‘स्या’धातो “प्राधाधमास्था-मना-दाण् दृश्यति-सर्ति-शद-रादां पिबन्जघ्न-धम-तिष्ठ-मनन्यच्छ पश्य-र्च्यधौ-शीय-रीदाः” इति सूत्रेण तिष्ठादेशे, पररूपे, अनुत्सारे, परसंवर्ये च कृते ‘सनिष्ठते’ इति रूपं साधु ।

१ शोना चाहता है । २ उद्धरता हैं ।

१ भाविता ।

सत्तार्थकात् 'भू'धातोर्भावे "भावकर्मणोः" इत्यनेनाऽऽत्तनेपदत्वा-  
ल्लुटस्तप्रत्यये "स्यतासी लृलुटो." इत्यनेन तासि "लुटः प्रथमस्य  
डारौरसः" इत्यनेन डादेशे ङित्वाट्टेलोपे "स्य-सिच्-सियुट्-तासिपु  
भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन-ग्रह-दृशां वा चिण्वदिट्" इत्यनेन  
वैकल्पिके चिण्वद्भावे, इडागमे च चिण्वद्भावाद्धृद्धौ, आवादेशे 'भाविता'  
इति । चिण्वदभावे-इति, गुरो 'भाविता' इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

२ लूनः ।

'लृच् छेदने' इत्यरगाद्धातो. "निष्ठा" इति सूत्रेण 'क्त'प्रत्ययेऽनुबन्ध  
लोपे "एवादिभ्यः" इत्यनेन तकारस्य नकारे, "कृत्तद्धितसमासाश्च"  
इति सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञाया सौ, सत्वे विसर्गे च कृते 'लूनः' इति रूपं  
सिद्धम् ।

३ द्यूत्वा ।

क्रीडाद्यर्थकात् 'दिव'धातो "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले"  
इत्यनेन 'वत्वा'प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "उादतो वा" इत्यनेन वैकल्पिके  
इडागमेऽनुबन्धलोपे "पुगन्तलधूपधस्य च" इत्यनेन गुरो च कृते  
'देवित्वा' इति । इडभावपक्षे "छ्रूवोः शडनुनासिके च" इति सूत्रेण  
ऊठि, ठकारस्य लोपे 'दि + ऊ + त्वा' इति भूते "इको यणचि" इत्यनेन  
यणि 'द्यूत्वा' इति रूपस्य सिद्धिः ।

४ प्रदाय ।

'प्र' पूर्वक 'दा दाने' इत्यरगाद्धातो. "कुगतिप्रादयः" इत्यनेन  
समासे "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" इत्यनेन 'वत्वा' प्रत्यये "समा-

सेऽनपूर्वे क्तवो ल्यप्” इत्यनेन ल्यपि, लकारयकारयोलोपे च कृते ‘प्रदाय’ इति रूपं साधु ।

प्र० [ ५ ] <sup>१</sup>हरये नमः ।

‘हरये नमः’ इत्यत्र ‘नमः स्वस्ति-स्वाहा-स्वधालं-वषट् योगाच्च” इति सूत्रेण ‘नमः’ इत्यस्य योगे चतुर्थी ‘हरये नमः’ इत्यस्य सिद्धिः ।

<sup>२</sup>एधोदकस्योपस्कृते ।

‘एधोदकस्योपस्कृते’ इत्यत्र “गन्धनावक्षेपण-सेवन-साहसिक्य-प्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु” इति सूत्रेणाऽऽत्मनेपदम्, ‘एधोदकस्योपस्कृते’ इति रूपस्य सिद्धिः ।

<sup>३</sup>परमराजः ।

परमश्चासौ राजा च, इति लौकिकविग्रहे ‘परम + सु’ ‘राजन् + सु’ इत्यलौकिकविग्रहे च “सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः” इति सूत्रेण समासे “राजाहःसखिभ्यष्टच्” इत्यनेन टचि, अनुबन्धलोपे समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इत्यनेन सुपो लुकि “नस्तद्धिते” इति सूत्रेण टिलोपे, पुनः प्रातिपदिकत्वे, सौ रत्वे विसर्गे च कृते ‘परमराजः’ इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>४</sup>चित्रगुः ।

चित्रा-गावो यस्येति लौकिकविग्रहे, ‘चित्रा + जस् + गो + जस्’ इत्यलौकिकविग्रहे च “अनेकमन्यपदार्थे” इत्यनेन बहुव्रीहौ समासे, सुपो लुकि ‘चित्रा + गो’ इति स्थिते “स्त्रियाः पुंवश्चापितपुंस्काद-नूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु” इति सूत्रेण ‘चित्रा’

१ श्रीहरि भगवान् के प्रति नमस्कार है । २ लकड़ी जल के गुणों को ग्रहण करती है । ३ श्रेष्ठ राजा । ४ चित्रं विचित्र [ चितकबरी ] गौर्धोवाला ।

शब्दस्य पुंवद्भावे, तेन टापो निवृत्तौ 'चित्र + गो' इति भूते "एकविभक्ति-  
चापूर्वनिपाते" इति सूत्रेण 'गो' शब्दस्योपसर्जनत्वाद् "गोस्त्रियोरुप-  
सर्जनस्य" इत्यनेन 'गो' इत्यस्य-ओकारस्य ह्रस्वे प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ,  
रुत्वे विसर्गे च कृते 'चित्रगुः' इति रूपं साधु ।

१ जलजाक्षी ।

जलजे इव अक्षिणी यस्या इति विग्रहे "अनेकमन्यपदार्थे" इत्यनेन  
बहुव्रीहौ "सुपो धातुप्रातिपदिकयाः" इत्यनेन सुपो लुकि "बहुव्रीहौ  
सप्तम्यदलोः स्वाङ्गात्पच्" इति सूत्रेण षचि, अनुबन्वतोपे "यचि  
भम्" इति सूत्रेण भत्वे, टिलोपे 'जलजाक्ष' इति स्थिते "षिदुगौरादि-  
भ्यश्च" इत्यनेन ङीष्, ङकारपकारयोलोपे, पुनः भसंज्ञायाम्, अकारस्य  
लोपे, ततः प्रातिपदिकसंज्ञाया स्वादिकार्ये च कृते 'जलजाक्षी' इति रूपं  
सिद्धम् ।

२ गर्गाः ।

गर्गस्य गोत्रापत्यानि, इति विग्रहे 'गर्ग' शब्दात् "गर्गादिभ्यो यञ्"  
इत्यनेन 'यञ्' प्रत्यये "कृत्तद्धितसमासाश्च" इत्यनेन प्रातिपदिकसंज्ञायां,  
सुपो लुकि "यचि भम्" इत्यनेन भसंज्ञायां "यस्येति च" इत्यनेना-  
कारस्य लोपे "तद्धितेष्वचामादे" इत्यनेनाऽऽदिवृद्धौ "यजिओश्च"  
इत्यनेन यकारस्य लोपे "निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः" इति  
यकारनिमित्तवृद्ध्यभावे, पुनः प्रातिपदिकत्वेन स्वाद्युत्पत्तौ विभक्तिकार्ये च  
कृते 'गर्गाः' इति रूपं सिद्धम् ।

३ सावी ।

सगस्यास्तीति विग्रहे 'सज' शब्दात् "अस्मायामेधास्त्रजो विनिः"

१ कमल के सदृश, नेत्रवाली [ कमलनयनी ] । २ गर्गगोत्रवाले ।  
३ मालाधारी ।

इत्यनेन 'विनि' प्रत्यये, इकारस्य लोपे, प्रातिपदिकत्वेन सौ विभक्तौ "सौ च"  
इत्यनेन, दीर्घे, सोर्लोपे "नलोपः प्रातिपदिकत्वात्" इत्यनेन नकारस्य  
लोपे च कृते 'स्वर्वा' इति रूपं सिद्धम् ।

कुमारी । ३२

कुमारत्वव्योविशिष्टा स्त्री, इति विग्रहे 'कुमार'शब्दात् "वयसि  
प्रथमे" इति सूत्रेण ङीप्, अनुबन्धलोपे "यस्येति च" इति सूत्रेणा-  
कारस्य लोप, प्रातिपदिकत्वात्सौ "ह्रस्वाभ्यो दीर्घात्सुतिस्त्वपृक्तं  
हेल्" इत्यनेन सोर्लोपे 'कुमारी' इति रूपं सिद्धम् ।

युवतिः । ३३

प्रातिपदिकसंज्ञक 'युवन्'शब्दात् "यूनरितः" इत्यनेन 'ति'-  
प्रत्यये "स्वादिभ्वसर्वनामस्थाने" इत्यनेन पदत्वात् "नलोपः  
प्रातिपदिकत्वात्" इत्यनेन नकारस्य लोपे, प्रातिपदिकत्वेन सौ-  
स्त्वे विसर्गे च कृते 'युवतिः' इति रूपं सिद्धम् ।

श्वः ।

प्रातिपदिकसंज्ञक 'श्वस्'शब्दात्सौ विभक्तौ समागताया "अव्य  
यादात्सुपः" इति सूत्रेण सोर्लोकि, स्त्वे विसर्गे च कृते 'श्वः' इति  
रूपं साधु ।

१६३१

सन १६३१

भरनाः-

१ विष्णो + इति, उद् + स्थानिम्, भोस् + देवा, सस् ।  
शङ्खः, अत्र स्थितौ सिद्धरूपाणि स्फुट संसाध्य  
दर्शनीयानि ।

१ कुमारी-कन्या । २ युवती स्त्री । ३ आगामि दिन ।

- २ विश्वपि, बहुश्रेयस्याम्, सर्वस्याम्, मत्याम्, षण्णाम्, अष्टानाम्, शुष्माकम्, अमीषाम्, विशेषकार्यप्रदर्शन-  
पुरस्सरमेतान् साधयत । २०
- ३ भूयास्ताम्, ह्वयास्ताम्, अभजाताम्, अवजाताम्, अधुजाताम्, वैशद्येन साधनीयाः । २०
- ४ बुध्-युध्-भस्ज्-मस्ज्-धातूनां लिटि, थलि, मुच्-सिच् मृश्-  
कृप्-धातूनां लुङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपभेदान् वचनो-  
पन्यासपुरस्सर साधयत । २०
- ५ चिकीर्षति, राजीयति, व्यतिष्ठन्ति, इज्यते, भुङ्गन्, वराकी, वेला भोक्तुम्, अपामार्गः, हात्वा, सर्पिषो जानीते, पञ्चगङ्गम्, रम्यपथः, शाराव ओदनः, जत्रिया, एते कथं सिद्ध्यन्ति । ३०

### उत्तराणि

प्र० [ १ ] १ विष्णो इति ।

‘विष्णो + इति’ इत्यवस्थाया “एचोऽयवायावः” इति सूत्रेणावादेशे प्राप्ते, तम्प्रवाच्य “स+बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्थे” इत्यनेन वैकल्पिके प्रगृह्यसंज्ञाया कृतायां “लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्” इत्यनेन प्रकृतिभावे ‘विष्णो इति’ इति सिद्ध्यति । प्रगृह्यसंज्ञाया अभावपक्षे “एचोऽयवायावः” इति सूत्रेणावादेशे “लोपः शाकल्यस्य” इति सूत्रेण वैकल्पिके वकारस्य लोपे “पूर्वत्रासिद्धम्” इति सूत्रेण “लोपः शाकल्यस्य” इति सूत्रस्यासिद्धत्वात् “आद्गुणः” इति सूत्रेण गुणाभावे ‘विष्णो इति’ इति । वकारस्य लोपाभावपक्षे ‘विष्णविति’ इति रूपत्रयं सिद्धम् ।

२ उत्थानम् ।

‘उद् + स्थानम्’ इत्यवस्थायां “उदः स्थास्त+भोः पूर्वस्य”-

१ हे विष्णु ! यह । २ उठना, या उन्नति ।

इत्यनेन पूर्वसवर्णे, क स्यादित्याशङ्काया “तस्मादित्युत्तरस्य” इत्यनेन ‘स्था’ इत्याकारस्य प्राप्ते, तं प्रवाच्य “आदेः परस्य” इत्यनेन सकारस्य पूर्वसवर्णो यत्वे ‘उद् + थ् + थानम्’ इति जाते “भरो भरि सवर्णे” इत्यनेन वैकल्पिके थकारस्य लोपे “खरि च” इत्यनेन दकारस्य चत्वेन, तकारे ‘उत्थानम्’ इति रूपं सिद्धम् । यलोपाभावपक्षे ‘उत्थथानम्’ इति च सिद्धम् । नन्वत्र “खरि च” इति सूत्रेण थकारस्य, चत्वे तु न शङ्क्यम्, चत्वं प्रति यकारस्यासिद्धत्वादिति दिक् ।

### २ भो देवाः ।

‘भोस् + देवा’ इत्यत्र ‘भोस्’ इति सकारान्तो निपातस्तत्सकारस्य “ससञ्जुषो रुः” इत्यनेन एत्वे “भो-भगो-अथो अपूर्वस्य योऽशि” इत्यनेन रोर्थत्वे ‘भोय् + देवाः’ इति भूते “हलि सर्वोषाम्” इत्यनेन यकारस्य लोपे च कृते ‘भो देवाः’ इति रूपं साधु ।

### ३ स शम्भुः ।

‘सस् + शम्भु’ इत्यवस्थाया “ससञ्जुषो रुः” इति सूत्रेण एत्व बाधित्वा “एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि” इति सूत्रेण सकारस्य लोपे ‘स शम्भुः’ इति रूपस्य सिद्धिः ।

### प्र० [३] विश्वपि ।

‘विश्वपा’ शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायां, प्रातिपदिकत्वात्सप्तम्येकवचने ‘हि’ विभक्तावबुधन्धलोपे ‘यचि भम्’ इत्यनेन भसजाया “आतो धातोः” इति सूत्रेणाऽऽकारस्य लोपे ‘विश्वपि’ इति रूपं सिद्धम् ।

१ हे देवताओ ! । २ वह शम्भु हैं । ३ विश्व के रक्षा करने वाले विष्णु भगवान् ।



बहुश्रेयस्याम् । ८

प्रातिपदिकसंज्ञक १ 'बहुश्रेयसी' शब्दात्सप्तम्येकवचने 'डि' विभक्तौ, अनुबन्धलोपे "यू स्याख्यौ नदी" इति सूत्रस्य "अयमलिङ्गग्रहणञ्च" इति वार्तिकेन नदीसंज्ञायां "डेरान्नद्यास्त्रीभ्यः" इति सूत्रेण डेरामि कृते "ह्रस्वनद्यापोनुट्" इति सूत्रेण प्राप्तं नुट् बाधित्वा परत्वात् "आएनद्याः" इत्यनेनाऽऽडागमेऽनुबन्धलोपे "आटश्च" इत्यनेन वृद्धौ "इको यणचि" इति सूत्रेण यणि "बहुश्रेयस्याम्" इति रूपं सिद्धम् ।

सर्वस्याम् । ९

प्रातिपदिकत्वात् २ 'सर्वा' शब्दात् ङौ विभक्तौ समागतायां सत्यां "डेरान्नद्यास्त्रीभ्यः" इति सूत्रेण डेरामि "सर्वनाम्नः स्याड्डुस्वश्च" इत्यनेन स्याडागमेऽनुबन्धलोपे आवन्तस्य च ह्रस्वत्वे कृते 'सर्व + स्या + आम्' इति स्थिते "अकः सवर्णो दीर्घः" इति सूत्रेण दीर्घे च कृते 'सर्व-स्याम्' इति रूपं सिद्धम् ।

मत्याम् । १०

प्रातिपदिकत्वात् ३ 'मति' शब्दात् ङौ विभक्तौ "डिति ह्रस्वश्च" इत्यनेन वैकल्पिके नदीसंज्ञायां "डेरान्नद्यास्त्रीभ्यः" इति सूत्रेण डेरामि-प्राप्ते तं प्रवाच्य "औत्" इति सूत्रेण ङे रौत्वे प्राप्ते तमपि प्रवाच्य "इडुभ्याम्" इत्यनेन डेरामि 'मति + आम्' इति भूते, ततः "आएनद्याः" इति सूत्रेणाऽऽडागमेऽनुबन्धलोपे "आटश्च" इत्यनेन वृद्धौ "इको यणचि" इत्यनेन यणि 'मत्याम्' इति रूपं सिद्धम् । नदीत्वाभावात् पक्षे विसंज्ञायां 'धेडिति' इति सूत्रेण प्राप्तं गुणं बाधित्वा "अच्च घेः" इति सूत्रेण ङेरौत्वेऽन्तादेशोऽकारे च कृते, वृद्धौ 'मतौ' इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

\* बहुयः श्रेयस्य कल्याणकारिण्यः स्त्रियो यस्य पुरुषस्य स बहुश्रेयसीत्यर्थः ।

१ अत्यन्त कल्याण की इच्छा करने वाली स्त्रियों वाला पुरुष  
२ सब । ३ बुद्धि ।

१ पराणाम् । १

‘षष्+आम्’ इत्यवस्थोया ‘षट्चतुर्भ्यश्च’ इति सूत्रेण नुटि, उकारटकारयोर्लोपे ‘भलां जशोऽन्ते’ इत्यनेन पकारस्य जरत्वेन डकारे ‘घृना घृः’ इत्यनेन पकारयोगात्-नकारस्य षट्त्वेन यकारे ‘षड्+णाम्’ इति स्थिते ‘प्रत्यये भाषायां नित्यम्’ इति वार्तिकेन डकारस्य यकारे ‘परणाम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

नन्वत्र “न पदान्तादोरनाम्” इति सूत्रेण षट्त्वनिषेधस्तु न शङ्क्यः, ‘अनाम्’ इति निषेवात् ।

२ अष्टानाम् । २

प्रातिपदिकसंज्ञकात् ‘अष्टन्’ शब्दात् ‘आमि’ विभक्तौ “पदान्ता षट्” इति सूत्रेण षट्संज्ञाया “षट्चतुर्भ्यश्च” इत्यनेन नुडागमेऽनुबन्धलोपे “अष्टन आ विभक्तौ” इति सूत्रेण पाक्षिके आत्वे “अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन दीर्घे ‘अष्टानाम्’ इति रूपं सिद्धम् । एवमात्वाऽभावपक्षेऽपि नुटि “नोपधायाः” इति सूत्रेण दीर्घे “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इत्यनेन नकारस्य लोपे ‘अष्टानाम्’ इत्येव भवतीति दिक् ।

३ युष्माकम् । ३

प्रातिपदिकसंज्ञक ‘युष्मद्’ शब्दात् ‘आम्’-विभक्तौ समागताया ‘युष्मद्+आम्’ इति जाते “शेषे लोपः” इत्यनेन दकारस्य लोपे ‘युष्म+आम्’ इति स्थिते “आमि सर्वनाम्नः सुट्” इत्यनेन सुट्यनुबन्धलोपे च सति ‘युष्म+साम्’ इति जाते “साम आक्रम” इति सूत्रेण साम आक्रमादेशे “अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन सवर्णदीर्घे च कृते ‘युष्माकम्’ इति रूपं साधूपपादितम् ।

४ अमीषाम् । ४

प्रातिपदिकसंज्ञकात् ४ ‘अदस्’ शब्दात् षष्ठीबहुवचने आमि विभक्तौ १ छः (पुरुषों) का । २ आठ (पुरुषों) का । ३ आपलोगों का । ४ यह ।

‘त्यदादीनामः’ इति सूत्रेणाकारे “अतो गुणे” इत्यनेन पररूपे च “आमि सर्वनाम्नः सुट्” इति सूत्रेण सुडागमेऽनुबन्धलोपे ‘अदस् + आम्’ इति भूते “बहुवचने भल्लयेत्” इति सूत्रेण एत्वे, षत्वे “एत ईद् बहुवचने” इत्यनेन दकारस्य मकारे, एकारस्य ईकारे च सति ‘अमी- षाम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

प्र० [ ३ ] भूयास्ताम् । ३

‘सत्तार्थकात् ‘भू’धातोराशिषि लिङः प्रथमपुरुषद्विवचने ‘तस्-’ प्रत्यये “तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः” इति सूत्रेण तसस्तामादेशे “लिङाशिषि” इति सूत्रेणाऽऽर्धधातुकसंज्ञायामार्धधातुकत्वात् शपोऽभावे “यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च” इत्यनेन यासुडागमेऽनुबन्धलोपे, सुटि ‘भू + यास् + स् + ताम्’ इति स्थिते “दि.दाशिषि” इत्यनेन कित्वाद्गुणनिषेधे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इत्यनेन यासुटः सकारस्य लोपे ‘भूयास्ताम्’ इति रूपं साधु ।

हृयस्ताम् । १ ✓

‘कौटिल्यार्थकात् ‘हृवृ’धातोराशीर्लिङि, लिङस्तासि “यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च” इति सूत्रेण यासुटि कृतेऽनुबन्धलोपे च सति यासुट् कित्वात् “किङति च” इति सूत्रेण गुणस्य निषेधे ङाप्ते “गुणोऽ- त्संयोगाद्योः” इत्यनेन गुणे “अचो रहास्यां द्वे” इत्यनेन द्वित्वे ‘हृयस्ताम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

अमजाताम् । १ ✓

‘सेवार्थकात् ‘भज’धातोः “लुङ्” इति सूत्रेण लुङि, लुङ्स्थाने आतामि कृते, अडागमेऽनुबन्धलोपे “चिल्ल लुङि” इत्यनेन च्लौ “च्लोः सिच्” इति सूत्रेण सिच्यनुबन्धलोपे ‘अमज् + स् + आताम्’ इति जाते,

जश्त्वेन जकारस्य गकारे “खरि च” इत्यनेन चत्वेन गकारस्य ककारे, सकारस्य घकारे, क-घ-संयोगे क्षत्वे ‘अभक्षाताम्’ इति रूपं साधु ।

अवक्षाताम् । १६२

‘वह-प्रापणे’ इत्यस्माद्धातोः “लुङ्” इति सूत्रेण छवि, छवः स्थाने आतामि कृतेऽडागमेऽनुबन्धलोपे च “चिल लु ङ” इति सूत्रेण च्लौ “चलेः सिच्” इति सूत्रेण सिचि, अनुबन्धलोपे ‘अवह् + स् + आताम्’ इति स्थिते “हो ङ.” इति सूत्रेण हकारस्य ङकारे “पढोः कः सि” इत्यनेन ङकारस्य ककारे “आदेशप्रत्यययोः” इत्यनेन सकारस्य घकारे, संयोगे क्षत्वे ‘अवक्षाताम्’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

अधुक्षाताम् । १६३

\*प्रपूरणार्थकात् ‘दुह्’ धातोर्छवि तस्य स्थाने आतामि कृते “लुङ्-लङ् लृङ् दवडुदात्तः” इति सूत्रेणाडागमेऽनुबन्धलोपे, च्लौ, चलेः स्थाने ‘शल-इगुपधादनिटः कसः” इत्यनेन कसादेशे “अलोऽन्त्यस्य” इति सहकारेण “कसस्याचि” इति सूत्रेण सकारोत्तराकारस्य च्चे अ + दुह् + स् + आताम् इति भूते “दादेर्धातोर्घः” इत्यनेन हकारस्य घकारे “खरि च” इति सूत्रेण चत्वेन ककारे “एकाचो वशो भषे भषन्तस्य सध्वोः” इति सूत्रेण भष्मावेन दकारस्य धकारे, सकारस्य घकारे क ष संयोगे सति क्षत्वे ‘अधुक्षाताम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

प्र० [ ४ ] १६४

‘बुध अत्रगमने’ ‘युध संप्रहारे’ इति धातुद्वयौलिटि, थलि रूपाऽभावः । अनयोरात्मनेपदित्वात् । ‘अस्ज्’ धातोर्लिटि थलि रूपाणि

\*पाकार्यकात् ‘अस्ज्’ धातोर्लिटि सिपस्थलि “अजो रोपधयोरे-मन्यतरस्याम्” इति पाक्षिके रमि “लिटि धातोरनभ्यासस्य”

१ लेजाना । २ दूहना । ३ जानना । ४ युद्ध करना । ५ भूतना, पकाना ।

इत्यनेन द्वित्वे, हलादिशेषे, जश्त्वे, भारद्वाजनिग्रयमाद्वैकल्पिके इडागमेऽनुबन्ध-  
लोपे 'वमजिथ' इति प्रथमं रूपम् । इडभावपक्षे—“वश्च-अस्ज-रज्ज-मृज-  
यज-राज-भ्राज-च्छशां ष.” इति सूत्रेण पत्वे “घुना घुः” इत्यनेन  
ध्रुत्वे 'वमर्ष्ट' इति द्वितीयम् । रमोऽभावपक्षे द्वित्वे, सम्प्रसारणे, पूर्वरूपे  
च कृते “उरत्” इति सूत्रेणात्वे, रपरे, हलादिशेषे, जश्त्वे, वैकल्पिके इटि,  
सस्य इत्तुत्वेन शकारे तस्य जश्त्वेन जकारे 'वमजिथ' इति तृतीयम् ।  
इडमोरभावे सति “स्कोः संयोगाधोरन्ते च” इत्यनेन सकारस्य लोपे  
पत्वे, ध्रुत्वे 'वमर्ष्ट' इति चतुर्थम् । एवङ्क्रमेण चत्वारि रूपाणि भवन्ति ।

‘मस्ज’ धातोर्लिटि, थलि रूपाणि

‘शुद्धार्थकात् ‘मस्ज’धातोर्लिटः सिपस्थलि धातुद्वित्वे, हलादिशेषे  
‘म+मस्ज्+थ’ इति जाते “मस्जेरन्त्यात्पूर्वां नु+वाच्यः” इति  
वार्तिकवलात् “मस्जिनशोर्मांलि” इति सूत्रेण सकारात्परे नुमि, अनुबन्ध-  
लोपे ‘म+मस्+न+ज+थ’ इति भूते “स्कोः संयोगाधोरन्ते च”  
इत्यनेन सकारस्य लोपे ‘म+मन्+ज्+थ’ इति भूते “चोः कुः” इत्यनेन  
जकारस्य कृत्वेन गकारे “खरि च” इत्यनेन चत्वेन गकारस्य ककारे,  
नस्थानुस्वारे, परसवर्णे च ‘ममङ्कथ’ इति सिद्धम् । पक्षे “ऋतो  
भारद्वाजस्य” इत्यनेन इटि, भलादित्वाभावाद्-नुमभावे “स्तोः श्चुना  
श्चुः” इति सूत्रेण सकारस्य इत्तुत्वेन राकारे “भलां जश् भशि”  
इत्यनेन शकारस्य जकारे च कृते सति ‘ममजिथ’ इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

अमुचत् । १२ ✓

‘मोचनार्थकात् ‘मुच्’धातोर्लृटि, प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, अनुब-  
न्धलोपे “इत्श्च” इत्यनेनेकारस्य लोपेऽटि, च्लौ “पुषादिद्युताद्यृदितः  
यरस्मैपदेधु” इति सूत्रेण च्लेरडि ‘अमुचत्’ इति रूप सिद्धम् ।

अमुक्ते । २५

‘आत्मनेपदे’ छड्‘स्त’ प्रत्ययेऽटि, च्लौ, च्लोः सिचि, इचो लोपे “भलो भलि” इति सूत्रेण सकारस्य लोपे “चोः कुः” इत्यनेन चकारस्य ककारे ‘अमुक्ते’ इति रूपं सिद्धम् ।

असिचत् । २६

‘षिच’ इक्षरणे’ इत्यस्माद्धातोः “लुङ्” इति सूत्रेण छडि, छड-  
‘स्तिप्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “इतश्च” इत्यनेन इकारस्य लोपेऽटि “चिल  
लुङि” इत्यनेन च्लौ “लिपि-सिचि-ह्रश्च” इति सूत्रेण च्लेरडि, तस्य  
डित्वाद्गुणाभावे ‘असिचत्’ इति रूपं सिद्धम् ।

असिक्त । २७

‘आत्मनेपदे’ सिचो छड्‘स्त’ प्रत्ययेऽटि “चिल लुङि” इति सूत्रेण च्लौ  
“आत्मनेपदेऽन्यतरस्याम्” इत्यनेन पाक्षिके च्लेरडि ‘असिचत्’  
इति सिद्धम् ।

च्लेरडोऽभावे च्ले सिचि, इचो लोपे “भलो भलि” इत्यनेन  
सकारस्य लोपे “चोः कुः” इत्यनेन चकारस्य कुत्वेन ककारे ऽडागमेऽनु-  
बन्धलोपे ‘असिक्त’ इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

अमृजत । २८

‘भृश’ आभराने’ [ आभरानं स्पर्शः ] इत्यस्माद्धातोः “लुङ्”  
इति सूत्रेण छडि, छडः स्थाने ‘तिप्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “इतश्च” इति  
सूत्रेण इकारलोपे “लुङ्-लङ्-लृङ्-प्वडुदात्तः” इति सूत्रेण अख-  
नुबन्धलोपे, च्लौ, च्लोः कसादेशं वाधित्वा “स्पृश-मृश-छृष-तृष-दृषां  
च्लेः सिज्वा वाच्यः” इति वार्तिकेन पाक्षिके सिचि, ईटि “अनुदात्तस्य  
चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्” इति सूत्रेणाऽमि, यणि, “वद-प्रज-हलन्त-  
स्याचः” इति सूत्रेण वृद्धौ “प्रश्च-अश्च-मृज-मृज-यज-राज-भाज-

१ सौधना । २ स्पर्श करना ।

च्छशां ष.” इति सूत्रेण शकारस्य पत्वे तस्य “षढोः कः सि” इत्यनेन कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सूत्रेण सकारस्य पत्वे, क्षत्वे ‘अभ्राक्षीत्’ इति । अमोऽभावपक्षे ‘अमृत् + स् + ई | त्’ इति स्थिते, वृद्धौ, रपरे, पत्वादिकार्ये च कृते सति ‘अभ्राक्षीत्’ इति । सिचोऽभावपक्षे “शल इगुपधादनिटः कसः” इत्यनेन च्लेः कशादेशे, शकारस्य पत्वे, कत्वे, सस्य पत्वे, संयोगे क्षत्वे ‘अमृक्षत्’ इति त्रीणि रूपाणि सिद्धयन्ति ।

अकृषात् । १

‘कृष विलेखने’ इत्यस्माद्धातोर्लुङ्निष्ठात्प्रत्यये “इतश्च” इत्यनेन इकारलोपे “लुङ्-लङ्-लृङ्-पृषदात्तः” इति सूत्रेण अटि, अनुबन्धलोपे च्लौ “शल इगुपधादनिटः कसः” इत्यनेन च्लेः कशादेरां वाधित्वा “स्पृश-भृश-कृष-तृष दृषां च्लेः सिञ्चा वाच्यः” इति वार्तिकेन पाक्षिके च्लेः सिचि, इचो लोपे “अस्ति सिचोऽपृक्ते” इत्यनेन ईटि “अनुदात्तस्य चर्दुपधस्थान्यतरस्याम्” इत्यनेनाऽमि कृते “इको यणचि” इत्यनेन यणि “वद-व्रज-हलन्तस्याचः” इत्यनेन वृद्धौ कृतायां “षढोः कः सि” इत्यनेन पकारस्य ककारे “आदेशप्रत्यययोः” इत्यनेन सिचः सकारस्य पकारे ‘अक्राक्षीत्’ इति सिद्धयति ।

अमोऽभावपक्षे वृद्धौ, रपरे ‘अक्राक्षीत्’ इति ।

सिचोऽभावे “शल इगुपधादनिटः कसः” इति सूत्रेण च्लेः कशादेशेऽनुबन्धलोपे, तिप इकारलोपेऽटि, पस्य कत्वे, पत्वे, संयोगे क्षत्वे च कृते ‘अकृक्षत्’ इति त्रीणि रूपाणि निष्पन्नानि ।

प्र० [ ५ ] चिकीर्षति । २

कर्तुमिच्छतीति विग्रहे ‘कृ’ धातोः “धातोः कर्मणः समान-कर्तृकादिच्छायां वा” इति सूत्रेण ‘सन्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति सूत्रेणोपनिषेवे “अज्झनगमां सनि” इत्यनेन

दीर्घे “इको भल्लू” इत्यनेन सनः कित्वाद्गुणभावे “ऋत इच्छातोः” इत्यनेन इत्वे २परे ‘किर्Xस’ इति स्थिते ‘सन्त्यङोः’ इत्यनेन द्वित्वे “पूर्वो-  
ऽभ्यासः” इत्यनेनाभ्याससञ्ज्ञायां ‘हलादि’ शेषः” इत्यनेन रेफस्य लोपे “कुहोश्चुः” इति चुत्वेन ककारस्य चकारे “हलि च” इत्यनेन दीर्घे  
“आदेशप्रत्यययोः” इत्यनेन सकारस्य षत्वे ‘चिकीर्ष’ इति भूते, ततः  
“सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन धातुसञ्ज्ञायां, धातुत्वाल्लटि, लटः स्थाने  
तिपि “कर्त्तरि शप्” इति सूत्रेण शपि, शकार-पकारयोर्लोपे “अतो गुणे”  
इति सूत्रेण पररूपे च सति ‘चिकीर्षति’ इति रूपं सिद्धम् ।

‘राजीयति । २१

आत्मानं राजानमिच्छति—इत्यर्थे “सुप आत्मनः क्यच्” इति  
सूत्रेण ‘क्यच्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे ‘राजन् + अम् + य’ इति स्थिते “सना-  
द्यन्ता धातवः” इति सूत्रेण धातुसञ्ज्ञायां धातुत्वात् “सुपो धातुप्रा-  
तिपदिकयोः” इत्यनेनामो लुकि ‘राजन् + य’ इति स्थिते “नः क्ये”  
इति सूत्रेण ‘राजन्’ इत्यस्य पदत्वात् “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य”  
इति सूत्रेण नकारस्य लोपे “क्यचि च” इत्यनेनाकारस्येत्वे, ततः  
‘राजीय’ इत्यस्य धातुत्वं विधाय लटि, लटः स्थाने तिपि, शप्यनुबन्धलोपे  
“अतो गुणे” इति सूत्रेण पररूपे च सति ‘राजीयति’ इति रूपं सिद्धम् ।

‘व्यतिघ्नन्ति । २२

व्यतिपूर्वात्—‘हन्’ धातोः क्रियाविनिमयेऽर्थे “कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे”  
इति सूत्रेणाऽऽत्मनेपदत्वे प्राप्ते “न गतिहिंसार्थेभ्यः” इति सूत्रेण तशि-  
षेधे, ततो लटि, लटस्तिवादिकार्ये च कृते ‘व्यतिघ्नन्ति’ इति रूपं साधु ।

‘इज्यते । २३

‘यज’ धातोः कर्मणि लटि “भावकर्मणोः” इति सूत्रेणाऽऽत्मनेपद-

१ अपने लिए राजा चाहता है । २ दूसरों के योग्य हनन करते हैं ।

३ यज्ञ किया जाता है ।



त्वाष्ट'स्त' प्रत्यये "दित आत्मनेपदानां ढेरे" इति सूत्रेण ढेरेत्वे  
 "सार्वधातुके यक्" इत्यनेन 'यक्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "वच्चि-स्वपि-  
 यजादीनां किति" इत्यनेन सम्प्रसारणे "सम्प्रसारणाच्च" इत्यनेन  
 पूर्वरूपे च कृते 'इज्यते' इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>१</sup>भुजः ।

अभोजि इति विग्रहे 'भुज्' धातोः "निष्ठा" इति सूत्रेण 'क्' प्रत्यये  
 नत्वेत्यासिद्धत्वात्पूर्वं "चोः कुः" इति सूत्रेण जकारस्य कुत्वेन गकारे  
 "ओदितश्च" इत्यनेन निष्ठातकारस्य नकारे, ततः "कृत्तद्धितसमा-  
 स्माश्च" इत्यनेन प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां सौ विभक्तावनुबन्धलोपे, नत्वे विसर्गे च  
 मति 'भुजः' इति रूपं साधु ।

<sup>२</sup>वराकी ।

वृणीते- इति विग्रहे 'वृट्' धातोः "जल्पमिदा-कुट्-लुठ्-वृड्-  
 'पाकन्' इति सूत्रेण 'पाकन्' प्रत्यये पकार-नकारयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च  
 "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति सूत्रेण गुणे रपरि च ततो निष्पन्न-  
 'वराक' शब्दात् "विद्गौरादिभ्यश्च" इत्यनेन ङीष्, अनुबन्धलोपे "यस्ये-  
 ति च" इत्यनेनाऽकारस्य लोपे, ततः प्रातिपदिकत्वे सौ, सौर्लुकि च कृते  
 'वराकी' इति रूपं निष्पन्नम् ।

<sup>३</sup>वेलाभोक्तुम् ।

'भुज' धातोः "काल-समय-वेलासु लुभुज्" इति सूत्रेण 'लुभुज्'  
 प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "चोः कुः" इत्यनेन जकारस्य कुत्वेन गकारे "स्वरि च"  
 इत्यनेन चत्वेन गकारस्य ककारे "पुगन्तलधूपधस्य च" इत्यनेन गुणे,  
 वृद्धन्तत्वात्प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां कृतायां सौ विभक्तौ समागतायां "कृन्मेजन्तः"  
 इत्यनेनाव्ययसञ्ज्ञायाम्, "अव्ययादोप्सुपः" इत्यनेन सुपो लुकि 'वेला-  
 भोक्तुम्' इति रूपं साधु ।

१ देहा । २ दीन ( बेचारी ) स्त्री । ३ भोजन का समय ( है ) ।

१ अपामार्गः ।

अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरिति विग्रहे 'अप्' पूर्वक- 'मृज' धातोः "हलश्च" इति सूत्रेण 'धव्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "मृजेर्धृद्धिः" इति सूत्रेण वृद्धौ "चजोः कु" धिरयतोः" इत्यनेन कुत्वेन जकारस्य गकारे "उपसर्गस्य धञानुष्ये बहुलम्" इति सूत्रेण दीर्घे, तत् प्रातिपदिक-संज्ञायां सौ रत्वे विसर्गे च कृते 'अपामार्गः' इति रूपं निष्पन्नम् ।

२ हात्वा ।

हानमिति विग्रहे गत्यर्थकात् ओकार-इत्संज्ञक- 'हाङ्' धातोः "समान-कचृकयोः पूर्वकाले" इति सूत्रेण 'क्त्वा' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, प्राति-पदिकत्वे, विभक्तिकार्ये च कृते 'हात्वा' इति रूपं सिद्धम् ।

३ सर्पिषो जानीते ।

'सर्पिषो जानीते' इत्यत्र 'षष्ठी' इति सूत्रेण करणत्वाविवक्षायां शेषत्व-विवक्षया षष्ठी 'सर्पिषो जानीते' इत्यस्य सिद्धिः ।

४ पञ्चगङ्गम् ।

पञ्चानां गङ्गानां समाहार इति लौकिकविग्रहे 'पञ्चन् + आम्, + गङ्गा + आम्' इत्यलौकिकविग्रहे च "समाहारे ष्वाऽयमिष्यते" इति वार्तिकबलात् "नदीभिश्च" इति सूत्रेण समासे, प्रातिपदिकसंज्ञात्वेन "सुपो धातुप्राति-पदिकयोः" इत्यनेन सुपोर्लुकि "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इत्य-नेन नकारस्य लोपे "एकविभक्ति चापूर्वनिपाते" इत्यनेन 'गङ्गा' इत्यस्यो-पसर्जनत्वात् "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य" इति सूत्रेण ह्रस्वे, एकदेशविकृ-तस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सौ, अव्ययत्वात् "अव्ययादाप्सुपः" इत्य-नेन सोर्लुकि प्राप्ते, परञ्च "नाऽव्ययीभावादतोऽन्त्वपञ्चभ्याः" इति सूत्रेण तन्निषेधे सोरमादेशो पूर्वरूपे च कृते 'पञ्चगङ्गम्' इति रूपं सिद्धम् ।

१ चिचिडा । २ जाकर । ३ घी के उपाय से प्रवृत्त होता है ।

४ पाँच गङ्गाओं का समाहार (सङ्गम) ।

‘रम्यपथः । १, ५५...

रम्यः पन्था यरिगन् देशे स इति विग्रहे समासे “ऋक्पूरब्धूः पथा-  
भानक्षे” इत्यनेन ‘अ’ प्रत्यये “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इत्यनेन  
सुपो लुकि “यचि भम्” इत्यनेन भसञ्ज्ञायां भत्वाद् “नस्तद्धिते” इत्यनेन  
टिलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वेन विभक्तिकार्ये च कृते ‘रम्यपथः’ इति रूपं  
निष्पन्नम् ।

‘शाराव ओदनः । ३, १६

शरावे उद्धृत इति विग्रहे ‘शराव’शब्दात् “तत्रोद्धृममत्रेभ्यः”  
इति सूत्रेण ‘अण्’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः”  
इत्यनेन सुपो लुकि “यचि भम्” इति सूत्रेण भसञ्ज्ञायां ‘यभ्येति च’  
इति सूत्रेणाकारलोपे “नद्धितेष्वचामादेः” इति सूत्रेणाऽऽदिबृद्धौ,  
पुनः प्रातिपदिकत्वे, सौ रत्वे विसर्गे च सति ‘शाराव ओदनः’ इति रूपस्य  
सिद्धिः ।

‘क्षत्रिया । ६, ६

क्षत्रियत्वजातिविशिष्टा स्त्री’ति विग्रहे ‘क्षत्रिय’ शब्दात् “अर्यक्षत्रियाभ्यां  
वा ह्वार्थे” इति वार्तिकेन ङिषोऽभावपक्षे-टापि, अनुबन्धलोपे, प्रातिपदिक-  
त्वात्सौ हल्ङ्थादिना सोर्लुकि च सति ‘क्षत्रिया’ इति रूपं सिद्धम् ।



१ रमणीय [ सीधा ] रास्ता वाला देश । २ सिकोरे में निकाला  
हुआ भात । ३ क्षत्रिय की स्त्री ।

सन् १६३२

भरनाः

- १ हर इह, शिवेहि, उत्थानम्, मनोरथः, रामाय, निर्जरसौ, विश्वपः, एते प्रयोगाः सूत्रनिर्देशेन साधु साधनीयाः । २०
- २ सर्वस्याम्, ज्ञानानि, विश्वौहः, युष्माकम्, विबुधः, एतेषा साधनं विधेयम् । २०
- ३-भवति, अभूत्, गोषास्राञ्चकार, एधाञ्चके, जधास, जुहोति, स्याद्धि, कुरुतः, गणयति, एते धात्वर्थनिर्देशेन साधनीयाः । १५
- ४ पिपठिषति, वोभूयते, पुत्रीयति, देयम्, भित्तः, प्रकृत्य, एते प्रकृतिप्रत्ययनिर्देशेन साधनीयाः । १५
- ५ हरिं भजति, कटे शेते, अधिहरि, राजपुरुषः, चित्रगुः, एषु आद्यद्वये कारकविभक्तिं प्रदर्शयन्त्येषु विग्रहप्रदर्शनेन साधनं विधेयम् । १५
- ६ औषगाव, वैयाकरणाः, गोर्मयम्, दण्डी, कुतः, युवतिः-एते सूत्रनिर्देशेन साधनीयाः । १५

उत्तराणि-

प्र० [ १ ] 'हर इह ।

'हरे + इह' इत्यवस्थायाम्, "एचोऽयवायावः" इति सूत्रेणायादेशे-  
 'हर् + अय् + इह' इति स्थिते "लोपः शाकल्यस्य" इति सूत्रेण वैकल्पिके  
 यकारस्य लोपे 'हर् + इह' इति भूते "आडुगुणः" इति सूत्रेण गुणे प्राप्ते  
 तम्प्रवाच्य "पूर्वत्रासिद्धम्" इति सूत्रेण "आडुगुणः" इत्येतद्वष्ट्या  
 "लोपः शाकल्यस्य" इत्यस्यासिद्धत्वाद्गुणाभावे 'हर इह' इति रूपं  
 सिद्धम् । यलोपाभावपक्षे 'हरयिह' इति द्वे रूपे सिद्धे ।

शिवेहि ।

असौ प्रयोगः ( २ ) द्वितीयपृष्ठे द्रष्टव्यः ।

१ हे हरि ! यहाँ ( 'आओ ) ।

उत्थानम् ।

अस्योत्तरं ( १४ ) चतुर्दश-पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

२. मनोरथः ।

‘मनसू + रथः’ इति दशायां “स्वसज्जुषो रुः” इति सूत्रेण सकारस्य रत्वे कृते “हशि च” इत्यनेन रोरत्वे प्राप्ते “रोरि” इत्यनेन रकारस्य लोपे च प्राप्ते “विप्रतिषेधे परं कार्यम्” इति सूत्रेण परत्वाद् “रोरी”ति लोपे प्राप्ते “पूर्वत्रासिद्धम्” इति सूत्रसद्वकारात् “रोरी” त्यस्यासिद्धत्वाद् “हशि च” इत्यनेन रकारस्योत्वे कृते “आइगुणः” इत्यनेन गुणे ‘मनोरथः’ इति रूपं साधु ।

रामाय । २

‘राम’\* शब्दस्य “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञाया प्रातिपदिकत्वाच्चतुर्थ्येकवचने ‘हे’ विभक्तौ ‘राम+हे’ इत्यवस्थाया “ङेर्यः” इति सूत्रेण ‘हे’-इत्यस्य स्थाने यादेशो राम+य’ इति जाते, नन्वत्र ‘हे’ इत्यस्य स्थाने यो हि यादेशः, तस्मिन् सुप्त्वं न स्यात्तर्हि सुप्त्वाभावात् “सुपि च” इति सूत्रेण दीर्घोऽपि न स्यादिति चेन्न, “स्थानिवदादेशोऽनलविधौ” इत्यनेन स्थानिवद्भावे ङेवृत्तिसुप्त्वधर्ममादाय “सुपि च” इति सूत्रेण यरूपे यन्नादौ सुपि परे मकारोत्तरवर्तिनाऽकारस्य दीर्घे ‘रामाय’ इति रूपं साधु ।

\* अव्युत्पत्तिपक्षे “अर्थवत्” इति प्रातिपदिकसंज्ञा, व्युत्पत्तिपक्षे-रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति विग्रहे ‘रमु-क्रीडायाम्’ इत्यस्माद्धातोः “हलश्च” इत्यधिकरणे, ‘घञ’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “तद्धितेष्वचामादेः” इति सूत्रेणाऽऽदिष्टद्वौ ‘कृत्तद्धितसमासाश्च’ इति प्रातिपदिकसंज्ञा बोद्धव्या ।

## निर्जरसौ ।

‘निर्जर’ शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायाम्, ‘औ’ विभक्तौ समागताया  
 ‘जराया जरसन्यतरस्याम्’ इति सूत्रेण ‘निर्जर’ इत्यत्र ‘जर’शब्दस्य-  
 जरसादेशे ‘निर्जरसौ’ इति रूपं निष्पद्यते ।

ननु ‘निर्जर’-इत्यत्र ‘जरा’ शब्दस्याभावात्कथं जरसादेश इति वाच्यम्,  
 “पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य” इति परिभाषावलात् तदन्तस्यापि  
 ग्रहणात्, “एकदेशविकृतमन्यवत्” इति परिभाषया यद्वा “छिन्ने-  
 ऽपि पुच्छे श्वा श्वैव नाऽश्वो न गर्दभः” इति न्यायाच्च ।

जरसादेराभावपक्षे ‘निर्जर + औ’ इत्यवस्थायां “प्रथमयोः पूर्वस-  
 चर्याः” इति सूत्रेण पूर्वसचर्यादौर्ध्वे प्राप्ते “नादिचि” इत्यनेन निषेधे  
 “वृद्धिरेचि” इत्यनेन वृद्धौ ‘निर्जरौ’ इति च रूपं सिद्धम् ।

## विश्वपः ।

प्रातिपदिकसंज्ञक ‘विश्वपा’शब्दस्य द्वितीयावहुवचने ‘शस्-’  
 विभक्तौ अनुबन्धलोपे ‘विश्वपा + अस्’ इति जाते “सुडनपुंसकस्य” इति  
 सूत्रेण सर्वनामस्थानसंज्ञाया “स्वादिभ्सर्वनामस्थाने” इत्यनेन पद-  
 संज्ञायां “यचि भम्” इत्यनेन भसंज्ञायां च प्राप्तायां “द्वयोर्मध्ये कत-  
 रेण भाव्यम्” इत्याराङ्गायाम्-“आकङ्कारादेका संज्ञा” इत्यनेन परत्वाद-  
 नवकाशत्वाच्च “यचि भम्” इत्यनेन भसंज्ञायाम्, “अलोऽन्त्यस्ये” इति  
 सहकारेण “आतो धातोः” इत्यनेन आकारस्य लोपे “ससञ्जुषो रुः”  
 इत्यनेन सकारस्य एत्वे “खरवसानयोर्जिसर्जनीयः” इत्यनेन रकारस्य  
 विसर्गे ‘विश्वपः’ इति रूपं सिद्धम् ।

प्र० [ २ ] सर्वस्याम् ।

अस्य साधनप्रकार ( १६ ) पृष्ठे द्रष्टव्यः ।

१ देवता । २ विश्व [ संसार ] का पालन करने वाले विष्णु भगवान् ।

ज्ञानानि ।

प्रातिपदिकसंज्ञक 'ज्ञान' शब्दात्प्रथमाबहुवचने जसि विभक्तौ "जश्शसोः शिः" इति सूत्रेण जसः स्थाने स्यादेशेऽनुबन्धलोपे 'शि स-र्वनामस्थानम्' इत्यनेन सर्वनामस्थानसंज्ञायां "मिदचोऽन्त्यात्परः" इति सूत्रवलात् "नपुंसकस्य भ्रूलचः" इति सूत्रेण अन्तावयवे नुमागमेऽनुबन्धलोपे 'ज्ञान + न् + इ' इत्यवस्थायां "सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ" इत्यनेनोपवादीर्घे च कृते 'ज्ञानानि' इति रूपं साधु ।

विश्वौहः ।

प्रातिपदिकसंज्ञक 'विश्ववाह्' शब्दात् शसि विभक्तावनुबन्धलोपे "यच्च भम्" इति सूत्रेण भसञ्ज्ञाया "वाह ऊट्" इत्यनेन 'वाह' इत्यत्र वकारस्य ऊठि, सम्प्रसारणेऽनुबन्धलोपे 'विश्व + ऊ + आह्' इति स्थिते "सम्प्रसारणाच्च" इत्यनेन सम्प्रसारणे 'विश्व + ऊह् + अस्' इति भूते 'एत्येधत्यूठ्सु' इति सूत्रेण वृद्धौ, एत्वे विसर्गे च कृते 'विश्वौहः' इति रूपं सिद्धम् ।

युष्माकम् ।

अस्योत्तरं ( १७ ) पृष्ठेऽनुप्रेक्षणीयम् ।

विबुधः ।

'वि-पूर्वात्-बुध्' धातोः "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इति सूत्रेण 'क'-प्रत्यये कित्वाद्गुणनिषेधे, प्रातिपदिकत्वात्वादिकार्ये च कृते 'विबुधः' इति रूपं साधु ।

प्र० [ ३ ] भवति ।

'भू'-सत्तायाम् इत्यस्माद्धातोः "भूवाद्यो धातवः" इत्यनेन 'भू'-इत्यस्य धातुसञ्ज्ञायां धातुत्वात् "वर्तमाने लट्" इत्यनेन लटि, अनुबन्धलोपे, तस्य स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने "तिप् तस्-क्ति-सिप्-थस्-थ-मिक्-

१ ज्ञान । २ विश्वम्भरभगवान् । ३ विशिष्ट ( योग्य ) परिष्ठत ।

घस्-मस्-ता-ऽऽतां-भ-धासाथां-ध्वमिङ्-वहि-भहिङ्" इत्यनेन 'तिप्'-  
प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "तिङ्-शित्सार्वाधातुकम्" इति सूत्रेण तिपः सार्व-  
धातुकसंज्ञायां "भूसुबोस्तिङि" इत्यनेन गुणनिषेधे "कर्त्तरि शप्"  
इत्यनेन शपि अनुबन्धलोपे, शपः सार्वधातुकसंज्ञायां "सार्वधातुकार्ध-  
धातुकयोः" इत्यनेन गुणे "एचोऽयवायावः" इत्यनेनात्रादेशे च कृते  
'भवति' इति रूपं सिद्धम् ।

अभूत् । ९०

अस्योत्तरं ( ६ ) पृष्ठे कृतं राजते ।

गोपायाञ्चकार ।

'गुप्' 'रक्षणे' इत्यस्माद्धातो. "गुप्-धूप-विच्छि-पलि-  
पलिभ्य आयः" इति सूत्रेण 'आय'प्रत्यये, तस्यार्धधातुत्वात्  
'पुगन्तलधूपघस्य च" इति सूत्रेण गुणे कृते 'गोपाय' इति जाते "सना-  
ध्वन्ता धातवः" इत्यनेन धातुसंज्ञाया धातुत्वात् "परौक्षे लिट्" इत्य-  
नेन लिटि "कृत्तिङ्" इति कृत्संज्ञायाम्, ततो 'गोपाय' इत्यस्यानेकाच्त्वात्  
'कास्यनेकाच आ+वक्तव्यः" इति वार्तिकेन आभि 'गोपायXआम्X  
लिट्' इति स्थिते "अतो लोपः" इत्यनेनाकारस्य लोपे 'गोपायXआम्X  
लिट्' इति स्थिते "हलन्त्यम्" इत्यनेनामो भकारस्येत्संज्ञायां "तस्य  
लोपः" इत्यनेन लोपे च प्राप्ते, लिटि आस्कासोराभिवधानान्मकारस्येत्वाभावेन  
लोपाभावे "आभः" इत्येन लिटो लुकि 'गोपायाम्' इति जाते, "लिट्" कृत्वात्  
"प्रत्ययलोपे प्रेत्ययलक्षणम्" इति प्रत्ययलक्षणेन 'गोपायाम्' इत्यस्य  
कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सौ "कृन्मेजन्तः" इत्यनेनाऽव्ययसंज्ञायाम्  
"अव्ययादाप्भुपः" इत्यनेन सोर्लुकि, तत "कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि"  
इति सूत्रेण लिट्परकृञोऽनुप्रयोगे, लिट्स्तिपि, तिपो यालि-अनुबन्धलोपे  
'गोपायाम्XकृXअ' इति स्थिते "लिटि धातोरनभ्यासस्य" इत्यनेन



कृञो द्वित्वे 'गोपायाम् + कृ + कृ + अ' इति भूते "पूर्वोऽभ्यासः" इत्यनेन पूर्वस्य कृञोऽभ्याससञ्ज्ञायाम्, "उरत्" इत्यनेनाभ्यास-ककारस्य अकारे "उरण् रपरः" इत्यनेन रपरे 'गोपायाम् × कृ × कृ × अ' इति स्थितौ "हलादिः शेषः" इति सूत्रेण रकारस्य लोपे "कुहोश्चुः" इत्यनेन अभ्यास-ककारस्य चुत्वेन चकारे "भोऽनुस्वारः" इति सूत्रेण भकार-स्यानुस्वारे "वा पदान्तस्य" इति सूत्रेण पाक्षिकेऽनुस्वारस्य परसवर्णे अकारे "अचोऽङिति" इत्यनेन वृद्धौ "उरण् रपरः" इत्यनेन रपरे च कृते 'गोपायाञ्चकार' इति रूपं साधूपपन्नम् ।

एधाञ्चक्रे । २७

'एध-<sup>१</sup>वृद्धौ' इत्यस्माद्धातोः "परोक्षे लिट्" इति सूत्रेण लिटि "इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः" इत्यनेन आभि "आमः" इत्यनेन लिटो लोपे 'एध × आम' इति जाते "कृञानुप्रयुज्यते लिटि" इत्यनेन लिट्पर-कृप्रयोगे 'एधाम् + कृ × लिट्' इति भूते, परगामिनि क्रियाफले कृञः परगौपदे प्राप्ते "आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य" इत्यनेनाऽऽत्मनेपदत्वात् 'त' प्रत्यये "लिट् इतभ्योरेशिरच" इत्यनेन तकारस्यैशादेशोऽनुबन्धलोपे 'एधाम् + कृ + ए' इति स्थिते "असंयोगास्लिट् कित्" इत्यनेन कित्त्वादगुणाभावे द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते "द्विर्वचनेऽचि" इति सूत्रेण तन्निषेधे, ततो "लिटि धातोरनभ्यासस्य" इत्यनेन द्वित्वे 'एधाम् × कृ × कृ × ए' इत्यवस्थायाम्, "उरत्" इत्यनेनाभ्यास-कृ-इत्यस्य ऋकारस्य स्थानेऽकारे, रपरे च कृते "हलादिः शेषः" इति सूत्रेण हलो लोपे 'एधाम् × कृ × कृ × ए' इति जाते "कुहोश्चुः" इति सूत्रेण अभ्यासककारस्य चुत्वेन चकारे, भकारस्य "भोऽनुस्वारः" इत्यनेनानुस्वारे "वा पदान्तस्य" इत्यनेन पाक्षिकेऽनुस्वारस्य परसवर्णे अकारे "इको यणचि" इत्यनेन यणि 'एधाञ्चक्रे' इति रूपं सिद्धम् ।

जधास । १२

‘अद’ ‘भक्षयो’ इत्यस्माद्धातोर्लटि विवक्षिते “लित्यन्यतरस्याम्” इति सूत्रेण घस्लादेशेऽनुबन्धलोपे, ततो लिटि, तिपि, तिपो णलि “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इत्यनेन द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यनेनाभ्यासस-  
ज्ञायां “हलादिः शेषः” इत्यनेन हलो लोपे “कुहोश्चुः” इत्यनेन घस्य  
भकारे “अभ्यासे चर्च” इत्यनेन जकारे “अत उपधायाः” इत्यनेन  
वृद्धौ ‘जधास’ इति रूपस्य सिद्धिः ।

जुहोति । १३

‘हु’ ‘दानाऽऽदनयोः’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लट्स्तिपि, शपि “जुहोत्या-  
दिभ्यः श्लुः” इति सूत्रेण शपः श्लौ “श्लौ” इति सूत्रेण द्वित्वेऽभ्यासत्वे-  
“कुहोश्चुः” इत्यनेन हकारस्य उत्त्वेन भकारे “अभ्यासे चर्च” इत्य-  
नेन भकारस्य जकारे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इत्यनेन गुणे च  
कृते ‘जुहोति’ इति रूपं सम्पन्नम् ।

रणाद्धि । १४

‘रधिर्’ ‘आवरणे’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लट्स्तिपि, नित्यत्वात् “पुगन्त-  
लघूपधस्य च” इति सूत्रेण गुणं वाधित्वा “रधादिभ्यः श्रम” इति  
सूत्रेण अभ्यनुबन्धलोपे “भधन्तथोर्धोऽधः” इति सूत्रेण तकारस्य धकारे  
“भलां जश् भशि” इति सूत्रेण धकारस्य जस्त्वेन तकारे “अट्कुप्वा-  
ङ्नुभ्द्व्यवायेऽपि” इति सूत्रेण नकारस्य णत्वे ‘रणाद्धि’ इति रूपं साधु ।

कुरुतः । १५

‘ङि कृण्व’ ‘करणे’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लट् स्थाने तसि “तनादि-  
कृञ्भ्यः उः” इति सूत्रेण ‘उ’प्रत्यये कृ + उ + तस् इति दशायां  
“सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति सूत्रेण गुणे रपरे च ‘अत उत्सा-  
र्धधातुके’ इत्यनेन उत्त्वे रत्वे विसर्गे च कृते ‘कुरुतः’ इति रूपं सिद्धम् ।

१ खाना । २ होम करना, खाना या केना । ३ रोकना । ४ करना ।

गणयति ।

‘गणय’ ‘सङ्ख्याने’ इत्यस्माद्धातोश्चुरादित्वाणिचि, तस्याऽर्धधातुकत्वात्  
“अतो लोपः” इति सूत्रेणाकारस्य लोपे “अत उपधायाः” इत्यनेनो-  
पधावृद्धौ प्राप्तायाम्, “अचः पररिगन्पूर्वविधौ” इत्यनेनालोपस्य  
स्थानिवद्भावात्तदभावे, ततः “सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन धातुत्वाल्लटि  
तस्य स्थाने तिपि, शपि, गुणे, अयादेशे च सति ‘गणयति’ इति रूपं  
सिद्धम् ।

प्र० [ ४ ] \*पिपठिषति ।

पठितुमिच्छतीति विग्रहे ‘पठ्’ धातोः “धातोः कर्मणः समानकचृ-  
कादिच्छायां वा” इति सूत्रेण ‘सन्’ प्रत्यये “आर्धधातुकस्येड्व-  
लादेः” इति सूत्रेण इडागमे “सन्त्यङोः” इति सूत्रेण द्वित्वे “पूर्वोऽ-  
भ्यासः” इत्यनेनाभ्याससंज्ञायां “हलादिः शेषः” इत्यनेन लोपे  
“सन्त्यतः” इति सूत्रेण इत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सूत्रेण षत्वे  
‘पिपठिष’ इति स्थिते, तस्य सञ्जन्तत्वात् “सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन  
धातुसंज्ञायां धातुत्वाल्लटि, तिपि, शपि, पररूपे च कृते ‘पिपठिषति’ इति  
रूपमुपपन्नम् ।

\*बोभूयते ।

पुनः पुनरतिशयेन वा भवतीति विग्रहे ‘भू’ धातोः “धातोरेकाधो  
हलादेः क्रियासममिहारे यङ्” इति सूत्रेण ‘यङ्’ प्रत्यये “सन्त्यङोः”  
इति सूत्रेण द्वित्वेऽभ्यासत्वे “गुणो यङ्लुङोः” इत्यनेनाभ्यासस्य गुणे,  
जस्त्वे ‘बोभूय’ इति जाते, तस्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति सूत्रेण धातु-  
संज्ञायां धातुत्वाल्लटि, ङित्वादात्मनेपदे, ततो लटः स्थाने ‘त’ प्रत्यये,  
“कर्त्तरि शप्” इति सूत्रेण शप्पुबन्धलोपे, पररूपे च कृते “टित

१ गिनना । २ पढ़ने की इच्छा करता है । ३ बार बार, या अधिक  
होता है ।

आत्मनेपदानां टेरे” इत्यनेन टेरेत्वे च सति ‘बोभूयते’ इति रूपस्य सिद्धिः ।

‘पुत्रीयति ।’

आत्मनः पुत्रमिच्छतीति विग्रहे ‘पुत्रXअम्’ इति ध्रुवन्तात् “सुप आत्मनः गयच्” इति सूत्रेण ‘वयच्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “सनाद्यन्ता धातवः” इति सूत्रेण ‘पुत्रXअम्Xय’ इत्यस्य धातुसंज्ञायां “सुपो धातु-प्रातिपदिकयोः” इति सूत्रेण अमो छकि ‘पुत्रXय’ इति स्थिते “वयच्चि च” इति सूत्रेण अकारस्य ईत्वे ‘पुत्रीय’ इति भूते “सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन धातुसंज्ञायां लटि, लङ् स्थापने तिपि, शपि “अतो गुणे” इत्यनेन पररूपे च कृते ‘पुत्रीयति’ इति रूपं बाधु ।

‘देयम् ।’

दातुमर्हमिति विग्रहे ‘दा’धातोः “नचो यत्” इति सूत्रेण ‘यत्’-प्रत्यये “ईद्यति” इति सूत्रेण आकारस्य ईकारे “सार्धधातुकार्धधातु-कयोः” इति सूत्रेण गुणे, ततः प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ, सौरमादेशे पूर्वरूपे च कृते ‘देयम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

‘मित्रः ।’

अमेदि इति विग्रहे ‘मिदिर्-विदारणे’ इत्यस्माद्धातोः “रदाभ्यङ् निष्ठातो ङः” इति सूत्रेण दकारस्य प्रत्ययतकारस्य च नकारे ‘क्’ प्रत्ययस्य ईत्वात् “ङिङ्यति च” इति सूत्रेण गुणनिषेधे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ रत्वे विसर्गे च कृते ‘मित्रः’ इति रूपं बाधु ।

‘प्रकृत्य ।’

प्र-पूर्वात् ‘कृ’धातोः “समानकर्तृकयोः पूर्वकाले यत्ना” इति सूत्रेण ‘यत्ना’ प्रत्यये, तस्य स्थाने “समासेऽनञ्पूर्वे यत्नो ल्यप्” इति

१ अपने लिये पुत्र चाहता है । २ देने योग्य । ३ मित्र । ४ आरम्भ करके ।

सूत्रेण वत्वो ल्यवादेशोऽनुबन्धलोपे “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इति सूत्रेण तुकि-अनुबन्धलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वादिकार्ये च सति ‘प्रकृत्य’ इति रूपं साधु ।

प्र० ५५३ <sup>१</sup>हरिं भजति ।

‘हरि भजति’ अत्र भजनक्रियया सम्बन्धुं देवदत्तादिकर्तुरत्यन्तोच्छ्राविषयीभूतस्य हरेः “कर्तुरीप्सिततमं कर्म” इति सूत्रेण कर्मसंज्ञायां “कर्मणि द्वितीया” इति सूत्रेण द्वितीया ‘हरिं भजति’ इत्यस्य सिद्धिः ।

<sup>२</sup>कटे शेते ।

‘कटे शेते’ इत्यत्र “आधारोऽधिकरणम्” इति सूत्रेण कटस्याधिकरणसंज्ञायां “सप्तम्यधिकरणे च” इति सूत्रेण सप्तमी ‘कटे शेते’ इत्यस्य सिद्धिः ।

<sup>३</sup>अधिहरि ।

हरौ इति, इति लौकिकविग्रहे ‘हरि । ङि + अधि’ इत्यलौकिकविग्रहे च ‘अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्युद्भूत-यार्थाभावा-ऽत्यया-ऽसंगति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथा-ऽऽनुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-संपत्ति-साकल्या-ऽन्तवचनेषु” इति सूत्रेणाव्ययीभावसमासे, समासविधायकसूत्रेऽव्ययमित्यस्य प्रथमानिर्दिष्टत्वात् ‘अधि’ इत्यव्ययस्य “प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्” इत्यनेनोपसर्जनत्वात् “उपसर्जनं पूर्वम्” इत्यनेन पूर्वप्रयोगे, “कृतद्धितसमासाश्च” इत्यनेन प्रातिपदिकसंज्ञायां “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इत्यनेन सुपो लुकि, एकदेशविकृतस्यानन्यत्वत्प्रातिपदिकत्वेन सौ “अव्ययीभावश्च” इत्यनेनाव्ययसंज्ञायाम्, “अव्ययादाप्सुपः” इत्यनेन सोर्लुकि ‘अधिहरि’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

<sup>४</sup>राजपुरुषः ।

राज्ञः पुरुषः, इति लौकिकविग्रहे, ‘राजन् + ङ्सु + पुरुष + सु’ इत्यलौ

१ हरिं को भजता है । २ चटाई पर सोता है । ३ हरि में ।

४ राजा का पुरुष ।

किंविप्रहे “षष्ठी” इति सूत्रेण षष्ठीसमासे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इत्यनेन सुपो लुकि “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इत्यनेन नकारस्य लोपे, ततः ‘राजपुरुष’ इति समुदायात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ, सत्वे विसर्गे च कृते ‘राजपुरुषः’ इति रूपं सिद्धम् ।

चित्रगुः ।

अस्य साधनप्रकारः ( ११ ) पृष्ठेऽवलोकनीयः ।

प्र० [ ६ ] ‘औपगवः’ ।

उपगोरपत्यमिति विप्रहे षष्ठ्यन्तात् ‘उपगु’शब्दात् “तस्यापत्यम्” इति सूत्रेण ‘अण्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, प्रातिपदिकत्वे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति सूत्रेण सुपो लुकि “तद्धितेऽत्रचामादेः” इति सूत्रेणाऽऽदिबद्धौ “अचो ङिणति” इति सूत्रेण वृद्धिं वाधित्वा “ओर्गुणः” इति सूत्रेण गुणे, ततः निष्पन्न-‘औपगव’शब्दात्पुनः प्रातिपदिकत्वे, सौ सत्वे विसर्गे च कृते ‘औपगवः’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

‘वैयाकरणः’ ।

व्याकरणमधीते वेद वेति विप्रहे ‘व्याकरणा’ शब्दात् “तद्धीते तद्धेद” इति सूत्रेण ‘अण्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच” इति सूत्रेण यकारात्पूर्वमैजागमेऽनुबन्धलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वे, सौ सत्वे विसर्गे च कृते ‘वैयाकरणः’ इति रूपं साधु ।

‘गोमयम्’ ।

गोर्विकारः पुरीषमित्यर्थे षष्ठ्यन्तात् ‘गो’शब्दात् “गोश्च पुरीषे” इत्यनेन ‘भयट्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, सुब्लुकि, प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ स्वादि-कार्ये च सति ‘गोमयम्’ इति रूपस्य सिद्धिः ।

१ उपगु का पुत्र । २ व्याकरण शास्त्र का पढ़ने वाला, या व्याकरण-का जानकार । ३ गोधर ।

‘दण्डी ।

दण्डोऽस्यास्तीति विग्रहे ‘दण्ड’ शब्दात् “अत इनिठनौ” इत्यनेन ‘इनि’-  
प्रत्यये “यस्येति च” इत्यनेनाकारस्य लोपे प्रातिपदिकत्वे, सौ, दीर्घे “न-  
लोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इत्यनेन नकारस्य लोपे “हल्ङ्-धा०भ्यः-”  
इत्यादिना सौष्ठुकि च कृते ‘दण्डी’ इति रूपं साधु ।

‘कुतः ।

कस्मादिति विग्रहे पञ्चम्यन्त-‘किम्’ शब्दात् “पञ्चम्यास्तसिल्”  
इत्यनेन ‘तसिल्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो छकि  
“कुतिहोः” इति सूत्रेण किमः ‘कु’ इत्यादेशे, ततः पुनः प्रातिपदिके सौ  
अव्ययत्वात् “अव्ययादाप्सुपः” इत्यनेन सौलुकि, सकारस्य रुत्वे विसर्गे  
च अति ‘कुतः’ इति रूपं सिद्धम् ।

युवतिः ।

अस्योत्तरं ( १३ ) पृष्ठेऽवलोकनीयम् ।

सन् १९३३

प्रश्नाः-

- १ हर इह । गो अग्रम् । पुंस्कोकिलः । देवायिह । सर्वेषाम् । हरेः ।  
कोण्डुः । एते प्रयोगाः साधु साध्यन्ताम् । २५
- २ तिष्ठः । वारीयाम् । राज्ञः । पन्थाः । एतेषां साधनं विधेयम् । १०
- ३ भूयात् । आतिष्ठ । कामयाञ्चक्रे । विदाङ्करोतु । नतर्यति ।  
अस्तम्भीत् । अजीगयात् । एते प्रयोगा धात्वर्थनिर्देशपुरस्सरं  
साधनीयाः । २१

४ चिकीर्षति । शिष्यः । ज्ञामः । सुपानः । शयित्वा । विप्रहपुर-  
रसरं साधनप्रकारः प्रदर्शनीयः । १५

५ उपराजम् । पञ्चगवम् । दीर्घसक्थः । प्राध्वो रथः । एतेषां विप्र-  
हप्रदर्शनपुररसरं साधनं प्रदर्श्यताम् । १२

६ राजन्यः । यौवतम् । राष्ट्रियः । तर्हि । एता । वृषली । मत्सी ।  
एते प्रयोगाः सविमहं साध्यन्ताम् । २१

### उत्तराणि

प्र० [ १ ] हर इह ।

अस्य साधनं ( २७ ) पृष्ठे कृतं मया ।

<sup>१</sup>गो अग्रम् ।

‘गो + अग्रम्’ इत्यवस्थायाम् “एचोऽयवायावः” इति सूत्रेणावा-  
देशे प्राप्ते तं वाचित्वा “एङः पदान्तादति” इत्यनेन पूर्वरूपे प्राप्ते तमपि  
इवाच्य “सर्वत्र विभाषा गोः” इति सूत्रेण वैकल्पिके प्रकृतिभावे  
‘गो अग्रम्’ इति रूपं सिद्धम् । पक्षे-पूर्वरूपे ‘गोऽग्रम्’ इति द्वे रूपे निष्पन्ने ।

<sup>२</sup>पुंस्कोकिलः ।

‘पुम् + कोकिलः’ इत्यवस्थाया “पुमः स्वय्यम्परे” इति सूत्रेण पुमो  
सकारस्य एत्वेऽनुबन्धलोपे ‘पुर् + कोकिलः’ इति स्थिते ‘अत्रानुनासिकः  
पूर्वस्य तु वा’ इत्यनेन पकारोत्तरवर्तिन उकारस्यानुनासिकत्वे, ‘पुंस् + कोकिलः’  
इति भूते “स्वरवसानयोर्विसर्जनीयः” इत्यनेन रेफस्य विसर्गे “सम्पु-  
ङ्गानां सो वक्तव्यः” इति वार्तिकेन विसर्गस्य स्थाने सकारे ‘पुंस्को-  
किलः’ इति । अनुनासिकाभावपक्षे-“अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः”  
इत्यनेनानुस्वारगमे ‘पुंस् + कोकिलः’ इति स्थिते रेफस्य विसर्गे सकारे च  
कृते ‘पुंस्कोकिलः’ इति द्वे रूपे सिद्धे ।

१ गौ के आगे, या गौका अग्रभाग । २ नर कोकिल [ कोयल ] ।



### ‘देवायिह ।

‘देवास् + इह’ इति दशायां “ससजुषो रुः” इति सूत्रेण एत्वेऽनु-  
बन्धलोपे ‘देवार् + इह’ इति भूते “भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य  
योऽशि” इति सूत्रेण यादेशे ‘देवाय् + इह’ इति भूते “लोपः शाक-  
त्यस्य” इति सूत्रेण वैकल्पिके यकारस्य लोपे ‘देवा इह’ इति । यलोपा-  
भावपक्षे ‘देवायिह’ इति च रूपद्वयं सिद्धम् ।

### सर्वेषाम् ।

प्रातिपदिकसंज्ञक-१ ‘सर्व’शब्दात् पष्ठीबहुवचने आभि विभक्तौ “आभि  
सर्वनाम्नः सुट्” इति सूत्रेण सुडागमेऽनुबन्धलोपे ‘सर्व + स् + आम्’  
इति जाते “बहुवचने भल्लयेत्” इत्यनेन एत्वे “आदेशप्रत्यययोः”  
इति सूत्रेण एत्वे च कृते ‘सर्वेषाम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

### हरेः ।

प्रातिपदिकत्वात्-१ ‘हरि’शब्दस्य पञ्चमीषष्ठ्योरेकवचने ङसि विभक्ता-  
वनुबन्धलोपे ‘हरि + अस्’ इति स्थिते “शेषो ह्यसखि” इति सूत्रेण  
धिसज्ञायां “धेङिति” इति सूत्रेण गुणे “ङसिङसोश्च” इति सूत्रेण  
पूर्वरूपे, सकारस्य एत्वे विसर्गे च कृते ‘हरेः’ इति रूपं साधु ।

### क्रोष्टु ।

प्रातिपदिकत्वात्-‘क्रोष्टु’शब्दस्य पञ्चम्येकवचने ङसि विभक्तावनुबन्ध  
लोपे ‘क्रोष्टु + अस्’ इति स्थिते “विभाषा तृतीयादिङ्गचि” इति  
सूत्रेण पाक्षिके ‘क्रोष्टु’शब्दस्य तृज्वद्धावे कृते ‘क्रोष्टु + अस्’ इति जाते  
“ऋत उत्” इति सूत्रेण उदेकादेशे, रपरत्वे च “रात्सस्य” इत्यनेन  
सकारस्य लोपे, रेफस्य विसर्गे ‘क्रोष्टुः’ इति रूपं सिद्धम् । तृज्वद्धावाऽभाव-  
पक्षे-“धेङिति” इति सूत्रेण गुणे “ङसिङसोश्च” इत्यनेन पूर्वरूपे,  
एत्वविसर्गयोश्च सतो ‘क्रोष्टोः’ इति च रूपद्वयं सिद्धम् ।

प्र० [ २ ] तिस्रः ।

प्रातिपदिकसंज्ञकात्-<sup>१</sup>‘त्रि’शब्दाज्जसि विभक्तौवनुबन्धलोपे “त्रिचतुरोः स्त्रियां तिस्रचतस्र्” इति सूत्रेण तिस्रादेशे ‘तिस्र् + अस्’ इति जाते “इको यणचि” इति सूत्रेण यणि प्राप्ते तत्प्रवाच्य “ऋतो ङिसर्घ-  
नामस्थानयोः” इत्यनेन युगे प्राप्ते तं वाधित्वा ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णः”  
इत्यनेन पूर्वसवर्णादीर्घे प्राप्ते तमपि प्रवाच्य “अचि र ऋतः” इति सूत्रेण  
ऋकारस्य रेफादेशे, रत्वे विसर्गे च कृते ‘तिस्रः’ इति रूपं सिद्धम् ।

वारीणाम् ।

प्रातिपदिकत्वात्-<sup>२</sup>‘वारि’शब्दात् ‘आम्’ विभक्तौ समागतायां सत्यां  
परत्वात् “ह्रस्वनद्यापो नुट्” इति सूत्रेण नुट् पूर्वविप्रतिषेधात्तृज्ज्वाव च  
वाधित्वा “इकोऽचि विभक्तौ” इति सूत्रेण नुमः प्राप्तौ “नुमचिरट्-  
ज्ज्वावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन” इति वार्तिकवृत्तान्तुडागमेऽनुबन्ध-  
लोपे च ‘वारि + नाम्’ इति स्थिते “नामि” इति सूत्रेण दीर्घे, रत्वे च कृते  
‘वारीणाम्’ इति रूपं साधु ।

राज्ञः ।

प्रातिपदिकसंज्ञक-<sup>३</sup>‘राजन्’ शब्दात् ‘शस्’ विभक्तौवनुबन्धलोपे ‘राजन्  
+ अस्’ इति स्थिते “यचि भम्” इति सूत्रेण भसञ्ज्ञायाम्, “अल्लो-  
पोऽनः” इति सूत्रेण जकारोत्तरवर्त्यकारस्य लोपे “स्तोः श्चुना श्चुः”  
इति सूत्रेण नकारस्य श्चुत्वे जकारे, ज-व्योः संयोगे शकारे, रत्वे विसर्गे च  
कृते ‘राज्ञः’ इति रूपं निर्धनम् ।

पन्थाः ।

प्रातिपदिकसंज्ञक-<sup>४</sup>‘पथिन्’ शब्दात् सौ विभक्तौ “पथिमथ्यूभुजा-  
मात्” इत्यनेन नकारस्याऽऽत्वे ‘पयि + आ X सु’ इति स्थिते “इतोऽत्सर्व-  
नामस्थाने” इत्यनेन थकारोत्तरवर्तीकारस्याकारे “थो न्यः” इत्यनेन थका-

१ तीन ( त्रिषाँ ) । २ जल । ३ राजा । ४ मार्ग, रास्ता ।

रस्य न्यादेशे “अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन दीर्घे ‘सु’-इत्यस्योकारस्ये-  
त्सञ्ज्ञायां लोपे च सकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृते ‘पन्थाः’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

प्र० [ ३ ] भूयात् ।

सत्तार्थकात् ‘भू’ धातोः “आशिषि लिङ्-लोटी” इत्यनेन लिङि,  
लिङः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे “लिङाशिषि” इत्यनेन तिपि आर्धधातु-  
कत्वात् “कर्त्तरि शप्” इति सूत्रेण शपोऽभावे ‘भू + ति’ इति भूते  
“यासुट् पररगौपदेषूदात्तो ङिञ्च” इत्यनेन यासुडागमेऽनुबन्धलोपे  
‘भू + यास् + ति’ इति जाते “किदाशिषि” इत्यनेन यासुटः कित्वे “स्कोः  
संयोगाद्योरन्ते च” इत्यनेन सकारलोपे “इतश्च” इत्यनेनेकारस्य लोपे  
“सार्धधातुकार्धधातुकयोः” इत्यनेन गुणे प्राप्ते, परञ्च यासुटः कित्वेन  
“किङिति च” इत्यनेन निषेधे ‘भूयात्’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

आतिष्ठ ।

‘अत-<sup>१</sup>सातत्यगमने’ इत्यस्माद्धातोः “लुङ्” इत्यनेन लुङि, लुङ्. स्थाने-  
“तिप्-तस-क्लि-सिप्-थस्-थ-मिब्-वस्-मस्-ता-ऽऽतां-भ-था-  
साथां-ध्वमिङ्-वहि-महिङ्” इत्यनेन ‘थ’प्रत्यये ‘अत + थ’ इत्यवस्थायां  
“तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः” इत्यनेन थकारस्थाने तादेशे “आड-  
जादीनाम्” इत्यनेनाडागमेऽनुबन्धलोपे “आटश्च” इत्यनेन वृद्धौ ‘आत +  
त’ इति स्थिते, प्लौ, प्लेः स्थाने “प्लेः सिच्” इत्यनेन सिचि अनुबन्ध-  
लोपे “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः” इत्यनेनेडागमेऽनुबन्धलोपे “आदे-  
शप्रत्यययोः” इत्यनेन पत्वे “एडुना एडुः” इत्यनेन एडुत्वे च कृते ‘आतिष्ठ’  
इति रूपं साधु ।

कामयाञ्चक्रे ।

‘कमु-<sup>२</sup>कान्तौ’ इत्यस्माद्धातोः “आयाच्य आर्धधातुके वा”  
इत्यनेन पाक्षिके णिङि, अनुबन्धलोपे “अत उपधायाः” इति सूत्रेणोप-

धावृद्धौ 'कामि' इति स्थिते "सर्वाधन्ता धातवः" इत्यनेन धातुसंज्ञायां धातुत्वाल्लिटि, "कास्यनेकाच् आम्बक्तव्यः" इत्यामि "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति सूत्रेण प्राप्तं गुणं बाधित्वा "शोरनिटि" इत्यनेन शि-  
लोपे प्राप्ते तम्प्रवाच्य "अयामन्तालयाज्येत्स्विज्युपु" इति सूत्रेण शोरयादेशे  
"आमः" इत्यनेन लिटो लुकि "हृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि" इत्यनेन लिट्-  
परकृञोऽनुप्रयोगे 'कामयाम् + कृ + लिट्' इति भूते, लिटः स्थाने 'त' प्रत्यये  
"लिटि धातोरनभ्यासस्य" इत्यनेन द्वित्वे 'कामयाम् + कृ + कृ + त'  
इति स्थिते "पूर्वोऽभ्यासः" इत्यनेनाभ्याससंज्ञाया "उरत्" इत्यनेनात्वे  
"उरण् रपरः" इत्यनेन रपरे "हृलादिः शेषः" इत्यनेन लोपे "कुहो-  
श्चुः" इत्यनेन उत्वे "लिट् रत्तभयोरेशिरच्" इति सूत्रेण एशि,  
अनुबन्धलोपे, अनुस्वारे, परसवर्णे यशि च कृते 'कामयाञ्चके' इति रूपं  
सिद्धम् । शिकोऽभावपक्षे-लिटः स्थाने 'त' प्रत्यये, एशि, द्वित्वेऽभ्यासकार्ये च  
कृते 'चकमे' इति च रूपं सिद्धयति ।

### विदाङ्करोतु ।

'विद-ज्ञाने' इत्यस्माद्धातोः "लोट च" इति सूत्रेण लोटि "विदा-  
ङ्कर्धन्वित्यन्यतरस्याम्" इति सूत्रेण निपातनात्-विद आमि, गुणा-  
भावे, लोटो लुकि, लोटन्तकृञोऽनुप्रयोगे च 'विदाम् + कृ + लोट्' इति स्थिते-  
लोटस्तिपि, "कर्त्तरि शप्" इत्यनेन शपि, प्राप्ते तम्प्रवाच्य "तनादिक्क-  
ञभ्य उः" इत्यनेन 'उ' प्रत्यये 'विदाम् + कृ + उ + ति' इति स्थिते, उकारस्य  
शित्वात् "तिङ् शित्सार्वधातुकम्" इति सार्वधातुकसंज्ञायां सार्वधातु-  
कत्वात् "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इत्यनेन-ङकारस्य गुणे, रपरे,  
"परः" इति सूत्रेण-उत्वे, तिपो निमित्तमादाय पुनरङकारस्य गुणे  
'विदाम् + करोति' इति स्थिते, तत अनुस्वारे, परसवर्णे 'विदाङ्करोतु'  
इति रूपं सिद्धम् ।

नत्स्यति ।

‘वृती’ ‘गात्रविक्षेपे’ इत्यस्माद्धातोः “लृट् शेवे च” इत्यनेन लृटि, लृट्सिचि “स्यतासी लृजुटोः” इत्यनेन ‘स्य’प्रत्यये, तस्याऽऽर्धधातु-  
कत्वे “सेऽसिचि कृत-धृत-धृद-तृद-नृतः” इति सूत्रेणोडभावे “पुग-  
न्तलघूपधस्य च” इत्यनेन गुणे, २परे ‘नत्स्यति’ इति । इटि कृते  
जु-षत्वे ‘नर्तिष्यति’ इति रूपद्वयं साधु ।

अस्तम्भेति ।

‘स्तम्भ्’ धातोर्लृङि, लृङ्. स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे “लुङ्-लृङ्-  
लृङ्-द्वडुदात्तः” इत्यनेनाऽङागमेऽनुबन्धलोपे ‘अ + स्तम्भ् + ति’ इति  
स्थिते “ञिल लुङि” इत्यनेन च्लौ, च्लेः स्थाने “जू-स्तम्भु-प्रुचु-  
म्लुचु-प्रुचु-ग्लुचु-ग्लुञ्चु-शिवभ्यश्च” इति सूत्रेण वैकल्पिकेऽङभावे  
“च्लेः सिच्” इत्यनेन सिच्यनुबन्धलोपे ‘अ + स्तम्भ् + स् + ति’ इति भूते  
“आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इत्यनेनेङागमेऽनुबन्धलोपे “अस्ति सिचो-  
ऽपृक्ते” इत्यनेन च ईङागमेऽनुबन्धलोपे “इट ईटि” इत्यनेन सकारस्य  
लोपे “अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन दीर्घे “इतश्च” इत्यनेनेकारस्य लोपे  
अस्तम्भेति इति रूपं निष्पन्नम् ।

अजीगणत् ।

‘गण्’-सङ्ख्याने, इत्यस्माद्धातोः “सत्याप-पाश-रूप-वीणा-  
तूल-श्लोक-सेना-लोम-तत्रच-वर्म-वर्ण-धूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्”  
इति सूत्रेण णिचि, अल्लोपे, तस्य स्थानिवत्त्वाद् वृद्ध्यभावे “लुङ्” इति  
सूत्रेण लृङि, लृङ्. स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे “ञिल लुङि” इति सूत्रेण  
च्लौ “णि-श्चि-द्रु-सुभ्यः कर्त्तरि चङ्” इत्यनेन च्लेश्चङि, अनुबन्ध-  
लोपे “णौ चङ्-युपधाया ह्रस्वः” इत्यनेन ह्रस्वे “णोरनिटि” इत्यनेन  
णिलोपे “चङि” इत्यनेन द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यनेनाऽभ्यास-



इति सूत्रेण 'युच्'प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "युवोरनाकौ" इत्यनेन योरनादेशे 'सुपान' इति स्थिते, कृदन्तत्वात् "कृच्छ्रितसमासाश्च" इति सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ रुत्वे विसर्गे च कृते 'सुपानः' इति रूपं निष्पन्नम् ।

<sup>१</sup>शयित्वा ।

'शीङ्'रूपेण इत्यस्माद्धातोः 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वा' इति सूत्रेण 'यत्वा'प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, इडागमेऽनुबन्धलोपे च 'शी + इ + त्वा' इति जाते, गुणोऽयादेशे, ततः प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ, सोर्लुकि च कृते 'शयित्वा' इति रूपं सिद्धम् । नन्वत्र 'यत्वा' इत्यस्य कित्वेन 'किङिति च' इति सूत्रेण निषेधाद्गुणो न स्यादिति चेन्न, "न क्त्वा सेट्" इत्यनेन कित्वाभावविधीनादिति दिक् ।

प्र० [ ५ ] <sup>२</sup>उपराजम् ।

'राज्ञः समीपमिति लौकिकविग्रहे, 'राजन् + वस् + उप' इत्यलौकिक-विग्रहे च "अव्ययं विभक्ति-समीप-रामृद्धि-व्यृद्धयर्थभावा-ऽव्य-या-ऽस्य-प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथा-ऽऽनुपूर्व्य-योगपद्य-साह-श्य-सम्पत्ति-साकल्या-ऽन्तवचनेयु" इति सूत्रेण समासे "अनश्च" इत्यनेन टचि, अनुबन्धलोपे समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन "सुपो धातुप्राति-पदिकयोः" इत्यनेन सुपो लुकि 'उप' इत्यस्योपसर्जनत्वात्प्राक्प्रयोगे 'उपरा-जन्' इति स्थिते "यच्चि भम्" इत्यनेन भसंज्ञायां "नरत्तद्धिते" इति सूत्रेण टिलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ "अव्ययीभावश्च" इत्यनेना-व्ययत्वात् "अव्ययादाप्सुपः" इत्यनेन सोर्लुकि प्राप्ते "नाऽव्ययीभावा-दतोऽन्त्वपञ्चम्याः" इत्यनेन तन्निषेधे, सोरमादेशे "अभि पूर्वः" इत्यनेन पूर्वरूपे च कृते 'उपराजम्' इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>३</sup>पञ्चगावम् ।

पञ्चानां गावां समाहारः, इति लौकिकविग्रहे 'पञ्चन् + आम् + गो + आम्'

१ सो कर । २ राजा के समीप । ३ पाँच गौ ।

इत्यलौकिकविग्रहे च “तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च” इत्यनेन समासे, सुष्ठुकि “नलोपः प्रातिपदिकत्वात्” इत्यनेन नकारस्य लोपे “गोरतद्धितलुकि” इत्यनेन टच्यनुबन्धलोपे, अवादेशे “तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः” इत्यनेन कर्मधारयसंज्ञायां “संख्यापूर्वो द्विगुः” इत्यनेन द्विगुसंज्ञायां “द्विगुरेकवचनम्” इत्यनेनैकवचनावे “स नपुंसकम्” इत्यनेन नपुंसकत्वे, प्रातिपदिकसंज्ञात्वे, सौ, सोरमादेशे पूर्वरूपे च कृते ‘पञ्चगवम्’ इति मञ्जुलं रूपं सिद्धम् ।

‘दीर्घसन्धः ।

दीर्घे सन्धिनो यस्येति विग्रहे “अनेकमन्यपदार्थे” इत्यनेन समासे सुष्ठुकि “बहुव्रीहौ सन्धयदणोः स्वाङ्गत्विच्” इत्यनेन षचि, अनुबन्धलोपे, भसंज्ञायां “यस्येति च” इत्यनेन इकारस्य लोपे ‘दीर्घसन्धः’ इति समुदायात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ, एत्वे विसर्गे च कृते ‘दीर्घसन्धः’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

‘प्राध्वो रथः ।

प्रगतोऽध्वानमिति विग्रहे “अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया” इत्यनेन समासे “उपसर्गादध्वनः” इति सूत्रेण ‘अच्’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “नरतद्धिते” इत्यनेन टलोपे, दीर्घे, प्रातिपदिकत्वात्सौ एत्वे विसर्गे च कृते ‘प्राध्वो रथः’ इति रूपं साधु ।

प्र० [ ६ ] ‘राजन्यः ।

राज्ञोऽपत्यं जातिरिति विग्रहे ‘राजन्’शब्दात् “तस्याऽपत्यम्” इत्यनेन ‘अण्’प्रत्यये प्राप्ते, तं प्रबाध्य “राजश्वसुराद्यत्” इत्यनेन ‘यत्’प्रत्यये “यचि भम्” इत्यनेन भत्वे भत्वाद् “नरतद्धिते” इत्यनेन टलोपे प्राप्ते “ये चाऽभावकर्मणाः” इत्यनेन प्रकृतिभावात्तन्निषेधे, ततः प्रातिपदिकत्वे, सौ एत्वे विसर्गे च कृते ‘राजन्यः’ इति रूपं सम्पन्नम् ।

१ लम्बे ऊह वाला । २ रास्ते को प्राप्त हुआ रथ । ३ क्षत्रिय ।



‘यौवतम् ।

युवतीनां समूहः-इति विग्रहे \*‘युवती’शब्दात् “अनुदात्तेरञ्” इति सूत्रेण ‘अञ्’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “भस्याऽढे तद्धिते” इति वात्ति-  
केन पुंवद्भावात्, ङीपो निवृत्तौ “तद्धितेष्वचामादेः” इत्यनेनाऽऽदिवृद्धौ,  
ततः प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ, सोरमादेशे पूर्वरूपे च कृते ‘यौवतम्’ इति  
रूपं साधु ।

‘राष्ट्रियः ।

राष्ट्रे जातः-इति विग्रहे “राष्ट्राऽवारपाराद्धखौ” इति सूत्रेण  
‘व’प्रत्यये “आयनेयीनीयियःफठ खछ-घां प्रत्ययादीनाम्” इति  
सूत्रेण घस्येयादेशे, भसजायां “यस्येति च” इति सूत्रेणाकारस्य लोपे,  
प्रातिपदिकत्वात्सौ एत्वे विसर्गे च कृते ‘राष्ट्रियः’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

‘तर्हि ।

तस्मिन् काले-इति विग्रहे ‘तद्’ शब्दात् “अनद्यतने हि लन्थत्-  
रस्याम्” इत्यनेन ‘हिल्’ प्रत्यये “त्यदादीनामः” इत्यनेनात्वे “अतो  
बुधे” इत्यनेन पररूपे च कृते ‘तर्हि’ इति रूपं साधु ।

‘एता ।

एतत्त्ववर्णविशिष्टा स्त्री-इति विग्रहे ‘एत’ शब्दात् “वर्णादनुदात्तात्तो-  
पधातो नः” इत्यनेन ङीपो, नकारादेशस्य च वैकल्पिकत्वात्तदभावपक्षे

\* यौति मिश्रीकरोत्यात्मानं पत्या इति विग्रहे ‘यु मिश्रणाऽमिश्र-  
णयोः’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लटः स्थाने ‘शत्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे धवडादेशे  
च कृते ‘युवत्’ शब्दात् “उगितश्च” इति सूत्रेण ङीप्यनुबन्धलोपे  
‘युवती’ इत्यस्य सिद्धिः ।

† ‘एत’शब्दश्चित्रवर्णवाची । ‘चित्रं किमोरकत्मापशंवलैताश्च  
कर्तुरे’ इत्यमरः ।

१ युवतियों का समूह । २ राष्ट्र में होने वाला । ३ तब । ४ चितकवरी ।

“अजाद्यतष्टाप्” इत्यनेन टापि, अनुबन्धलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्स्वादिकार्ये च कृते ‘पता’ इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>१</sup>वृषली ।

वृषलत्वजातिविशिष्टा स्त्री-इति विग्रहे ‘वृषल’ शब्दात् “जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्” इत्यनेन ‘ढीष्’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, भत्वे, “यस्येति च” इत्यनेनाकारलोपे, प्रातिपदिकत्वासौ “हल्ङ्ङाभ्यां दीर्घात्पुनिस्यपृक्तं हल्” इत्यनेन सोर्लुकि ‘वृषली’ इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>२</sup>मत्सी ।

मत्स्यत्वजातिविशिष्टा स्त्री-इति विग्रहे ‘मत्स्य’ शब्दात् “योपधप्रतिषेधे ह्य-गवय-मुकय-भनुष्य-मत्स्यानामप्रतिषेधः” इति वार्तिकवलात् “जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्” इति सूत्रेण ङीषि, अकारस्य लोपे, “मत्स्यस्य ङाभ्याम्” इति वार्तिकेन यकारस्य लोपे, प्रातिपदिकत्वात्सौ, हल्ङ्ङादिलोपे च कृते ‘मत्सी’ इति रूपं साधु ।

सन् १६३४

प्रश्नाः

- १ प्रष्टौहः, गोऽग्रम्, किम्बुच्छम्, तच्छ्लोकेन, देवायिह-  
एषु सन्धिकार्याणि सूत्रनिर्देशपुररसरं लिखत । १०
- २ सः + गच्छति, कवी + अम्, गौः + चरति, भानो + इति,  
एषां संश्लिष्टरूपाणि सप्रमाणं प्रदर्शयत । १२
- ३-सखि, भ्रू-एतयोः सप्तम्येकवचने रूपे संसाध्य, षष्, पिप-  
ठिष्, अदस्, एषां सप्तमीबहुवचने रूपाणि साधयत । २०

१ शुद्धी । २ मछली ।

- ४ क्रमु पादविज्ञेपे, डुदाब् दाने, दीङ् क्षये, एषा लुङि प्रथम-  
पुरुषैकवचने कीदृशानि रूपाणि, कथञ्च तत्सिद्धिप्रकारः । १५
- ५ गुप् रक्षणे, दीङ् क्षये, ह्री लज्जायाम्, एषां लिटि प्रथम-  
पुरुषैकवचने विशेषकार्यनिर्देशपुरस्सरं रूपाणि  
संसाध्यन्ताम् । १५
- ६ जिवत्सति, भुग्नः, भावितः, हारणा, एषा सिद्धिप्रकारः कः । १०
- ७ अतिहिमम्, पञ्चगवम्, चित्रगुः, त्रिमूर्धः, एषां विग्रहनिर्दे-  
शपुरस्सरं समासविधायकानि सूत्राणि लिखत । १०
- ८ पाणमातुरः, शारावः, श्रोत्रियः, क्षत्रियाणी, एषु विग्रहार्थ-  
प्रदर्शनपुरस्सरं प्रत्ययविधायकानि सूत्राणि निर्दिशत । ८

## उत्तराणि

प्र० [ १ ]<sup>१</sup> प्रष्टौहः ।

‘प्रष्ठ + ऊह’ इत्यवस्थाया “एत्येधत्सूट्सु” इति सूत्रेण अकारो-  
न्तारयो स्थाने औकारे वृद्धौ कृताया ‘प्रष्टौहः’ इति रूपं सिद्धम् ।

गोऽप्रम् ।

अयं प्रयोगः सन् १६३३ वर्षे ( ३६ ) पृष्ठेऽवलोकनीयः ।

<sup>२</sup>किञ्चुक्तम् ।

‘किञ्चु + उक्तम्’ इत्यवस्थायां “अय उञ्जो वो चा” इति सूत्रेण वैक-  
ल्पिके मकारात्परस्य उञ्ज उकारस्य स्थाने वकारादेशे ‘किञ्चुक्तम्’ इति  
रूपं सिद्धम् । वकाराभावपक्षे “निपात एकाजनाङ्” इति सूत्रेण

१ उदण्डता दूर करने के लिये जिनके गले-में काष्ठ बाँध देते हैं,  
ऐसे बछड़े को ‘प्रष्ठवाट्’ कहते हैं ( तस्य प्रष्टौहः ) प्रष्ठवाट का । २ क्या  
कहा ? ।

प्रगृह्यसंज्ञायां “प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्” इत्यनेन प्रकृतिभावे च कृते ‘किमु उक्तम्’ इति च रूपद्वयं सिद्धयति ।

<sup>१</sup>तच्छ्लोकेन ।

‘तद्गन्धलोकेन’ इति दशायां “स्तोः श्चुना श्चुः” इत्यनेन शकार-  
योगाद्-दकारस्य श्चुत्वेन जकारे “खरि च्” इत्यनेन जकारस्य चत्वेन  
चकारे “छत्वममीति वाच्यम्” इति वार्तिकेन शकारस्य स्थाने छकारे  
कृते ‘तच्छ्लोकेन’ इति रूपं साधु ।

देवायिह ।

अस्योत्तरं ( ४० ) पृष्ठे प्राक्प्रेक्षणीयम् ।

प्र० [ २ ] <sup>२</sup>स गच्छति ।

‘सः + गच्छति’ इति दशायां विसर्गस्य सकारे “पतत्तवोः सुलोपोऽ-  
कोरनञ्समासे हलि” इति सूत्रेण सकारस्य लोपे ‘स गच्छति’  
इति रूपं निष्पन्नम् ।

<sup>३</sup>कवी अमू ।

‘कवी + अमू’ इत्यवस्थायां “ईदूदेदिद्वचनं प्रगृह्यम्” इति सूत्रेण  
अगृह्यसंज्ञायां “प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्” इति सूत्रेण प्रकृतिभावे  
च कृते ‘कवी अमू’ इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>४</sup>गौश्वरति ।

‘गौ. + चरति’ इति दशायां “विसर्जनीयस्य सः” इत्यनेन विस-  
र्गस्य स्थाने सकारे “स्तोः श्चुना श्चुः” इत्यनेन सकारस्य श्चुत्वेन शकारे  
‘गौश्वरति’ इति रूपस्य सिद्धिः ।

<sup>५</sup>भानो इति ।

‘भानो + इति’ इत्यवस्थायां “सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनाजौ”

१ उस श्लोक से । २ वह जाता है । ३ ये दोनों कवि हैं । ४ गौ  
श्वरती है । ५ हे सूर्य ! यह ।

इति सूत्रेण वैकल्पिके प्रगृह्यसंज्ञायां “प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्” इत्यनेन प्रकृतिभावे ‘भानो इति’ इति रूपम् । प्रगृह्यसंज्ञायां अभावपक्षे- “पचोऽयवायावः” इत्यनेनाऽवदेशे “लोपः शाकल्यस्य” इत्यनेन वैकल्पिके वकारलोपे “पूर्वत्रासिद्धम्” इति सूत्रेण “लोपः शाकल्यस्य” इत्यस्यासिद्धत्वाद् “आदुगुणः” इत्यनेन गुणाभावे ‘भान इति’ इति वकारलोपाभावपक्षे- ‘भानविति’ इति रूपत्रयं सिद्धम् ।

प्र० [ ३ ] सख्यौ ।

‘सखि’ शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायां प्रातिपदिकत्वात्सप्तम्येकवचने ङौ विभक्तावनुबन्धलोपे “अौत्” इत्यनेन ङेरोत्वे “इको यणचि” इत्यनेना यणि ‘सख्यौ’ इति रूपं साधु ।

भ्रुवाम् भ्रवि ।

प्रातिपदिकसंज्ञक २ ‘भ्रू’ शब्दान्ङौ विभक्तौ समागतायां - “ङिति ह्रस्वश्च” इत्यनेन वैकल्पिकनदीसंज्ञायां “ङेरान्नद्यास्नीभ्यः” इत्यनेन ङेः स्थाने आमि, “आएनद्या.” इत्यनेनाऽऽङागमेऽनुबन्धलोपे “आटश्च” इत्यनेन षद्धौ “अचि श्नुधातुभ्रुवां यवोरियङुवङौ” इत्यनेनाऽवङादेशे च कृते ‘भ्रुवाम्’ इति । नदीसंज्ञात्वाभावपक्षे उवङि कृते ‘भ्रुवि’ इति द्वे रूपे सिद्धे ।

षट्सु ।

प्रातिपदिकत्वात्- १ ‘षष्’ शब्दात्सप्तमीबहुवचने सुपि विभक्तावनुबन्धलोपे ‘षष्+सु’ इति भूते “स्वादिप्वरसर्वनामस्थाने” इति सूत्रेण पदत्वात् “भूलां जशोऽन्ते” इति सूत्रेण पकारस्य जश्त्वेन ङकारे “ङः सि धुट्” इत्यनेन वैकल्पिके धुङागमेऽनुबन्धलोपे ‘षड्+घ्+सु’ इति स्थिते “खरि च” इति चत्वेन घकारस्य तकारे, पुनः ङकारस्य चत्वेन ङकारे कृते ‘षट्सु’ इति, धुङाभावपक्षे ‘षट्सु’ इति द्वे रूपे सिद्धे ।

१ मित्र । २ अकुटि [ मौ ] । ३ छै ।

## पिपठीःपु ।

प्रातिपदिकसंज्ञक-<sup>१</sup> 'पिपठिष्' शब्दात्सुब्विमफावनुबन्धलोपे एत्वम्प्रति  
 पत्वस्याऽसिद्धत्वात् "ससञ्जुषो रुः" इत्यनेन एत्वेऽनुबन्धलोपे 'पिपठिर् +  
 सु' इति भूते 'वोरूपधाया दीर्घ इकः' इत्यनेन दीर्घे 'पिपठिर् + सु'  
 इति स्थिते "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" इत्यनेन रेफस्य विसर्गे "वा  
 शरि" इत्यनेन पाक्षिके विसर्गस्य स्थाने विसर्गे; 'पिपठीः + सु' इति जाते  
 "नुम्-विसर्जनीय-शर्व्यवायेऽपि" इत्यनेन सस्य पत्वे 'पिपठीःषु'  
 इति । विसर्गस्य विसर्गाऽभावपक्षे "विसर्जनीयस्य सः" इत्यनेन  
 विसर्गस्य सकारे "नुम्-विसर्जनीय-शर्व्यवायेऽपि" इत्यनेनैव विभक्ति-  
 सकारस्य पत्वे "पुना पुः" इत्यनेन पूर्वसकारस्य ष्ढत्वे 'पिपठीषु' इति  
 च द्वे रूपे साधुनी ।

## अमीषु ।

प्रातिपदिकसंज्ञक <sup>२</sup> 'अदस्' शब्दात्सुब्विमफावनुबन्धलोपे "त्यदा-  
 दीनामः" इत्यनेन अकारेऽन्तादेशे "अतो गुणे" इत्यनेन पररूपे 'अद +  
 सु' इति भूते "बहुवचने भ्रूयेत्" इत्यनेन दकारोत्तरवर्त्यकारस्यैत्वे 'अदे  
 + सु' इति भूते "पत ईदुबहुवचने" इत्यनेन एकारस्य ईकारे, दस्य  
 भत्वे च "आदेशप्रत्यययोः" इत्यनेन सकारस्य पत्वे च कृते 'अमीषु'  
 इति रूपं निष्पन्नम् ।

## प्र० [ ४ ] अक्रमीत् ।

"क्रमु"-<sup>३</sup> पादविक्षेपे' इत्यस्माद्धातोर्लृङि, लृङ्गस्तिप्थनुबन्धलोपे "लृङ्-  
 लृङ्-लृङ्-द्वद्वदुदात्तः" इत्यनेनाऽऽद्यनुबन्धलोपे, च्लौ, च्लोः स्थाने सिचि  
 अनुबन्धलोपे "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" इत्यनेनेङागमेऽनुबन्धलोपे  
 "अस्ति सिचोऽपृक्ते" इत्यनेनेङागमेऽनुबन्धलोपे 'अ + क्रम् + इ।र्  
 + ई + ति' इति जाते "इट् ईटि" इत्यनेन सकारस्य लोपे "अकः

१ पढ़ने की इच्छा वाला । २ वह । ३ पैरों को चलाना ।

स वर्यो दीर्घः” इत्यनेन दीर्घे “इतश्च” इत्यनेनेकारस्य लोपे ‘अक्रमीत्’ इति रूपं सम्पन्नम् ।

अदात् ।

‘छदाष्-‘दाने’ इत्यस्माद्धातोर्छङि, छङः स्थाने तिप्प्यनुबन्धलोपे “इतश्च” इत्यनेन इकारस्य लोपे “लुङ् लङ्-लृङ्-द्वडुदात्तः” इत्यनेनाडागमेऽनुबन्धलोपे “चिल लुङि” इत्यनेन च्लौ “च्लेः सिच्” इत्यनेन च्लेः सिचि-अनुबन्धलोपे ‘अ + दा + स् । त्’ इति स्थिते “दा-धा-ध्वदाप्” इत्यनेन ‘दा’-इत्यस्य वृत्वात् “गाति-स्था-घु-पा-भूम्यः सिचः परसौपदेशु” इत्यनेन सिचो छकि ‘अदात्’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

अदारत् ।

‘दीङ्-क्षये’ इत्यस्माद्धातोः “लुङ्” इति सूत्रेण छङि, छङः स्थाने ‘त’-प्रत्ययेऽडागमेऽनुबन्धलोपे ‘अ + दी + त’ इति भूते “मिनाति-मिनोति-दीङां त्यपि च” इत्यनेनाऽऽत्वे “चिल लुङि” इत्यनेन च्लौ “च्लेः सिच्” इत्यनेन सिच्यनुबन्धलोपे ‘अ + दा + स् + त’ इति जाते “दा-धा-ध्वदाप्” इत्यनेन घुसञ्ज्ञात्वे “स्थाध्वोरिच्च” इत्यनेनेत्वे प्राप्ते, परञ्च “स्थाध्वोरित्वे दीङः प्रतिषेधः” इति तन्निषेधे कृते ‘अदास्त’ इति रूपं साधु ।

प्र० [ ५ ] गोपायाञ्चकार ।

अस्योत्तर सन् १९३२ वर्षे ३१) पृष्ठे प्रष्टव्यम् ।

दिदीये ।

‘दीङ् क्षये’ इत्यस्माद्धातोः “परोचे लिट्” इत्यनेन लिट्यनुबन्धलोपे, लस्य स्थाने ‘त’-प्रत्यये ‘दी + त’ इति स्थिते “लिट्स्तभ्योरोशिरेच्” इत्यनेनैर्यनुबन्धलोपे, “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इत्यनेन द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यनेनाभ्याससञ्ज्ञायां “ह्रस्वः” इत्यनेन ह्रस्वे ‘दि + दी

१ देना । २ क्षीण [ नाश ] होना ।

+ए' इति जाते "दीडो युडचि किडति" इत्यनेन युडागमेऽनुबन्ध-  
लोपे, तस्यासिद्धत्वात् "परनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य" इत्यनेन यणि  
शप्ते "पुग्युटावुवड्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ" इति निषेधवचनेन युटः  
सिद्धत्वाद्यणोऽभावे 'दिदीये' इति रूपं सिद्धम् ।

जिहाय ।

'हौ'-<sup>१</sup>लजायाम्' इत्यस्माद्धातोः "लिट् च" इत्यनेन लिटि, लस्य स्थाने  
तिपि "परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसण्वयमाः" इत्यनेन तिपः स्थाने  
णलि, अनुबन्धलोपे "लिटि धातोरनभ्यासस्य" इत्यनेन द्वित्वे  
"पूर्वोऽभ्यासः" इत्यनेनाभ्यासस्य ह्रस्वे 'हि + हौ × अ' इति भूते  
"कुहोश्चुः" इत्यनेन चुत्वेन हकारस्य भकारे "अभ्यासे चर्च" इत्यनेन  
चर्त्वेन भकारस्य जकारे "अचो जिणति" इत्यनेन वृद्धौ,  
"एचोऽयवायावः" इत्यनेनाऽयादेशे 'जिहाय' इति रूपं निष्पन्नम् ।

प्र० [ ६ ] २ जिघत्सति ।

अनुमिच्छतीति विग्रहे 'अद-भक्षणे' इत्यस्माद्धातोः "धातोः कर्मणः  
समानकर्तृकादिच्छायां वा" इत्यनेन 'सन्'प्रत्यये "लुङ्सनोर्धरलृ" इत्यनेनादौ  
घस्तादेशेऽनुबन्धलोपे, 'धस् + स' इति जाते, "एकाच उप-  
देशेऽनुदात्तात्" इत्यनेन, इदो निषेधे "सन्यडो." इत्यनेन द्वित्वे  
'धस् + धस् + स + अ + ति' इति स्थिते "पूर्वोऽभ्यासः" इत्यनेनाभ्या-  
ससञ्ज्ञायां "हलादिः शेषः" इत्यनेन पूर्वसकारस्य लोपे "कुहोश्चुः" इत्यनेन  
धकारस्य भकारे, भस्य जकारे "सन्यतः" इत्यनेनाभ्यासाऽकार-  
स्येवे "सः स्यार्धधातुके" इत्यनेन सस्य तकारे, तस्य 'जिघत्स'-इत्यस्य  
"सनाद्यन्ता धातवः" इत्यनेन धातुसञ्ज्ञायां "वर्तमाने लट्" इत्यनेन  
लटि, अनुबन्धलोपे, लस्य स्थाने तिप्यनुबन्धलोपे "कर्त्तरि शप्" इत्यनेन  
शप्यनुबन्धलोपे "अतो गुणे" इत्यनेन पररूपे 'जिघत्सति' इति रूपं  
साधु ।

१ लज्जित होना । २ खाना चाहता है ।



भुग्नः ।

‘भुग्नः’—अस्योत्तरं सन् १६३१ वर्षे ( २४ ) पृष्ठेऽवलोकनीयम् ।

‘भावितः ।

अभावि इति विग्रहे भावयते: “निष्ठा” इति सूत्रेण ‘क्त’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, इडागमे “निष्ठायां सेटि” इत्यनेन णेलोपे “कृत्तद्धित-समासाश्च” इत्यनेन प्रातिपदिकत्वात्सौ रुत्वे विसर्गे च कृते ‘भावितः’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

‘हारणा ।

हारणम् इति विग्रहे ‘हारि’धातोः “ण्यासश्चन्थो युच्” इत्यनेन ‘युच्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “युवोरनाकौ” इत्यनेन योरनादेशे, णिलोपे, णत्वे, टापि, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन स्वादिकार्ये च कृते ‘हारणा’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

प्र० [ ७ ] १ अतिहिमम् ।

हिमस्यात्यय, इति लौकिकविग्रहे ‘हिम + ङस् + अति’ इत्यलौकिकविग्रहे च “अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्युद्ध्यर्थाभावा-ऽत्यया-ऽसम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथा-ऽऽनुपूर्व्य-यौगपद्य राट्-श्य-सम्पत्ति-साकल्या-ऽन्तवचनेषु” इत्यनेन समासे “प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्” इत्यनेन ‘अति’ इत्यस्योपसर्जनसंज्ञायाम्, “उपसर्जनं पूर्वम्” इत्यनेन पूर्वप्रयोगे, समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इत्यनेन सुपो लुकि, एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सौ विभक्तौ समागतायाम्, “अव्ययीभावश्च” इत्यनेनाव्ययत्वात्सोर्लुकि प्राप्ते “नाऽव्ययीभावादतोऽन्त्वपञ्चम्याः” इत्यनेन तन्निषेधे सोरमादेशे ‘अभि पूर्वः’ इत्यनेन पूर्वरूपे च कृते ‘अतिहिमम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

१ भावित किया हुआ । २ हारना । ३ हिम का नाश ।

पञ्चगवम् ।

अस्योत्तरं सन् १६३३ वर्षे ( ४६ ) पृष्ठे प्राक्प्रेक्षणीयम् ।

चित्रगुः ।

अयमपि प्रयोगः सन् १६३० वर्षे ( ११ ) पृष्ठे प्रेक्षणीयः ।

त्रिमूर्धः ।

त्रयो मूर्धानो यस्येति लौकिकविग्रहे 'त्रि + जस् + मूर्धन् + जस्' इत्य-  
लौकिकविग्रहे च बहुव्रीहिसमासे, सुपो छकि "द्वित्रिभ्यां ष मूर्धनः"  
इत्यनेन 'ष' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, भत्वे "नस्तद्धिते" इत्यनेन टिलोपे,  
प्रातिपदिकत्वात्सौ, एत्वे विसर्गे च कृते 'त्रिमूर्धः' इति रूपं निष्पन्नम् ।

प्र० [ ८ ] वायमातुरः ।

पण्णां मातृणामपत्यमिति विग्रहे "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च"  
इत्यनेन समासे "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इत्यनेन सुपो छकि, पस्य  
जहृत्वेन डकारे "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" इत्यनेन डकारस्य  
एत्वे 'षण्मातृ' शब्दात् "मातुरत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः" इत्यनेन  
'अण्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, एत्वे, रपरत्वे "तद्धितेष्वच्चाभादेः" इत्यने-  
नाऽऽदिवृद्धौ, प्रातिपदिकत्वात्सौ एत्वे विसर्गे च सति 'वायमातुरः' इति  
रूपं सिद्धम् ।

शारावः ।

असौ प्रयोगः सन् १६३१ वर्षे ( २६ ) पृष्ठे वर्तते ।

ओत्रियः ।

छन्दोऽधीते-इति विग्रहे 'छन्दस्' शब्दात् "ओत्रियंश्छन्दोऽधीते"  
इत्यनेन 'घन्' प्रत्यये, छन्दसः ओत्रादेशे च "आयनेयीनीयियः फ-ढ-ख-

१ तीन सिर वाला । २ छै माताओं का पुत्र ( कार्तिकेय ) । ३ वेद-  
पाठी, या वेद पढ़नेवाला ।

छ-धां प्रत्ययादीनाम्” इत्यनेन धस्येयादेशे, ततः “यस्येति च” इत्यनेनाकारस्य लोपे, प्रातिपदिकत्वासौ सत्वे विसर्गे च कृते ‘श्रोत्रियाः’ इति रूपं सिद्धम् ।

### ‘क्षत्रियाणी’ ।

क्षत्रियत्वजातिविशिष्टा स्त्री-इति विग्रहे ‘क्षत्रिय’शब्दात् “अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे” इति वार्तिकेन वैकल्पिके आनुकि, ङीषि-अनुबन्धलोपे च कृते, सत्वे, प्रातिपदिकत्वात्सौ “हल्ङ्ङाभ्यां दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्” इत्यनेन सोर्लुकि ‘क्षत्रियाणी’ इति रूपं साधु ।

सन् १६३५

### प्रश्नाः

- १ शिवेहि, अमी ईशाः, अहर्गणः, देवा इह । एषु प्रयोगेषु सन्धिकार्य्याणि तत्प्रतिबन्धकानि च दर्शनीयानि । १५
- २ रामाय, सव्वेषाम्, यत्यौ, मत्याम्, लिट्सु, त्वयि, प्राचः, पुंभ्याम्, अहःसु, धनूंषि । एतानि पदानि संचितोपयुक्तप्रक्रियया साधनीयानि । ३०
- ३ अभूवम्, अक्षौषीः, अशृणवम्, जगन्थ, जघनिथ, दधाथ, अनजानि, अक्षत, स्तमान, गृहाण । एतान् विशेषकार्य्याणि प्रदर्श्य साधयत । ३०
- ४ बुभूषति, प्रतिष्ठते, स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः, आदृत्यः, भुग्नः, हित्वा, परमराजः, बाहीकः, मेधावी, अमुतः । एते साधनीयाः । २५

## उत्तराणि -

प्र० [ १ ] शिवेहि ।

अस्योत्तर सन् १६३० वर्षे ( २ ) पृष्ठे प्राग्दत्तं विराजते ।

१ अमी ईशाः ।

‘अमी+ईशाः’ इत्यत्र “अदसो मात्” इति सूत्रेण मकारोत्तरवर्तिन ईकारस्य प्रगृह्यसञ्ज्ञार्था “प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्” इति सूत्रेण प्रकृतिभावे च कृते ‘अमी ईशाः’ इति रूपं सिद्धम् ।

२ अहर्गणः ।

‘अहन्+गण’ इत्यत्र “अलोऽन्त्यस्य” इति सहकारेण “रोः सुपि” इति सूत्रेण नकारस्य रेफादेशे ‘अहर्गणः’ इति रूपं सिद्धम् ।

देवा इह ।

अस्योत्तरं सन् १६३३ वर्षे ( ४० ) पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

प्र० [ २ ] रामाय । -

अस्योत्तर १६३२ वर्षे ( २८ ) पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

सर्वेषाम् ।

प्रातिपदिकसञ्ज्ञक—‘सर्व’शब्दस्य “सर्वादीनि सर्वनामानि” इत्यनेन ‘सर्वनामसंज्ञार्था षष्ठीबहुवचने ‘आम्’ विभक्तौ “न विभक्तौ लुराणाः” इत्यनेन मकारस्येत्सञ्ज्ञानिवेधे ‘सर्व + आम्’ इति स्थिते “आमि सर्वनाम्नः सुट्” इत्यनेनाऽऽम सुडागमेऽनुबन्धलोपे ‘सर्व + स् + आम्’ इति जाते “बहुवचने अल्पेत्” इति सूत्रेण वकारोत्तरवर्तिनोऽकारस्यैत्वे “यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन ग्रह्यन्ते” इति परिभाषाबलेन ‘आम्’ग्रहणेन सामो ग्रहणात् “आदेशप्रत्यययोः” इत्यनेन साम सका

१ ये प्रभु, या अधिपति हैं । २ दिन-समूह अर्थात् सम्वत्सर ।

रस्य पत्वे “अचो रहाभ्यां छे” इति सूत्रेण द्वित्वे ‘सर्वेषाम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

पत्यौ ।

प्रातिपदिकसंज्ञक १ ‘पति’ शब्दात्सप्तम्येकवचने ङौ विभक्तौ समागतायां “पतिः समास एव” इति नियमेन विसंज्ञाभावात् “अत्रौत्” इत्यनेनौत्वे “इको यणचि” इत्यनेन यणि च कृते ‘पत्यौ’ इति रूपं निष्पन्नम् ।  
मत्याम् ।

अस्योत्तरं सन् १९३१ वर्षे ( १६ ) पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

लिट्सु ।

प्रातिपदिकत्वात् २ ‘लिट्’ शब्दात्सप्तमीबहुवचने सुपि विभक्तावनुबन्धलोपे ‘लिट्Xसु’ इति जाते “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति सूत्रेण पदसंज्ञाया “हो ढः” इति सूत्रेण हस्य ङत्वे “भलां जशोऽन्ते” इति सूत्रेण ङकारस्य ङकारे “खरि च” इति सूत्रेण चत्वे स्यासिद्धत्वात्पूर्वं “ङः सि धुट्” इति सूत्रेण वैकल्पिके धुडागमेऽनुबन्धलोपे, ततः “खरि च” इति सूत्रेण धकारस्य तकारे, पुनः ङकारस्य चत्वेन टकारे च कृते \*‘लिट्सु’ इति । धुडभावपक्षे ङकारस्य चत्वेन टकारे ‘लिट्सु’ इति द्वे रूपे साधुनी ।

त्वयि ।

प्रातिपदिकसंज्ञकात् ३ ‘युष्मद्’ शब्दात् ‘ङि’ विभक्तावनुबन्धलोपे “त्वमावेकवचने” इत्यनेन मपर्यन्तस्य युष्मदस्त्वाददेशे ‘त्व + अद् + इ’ इति

\* नन्वत्र “चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्” इति चातिकेन तकारस्य यत्वं तु न शङ्क्यम्, चत्वेन निष्पन्नतकारस्यासिद्धत्वात् ।  
“घुना घुः” इति सूत्रेण ष्टुत्वमपि न शङ्क्यम्, “न पदान्तादोरनाम्” इति निषेधादिति शिवम् ।

१ पति । २ चाटना । ३ तू ।

स्थिते “अतो गुणे” इत्यनेन पररूपे “योऽचि” इत्यनेन दकारस्य यकारे-  
‘त्वयि’ इति रूपं सिद्धम् ।

प्राचः ।

प्र पूर्वात्-<sup>१</sup>‘अघ’ धातोः “ऋत्विग्-दधृक्-लृग्-दिगुणिगञ्-  
युजि-कृञ्वां च” इत्यनेन ‘विवन्’प्रत्यये तस्य लोपे, ‘कृदन्तत्वात्  
“कृत्तद्धितसमासाश्च” इत्यनेन प्रातिपदिकसंज्ञाया ‘शस्’विभक्तावनु-  
बन्धलोपे ‘प्र + अनच् + अस्’ इत्यवस्थायां “अनिदितां हल उपधायाः  
फिङिति” इत्यनेन नकारस्य लोपे ‘प्र + अच् + अस्’ इति जाते “अचः”  
इत्यनेनाकारस्य लोपे “चौ” इत्यनेन दीर्घे, संयोगे, सकारस्य रुत्वे विसर्गे-  
च कृते ‘प्राचः’ इति रूपं साधु ।

पुंभ्याम् ।

प्रातिपदिकसंज्ञकात्-<sup>२</sup>‘पुंस्’शब्दात् भ्यामि विभक्तौ ‘पुंस् + भ्याम्’  
इति स्थिते “संयोगान्तस्य लोपः” इत्यनेन सकारस्य लोपे ‘निमित्ता-  
ऽपाये नैमिचित्कस्याऽप्यपायः’ इत्यनुस्वारनिवृत्तौ भकारमादाय पुनरनु-  
स्वारे, परसवर्णे च कृते ‘पुंभ्याम्’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

अहःसु ।

प्रातिपदिकत्वात् <sup>३</sup>‘अहन’ शब्दात्सुप्यनुबन्धलोपे ‘अहन + सु’ इति-  
स्थिते “अहन” इत्यनेन नकारस्य रुत्वेऽनुबन्धलोपे “खरवसानयोर्वि-  
सर्जनीयः” इत्यनेन रेफस्य विसर्गे ‘अहःसु’ इति रूपं साधु ।

धनूंषि ।

प्रातिपदिकत्वात् <sup>४</sup>‘धनुष्’ शब्दाज्जसि विभक्तौ समागतायां “जश्श-  
सोः शिः” इत्यनेन जसः श्वादेशेऽनुबन्धलोपे ‘धनुष् + इ’ इति जाते  
“नपुंसकस्य भ्रूलचः” इत्यनेन नुम्यनुबन्धलोपे ‘धनु + न् + ण् + इ’ इति

१ अच्छे गति मे चलने वाला, या पूज्य । २ पुरुष । ३ दिन । ४ धनुष ।



प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, ध्रुवः स्थाने 'श्रृ' इत्यादेशे च 'अ + श्रृ + नु + मि' इति भूते "तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः" इत्यनेनामादेशे, "ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्" इति वातिकेन णत्वे, गुरोऽवादेशे च कृते 'अश्रृणवम्' इति रूपं साधु ।

### जगन्थ ।

'गम्'धातोः "लिट् च" इत्यनेन लिट्यनुबन्धलोपे, लस्य स्थाने मन्त्रमपुषैकवचने सिपि "परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणत्वमाः" इत्यनेन थलि 'गम् + थ' इति जाते "लिटि" धातोरनभ्यासस्य" इत्यनेन द्वित्वे "पूर्वोऽभ्यासः" इत्यभ्याससंज्ञाया "हलादिः शेषः" इत्यनेनाभ्यासस्य लोपे 'ग + गम् + थ' इति स्थिते "कुहोश्चुः" इति चुत्वेन चवर्गादेशे 'ज + गम् + थ' इति जाते "ऋतो भारद्वाजस्य" इति नियमात्पाक्षिके इडभावे, अनुस्वारे परसर्वण्ये च सति 'जगन्थ' इति, इडागमे कृते तु 'जगमिथ' इति द्वे रूपे सम्पद्येते ।

### जघन्थ ।

'हन' 'हिंसागत्योः' इत्यस्माद्धातोरलिटि, अनुबन्धलोपे, लकारस्थाने सिपि "परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणत्वमाः" इत्यनेन सिपः स्थाने थलि, अनुबन्धलोपे 'हन + थ' इति स्थिते "लिटि धातोरनभ्यासस्य" इति सूत्रेण द्वित्वे, "पूर्वोऽभ्यासः" इत्यभ्याससंज्ञायां "हलादिः शेषः" इति हलादेः शेषे लोपे च, चुत्वे, जश्त्वे लोपे च भारद्वाजनियमात्पाक्षिके इडागमे, णित्प्रत्ययपरत्वामावाङ्मकारपरत्वामावाच्च "हो हन्तेर्णिण-रान्नेपु" इति, सूत्रस्याऽप्राप्त्या "अभ्यासाच्च" इति कृत्वे 'जघन्थ' इति, इडभावपक्षे 'जघन्थ' इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

### दधाथ ।

१ धारणपोषणार्थकात्- 'धा' धातोरलिटि, लिट् सिपि, सिपस्थलि, अनु-



बन्धलोपे, 'घा + थ' इति जाते "लिटि धातोर्नभ्यासस्य" इति द्वित्वे, "पूर्वोऽभ्यासः" इत्यभ्यासत्वे, "ह्रस्वः" इत्यनेन ह्रस्वे, 'घ + धा + थ' इति भूते "अभ्यासे चर्च" इति जश्त्वेन दकारे, "ऋतो भारद्वाजस्य" इति वैकल्पिकेऽभावे 'दध्याथ' इति, इटि कृते तु-आलोपे 'दधिय' इति द्वे रूपे भूते ।

### अनजानि ।

१ 'अञ्ज' धातोर्लोटि, तत्स्थाने, 'मिप्' प्रत्यये "रुधादिभ्यः अम्" इति सूत्रेण इन्म्यनुबन्धलोपे "आन्नलोपः" इत्यनेनाकारस्य लोपे "लोटो लङ् वत्" इति लङ्कार्यातिदेशेन "तस्थस्थमिषां तान्तन्तामः" इत्यनेन मिपः प्राप्तममादेरां बाधित्वा 'मेनिः' इति सूत्रेण मेन्यादेरो इकारोच्चारणसामर्थ्यात्, नेरि कारस्येत्वाभावे "आडुत्तमस्य पिच" इत्यनेनाऽऽडागमेऽनुबन्धलोपे "निमितापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः" इति न्यायेन अकारनिवृत्तावनुस्वारे परसवर्णे च कृते 'अनजानि' इति रूपं सिद्धम् ।

### अक्षत ।

१ 'क्षणु' २ 'हिंसायाम्' इत्यस्माद्धातोः "लुङ्" इति सूत्रेण लुङि, लुङः स्थाने 'त' प्रत्यये "लुङ्-लङ्-लृङ् दवडुदात्तः" इत्यनेनाडागमेऽनुबन्धलोपे "ल्लि लुङि" इत्यनेन ल्लौ "ल्लेः सिच्" इति सिचि "तनादिभ्यस्तथासोः" इति सूत्रेण सिचः पाक्षिके लुकि "अनुदात्तोपदेशघनति-तनोत्यादीनामनुनासिकलोपो ऋलि क्लिति" इति सूत्रेण नकारलोपे 'अक्षत' इति रूपं सिद्धम् । लुगभावपक्षे—इटि, षत्वे षुत्वे च कृते 'अक्षणिष्ट' इति द्वे रूपे साधुनी ।

१ धारण करमा, पालन-पोषण करमा । २ प्रकट करमा, चिकन करमा, सुन्दर होना, जाना । ३ मारना ।

स्तमान ।

अस्य साधनप्रकारः सन् १६३० वर्षे ( ८ ) पृष्ठेऽवलोकनीयः ।

गृहाण ।

‘ग्रह’ ‘उपादाने’ इत्यस्माद्धातोः “लोट् च” इति सूत्रेण लोटि, लोटः स्याने सिपि, “सेर्ह्यपिच्च” इत्यनेन सिपो हौ “क्रयादिभ्यः श्वा” इति सूत्रेण ‘श्वा’प्रत्यये “ग्रहि-ज्या-त्रयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति गृज्जतीनां डिति च” इत्यनेन सम्प्रसारणे, “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “हलः इनः शानज्भौ” इत्यनेन इनः शान-जादेशेऽनुबन्धलोपे ‘गृह्+आन+हि’ इति स्थिते, नकारस्य रात्वे “अतो हे.” इत्यनेन हेर्लुकि ‘गृहाण’ इति स्म साधु ।

प्र० [ ४ ] वुभूपति ।

असौ प्रयोगः सन् १६३० वर्षे ( ९ ) पृष्ठे द्रष्टव्यः ।

‘प्रतिष्ठते’ ।

‘प्रतिष्ठते’ इत्यत्र “समवप्रविभ्यः स्थः” इति सूत्रेणाऽऽत्मने-पदम्, ‘प्रतिष्ठते’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

‘स्मरसि कृष्ण ! गोकुले वत्स्यामः ।

‘स्मरसि’—इत्युपपदात् ‘वस्’धातोर्भूतानयतने लङि प्राप्ते, त बाधित्वा “अभिज्ञावचने लृट्” इत्यनेन लटि, लटो मसि “स्यतासी लृलुटोः” इत्यनेन ‘स्य’प्रत्यये “सः स्यार्धधातुके” इत्यनेन सस्य तकारे “अतो दीर्घो यञि” इत्यनेन दीर्घे, सकारस्य रात्वे विसर्गे च कृते तत्सिद्धिः ।

१ केना । २ ०हरता है । ३ हे कृष्ण ! स्मरण है ? कि [हम लोग] गोकुल में रहते थे ।

१ आद्यत्यः ।

आदुर्तु योग्यः इति विग्रहे 'आद् उपसर्गक-‘ट्’ धातोः “पतिस्तु-  
शारवृद्धजुषः क्यप्” इति सूत्रेण क्यप्पुन्यन्धलोपे “ह्रस्वस्य पिति  
कृति तुक्” इत्यनेन पुगागमेऽनुबन्धलोपे, प्रातिपदिकत्वात्सौ रत्वे विसर्गे  
च सति 'आद्यत्यः' इति रूपं साधु ।

भुग्नः ।

‘भुग्नः’ अस्योत्तरं सन् १६३१ वर्षे ( २४ ) पृष्ठे प्रेक्षणीयम् ।

२ हित्वा ।

धानम् इति विग्रहे 'धा' धातोः “समानकर्तृकयोः पूर्वकाले”  
इत्यनेन 'वत्वा'प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “दधातेर्हिः” इत्यनेन धा-स्थाने 'हि'  
इत्यादेशे, ततः प्रातिपदिकत्वे स्वादिकार्ये च कृते 'हित्वा' इति रूपं साधु ।

परमराजः ।

असौ प्रयोगः सन् १६३० वर्षे ( ११ ) पृष्ठे वर्तते ।

३ बाहीकः ।

बहिर्भवः इति विग्रहे 'बहिप्'शब्दात् “ईकक्च” इत्यनेन 'ईकक्'-  
प्रत्यये, टिलोपे च “किति च” इत्यादेरचो वृद्धौ, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ  
रत्वे विसर्गे च कृते 'बाहीकः' इति रूपं निष्पन्नम् ।

४ मेधावी ।

मेधा अस्यास्तीति विग्रहे 'मेधा'शब्दात् “अस्मायामेधास्त्रजो  
विनिः” इत्यनेन 'विनि' प्रत्यये, “सौ च” इत्यनेन दीर्घे, सोलोपे,  
“नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति सूत्रेण नकारस्य लोपे 'मेधावी'  
इति रूपं सिद्धम् ।

१ आदरणीय, आदर सत्कार करने योग्य । २ धारण करके ।

३ बाहर होने वाला । ४ बुद्धिमान् ।

‘अमुतः ।

अमुष्मादिति विग्रहे ‘अदस्’शब्दात् “पञ्चम्यास्तसिल्” इति सूत्रेण ‘तसिल्’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इत्यनेन सुपो लुकि “त्यदादीनामः” इत्यत्वे “अतो गुणे” इत्यनेन पररूपे “अदसोऽसेर्दादु दो मः” इत्यनेन उत्वे, मत्वे, अव्ययत्वात्सोर्लुकि, सत्वे विसर्गे च कृते ‘अमुतः’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

...

सन १९३६

प्रश्नाः

- १ कृष्णाङ्घ्रिः, उ उगेशः, किल् ह्लादयति, शम्भू राजते । एतेषु सूत्रोल्लेखपूर्वकं सन्धिकार्याणि दर्शयत । २०
- २ पूर्वस्मात्, प्रव्यम्, श्रीयाम्, कतरत्, राजभिः, युष्मस्यम्, समीचः, दक्, पुद-ती, उदेतोः । एतानि संज्ञितप्रक्रियया साधनीयानि । ३०
- ३ आतिष्म, अहत, द्वासीष्ट, ससौ, लोमिता, कुर्वीत, गृहाण, अजीगण्यत् । एतानि रूपाणि सम्यक् साधनीयानि । ३२
- ४—जिघत्सति, सरोजम्, उन्निमम् । एते प्रयोगाः साधनीयाः । ६
- ५—नावतोऽश्वात्पतति, यूपदारु, औत्सः, गोपी । एषु प्रयोगेषु विशेषकार्याणि दर्शनीयानि । ६

:०\*०:

उत्तराणि

‘कृष्णाङ्घ्रिः ।

‘कृष्ण + ऋद्धि-’ इत्यवस्थायां ‘स्थानेऽन्तरत्नमः’ इति परिभाषा-

१ उससे । २ भगवान् श्रीकृष्ण की समृद्धि ।

बलेन कण्ठमूर्द्धस्थानिकयोः अकार-ऊकारयोः स्थाने “उरण् रपरः” इति सूत्रसहकारेण “आद्गुणः” इति कण्ठमूर्द्धस्थानिके गुणे अरि जलपुम्बिकान्यायेन रेफस्योद्ध्वगमने च कृते ‘कृष्णर्द्धिः’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

१ उ उमेशः ।

‘उ + उमेशः’ इत्यवस्थायां पूर्वस्योकारस्य “चादयोऽसस्वे” इत्यनेन निपातसञ्ज्ञायां “निपात एकाजनाङ्” इत्यनेन प्रगृह्यसञ्ज्ञायां कृतायां “प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्” इत्यनेन प्रकृतिभावे च कृते ‘उ उमेशः’ इति रूपं सिद्धम् ।

२ किल् ह्लादयति ।

‘किम् + ह्लादयति’ इत्यवस्थाया “मोऽनुस्वारः” इत्यनेन प्रातमनुस्वारम्प्रवाध्य “यवलपरे यवला वा” इति वार्तिकेन लपरके हकारे परे मकारस्य सानुनासिके लकारे कृते ‘किल् ह्लादयति’ इति । सानुनासिकलक्ष-रभावपक्षे “मोऽनुस्वारः” इत्यनेन मकारस्यानुस्वारे ‘कि ह्लादयति’ इति रूपद्वयं साधु ।

३ शम्भू राजते ।

‘शगुस् + राजते’ इति दशायां “ससञ्जुषो रुः” इत्यनेन सकारस्य रुत्वेऽनुबन्धलोपे, ‘शगुर् + राजते’ इति जाते “रोरि” इत्यनेन रेफस्य लोपे “ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इत्यनेन मकारोत्तरवर्तिन उकारस्य दीर्घे ‘शम्भू राजते’ इति रूपं साधु ।

प्र० [ २ ] पूर्वस्मात् ।

४ ‘पूर्व’ शब्दात्प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां ततः सर्वनामसञ्ज्ञायाश्च कृतायां प्रातिपदिकत्वात्पञ्चम्येकवचने ङसि विभक्तावनुबन्धलोपे “न विभक्तौ तुस्माः”

१ क्या यह महादेव हैं ? । २ क्या प्रसन्न करता है ? । ३ श्रीशम्भु भगवान् प्रकाशमान हैं । ४ पहला ।

इत्यनेन सकारस्येत्संज्ञानिवेधे “टाङ्सिङ्सामिनात्स्याः” इति सूत्रं चाधित्वा “ङ्सिङ्योः स्मात्स्मिनौ” इति स्मादादेशे प्राप्ते “पूर्वाप्स्मिन् नवभ्यो वा” इति सूत्रेण वैकल्पिके स्मादादेशे कृते ‘पूर्व + स्मात्’ इति स्थिते, “भलां जशोऽन्ते” इत्यनेन जश्त्वे “वाऽवसाने” इत्यनेन वैकल्पिके चत्वे ‘पूर्वस्मात्’ इति । चर्त्वाभावपक्षे—‘पूर्वस्माद्’ इति । एादादेशाभावपक्षे—‘पूर्व + अस्’ इत्यवस्थाया “टाङ्सिङ्सामिनात्स्याः” इत्यनेनाऽऽदादेशे, जश्त्वे, वैकल्पिके चत्वे च कृते ‘पूर्वात्’ इति । चर्त्वाभावपक्षे—‘पूर्वाट्’ इति चत्वारि रूपाणि भवन्ति ।

### प्रध्यम् ।

प्रातिपदिकत्वात् ‘प्रघी’शब्दाद् द्वितीयैकवचने ‘अम्’ विभक्तौ समागतायां सत्याम्, ‘प्रघी + अम्’ इति स्थिते, “अचि श्नुधातुभ्रुवां च्वोरियङुवङौ” इत्यनेनेयङादेशे प्राप्ते तम्प्रवाच्य “एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य” इति सूत्रेण यणि ‘प्रध्यम्’ इति रूपं साधु ।

### श्रीणाम् ।

‘श्री’शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायाम्, ‘आम्’ विभक्तौ “वाऽऽमि” इत्यनेन वैकल्पिके नदीसंज्ञाया “ह्रस्वनद्यापो नुद्” इत्यनेन नुडागमेऽनुबन्धतोपे च “अट्कुप्वाङ्नुम्वयवायेऽपि” इत्यनेन नकारस्य यत्वे ‘श्रीणाम्’ इति । नदीत्वाभावपक्षे—“अचि श्नुधातुभ्रुवां च्वोरियङुवङौ” इत्यनेनेयङि कृते ‘श्रियाम्’ इति द्वे रूपे सिद्धे ।

### कतरत् ।

‘कतर’शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञाया सौ विभक्तौ “स्वमोर्नपुंसकात्” इत्यनेन सोर्लुकि प्राप्ते, तं चाधित्वा “अतोऽम्” इत्यनेन सोरमादेशे प्राप्ते, तमपि प्रवाच्य “अदङ्गतरादिभ्यः पञ्चभ्यः” इत्यनेन सोरदङादेशेऽनु-

१ अच्छे ध्यान वाला । २ श्री शब्द का अर्थ है शोभा या लक्ष्मी ।  
३ दो में से कौन सा ( कुल ) ।

अन्धलोपे च कृते 'कतर + अदङ्' इति जाते "यच्चि भम्" इति सूत्रेण भसञ्जायां भत्वात् "ट्टेः" इत्यनेन टिलोपे, टेलुभत्वात् "प्रथमयोः पूर्वस-  
वर्णाः" इत्यनेन पूर्वसवर्णादीर्घाभावे, ततो "वाऽवसाने" इति वैकल्पिके  
ङकारस्य चत्वेन तकारे, 'कतरत्'-'कतरद्' इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

### राजभिः ।

प्रातिपदिकत्वात्-<sup>१</sup>'राजन्'शब्दाद्भिसि विभक्तौ समागतायां "नलोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य" इत्यनेन नकारस्य लोपे, तस्याऽसिद्धत्वाददन्तत्वा-  
भावेन "अतो भिस् पेस्" इत्यनेन भिस ऐसोऽभावे, सकारस्य रुत्वे विसर्गे  
च कृते 'राजभिः' इति रूपं निष्पन्नम् ।

### युष्मभ्यम् ।

प्रातिपदिकसंज्ञकात्-<sup>२</sup>'युष्मद्'शब्दात् भ्यसि विभक्तौ "भ्यसोऽभ्यम्"  
इत्यनेन भ्यसोऽभ्यमादेशे "शेषे लोपः" इति सूत्रेण टिलोपे 'युष्मभ्यम्'  
इति रूपं निष्पन्नम् ।

### समीचः ।

सम् पूर्वात्-<sup>३</sup>'अञ्च्'धातोः "ऋत्विग्-दधृक्-सङ्-दिगुभिरागो-  
ञ्चु-युजि-क्रुञ्चां च" इति सूत्रेण 'विवन्'प्रत्यये, तस्य सर्वापहरलोपे "समः  
समि" इत्यनेन समः सम्यादेशे, अकृतव्यूहपरिमाषया यणोऽभावे, कृदन्त-  
त्वात् "कृत्तद्धितसमासाश्च" इत्यनेन प्रातिपदिकत्वात् 'शस्'विभक्ता-  
वगुबन्धलोपे, "अच" इत्यनेनाऽकारलोपे "चौ" इत्यनेन दीर्घे, सकारस्य  
रुत्वे विसर्गे च कृते 'समीचः' इति रूपं साधु ।

### दृक् ।

प्रातिपदिकसंज्ञक-<sup>४</sup>'दृश्'शब्दात्सौ विभक्तौ समागतायाम्, तस्य लोपे  
"अश्च-अस्ज-रुज-गुज-यज-राज-भाज-च्छशां षः" इत्यनेन शकारो-

१ राजा । २ तूँ । ३ समपूर्वक 'अञ्च' धातु का अर्थ है अच्छी प्रकार  
चलने वाला पूजा या करने वाला । ४ आँक ।

रस्य धत्वे, “भूलां जशोऽन्ते” इति जश्वेन डकारे “त्यदादिषु दृशो-  
ऽनालोचने कञ्च” इति सूत्रेण दृशोः क्विनो विधानादत्र क्विनोऽभावेऽपि  
डकारस्य “क्विन्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वेन गकारे “वाऽवसाने” इति  
वैकल्पिके चत्वेन गकारस्य ककारे ‘दक्’ ‘दग्’ इति द्वे रूपे सिद्धे ।

तुदन्ती ।

प्रातिपदिकसञ्जक ‘तुदत्’शब्दात् ‘औ’विभक्तौ ‘तुदत् + औ’  
इति स्थितौ “नपुंसकाच्च” इति सूत्रेण औः इयादेशोऽनुबन्धलोपे  
“आच्छीनद्योर्नुम्” इत्यनेन वैकल्पिके गुम्यनुबन्धलोपे च कृते ‘तुदन्ती’-  
‘तुदती’ इति द्वे रूपे साधुनी ।

उदेतोः ।

उत्पूर्वात् ‘इण्’धातोः “भावलक्षणे स्थेण्-कृञ-वदि-चरि-हुत-  
मि-जनिभ्यस्तोसुन्” इति सूत्रेण ‘तोसुन्’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, गुणे, कृद-  
न्तत्वात् “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति सूत्रेण प्रातिपदिकत्वात्सुबुत्पत्तौ  
“क्त्वा-तोसुन्-कसुन्” इति सूत्रेणाव्ययत्वात् “अव्ययादाप्सुपः”  
इत्यनेन सुपो लुकि, कृत्वे विसर्गे च कृते ‘उदेतोः’ इति रूपं साधु ।

प्र० [ ३ ] आतिष्ठम् ।

‘अतः सातत्यमने’ इत्यन्मादातो. “लुङ्” इति सूत्रेण लुङ्यनुबन्ध-  
लोपे, लस्य स्थाने, उत्तमपुरुषबहुवचने ‘भस्’प्रत्यये “लुङ्-लङ् एङ्-  
द्वडुदात्तः” इति सूत्रेणाडागमे-प्राप्ते, तम्प्रवाच्य “आडजादीनाम्”  
इत्यनेनाऽडागमेऽनुबन्धलोपे “आटश्च” इत्यनेन वृद्धौ “चिल लुङि”  
इत्यनेन च्लौ, “च्लेः सिच्” इत्यनेन सिच्यनुबन्धलोपे, सकारस्याऽऽर्ध-

\* सततस्य भावः सातत्यम्, सातत्यञ्च तद्गमनञ्चेति सातत्यगमनं  
निरन्तरगमनं तस्मिन्नित्यर्थः ।

१ दुःख देता हुआ या दुःखदायी ( कुल ) । २ उदय होकर ।



धातुकसंज्ञायाम्, 'आर्धधातुकस्येड्वल्लोपेः' इत्यनेन इट्यनुबन्धलोपे "आदेशप्रत्यययोः" इत्यनेन सकारस्य षत्वे "नित्यं ङितः" इत्यनेन सकारस्य लोपे 'आतिष्म' इति रूपं सिद्धम् ।

अहत ।

'हन-<sup>१</sup>हिसागत्योः' इत्यस्माद्धातोः "अनद्यतने लङ्" इत्यने लङ्-  
नुबन्धलोपे, लकारस्थाने मध्यमपुरुषवहुवचने 'य'प्रत्यये, अडागमेऽनुबन्ध-  
लोपे, "तस्थस्थमिषां तान्तन्तामः" इत्यनेन थकारस्थाने तादेशे,  
शपि "अदिप्रभृतिभ्यः शपः" इत्यनेन शपो लुकि 'अ + हन् + त'  
इति जाते, "अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्थादीनामनुनासिव-  
लोपो ऋलि ङित्ति" इत्यनेन नकारस्य लोपे 'अहत' इति रूपं सिद्धम् ।

दासीष्ट ।

दानार्थकात्-<sup>२</sup>'दा' धातोः "आशिषि लिङ्-लोटौ" इत्यनेन लिङि,  
अनुबन्धलोपे, लकारस्थाने 'त'-आदेशे 'दा + त' इति स्थितौ "लिङः  
सीयुट्" इति सूत्रेण सीयुटि, अनुबन्धलोपे "सुट् तिथोः" इति सुट्य-  
नुबन्धलोपे 'दा + सी + स् + त' इति जाते "आदेशप्रत्यययोः" इति  
सूत्रेण सुट् सकारस्य षत्वे "ष्टुना षुः" इत्यनेन षुत्वे 'दासीष्ट' इति  
रूपं साधु ।

ससौ ।

'षो-<sup>३</sup>ऽन्तकर्मणि' इत्यरगाद्धातोः "लिट् च" इति सूत्रेण लिटि,  
अनुबन्धलोपे, लकारस्थाने तिपि, "परस्मैपदानां णल्लुप्तुस्थलथु-  
राणल्वृमाः" इति सूत्रेण तिप् स्थाने णल्यनुबन्धलोपे  
'धात्वादेः षः सः' इति सत्वे "आदेच उपदेशेऽशिति"  
इत्यनेनाऽत्वे 'सा + अ' इति स्थितौ, द्वित्वेऽभ्यासह्रस्वे, "आत औ णलः"  
इत्यनेन णल औकारे, वृद्धौ 'ससौ' इति रूपं सिद्धम् ।

## लोमिता ।

‘लुम’ ‘विमोहने’ इत्यस्माद्धातो. “अनद्यने लुट्” इत्यनेन लुट्यनु-  
बन्धलोपे, लकारस्थाने तिपि, “स्य-तासील्लुटोः” इत्यनेन तासि प्रत्यये  
“तीष-सह-लुभ-रुष-रिषः” इत्यनेन वैकल्पिके इडागमेऽनुबन्धलोपे “पुग-  
न्तलधूपधस्य च” इत्यनेन गुणे “लुट् प्रथमस्य डा-रौ-रसः” इत्य-  
नेन तिपो डादेशे, डित्वाट्टिलोपे च कृते ‘लोमिता’ इति, इडभावपक्षे  
जश्त्वेन तकारस्य धकारे च सति ‘लोन्धा’ इति द्वे रूपे साधुनी ।

## कुर्वीत ।

करणार्थकात्-२ ‘कृ’ धातो. “विधि-निमन्त्रणा-ऽऽमन्त्रणा-ऽधीष्ट-  
संप्रश्न-प्रार्थनेषु लिङ्” इति सूत्रेण लिङि, आत्मनेपदे लस्य स्थाने तादेशे  
शपं बाधित्वा “तनादिकृभ्य उः” इत्युप्रत्यये, गुणे रपरे च “लिङः  
सोयुट्” इत्यनेन सीयुष्यनुबन्धलोपे, सकारलोपे, उत्वे, यणि च कृते “न  
भर्कुलुपाम्” इत्यनेन निषेधादीर्घभावे ‘कुर्वीत’ इति मञ्जुलं रूपं साधु ।

## गृहाण ।

असौ प्रयोगः सन् १६३५ वर्षे ( ६५ ) पृष्ठे वर्तते ।

## अजीगरात् ।

अयमपि प्रयोगः सन् १६३३ वर्षे ( ४४ ) पृष्ठे विद्यते ।

## प्र० [ ४ ] जिवत्सति ।

अस्याप्युत्तर सन् १६३४ वर्षे ( ५५ ) पृष्ठे प्रेक्षणीयम् ।

## ‘सरोजम्’ ।

सरसि जातमिति विग्रहे सप्तम्यन्त-‘सरस’शब्दोपपदात् ‘जन्’ धातोः  
“सप्तम्यां जनेर्ङः” इति सूत्रेण ‘ङ’ प्रत्यये, डित्वाट्टिलोपे “उरपद-  
मतिङ्” इत्यनेन समासे समासत्वात् “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः”  
इत्यनेन सुपो लुकि, सकारस्य रुत्वे, उत्वे, गुणे ‘सरोजम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

१ उष्त्रिभम् ।

वापेन निर्वृत्तमिति विग्रहे 'हुवप्'-बीजसन्ताने, इत्यस्माद्धातो-  
 "ड्वितः क्तिः" इत्यनेन कत्रौ, "कूर्माभ्रत्यम्" इत्यनेन निर्वृत्तेऽर्थे  
 मपि "वचि-स्वपि-यजादीनां क्तिङिति" इति सम्प्रसारणे "सम्प्रसा-  
 रणाच्च" इत्यनेन पररूपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्स्वादिकार्ये च कृते 'उष्त्रि-  
 भम्' इति रूपं साधु ।

प्र० [ ५ ] २ धावतोऽश्वात्पतति ।

'देवदत्तो धावतोऽश्वात्पतति' इत्यत्र देवदत्तविश्लेषावधिरथ इति तस्य  
 "ध्रुवमपायेऽपादानम्" इति सूत्रेणापादानसंज्ञायाम्, "अपादाने  
 पञ्चमी" इति पञ्चम्यां कृतायां 'धावतोऽश्वात्पतति' इत्यस्य सिद्धिः ।

३ यूपदारु ।

यूपाय दारु, इति लौकिकविग्रहे 'यूप + ङे + दारु + सु' इत्यलौकिक-  
 विग्रहे च "चतुर्थी तदर्थार्थ-बलि-र्हत्-सुख-रक्षितैः" इति सूत्रेण  
 समासे "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इत्यनेन सुपो लुकि, ततः प्राति-  
 पदिकत्वाद्धिभेदिकार्ये च कृते 'यूपदारु' इति रूपं सिद्धम् ।

४ औत्सः ।

उत्सस्यापत्यमिति विग्रहे 'उत्स' शब्दात् "उत्तरादिभ्योऽज" इति  
 सूत्रेण 'अन्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "ताद्धितेष्वच्चाभादेः" इत्यादेरचो वृद्धौ  
 'यस्येति च' इत्यलोपे, ततः "कृत्तद्धितसमासाश्च" इत्यनेन प्राति-  
 पदिकत्वात्सौ, सत्वे विसर्गे च कृते 'औत्सः' इति रूपं सिद्धम् ।

५ गोपी ।

गोपस्य स्त्री, -इति विग्रहे 'गोप' शब्दात् "पुंयोगादाख्यायाम्" इत्य-  
 नेन 'ङीप्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "यचि भम्" इत्यनेन भत्वे, भत्वाद्

१ बोया हुआ (खेत) । २ दौड़ते हुए घोड़े में गिरता है ।

३ यज्ञ स्तम्भ के लिये लकड़ी । ४ उत्सका लड़का । ५ गोपकी स्त्री ।

“यस्येति च” इत्यकारस्य लोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ “हल्ङ्ङाभ्याम्”  
‘दीर्घात्पुनित्यपृक्तं हल्’ इत्यनेन सोर्लुकि ‘गोपी’ इति रूपं सिद्धम् ।

सन् १६३७

प्रश्नाः

सूचना सर्वत्र सूत्रादीनां निर्देशः स्पष्टतया करणीयः ।

- १ (क) सुद्धयुपास्यः, गवाग्रम्, उत्थानम्, शिवोऽर्च्यः, -एते  
प्रयोगाः साध्यन्ताम् । १२
- (ख) अहो ईशा इत्यत्र किं सन्धिकार्यं प्राप्तम् ? कथं वा  
तदभावः ? इति लेखनीयम् । ३
- २ ‘युष्मद्’ शब्दस्य सर्वासु विभक्तिषु, ‘अु अवगो’ इत्यस्य  
लिटि, ‘शीङ् स्वप्ने’ इत्यस्य च लुङि रूपाणि लेख्यानि । १०
- ३ रामाय, बहुश्रेयस्याः, सर्वस्यै, दध्ना, चतुर्णाम्, युष्माकम्,  
अमुष्यै, अहोभ्याम्, पिधानम्, -एषां मध्ये सप्त प्रयोगाः  
साधनीयाः । २१
- ४ अभूवन्, अचीकमत, विदांचकार, जहीहि, अपादि,  
दुधविथ, उपास्किरत्, तृणोढि, उपस्कुलते, प्रमिणीते,  
अचूचुरत्, -एतेषु प्रयोगेषु अष्टौ साधनीयाः । ३२
- ५ (क) बोभवांचकार, याच्ञा, अन्यथाकारम्, अर्द्धपिप्पली,  
अर्द्धर्चः, पारलौकिकम्, प्रथिमा, भूयिष्ठः, इन्द्राणी,  
-एतेषां मध्ये षट् प्रयोगाः साध्यन्ताम् । १८
- (ख) अकथितं चेति सूत्रस्योदाहरणानि प्रदर्शनीयानि । ४

उत्तराणि

सूचना यद्यप्यत्र प्रश्ने क्वचित् सप्तानामष्टानां षण्णां वा प्रयोगाणां-  
मेवोत्तरं प्रश्नकर्तुरमीप्सितं स्यात्तथाप्यत्र मया भवतां सौकर्याय सर्वेषां

प्रयोगाणामेवोत्तरं दत्तम् । भवद्भिस्तु प्रष्टुरानुकूल्यमेवाऽऽचरणीयम् ।  
एवमग्रेऽपि सर्वत्रावधेयम् ।

प्र० [ १ ] ( क ) <sup>१</sup>सुद्धयुपास्यः ।

‘सुधी + उपास्यः’ इत्यवस्थायां “तन्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य”  
“स्थानेऽन्तरतमः” इति परिभाषाद्वयसहकारेण ‘इको यणचि’ इति  
सूत्रेण धकारोत्तरवर्तीकारस्य ताडस्थानिकस्य स्थाने ताडस्थानिके यकारे  
‘सुध् + य् + उपास्यः’ इति जाते, “अनचि च” इति सूत्रेण धकारस्य  
वैकल्पिके द्वित्वे, ‘सुध् + ध् + य् + उपास्यः’ इति स्थिते “भूलां जश्  
भशि” इति सूत्रेण पूर्वधकारस्य द्कारे “अदर्शनं लोपः” इति लोप-  
संज्ञायाम्, अवगतायाम्, “अलोऽन्त्यस्य” इत्येतत्सहकारेण ‘संयोगा-  
न्तस्य लोपः’ इत्यनेन यकारस्य लोपे प्राप्ते “यणः प्रतिषेधो वाच्यः”  
इति वार्तिकेन तन्निषेधे, वर्णसंगोलने च कृते ‘सुद्धयुपास्यः’ इति  
रूपं सिद्धम् । द्वित्वाभावपक्षे ‘सुध्युपास्यः’ इति च रूपद्वयं सिद्ध्यतीति  
बोध्यम् ।

<sup>२</sup>गवाग्रम् ।

‘गो + अग्रम्’ इत्यवस्थायाम्, “अलोऽन्त्यस्य” इति परिभाषाव-  
लात् “अवङ् स्फोटायनस्य” इति सूत्रेण वैकल्पिके गकारोत्तरवर्तिन  
ओकारस्य स्थानेऽवडादेशे, ङकारस्येतत्संज्ञाया लोपे च कृते ‘गवXअग्रम्’  
इति स्थिते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति सूत्रेण दीर्घे ‘गवाग्रम्’ इति  
सिद्धम् । अवङोऽभावपक्षे “सर्वत्र विभाषा गोः” इति सूत्रेण प्रकृति-  
भावे ‘गो अग्रम्’ इति । प्रकृतिभावाऽभावपक्षे—“पङ्गः पदान्तादति”  
इत्यनेन पूर्वरूपे ‘गोऽग्रम्’ इति त्रीणि रूपाणि साधूनि ।

उत्थानम् ।

अस्योत्तरं सन् १९३१ वर्षे ( १४ ) पृष्ठेऽवलोकनीयम् ।

१ विद्वानों के उपासनीय [ भगवान्, शङ्कर या राजा ] । २ गौ  
का अग्रभाग ।

१ शिवोऽर्च्यः ।

‘शिवस् + अर्च्यः’ इत्यवस्थायां “ससञ्जुषो रुः” इति सूत्रेण सका-  
रस्य रुत्वेऽनुबन्धलोपे, ‘शिव + र् + अर्च्यः’ इति स्थिते, “अतां रोरप्लु-  
तादप्नुते” इति रोः स्थाने उत्वे, ‘शिव + उ + अर्च्यः’ इति भूते “आ-  
डुगुणः” इत्यनेन अकार उकारयोः स्थाने ओकारे गुणे, “एङः पदा-  
त्तादति” इत्यनेन पूर्वरूपे च कृते ‘शिवोऽर्च्यः’ इति रूपं साधूपपन्नम् ।

(ख) २ अहो ईशाः ।

‘अहो + ईशाः’ इत्यत्र “एचोऽयवायानः” इति सूत्रेणावादेशे-  
प्राप्ते तत्प्रबाध्य “ओत्” इत्यनेन प्रगृह्यसञ्ज्ञायां “प्लुतप्रगृह्या अत्रि  
नित्यम्” इत्यनेन प्रकृतिभावे ‘अहो ईशाः’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

[ २ ] ३ ‘युष्मद्’ शब्दस्य रूपाणि ।

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम् ।	
त्वम्	युवाम्	युयम्	प्रथमा ।
त्वाम्	युवाम्	युष्मान्	द्वितीया ।
त्वया	युवाभ्याम्	युष्मामि	तृतीया ।
तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्	चतुर्थी ।
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	पञ्चमी ।
तव	युवयो	युष्माकम्	षष्ठी ।
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	सप्तमी ।

४ ‘अ’ धातोर्लिटि रूपाणि ।

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम् ।	
शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः	प्रथमपुरुषः ।
शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव	मध्यमपुरुषः ।
शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम	उत्तमपुरुषः ।

१ भगवान् शिव जी पूजा करने योग्य हैं । २ अहो ये राजा हैं ।

३ तू । ४ सुनना ।

### १ 'शीङ्' धातुर्लुङि रूपाणि ।

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम् ।
अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत प्रथमपुरुषः ।
अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	{ अशयिङ्वम् मध्यमपुरुषः । अशयिष्वम्
अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्वहि उत्तमपुरुषः ।

प्र० [ ३ ] रामाय ।

अस्य प्रयोगस्योत्तरं सन् १६३२ वर्षे ( २८ ) पृष्ठे प्रेक्षणीयम् ।

बहुश्रेयस्याः ।

प्रातिपदिकत्वात्—'बहुश्रेयसी'शब्दात्पञ्चम्येकवचने ङसि विभक्तावनुबन्धलोपे "प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च" इति वार्तिक सहकारेण 'यू स्यास्यौ नदी' इति सूत्रेण नदीसञ्ज्ञायाम्, "आएनधाः" इति सूत्रेणाऽऽडागमेऽनुबन्धलोपे "आटश्च" इत्यनेन वृद्धौ, "इको यणचि" इति सूत्रेण यणि "सप्तजुषो रुः" इत्यनेन रुत्वे, "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" इति सूत्रेण विसर्गे च कृते 'बहुश्रेयस्याः' इतिरूपं सिद्धम् ।

सर्वस्यै ।

प्रातिपदिकत्वात् २ 'सर्वा'शब्दात् 'हे' विभक्तावनुबन्धलोपे "याडापः" इति सूत्रेण याडागमे प्राप्ते, तम्प्रबाध्य "सर्वनामाः स्याङ्दूस्वश्च" इत्यनेन स्याडागमेऽनुबन्धलोपे, आपो ह्रस्वे च, ततो "वृद्धिरेचि" इत्यनेन वृद्धौ 'सर्वस्यै' इति रूपं निष्पन्नम् ।

दध्ना ।

प्रयोगोऽयं सन् १६३० वर्षे ( ५ ) पृष्ठे द्रष्टव्यः ।

चतुर्गाम् ।

प्रातिपदिकसञ्ज्ञक १ 'चतुर्'शब्दात् 'आम्'विभक्तौ समागतायां सत्यां

१ सोना । २ सब । ३ चार ।

“वट्चतुर्भ्यश्च” इति सूत्रेण तुडागमेऽनुबन्धलोपे, ‘चतुर् + न् + आम्’ इति स्थिते, “रषाभ्यां नो णः समानपदे” इत्यनेन एत्वे “अचो रषाभ्यां द्वे” इति सूत्रेण वैकल्पिके एकारस्य द्वित्वे ‘चतुर्णाम्’ इति, द्वित्वाभावपक्षे ‘चतुर्णाम्’ इति च रूपद्वयं निष्पन्नम् ।

युष्माकम् ।

अस्योत्तरं सन् १६३१ वर्षे ( १७ ) पृष्ठे कृतं राजते ।

अमुष्यै ।

प्रातिपदिकसंज्ञक -<sup>१</sup>‘अदस्’शब्दात् ‘हे’विभक्तावनुबन्धलोपे च ‘अदस् + ए’ इति जाते, “त्यदादानामः” इत्यत्वे “अतो गुणे” इति सूत्रेण पररूपत्वे, “अजाद्यतष्टाप्” इति टाप्यनुबन्धलोपे, दीर्घे “सर्वनाम्नः स्याङ्ङस्वश्च” इत्यनेन स्याडागमेऽनुबन्धलोपे, आपो ह्रस्वे च, “वृद्धिरेचि” इति सूत्रेण वृद्धौ “अदसोऽसेर्दाडु दो मः” इत्यनेन भुत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इत्यनेन सकारस्य षत्वे ‘अमुष्यै’ इति रूपं सिद्धम् ।

अहोभ्याम् ।

प्रातिपदिकसंज्ञक -<sup>२</sup>‘अहनृ’शब्दाद् भ्यामि विभक्तौ “स्वादिष्व-सर्वनामस्थाने” इत्यनेन पदत्वात् ‘अहनृ’-इत्यस्य नकारस्य रुत्वे “हृशि च्” इत्युत्वे “आद्गुणः” इत्यनेन गुणे च कृते ‘अहोभ्याम्’ इति रूपं साधु ।

अपिधानम् ।

‘अपिधानम्’-इत्यत्र “वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुप-सर्गयोः” इत्युक्त्या “भागुरि”मतेऽकारस्य लोपे ‘पिधानम्’ इति । अकारलोपामावे-‘अपिधानम्’ इति द्वे रूपे निष्पन्ने ।



प्र० [ ४ ] अभूवन् ।

‘भू’धातोर्लुङि, लुङः प्रथमपुरुषैकवचने “तिप्-तस्-मि-सिप्-थस्-थ-मिव-वस्-मस्-ता-ऽऽतां-क्-थासा-थां-ध्वमिङ्-वहि-महिङ्” इति सूत्रेण ‘मि’प्रत्यये “लुङ् लङ् लृङ् दवडुदात्त.” इत्यनेनाडा-गमेऽनुबन्धलोपे ‘अ + भू + मि’, इति जाते, “चिल्लुङि” इत्यनेन ‘चिल’ प्रत्यये तस्य ‘च्लोःसिच्’ इत्यनेन सिजादेशेऽनुबन्धलोपे ‘अ + भू + स् + मि’ इति स्थिते “गाति-रथा-घु-पा-भूभ्यःसिचःपररौपदेपु” इत्यनेन सकारस्य लोपे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इत्यनेन गुणे प्राप्ते “भूषु-वोस्तिङि” इत्यनेन गुणनिषेधे “भोऽन्तः” इत्यनेन, अन्तादेशे ‘अ + भू + अन्ति’ इति जाते “इतश्च” इत्यनेन, इकारस्य लोपे “भुवो वुग्लुङ्-लिटो.” इत्यनेन वुगागमेऽनुबन्धलोपे “संयोगान्तस्य लोपः” इत्यनेन तकारस्य लोपे ‘अभूवन्’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

अचीकमत ।

‘कान्त्यर्थकात् ‘कम्’धातोः “आयादय आर्धधातुके वा” इत्यनेन पाक्षिके णिङि’ अनुबन्धलोपे “अत उपधायाः” इत्यनेन वृद्धौ ‘कामि’ इति स्थिते, तस्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति सूत्रेण धातुसंज्ञायां धातुत्वाल्लुङि, लुङस्तप्रत्यये “चिल्लुङि” इति सूत्रेण च्लौ, च्लोः सिजादेशं च बाधित्वा “णि-अ-इ-लभ्यः कर्त्तरि चङ्” इत्यनेन च्लेश्चङि, अनुबन्धलोपे, ‘अ + कामि + अ + त’ इति स्थिते “णोरनिटि” इत्यनेन णोलोपे कृते ‘अ + काम् + अ + त’ इति जाते, “णौ चङ् उपधाया ह्रस्वः” इति सूत्रेणोपधाह्रस्वे ‘अ + कम् + अ + त’ इति भूते “चङि” इति सूत्रेण द्वित्वे, “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यनेनाभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इत्यनेन सकारस्य लोपे ‘अ + क + कम् + अ + त’ इति जाते “कुहोश्चुः” इत्यनेन चुत्वे “सन्वत्तयुनि चङ्परेऽनलोपे” इत्यनेन सन्वत्तवे

“सन्वितः” इत्यभ्यासीकारस्य, इकारे ‘अ+चि + कम् × अ+त’ इति स्थिते,  
 “दीर्घो लघोः” इति सूत्रेण दीर्घे च कृते ‘अचीकमत’ इति रूपं सिद्धम् ।

### विदाञ्चकार ।

‘विद्—ज्ञाने’ इत्यस्माद्धातोः “लिट् च” इति सूत्रेण लिटि  
 “उप-विद्-जागृभ्योऽन्यतरस्याम्” इति सूत्रेणाऽऽमि, ‘विद्’—  
 इत्यदन्तनिपातनात् “पुगन्तलघूपधस्य च” इत्यनेन गुणाभावे, लिटो  
 छकि, लिट्परकृजोऽनुप्रयोगे “परस्मैपदानां णललुप्तुस्थलधुसणत्वमाः”  
 इत्यनेन तिपो णलि “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इत्यनेन द्वित्वेऽभ्या-  
 सत्वे “उरत्” इत्यत्वे, रपर, हलादे शेषे “कुहोश्चुः” इत्यनेन चुत्वे,  
 गुणे, रपरे, “अत उपधाया.” इत्यनेन वृद्धौ, अनुस्वारे, परसवर्णे च  
 कृते ‘विदाञ्चकार’ इति रूपं सिद्धम् । आम्तोऽभावपक्षे-द्वित्वेऽभ्यासकार्ये,  
 गुणे च कृते ‘विवेद’ इति च सिद्ध्यति ।

### जहीहि ।

त्यागार्थकात् १ ‘हा’ धातो “आशिषि लिङ्-लोटौ” इत्यनेन लोटि,  
 लोटः सिपि “सेह्यपिठच” इत्यनेन सिपो हौ “जुहोत्यादिभ्यः श्लुः”  
 इत्यनेन शपश्लौ “श्लौ” इति सूत्रेण द्वित्वे, हस्वे, चुत्वे जश्त्वे “आ च  
 हौ” इत्यनेनाऽऽत्वे ‘जहाहि’ इति प्रथम, रूपम् । इत्वे-‘जहिहि’ इति  
 द्वितीयम् । ईत्वे कृते ‘जहीहि’ इति त्रीणि रूपाणि साधूनि ।

### अपादि ।

‘पद गतौ’ इत्यस्मिद्धातोर्लुङ्यनुबन्धलोपे, लकारस्थाने ‘त’प्रत्यये  
 “च्लि लुङि” इत्यनेन च्लौ, “चिण् ते पदः” इत्यनेन च्लेश्चिणि  
 “चिणो लुक्” इति सूत्रेण तकारस्य छकि “अत उपधायाः” इत्यनेन  
 वृद्धौ ‘अपादि’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

१ जानना । २ त्याग या छोड़ना । ३ गमन, चलना ।



आत्मनेपदानां टेरे” इति सूत्रेण एत्वे “तनादि ह्यभ्य उः” इति सूत्रेण ‘उ’प्रत्यये, गुणे, रपरे, ततः “अत उत्सार्वाधातुके” इत्युत्वे “उपात्प्रतियल-वैकृते-वाक्याध्याहारेषु च” इति सूत्रेण सुव्यनुबन्ध-लोपे च कृते ‘उपस्कु रते’ इति रूपं साधु ।

प्रमीणीते ।

द्विसार्थकात् प्रपूर्वात् ‘मी’धातोर्लटि, लटः स्थाने ‘त’ प्रत्यये, “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति सूत्रेण टेरेत्वे “क्रयादिभ्यःश्ना” इत्यनेन ‘श्ना’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “ई हल्यघोः” इत्यनेन ईत्वे “द्विषु-मीना” इति सूत्रेण खत्वे च कृते ‘प्रमीणीते’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

अचूचुरत् ।

असौ प्रयोगः सन् १६३० वर्षे ( ८ ) पृष्ठेऽवलोकनीयः ।

प्र० [ ५ ] (क) बोभवाञ्चकार ।

‘भू’धातोः ‘धातोरेकाचो हलादेः क्रियासममिहारे यङ्’ इति-सूत्रेण ‘यङ्’प्रत्यये “यङोऽचि च” इत्यनेन यङो छकि, ततः प्रत्यय-लक्षणान् यङन्तत्वाद् “सन्त्यङोः” इति सूत्रेण द्वित्वे, “गुणो यङ्लुकोः” इत्यनेनाऽभ्यासस्य गुणे “अभ्यासे चर्च” इति सूत्रेण भकारस्य वकारे “सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन, धातुसंज्ञाया धातुत्वात् “परोक्षे लिट्” इत्यनेन लिटि “काभ्यनेकाच आभू वक्तव्यः” इत्यामि “आमः” इति सूत्रेण लिटो छकि “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इत्यनेन लिट्परकृञोऽनुप्रयोगे, लिट् स्थाने तिपि, “परस्मैपदानां णलुलुङ्लथलथुलथलथमाः” इत्यनेन तिपो णल्यनुबन्धलोपे, द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “उरत्” इत्यत्वे, रपरे, हलादे-शेषे ‘कुहोश्चुः’ इति उत्वे, वृद्धौ, अनु-सारे परसवर्णादिकार्ये च कृते ‘बोभवाञ्चकार’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

१ बार बार किया ।

## १ याचूआ ।

याचनमिति विग्रहे 'याच्'धातोः "गज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षो नङ्" इति सूत्रेण 'नङ्'प्रत्ययेनुबन्धलोपे "स्तोः ष्चुना ष्चुः" इति सूत्रेण नस्य ष्चुत्वेन अकारे, अपि, प्रातिपदिकत्वात्स्वादिकार्ये च कृते. 'याचूआ' इति रूपं सिद्धम् ।

## २ अन्यथाकारम् ।

'अन्यथाकृत्वा ( भुङ्क्ते ) इति विग्रहे 'अन्यथा'-इत्यस्य योगे "अन्य-थैवंकथमित्थं सु सिद्धाप्रयोगश्चेत्" इत्यनेन कृत्वा 'णमुल्'-प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, "अचो ञ्णिणति" इत्यनेन वृद्धौ, स्वादिकार्ये च सति 'अन्य-थाकारम्' इति रूपं साधु ।

## ३ अर्द्धपिप्पली ।

अर्धं पिप्पल्याः, इति लौकिकविग्रहे 'अर्ध + सु + पिप्पली + ङस्' इत्यलौकिकविग्रहे "षष्ठी" इति सूत्रेण षष्ठीसमासं बाधित्वा "अर्धं नपुंसकम्" इति सूत्रेण समासे "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इत्यनेन सुपो लुकि, समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सौ "परवस्तिङ्गं छन्दतत्पुरुषयोः" इति सूत्रेण परपदलिङ्गत्वात्सोलोपे 'अर्धपिप्पली' इति रूपं निष्पन्नम् ।

## ४ अर्धर्चः ।

अर्धं ऋचः, इति लौकिकविग्रहे 'अर्ध + सु + ऋच + ङस्' इत्यलौकिकविग्रहे "ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे" इति सूत्रेण 'अ'प्रत्यये, गुणे, रपरे, सुपो लुकि "अर्धर्चाः पुंसि" इत्यनेन पुंस्त्वे, ततः प्रातिपदिकत्वात्स्वादिकार्ये च कृते 'अर्धर्चः' इति रूपं साधु ।

## ५ पारलौकिकम् ।

परलोके भवम्-इति विग्रहे 'परलोक' शब्दात् "अध्यात्मादेष्टुञि-

१ माँगना । २ दूसरी तरह । ३ पिप्पली का अर्धभाग । ४ ऋच का आधा भाग । ५ परलोक में होने वाला ।

प्यते" इति सूत्रेण 'ठव्'प्रत्यये "ठस्येकः" इत्यनेनेकादेशे "अनुशति-  
कादीनां च" इति सूत्रेणोभयपदवृद्धौ, भत्वे अकारस्य लोपे, ततः प्राति-  
पदिकत्वादिकार्ये च सति 'पारलौकिकम्' इति रूपं मनोरमम् ।

<sup>१</sup>प्रथिमा ।

पृथोर्भावः इति विग्रहे 'पृथु'शब्दात् "पृथ्वादिभ्य इमनिष्ठा"  
इत्यनेन 'इमनिच्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "पृथु पृथु-भृश-दृश-दृढ-परिवृढा-  
नामेव रत्वम्" इति "र ऋतो हलादेर्लघोः" इति ऋकारस्य रादेशे,  
दिलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ, "सौ च" इत्यनेन दीर्घे, सुलोपे, नकारस्य  
च लोपे 'प्रथिमा' इति रूपं साधु । पक्षे "इगन्ता च लघुपूर्वात्"  
इत्यनेन 'अण्'प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, वृद्धौ, स्फरे, "ओर्गुणः" इति गुणे,  
अवादेशे, ततः स्वादिकार्ये च कृते 'पार्थवम्' इत्यपि भवतीति बोध्यम् ।

<sup>२</sup>भूयिष्ठः ।

अयमनयोरतिशयेन बहुरिति विग्रहे 'बहु'शब्दात् "इष्टस्य यिट् च"  
इत्यनेन इष्टनि, इलोपे, यिङागमेऽनुबन्धलोपे च कृते "बहोर्लोपो भू च  
यहोः" इत्यनेन बहोः स्थाने 'भू'-इत्यादेशे 'भूयिष्ठः' इति रूपं निष्पन्नम् ।

<sup>३</sup>इन्द्राणी ।

इन्द्रस्य स्त्री इति विग्रहे 'इन्द्र'शब्दात् "इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-  
रुद्र-भृङ-हिमारेण्य-थव-थवन-भातुलाचार्याणामानुक्" इति  
सूत्रेण ङीप्, आनुगागमेऽनुबन्धलोपे "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे,  
एत्वे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ, सोर्लुकि च कृते 'इन्द्राणी' इति रूपं सिद्धम् ।

(ख) "अकथितं च" इति सूत्रस्योदाहरणानि-

<sup>४</sup>गां दोग्रिध पयः । <sup>५</sup>बलिं याचते वसुधाम् । <sup>६</sup>तण्डुलानोदनं पचति ।

१ मोटापन । २ बहुत । ३ इन्द्र की स्त्री । ४ गौ से ( गोप ) दूध  
ब्रूहता है । ५ राजा बलि से पृथ्वी माँगता है । ६ चावलों से भात बनाता है ।

१ गर्गात् शतं दण्डयति । २ व्रजभवत्पण्डि गाम् । ३ भाणवकं पन्यानं पृच्छति ।  
 ४ वृक्षमवचिनोति फलानि । ५ भाणवकं घर्मं व्रूते शास्ति वा । ६ शतं जयति  
 देवदत्तम् । ७ सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । ८ देवदत्तं शतं मुष्णाति । ९ ग्राममजां  
 नयति, हरति, कर्षति, वहति वा-इत्यादि “अकथितं च” इति सूत्रस्योदा-  
 हरणानि ।

सन् १६३८

प्रश्नाः

- १ गव्यूतिः, प्रार्थाम्, सन्नच्युतः, शम्भू राजते-  
 एषु प्रयोगेषु सशास्त्रं सन्धिकार्यं दर्शयत । १८
- २ ‘विष्णो इति’ इति स्थिते कानि कानि कार्याणि भवन्ति  
 कानि च रूपाणि ? स्पष्टं लिखत । २५
- ३ हरेः, प्रधिय, स्त्रियम्, हे मधु, चतुर्णाम्, अभीभिः, अनया,  
 दीव्यन्ति-एषु केचन सप्त प्रयोगाः साधनीयाः । २१
- ४ अभूवन्, भेजे, जघसिथ, जिह्नीयात्, स्यति, स्तर्यात्,  
 औनत्, कुर्वन्ति, स्तरिषीष्ट, अजीगणात्-एषु कान्यपि  
 सप्त रूपाणि साधनीयानि । २८
- ५ पिपठिषति, बोभूयात्, अस्तावि, पचेलिमाः, सुशर्मा,

१ गर्गों से सौ रुपया दण्ड लेता है । २ व्रज में गौ को रोकता है ।  
 ३ लड़के से रास्ता पूछता है । ४ वृक्ष से फल चुनता है । ५ बालक को  
 धर्मोपदेश देता है । ६ देवदत्त से सौ रुपया जीतता है । ७ अभृत के  
 लिये क्षीरसागर को मथता है । ८ देवदत्त से सौ ( रुपया ) चुराता है ।  
 ९ बकरी को गाँव में ले जाता है ।

- हितम्, द्युतित्वा, सह्रि, अहोरात्रः, -एषु केऽपि पट्  
प्रयोगाः, साधनीयाः । १८
- ६ श्वाफलेकः, पित्र्यम्, पटपटाकरोति, शकटी, अतिकेशी  
एषु कान्यपि चत्वारि रूपाणि साधयत । ८
- ७ 'सखि'शब्दस्य सर्वासु विभक्तिषु, 'गुप्' धातोर्लुटि, 'मीब्'  
धातोर्लुङि-रूपाणि लेखनीयानि । १०

### उत्तराणि

[ १ ] गव्यूतिः ।

'गो + यूतिः' इत्यवस्थायाम्, "अध्वपरिमाणे च" इति वार्तिकेन  
नकारोत्तरवर्तिन ओकारस्य स्थानेऽवादेशे कृते 'गव्यूतिः' इति रूपं सिद्धम् ।

'प्रार्णम्' ।

'प्र + ऋणम्' इत्यवस्थायाम्, "आद्गुणः" इति सूत्रेण 'गुणे' प्राप्ते,  
त वाधित्वा "प्र-वत्सतर-कम्बल-वत्सनार्ण-दशानामृणे" इति वार्ति-  
केन पूर्वपरयोः स्थाने आकारवृद्धौ "उरण् रपरः" इति रपरत्वे च कृते  
'प्रार्णम्' इति रूपं निष्पन्नम् ।

'सन्नच्युतः' ।

'सन् + अच्युतः' इत्यवस्थायाम्, "ङ-मो ह्रस्वादचि ङ-मुण् नित्यम्"  
इति सूत्रेण ङुङागमेऽनुबन्वलोपे नकारयोरकारेण सयोगे च कृते 'सन्न-  
च्युतः' इति रूपं साधु ।

शम्भू राजते ।

असौ प्रयोगः सन् १९३६ वर्षे ( ६८ ) पृष्ठे प्रेक्षणीयः ।

१ दो कोस को कहते हैं । २ अधिक ऋण ( कर्जा ) । ३ अच्युत  
भगवान् नित्य है ।



प्र० [ २ ]

अस्योत्तरं सन् १६३१ वर्षे ( १४ ) पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

[ ३ ] हरेः ।

एष प्रयोगः सन् १६३३ वर्षे ( ४० ) पृष्ठेऽवलोकनीयः ।

प्रधिय ।

‘प्रधी’शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायां प्रातिपदिकत्वात्सप्तम्येकवचने ‘ङि’ विभक्तावनुबन्धलोपे ‘प्रधी + इ’ इति जाते, “इको यणचि” इति सूत्रेण यणं बाधित्वा “अचि श्नुधातुभ्रुवां योरियङुवङौ” इति सूत्रेण इयङि प्राप्ते, तम्प्रवाच्य “परनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य” इत्यनेन यणि ‘प्रधिय’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

स्त्रियम् ।

प्रातिपदिकसंज्ञक १ ‘स्त्री’शब्दस्य द्वितीयैकवचने ‘अम्’विभक्तौ “वाऽऽ+शसोः” इति सूत्रेण वैकल्पिके इयङादेशेऽनुबन्धलोपे ‘स्त्रियम्’ इति, इयङामावपक्षे “अमि पूर्वः” इत्यनेन पूर्वरूपे ‘स्त्रीम्’ इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

हे मधु ।

प्रातिपदिकसंज्ञक २ ‘मधु’शब्दस्य सम्बोधनैकवचने सौ विभक्तौ “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सूत्रेण सौर्लुकि “न लुमताङ्गस्य” इत्यस्यानित्यत्वात् “प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्” इति प्रत्ययलक्षणेन पाक्षिके “ह्रस्वस्य गुणः” इति सूत्रेण गुणे ‘हे मधो !’ इति । गुणामावपक्षे ‘हे मधु’ इति रूपं सिद्धम् ।

चतुर्णामि ।

अयं प्रयोगः सन् १६३७ वर्षे ( ७८ ) पृष्ठे प्रेक्षणीयः ।

१ स्त्री ( औरत ) । २ शहद, मदिरा ।

अमीभिः ।

प्रातिपदिकसंज्ञक-‘अदस्’शब्दात्तृतीयाबहुवचने भिसि विभक्तौ “त्यदा-दीनामः” इति सूत्रेणात्वे “अतो गुणे” इत्यनेन पररूपे “अतो भिस ऐस्” इति भिस प्राप्तमैसादेशं प्रवाच्य “नेदमदसोरकोः” इति निषेधे, “बहुवचने भल्येत्” इत्येत्वे “एत ईदुबहुवचने” इत्येकारस्य ईकारे, “अदसोऽसेर्दादु दो मः” इत्यनेन दकारस्य मत्वे, ततः सकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृते ‘अमीभिः’ इति रूपं सिद्धम् ।

अनया ।

प्रातिपदिकसंज्ञक-‘इदम्’शब्दस्य तृतीयैकवचने ‘टा’विभक्तावधु-चन्धलोपे “त्यदादीनामः” इत्यनेनात्वे “अतो गुणे” इत्यनेन पररूपत्वे “अजाद्यतष्टाप्” इत्यनेन टापि, दीर्घे “आङि चाऽपः” इत्येत्वे “एचोऽयवायावः” इत्यनेनायादेशे, “अनाप्यकः” इति सूत्रेण इद-अनादेशे च कृते “अनया” इति रूपं सिद्धम् ।

दीव्यन्ति ।

प्रातिपदिकसंज्ञकात्-‘दीव्यत्’राब्दाज्जसि विभक्तौ समागताया सत्यां “जश्शसोः शिः” इति सूत्रेण जसः स्यादेशोऽनुबन्धलोपे “नपुंसकस्य भलचः” इति सूत्रेण नुम्यनुबन्धलोपे च ‘दीव्यन्ति’ इति रूपं साधु ।

प्र० [ ४ ] अभूवन् ।

अस्योत्तरं सन् १६३७ वर्षे ( ८० ) पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

भेजे ।

‘भज-सेवायाम्’ इत्यस्माद्धातो ‘परोक्षे लिट्’ इति लिट्यनुबन्धलोपे, तकारस्थाने “तिप्-तस्-भि-सिप्-थस्-थ-मिब्-वस्-मस्-ता-ऽऽतां-भ-थासाथां-ध्वमिङ्-वहि-महिङ्” इति सूत्रेण ‘त’

१ यह । २ खेलता हुआ ।

प्रत्यये “लिट्स्तभ्योरेशिरेच” इति सूत्रेणैश्वनुबन्धलोपे “लिट्  
धातोरनभ्यासस्य” इत्यनेन द्वित्वेऽभ्यासकार्ये च कृते, ततः “अत  
एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिट्” इति सूत्रेण एत्वेऽभ्यासस्य लोपे च कृते  
‘मेजे’ इति रूपं साधु ।

जघसिथ ।

भक्षणार्थकात्-‘अद’ धातोः “परोक्षे लिट्” इत्यनेन लिटि “लिट्य-  
न्यतरस्याम्” इत्यनेन वैकल्पिके घस्लादेशोऽनुबन्धलोपे लिटः सिपि,  
सिपस्यत्यनुबन्धलोपे द्वित्वे, हलादेः शेषे, चुत्व, जश्त्वे, तासि घञोऽभावात्  
थलि क्रादिनियमाजित्ये इत्यनुबन्धलोपे ‘जघसिथ’ इति रूपं सिद्धम् ।

घस्लादेशोभावपक्षे-द्वित्वे “अत आदेः” इति सूत्रेण दीर्घे, “अकः  
सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन च सवर्णदीर्घे, तत “इडत्यर्तिव्ययतीनाम्”  
इत्यनेनेडागमेऽनुबन्धलोपे ‘आदिथ’ इति द्वे रूपे साधुनी ।

जिह्वीयात् ।

‘ह्री-लज्जायाम्’ इत्यस्माद्धातोर्विधिलिङ्स्तिप् इकारलोपे, शप् श्लौ,  
“श्लौ” इति सूत्रेण द्वित्वेऽभ्यासत्वे, ह्रस्वे, “कुहोश्चुः” इत्यनेन हकारस्य  
भकारे “अभ्यासे चर्च” इति भकारस्य जकारे, यासुटि, “लिङः स-  
लोपोऽनन्त्यस्य” इत्यनेन सकारस्य च लोपे कृते ‘जिह्वीयात्’ इति  
रूपं साधु ।

स्यति ।

‘षो-ऽन्तकर्मणि’ इत्यस्माद्धातोर्लिटि, लट्स्तिप्यनुबन्धलोपे, शपं बाधित्वा  
“दिवादिभ्यः श्यन्” इत्यनेन ‘श्यन्’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “धात्वादेः  
षः सः” इत्यनेन सत्वे “ओतः श्यनि” इति सूत्रेण ओकारस्य लोपे  
‘स्यति’ इति रूपं सिद्धम् ।

स्तर्थात् ।

‘स्तृप्-’आच्छादने’ इत्यस्माद्धातोर्लिटि, लिङः स्थाने तिप्यनु-

बन्धलोपे, “इतश्च” इत्यनेन इकारलोपे, “किदाशिपि” इति सूत्रेण यासुडागमेऽनुबन्धलोपे, “लिङ्गशिपि” इति तस्याऽऽर्धधातुकत्वे कित्त्वे च “रक्तोः संयोगाद्योरन्ते च” इत्यनेन सकारलोपे, यासुटः कित्वाद्गुणाभावे प्राप्ते, परञ्च “शुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योः” इत्यनेन गुणे रपरे च सति ‘रतर्यात्’ इति रूपं सिद्धम् ।

औनत् ।

‘क्लेदनार्थकात्’ ‘उन्द’धातोः “अनद्यतने लङ्” इत्यनेन लङि, अनुबन्धलोपे, लस्य स्थाने तिप्यनुबन्धलोपे, “रुधादिभ्यः श्मम्” इत्यनेन श्म्यनुबन्धलोपे “इतश्च” इत्यनेन इकारस्य लोपे “आडजादीनाम्” इति सूत्रेणाऽऽडागमेऽनुबन्धलोपे “आटश्च” इति वृद्धौ “श्नान्नलोपः” इति नकारलोपे “हल्ङ्ग्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्” इत्यनेन तकारस्य लोपे, वैकल्पिके दस्य चत्वे च कृते ‘औनत्’-‘औनद्’ इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

कुर्वन्ति ।

‘कृ’धातोर्लटि, लटो कौ, शपं वाधित्वा “तनादि कृञ्भ्य उः” इत्युप्रत्यये, गुणे, रपरे “अत उत्सार्वधातुके” इत्युत्वे “भोऽन्तः” इति सूत्रेण क्त्स्यान्तादेशे, यणि, “हलि च” इति प्राप्तं दीर्घं “न भकुष्ठुराम्” इति निषेधे ‘कुर्वन्ति’ इति रूपं सिद्धम् ।

स्तरिषीष्ट ।

आच्छादनार्थकात् ‘स्तृ’धातोराशीर्लिङि, लिङः ‘त’प्रत्यये “लिङः सीयुट्” इति सूत्रेण यकारस्य लोपे “सुट् तिथोः” इत्यनेन सुट्यनुबन्धलोपे “लिङ् सिचोरात्मनेपदेषु” इत्यनेन वैकल्पिके इडागमेऽनुबन्धलोपे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इत्यनेन गुणे रपरे “वृतो वा” इत्यनेन दीर्घे प्राप्ते “न लिङि” इत्यनेन तन्निषेधे “आदेशप्रत्यययोः”-

इति षत्वे 'ष्ठुना ष्टुः' इति ष्टुत्वे 'स्तरिषीष्ट' इति, इडभावपक्षे  
 "उश्च" इति क्तिवादगुणाभादे, इत्वे, रपरे, "हलि च" इत्यनेन दीर्घे  
 'स्तीर्षीष्ट' इति द्वे रूपे साधुनी ।

अजीगणत् ।

अस्योत्तरं सन् १६३३ वर्षे ( ४४ ) पृष्ठे प्रेक्षणीयम् ।

प्र० [ ५ ] पिपठिषति ।

अस्याप्युत्तरं सन् १६३२ वर्षे ( ३४ ) पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

बोभूयात् ।

'भू'धातोः "धातोरेकाचो हलादेः क्रियासममिहारे यङ्" इति सूत्रेण 'यङ्'प्रत्यये "यङोऽचि च" इत्यनेन यङो लुकि, प्रत्यय लक्षण्येन यङन्तत्वाद् "सन्यङोः" इति द्वित्वे, अम्यासस्य हस्वे, भस्य जश्त्वेन वत्वे "गुणो यङ्लुकोः" इत्यनेनाम्यासस्य गुणे 'बोभूय' इत्यस्य "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुसंज्ञायां धातुत्वाद्विविलिङि, तस्य स्थाने तिप्यनुबन्धलोपे, इकारलोपे, यासुटि, सकारलोपे च कृते 'बोभूयात्' इति रूपं सम्पन्नम् ।

अस्तावि ।

'स्तु'—इत्यरगाद्धातोर्भावे "भावकर्मणोः" इत्यात्मनेपदत्वाल्लङि, लुङस्तप्रत्ययेऽटि, च्लौ "चिण् भावकर्मणोः" इति सूत्रेण च्लेश्विणि, वृद्धौ, आवादेशे, "चिणो लुक्" इत्यनेन तस्य लुकि 'अस्तावि' इति रूपं निष्पन्नम् ।

पचेलिमाः ।

'पक्कुमर्हाः' इति विग्रहे 'पच्'धातो. "केलिमर उपसङ्ख्यानम्" इति कर्मणि 'केलिमर' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वादिकार्ये च कृते 'पचेलिमाः' इति रूपं सिद्धम् ।

१ स्तुति क्रिया हुआ । २ पकाने योग्य ।

‘सुशर्मा ।

सुष्ठु श्रृणातीति विग्रहे सु—पूर्वात् ‘श्रृ’ हिंसायाम्, इत्यस्माद्धातोः  
 “अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते” इत्यनेन ‘मनिन्’ प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “आर्ध-  
 धातुकं शेषः” इत्यार्वधातुकसंज्ञायां ‘सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इत्य-  
 नेन गुणे “उरण् रपरः” इत्यनेन रपरे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः”  
 इति सूत्रेण प्रातिपदिकत्वात्सौ “नेड्वशिकृति” इत्यनेन निषेधे, ततः ‘सुशर्मन्’  
 इत्यस्य प्रातिपदिकत्वात्सौ “सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ” इति दीर्घ-  
 “हल्ङ्ग्याभ्यो दोर्धात्सुतिस्यपृक्तं हल्” इति सुलोपे “नलोपः  
 प्रातिपदिकान्तस्य” इति नकारलोपे ‘सुशर्मा’ इति रूपं साधु ।

१ हितम् ।

अधायि इति विग्रहे ‘घा’ धातोः “निष्ठा” इत्यनेन ‘क्त’ प्रत्ययेऽनु-  
 बन्धलोपे “दधातेर्हि” इति सूत्रेण ‘हि’ इत्यादेशे, प्रातिपदिकत्वात्सौ,  
 अभि, पूर्वरूपे च कृते ‘हितम्’ इति रूपं सिद्धम् ।

द्युतित्वा ।

द्योतनम् इति विग्रहे ‘द्युत्’ धातो ‘क्त्वा’ प्रत्यये, इडागमेऽनुबन्धलोपे  
 च “न क्त्वा सेट्” इत्यनेन कित्त्वप्रतिषेधं बाधित्वा “रलो व्युपधाद्ध-  
 लादेः संश्र्व” इति सूत्रेण पाक्षिकित्वाद्गुणनिषेधे ‘द्युतित्वा’ इति ।  
 पक्षे गुणे कृते ‘द्योतित्वा’ इति रूपद्वयं सम्भवम् ।

२ सहरि ।

हरेः सादृश्यम्, इति लौकिकविग्रहे ‘हरि + ङस् + सह’ इत्यलौकिक-  
 विग्रहे “अव्ययं विभक्तिरामीप-समृद्धि-व्यूद्धयर्थाभावा-ऽत्यया-  
 ऽसम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथा-ऽऽनुपूर्व्य-योगपक्ष-सादृश्य-

१ सुन्दर काटने वाला । २ हित (कल्याण) किया हुआ ।

३ हरि का सादृश्य ।

सम्पत्ति-साकल्या-ऽन्तवचनेषु” इति सूत्रेण समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इत्यनेन सुपो लुकि “प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्” इति सूत्रेण ‘सह’-इत्यस्योपसर्जनत्वात् “उपसर्जनं पूर्वम्” इति पूर्वप्रयोगे “अव्ययीभावे चाकाले” इति ‘सह’ इत्यस्य स्थाने सादेरो एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सौ “अव्ययादाप्सुपः” इत्यनेन सोर्लुकि ‘सहरि’ इति रूपं सम्पन्नम् ।

<sup>१</sup>अहोरात्रः ।

अहश्च रात्रिश्च, इति लौकिकविग्रहे ‘अहन् । सु + रात्रि + सु’ इत्यलौकिकविग्रहे द्वन्द्वसमासे “अहः सवैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रेः” इति सूत्रेण ‘अच्’-प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, सुपो लुकि ‘अहन् + रात्रि + अ’ इति स्थिते, “यचि भम्” इत्यनेन भत्वे “यस्येति च” इत्यकारलोपे “रूप-रात्रि-रथ-तरेषु स्तवं वाच्यम्” इति स्त्वे “हशि च” इत्युत्वे “आद्गुणः” इति गुणे “पटवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः” इति धात्वै प्राप्ते, तम्प्रवाध्य “रात्राह्लाहाः पुंसि” इति पुंस्त्वे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ-स्त्वे विसर्गे च सति ‘अहोरात्रः’ इति रूपं साधु । -

प्र० [ ६ ] <sup>२</sup>श्वफल्कः ।

श्वफल्कस्यापत्यम्-इति विग्रहे ‘श्वफल्क’शब्दात् “अव्यन्धक-वृष्णि-कुरुभ्यश्च” इति सूत्रेण ‘अण्’-प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “तद्धितेष्वचामादेः” इत्यनेनाऽऽदिवद्धौ, “यचि भम्” इति भत्वे “स्येति च” इत्यकारलोपे, ततः “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ स्त्वे विसर्गे च कृते ‘श्वफल्कः’ इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>३</sup>पितृयम् ।

पितरो देवता अस्येति विग्रहे ‘पितृ’शब्दात् ‘वाय्वृतुपित्रुषसो यत्’

१ दिन-रात । २ श्वफल्क का लङ्का ( अकूर ) । ३ पितृदेवताक ।

इति सूत्रेण 'यत्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "रीङ् ऋतः" इति ऋकारस्य रीङादेशे, भत्वे, "यस्येति च" इतीकारलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्तरादिकार्ये च कृते 'पिब्यम्' इति रूपं साधु ।

<sup>१</sup> पटपटा करोति ।

पटत् पटदिति सम्पद्यते, त करोतीति विग्रहे 'पटत्' शब्दस्य "डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्" इति द्वित्वे, ततः "अव्यक्तानुकरणादुद्ध्यज-वरार्धादनितौ डाच्" इत्यनेन डाचि, टिलोपे "तस्य परमात्रेडितम्" इत्यात्रेडितसंज्ञायां "नित्यमात्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्" इति तकार-पकारयोः पकारे कृते 'पटपटा करोति' इत्यस्य सिद्धिः ।

<sup>२</sup> शकटी ।

'शकटी' इत्यत्र 'शकटि' शब्दात् "सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके" इति सहकारेण 'कृदिकारादक्तिनः' इति वार्तिकेन वैकल्पिके 'ङीप्' प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "यचि भम्" इति सूत्रेण भसंज्ञायां "यस्येति च" इतीकारस्य लोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ हल्ङ्यादिलोपे च कृते 'शकटी' इति । ङीपोऽभावपक्षे-सौ क्त्वे विसर्गे च सति 'शकटिः' इति द्वे रूपे साधुनी ।

<sup>३</sup> अतिकेशी ।

केशानतिक्रान्ता इति लौकिकविग्रहे 'केश + शस् + अति' इत्यलौकिकविग्रहे "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे छितीयया" इति सूत्रेण समासे, समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इत्यनेन सुपो लुकि, ततः 'अतिकेश' शब्दात् "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" इति सूत्रेण वैकल्पिके 'ङीप्' प्रत्यये, ङकारपकारयोर्लोपे "यचि भम्" इति भत्वे, "यस्येति च" इत्यलोपे, ततः पुनः प्रातिपदिकत्वात्सौ, सोर्लुकि 'अतिकेशी' इति, ङीपोऽभावपक्षे-टापि, सवर्णदीर्घे च कृते 'अतिकेशा' इति रूपद्वयं सिद्धम् ।

१ पटत् ऐसा अव्यक्त ( जो सुनने में न मालूम पड़े ऐसा ) शब्द करता है । २ गाड़ी । ३ बहुत केशवाली थी ।



प्र० ( ७ )

१ 'सखि'शब्दस्य रूपाणि ।

एकवचनम्	द्विवचनम्	वहुवचनम्	
सखा	सखायौ	सखायः	प्रथमा ।
सखायम्	सखायौ	सखीन्	द्वितीया ।
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः	तृतीया ।
सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः	चतुर्थी ।
सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः	पञ्चमी ।
सख्युः	सख्योः	सखीनाम्	षष्ठी ।
सख्यौ	सख्योः	सखिषु	सप्तमी ।
हे सखे !	हे सखायौ !	हे सखायः !	सम्बोधनम् ।

२ 'गुपधातोर्लुटि' रूपाणि ।

एकवचनम्	द्विवचनम्	वहुवचनम् ।	
गोपायिता	गोपायितारौ	गोपायितारः	प्रथमपुरुषः
गोपिता	गोपितारौ	गोपितारः	
गोप्ता	गोप्तारौ	गोप्तारः	
गोपायितासि	गोपायितास्थ	गोपायितास्य	मध्यमपुरुषः
गोपितासि	गोपितास्थः	गोपितास्य	
गोप्तासि	गोप्तास्थः	गोप्तास्य	
गोपायितास्मि	गोपायितास्वः	गोपायितास्म	उत्तमपुरुषः
गोपितास्मि	गोपितास्वः	गोपितास्मः	
गोप्तास्मि	गोप्तास्वः	गोप्तास्मः	

१ 'मीन्'घातोलुङि रूपाणि ।

परस्मैपदे-

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम् ।
अमासीत्	अमासिष्टाम्	अमासिषु प्रथमपुरुषः ।
अमासीः	अमासिष्टम्	अमासिष्ट मध्यमपुरुषः ।
अमासिषम्	अमासिष्व	अमासिष्म उत्तमपुरुषः ।

आत्मनेपदे

अमास्त	अमासाताम्	अमासत प्रथमपुरुषः ।
अमास्था	अमासाथाम्	अमाश्वम् मध्यमपुरुषः ।
अमासि	अमास्वहि	अमास्महि उत्तमपुरुषः ।

...

सन् १६३६

प्रश्नाः

- १ क, छ, ड, घ, म, श, इत्येतेषां वर्णानां कानि बाह्यप्रयत्नानि । द्वे
- २ शिवेहि, अमुकेऽत्र, सँस्कृती, मनोरथः, एतेषां प्रयोगाणां सशास्त्रं सिद्धिं प्रदर्शयत । १६

अथवा

गो + अग्रम्, त्वं + करोषि, सन् + शङ्गुः नृन् + पाहि,  
इत्यस्यां स्थितौ कानि रूपाणि भवन्ति, कथञ्च तत्सिद्धि-  
रिति ससूत्रं प्रतिपादयत ।

- ३ रामाय स्त्रियै विश्वौहः, बभूव, मिमीते, अहिनः ।

एषु प्रयोगेषु ससूत्रं सिद्धिप्रकारं लिखत । २४-

- ४ अबोभोत्, अलाभि, अवावा, शुभंयुः, मानुषी, विप्राय गां ददाति । एतान् प्रयोगान् सम्यक् प्रसाधयत । २४

१ मारना ।

- ५ अन्तादिश्च, प्रथमलिङ्गग्रहणं च, नानर्थकेऽलोन्त्यविधिर-  
नभ्यासविकारे, आद्यन्तवदेकस्मिन् एतेषां शास्त्राणां  
सोदाहरणमर्थं ब्रूत ।

१०

अथवा

नेर्गङ्, पाद्माध्मा०, दाम्नीश०, अव्ययं विभक्ति०,  
षड्भक्तिविशति०, एतानि केवलानि सूत्राणि सम्पूर्णानि  
शुद्धानि विलिखत ।

- ६ समासः कतिविधः । कानि च तदुदाहरणीति स्पष्टं  
प्रतिपादयत ।

१०

- ७ त्रिषु लिङ्गेषु द्वि, त्रि, चतुर्, शब्देष्वन्यतमस्य, युष्मदस्या-  
दोरन्यतरस्य च सर्वासु विभक्तिषु रूपाणि विलिख्य, लिङ्  
आस्वादने, ब्रूञ् व्यक्ताया वाचि धात्वोरनयोरन्यतरस्य  
सर्वलकारेषु प्रथमं रूपञ्च स्पष्टं लिखत ।

११

## उत्तराणि

प्र० [ १ ]

क	इत्यस्य विवारो श्वासोऽधोषोऽल्पप्राणप्रयत्नो भवति ।
छ	„ विवारो श्वासोऽधोषो महाप्राणप्रयत्नोऽस्ति ।
ड	„ सवारो नादो घोषोऽल्पप्राणप्रयत्नो भवति ।
ध	„ „ „ „ महाप्राणप्रयत्नोऽस्ति ।
म	„ „ „ „ अल्पप्राणप्रयत्नो विद्यते ।
श	„ विवारो श्वासोऽधोषो महाप्राणप्रयत्नो भवति ।

प्र० [ २ ] शिवेहि ।

अस्योत्तरं ( २ ) द्वितीयपृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

## १ अमुकेऽत्र ।

\* 'अमुके + अत्र' इत्यवस्थायाम्, "पङ्कः पदान्तादति" इति सूत्रेण पूर्वरूपे कृते 'अमुकेऽत्र' इति रूपं सिद्धम् ।

नन्वत्र "अदसो भात्" इति सूत्रे मादूप्रहणं किमर्थमिति प्रश्नः । उत्तरयति गादूप्रहणाभावे "ईदूदेद्विचनं प्रगृह्यम्" इति सूत्रात्-  
एदित्यस्याप्यनुवृत्त्या 'अदस्' शब्दात्परस्य एकारस्यापि प्रगृह्यसंज्ञाविधानाद्  
'अमुके + अत्र' इति दशायां ककारोत्तरवर्तिन एकारस्य प्रगृह्यसंज्ञाया  
"एतुतप्रगृह्या अचि नित्यम्" इति प्रकृतिभावेन 'अमुके अत्र' इत्यनिष्टं-  
रूपं स्यादतो सूत्रे मादूप्रहणं कर्तव्यम् । कृते तु मादूप्रहणे तत्सामर्थ्याच्च एदि-  
त्यस्यानुवृत्तिरिति, न तत्र प्रगृह्यसंज्ञात्वेन प्रकृतिभावः । अपि तु पररूपमेव  
भवतीति दिक् ।

## २ संस्कृता ।

१ 'सम् + रक्ता' इत्यवस्थायाम् "समः सुटि" इति सूत्रेण 'मकारस्य  
रुत्वेऽनुबन्धलोपे "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु ना" इति सूत्रेण वैकल्पि-  
केऽनुनासिकत्वे "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" इति रेफस्य विसर्गे, ततो  
"विसर्जनीयस्य सः" इति सूत्रेण विसर्गस्य सत्वे प्राप्ते, तन्वाधित्वा  
"वा शरि" इत्यनेन वैकल्पिके विसर्गे प्राप्ते, तमपि प्रवाध्य "सम्पुङ्गानां  
सो वक्तव्यः" इति वातिकेन सकारादेशे 'संस्कृता' इति, अनुनासिकत्वा-  
भावपक्षे "अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः" इति सूत्रेणानुस्वारान्ते, रेफस्य

\* 'अदस्' शब्दात् "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः" इति सूत्रेण  
'अकच्' अत्ययेऽनुबन्धलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात् 'अदकस्' शब्दाज्जसि  
चिम्बो "त्यदादीनामः" इत्यत्वे "अतो गुणे" इति पररूपे, "जसः शि"  
इत्यनेन जसः शिवादेशेऽनुबन्धलोपे, गुणे, सुत्वे च रुत्वे 'अमुके'  
इत्यस्य सिद्धिर्भवतीति बोध्यम् ।

१ ये यहाँ है । २ संस्कार करने वाला ।

विसर्गे, विसर्गस्य सकारे च कृते 'संस्कृता' इति इति रूपद्वयं साधु ।

मनोरथः ।

अस्य साधनं १६३२ वर्षे ( २८ ) पृष्ठे कृतं भया ।

गो अप्रम् ।

अयमपि प्रयोगः १६३३ वर्षे ( ३६ ) पृष्ठे साधितोऽस्ति ।

१ त्वङ्करोषि ।

'त्वम् + करोषि' इत्यवस्थायां "मोऽनुस्वारः" इति सूत्रेण मकारस्यानुस्वारे "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः" इति सूत्रम्प्रवाच्य "वापदान्तस्य" इत्यनेन वैकल्पिके ङकारे परसवर्णो 'त्वङ्करोषि' इति, परसवर्णाभावपक्षे 'त्वं करोषि' इति द्वे रूपे साधुनी ।

सञ्छुः ।

अस्योत्तर सन् १६३० वर्षे ( २ ) द्वितीय-पृष्ठे प्रेक्षणीयम् ।

१ नृपाहि ।

'नृन् + पाहि' इत्यवस्थायां "नृन्पे" इति सूत्रेण वैकल्पिके नकारस्य ह्रस्वेऽनुबन्धलोपे "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" इत्यनेन वैकल्पिकेऽनुनासिकागमे, ततः "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" इति रेफस्य विसर्गे "विसर्जनीयस्य एनः" इति विसर्गस्य सकारे प्राप्ते, तम्प्रवाच्य "कुप्वोः कपौ च" इति सूत्रेण विसर्गाय ऋपादेशे, 'नृन्पाहि' इति प्रथमं रूपं सिद्धम् । अनुनासिकाभावपक्षे—"अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः" इति सूत्रेणाऽनुस्वारागमे कृते 'नृन्पाहि' इति द्वितीयं रूपम् । ऋपादेशाभावपक्षे ह्रस्वानुनासिकविसर्गेषु कृतेषु 'नृन्पाहि' इति तृतीयम् । अनुस्वारागमपक्षे 'नृन्पाहि' इति चतुर्थम् । ह्रस्वाभावपक्षे—'नृन्पाहि' इति पञ्चमाणि साधुनी ।

१ तुम (क्या) करते हो ? । २ मनुष्यों की रक्षा करो ।

प्र० [ ३ ] रामाय ।

अस्योत्तरं सन् १६३२ वर्षे ( २८ ) पृष्ठे प्रेक्षणीयम् ।

स्त्रियै ।

प्रातिपदिकत्वात्—‘स्त्रि’शब्दात् ‘हे’विभक्तावनुबन्धलोपे “यू स्याख्यौ नदी” इति सूत्रेण नदीसञ्ज्ञायाम्, “आएनद्याः” इत्यनेनाऽऽडागमेऽनुबन्धलोपे “आटश्च” इति सूत्रेण वृद्धौ “स्त्रियाः” इत्यनेन इयङादेशोऽनुबन्धलोपे च कृते ‘स्त्रियै’ इति रूपं सिद्धम् ।

विश्वौहः ।

अस्य प्रयोगस्य साधनप्रकारः सन् १६३२ वर्षे ( ३० ) पृष्ठे प्रेक्षणीयः ।

वभूव ।

‘भू—सत्तायाम्’ इत्यस्माद्धातोः “परोक्षे लिट्” इति सूत्रेण लिप्तेनुबन्धलोपे, लस्य स्थाने “तिप्-तस्-मि-सिप्-थस्-थमिप्-वस्-मस्-ता-ह्-तां-भ-थोसाथा-ध्वमिङ्-वहि-महिङ्” इत्यनेन प्रथमपुरुषैकवचने ‘तिप्’प्रत्यये “परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणत्वमाः” इत्यनेन तिपो णलादेशोऽनुबन्धलोपे, ‘भू + अ’ इति स्थिते, नित्यत्वाद्गुणवृद्धौ बाधित्वा “भुवो वृग्लुङ्लिटोः” इत्यनेन वृगागमेऽनुबन्धलोपे, ‘भूव् + अ’ इति जाते, ‘वृद्धः प्रचलन् सहावयवैः प्रचलति’ इति न्यायेन वृक्साहितस्य भुवो “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, “भूव् + भूव् + अ” इति भूत्वे, “पूर्वोऽभ्यासः” इति प्रथमभूव् इत्यस्यभ्याससञ्ज्ञायां “हलादिः शेषः” इत्यनेन वकारस्य लोपे ‘भू + भूव् + अ’ इति जाते “ह्रस्वः” इत्यनेनाभ्यासस्य ह्रस्वे ‘भवतेरः’ इत्यनेनाभ्यासोकारस्य अकारे ‘भ + भूव् + अ’ इति जाते, “अभ्यासे चर्च” इत्यनेन पूर्वमकारस्य वकारे ‘वभूव’ इति रूपं सिद्धम् ।

मिमीते ।

‘माङ्’ ‘माने’ शब्दे च’ इत्यस्माद्धातोः “वर्चमाने लट्” इति

१ नापना, बिल्ली या बकरी का शब्द ‘मैं-मैं’ करना ।

सूत्रेण लट्यनुबन्धलोपे, लकारस्थाने 'त' प्रत्यये, टेरेत्वे "जुहोत्यादिभ्यः श्लुः" इत्यनेन शपः श्लौ "श्लौ" इत्यनेन द्वित्वे "पूर्वोऽभ्यासः" इत्यभ्याससञ्ज्ञात्वे, "ह्रस्वः" इति ह्रस्वे, "भृजाभित्" इत्यनेन इत्वे, तस्य हित्वात् "ई ह्रस्वधोः" इति सूत्रेण ईत्वे च कृते 'मिमीते' इति रूपं साधु ।

अहिनः ।

हिसार्थकात् 'हिस्' धातोर्नुमि, "अनद्यतने लङ्" इति सूत्रेण लङि, अनुबन्धलोपे, लस्य स्थाने सिप्यनुबन्धलोपे "इतश्च" इत्यनेन इकारलोपे "लुङ्-लङ्-लृङ्द्वङुदात्तः" इत्यनेनाडागमेऽनुबन्धलोपे, "रुधादिभ्यः शनम्" इति शनम्यनुबन्धलोपे, नलोपे, हल्ङ्थादिलोपे च "सिपि धातो र्वर्वा" इति पाक्षिके एत्वे विसर्गे च कृते 'अहिनः' इति, अत्र 'वा'शब्दस्य समुच्चयार्थकत्वात् "वसु-ससु-ध्वंस्वनडुहां दः" इति दकारस्यानुवृत्त्या एत्वाभावपक्षे-सकारस्य दत्वे "दाऽवसाने" इति पैकल्पिके चत्वे 'अहिनत्'-'अहिनङ्' इति त्रीणि रूपाणि साधूनि ।

प्र० [ ४ ] अबोभोत् ।

'भू'धातोः "धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्" इत्यनेन यङि "यङोऽचि च" इत्यनेन यङो लुकि, प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् "सन्यङोः" इति सूत्रेण द्वित्वे "गुणो यङ्लुकोः" इत्यनेन गुणो "अभ्यासे चर्च" इति भस्य वत्वे "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुसंज्ञार्था धातुत्वात् "लुङ्" इत्यनेन लुङ्यनुबन्धलोपे लकारस्थाने तिप्यनुबन्धलोपेऽडागमे, इकारलोपे "ल्लि लुङि" इति ल्लौ "ल्लेः सिचि" इत्यनेन सिचि "गाति-स्था-घु-पा शूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु" इत्यनेन सिचो लोपे "यङो वा" इति पक्षिके इङभावे गुणे च कृते 'अबोभोत्' इति, इटि कृते तु 'अबोभूवीत्' इति रूपद्वयं सिद्धयति ।

'अलाभि ।

'लभ्'धातोर्भावे लुङि "भावकर्मणो." इत्यनेनाऽऽत्मनेपदत्वाल्लुङ्स्थितिः ।

प्रत्यये “लुङ् लङ्-लुङ्द्वडुदात्तः” इत्यङागमेऽनुबन्धलोपे “च्लि लुङि” इति च्लौ “चिण् भावकर्मणोः” इत्यनेन च्लेश्विणि ‘अ + लम् + इ + त’ इति स्थिते “विभाषा चिण्णमुलोः” इत्यनेन पाक्षिके नुमोऽभावे “चिणो लुक्” इति सूत्रेण तकारस्य लोपे “अत उपधायाः” इत्यनेन वृद्धौ कृतायां सत्या- अलाभि’ इति रूपं सिद्धम् ।

१ अवावा ।

ओणतीति विग्रहे ‘ओण् अपनयने’ इत्यस्माद्धातोर्वनिपि “विङ्-नोरनुनासिकस्थाऽऽत्” इति सूत्रेण णकारस्याऽऽत्वे, ओकारस्याऽवा देशे, ततः ‘अवावन्’ शब्दात् “सर्वनामस्थाने चाऽस्य+वृद्धौ” इति सूत्रेण दीर्घे, हल्ङ्यादिना सोर्लोपे, नकारस्य च लोपे कृते ‘अवावा’ इति रूपं सिद्धम् ।

२ शुभंयुः ।

शुभमस्य विच्यते-इति विग्रहे ‘शुभम्’ इत्यस्मात् “अहंशुभमोर्युस्” इति सूत्रेण युसि, अनुस्वारे, ततः प्रातिपदिकत्वात्स्वादिकार्ये च कृते ‘शुभंयुः’ इति रूपं साधु ।

३ मानुषी ।

‘मनु’ शब्दात्-अपत्येऽर्थे “मनोजातावज्जयतौ पुक् च” इति सूत्रेण ‘अल्’ इत्यये, धुगागमे चाऽनुबन्धलोपे, वृद्धौ, ‘मानुष’ शब्दात् “जातेर-ओविषयादयोपधात्” इत्यनेन ङीषि, अनुबन्धलोपे, भत्वे, “यस्येति च” इत्यनेनाकारस्य लोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ, सोर्लुकि च कृते ‘मानुषी’ इति रूपं सिद्धम् ।

१ दूर करने वाली ब्राह्मणी । २ शुभान्वित अर्थात् कल्याण कारक (पुरुष) । ३ स्त्री ।



१ विप्राय गां ददाति ।

‘विप्राय गां ददाति’ इत्यत्र “कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्” इति सूत्रेण विप्रस्य सम्प्रदानसञ्ज्ञायां “सम्प्रदाने चतुर्थी” इत्यनेन तस्य सम्प्रदानत्वात्पञ्चमी ‘विप्राय गां ददाति’ इत्यस्य सिद्धिः ।

प्र० [ ५ ]

“अन्ताद्विबच्च” योऽयमेकादेशः स पूर्वस्याऽन्तवत्परस्याऽऽदिवत्, इति सूत्रार्थः, यथा ‘शिवेहि’ इत्यत्रैकादेशो गुणस्तस्य पूर्वान्तवद्भावेनाऽऽङ्त्वं मत्वा “ओमाङ्गोश्च” इत्यनेन पररूपं भवति । “प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च” पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः, यथा ‘श्रेयसी’-शब्दः प्राक् नित्यस्त्रीलिङ्गः, पश्चाद् ‘बहु’ इत्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीसञ्ज्ञको भवत्येवेति । “नाऽनर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे” अनर्थके “अलोऽन्त्यस्य” इति विधिर्न प्रवर्तते, अभ्यासविकारं वर्जयित्वा । अभ्यासविकारे त्वनर्थकेऽपि “अलोऽन्त्यस्य” इति प्रवर्तते एवेत्यर्थः । तेन ‘विभर्ति’ ‘पिपत्ति’ इत्यादौ “भृजामित्” इति “धर्तिपिपत्योश्च” इति च सूत्रेणाभ्यासावयवस्यान्त्यस्याल इत्वं भवति, न सर्वस्याभ्यासस्येति । “आद्यन्तवदेकस्मिन्” एकरिगन्क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात्\* । यथा — “सुपि च” इति सूत्रेणाकारान्तस्य दीर्घो विधीयते, “हलि लोपः” इत्यनेनेदो लोपे कृते ‘अ + भ्याम्’ इति स्थिते, ‘इद’शब्दोऽदन्तो नास्ति, अतः “आद्यन्तवदेकस्मिन्” इति सूत्रेणाऽकारेऽदन्तत्वमाश्रित्य दीर्घो भवतीति शम् ।

\* एकस्मिन्नपि वर्णे तदादित्वव्यवहारस्तदन्तत्वव्यवहारश्च भवतांति यावत् । यथा लोके एकपुत्रसत्त्वे तस्मिन्नेव वषेष्ठत्वकनिष्ठत्वादिव्यवहारो भवति, तथैव शास्त्रेऽपि बोध्यः ।

१ ब्राह्मण के लिये गौ देता है ।

“नेर्गद-नद-पत-पद-घु गा-स्थिति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-  
चपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु च” । “पा-घ्रा-ध्मा रधा-म्ना-  
दायू-दश्यति रति-शद-सदा-पिव-जिघ्र-धम-तिष्ठ गन-यच्छ-पश्यच्छ-  
धौ-शीय-सीदा” । “दाम्नी शरा यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-  
दश-नह-करणे ।” “अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यूह्यर्थाभावा-ऽत्यया  
ऽसम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चा-यथा-ऽऽनुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-  
साकल्या-ऽन्त-वचनेषु” । “पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टि-  
सप्तत्यशोति-नवति-रातम्” ।

प्र० [ ६ ]

समासः पञ्चधा । तत्र \* समसनं समासः । स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः  
केवलसमासः प्रथमः । यथा-‘भूतपूर्वः’ । प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽ-  
व्ययीभावो द्वितीयः । यथा-‘अधिहरि’ । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्त-  
त्पुरुषस्तृतीयः । यथा-‘राजपुरुषः’ । तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः ।  
यथा-‘नीलोत्पलम्’ । कर्मधारयभेदो द्विगुः । यथा-‘पञ्चगवम्’ ।  
प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिस्यतुर्यः । यथा-‘लम्बकर्णः’-‘पीताम्बरः’  
प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः । यथा-‘रामलक्ष्मणौ’ ‘धन्वद्विरो’ ।

प्र० [ ७ ]

पुँल्लिङ्गे १ ‘द्वि’शब्दस्य रूपाणि ।

प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी
द्वौ	द्वौ	द्वभ्याम्	द्वभ्याम्
पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी	
द्वभ्याम्	द्वयो	द्वयो	

\* अनेकपदानामेकीभवनमित्यर्थः ।

पुँल्लिङ्गे 'त्रि'शब्दस्य रूपाणि ।

प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी
त्रयः	त्रीन्	त्रिभिः	त्रिभ्यः
पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी	सम्बोधनम्
त्रिभ्यः	त्रयाणाम्	त्रिषु	हे त्रयः !

पुँल्लिङ्गे 'चतुर्'शब्दस्य रूपाणि ।

प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी
चत्वारः	चतुरः	चतुर्भिः	चतुर्भ्यः
पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी	सम्बोधनम्
चतुर्भ्यः	चतुर्णाम्	चतुर्षु	हे चत्वारः !

स्त्रीलिङ्गे 'द्वि'शब्दस्य रूपाणि ।

प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी
द्वे	द्वे	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी	
द्वाभ्याम्	द्वयोः	द्वयोः	

स्त्रीलिङ्गे 'त्रि'शब्दस्य रूपाणि ।

प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी
तिस्रः	तिस्र	तिसृभिः	तिसृभ्यः
पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी	सम्बोधनम्
तिसृभ्यः	तिसृणाम्	तिसृषु	हे तिस्रः !

स्त्रीलिङ्गे 'चतुर्'शब्दस्य रूपाणि ।

प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी
चतस्रः	चतस्रः	चतसृभिः	चतसृभ्यः

पञ्चमी पृष्ठी सप्तमी सम्बोधनम्  
चतस्रभ्यः चतस्रणाम् चतस्रेषु हे चतस्रः ।

नपुंसकलिङ्गे 'द्वि'शब्दस्य रूपाणि ।

प्रथमा द्वितीया तृतीया चतुर्थी  
द्वे द्वे द्वाभ्याम् द्वाभ्याम्

पञ्चमो पृष्ठी सप्तमी  
द्वाभ्याम् द्वयोः द्वयोः

नपुंसकलिङ्गे 'त्रि'शब्दस्य रूपाणि ।

प्रथमा द्वितीया तृतीया चतुर्थी  
त्रीणि त्रीणि त्रिभ्यः त्रिभ्यः

पञ्चमी पृष्ठी सप्तमी  
त्रिभ्यः त्रयाणाम् त्रिषु

नपुंसकलिङ्गे 'चतुर्' शब्दस्य रूपाणि ।

प्रथमा द्वितीया तृतीया चतुर्थी  
चत्वारि चत्वारि चतुर्भिः चतुर्भ्यः  
पञ्चमी पृष्ठी सप्तमी सम्बोधनम्  
चतुर्भ्यः चतुर्णाम् चतुर्षु हे चत्वारि ।

'युष्मद्' शब्दस्य लिखित्यमासानि रूपाणि (७७) पृष्ठे द्रष्टव्यानि ।

'अष्मद्' शब्दस्य रूपाणि ।

एकवचनम् द्विवचनम् बहुवचनम् ।  
अहम् आवाम् वयम् प्रथमा ।  
माम् आवाम् अस्मान् द्वितीया ।  
मया आवाम्भ्याम् अस्मभिः तृतीया ।  
मत्तम् आवाम्भ्याम् अस्मभ्यम् चतुर्थी ।

भत्	आवाभ्याम्	अरागत्	पञ्चमी ।
भम	आवयोः	अस्माकम्	षष्ठी ।
भयि	आवयोः	अस्मासु	सप्तमी ।

१ 'लिह'धातोः सर्वलकारेषु प्रथमं रूपम् ।

लटि	[ परस्मैपदे ]	लेडि	[ आत्मनेपदे ]	लीडे ।
लिटि	,,	लिलेह	,,	लिलिहे ।
लुटि	,,	लेढा	,,	लेढा ।
लृटि	,,	लेक्ष्यति	,,	लेक्ष्यते ।
लोटि	,,	लेढु-लीढात्	,,	लीढाम् ।
लङि	,,	अलेट्-अजेड्	,,	अलीढ ।
विधि लिङि	,,	लिङ्यात्	,,	लिङ्गीत ।
आ० लिङि	,,	लिङ्यात्	,,	लिङ्गीष्ट ।
लुङि	,,	अलिङ्यत्	,,	अलिङ्यत-अलीढ ।
लृङि	,,	अलेक्ष्यत्	,,	अलेक्ष्यत ।

२ 'ब्रू'धातोः सर्वलकारेषु प्रथमं रूपम् ।

लटि	[ परस्मैपदे ]	आह ( पक्षे )	ब्रवीति [ आत्मनेपदे ]	ब्रूते ।
लिटि	,,	उवाच	,,	ऊचे ।
लुटि	,,	वक्ता	,,	वक्ता ।
लृटि	,,	वक्ष्यति	,,	वक्ष्यते ।
लोटि	,,	ब्रूतु-ब्रूतात्	,,	ब्रूताम् ।
लङि	,,	अब्रवीत्	,,	अब्रूत ।
वि० लिङि	,,	ब्रूयान्	,,	ब्रुवीत ।
आ० लिङि	,,	उच्चात्	,,	वक्षीष्ट ।
लुङि	,,	अब्रूचत्	,,	अब्रूचत ।
लृङि	,,	अवक्ष्यत्	,,	अवक्ष्यत ।

सन् १६४०

प्रश्नाः-

- १ लण् सूत्रेऽकारस्येत्संज्ञायाः फलं तदुदाहरणञ्च ब्रूत । ५  
 २ कृष्णाङ्घ्रिः, उत्थानम्, सञ्च्छृङ्गः, हरी रम्यः, एतेषां  
 प्रयोगाणां सूत्रनिर्देशपुररसरं सिद्धिं प्रदर्शयत । १२

अथवा

विष्णो + इह, किमु + उक्तम्, तद् + शिवः, सुगण् +  
 पष्ठः, इत्यस्यां स्थितौ कानि रूपाणि भवन्ति, कथञ्च  
 तत्सिद्धिरिति ससूत्रं प्रतिपादयत । १२

- ३ (क) सखा, मतौ, त्वया, भवेयुः, अध्ययै, अनद्ध ।  
 (ख) गाः, दध्नि, अमुया, एधरव, पपरतुः, अनजानि ।

उपरिनिर्दिष्टयोः क, ख, प्रश्नयोर्मध्ये कस्यचिदेकस्य  
 सम्पूर्णस्य प्रश्नस्य प्रयोगान् सम्यक् प्रसाधयत । १८

- ४ अबोभतुः, राजानति, धर्ममुञ्चरते, अस्तावि, गोमय-  
 निकायः, मातुः स्मरन्ति, एतेषां प्रयोगाणां ससूत्रं सिद्धिप्रकारं  
 लिखत । १८

- ५ अध्यात्मम्, रूपवद्भार्यः, सखिपथः, एतेषु समासविधायकानि  
 सूत्राणि तत्तद्विशेषकार्यञ्च स्फुटं प्रदर्शयत । ६

- ६ द्वैमातुरः, मीमांसकः, शालीयः, आश्विनम्, नैकटिकः,  
 मातृभोगीणः, एतेषु तत्तदर्थबोधकप्रत्ययविधायकानि  
 शास्त्राणि साधु प्रतिपादयत । प्रयोगाणामर्थश्च लेख्यः । १८

- ७ भवन्, निर्जर, अतिचमू, शब्देषु कयोश्चिद् द्वयोः  
 शब्दयोः सर्वाणि रूपाणि विलिख्य, शु अवगो, हन  
 हिंसागत्योः, रुधिर आवरणे, एतेषु कयोश्चिद् द्वयोः  
 धात्वोः सर्वलकारेषु प्रथमं रूपञ्च स्पष्टं लिखत । १०-

सूचना-स्पष्टसुन्दराक्षरविन्यासाय दशाङ्काः सुरक्षिता इति बोध्यम् ।

## उत्तराणि

प्र० [ १ ]

“लण” सूत्रेऽकारस्येत्सञ्ज्ञायाः फल ‘र’प्रत्याहारसिद्धिः । तेन रप्रत्याहारसिद्ध्या “उरण् रपर” इत्यादौ रपर इत्यनेन लपरस्यापि विधानात् ‘तवल्कारः’ इत्यादि प्रयोगाणां सिद्धिर्भवतीति बाध्यम् ।

प्र० [ २ ] कृष्णार्द्धिः ।

असौ प्रयोगः सन् १६३६ वर्षे ( ६७ ) पृष्ठे वर्तते ।

उत्थानम् ।

अस्यापि साधनप्रकारः सन् १६३१ वर्षे ( १४ ) पृष्ठे द्रष्टव्यः ।

सञ्चङ्खगुः ।

असौ प्रयोगः सन् १६३० वर्षे ( ७२ ) पृष्ठे साधितो मया ।

‘हरी रम्यः ।

‘हरिस् + रम्यः’ इत्यवस्थायां “स्सञ्जुषो रुः” इति सूत्रेण सकारस्य सत्वेऽनुबन्धलोपे “रोरि” इत्यनेन रेफस्य लोपे “ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इत्यनेनेकारस्य दीर्घे ‘हरी रम्यः’ इति रूपं सिद्धम् ।

‘विष्णो इह ।

‘विष्णो + इह’ इत्यवस्थायाम्, “एचोऽयवायावः” इति सूत्रेण ओकारस्थावादेशे ‘विष्ण् + अच् + इह’ इति जाते, “लोपः शाकल्यस्य” इत्यनेन वैकल्पिके वकारलोपे, ततः “आद्गुणाः” इत्यनेन गुणे प्राप्ते, “पूर्व-आसिद्धम्” इति सूत्रेण “लोपः शाकल्यस्य” इत्यस्यासिद्धत्वाद्गुणाभावे, ‘विष्ण इह’ इति रूपं निष्पन्नम् । वकारलोपाभावपक्षे ‘विष्णविह’ इति च रूपद्वयं साधु ।

१ हरि भगवान् रमणीय हैं । २ हे विष्णु ! यहाँ [ आओ ] ।

किञ्चुक्तम् ।

असौ प्रयोगः सन् १६३४ वर्षे ( ५० ) पृष्ठे कृतं राजते ।

१तच्छिवः ।

‘तद् + शिवः’ इत्यवस्थायां “स्तोः श्चुना श्चुः” इत्यनेन शकारया-  
गात्—दकारस्य रचुत्वेन जकारे ‘तज् + शिवः’ इति जाते, “खरि च” इति  
सूत्रेण जकारस्य चत्वेन चकारे, “शश्छोऽटि” इत्यनेन शकारस्य स्थाने  
चेकल्पिके छकारे कृते ‘तच्छिवः’ इति रूपं साधु. छत्वाभावे सति—‘तच्-  
शिवः’ इति रूपं भवतीति शम् ।

२सुगणषष्ठः ।

‘सुगण + षष्ठ’ इत्यवस्थायां “ङ्णोः कुक्-टुक्-शरि” इति सूत्राय  
चैकल्पिके ङुगागमेऽनुबन्धलोपे च कृते ‘सुगण् + ट् + षष्ठः’ इति भूते, “चयो  
द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्” इति वार्तिकेन टकारस्य  
द्वितीयाक्षरे ठकारे कृते ‘सुगणठ्षष्ठः’ इति रूपम् । द्वितीयाक्षरमावपक्षे  
‘सुगणट्षष्ठः’ इति । ङुगागमाभावपक्षे ‘सुगणषष्ठः’ इति त्रीणि  
रूपाणि साधूनि ।

प्र० [ ३ ] ( क )

सखा ।

प्रातिपदिकत्वात्—‘सखि’शब्दात्प्रत्ययैकवचने ‘सु’प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे ‘सखि  
+ स्’ इति स्थिते “यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम्” इति  
सूत्रेणाङ्गसञ्ज्ञायाम्, “अनङ्सौ” इत्यनेनाऽनङादेशे प्राप्ते स चाऽनङादेराः  
कुत्र स्यादित्याशङ्क्याम्, “अनेकाल्शित्सर्वस्य” इति सूत्रेण ‘सखि’  
इति सम्पूर्णास्य स्थाने प्राप्ते, परञ्च “ङिच” इत्यनेन “अनेकाल्शित्सा-  
र्वस्य” इति सूत्रं प्रतिषेध्य ‘सखि’शब्दघटकलकारोत्तरवर्तिन इकारस्य स्थाने-

१ वह शिव [ है ] । २ छठा अच्छा गणित जानता है ।



ऽनञादेशेऽनुबन्धलोपे च कृते, 'सखन्+स्' इति जाते, ततः "अलोऽन्त्या-  
त्पूर्वं उपधा" इति सूत्रेणोपधासञ्ज्ञायां "सर्वनामस्थाने चाऽस-  
म्बुद्धौ" इत्यनेन दीर्घे, 'सखान्+स्' इति स्थिते "अपृक्त एकाऽलप्र-  
त्ययः" इति सूत्रेण सकारस्यापृक्तसञ्ज्ञायां "हल्ङ्यावभ्यो दीर्घात्सुति-  
स्थपृक्तं हल्" इत्यनेन सकारलोपे 'सखान्' इति भूते, "नलोपः प्राति-  
पदिकान्तस्य" इति नकारस्य लोपे 'सखा' इति रूपं साधु ।

मतौ ।

अस्योत्तरं सन् १६३१ वर्षे ( १९ ) पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

त्वया ।

प्रातिपदिकत्वात् - 'युष्मद्' शब्दाद् 'टा' विभक्तौ समागतायामनुबन्धलोपे  
"त्वमावेकवचने" इति सूत्रेण मपर्यन्तस्य युष्मदस्त्वादेशे "अतो गुणे"  
इत्यनेन पररूपे "योऽचि" इति दकारस्य यकारे च कृते 'त्वया' इति  
रूपं सिद्धम् ।

भवेयुः ।

'भू'धातोः "विधि-निमन्त्रणा-ऽऽमन्त्रणा-ऽधीष्ट-संप्रश्न-आर्थ-  
नेषु लिङ्" इति सूत्रेण लिङि, लिङः स्थाने 'क्लि'प्रत्यये "कर्त्तरि शप्"  
इति शप्प्यनुबन्धलोपे, "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इत्यनेन गुणेऽवादेशे  
च "भोऽन्तः" इति भस्स्यान्तादेशे प्राप्ते, तन्वावित्वा "भेर्जुस्" इति  
जुसादेशेऽनुबन्धलोपे, "यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिञ्च" इति सूत्रेण  
यासुटि, अनुबन्धलोपे "लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य" इत्यनेन सकारस्य  
लोपे प्राप्ते, तन्प्रवाध्य "अतो येयः" इति यास इयादेशे, ततः "आहुगुणः"  
इत्यनेन गुणे एत्वे विसर्गे च कृते सति 'भवेयुः' इति रूपं सिद्धम् ।

अध्ययै ।

अधिपूर्वात् 'इङ्' 'अध्ययने' इत्यस्माद्धातोः "लोट् च" इत्यनेन

“आशिपि लिङ्-लोटी” इत्यनेन वा लोटि, लोटः स्थाने इटि प्रत्यये तस्य “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति सूत्रेण एत्वे “आडुत्तमस्य पिच्च” इत्यनेनाऽऽटि, “आटश्च” इति वृद्धौ ‘अधि + इ + ऐ’ इति स्थिते, गुणेऽयादेशे यणि च कृते ‘अध्ययै’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

अनद्ध ।

‘गृह-वन्धने’ इत्यस्माद्धातोर्यस्य नत्वे, तत आत्मनेपदे ‘त’प्रत्ययेऽटि, प्लौ, सिचि “नहो धः” इति सूत्रेण हकारस्य धकारे “भूपस्तथोर्धो धः” इत्यनेन यकारस्य धकारे “भूलो भूलि” इति सकारस्य लोपे, जश्त्वे ‘अनद्ध’ इति रूपं साधु ।

[ ख ] गाः ।

‘गो’शब्दात्प्रातिपदिकसंज्ञायां प्रातिपदिकत्वाद्द्वितीयावहुवचने ‘शस्’विभक्तावनुबन्धलोपेऽसर्वनामस्थानत्वाद् यिद्वद्भाववृद्धयोरभावे “अतोऽमशसोः” इति सूत्रेण आकारैकादेशे, सकारस्य एत्वे विसर्गे च सति ‘गाः’ इति रूपं सिद्धम् ।

दध्नि ।

प्रातिपदिकत्वात् ‘दधि’शब्दात्सप्तम्यैकवचने ‘ङी’विभक्तावनुबन्धलोपे “अस्थि-दधि-सकथ्यदणामनडुदात्तः” इति सूत्रेणानवादेशेऽनुबन्धलोपे “विभाषा ङिश्चोः” इत्यनेन वैकल्पिकेऽकारस्य लोपे ‘दध्नि’ इति । अल्लोपामावपक्षे ‘दधन्नि’ इति द्वे रूपे निष्पन्ने ।

अमुया ।

प्रातिपदिकत्वात्—‘अदस्’शब्दात्तृतीयैकवचने ‘टा’ विभक्तौ “त्यदादीनामः” इत्यनेनात्वे “अतो गुरो” इति सूत्रेण पररूपत्वे च “अजाद्य-तप्राप्” इत्यनेन टापि, “अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन दीर्घे “आङि-चाऽपः” इत्येत्वेऽयादेशे “अदसोऽसेर्दाडुदो मः” इति सुत्वे कृते ‘अमुया’ इति रूपं सिद्धम् ।

। बांधना ।

एधस्व ।

‘एध-वृद्धौ’ इत्यस्माद्धातोर्लोपि, तत्स्थाने थासि, शपि, “थासः से” इति ‘से’ इत्यादेशे “आमेतः” इति सूत्रेणाऽऽमं बाधित्वा “सवाभ्यां वामौ” इत्यनेन एकारस्य वादेशे ‘एधस्व’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

पपरतुः ।

‘पृ १ पालन-पूरणयोः’ इत्यस्माद्धातोः “परोक्षे लिट्” इति सूत्रेण लिट्यनुबन्धलोपे, लकारस्थाने “तिप्-तस्-भ्मि-सिप् थस् थ-मिब्-वस्-मस्-ता-ऽऽतां-भ-थास्तथां-ध्वमिङ्-वहि-महिङ्” इत्यनेन प्रथमपुरुषद्विवचने तस् प्रत्यये, तसः स्थाने “परस्मैपदानां शालतुसु-स्थलथुसराएवमाः” इत्यनुसादेशे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्याससंज्ञायाम्, “उरत्” इत्यत्वे “उरण-रपरः” इति रपरे “हलादिः शेषः” इति लोपे “श्रृ-दृ-प्रां-ह्रस्वो-वा” इति सूत्रेण पाक्षिके ह्रस्वमावे “ऋच्छत्यृताम्” इत्यनेन गुणे रपरे च कृते ‘पपरतुः’ इति । ह्रस्वे कृते तु-यणि, रत्वे विसर्गे च ‘पप्रतुः’ इति रूपद्वयं सिद्ध्यति ।

अनजानि ।

असौ प्रयोगः सन् १६३५ वर्षे ( ६४ ) पृष्ठे प्रेक्षणीयः ।

प्र० [ ४ ] अबोभवुः ।

‘भू’धातोः “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि “यङोऽङि च” इति यङो ङि “प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्” इत्यनेन यङन्तत्वात् “सन्यङोः” इत्यनेन द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यनेनाभ्याससंज्ञायाम् “गुणो यङ्लुकोः” इति गुणे “अभ्यासे चर्च” इत्यनेन भकारस्य वत्वे “सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन धातुत्वाच्छ्रुति, ङङः स्थाने भौ, “चिल लुङि” इति ङ्लौ “ऌः सिच्” इत्यनेन सिचि

१ पालना, पूरा करना ।

“गाति-स्था-धु-पा-भूम्यः सिचः परस्मैपदेषु” इत्यनेन सिचो लोपे, गुणं वाधित्वा “भुवां वुग्-लुङ्-लिटोः” इत्यनेन वुगागमेऽनुबन्धलोपे “सिजभ्यस्तचिदिभ्यश्च” इति सूत्रेण मेजुसागमेऽनुबन्धलोपेऽटि, एत्वे विसर्गे च कृते ‘अबोभवुः’ इति रूपं सिद्धम् ।

‘राजानति ।

राजेवाऽऽचरतीति विग्रहे ‘राजन्’ शब्दात् “सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्त्वा वक्तव्यः” इति सूत्रेण क्पि तल्लोपे, “सनाद्यन्ता धातवः” इति सूत्रेण धातुत्वाल्लटस्तिपि, शपि, “अनुनासिकस्य किङ्कतोः क्किति” इति सूत्रेण दीर्घे ‘राजानति’ इति रूपं सिद्धम् ।

‘धर्ममुच्चरते ।

धर्ममुच्चरते-इत्यत्र ‘उत्-पूर्वाच्’ धातोः “उद्श्चरः सकर्मकात्” इति सूत्रेणाऽऽत्मनेपदत्वाल्लटि, तत्स्थाने ‘त’प्रत्यये “कर्त्तरि शप्” इति शपि “टित आत्मनेपदानां ढरे” इत्येत्वादिकार्ये कृते ‘धर्ममुच्चरते’ इति रूपं सिद्धम् ।

अस्तावि ।

असौ प्रयोगः सन् १६३८ वर्षे ( ६२ ) पृष्ठे द्रष्टव्यः ।

‘गोमयनिकायः ।

निवायनं निकायः, यद्वा निवीयतेऽस्मिन्निति विग्रहे नि-पूर्वाच् ‘चि’ धातोः अधिकरणे भावे वा घञि, चस्य कत्वे, वृद्धौ, आयादेशे, ततः कृदन्तत्वात् “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ एत्वे विसर्गे च कृते निकायः, इति गोमयानां निकाय इति ‘गोमयनिकायः’ इति रूपं सिद्धम् ।

‘मातुः स्मरति ।

‘मातुः स्मरति’ इत्यत्र “षष्ठी शेपे” इति सूत्रेण कर्मत्वाविवक्षायां शेषत्वविवक्षया षष्ठी ‘मातुः स्मरति’ इति रूपं सिद्धम् ।

१ राजा के सदृश मानता है । २ धर्म का उल्लेखन करता है ।

३ गोबर की ढेरी । ४ माता को स्मरण करता है ।

प्र० [ ५ ] <sup>१</sup>अध्यात्मम् ।

आत्मनि + इति-इति लौकिकविग्रहे 'आत्मन् + ङि + अधि' इत्यलौकिकविग्रहे "अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्युद्ध्यर्थाभावा-ऽत्यया-ऽसम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चा-द्यथा-ऽऽनुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य सम्पत्ति-साकल्या-ऽन्तवचनेषु" इति सूत्रेण समासे "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इति सुपो लुकि 'प्रथमानिर्दिष्टं समासं उपसर्जनम्' इत्यनेनोपसर्जनसंज्ञायाम्, "उपसर्जनं पूर्वम्" इति 'अधि' इत्यस्य प्राक्प्रयोगे, 'अध्यात्मन्' इति जाते तस्य "अनश्च" इति सूत्रेण टचि, अनुबन्धलोपे "नस्तद्धिते" इति टिलोपे, ततः समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ, अमादेशे च कृते "अध्यात्मम्" इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>२</sup>रूपवद्भार्यः ।

रूपवती भार्या यस्येति लौकिकविग्रहे 'रूपवती + सु, + भार्या + सु' इत्यलौकिकविग्रहे "अनेकमन्यपदार्थे" इति सूत्रेण समासे, समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इत्यनेन सुपो लुकि, "स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादन्तूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी-ग्रियादिषु" इति सूत्रेण 'रूपवती'शब्दस्य पुंवद्भावान्धीपो निवृत्तौ, "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य" इत्यनेन 'भार्या'शब्दस्य हस्वे 'रूपवद्भार्य' इति स्थिते, पुनः प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ रत्वे विसर्गे च कृते 'रूपवद्भार्यः' इति रूपं साधु ।

<sup>३</sup>सखिपथः ।

सख्युः पन्था, इति लौकिकविग्रहे, सखि + ङस्, पथिन् । यु' इत्यलौकिकविग्रहे च षष्ठीसमासे, सुल्लुकि "ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे" इति सूत्रेण 'अ'प्रत्यये, टिलोपे, नकारलोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ रत्वे विसर्गे च 'सखिपथः' इति रूपं सिद्धम् ।

प्र० [ ६ ] <sup>१</sup>द्वैमातुरः ।

द्वयोर्मात्रोरपत्यमिति लौकिकविग्रहे “द्वि + ओस्, मातृ + ओस् इत्य-  
लौकिकविग्रहे “तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारै च” इति समासे, सुपो छुकि  
‘द्विमातृ’शब्दात् “मातृस्त्वङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः” इत्यनेन ‘अण्’  
प्रत्यये, ककारस्य उकारे च रपरत्वे, “तद्धितेष्वचामादेः” इति सूत्रेणाऽऽ-  
दिवृद्धौ, ततः प्रातिपदिकत्वे, सौ स्त्वे विसर्गे च कृते ‘द्वैमातुरः’ इति रूपं  
सिद्धम् ।

<sup>२</sup>मीमांसकः ।

मीमांसामधीते वेद वेति विग्रहे ‘मीमांसा’शब्दात् “क्रमादिभ्यो घुन्”  
इति सूत्रेण ‘घुन्’प्रत्यये “युवोरनाकौ” इत्यनेन अकादेशे, “यस्येति च”  
इति सूत्रेणाऽऽकारस्य लोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ स्त्वे विसर्गे च सति  
‘मीमांसकः’ इति रूपं निष्पन्नम् ।

<sup>३</sup>शालीयः ।

शालाया भवः इति विग्रहे ‘शाला’शब्दस्य “वृद्धिर्यस्याचामादि-  
स्तद्वृद्धम्” इति सूत्रेण वृद्धिसञ्ज्ञाया “वृद्धाच्छः” इति सूत्रेण ‘छ’  
अत्यये, सुञ्छकि ‘शाला + छ’ इति स्थिते, “आयनेयीनीयियः फ-ढ-  
ख-छ-धां प्रत्ययादीनाम्” इत्यनेन छस्य स्थाने ईयादेशे “यचि भम्”  
इति भत्वात् “यस्येति च” इत्यकारस्य लोपे, ततः ‘शालीय’ इत्यस्य  
प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां सौ स्त्वे विसर्गे च सति ‘शालीयः’ इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>४</sup>आश्मनम् ।

अश्मनोऽवयवो विकारो वेति विग्रहे षष्ठ्यन्त-‘अश्मन्’शब्दात् “मय-  
ङ्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः” इत्यनेन मयटोऽभावपक्षेऽणि, सुपो  
छुकि “तद्धितेष्वचामादेः” इति सूत्रेणाऽऽदिवृद्धौ “अन्” इति प्रकृतिभावा-

१ गणेश जी । २ मीमांसा पढ़ने वाला । ३ शाला ( घर ) में पैदा  
हुआ । ४ पत्थर का अवयव [ हिस्सा ] या विकार ।

टिलोपाभावे, ततः  $\times$  प्रातिपदिकत्वाद्विमक्तिकार्ये\* 'आश्मनम्' इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>१</sup> नैकटिकः ।

निकटे वसति-इति विग्रहे सप्तम्यन्तसमर्थात् 'निकट'शब्दात् "निकटे वसति" इति सूत्रेण 'ठक्'प्रत्यये "ठस्येकः" इत्यनेन इकादेशे "किति च" इत्यनेनाऽऽदिवृद्धौ, "यस्येति च" इत्यकारस्य लोपे, ततः प्रातिपदिकत्वात्सौ रत्वे विसर्गे च कृते 'नैकटिको' [ भिक्षुकः ] इति रूपं सिद्धम् ।

<sup>२</sup> मातृभोगीणः ।

मातृभोगाय हितः-इति विग्रहे 'मातृभोग'शब्दात् "आत्मन्विश्व-जनभोगोत्तरपदात्खः" इति सूत्रेण 'ख'प्रत्यये "आयनेयीनीयियः फ-ढ-ख-छ-घां प्रत्ययादीनाम्" इति सूत्रेण खस्य ईनादेशे, भत्वे, "यस्येति च" इत्यनेनाकारस्य लोपे, ततः प्रातिपदिकसंज्ञायां विभक्तिकार्ये च सति 'मातृभोगीणः' इति रूपं निष्पन्नम् ।

प्र० [ ७ ] <sup>३</sup> 'मधवन्'शब्दस्य रूपाणि ।

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	
मधवान्	मधवन्तौ	मधवन्तः	प्रथमा ।
मधवन्तं	मधवन्तौ	मधवतः	द्वितीया ।
मधवता	मधवद्भ्याम्	मधवद्भिः	तृतीया ।
मधवते	मधवद्भ्याम्	मधवद्भ्यः	चतुर्थी ।
मधवतः	"	"	पञ्चमी ।
मधवति	मधवतोः	मधवताम्	षष्ठी ।
मधवति	मधवतोः	मधवत्सु	सप्तमी ।
हे मधवन् !	हे मधवन्तौ !	हे मधवन्तः !	सम्बोधनम् ।

\* अत्र "अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः" इति वार्तिकेन टिलोपस्तु न शङ्क्यः, प्रसिद्धत्वात्पाषाणवाचकस्यैव 'अश्मन्'शब्दस्य वार्तिके ग्रहणादिति दिक् ।

१ गाँव के समीप रहने वाला भिक्षुक । २ माता के अनुकूल । ३ इन्द्र ।

## तृत्वाभावे ।

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम् ।	
मधवा	मधवानौ	मधवानः	प्रथमा ।
मधवानम्	मधवानौ	मधोन	द्वितीया ।
मधोना	मधवभ्याम्	मधवभिः	तृतीया ।
मधोने	मधवभ्याम्	मधवभ्यः	चतुर्थी ।
मधोनः	”	”	पञ्चमी ।
मधोनः	मधोनोः	मधोनाम्	षष्ठी ।
मधोनि	मधोनोः	मधवसु	सप्तमी ।
हे मधवन् !	हे मधवानौ !	हे मधवानः !	सम्बोधनम् ।

## ‘निर्जर’ शब्दस्य रूपाणि ।

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम् ।	
निर्जरः	निर्जरसौ } निर्जरौ }	निर्जरसः } निर्जरा }	प्रथमा ।
निर्जरसम् } निर्जरम् }	निर्जरसौ } निर्जरौ }	निर्जरसः } निर्जरान् }	द्वितीया ।
निर्जरसा } निर्जरेण }	निर्जराभ्याम्	निर्जरैः	तृतीया ।
निर्जरसे } निर्जराय }	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः	चतुर्थी ।
निर्जरसः } निर्जराद् }	”	”	पञ्चमी ।
निर्जरसः } निर्जरस्य }	निर्जरसोः } निर्जरयोः }	निर्जरसाम् } निर्जराणाम् }	षष्ठी ।



निर्जरसि निर्जरे	}	निर्जरसोः निर्जरयोः	}	निर्जरेषु	सप्तमी ।
हे निर्जर !	}	हे निर्जरसौ ! हे निर्जरौ	}	हे निर्जरसः ! हे निर्जराः	} सम्बोधनम् ।

१ 'अतिचमू' शब्दस्य रूपाणि ।

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम् ।	
अतिचमूः	अतिचम्वौ	अतिचम्वः	प्रथमा ।
अतिचमूम्	अतिचम्वौ	अतिचमून्	द्वितीया ।
अतिचम्वाम्	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभिः	तृतीया ।
अतिचम्वै	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभ्यः	चतुर्थी ।
अतिचम्वः	"	"	पञ्चमी ।
अतिचम्वः	अतिचम्वोः	अतिचमूनाम्	षष्ठी ।
अतिचम्वाम्	अतिचम्वोः	अतिचमूषु	सप्तमी ।
हे अतिचमु !	हे अतिचम्वौ !	हे अतिचम्वः !	सम्बोधनम् ।

२ 'श्रु'धातोः सर्वलकारेषु प्रथमं रूपम् ।

लटि	लिटि	लुटि	लृटि
शृणोति	शुश्राव	श्रोता	श्रोष्यति
लोटि	लङि	(वि०) लिङि	(आ०) लिङि
शृणोतुः शृणुतात्	अश्रृणोत्	शृणुयात्	श्रूयात्
लुङि	लृङि		
अश्रौषीत्	अश्रोष्यत्		

१ 'हन'धातोः सर्वलकारेषु प्रथमं रूपम् ।

लटि	लिटि	लुटि	लृटि
हन्ति	जघान	हन्ता	हनिष्यति
लोटि	लङि	(वि०) लिङि	(आ०) लिङि
हन्तु, हतात्	अहर	हन्त्यात्	वध्यात्
लुङि	लृङि		
अवधीत्	अहनिष्यत्		

२ 'रुध'धातोः सर्वलकारेषु प्रथमं रूपम् ।

लटि	[ परस्मैपदे ] रुणद्धि	[ आत्मनेपदे ] रुन्धे
लिटि	„ रुरोध	„ रुरुधे
लुटि	„ रोद्धा	„ रोद्धा
लृटि	„ रोट्स्यति	„ रोट्स्यते
लोटि	„ रुणद्धु-रुन्धात्	„ रुन्धाम्
लङि	„ अरुण्यत्-अरुणद्	„ अरुन्ध
वि० लिङि	„ रुन्ध्यात्	„ रुन्धीत
आ० लि०	„ रुन्ध्यात्	„ रुत्सीष्ट
लुङि	„ अरुधत् [पक्षे] अरौत्सीत्,	अरुद्ध
लृङि	„ अरोत्स्यत्	अरोत्स्यत

इति श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिविरचितायां सोत्तरा-प्रथमा-  
प्रश्नावल्यां लघुकौमुदीप्रश्नोत्तराणि ।

१ भारता । २ रोकता ।

इति श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत 'प्रयोगार्थमञ्जरी' नाम टिप्पणी समाप्त ।

सन् १६४०

मूलरामायण-विदुरनीति-नीतिशतक-वृक्ष-दस्सु प्रश्नाः-

विशेष सूचना १० अंक स्पष्ट तथा सुन्दर लेख के लिये रक्खे गये हैं ।

१०

१ (क) स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् ।

१६

पितुर्वचननिर्देशात् कैकयाः प्रियकारणात् ॥

(ख) उत्समयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः ।

पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सम्पूर्णा दशयोजनम् ।

(ग) नन्दिप्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनवः ।

रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥

कस्यापि श्लोकद्वयस्य हिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः, कथा-सन्दर्भश्च प्रदर्शनीयः ।

२ (क) परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।

११

यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥

(ख) वनरूपतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः ।

स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥

(ग) अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।

इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद् अश्यते हि सः ॥

किमपि श्लोकद्वयं सान्वयं सभावार्थं च सम्यग् व्याख्येयम् ।

३ - (क) सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।

प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥

(ख) आरम्भगुर्वी जयिणी क्रमेण लब्ध्वा पुरा वृद्धिभती च पश्चात् ।

दिनस्य पूर्वाधपरार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥

(ग) मालतीकुसुमस्येव द्वे गतीह मनस्विनः ।

मूर्ध्नि सर्वस्य लोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥

किमपि श्लोकद्वयं सभावार्थं व्याख्येयम् ।

४-तृतीयप्रश्नेऽधोरेखाङ्कितानां केषांचित् चतुर्णां पदानां  
विग्रहवाक्यानि समासनामानि च लेख्यानि । ८

५ (क) विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं १०

विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः ।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं

विद्या राजसुपूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥

(ख) यस्यारिः । वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान्

गुणज्ञः । स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चन-

माश्रयन्ति ॥ अन्नयोहिन्दीभाषायामनुवादः करणीयः ।

६ मालिनी-प्रहाषणी वसन्ततिलका-मन्दोक्ता-सुधराच्छन्द-  
सां लज्जयानि सार्थं लिख्यन्ताम्, प्रत्येकलज्जास्य उदाहरण-  
मपि प्रदर्शनीयम् । १०

## उत्तराणि

प्र० [ १ ] ( क )

वीर-श्रेष्ठ बहू श्रीरामचन्द्रजी कैकेयी की प्रसन्नता के लिये पिता की आज्ञा से (अवश्य मैं वन में रहूँगा) इस प्रतिज्ञा को पालन करते हुए वन में गये ।

सन्दर्भ देवासुर संग्राम के अवसर पर महाराज दशरथ के रथ का धुरा टूट गया था । उस समय रानी कैकेयी ने अपना हाथ धुरा के स्थान पर लगा दिया था । इस पर प्रसन्न होकर दशरथजी ने दो वरदान देने का वचन दिया था । उसी की पूर्ति के निमित्त कैकेयी ने राजतिलक के अवसर पर महाराज से दो वरदान राम वनगमन भरत को राज्य तिलक-माँगा था ।

( ख )

लम्बी बाहुवाले और बड़े चलवान् ( सुग्रीव के सन्देश को समझ कर दुन्दुभि नामक राक्षस की ) हड्डी को देख कर और ( अरे ! यह कितना है ऐसा अनादर दिखाते हुए ) थोड़ा मुस्करा कर पाँव के अंगूठे से उसको पूरे दश योजन ( चालीस कोस ) पर फेंक दिया ।

सन्दर्भ वालि ने दुन्दुभि नामक असुर को मार कर उसके शव को  
 क्रुध्यमूक पर्वत पर फेंक दिया था जहाँ मतङ्ग नामक ऋषि तपस्या करते  
 थे। उसके शव का रक्तविन्दु ऋषि के शरीर पर पड़ा। उन्होंने क्रुद्ध हो कर  
 वालि को शाप दिया कि इस पर्वत पर आने से उसकी मृत्यु हो जायगी।

प्र० [ २ ] ( क )

परमिति । यो नरः स्वयं तथा वर्तमानः=दोषेण विद्यमानः ( सन् )  
 परं=स्वेतरं, स्वस्मादन्यमिति यावत्, दोषेण=दुर्गुणेन, क्षिपति=आक्षिपति,  
 न ईशानोऽनीशानः=असमर्थः, क्रुध्यति=क्रुध्यति, सः=एवं विधो नरः, अतिशयो  
 मूढतमः=मूर्खतमः भवतीति शेषः । विविधदोषापन्नोऽपि यो नरः स्वेतरे जने  
 दोषारोपणं करोति, तथाऽऽसक्तः सन् क्रुध्यति स वै महान्मूर्खोऽस्तीति भावः ।

( ख )

वनस्पतेरिति । यः=कश्चित्, वनस्पतेः वृक्षादित्यर्थः, न पक्वानीत्य  
 'पक्वानि, फलानि, प्रचिनोति=सङ्गृह्णाति, सः, तेभ्यः=फलेभ्यः, रसं ह्ये  
 आप्नोति=प्राप्नोति, 'प्रत्युत' अस्य=वनस्पते, बीजञ्च विनश्यति=नष्टं भवति ।  
 यो वृक्षादपक्वानि फलानि त्रोटयति तं रसप्राप्तिस्तु भवत्येव नहि, 'प्रत्युत'  
 बीजमपि विनश्यतीति भावः ।

प्र० [ ३ ] ( क )

सिंह इति । शिशु=बालः, अपि, सिंह=फेसरी, प्रशस्ताः कपोलाः  
 कपोलमिच्छतः 'मिति'शब्दः प्रशस्तवचनं-यद्वा प्रदेशवाचकः । मदन  
 मलिनाः कपोलमिच्छतस्तेषु मदनमलिनकपोलमितिषु=गजमदमलिनीकृत-  
 कपोलप्रदेशेषु 'कपोलमितिषु' इत्यत्र 'प्रशसावचनैश्चे'ति सूत्रेण समासो  
 बोध्यः । गजेषु=हस्तिषु, वधाय धावति, इयम्=एषा, सत्त्ववता=बलवता  
 प्राणिनां, प्रकृतिः=स्वभावः, एव, वयः=अवस्था, तेजसः=पराक्रमस्य, हेतुः=  
 कारणं न भवति, खलु=निश्चयेनेत्यर्थः । बालोऽपि सिंहो मदमलिनगण्ड-  
 स्थलेषु हस्तिषु तद्वधं कर्तुं निपतति, बलवतां प्राणिनामियमेव हि स्वभावः,  
 न खलु तेजसोऽवस्था कारणमिति भावः ।

( ग )

मालतीकुसुमस्येति । मालत्याः कुसुमं=पुष्पं मालतीकुसुमं “षष्ठी”ति षष्ठीसमासः, तस्य मालतीकुसुमस्य=जातिलतापुष्पस्य, इव, भगस्त्विनः=विवेकिनः पुरुषस्य द्वे, गती=अवस्थे, भवतः=स्तः । सर्वलोकस्य=सम्पूर्णजगतः, अग्निः=मस्तके (स्थायते) वा वने, शीर्यते=शीर्णेन भूयते, गृहे लोकमान्या भवन्ति वनेऽरण्यवासिनो भवन्तीत्यर्थः ।

प्र० ( ४ )

भदेन भलिनाः कपोलमितयस्तेषु तयोक्तेषु, अत्र कपोलाश्चासौ मितयः कपोलमितयः । कर्मधारयतत्पुरुषसमासश्च । आरम्भे गुर्वी आरम्भगुर्वी, सप्तमी-समासः । खलाश्च सज्जनाश्च खलसज्जनास्तेषां खलसज्जनानामत्र द्वन्द्वसमासः । मालत्याः कुसुमं मालतीकुसुमं तस्य मालतीकुसुमस्यात्र “षष्ठी” इति सूत्रेण षष्ठीतत्पुरुषसमासः ।

प्र० ( ५ )

मनुष्य का विद्या ही सर्वोत्तम रूप और गुप्त धन है । विद्या ही सम्पूर्ण भोक्तृ पदार्थ ( अन्न वस्त्र इत्यादि ) को देती है । यरा और सुख को देने वाली तथा गुरुओं का भी गुरु विद्या ही है । विद्या ही परदेरा में वन्द्यु जनों की तरह सुख दुःख में सहायक होती है, और यही सब से प्रबल भाग्य है । राजाओं के द्वारा विद्या ही की पूजा होती है, धन की नहीं । इसी से विद्या से रहित पुरुष पशु के सदृश है । कहने का तात्पर्य यह हुआ कि विद्या प्रत्येक व्यक्ति को पढनी चाहिए ।

जिसके पास धन है वही मनुष्य सद्विशोत्पन्न है, वही पण्डित है, वही वेदवित है । वही गुण को जानने वाला है, वही वक्ता है और वही दर्शनीय है क्योंकि सम्पूर्ण गुण धन पर निर्भर करते हैं ।

प्र० ( ६ )

अस्योत्तरं ‘छन्दसङ्ग्रहे’ लक्षणासुदहराश्च तत्रैव भवद्भिरवलोकनीयम् । अत्र ग्रन्थविस्तारमिमांसा न लिख्यते ।

सन् १९४०

## अनुवादे कोषे पञ्चतन्त्रे च प्रश्नाः

सूचना सुन्दर और स्पष्ट लेख के लिये ।

१०

- १ (क) निम्नाङ्कितस्य सन्दर्भस्य हिन्दीभाषायामनुवादः  
कार्यः ।

२०

उज्जयिनीमार्गे महानेकः पिप्पलवृक्षो वर्तते । तत्र हंसकाकौ  
निवसतः । कदाचित् ग्रीष्मसमये परिश्रान्तः कश्चित्पथिकस्तत्र  
तरुतले धनुष्काण्डे निधाय सुप्तः । ततः क्षणान्तरे तन्मुखात्  
वृक्षाच्छायाऽपगता । अनन्तरं सूर्यतेजसा पीडितं तन्मुखम्-  
वलोक्य कृपया पुण्यात्मना तत्पिप्पलवृक्षवासिना हंसराजेन  
पक्षौ प्रसार्य पुनस्तन्मुखे छाया कृता । परक्लेशनिवारणं हि  
महात्मनां स्वाभाविको धर्मः ।

- (ख) अधस्तनस्य हिन्दीभागस्य संस्कृतभाषायामनुवादो  
विधेयः ।

३०

कौआ और कोयल दोनों का रूप काला है । कौआ किसी  
की हानि नहीं करता है । कोयल किसी को कुछ नहीं देती  
है । तौ भी आदमी कौआ से धृणा करता है, और कोयल  
का आदर करता है । इसका कारण क्या है ? कौआ का  
शब्द कर्कश है । और कोयल का शब्द मीठा है । मधुर वचन  
बोलने से मनुष्य सब को अपने अनुकूल कर सकता है ।

- २ अधोलिखितेषु केषामपि पञ्चानां शब्दानामर्थो हिन्दीभाषायां  
लेख्यः ।

(क) स्वतः, सान्त्वम्, अपलापः, अभ्यवसायः, विषवैद्यः,  
कर्णधारः, कालिन्दी ।

(ख) 'धर्मस्य' पर्यायशब्द लेख्याः ।

३ निःशाङ्कितस्य गद्यस्य हिन्दीभाषायामनुवादः कार्यः २०

एवं ते त्रयोऽपि वेलायां कञ्चित्कालं सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभूय  
भूयोऽपि सलिलं प्रविशन्ति । अथ कदाचित्तेषां गोष्ठीगतानां  
जालहस्ता धीवराः प्रभूतैर्मत्स्यैर्व्यापादितैर्मस्तके विधृतैर्  
अस्तमनवेलायां तस्मिञ्जलाशये समायाताः । ततः सलिलाशयं  
दृष्ट्वा मिथः प्रोचुः—‘बहुमत्स्योऽयं ह्रदो दृश्यते, स्वल्पसलिलश्च,  
तत्प्रभातेऽत्रागमिष्यामः ।

(ख) अधस्तनस्य पद्यस्य स्वसंस्कृतेन व्याख्या विधेया १०  
तृप्ता देवि ! नमरुभ्यं, यया वितान्विता अपि ।  
अकृत्येषु नियोज्यन्ते, आभ्यन्ते दुर्गमेष्वपि ॥

## उत्तराणि

[ १ ] ( क )

उज्जयिनी ( उज्जैन ) के रास्ते में एक बड़ा पिपल का वृक्ष है । उस  
पर हंस और कौआ रहते थे । गर्मों के दिनों में कभी यको हुआ कोई पथिक  
( राही ) उस वृक्ष के नीचे धनुष्यण्ड को रख कर सो गया । तदनन्तर योड़ी  
ही-देर में उसके मुख से वृक्ष छाया हट गई । तब सूर्य के तेज ( धाम )  
से पीड़ित उस पथिक के सुख को देख पुण्यात्मा उस पीपल वृक्ष पर रहने  
वाले हंसराज ने पङ्ख फैला कर उसके मुख पर छाया किया । दूसरे के  
क्लेश को निवारण करना ही महात्माओं ( सज्जन लोगों ) का स्वभाविक  
धर्म है ।

[ ख ]

काककोकिलयोः स्वरूपं कृष्णवर्णमेव । काक न कस्याप्यङ्कारं करोति ।  
कोकिला न किमपि किञ्चिद्ददाति । तथापि जनाः काकाद्वृष्टां कुर्वन्ति,  
कोकिलां प्रशसन्ति च । अत्र किं कारणम् ? काकराण्डो रुक्षः, कोकिलायाश्च  
मधुरः । प्रियवचनाज्जन सर्वानपि स्वानुकूल्यं कर्तुमर्हतीति ।



## प्र० [ २ ] ( कं )

स्तवः=‘स्तव’शब्द का अर्थ स्तुति है ।

सान्त्वम्=‘सान्त्व’शब्द का अर्थ है खूब मीठी बात ।

अपलापः=‘अपलाप’शब्द का अर्थ है कही हुई बात से मुकर जाना ।

अध्यवसायः=‘अध्यवसाय’ का अर्थ उत्साह है ।

विषवैद्यः=‘विषवैद्य’शब्द का अर्थ है सर्प के विष को दूर करने वाला ।

कर्णधारः=‘कर्णधार’ पतवार पकड़ने वाले का नाम है ।

कालिन्दी=‘कालिन्दी’शब्द का अर्थ यमुना नदी है ।

## ( ख )

धर्मम्=पुण्यम् श्रेयसी-सुकृतम् इत्यादि ।

## प्र० [ ३ ]

इस प्रकार वे तीनों जल के किनारे ही कुछ काल तक सुभाषित गोष्ठी ( बातचीत ) का आनन्द लेकर फिर भी जल में कूद जाते । बाद किसी समय उनके गोष्ठी करते हुए धीवर ( मछाह ) जाल हाथ में लिये हुए बहुत सी मछलियों को मार कर, शिर पर रख कर, सूर्यास्त के समय तालाव के किनारे आ पहुँचे । तब तालाव को देख कर वे आपस में कहने लगे ‘अहो, यह तालाव बहुत मछलियों से पूर्ण तथा थोड़ा ही जल वाला दिखाई पड़ता है । सो प्रातःकाल यहाँ आवेंगे ।

## [ ख ]

तृण्ये-इति । हे तृण्ये देवि ! तुभ्यं नमः=नमस्करोमि, यथा=तृण्यथा, ( त्वया ) वित्तेन=धनेन, अन्विता=युक्ता, अपि, अकृत्येषु=निन्द्यकार्येषु, नियोज्यन्ते=संयोज्यन्ते, तथा दुर्गमेषु=गन्तुमशक्येषु स्थलेष्वित्यर्थः, आन्यन्ते=परिप्राप्यन्ते ।

\* इति श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिविरचितान्यनुवाद-कोष-पञ्चतन्त्राणां

प्रश्नोत्तराणि \*

सन् १६४०

## गणिते प्रश्नाः—

सूचना स्पष्ट तथा सुन्दर लेख के लिये १० अङ्क सुरक्षित हैं ।

१- (क) निम्नलिखित संख्या को अङ्कों में लिखो:

पचास अरब अस्सी करोड़ तीस लाख दस हजार पांच । ५

(ख) निम्नलिखित संख्या को शब्दों में लिखो: ५

३८५६०० ६८०३४

उपर्युक्त संख्यामें जितने ३ हैं उनके स्थानीय मान बताओ । ३

२- निम्नलिखित संख्याओं का योगफल निकालो:

१२३४५६७८, ८७६५४३२१, ७०६०५०४०, ६००६०००६,

३५६६७०६५, ८३४०६६६८

१३

३- १६२१-१५६७३ । ३०७ - ६६ - ३५ में कितनी संख्या जोड़ी जावे कि योगफल दस लाख के बराबर हो ? १२

४- सरल करो:  $४ \div [३ + ४ \div \{२ + ४ \div (४ - २)\}]$  १०

अथवा

दो संख्याओं का गुणनफल ७२४३४६१ है । उनमें बड़ी संख्या ३४००७ है तो बताओ कि दोनों संख्याओं का अन्तर क्या है ? १०

५- पानी की किसी टङ्की में दो नल लगे हुए हैं । एक नल से उसमें एक मिनट में २ मन ४ सेर ३ छटांक पानी आता है और उसी समय में दूसरे नल से २४ सेर ११ छटांक पानी निकल जाता है । यदि दोनों नल एक साथ खोल दिये जावें तो उस टङ्की में २७ मिनट में कितना पानी जमा हो जावेगा ? १५

६- एक थैली में कुछ अठन्नियाँ और चवन्नियाँ हैं तथा उनकी

कुल संख्या ५० है। यदि उस थैली में कुल १८ रु० ४ आना है तो बताओ कितनी अठन्नियाँ और चवन्नियाँ हैं ? १२

७ ६५७ मन आटे को बोरो में भरना है। यदि प्रत्येक बोरे में १ मन १ सेर १ छटांक आटा भरा जा सकता हो तो बताओ कि कुल कितने बोरो की आवश्यकता होगी ? १५

अथवा

६६३ पौंड १४ शि० ८ पे० में से कम से कम कितना द्रव्य निकाल लिया जावे कि शेष द्रव्य ३७ मनुष्यों में बराबर बराबर विभक्त हो सके। १६

उत्तराणि-

प्र० [ १ ] (क)

५०, ८०, ३०, १०, ००५

(ख)

अड़तीस अरब, छप्पन करोड़, अठानवे हजार, चौतीस।

(३) का स्थानीयमान १० अरब है।

(३) का स्थानीयमान दहाई का है।

प्र० [ २ ]

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १

७ ० ६ ० ५ ० ४ ०

६ ० ० ६ ० ० ० ६

३ ५ ६ ६ ७ ० ६ ५

८ ३ ४ ० ६ ६ ६ ८

३४ ६ ७ ७ २ १ ३ ८

यह योगफल हुआ।

प्र० [ ३ ]

$$१६२१ - १५६७ + ३०७ - ६६ - ३५$$

$$१६२१ + ३०७ = १९२८ \text{ योगफल हुआ ।}$$

$$१५६७ - ६६ - ३५ =$$

$$१५६७$$

$$६६$$

$$३५$$

$$१७२८ \quad \text{बाकी हुआ ।}$$

$$१९२८ - १७२८$$

$$१९२८$$

$$१७२८$$

$$२००$$

$$१०००००० - २००$$

$$१०,०००००$$

$$२००$$

६६६८०० इतनी संख्या जोड़ने से दस लाख के बराबर होगी ।

प्र० [ ४ ]

$$४ \div [३ + ४ \div \{ २ + ४ - (४ - २) \}]$$

$$४ \div [३ + ४ \div \{ २ + ४ \div (४ - २) \}]$$

$$४ \div [३ + ४ \div \{ २ \mid ४ \div २ \}]$$

$$४ - [३ + ४ \div \{ २ + \frac{२}{४} \times \frac{१}{२} \}]$$

$$४ \div [३ + ४ \div \{ २ + \frac{२}{४} \}]$$

$$४ \div [३ + ४ \div \{ ४ \}]$$

$$४ \div [३ + ४ \div ९]$$

$$४ - \left[ ३ + \frac{९}{९} \times \frac{९}{९} \right]$$

$$४ \div [३ + \frac{९}{९}]$$

$$४ \div \left[ \frac{३ + ९}{९} \right]$$

$$\frac{९}{९} \times \frac{९}{९}$$

∴ उत्तर १

अथवा

$$\begin{array}{r} ३४००७ \\ ७२४३४६१ \\ \hline ६८०१४ \end{array} \quad \begin{array}{l} (२१३) \end{array}$$

$$४४२०६$$

$$३४००७$$

$$१०२०२१$$

$$१०२ २१$$

X

$$\text{बड़ी संख्या} = ३४००७$$

$$\text{छोटी संख्या} = २१३$$

$$\text{दोनों का अन्तर} = ३३७९४ \quad \text{उत्तर १}$$

प्र० [ ५ ]

२ मन	४ सेर	३ छ०	१ मिनट में आता है ।
	२४ सेर	११ छ०	१ मिनट में निकलता है ।
१ मन	१६ सेर	७ छ०	१ मिनट में
		२७	२७ मिनट में

उत्तर ४० मन ४ सेर १३ छ०

प्र० [ ६ ]

अगर १ अठन्नी और १ चवन्नी हो

तो २० अठन्नी + २० चवन्नी = १०) + ५) = १५) रु०

अर्थात् ४० सिका = १५) रु०

शेष १० सिका = चवन्नियों + अठन्नियों ३।)

अगर इसमें ३ अठन्नी हो और ७ चवन्नी

तो ३ अठन्नी + ७ चवन्नी = १॥) + १॥॥) = ३।)

∴ २० अठन्नी + ३ अठन्नी + २० चवन्नी + ७ चवन्नी = १८।) रु०

∴ २३ अठन्नी + २७ चवन्नी = १८ रु० ४ पा० ।

मन	मन	सेर	छटाँक
६५७	१	१	१
४०	४०		
०००	४०		
२६२८	१		
२६२८०	४१		
१६	१६		
१५७६८०	६५६		
२६२८०	१		

४२०४८० छटाँक

६५७ छटाँक

$$६५७ \left( \begin{array}{l} ४२०४८० \\ ३६४२ \end{array} \right) (६४०$$

२६२८

२६२८

०

∴ ६४० घोरों की आवश्यकता होगी ।

अथवा

पौ०

शि०

पे०

६६३

१४

८

२०

०००

१३२६

१३२६०

१४

१३२७४ शिलिङ्ग

१२

२६५४८

१३२७४

१५६२८८

८

१५६२९६ पेन्स

$$\begin{array}{r} ३७ ) १५६२६६ \quad ( ४३०५ \\ १४८ \end{array}$$

११२

१११

१६६

१८५

११ शेष

११ पेन्स निकाल लेने से पूरा पूरा विभक्त होगा ।

\* इति श्रीशिवदत्तमिश्रसालिखितानि गणितस्य प्रश्नोत्तराणि \*

सन १६४०

**हिन्दीपीठमालायां स्वास्थ्यशिक्षायां च प्रश्नाः**

[ अनावश्यक समझ कर केवल प्रश्नपत्र ही दिये गये हैं,  
उत्तर नहीं लिखे हैं ]

सूचना १० अङ्क स्पष्ट तथा सुन्दर लेख के लिये हैं ।

१ शिष्टाचार किसे कहते हैं ? उससे क्या लाभ होता है ? शुद्ध हिन्दी में संक्षेप से उत्तर लिखिये । १५-

२ 'गो-सेवा' या 'ब्रह्मचर्य' पर अपनी हिन्दी में एक शुद्ध संक्षिप्त निबन्ध लिखिये जो उत्तर पुस्तक के दो पन्ने से अधिक न हो । १६

३ नीचे लिखी चौपाई का अर्थ प्रसङ्ग बताते हुए लिखिये । १५-  
वर्षा काल मेघ नभ छाये ; गरजत लागत परम सुहाये ।



दामिनि दमक रही धनमाहीं ; खल की प्रीति यथा थिर नाही ॥

४ (क) नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध कीजिये:

(१) गऊ का गोबर के आद बहुत अच्छा होता है। (२) हम-  
आपका साथ देवी का दर्शन को चलूँगा। (३) गुरु का  
आगमन को सुनकर छात्रों का विस्मय हुई। ६

(ख) नीचे लिखे शब्दों को लेकर पाँच वाक्य पृथक् पृथक्  
बनाइये। जिनसे इनके लिङ्ग का भी ज्ञान स्पष्ट मालूम  
हो जाय

वात, वायु, महिमा, कीर्ति और हाथी। १०

५ (क) फपड़े और कमरे का सफाई से क्या लाभ होता है? १०

(ख) प्रकाश और पानी का जीवन में क्या उपयोग होता है? १०

(ग) नशे को कौन कौन वस्तुएँ हैं? उनसे क्या क्या हानियाँ  
होती हैं? ५

सन् १९४०

## इतिहास तथा भूगोल

सूचना: तीन प्रश्न इतिहास के और तीन ही भूगोल के करें।

छ: प्रश्नों से अधिक न करें। १० अङ्क सुलेख के लिये  
सुरक्षित हैं।

(क) इतिहास

१ कौरव पाण्डव कौन थे? संक्षेप में महाभारत की लड़ाई का  
कारण बताइये? १५

- २ अशोकवर्धन को राजगद्दी किस तरह मिली ? उन्होंने प्रजा के सुख के लिये जिन २ कार्यों को किया उनका उल्लेख करिये ? १५
- ३ पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द में लड़ाई होने का कारण बताइये ? पृथ्वीराज का राज्य कहाँ था लिखिये ? १५
- ४ अकबर बादशाह के जन्म के विषय में आप क्या जानते हैं । उनके सुधारों का संक्षेप में उल्लेख करिये ? १५
- ५ निम्नलिखित में से किन्हीं तीन के विषय में लिखिये । १५

(१) रामवनगमन का कारण ।

(२) महाराणा प्रताप की वीरता ।

(३) महमूद गजनवी और सोमनाथ का पुजारी ।

(४) सिक्ख किस तरह बहादुर बने ।

(ख) भूगोल

- ६ भारत की सीमा तथा उसके प्रान्तों को दिखलाते हुए भारतवर्ष का एक चित्र खींचिये ? १५
- ७ भारत के किन्हीं पाँच प्रान्तों का नाम लिखिये । उनकी राजधानियों और प्रत्येक प्रान्त में दो प्रसिद्ध जिलों का उल्लेख करिये ? १५
- ८ सिन्धु, गंगा, नर्मदा, नदियाँ कहाँ २ से निकलती हैं ? इनकी मुख्य २ सहायक नदियों का नाम लिखिये ? १५
- ९ भारतवर्ष के मुख्य मुख्य पर्वतों के नामों तथा भारतवर्ष में उनके स्थानों को लिखिये ? १५

१०-निम्नलिखित में से किन्हीं तीन के विषय में लिखिये । १५

- (१) काश्मीर ।
- (२) बर्मा ।
- (३) राजपूताना ।
- (४) नेपाल ।
- (५) मानसरोवर ।

इति गोरक्षपुरमण्डलान्तर्गत-भक्तौली राज्य-निवासि-सुप्रसिद्ध-  
 पण्डितकुलप्रसूत-पण्डितश्रीसन्तशरणमिश्रात्मजेन  
 पण्डितश्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिविरचिता-  
 'सोत्तरा-प्रथमा-प्रश्नावली'  
 सम्पत्ता ।



## CONSTITUTION

One of the oldest Paper Mills in India managed and financed by Indians only under pure Indian directorate. Manufacturers of various varieties of paper, 10 tree samples, terms and agency proposals for unrepresented areas and also—

# शेवराजे मोठेकार

सहस्रं महं महं महं महं,

सहस्रं महं महं महं महं,

सहस्रं महं महं महं महं,

# संज्ञ के

शुद्ध, सुंदर, सुघर,  
सलामत, सुगमता-  
वर्ति, अशुद्ध, सस्

देश, देह और  
द्रव्य के लिये

के व्यवहार करने के लिये हम अपने कई अर्थ कहते हैं ?

कई कारणः—

## १—शाब्दिक पाठ

हमारे यहाँ प्रायः सभी  
व्याख्या प्राचीन आधु-  
निक ग्रंथों के अनुसार  
तैयार की जाती हैं। देश की  
वस्तु, देश की पुँजी और  
देश की मजदूरी, पुराना

## २—सत्त्व और रूप

हमारे यहाँ की औषधियाँ  
अंतिम ढंग के यंत्रों द्वारा,  
शुद्धता और पवित्रता पर  
ध्यात रखकर, लोहे  
और गुणदायक वस्तुओं  
से तैयार की जाती हैं।

## ३—सेने के पदक

अखिल भारतवर्ष आधु-  
निक सम्मेलन कलकत्ता  
सन १९१४ मदरास सन्  
१९१५ और पुना सन् १९१७  
की प्रदर्शनी में, रत्न भार

सुत-कुल-कुत-निर्बलता के लिये संसार की समस्त

औपधियों से अति उत्तम और तत्काल गण दिखानेवाली औपधि है ।

जाड़ों के दिन “सतशिलाजीत” के सेवन के लिये खास दिन है। ‘सत-शिलाजीत’ शरीर को सबल, अस्थियों को सुस्निग्ध, सर्वांगदृढ़, पृष्ठ और सुंदर, गुलाबी मुखमंडल, हाथ-पैरों को सशक्त, नेत्रों को तेजस्वी, मन को उत्साही और आनंदी बनाकर संपूर्ण ऐश्वर्य-प्रदान करता है।

यही नहीं, बल्कि ४० दिन विधि-पूर्वक सेवन करने से बीसों प्रकार का प्रमेह तथा धातु-संबंधी सब प्रकार के दोष, बहुमूत्र, दमा, खाँसी, अरुचि, मंदगति, समहृणी, दर्द, चोट का दर्द, कसर, रीढ़, पुट्ट और गुर्दे का दर्द, रुन्माद, रत्नापद, विपशोथ, गुल्म, पांडु, ज्वर, क्षय, और स्त्रियों के प्रदर, प्रसूत, नलों का दर्द तथा गर्भाशय की पीड़ा आदि की समूल नष्ट करके शरीर में नया खून, नई ताकत, नया

खानदू मिलेगा। मूल्य ४० दिन की पूरी खुराक—५ तोले का—१), १० तोले का ६), २० तोले का १७),

五

तत्काल फलदायक !

# जगदनसिद्ध हिमकल्पद्रु तैल .

महाप्रशस्ति



नाम-भात्र को तैल, किंतु गुण अमिय लजावत ।  
शिर के सारे रोग, मित्र ग्रह तुरत भजावत ॥  
रसकी सुंदर छटा, देखि पशु-गण मस्ताने ।  
फिर रसिकन की दशा, कह्यो जग कौन बखाने ॥  
सांपत अगणित तैल, जहाँ देखो दूरसाते ।  
निज-निज रुचि अटुसार, सभी उनके गुण गाते ॥  
किंतु एक भी बार, जिन्होंने इसे लगाया ।  
लोकोत्तर आह्लाद, पाय इसको अपनाया ॥  
सुलभ मूल्य गुण देखि, इसे चाहत नृप, रंका ।  
तत्कालहि फल देत, बज्रत भारत में डंका ॥

यदि आप जीवन का सखा सुख देखना चाहते हैं और पवित्र तथा उपयोगी तैलों के बगाने का शक्ति प्राप्त करें, तो हमारा "जगत्प्रेमसिद्ध हिमकल्याण तैल" मंगाइए । यह तैल आन्तरिक के तैलों की भाँति



# वेदक, पूरक और डेंटिज किन्हे

श्रीमान् कनिविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा  
वैद्य लाहौर ने बड़े अनुसंधान और अनुभव के पश्चात्  
एक ऐसी औषधि तैयार की है, जो एक ही औषधि  
प्रायः सर्व रोगों का इलाज है। जैसे—

उन् रोगों का इलाज किन्हे  
करके कर सकते हैं और किन्हे

हर प्रकार की शिर-पीड़ा, मस्तिष्क की  
कास,



संबन्धी समस्त रोग । दंत-  
पीड़ा, दाँतों को पानी लगना,  
खून या दंतव्रण इत्यादि समस्त  
दंत-रोग । कर्ण-पीड़ा, कर्ण-व्रण,  
कर्ण-रु

हर प्रकार का घाव डक। हर प्रकार के फोड़े, पुञाक, आतश, गिरह, बावला, कुत्ता, चूहा इत्यादि के संधि-पीड़ा, हर प्रकार का शोथ, बाहरी और भेरी ददे, चोट, बवासेर (अर्थ), प्लेग, यक्ष्मा। ऋतु-विकार, प्रसूत आदि रोग-रोग, अपस्मार, कंठमाला, जिह्वाशोथ, मुँह का पकना, गले पड़ना, आवाज ठठना, रक्तपित्त, स्तनशोथ, तेली, रुदा-रोग, मगदर, बुकड़य (गुरदे), मूत्राशय की पीड़ा, घाव का फूलना, पिड़ली का फूलना, पेली, खाज खुश्क व तर, छुपाकी, स्वेदाधिक्य, तेजाब इत्यादि से जलना इत्यादि विविध रोगों को आवश्यकतानुसार लगाने या खाने से दूर करती है। ६० फ्रीसदी को तो आराम फ़ौरन शुरू होता है। धनी बीमारी एक तो ज़रूर जाती है। विस्तृत व्योरा जानने के लिये अमृत-पुस्तक मुक्त मंगवाएँ।

मूल्य केवल २॥, आधी शीशी १॥, नमूना ॥॥

पत्र-चन्द्रहर व तर क पत्र—**रुद्रहर ६२, लहर**

विज्ञापक—मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवने,

अमृतधारा सड़क, अमृतधारा डाकखाना, लाहौर।

तख्त ऊ में एजेंट—**इंद्रचंद्र जेम्स एंड इग्लिस्ट, चौक, लखनऊ**